श्रीधन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष १०	मुरादाबाद, जनवरी १९२२	संख्या १

वैद्योद्गार ।

(ले० प० नाथूराम शङ्कर शर्मा (शंकर)

सद्गृहस्थों को सुखों का भोग करना चाहिये ।
संयमी संन्यासियों को योग करना चाहिये ॥
स्वर्ग की आराधना हो या कथन हो मुक्ति की-
दूर दोनों साधनों से रोग करना चाहिये

नववर्ष का स्वागत ।

(ले०—पं० कृष्णानन्द जोशी बी० ए०, एल० टी०)

वर्ष सुखों का सार, स्वास्थ्य संसार बताता ।
बल के सरल उपाय, सर्वदा हमें सिखाता ॥
आलस दूर भगाय, स्फूर्ति का देने वाला ।
अपने भरसक रोग, तिमिर हर लेने वाला ॥
जो "वैद्य" हमारा प्रिय सखा, उसका स्वागत कीजिये ।
नव वर्ष उसे आनन्दप्रद, हो निश्चिन्त वर दीजिये ॥

—०—

नूतन वर्ष ।

वर्ष आते अब धोखेबाज़, न कोई बना ग़रीब निवाज़ ।
बचे यदि नहीं देशकी लाज, लिखूं तो कैसे स्वागत आज ॥
न आनूँ दुख लाये या हर्ष ।
आ रहे हो, हे नूतन वर्ष ॥
समझ क्या है तुम सुखदाई, न आशा पूर्ण वायु आई ।
न भागी भारत-महँगाई, न सूखी जड़ पुन लहराई ॥
तुम्हारी ओर चित्त आकर्ष ।
किस तरह के हो, तुम हे वर्ष ?
बड़े हैं हम धोखा खाये, भाग्य में काले नभ छाये ।
साथ में जो स्वराज्य लाये, कहूँगा तभी, खूब आये ॥
पधारो ! स्वागत ! सुखदादर्श ।
फलो फूलो, हे नूतन वर्ष ॥
हटादो कलह और तकरार, बनादो पशुबल को निस्सार ।
प्रजा राजामें हो व्यवहार, मिले भारतको निज अधिकार ॥
करो भारत मा का उत्कर्ष ।
हर्ष के सहित पधारो वर्ष ॥

नयन ।

—०—

शास्त्रीय आहार-विधि।

इस समय अनेक पाश्चात्य सभ्यताभिमानी, विलायती भोजन-भक्त हमारी प्राचीन भोजनविधि को निरी असभ्यतापूर्ण बताते हैं-और इस में अनेक दोष निकालते हैं। अतः, इस लेख में हम अपनी प्राचीन भोजनविधि के सम्बन्ध में कुछ शास्त्रीय उपदेशों को उद्धृत करते हैं। विलायती भोजन विधि की आलोचना किसी अन्य लेख में की जायगी।

महर्षि कहते हैं कि: 'इष्टवर्णरसगंधस्पर्शं विधिविहितमन्नपानं प्राणिनां प्राणसंज्ञकानां प्राणमाचक्षते कुशलाः। प्रत्यक्षफलदर्शनात्। तदिन्धना ह्यन्तराग्नेः स्थितिः। तत्सत्त्वमूर्जयति। तच्छरीरधातु-व्यूहबलवर्णेन्द्रियप्रसादकरं यथोक्तमुपसेव्यमानम्।

अर्थात्-जो विधिपूर्वक सिद्ध किया हुआ आहार-वर्ण में मनोज्ञ, गन्ध में मनोहर, रसमें अभीष्ट और स्पर्श में प्रीतिकर हो ऐसा अन्न-पान प्रत्यक्ष फलप्रद होने के कारण मनुष्य और अन्य प्राणियों के लिए प्राणस्वरूप है इस प्रकार चतुर वैद्य कहते हैं। उक्त प्रकार के अन्न-पान कायाग्नि के लिए ईंधन की समान हैं। ऐसे ईंधन के योग से जठराग्नि साम्यावस्था में रहती है। यथाविधि भोजन करने से प्राणियों के सत्त्वगुण की वृद्धि होती है। शरीर की समस्त रसादि धातुयें एवं बल, वर्ण और इन्द्रियाँ प्रसन्न होती हैं।

"प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या हिनस्त्यसून्।" अर्थात् युक्तिपूर्वक सेवन किया हुआ अन्न प्राणियों के लिए प्राणस्वरूप है। किंतु विधिरहित यथेष्ठ आहार करने से नाना प्रकार के रोगों से ग्रसित होकर अकाल में ही काल का ग्रास बनना पड़ता है। इस कारण सब को सदैव विधिपूर्वक आहार करना चाहिए।

१ हिताशी स्यात्। यदाहारजातमग्निवेश। समांश्चैव शरीरधातून् प्रकृतौ स्थापयति, विषमांश्च समीकरोति। तद्धितं विद्धि तद्विपरीत-त्वहितम्।

अर्थात्-हे अग्निवेश हिताहार पाथ्य हो। जो आहार रस, रक्तादि धातुओं को साम्यरूप से रक्षा करे। अर्थात् धातुओं को अपने

ध्यान और स्वभाव में स्थिर रक्खे किसी धातु में विषमता न होने देवे उस को हिताहार कहते हैं।

संपूर्ण स्त्री पुरुषों की प्रकृति एकसी नहीं होती। कोई वातप्रकृति, कोई पित्तप्रकृति, कोई कफप्रकृति अथवा कोई मिश्रित प्रकृतिवाले होते हैं। इस लिए सबको एक ही प्रकार का आहार हितकर नहीं हो सकता। जिसकी जैसी प्रकृति हो, उसके विपरीत गुणवाला आहार ही उसके लिए हिताहार होसकता है। जैसे पित्तप्रकृतिवाले मनुष्य को पित्तनाशक आहार हितकर होता है।

समस्त ऋतुओंमें एक ही प्रकारका आहार उपयोगी नहीं होता। ऋतुके स्वभावसे विपरीत गुणोंवाला आहार ही हितकर होता है। जैसे वसन्तऋतुमें कफनाशक, शरद ऋतुमें पित्तनाशक और वर्षाऋतु में वायुनाशक आहार ऋतुजन्य दोषोंको शमन करके उत्तम प्रकारसे शरीरकी पुष्टि करसकता है।

देशभेदसे भी खाद्यपदार्थ हितकर होते हैं। जो आहार एक देशके मनुष्योंके लिए हितकर होता है वही दूसरे देशके मनुष्योंको विरुद्ध पड़ता है।

अवस्थानुसार भी भोज्य पदार्थोंमें भेद और परिमाणकी कल्पना कीजाती है। इन सब बातोंको विचार कर प्रकृति (स्वभाव) ऋतु, देश, अवस्था और अभ्यासके अनुकूल आहार करना चाहिए। इन बातों पर ध्यान न देनेसे आहार के दोषसे उत्पन्न हुए विविध रोगोंसे ग्रसित होना पड़ता है।

२ मात्राशी स्यात्। अर्थात् परिमित आहार करना चाहिए। कहा भी है:—

"आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी। यावद्ध्यस्याशनमशितमनुपहत्य प्रकृतिं यथाकालं जरां गच्छति तावदस्य मात्रा प्रमाणं वेदितव्यम्।"

अर्थात् मनुष्योंकी परिपाक शक्ति एकसी नहीं होती। किसी मनुष्य के समाग्नि, किसीके मन्दाग्नि, किसीके तीक्ष्णाग्नि और किसीके विषमाग्नि होती है। समाग्निवाला मनुष्य उपयोगी परिमित आहार को ही सुखपूर्वक जीर्ण (हजम) करसकता है। मन्दाग्नि वाले मनुष्य की परिपाक शक्ति बहुत दुर्बल होती है इसलिए वह बहुत थोड़ी

मात्रामें आहार जीर्ण करसकता है। तीक्ष्णाग्नि वाला जो कुछ खाता है, वह उसको पचा तो शीघ्र जाता है, परन्तु उससे शरीरका उत्तम प्रकारसे पोषण नहीं होता। विषमाग्नि वालेके कभी खाद्य पदार्थ जल्द में पचजाते हैं और कभी बहुत देरमें भी उत्तम प्रकार से नहीं पचते। इसीलिए महर्षि कहते हैं कि—"आहारमात्राग्निबलापेक्षिणी।" जिसको जितने आहारसे शरीरमें किसी प्रकारकी गड़बड़ न हो और यथा-समय वह जीर्ण होजाय उसके लिये उतना आहार ही उचित मात्राहार है। अपनी परिपाक शक्तिके बलाबलको विचार कर उपयुक्त मात्रासे हिताहार करना ठीक है।

अधिक मात्रामें आहार करना हानिकारक होता है। अल्पमात्रा वाला आहार भी अनिष्ट करता है। अल्प-आहार करने से शरीरकी धातुयें उत्तम प्रकारसे पुष्ट नहीं होसकतीं। इसकारण शरीर दुर्बल होजाता है। दुर्बल शरीरमें क्रमसे नानाप्रकारके रोग उत्पन्न होजाते हैं। इसलिए "मात्राशी स्यात्" इस नियमको सदैव पालन करना चाहिए।

२ कालभोजी स्यात्। अर्थात् यथासमय भोजन करना चाहिए। कदापि असमयमें भोजन नहीं करना चाहिए।

कहाभी है कि—'याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत्।' अर्थात् जबतक एक प्रहर न बीतजाय तबतक आहार न करे। दो प्रहर के बीच में ही भोजन करलेना उचित है। रात्रि में भी एक प्रहर के पश्चात् दूसरे प्रहरके पहलेही आहार करना चाहिए। इस समय अनेक कारणों से इस योग्यकार्य्य में विघ्न उपस्थित होगया है। इससे विवश होकर बहुत से मनुष्यों को असमय में आहार करना पड़ता है। पहले इस देशमें प्रातःकाल और अपराह्णकालमें काम करनेका समय निर्दिष्ट था। यह बड़ी अच्छी प्रथा थी। छात्रगण पूर्वाह्ण और अपराह्ण के समय विद्यालयों में अध्ययन करते थे। राजद्वारमें भी दो बार काम करने का समय निर्दिष्ट था। मज़दूरलोग भी दोनों समय काम करते थे। इस समय पठन पाठन एवं सभी कार्य्यों का समय परिवर्तित हो गया है। बहुत जगह मज़दूर लोग भी दोनों वक्त काम नहीं करते। प्रातः १० बजे से सन्ध्या के ५ बजे तक काम करते हैं। इस नियम से बाध्य होकर कर्म्मचारियों को असमय में ही आहार करना पड़ता है जिस से उनको आहारविधि के उल्लंघन करने का फल भी हाथों हाथ मिलजाता है। अजीर्ण, अम्लाजीर्ण, संग्रहणी आदि रोगों के

आक्रान्त होकर बहुत से मनुष्य युवावस्था में ही, जराग्रस्त होजाते हैं। बहुत से अकाल में ही मृत्यु के मुख में पतित होजाते हैं। अतः, उक्त कारणों को बिना त्यागे आरोग्यता की आशा नहीं की जासकती। किन्तु कार्य्यवश सभी भोजन के नियमों का पालन नहीं करसकते। इस लिए उत्तम चिकित्सा के करने से भी उपर्युक्त रोगों से छुटकारा पाना कठिन होजाता है।

४ जीर्णे हितं मितं चाद्यात्। अर्थात्—पहले किये हुए आहार के उत्तम प्रकार से जीर्ण होजानेपर हितकर और परिमित आहार करना चाहिए। कहा भी है:—

'अजीर्णे भोजनं विषम्।' यह बात बहुत प्रसिद्ध है। इसको प्रायः सभी जानते हैं कि अजीर्ण में भोजन करना विषकी समान हानिकर होता है। किन्तु जानकर इस का पालन न करना अनर्थ का कारण है। बहुत लोग अजीर्ण में भोजन करके रोगाक्रान्त होते देखे जाते हैं। इस लिए जबतक पहला कियाहुआ भोजन अच्छे प्रकार से न पचजाय तब तक कदापि भोजन नहीं करना चाहिए।

'उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः। लघुता क्षुत्पिपासे च जीर्णाहारस्य लक्षणम्॥' जब डकार शुद्ध आने लगे अर्थात् उसमें किसी प्रकार का भारीपन और दुर्गन्धि न हो, मन में उत्साह हो, मल-मूत्र अच्छे प्रकार से उतरने लगे, शरीर विशेष हलका मालूम हो और क्षुधा-तृषा उत्पन्न हों तब जानना चाहिए कि आहार उत्तम प्रकार से जीर्ण होगया है। जीर्णाहार के लक्षण जानलेने पर ही फिर भोजन करना चाहिए।

हमारे आयुर्वेदशास्त्र में कहीं कहीं पर अजीर्ण में भोजन और अध्यशन इन दो शब्दों का एकत्र समावेश देखा जाता है। अध्यशन शब्दका अर्थ है—पहले दिन का आहार जीर्ण न होने पर भोजन करना। जिस स्थान में दोनों बातों का एकत्र समावेश है, वहां पर अजीर्ण में भोजनका अर्थ स्वतन्त्र है। इस जगह अजीर्ण शब्दका अर्थ परिपाक यन्त्र की किसी न किसी रचना अथवा क्रिया में विकार होने से एक प्रकार के रोग का होना है। इस प्रकार के अजीर्ण में वैद्य की सम्मति लेकर आहार करना चाहिए।

५ उष्णमश्नीयात्। अर्थात् सुखोष्ण (सुहाता २) भोजन करना चाहिए।

जो गेहूँ, उड़द, मूँग, चावल दाल और नाना प्रकार के कन्द,मूल फल, शाक आदि के द्वारा हमें भोजनोपयोगी पदार्थ तैयार करने चाहिएँ। जल और अग्निके योग से अन्न एवं यथोचितमात्रामें घृत, तेल, नमक, मिरच और विविध प्रकार के मसाले डालकर नाना प्रकार के व्यञ्जन सिद्ध किये जाते हैं। भोजन-व्यञ्जनों को बनाने के लिए जो पदार्थ संग्रह किये जाते हैं, उन में किसी प्रकार के हानिकारक जन्तु अथवा अन्य किसी प्रकार के दूषित पदार्थ मिले हों तो वे संस्कारके द्वारा नष्ट होजाते हैं। जबतक भोजन गरम रहता है तबतक वह निःशंक चित्त से खाया जासकता है। किन्तु रक्खा रहनेपर उसमें मक्खी, चींटी आदि जन्तुओं के गिरने का भय रहता है और वह पचने में भी दुर्जर होजाता है। इस कारण सुखोष्ण ही भोजन करना चाहिए। उष्ण भोजन करना तृप्तिकारक,जठराग्नि को दीपन करने वाला,सहजमें पचने वाला,वायु को अनुलोमन करने वाला और कफनाशक होता है। किन्तु अत्यन्त उष्ण भोजन करना महाहानिकारक है। इसलिए अत्यन्त गरम भोजन कभी नहीं करना चाहिए। लिखा भी है कि:—"अत्युष्णान्नं बलं हन्ति शीतशुष्कञ्च दुर्जरम्। अतिक्लिन्नं ग्लानिकरं युक्तियुक्तं हि भोजनम्" ॥

६ स्निग्धमश्नीयात्। अर्थात् स्निग्ध अन्न-पान सेवन करना चाहिए। घृत, तेल, चर्बी और मज्जा (अस्थिगत स्निग्धपदार्थ) इन चार पदार्थोंका साधारण नाम स्नेह है। स्नेहयुक्त खाद्यका नाम स्निग्धाहार है। शीतगुणयुक्त पदार्थको भी स्निग्धद्रव्य कहते हैं। बादाम,पिस्ता, मुनक्का और नारियल आदि अनेक प्रकारके पदार्थ स्वभावसे स्निग्ध हैं। दही, दूध भी स्नेहकी समान हैं। अत्यन्त शीतल पेय पदार्थ भी स्निग्धपदार्थोंमें गिनेजाते हैं। जो खाद्य पदार्थ विशेष गुणवाले हों और जिनमें परिपाकके योग्य स्नेह हो वे ही पदार्थ आहारके लिये ग्रहण करने चाहिएँ। आवश्यकता होने पर घृत, तेल और मक्खन के योगसे रूक्ष अन्न को भी स्निग्ध करके खाया जासकता है। साधारणतः सभी लोगोंको स्निग्धाहार हितकर है। स्निग्धाहार सुस्वादु, रुचिकर और उपयुक्त मात्रामें खाया हुआ जठराग्निको दीपन करता है। एवं मेद, मांस और मज्जादि धातुओंको पुष्ट करता,शरीरके वर्णको उज्ज्वल तथा मस्तिष्क शक्तिको पुष्ट और स्थिर करता है।

७ वीर्याविरुद्धमश्नीयात्। अर्थात् जो वीर्यके विरुद्ध न हो ऐसा

अन्न-पान सेवन करना चाहिए। वीर्य्य द्रव्यमें रहनेवाला एक धर्म विशेष है। "येन कुर्वन्ति तद्वीर्य्यम्।" अर्थात् जिसके प्रभावसे कर्म उत्पन्न हों, उसका नाम वीर्य्य है। वीर्य्य दो प्रकारका है—एक शीत-वीर्य्य, दूसरा उष्णवीर्य्य। किसीके लिए उष्णवीर्य्यवाले अन्न-पान हितकर होते हैं और किसीको अहितकर होते हैं। शीतवीर्य्य द्रव्य भी प्रकृति भेद से हिताहित कर वाला होता है। जिस प्रकारके वीर्य्यवाले द्रव्य शरीरका अनिष्ट करते हैं उन्हींका नाम विरुद्धवीर्य्यद्रव्य है। कोई २ पदार्थ स्वभावसे ही विरुद्ध वीर्य्य होते हैं, जैसे गोमांसादि। दो अथवा उससे अधिक पदार्थ मिलानेसे कभी कभी संयोगविरुद्ध होजाते हैं। जैसे नमकके साथ गरम दूध आदि। वीर्य्यविरुद्ध पदार्थ कभी नहीं सेवन करने चाहिएँ। इनके सेवन करने से कुष्ठ,विसर्प, अन्धता आदि रोगों से ग्रसित होना पड़ता है।

८ नातिद्रुतमश्नीयात्। अर्थात् बहुत जल्दी २ भोजन नहीं करना चाहिए। चर्व्य,चोष्य,लेह्य और पेय इन भेदोंसे भोज्य पदार्थ चारप्रकार के हैं। इन चारों प्रकारके भोजनोंमें से किसी प्रकारका भी भोजन बहुत जल्द नहीं खाना चाहिए। विशेषकर चर्व्य खाद्यको बहुत धीरे धीरे चबाकर खाना चाहिए। नहीं तो उसके साथ पाचक रसके अच्छे प्रकार न मिलनेके कारण वह उत्तम प्रकारसे द्रवीभूत नहीं होता। इस कारण प्रथम दाँतोंसे खूब पीसकर पश्चात् लारके साथ मिलाकर उसके खूब नरम होजानेपर गलेसे नीचे उतारना चाहिए। इसप्रकार करनेसे मोंहस्थित पाचकरस उसके साथ सहजमें ही मिलजाता है। दाल, भात,रोटी आदि पदार्थों को अच्छे प्रकारसे चबाकर और लारके साथ मिला कर खाना चाहिए। इस प्रकार न करने से उक्त पदार्थ उत्तम प्रकारसे नहीं पचसकते। पतले पदार्थों को भी जल्दी २ सेवन करने से वे गले में विमार्गगामी हो कर अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करसकते हैं। इस कारण उन के पचने में बड़ी अड़चन होती है। इत्यादि कारणों से बहुत शीघ्र भोजन नहीं करना चाहिए।

९ नातिविलम्बितमश्नीयात्। अर्थात् बहुत देर में भी भोजन नहीं करना चाहिए। बहुत देर में भोजन करने से भोजन पचने में भारी होजाता है और भोज्यपदार्थ ठंडे होजाते हैं। इस लिये वे पचने में दुर्जर होजाते हैं।

१० न जल्पन्नहसन् तन्मना भुञ्जीत। अर्थात् बातचीत करते हुए और हँसते हुए भोजन नहीं करना चाहिए। तन्मय होकर भोजन करना चाहिए।

"उच्चारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने। स्नाने भोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत्॥" अर्थात् मल मूत्र त्याग करते समय, मैथुन के समय, प्रस्राव त्याग करते समय, दातौन करते समय, स्नान करते समय और भोजन करते समय मौन रहना चाहिये। मौन होकर चित्त को एकाग्र करके उक्त कार्यों को करने से वे कार्य्य उत्तमप्रकार से सम्पन्न होते हैं। हँसते हुए बात चीत करते हुए या चञ्चल चित्त से भोजन करने से चर्वण करने में अड़चन होती है। आहार के स्वाद लेने में रुचि नहीं होती। भोजन में कोई दूसरा दूषित पदार्थ आकर मिलजाय तो वह मालूम नहीं होता, और भोजन विपथगामी होसकता है, जिससे फन्दा लगने की सम्भावना होती है और भोजन भी बे प्रमाण खालिया जाता है।

११ इष्टदेशेऽश्नीयात्। अर्थात् सुन्दर स्थानमें बैठकर भोजन करना चाहिए। अशुद्ध जूठ हुए और दुर्गन्ध युक्त स्थान में बैठकर भोजन करना अत्यन्त हानिकारक है। ऐसे स्थानों में अनेक कीट, पतङ्ग और विषैले सूक्ष्म जन्तु रहते हैं जो प्रायः दृष्टिगोचर नहीं होते। उनके सम्पर्कसे आहार सहजही दूषित होजाता है। उनके सूक्ष्म होनेसे नेत्रों से न दीखने के कारण वे आहारके साथ मिलकर पेट में चले जाते हैं। बुरी जगह बैठकर भोजन करनेसे मनमें ग्लानि और अरुचि उत्पन्न होती है। मनकी अप्रसन्नता अनेक रोगों का कारण है। इस कारण उत्तम, स्वच्छ और मनोज्ञ स्थानमें बैठकर ही भोजन करना चाहिए। सुश्रुत कहता है:—"भोक्तारं विजने रम्ये निःसम्पाते शुभे शुचौ। सुगन्धिपुष्परचिते समे देशेऽथ भोजयेत्॥"

१२ तथेष्टसर्वोपकरणश्चाश्नीयात्। अर्थात् भोजनके सभी उपकरण मनोहर होने चाहिएँ।

१३ नाश्नीयात् सन्धिवेलायाम्। अर्थात् रात्रि और दिनकी सन्धियों में (अर्थात् दोनो वक्त मिले) भोजन नहीं करना चाहिए। अपराह्णके समय मनुष्योंके शरीरमें स्वभावसे वायु कुपित हुआ करता है। रात्रिके प्रथम प्रहरमें कफका प्रकोप होता है। सन्ध्याके समय स्वभावसे वायु प्रबल होता है और कफ कुपित होता है। रात्रिके

अन्तिम प्रहरमें वायुके प्रकोपका समय है। प्रत्यूषके समय वायु शमन होता है और कफका प्रकोप आरम्भ होता है। दोनों सन्धियों में दोनों दोषोंका प्रकोप और प्रशमन होने से सन्धियों में परिपाक-कर्म और आमाशय आदि की उत्तम प्रकारसे क्रिया नहीं होती। शरीर कुछ शिथिल और मन भी कुछ अप्रसन्न होजाता है। इसकारण उक्त समयोंमें आहार करना अनुचित है। जब कफ शमन हो, शरीर और मन स्वस्थ हो, क्षुधा और तृषा उत्पन्न हों तभी आहार करना चाहिये,

१४ उद्धृतस्नेहं न भुञ्जीत। स्नेहयुक्त पदार्थोंमेंसे स्नेहको निकाल कर उसको सेवन नहीं करना चाहिए जैसे-मक्खन निकाला हुआ दूध, तेल निकाली हुई तिलोंकी खल इत्यादि। मक्खन निकाला हुआ दूध निस्सार पानी होता है, इसलिए उससे शरीरकी कुछ भी पुष्टि नहीं होती और न मन ही प्रसन्न होता है। बल्कि वह शरीरको उल्टी हानि करता है। किन्तु तक्र उद्धृतस्नेह होने पर भी सेवन किया जा सकता है। क्योंकि वह अनेक रोगोंमें पथ्य है।

१५ नातिसौहित्यमाचरेत्। अर्थात् दिनमें विशेषकर रात्रि में अत्यन्त तृप्तिपूर्वक भोजन नहीं करना चाहिए।

> जठरं पूरयेदर्द्धमन्नैर्भागं जलेन च।
> वायोः सञ्चरणार्थञ्च चतुर्थमवशेषयेत्॥

भोजन के समय उदरका आधा भाग अन्न से, चौथाई भाग जल से भरकर और शेष भाग वायु के संचालन के लिए खाली रखना चाहिए। इस को सौहित्य कहते हैं।

दिन में भारी भोजन करने पर रात्रि के समय अनाहार रहना चाहिए। सभी को स्मरण रखना चाहिए कि—"एकाहारः सुखजराणाम्" अर्थात् खाये हुए अन्नको सहज ही में जीर्ण करने के जितने उपाय हैं उनमें एकाहार ही सब से उत्तम उपाय है।

१६ शयनस्थो न भुञ्जीत। अर्थात् शयन करते हुए (लेटे २) आहार नहीं करना चाहिए।

एक ही प्रकार से शरीर के अङ्गों को रख कर सब कार्य्य नहीं करने चाहियें। भिन्न २ कार्यों में अंगों को भिन्न २ प्रकार से रखना चाहिए। आहार, व्यायाम, मैथुन, गमन, उपवेशन और शयन-इन भिन्न भिन्न कार्यों में अङ्गों के विन्यास की विशेषरूपसे आवश्यकता है। जिस कार्य में जिस प्रकार का अङ्गविन्यास करना चाहिए, वैसा न

करके काम करने से शरीर में बाधा उत्पन्न हो जाती है। बाधा ही रोगजनक है। सुखपूर्वक आसन पर बैठकर आहार करने से भोजन अच्छे प्रकार से आमाशय में स्थित होता है—और आहार के पचाने के लिए जो पाचकरस निकलता है, उसमें भी किसी प्रकारकी बाधा नहीं होती।

१७ आत्मानमभिसमीक्ष्य भुञ्जीत सम्यक्। अर्थात् इतना और इस प्रकार का आहार हमारे शरीर के लिए हितकर है, इस के अतिरिक्त परिमाण में आहार हमारे लिए हानिकर है-और इस प्रकार का आहार हमारे स्वभाव के अनुकूल नहीं है; इन बातों को विचार कर आहार करना चाहिए।

"व्यक्ति नियतत्वम्"—अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को अपने स्वभाव के अनुसार ही भोजन के पदार्थ चुनने चाहिएँ। कारण सब के लिए एकसा भोजन हितकर नहीं होसकता। जैसे किसी के लिए बैंगन पथ्य होते हैं और किसी के लिए अपथ्य।

"व्यक्ति नियतत्व" की समान "जातिनियतत्व" पर भी ध्यान रखना चाहिए। एक जाति के समस्त आहार दूसरी जाति के लिए हितकर नहीं होते। जो दोनों नियतत्वों को त्याग कर दूसरे पुरुषों अथवा दूसरी जाति का अनुकरण करके आहार करते हैं वे अनेक रोगों से ग्रस्त होते देखे जाते हैं। इस लिए आत्मानुकूल और जातिके अनुकूल आहार करना चाहिए।

१८ नाश्नीयात् भार्य्यया सार्द्धम्। अर्थात् स्त्रीके साथ भोजन नहीं करना चाहिए। स्त्री पुरुष के एक साथ आहार करने से "अजल्पन्नहसन् तन्मना भुञ्जीत।" इस विधिका निश्चय ही उल्लंघन करना पड़ता है। और भी दोष उत्पन्न होते हैं। चरक कहता है—

"कामक्रोधलोभमोहेर्ष्याह्रीशोकमनोद्वेगभयोपतप्तेन मनसा वा यदन्नपानमुपयुज्यते तदप्यामभेव प्रदूषयति।" अर्थात् काम क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, लज्जा, शोक तथा अन्यान्य प्रकार के मन में उद्वेग और भयभीत होकर जो आहार किया जाता है वह अच्छे प्रकार से पचता नहीं। अपक्व अवस्था में रहकर शरीर को दूषित करता है। स्त्री के साथ एक आसन पर बैठकर एक पात्र में भोजन करते समय मनुष्य के मनुष्यों का मन कामवासना से मोहित होसकता है। इस लिए अठारहवीं संख्या वाली विधिको पालन करना चाहिए।

१६ नाप्रक्षालितपाणिपादवदनोऽन्नमाददीत । अर्थात् हाथ पाँव और मुखको अच्छे प्रकार से बिना धोये आहार नहीं करना चाहिए ।

उक्त विधि में युक्ति दिखाना अनावश्यक है । शुद्ध होकर आहार करने का लाभ सभी को मालूम है । विशेषकर भोजन करने से पहले हाथ और मुखको अच्छे प्रकार से धोलेना चाहिए । नखूनों में मैल के साथ कितने ही जीवाणु रहा करते हैं । सूक्ष्म यंत्रके द्वारा वे प्रत्यक्ष दीख सकते हैं । इस कारण भोजन से पहले हाथ, नख और मुखको उत्तम प्रकार से साफ करलेना चाहिए मुँह में जो मैल संचित होता है, वह भोजन के साथ पेटमें जाने से अनेक प्रकार के रोगोंको उत्पन्न करसकता है ।

२० आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत । अर्थात् पैरों को धोकर (गीले पैरों से) भोजन करना चाहिए । भगवान् मनु कहते हैं-'आर्द्रपादस्तु भुञ्जानः शतं वर्षाणि जीवति ।'' शास्त्र में और भी लिखा है:—"आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।" अर्थात् भीगे पैर भोजन करने से आयु की वृद्धि होती है ।

हिन्दु-स्वास्थ्यनीति ।

प्रत्येक सभ्य देशमें स्वास्थ्यरक्षा और रोगनिवारणार्थ स्वास्थ्य-विभाग का प्रबन्ध है । रोग उत्पन्न होने के सामान्य कारणों को दूर करना यह स्वास्थ्य विभाग का कार्य्य है । नाली, नाले व सड़कोंकी सफ़ाई, कूड़ा कचरा आदि पदार्थों को दूर करना दीन दुखी व असमर्थ रोगियों के लिए दातव्य चिकित्सालय स्थापित करना संक्रामक रोगों के समय उनसे बचने के उपायों को कार्य्य में लाना, स्वास्थ्यको खराब करनेवाले कामों को रोकने के लिए स्वास्थ्य सम्बन्धी आईन वगैरह जारी करना भी स्वास्थ्य विभाग का कार्य्य है । वर्त्तमान सभ्य जगत् में स्वास्थ्य विभाग के द्वारा सर्वसाधारण की स्वास्थ्य रक्षा की जाती है । प्राचीन भारत में स्वास्थ्यरक्षा का क्या प्रबन्ध था, यही बात इस लेख में दिखायेंगे । हिन्दु सदा ही से धर्मभीरु हैं । यद्यपि पाश्चात्य सभ्यता के प्रकाश में यह धर्मभीरुता कम होगई है तथापि हिन्दूसमाजमें इस समय भी बहुत कुछ वर्त्तमान है । इस समय कानूनकी कृपासे वकील, अदालत, थाना, रजिस्ट्री आदि के होनेपर भी सत्य

असरल होजाता है किन्तु पूर्वकाल में धर्मभीरुता के प्रभाव से केवल मुख से कह देने से ही स्वास्थ्य की रक्षा कीजाती थी। इसी प्रकार धर्म को दुहाई देकर स्वास्थ्यरक्षा भी सहज में होजाती थी। हमारी नित्य नैमित्तिक प्रत्येक क्रिया स्वास्थ्य के ऊपर अवलम्बित है। ब्राह्म मुहूर्त में या रात्रि के अन्तिम प्रहर से हमारा प्रातःकृत्य आरम्भ होता है। इस समय ब्राह्मणादि चारों वर्ण की निद्रा त्यागकरके शय्या के ऊपर उत्तरमुख या पूर्वमुख बैठकर अपने इष्टदेव का स्मरण करते हैं पश्चात् अन्य प्रातःस्मरणीय महात्माओं के नामोच्चारण कर के शय्या को त्याग करते हैं। यही हिन्दुशास्त्र की विधि है ब्राह्म-मुहूर्त में उठना वैद्यक दृष्टिसे स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हितकारी है। पाश्चात्य स्वास्थ्यविज्ञान और चिकित्साशास्त्र में भी ब्राह्ममुहूर्त में उठना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हितकर बताया गया है। इस प्रकार आह्निक क्रिया द्वारा स्वास्थ्य साधन केवल शारीर विज्ञान के ही आधार पर संगठित नहीं है किन्तु इसमें मनोविज्ञान भी सम्मिलित है। महात्माओं के नामों का स्मरण और कीर्तन करने से मनुष्य के मनोभाव गठितहोते हैं। मन के साथ शरीर का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। इसकारण मानसिक उत्कर्ष भी स्वास्थ्योन्नति के लिए आवश्यक है।

निद्रा से उठने के पश्चात् मल—मूत्र त्याग की विधि है। ग्राम में घरसे डेढ़ सौ हाथ दूर और शहर में उस से चौगुनी दूर नैर्ऋत्य कोण में मलत्याग करने के लिए स्थान निर्वाचित करना शास्त्र की आज्ञा है इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि निवास स्थानकी वायु जिसमें दूषित न हो ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। छोटे २ ग्रामों की अपेक्षा शहर में मनुष्यों की संख्या अधिक होती है इसकारण वहाँ मलकी अधिकता होती है अतएव उस समय ग्रामकी अपेक्षा शहर में मलत्याग करने की व्यवस्था बहुत दूर थी। नैर्ऋत्यकोण में इस लिए मलत्याग करने का स्थान निर्दिष्ट किया गया था कि नैर्ऋत्य दिशा की वायु बहुत कम बहती है और जो बहती है तो बहुत थोड़ी देर। मल-मूत्र त्यागके समय मौनावलम्ब होना अत्यावश्यक है। उस समय थूकना और श्वांस लेना भी निषिद्ध है। मलत्याग के समय पहरे हुए वस्त्र को कमर के ऊपर करलेना चाहिए। खड़ाऊँ पहन कर, खड़े हुए या चलते हुए मल-मूत्रका त्याग करना निषिद्ध

है। यह सब रीतियाँ स्वास्थ्य के लिए कितनी हितकर हैं, यह स्पष्ट ही मालूम होता है। उस समय केवल मनुष्यों के स्वास्थ्य को ही उत्तम रखने की व्यवस्था नहीं थी किन्तु पशुओं के स्वास्थ्य पर भी ध्यान रखने का नियम था । यथा– "सदैव गोब्राह्मणवह्निमार्गे न राजमार्गे न चतुष्पथे च । कुर्यादथोत्सर्गमपीह गोष्ठे पूर्वां परांचैव समाश्रितां गाम ॥" अर्थात् देवता, ब्राह्मण, और अग्नि के सामने, राजमार्ग में चौराहे में, पशुओं की गोष्ठी में अथवा जिन स्थानों में गौयें विचरती हैं, उन स्थानों में मलत्याग करना निषिद्ध है ।

मृत्तिका–दुर्गन्धनाशक है । और इसमें क्षारादि पदार्थों के होने से यह शरीर के क्लेद और मलादि को दूर करती है । एवं संक्रमणता को निवारण करती है इस लिए यह हिंदु शास्त्र के मत से शौच के लिये व्यवहृत होती है । हिंदुधर्म के साथ स्वास्थ्य का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि उस मृत्तिका के भी शुद्ध होने की विशेष आवश्यकता है । इस के विषय में शास्त्रकार कहते हैं कि–जल में से निकाली हुई, चूहे के बिलकी, अग्राह्य दूसरे के शौच कर्म से बची हुई और साँप की बाँबई की मृत्तिका नहीं लेनी चाहिए ।

इसके पश्चात् हिंदुशास्त्रोंमें प्रातः स्नानकी व्यवस्था है। प्रातःस्नानके नियम भी विधिबद्ध हैं।सूर्य्योदयसे पहलेही प्रातःस्नानका समय है।प्रातःस्नान के बिना देवाराधनादि कार्य सम्पन्न नहीं होते। इसकारण धार्मिक हिंदुओं के लिये प्रातःस्नान करना परमावश्यक है । स्रोत के जल में, स्रोत के सामने मुखकरके और बिना स्रोत वाले जल में सूर्याभिमुख हो नाभिपर्यन्त जल में खड़े होकर दोनों हाथों से मुख, नासिका और कानों के छिद्रों को बन्द करके डुबकी लगाकर स्नान करे । जलाशय दूसरे का हो तो स्नान करने से पहले उसमें से तीन या पाँच मृत्तिका के पिण्ड निकालकर किनारे पर रखे और– "उच्छिष्टोच्छिष्ट पङ्कस्त्वयत्र दुष्पं परस्य च । तवानि विलयं यांति शांतिं देहि सदा मम-" इस मन्त्रको पढे । यह भी स्वास्थ्यविभागका कार्य्य है । प्रत्येक मनुष्य यदि प्रतिदिन स्नान करने के समय तीन या पाँच मृत्तिका के पिण्ड जलाशय (तालाब, नदी) में से निकालकर फेंक तो उससे जलाशय की कीचड़ की सफाई सहज में होसकती है ।

आगे स्नानके समय मस्तक, वक्षःस्थल आदि अङ्गों को मृत्तिका से मार्जन करने को जो लिखा है इसका कारण पहलेही कहा जा चुका

है । मृत्तिका दुर्गन्धनाशक, क्रेदोपहारक और Disinfectant या संक्रमणको निवारण करती है ।

४ इसी प्रकार शयन, भोजन आदि प्रत्येक कार्य्य में हिंदुधर्मशास्त्र की जो क्रियायें हैं, वे सब ही स्वास्थ्य की उन्नति करने वाली हैं। स्वच्छता हिंदुधर्म का प्रधान अङ्ग है। रात के पहरे हुए या बिना धुले वस्त्रों को पहर कर दैनिक पूजनादि क्रिया और भोजनादि करना हिंदुओं के लिये सर्वथा निषिद्ध हैं। यहाँतक कि बिना धुले वस्त्रों को पहनकर भोजन बनाना भी ठीक नहीं कहा गया है।

तिथि, वार, मास और ऋतुविशेष में जो भिन्न भिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों का निषेध किया गया है, उनकी संरक्षा के लिये ब्रह्म-हत्यादि महापातकों की दुहाई दीगई है । विरुद्ध भोजन के सम्बंध में भी ऐसा ही आदेश है ।

जिससे घरमें कूड़ा-कचरा या मैला इकट्ठा न हो ऐसा उपदेश दिया गया है । घरको स्वच्छ रखना महापुण्य का कार्य्य बताया गया है । यह विधि भी स्वास्थ्यरक्षा के लिए उत्तम है ।

इस प्रकार हिंदुओं की प्रत्येक क्रिया-कलाप में शारीरिक व स्वास्थ्यसाधन के लिए धर्म की व्यवस्था की गई है । *

—o—

इच्छाशक्ति द्वारा अजीर्णनाश ।

शिष्य—महाराज, शरीर में रोग उत्पन्न होने का मुख्य कारण क्या है?

वैद्य—कई एक कारणों से विविध प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। परन्तु अजीर्ण नामक रोग अनेकानेक उपद्रवों का मूल कारण कहा जासकता है ।

शिष्य-क्या आप के अनुभव से वर्तमान समय में यह रोग अधिक है ?

वैद्य-हाँ। मैंने तो में केवल दो मनुष्य ऐसे देखे हैं कि जिन को अजीर्ण नहीं ।

शिष्य-अजीर्ण की परिभाषा क्या है ?

*बा॰कार्तिकचन्द्र के एक लेख के आधार पर ।

वैद्य-भोजन का अच्छे प्रकार न पचना और पेट में मल रहना ही अजीर्ण है।

शिष्य-मल है या नहीं, इसकी पहचान क्या है ?

वैद्य-खुलकर क्षुधा न लगना, तीव्र प्यास लगना, आलस्य की प्रबलता, मन में निरुत्साह की अधिकता और प्रमेह आदि रोगों का होना, अजीर्ण के मुख्य लक्षण हैं।

शिष्य-इस विषय में अवश्य ही प्रतिशत अट्ठानवे मनुष्यों की गणना हो सकती है।

वैद्य-स्त्रियाँ और बच्चे भी अजीर्ण-ग्रस्त हैं।

शिष्य-मैं सोचता था कि लोगों में शिरदर्द और प्रमेह की अधिक शिकायत दिखलाई पड़ती है।

वैद्य—सत्य है इसी लिए विविध प्रकार के तैल और प्रमेह नाशक चूर्ण, विज्ञापनों द्वारा संसार में प्रसिद्ध हो रहे हैं। परन्तु, मस्तक-पीड़ा और प्रमेह कोई स्वतंत्र रोग नहीं हैं। इन दोनों का मुख्य हेतु अजीर्ण ही है। अतएव, इन दोनों रोगों की चिकित्सा भी अजीर्ण ही से आरंभ होनी चाहिए।

शिष्य—क्या अजीर्ण-नाशक वैद्यक-प्रयोग अच्छे नहीं हैं ?

वैद्य—क्यों नहीं। उनकी सहायता लेनी पड़ेगी। परंतु जब तक रोगी स्वयं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा अजीर्ण को दूर करने का प्रयत्न न करेगा तब तक उसकी दशा उस बंदर की तरह रहेगी कि जिस का स्वामी हल के घाव में दवा लगा देता है और उस के हटते ही वह पुनः खुजला कर जब बराबर कर देता है। प्राकृतिक चिकित्सा के ज्ञान बिना, कोई भी रोगी अपने रोग से स्वतंत्रतापूर्वक मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता है। रोगों के विषय में मेरा यही मत है कि रोगी को प्राकृतिक ढङ्ग से उसको उपदेश शिक्षा दिया जाय और वैद्य अपने प्रयोगों द्वारा उसे सहायता दे।

शिष्य—अजीर्ण के विषय में वैद्य से कितनी सहायता लेनी आवश्यक है ?

वैद्य-अजीर्ण रोगी वैद्य से अपने रोग का हाल कहेगा। वैद्य उस को रोग होने का कारण समझा देगा और प्राकृतिक-प्रणाली से कार्य करने का वचन देगा। यह दोनों का मुख्य और प्रारम्भिक कर्तव्य है। इस के बाद वह रोगी की शारीरिक शक्ति और रोग की

अवस्था के अनुसार उसको रसायन दवा देनी चाहिये। अब अजीर्ण के साथ कुछ आवश्यक दूसरों का आने तो प्राकृतिक चिकित्सा पूछनी हैं कीजाय।

शिष्य—अजीर्ण दूर करने के लिए जो प्राकृतिक व्यवस्था होगी वह क्षणिक होगी या स्थायी? इन नियमों का पालन रोग रहने तक ही किया जायगा या जीवन पर्य्यन्त?

वैद्य—कुछ नियम क्षणिक हैं जो रोग रहने तक माने जावेंगे और कुछ नियम स्थायी हैं जो जीवन पर्य्यन्त पालन किये जावेंगे। अगर उनमें लापरवाही की जायगी तो पुनः अजीर्ण उत्पन्न हो जावेगा।

शिष्य—पहले स्थायी नियम बतलाइए।

वैद्य—(१) थोड़ा बहुत नियमित व्यायाम। (२) क्षुधा से कम खाना पीना। (३) मास में एक बार प्रसङ्ग करना। (४) प्रसन्न रहना और (५) इन उपायों के द्वारा जठराग्नि को अपनी ठीक अवस्था पर लाना।

शिष्य—नियमित व्यायाम कैसा होना चाहिए?

वैद्य—दण्ड बैठक करना, गेंद खेलना, दौड़ना, घोड़ा आदि की सवारी करना, [illegible], जल में तैरना और पैदल भ्रमण करना यह नियमित व्यायाम है। इन में से, एक दो या तीन व्यायाम, प्रति दिन अवश्य करने चाहिएँ। जिसकी जैसी अवस्था हो वह वैसा ही व्यायाम करे।

शिष्य—किन्तु ब्रह्मचर्य्य के नष्ट होजाने से व्यायाम में स्थायी उन्नति नहीं होती।

वैद्य—जो गृहस्थ एकपत्नी व्रत वाला है और जो मास में तीन बार से अधिक प्रसङ्ग नहीं करता है वह ब्रह्मचारी ही है। एकपत्नीव्रत वाले मनुष्य को प्रसङ्ग द्वारा उतनी अशक्तता प्राप्त न होगी कि जितनी एक व्यभिचारी को प्राप्त होती है। एकपत्नी व्रती गृहस्थ लोग नियमानुसार प्रसङ्ग करें और अपने को ब्रह्मचारी मानते हुए व्यायाम में अनुराग रक्खें॥

शिष्य—बच्चे तो स्कूलों में व्यायाम किया करते हैं, उन को अजीर्ण क्यों होता है?

वैद्य—विद्यार्थी लोग दस बजे खाना खाकर तुरन्त स्कूल जाते हैं और चार बजे तक बेंचों पर बैठे रहते हैं। भोजन के पश्चात् आध घन्टे तक आराम न करने से अजीर्ण उत्पन्न हो जाता है विद्यार्थी लोग कोट, पेंट पहनकर, कमर के ऊपर 'पेटी' बाँधते हैं। पेटी से अग्नि मन्द होती है और अजीर्ण पैदा होता है। व्यायाम में व लोग बहुधा 'कवायद' किया करते हैं, उसमें क्या है! दाहिना हाथ ऊँचा करो, बायाँ सीधा करो, कमर को झुकाओ छाती को सीधा करो और आसमान को देखो। इस तमाशे से और व्यायाम से विशेष अन्तर है।

शिष्य—स्त्रियाँ किस प्रकार का व्यायाम करें।

वैद्य—स्त्रियाँ भी दण्ड-बैठक कर सकती हैं, इसके लिये लज्जा करना उचित नहीं। उन के लिए चक्की पीसना सब से अच्छा व्यायाम है।

शिष्य—चक्की पीसना तो निन्दनीय समझा जाता है।

वैद्य—अब तो वे रेशमी साड़ियों के स्थान पर गाढ़ा पहनती हैं और चरखा चलाती हैं। अब चक्की से कैसा द्वेष? चरखा भूलकर आर्थिक हानि की और चक्की भूलकर शारीरिक हानि की। चरखा और चक्की का तो जोड़ा है।

शिष्य—क्या अजीर्ण-ग्रस्ता माताओं की सन्तान भी अजीर्ण-ग्रस्ता होती है?

वैद्य—वैसा क्यों न होगा?

शिष्य—तब तो माताओं को विशेष सावधानी चाहिए। हाँ क्षुधा से कम खाना और कम पीना, इसका क्या रहस्य है?

वैद्य—लोगों को प्राकृतिक भोजन प्राप्त नहीं होता है कन्द और दूध ही मानवी भोजन है। तो भी लोगों को चाहिए कि अच्छा और थोड़ा भोजन खाया जाय क्षुधा से कम खाना ही हितकर है।

शिष्य—इच्छाशक्ति से और अजीर्ण की चिकित्सा से क्या सम्बन्ध है।

वैद्य—इच्छा शक्ति से जो २ काम पूरे होते हैं उन में अजीर्ण का भी स्थान है। इच्छाशक्ति ही अजीर्ण की चिकित्सा में प्रधान है।

शिष्य—उसका उपयोग कैसे किया जायगा?

वैद्य—इच्छाशक्ति की व्याख्या के पूर्व, अजीर्ण-नाशक कुछ

नियमों का उल्लेख करना आवश्यक है। ऊपर के पाँच नियम स्थायी हैं और निम्नलिखित पाँच नियम उस समय तक पालन करने चाहिएँ जब तक कि अजीर्ण दूर न होजाय। यथा—(१) विरेचक क्रिया (दस्त कराना)। (२) उपवास करना। (३) पवन की क्रिया करना। (४) जल की क्रिया करना और (५) इच्छाशक्ति से मल जलाना।

शिष्य—यह अभ्यास कितने दिन तक करना होगा?

वैद्य—सम्भवतः, एक सप्ताह। रोग की अधिकता से एक मास तक यह सिलसिला जारी रखना आवश्यक है।

शिष्य—कितने दस्त कराने चाहिएँ, किस प्रकार दस्त होने चाहिएँ और दस्तावर दवाओं की व्यवस्था करना तो वैद्य के अधीन है। परन्तु लगातार उपवास से क्या मतलब है?

वैद्य—दिन, रात में केवल एकबार भोजन करना। प्रातःसमय गरम दूध पीना और शाम को चार बजे हलका भोजन करना ही उपवास समझना होगा यह क्रिया लगातार करनी होगी। जीवन पर्यन्त प्रति सोमवार या रविवार को उपवास करना चाहिए। उपवास से बहुत लाभ होता है।

शिष्य—पवन की क्रिया क्या है?

वैद्य—अजीर्णके रोगी को दोपहर के समय धूप में १५मिनट के लिए प्रतिदिन बैठकर मुख द्वारा गरम हवा सेवन करनी चाहिए और नाक द्वारा पेटकी दूषित हवा निकालनी चाहिए। उस समय सारा शरीर नंगा होना चाहिए। जब गरम हवा सेवन कीजाय तो यह अनुभव करना अनिवार्य है कि यह पवन पेटकी तलीमें पहुँची और उसने गंदगी को जलाकर बाहर निकाला। निकली हुई हवाको नाक के द्वारा निकाले। धूप में लेटकर यह क्रिया करनी चाहिए जब तक धूपमें रहे तब तक एक गिलास जल धूप में रक्खा रहना चाहिए। ज्योंही धूप लगती हुई मालूम पड़े त्योंही धीरे २ उस जल को दवा की भाँति पी जाना चाहिए। इस प्रकार से वायु और जल के सहारे से, दस्त और उपवास के साथ, अजीर्ण को दूर करना चाहिए।

शिष्य—अब इच्छाशक्ति की व्याख्या कीजिये।

वैद्य—रोगीको चाहिए कि वह अजीर्णसे भय करे अजीर्ण से सदा बचे रहने की प्रतिज्ञा करे। अजीर्ण उत्पन्न करने वाले खाद्य पदार्थों

ही हमारे शरीरका आत्मा है तो रक्तकी उन्नति और अवनतिके ऊपर ही हमारे शरीरकी एवं समस्त जीवनकी उन्नति और अवनति निर्भर है। वर्त्तमान डाक्टरोंके मतसे बीजाणुओंके द्वारा ही रोग उत्पन्न होते हैं, ये बीजाणु श्वास-वायुके साथ अन्नके साथ और अन्यान्य नाना प्रकारसे हमारे शरीरमें प्रविष्ट होते हैं। यद्यपि ये बीजाणु हमारे शरीरमें हर समय प्रवेश करते हैं तथापि हम हर समय रोगी रहते हों, ऐसा नहीं होता। इसका कारण यह है कि-ये रोगके बीजाणु जब हमारे शरीरमें प्रवेश करते हैं तब हमारे शरीरमें एक प्रकारकी क्रिया होती है-अर्थात् हमारे रक्तस्थित बीजाणुओंके साथ इन आगन्तुक रोगके बीजाणुओंका एक प्रकारका युद्ध होता है। पहरे वाले सिपाहियों और चोर-डाकुओंमें जैसी लड़ाई होती है इनमें भी प्रायः वैसे ही लड़ाई होती है। इस लड़ाईमें जो जीत जाते हैं उन्हींका प्रभाव फैलजाता है। हमारे रक्तके बीजाणुओंके विजय प्राप्त कर लेने पर ही हमारा मंगल है कारण इनसे सम्पूर्ण रोगोंके बीजाणु पराजित होकर भागजाते हैं अथवा नष्ट होजाते हैं। यदि ऐसा न होकर यदि हमारे रुधिरके बीजाणु पराजित होजायँ तो हमारा विशेष अनिष्ट होनेकी सम्भावना है। ऐसा होनेसे शत्रुओंके द्वारा हमारा शरीर रूपी दुर्ग शत्रुओंके अधिकारमें आजाता है और हम रोगी होजाते हैं। हमारे रुधिरके साथ स्वास्थ्यका घनिष्ट सम्बन्ध होनेसे रुधिरकी उन्नति करना हमारा प्रधान कर्त्तव्य है। हमारा रुधिर यदि शुद्ध और शक्तिशाली हो तो सहजमें कोई भी रोग हमारे ऊपर आक्रमण नहीं करसकता। हम सर्वदा इसके उदाहरण देखते हैं। एक स्थानमें और एक ही अवस्था में होने पर भी एक मनुष्य अस्वस्थ और दूसरा स्वस्थ पाया जाता है। उपर्युक्त कारणके बिना ऐसा नहीं हो सकता। इससे स्पष्ट जाना जाता है कि जिसका रुधिर दूषित और तेजहीन होता है वह रोगी रहता है। जिसका रुधिर शुद्ध और सतेज होता है वह आरोग्य रहता है। रोगका आक्रमण और चोर-डाकुओंका आक्रमण एक ही प्रकारका होता है। जिसके पहरेदार सावधान हों और घरके किवाड़ आदि खूब मज़बूत हों उस घरमें सहज ही चोर प्रवेश नहीं करसकते। किन्तु जिसके पहरेदार कमज़ोर, और शिथिल हों और घरके दरवाज़े आदि टूटे फूटे हों उसके घरमें चोर सहज ही प्रवेश करसकते हैं।

यह पहले कहा जा चुका है कि-आहारके परिमाणसे हमारे शरीर

से रुधिर उत्पन्न होता है, इसकारण हमारे आहार के ऊपर ही रुधिरकी सब प्रकारकी उन्नति, अवनति अवलम्बित है। हमारा आहार उत्तम और पुष्टिकारक होनेपर हमारा रुधिर भी शुद्ध और शक्तिशाली होगा। और हमारा आहार यदि थोड़ा और बुरा हो तो हमारा रुधिर भी निकृष्ट और अल्प होगा। उत्तम आहारका प्राप्त होना अर्थके ऊपर निर्भर है। क्योंकि पैसेके न मिलनेसे मनुष्य उत्तम भोजन कर नहीं सकता। तृप्त कर स्वादिष्ट और पुष्टिकारक भोजन करनेकी किस की इच्छा नहीं होती किंतु बिना अधिक आयके उसका प्राप्त होना असम्भव है। उत्तम और पुष्टिकारक भोजन प्राप्त करनेके लिये हमें अधिक धन उपार्जन करना चाहिए। किन्तु हमारा देश अतीव दरिद्र है। इस देशके प्रत्येक मनुष्यकी दैनिक आय अन्यान्य सभी देशोंकी अपेक्षा बहुत कम है इस दरिद्रताके कारण हमारे देशवासी पर्याप्त प्रमाणमें पुष्टिकर खाद्य नहीं खा सकते। अल्प और बुरे भोजन करनेसे दिन दिन हमारा शरीर कृश और रुधिरकी अवनति होती है। जिस तिस तरह पेट भर लेनेको ही प्रकृताहार नहीं कहा जा सकता। उससे सामयिक क्षुधाकी निवृत्ति हो सकती है किन्तु शरीरकी विशेष उन्नति नहीं हो सकती। भूखके समय पेट भरकर जल पीलेनेसे या साग-पातको उबाल कर खालेनेसे यद्यपि क्षुधाकी ज्वाला कुछ शान्त हो सकती है, किंतु उससे शरीरका पोषण नहीं हो सकता और न मनुष्य स्वादन-सुख का अनुभव ही कर सकता है। सुस्वादु और पुष्टिकर खाद्यके द्वारा क्षुधाकी निवृत्ति करना प्रकृत-आहार है। किन्तु इस समय निर्धन ही नहीं मध्यम श्रेणीके लोगोंको भी प्रायः ऐसा भोजन प्राप्त नहीं होता। अकृत्रिम साधारण और पुष्टिकर खाद्य मिलना भी आजकल कठिन है। बाज़ार में इस समय सभी खाने पीनेकी चीज़ोंमें मिलावट होती है। सभी जगह कृत्रिमता और पचकी उन्नति होरही है। घीमें चर्बी, दूधमें पानी, मक्खन निकाला दूध, आटेमें मट्टी, खाँडमें निशास्ती खार आदि स्वास्थ्यनाशक पदार्थ मिलाये जाते हैं। अतः बाज़ारमें इन सब चीज़ोंका असली मिलना कठिन है। ऐसे दूषित पदार्थोंको सेवन करने से हमारा स्वास्थ्य और भी खराब होता जाता है। विशेषकर साधारण और गरीब लोगोंको इन्हीं चीज़ोंका प्राप्त होना और भी कठिन होगया है। इत्यादि बातोंसे जानाजाता है कि वर्तमान रोगोंका कारण देशकी

दरिद्रता ही है अतएव अबतक इस देशकी दरिद्रता दूर न होगी तब तक रोगोंका दूर होना भी असम्भव है।

नेत्र-रक्षा।

एक वैज्ञानिक पंडित कहता है कि—जब मैं आकाश के तारे और आँख की रचना का विचार करता हूं तो मेरी नास्तिकता दूर होजाती है। नेत्रों की कैसी सुन्दर रचना है, कैसा मनोहर उनका आवरण है। वास्तव में नेत्र शरीर में रत्न कहने के योग्य हैं। वे एक चर्बी की गद्दी के ऊपर हड्डी के मज़बूत चौखटेमें सुशोभित हैं। उन के भीतर एक क्षारमिश्रित प्रवाही पदार्थ बहा करता है। जिस से आँख का गोला हमेशा धुलता रहता है और स्वच्छ रहता है। नेत्र का उत्तम और प्राकृतिक (स्वाभाविक) रीति से उपयोग होने से नेत्रों की ज्योति अन्तिम अवस्था तक भी कम नहीं होती है किन्तु उनका दुरुपयोग करने से कहीं जन्म की दुर्बलता से और कहीं ब्रह्मचर्य के अभाव से नेत्ररत्न काँच की समान बना दिया जाता है। नेत्रों की ज्योति का अधिक अच्छा होना विशेषकर मनुष्य की शक्ति और उस के संयम के ऊपर निर्भर है। आज कल कितने ही नवयुवक नाना प्रकार से आँख की शक्ति को खो बैठते हैं। ब्रह्मचर्य के साथ भी आँख की शक्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस लिए शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करके मनुष्य नेत्रशक्ति को सतेज करसकते हैं और बहुत से रोगों से बचसकते हैं एवं अपनी सन्तति को भी बचासकते हैं।

सब प्रकार के उत्तेजक खान-पान जैसे गरम, तीक्ष्ण व चटपटे मसालेदार पदार्थ आँख के लिए हानिकारक हैं। आँख की आरोग्यता शरीर की आरोग्यता पर भी बहुत कुछ निर्भर है बहुत दूर देखने से या बहुत नज़दीक से पढ़ने से, लेट कर पढ़ने से, दुखती आँखों से देखने व पढ़ने से इत्यादि अनेक कारणों से आँखें खराब होजाती हैं।

अत एव नेत्ररक्षा के लिए निम्नलिखित नियमों के ऊपर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए —

(१) दिनभर लिखने-पढ़नेका काम या अधिक बारीक चीज़ों के देखने का काम आँखों से न लेना चाहिए। शरीर की समान नेत्रों को भी पूरा आराम देना चाहिए।

(२) टेढे, तिरछे होकर, लेटे लेटे या सोते २ पढ़ना नहीं चाहिए।

(३) चलने हुए या सवारी में बैठे २ कभी नहीं पढ़ना चाहिए।

(४) कम प्रकाश (रोशनी) में या बहुत तेज़ प्रकाश में लिखना पढ़ना और बहुत सूक्ष्म वस्तुओं को नहीं देखना चाहिए।

(५) दीपक या सूर्य का प्रकाश हमेशा आँख के दाहिनी तरफ़ रहना चाहिए, आँख के सामने कभी नहीं रहना चाहिए।

(६) बिजली, गैस और मिट्टी के तेल की रोशनी आँख की ज्योति को कम करती है। इस लिए इन की रोशनी में लिखने पढ़ने का काम जहाँ तक हो नहीं करना चाहिए या कम करना चाहिए।

(७) बहुत बारीक अक्षरों को अथवा चिकनाहट या चमकदार कागज़ की छपी हुई पुस्तक नहीं पढ़नी चाहिएँ।

(८) बायस्कोप के चित्रों को देखने से नेत्रों की दृष्टि कमज़ोर होती है। इस लिए ऐसे चित्र नहीं देखने चाहिएं।

(९) सूर्य या चन्द्रग्रहण को नहीं देखना चाहिए।

(१०) सन्ध्या के समय या अत्यन्त प्रातःकाल में (अर्थात् तड़के के समय) जब कि सूर्य का प्रकाश न हो उस समय आँख को खींचकर नहीं देखना चाहिए।

(११) किसी पुस्तक या प्राणी अथवा अन्य किसी वस्तु को टकटकी लगाकर नहीं देखते रहना चाहिए।

(१२) सोते वक्त आँख के सामने दीपक का प्रकाश नहीं रहना चाहिए। क्यों कि इस से ज्ञानतन्तुओं को शान्ति मिलती है और सुखपूर्वक निद्रा आती है।

(१३) सूर्य की तीक्ष्ण धूप, धूप, उड़ती हुई धूल और तेज़ हवा से आँख की सदैव रक्षा करनी चाहिए।

(१४) रात्रि में अधिक समय तक जागरण नहीं करना चाहिए।

(१५) सवेरे सोना और सवेरे उठना आँख के लिए भी हितकर है।

(१६) आँखों के दुखने पर सहसा जिस तिस की दवा नहीं डालनी चाहिए। आँखों में खुजली होने पर उनको हाथों से नहीं मलना चाहिए क्योंकि इस से आँखों के ज्ञानतन्तु निर्बल पड़ जाते हैं।

(१७) दृष्टि की रक्षा के लिए सात्विक आहार, घी, दूध, मक्खन, बादाम, मीठे फल आदि पदार्थों का विशेषरूप से उपयोग करना

चाहिए। गर्म, और तीक्ष्ण पदार्थ जैसे-अचार, चटनी, गरम मसाले लाल मिरच, लहसुन, प्याज़, चा, काफी, तम्बाकू आदि आंख के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं।

(१८) नीला और हरा रंग नेत्रों के लिए अत्यन्त लाभदायक है। इस लिए ऐसे रंगके पदार्थों को अधिकता से देखना चाहिए।

(१९) सवेरेका बाग में या जंगल में जाकर हरे भरे वृक्ष लताओंको देखने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

(२०) प्रतिदिन त्रिफलेके जलसे नेत्रों को धोना चाहिए।

—०—

क्षयरोगका एक नया इलाज।

डाक्टर प्रियशरण एम० ए०, पी०एच० डी० ने समाचारपत्रों में क्षयरोगके विषयमें एक लेख प्रकाशित कराया है। पाठकोंके लाभार्थ उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

"मैंने जो कुछ लिखा है या आगे लिखूंगा वह मेरे व्यक्तिगत अनुभवके आधार पर है और होगा। जो मुझे भारतमें और योरुप आदि देशोंमें प्राप्त हुआ है।

यह अचूक औषधि—जो निम्न २ प्रकारके क्षय, पुरानी खाँसी ज्वर तथा इसी प्रकारके अन्य रोग—जिनका कि सम्बन्ध श्वासःस्थल से है उनके लिए एक ईश्वरीय वस्तु है। जैसे कि-आमाशय अपना कार्य ठीक २ न करसकता हो तब पिचकारी, लगाकर पेटको साफ करना चाहिए। फिर अधिक पौष्टिक भोजन सेवन न कराये जावें। काड लिवर आयल (मछली का तेल) सेवन न कराया जाय, बल्कि अधिक घृत, दही, मलाई और मांस खानेकी भी आज्ञा नहीं दीजाय। रोगी को प्रातः सायं कालमें बिना पकाई हुई सब्जियों और फलोंका रस इतनी मात्रा में दियाजाय जितना कि वह हज़म करसके। जबतक रोगी को भूँख न लगे तबतक उसको खाने के लिए कुछ नहीं देना चाहिए।

क्षय के रोगियों के लिए प्याज़, अंगूर, मुसम्मी, कद्दू, गोभी और ककड़ीका रस अत्युत्तम है। किन्तु [illegible] शीघ्र पचने वाले खाद्य कभी नहीं देने चाहिएं। किसी औषधि के सेवन कराने की और पिचकारी द्वारा किसी औषधिको शरीर में [illegible] कराने की

यहाँ कुछ भी आवश्यकता नहीं है। रोगी को धूप और पानी में ऋतु के अनुसार तथा बलाबल के अनुसार रखना चाहिए। प्रतिदिन कम से कम दिन में तीन बार उसकी रीढ़ की हड्डी को ठीक करना और ताकत देनी चाहिए। गर्दन की ऊपरी और बीच की नसोंको ठीक रखने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

ठीक करने से यह तात्पर्य्य है कि हाथ की हथेली से एक खास तरीके पर रीढ़ की हड्डी के किसी भाग को उस के उचित स्थान पर स्थापित किया जाय जिस से रुधिर का दौरान ठीक २ होकर नसों का तनाव दूर होजाय। यह इस चिकित्साका सबसे आवश्यक अङ्ग है। यदि इस उपर्युक्त चिकित्सा को यथाविधि किया जाय तो यह एक सप्ताहमें ही अपना प्रभाव दिखासकती है। रुधिर निकलना, बेचैनी, खाँसी, और ज्वर आदि सब विकार एक निर्दिष्ट समय के भीतर ही नष्ट होजाते हैं। और १५—२० दिन में ही शरीर का वज़न बढ़ने लगता है। इस चिकित्सा का एक भाग न्यूयार्क के अस्पतालों में अत्यन्त सफलीभूत सिद्ध हुआ है जो अमेरिकाके समाचार पत्रोंमें प्रकाशित होचुका है।

ट्यूबरकुलीन (क्षयरोग की प्रसिद्ध औषध) की देश में ऐसी ख्याति फैली हुई है कि उस के विरुद्ध अङ्गुलिनिर्देश करने में भय मालूम होता है। किन्तु यदि कोई उसकी प्रकृत अवस्था को जानना चाहे तो मैं बलपूर्वक कहूंगा कि—यह साधारण रोगियों के लिए निष्प्रयोजन, दुर्बल रोगियों के लिए हानिकारक और अत्यन्त रोग बढ़े हुए रोगियों के लिए अनिष्टकर है। मेरा विचार है कि मेरे इस दावे पर बहुत से लोग क्रोध में भर कर आक्षेप करेंगे। पहले भी कई महाशय मेरे इन विचारों के विरुद्ध अपनी युक्तियाँ प्रकट कर चुके हैं। मैं ऐसे आक्षेपों का हर समय उत्तर देने को तयार हूं।

ट्यूबरकुलीन रोगियों को आराम करने में सर्वथा असफल सिद्ध होचुकी है। योरप और अमेरिका के बहुत से प्रसिद्ध डाक्टरों ने भी यही सम्मति प्रकटकी है। किन्तु उपर्युक्त चिकित्सा से रोगी निस्सन्देह स्वास्थ्य लाभ करसकता है। मैं अपने इस दावे के प्रमाण में भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में कठिन से कठिन रोगी की चिकित्सा के लिए परीक्षार्थ तैयार हूँ।

भारतीय अन्य डाक्टर व सर्जन क्षय के रोगियों पर ट्यूबरक्लीन का प्रयोग करने से पहले वे अच्छी तरह से इस के प्रभाव का खोज समझ लिया कर। मेरा अभिप्राय यह लेख लिखकर पुराने ढंग के डाक्टरों पर अनावश्यक आक्रमण करना अथवा उनका दिल दुखाना नहीं है, बल्कि मैं इस स्पष्टवादिता के लिए उनसे क्षमाप्रार्थी हूँ। किन्तु मुझे उनपर पूर्ण विश्वास है और आशा करता हूँ कि वे यह मानने से इन्कार न करेंगे कि उनकी मेटीरिया मेडिका से बाहर भी दुनिया में बहुत सचाई है जिस से उनका पूर्ण परिचय नहीं।

— o —

बाज़ार में बिकनेवाली पैटेंट औषधिया।

आज कल प्रायः देखाजाता है कि हज़ारों रोगोंका तुरत गुणदेनवाली विलायती और देशी औषधियां बाजारमें बिकती हैं। लाखों औषधियों के विज्ञापन-दैनिक-साप्ताहिक और मासिक पत्रों मे देखने में आते है। कितनी ही प्रकार की औषधिया के विज्ञापन गली कूचों म बाट जाते हैं। इस प्रकार को विज्ञापनी लीला इंग्लैण्ड-अमेरिका आदि, देशों से आयी है। हमारे देश के कितने ही स्वार्थलोलुप वैद्य अपनी बनाई हुई औषधियों की बड़ी प्रशंसा करके बहुमूल्य में विक्रय करते हैं और ग्राहक गण उनकी औषधियों की मन लुभाने वाली प्रशंसा पढ कर उनके पंजे में फस ही जाते है। वह इसका बिलकुल ही विचार नहीं करते कि यह औषध क्या है और कैसे वैद्य की बनाई हुई है तत्काल उसका सेवन करना प्रारम्भ कर देते हैं। विलायती पेटेण्ट औषधियों में और भी अधिक लूट होरही है। 'गुप्त औषध' नामक एक पुस्तक ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशन की तरफ से प्रकाशित हुई है उस में बाज़ार में बिकने वाली पेटेण्ट औषधियों की-प्रत्येक औषधि को रसायन शास्त्र की दृष्टि से अलग २ करके साफर बतला दियाहै। जिस औषधकी लागत एकआना अथवा दो पैसे हैं वह बाजार में एक या डेढ रुपये का बिकती है उदाहरण के लिये—

(१) पिंक पिल्स फार पेल पीपल-नामक औषधि का विज्ञापन बहुत से अग्रजी और देशी भाषा के समाचार पत्रों में देखने म आता है। इसको १० गोलियों का मू० २ शिलिंग ६ पेंस अर्थात् २

रु० १ आ०है । इसको सब प्रकार के रोग दूर करने के लिए प्रसिद्ध किया जाता है । पलोस्लिपेशन ने उसका पृथककरण बताते हुए यह दिखलाया है कि उन तीन गोलियों का मूल्य विलायत के बाज़ार भाव से उपरोक्त मूल्य का दशम भाग है । इन गोलियों का योग इस प्रकार हैं—

एक्सीक्युटेड सलफेट आफ आयर्न	७५ ग्रेन
पोटाशियम कारबोनेट अनहाइड्रस	६६ ग्रेन
पाउडर्ड लिकरायस	१०४ ग्रेन
मगनेशिया	••. ग्रेन
शुगर	२ ग्रेन

(२) क्लर्क साहबके जगत्प्रसिद्ध सार्सापारिला की—

सवा आठ औन्सकी शीशीका दाम २ शि० ६ पेंस २ ~) है और कितने ही प्रसिद्ध २ डाक्टर उसको सेवन करने के लिए अनुमति देते हैं। इसकी औषधियों को अलग २ करने से पता लगता है कि उन औषधियों का मूल्य लगभग चार आने होगा । उसका योग इस प्रकार है—

पोटाशियम आयोडाइड	४२-५ग्रेन
स्प्रिट आफ क्लोरोफार्म	६७ मिनिमम
बार्टशुगर	८.५ मिनिमम
स्प्रिट आफ सालवोले टाइल	१० ,,
सिपल सिरप	६० ,,
वाटर (पानी)	८ औंस

(३) बीचम साहब की सब रोगों पर राम वाण गोली

(बोल) अलोज़	५ ग्रेन
पाउडर्ड सोप	५२ ग्रेन
पाउडर्ड जिंजर	५५ ग्रेन

इसकी ५६ गोलियों का मूल्य लगभग १४ आने है किंतु इनकी लागत अधिक से अधिक छै पैसे है। इस गोली का विज्ञापन सर्वत्र स्टेशनों पर अधिकता से देखने में आता है।

(४) स्टर्न साहब की शिर दर्द की दवा ।

इस नाम की ११८ ग्रेन की डब्बी का मूल्य लगभग १२ आने हैं

किंतु बनाने से तीन पाई से कम की लागत है।

एन्टिफेब्रीन	३-६२ ग्रेन	कैफीन साइट्रास १.८
शुगर आफ मिल्क	४-१०	

५. मंदाग्नि पर, "फ्लूरसिनेल्स क्युरेटिवसिरप" की ३ औंस की शीशी का मूल्य २ शिलिंग ६ पेंस है किन्तु उसकी लागत वास्तव में एक आना से अधिक नहीं है।

डायल्यूट हायड्रोक्लोरिक एसिड	१० भाग
अलोज (वोल)	२ ,,
पानी	१००भाग
टिंचर आफ केपसीकम	१ १
टकल	६०

यह सर्वरोगनाशक दवा बतलाई गई है।

(६) जेमवक नामक मरहम की १। तोलेकी डब्बी का मूल्य ॥≈ है जो कि घाव - फोड़े फुंन्सियों को लाभ पहुंचाता है। इस की लागत केवल आधा पेन है। इस का योग इस प्रकार है:—

आइल आफ यूकेलिपटस	१४ परसेन्ट
साफ्ट पैराफिन	५५
ग्रीन कलरिंग मैटर	थोड़ा
हार्ड पैराफिन	२०
पिलरेज़ोन	२०

(७) डोन्स वैकच किडनी पिल्स।

१ डब्बी ४० गोलियों का मूल्य २ शिलिंग ९ पेंस है। इस की लागत लगभग २ आने है।

आयल आफ जुनीपर	एक ग्रेन
पोटाशीयम नाइट्रेट	१४ परसेंट
ह्वीटफ्लोवर	१ ग्रेन
हेमलाक पिच	१० ,,
पावडर्ड फेनो ग्रीक	१७
मेज स्टार्च	२ ,,

(८) इसी प्रकार डिनर पिल जिसकी ५० गोलियों का मूल्य १ शिलिंग डेढ़ पेंस है किंतु लागत इस की भी -) आना से अधिक नहीं है प्रयोग इस प्रकार है:—

आयल आफ पिपरमेंट	१ बूंद	एकसट्राक्ट आफ हेमलाम	१॥ ग्रेन
अलोइन	९.०९	पोडो फिलीन	३-८ ,,
पावडर्ड कैपसिकम	५	अलप रेज़िन	८ ,,
मेजरद्राई	आधा ग्रेन	पावडर्ड लिकरिस	६
		अकेसिया गम	१॥

(६) कीटिंग साहब की खांसी की गोलियों की ५० गोली की एक डब्बीका मूल्य १ शिलिंग डेढ़ पेंस और जिसमें निम्न औषध हैं।

मारफिया (अफीम का सत)	०.०७ ग्रेन
इपिकयाक्यूनहीं	.७ ,,
एक्सट्रैक्ट आफ लिकरिस	६.१
शुगर	१-३

इसी प्रकार की वीचम की गोलियां जिनमें अफीम का सत नहीं है ऐसा प्रसिद्ध किया जाता है और जिसकी ५६ गोलियों का मूल्य १ शिलिंग डेढ़ पेंस पड़ता है उनका योग इस प्रकार है।

मारफिन	३५ ग्रेन
पावडर्ड अनीसीड	३
एक्सट्रैक्ट आफ लिकरिस	४
पावडर्ड स्कील	१
अमोनिया अकम	३

इंगलैंड की औषधियों की निकासी पर जो जकात प्रत्येक वर्ष लगती हैं उससे पता लगता है कि लाखों रुपये जकात में ही वसूल होते हैं।

सन् १८९९	रु० ३९९६०४५
१९०३	रु० ५३००५६५
१९०८	रु० ४०१२९१५

इसके पृथक् १९०८ से इधर जो दवाओं की बिक्री हुई है उसका रु०४८४१६०१५ हैं और जिसका अधिकांश हिन्दुस्तानमें ही क्रय किया गया है।

हमारे देश के भी कितने ही विज्ञापनी वैद्य इसी प्रकार अपनी औषधियों का अंधाधुंध प्रशंसा करके लक्षाधीश बन रहे हैं।

अनुवादक बी० डी० शर्मा

विविध समाचार।

वैद्यसम्मेलन—अखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनका १३ वाँ वार्षिक अधिवेशन आगामी १३ अप्रेलसे १७ अप्रेलतक राजमहेन्द्रीमें होना निश्चित हुआ है। सम्मेलनकी स्वागतकारिणी समिति संगठित होगई है इसके सभापति श्रीयुत न्यायपति सुब्बाराव पन्तलूगारू, राजमहेन्द्री और मंत्री डाक्टर कोटोडी गुरुमूर्ति और राजवैद्य कोला अप्पल नरसिंह गारू। सम्मेलनके साथ प्रदर्शनी भी होगी। प्रदर्शनीके मंत्री प० नोरोत्तमजी शास्त्री निर्वाचित हुए हैं।

शस्त्रचिकित्साका चमत्कार—गत योरोपीय महायुद्धमें अस्त्रचिकित्साका अपूर्व चमत्कार देखनेमें आया। जिन सैनिकोंके युद्धमें आँख नाक, कान, गाल, ओठ, ठोढ़ी आदि अवयवोंके अंग होजानेसे चेहरे भद्दे, भोंडे; और कुरूप होजाते थे उनको डाक्टर लोग अपनी अस्त्रचिकित्सा के द्वारा शीघ्र ही सुन्दर और सुस्वरूप बनादेते थे। यदि इसप्रकार अस्त्रचिकित्साका चमत्कार नहीं दिखाया जाता तो आज लाखों सैनिक ऐसे भयानक और कुरूप चेहरे वाले दिखाई देते कि जिनकी तरफ आँख उठाकर देखना भी कठिन था।

खेमराज श्रीकृष्णदास का दातव्य औषधालय।

बम्बईके सुप्रसिद्ध स्वर्गीय सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीके सुयोग्य पुत्रोंने उनके नाम पर कई परोपकारिणी संस्थायें स्थापित की हैं। इन का दातव्य औषधालय साधारण जनता का विशेष उपकार कर रहा है। उसमें प्रतिदिन बहुतेरे रोगियोंकी धर्मार्थ चिकित्सा होती है।

उपर्युक्त औषधालयमें ता० १ फरवरी से २८ फरवरीतक ४२८ रोगियोंकी चिकित्सा हुई। इनमें ज्वरके २६७, उदर सम्बन्धी बीमारियोंके ८७, हैजेके २, सन्निपात के ३, अन्यान्य बीमारियोंके ५६ और नवीन रोगियोंकी चिकित्सा कीगई। नवीन रोगियोंकी संख्या २४३। यही ४१ रोगियोंके घर पर जाकर वैद्यजी ने चिकित्सा की।

जेलमें वैद्यराज—वैद्यके पाठकों के सुपरिचित वैद्यराज प० नाथूराम जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, अमरोहानिवासी आजकल जेलको भाकिन कररहे हैं। स्वराज्य सेवाके उपलक्ष्यमें आप जेल भेजेगये हैं। उस दिन स्थानीय जेलमें आप बड़े प्रसन्नचित्त देखपड़ते थे और बहुत देर तक हमसे हँस हँस कर बातें करते रहे।

Regd. No. A. 587.

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिक-पत्र

सम्पादक—शङ्करलाल वैद्य

वर्ष १० | मुरादाबाद, फरवरी, मार्च १९२२ | संख्या २–३

❀ विषय-सूची ❀

१-न्यूमोनिया चिकित्सा ३३
२-प्राकृतिकचिकित्सा और ओषधिविज्ञान ४७
३-मस्तिष्कविश्राम और शक्तिवर्द्धन ५०
४-प्रकृत-पेय ५७
५-आविष्कार . . ५८
६-मांस, मांसाहार और स्वास्थ्य ६३
७-अफीम . . . ७२
८-युवति स्त्रियों के जानने योग्य बातें ७६
९-साँप के काटने की दवायें .. . ८३
१०-प्राप्ति-स्वीकार ... ८५
११-विविध-विषय . ८६

प्रकाशक—हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद।

वार्षिक-मूल्य १॥) [एक संख्या का मूल्य ≈)

Printed by—Pt. Lakhi Ram Sharma,
at the Sharma Machine Printing Press,
MORADABAD

2

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

वैद्य

मासिक-पत्र

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष १०	मुरादाबाद, फरवरी, मार्च १६२२	संख्या २-३

न्यूमोनिया-चिकित्सा ।

(लेखकः—हनुमत्प्रसाद जोशी, वैद्यशास्त्री, सीकरनिवासी-बम्बई-प्रवासी)

——०:०——

उपक्रम ।

"आर्यदेश अधिवासी सब नीरोग हों,
योग्य, सुखी हों, नष्ट यहाँसे रोग हों ।"

* * * *

"आर्य चिकित्सा तत्त्व सभी जन जान लें ।
भगें रोग सब, अपनी अपनी जान ले ॥"

"हृदयवीणा" ।

——०——

श्रीधन्वन्तरये नमः।

वैद्य

मासिक-पत्र

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥

वर्ष १० | मुरादाबाद, फरवरी. मार्च १९२२ | संख्या २-३

न्यूमोनिया-चिकित्सा।

(लेखकः—हनुमत्प्रसाद जोशी, वैद्यशास्त्री, सीकरनिवासी-बम्बई-प्रवासी)

—o:o—

उपक्रम।

"आर्यदेश अधिवासी सब नीरोग हों,
योग्य, सुखी हों, नष्ट यहांसे रोग हों।"

* * * *

"आर्य चिकित्सा तत्त्व सभी जन जान लें।
भगें रोग सब, अपनी अपनी जान लें॥"

"हृदयवीणा"।

—o—

न्यूमोनिया[1] साधारण रोग नहीं है। कष्टदायक और भयंकर रोगों में उसकी गणना है। इसके सिवाय वह संक्रामक-छूतके द्वारा फैलने वाला भी है। कुछ वर्षों से हमारे देशमें समय २ पर उसके सांघातिक हमले भी प्रचंडरूपसे होते देखे जाते हैं। इस लिये वह बहुव्यापक भी कहा जासकता है। पिछले जगद्व्यापी इन्फ्लूएंजाके आक्रमणकी भयंकर घटना, किसको विदित न होगी? आज भी उसको स्मरण करने से रोमांच हो आते हैं। सिर्फ भारत-वर्षमें ही उसके द्वारा करीब ७० लाख आदमियों की मृत्यु हुई थी। यद्यपि न्यूमोनिया एक स्वतंत्र रोग है, तथापि इन्फ्लूएंजा के साथ उसका घनिष्ट संबंध होने के कारण उस समय भीषण दु.ख-दाय-कता और मारकता का अधिकांश भाग इस रोगराक्षस के कारण ही था। क्योंकि इन्फ्लूएंजाके बाद ही लोगों को न्यूमोनिया-और ब्रांको-न्यूमोनियां होजाता था। बहुतोंको साथ २ ही दोनों रोग होते थे। इस रोग के हो जानेके बाद शुश्रूषा और उत्तम औषधके अभावसे बेचारे दीन हीन रोगी अकाल ही कालके कवल हो जाते थे। अकेले बम्बई नगर में इस रोग के कारण ७००-८०० तक दैनि-क मृत्यु-संख्या होने लगी थी। छोटे २ गावोंमें तो जनसंख्या के हिसाबसे औसद् दैनिक मृत्यु-संख्या इससे भी अधिक होती थी।

न्यूमोनिया रोग साधारण रूपसे भी समय समयपर लोगों को सताता रहता है। अतः ऐसे बहुव्यापक, संक्रामक और कष्टदायक रोग को उत्पन्न न होने देने के नियमों, रोग के हो जाने के बाद उसको पहचानने की सरल रीति, उसकी अनुभूत और सुगम चिकित्सा-पद्धति एवं सेवा-शुश्रूषा सम्बन्धी बातों को ठीक ठीक जानना न केवल वैद्यों के लिये, किन्तु सर्व साधारण के लिये भी स्वभावतः बहुत ज़रूरी है। साथ ही इस रोग की अनुभूत चिकि-त्सा और सेवा-शुश्रूषा के अभावके कारण जितने दुष्परिणाम और शोकजनक फल होते हैं, रोग के होते ही प्राचीन और वर्तमान दोनों पद्धतियों से भली भाँति रोग-परीक्षा करके यदि विधिपूर्वक आयुर्वेदीय चिकित्सा और सावधानीके साथ उचित शुश्रूषा की जाय तो उतनी ही अधिक सफलता और संतोषजनक परिणाम होते हैं।

1 Pneumonia.

मैं अपने साधारण अनुभव के सहारे कह सकता हूँ कि, निपुण वैद्यकी देखरेख में यदि अच्छी चिकित्सा और परिचर्या की जाय, तो इस रोग के १०० रोगियों में से १०० नहीं, तो ६० रोगी तो अवश्य ही निरोग हो सकते हैं। जिनके जीने की बिल्कुल आशा नहीं थी, इस रोग के ऐसे दुःसाध्य रोगी भी सुचिकित्सा से पूर्ण निरोग हुए हैं और होते हैं।

इन्फ्लुएंजा और न्यूमोनिया के आक्रमण के समय प्रायः सभी स्थानोंके उत्साही पुरुषोंने निःस्वार्थ सेवाभाव से प्रेरित होकर इस रोग को रोकने और इसकी मुफ्त चिकित्सा करने का प्रबंध किया था। उसी समय मारवाडी बन्धुओं के उद्योग से बम्बई में भी एक "न्यूमोनिया-रुग्णशाला" और औषधालय खोले गये थे। जिन म चिकित्सा और प्रबंध सम्बन्धी सेवाओंका कार्य जैसा बनसका इन पंक्तियों के लेखकने किया था। उस समय ईश्वर की दया और आयुर्वेद के प्रभाव से रुग्ण-शाला के भीतरी और बाहरी सभी रोगी रोगमुक्त हुए थे, और उस काममें आशातीत सफलता मिली थी।

विद्वानों के समक्ष परीक्षा और विचार के लिये, विद्यार्थियों की ज्ञानवृद्धि के लिये और सर्वसाधारण के लाभ के लिये इस रोग के चिकित्सा सम्बन्धी अपने उस क्षुद्र अनुभव और अभ्यास को प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

इस रोग के निदान और चिकित्सा संबन्धी विशेष विवेचन की भी बहुत आवश्यकता है। क्योंकि प्राचीन शास्त्रों में विस्तृत विवरण न मिलने के कारण बहुप्रचलित होन पर भी इसकी चिकित्सा और निदान के सबन्ध में अभी वैद्यों के भिन्न २ विचार हैं। नाम में भी ऐक्यमत्य नहीं है।

एकबार मेरे एक प्रतिष्ठित मित्रने कहा कि, "मेरा वैद्यों और देशी औषधियों पर बहुत विश्वास है। किन्तु न्यूमोनिया की बीमारी में मैं वैद्यों की चिकित्सा नहीं कराता, क्योंकि वे प्रायः छाती की परीक्षा नहीं करते। इस लिये इस रोग के पहचानने में बहुत बार भ्रम होजाता है।" मैंने कहा कि, "भाईसाहब" आपका कहना ठीक है, इस रोग में छाती की परीक्षा से रोग शीघ्र पहचाना जा सकता है। क्योंकि यह फेफड़ों का रोग है। यद्यपि विद्वान् वैद्यवर, आयुर्वेदीय दोषपद्धति के अनुसार भी इसकी परीक्षा और चिकि-

त्सा सफलता के साथ करसकते हैं तथापि जब कि विद्वान् वैद्यों को डाक्टरी विद्या की तुलनामें आयुर्वेदकी उत्कृष्टता प्रकट करनी है; तब हमारे जैसे साधारण वैद्यों के लिये तो वक्ष-परीक्षाका ज्ञान लेना आवश्यक ही नहीं, किंतु लाभदायक भी है।" अस्तु।

इस रोग का फेफड़ों और श्वासयंत्र के साथ संबन्ध होने के कारण इसके कारण और लक्षण लिखने के पूर्व, फेफड़ों के गठन, उन के कार्यका विवरण और वक्षःस्थल की परीक्षा का विधान लिखना अत्यन्त आवश्यक है इस लिये निदान और चिकित्सा की सुगमता के लिये पहले हम संक्षेपसे उन का विवरण लिखे देते हैं।

फेफड़ों का विवरण।

हृदयाद्वामतोऽधश्च फुफ्फुसो रक्तफेनजः।
उदानवायोराधारः फुफ्फुसः प्रोच्यते बुधैः॥शार्ङ्गधरः।

हृदयनाडिकालग्नः फुफ्फुसः॥ डल्हणः।
तावंत्यः फुफ्फुसयकृत्हृदयानां च मध्यतः॥
या रसानुविभागेन शोणितं संवहंति तु॥पालकाप्ये।

स्थान और सीमानिर्णय।

शरीर का वह ऊपरी भाग जो गले के नीचे और पेट के ऊपर पीछे की ओर कशेरुकास्थियों[1] से एवं आगेकी तरफ वक्षोऽस्थि[2] से जुड़ी हुई पसलियों[3] से बना हुआ है, वक्षःस्थल या वक्षोगह्वर[4] कहलाता है। चारों ओर हड्डियोंसे वेष्टित इस मजबूत स्थानके भीतरी हिस्से में शरीर के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अवयव तथा जीवन के विशेष मर्मस्थान फेफड़े[5] और हृदय[6] सुरक्षित हैं। जिनके साथ ही महाधमनी[7] महासिरा आदि भी हैं।

फेफड़ों के ऊपरी भाग में कंठका मूल, अक्षकास्थि[8] और पहली पसली है। नीचे उदराच्छादिनी[9] पेशी का ऊपरी कुब्ज[10] भाग है। इसी पेशी द्वारा वक्षःस्थल उदर से पृथक् कियाजाता है। सामने

1 Vertebra. 2 Sternum. 3 Ribs. 4 Throat. 5 Lungs 6 Heart 7 Aorta 8 Clavicle. 9 Diaphragma. 10 Convex.

पसलियों की उपास्थियां[1] तथा वक्षोऽस्थि है। पीछे की तरफ अन्न-नलिका[2], मेरुदंड और पसलियों के मूलदेश हैं।

स्वरूप।

फेफड़ों का अग्रभाग अक्षकास्थि के डेढ़ इंच ऊपर से शुरू होता है। दाहिने फेफड़े का अग्रभाग बांये की अपेक्षा कुछ ऊँचा होता है। गलेके भीतर स्वरयंत्र[3]से निकला हुआ श्वासमार्ग[4] चौथी पसली के पास वाम और दक्षिण दो भागों में वायुनलिका[5] के रूप में विभक्त होकर फेफड़ों में प्रवेश करता है। स्पष्टरूप से फेफड़ा भी इसी जगह वाम[6] और दक्षिण[7] इन दो भागों में विभक्त होता है। इस स्थानको फुफ्फुसमूल कहते हैं। इसी स्थान पर वायुनलिका धमनी, सिरा और नाडी भी प्रत्येक फुफ्फुस में प्रवेश करती हैं।

दाहिने फुफ्फुस की अपेक्षा वायां वजन और चौड़ाई में कुछ छोटा होता है, किन्तु लम्बाई में कुछ बड़ा। दहना फुफ्फुस तीन भागों में विभक्त है। दोनों फेफड़ों के बीचमें, कुछ बांई ओर हृदय होता है, इसलिये बांया फेफड़ा दो भागोंमें ही विभक्त है। फेफड़ों के प्रत्येक भाग को फुफ्फुसखंड[8] करते हैं।

दाहिने फेफड़े में जहाँ धमनी और वायुनली आदि प्रवेश करती हैं, वहाँ आगे की ओर वायुनली, मध्य में फुफ्फुस, धमनी, और पीछे की ओर फुफ्फुसांसरा रहती है। बांये फेफड़े में सामने फुफ्फुस-धमनी[9], बीच में वायुनली और पीछे फुफ्फुससिरा[10] रहती है। फुफ्फुस नाड़ी[11] दोनों तरफ शिरा के साथ रहती है।

पुरुषों के दाहिने फेफड़े का वज़न१० अथवा ११ छटांक और बांये का ६ अथवा १० छटांक होता है। दोनों फेफड़ों का वजन १। सेर या २॥ रतल के करीब होता है। स्त्रियों के दाहिने फेफड़े का वज़न ८॥ और बांये का ७॥ छटांक होता है। दोनों मिलकर एक सेर के करीब होते हैं। सब आदमियों के फेफड़ों का वज़न आदि समान नहीं होता। शरीर की आकृति के अनुसार वह कम या

1 Costal Cartilage 2 Oesophagus 3 Larynx. 4 Trachea. 5 Bronchi. 6 Left. 7 Right. 8 Lobe. 9 Pulmonary Artery. 10 Pulmonary Vein 11 Pulmonary nerve.

ज्यादा होता है। दोनों फुफ्फुस, हृदय; महाधमनीमूल और महा-शिरा-मूल को अपने मध्य म रखकर सम्पूर्ण वक्षोगह्वर को ढाके हुए हैं। अन्ननलिका उन के पीछे रहती है। फेफड़े छोटे २ असंख्य वायु कोषों द्वारा बने हुए हैं। इस लिये वे स्पंज की तरह सच्छिद्र और देखने में शुंडाकार हैं। वे एक बारीक और अत्यन्त चिकनी झिल्ली[1] से लिपटे हुए रहते हैं। उस झिल्ली को फुफ्फुसावरण-कला कहते हैं। उसमें एक प्रकार का तेल जैसा चिकना पदार्थ रहता है, जिस से श्वास—प्रश्वास के समय जब फेफडे सिकुड़ते और फैलते हैं तब उन का आपस में व अन्य अङ्गों से घर्षण नहीं होता और यदि हो तो भी कोई हानि नहीं होती। फेफडे ऊपर से बहुत चिकने, चमकीले और मुलायम होते हैं।

फेफड़ों के प्रत्येक अंश और वायुकोष स्थिति-स्थापक होतेहैं। प्रत्येक वायुकोष के चारों ओर एक एक केशिका[2] धमनी रहती है। केशिका और वायुकोष का आवरण इस प्रकारका होता है,जिससे उन में से एक का पदार्थ दूसरे में बहुत आसानी से जासकता है। ऐसा होने से श्वासवायु का प्राणतत्त्व[3] वायुकोषों द्वारा केशिकाओं में प्रविष्ट होकर रक्त को शुद्ध करता है और उन में का कार्बोनिक एसिड वाष्प वायुकोषों में से होकर आसानी से बाहर निकल जाता है। यदि ऐसा न होता तो श्वासवायु का सारा[4] का सारा प्राणतत्त्व नष्ट हो जाता और फेफड़ों में कार्बोनिक एसिड वाष्पका संचय हो जाने से सारा रक्त दूषित हो जाता।

बड़े आदमियों के फेफड़ों का रङ्ग सलेट के जैसा नीला-भूरा और बच्चों के छोटे फेफडों का रङ्ग गुलाबी होता है। गर्भस्थ बच्चे के फेफड़ों का रङ्ग गहरा लाल होता है।

हवा से भरे रहने के कारण किसी भी प्राणी के फेफडों को हाथ में लेकर दबाने से कर कर आवाज़ होती है और वे जल से अधिक हलके होते हैं, इस लिये पानी में नहीं डूबते। परन्तु न्यू-मोनिया, क्षय आदि रोगों के कारण बिगडे हुए फफडे भारी और जड़ हो जाने के कारण पानी में नहीं तैर सकते।

---

1 Pleura. 2 Capillary. 3 Oxison. 4 Carbonic Acid. 5 Bronchioll.

फेफड़ों के उपादान।

फुफ्फुस—खंडों में और भी बहुत से छोटे २ खंड होते हैं। वे स्नायुतंतुओं से आपस में जुड़े रहते हैं। फुफ्फुस के प्रत्येक छोटे खंड की रचना भी फेफड़े के समान ही होती है। वायुनलियों से निकली हुई सूक्ष्म वायुप्रणालिका, नाड़ी[1], केशिका[2], धमनी[3] और रसायनी[4] प्रत्येक खंड में रहती हैं। सब से छोटी वायुप्रणालिकायें अत्यन्त सूक्ष्म होती हैं। वे खुर्दबीन से ही देखी जासकती हैं। वे स्फीत होकर वायुकोषों के रूप में परिणत होजाती हैं। वायुकोष सूक्ष्म हैं, और स्नायुसूत्रों से बँधे हुए हैं। उन का आकार अर्ध गोल है। उन में संकोचन और प्रसरण की शक्ति के अतिरिक्त एक और ऐसी शक्ति है जिस के द्वारा श्वास-प्रश्वास के साथ धूल, गर्द या और कोई बाहरी चीज़ जो फेफड़ों में चली जाती है, बाहर निकाल दीजाती है। एक प्रकार के सूक्ष्मसूत्रों द्वारा यह क्रिया होती है।

सारांश यह है कि फेफड़े चैतन्याणुओं (सेलों)[5] से बने हुए असंख्य वायुकोषों, स्थितिस्थापक गुणविशिष्ट, सूक्ष्म स्नायुसूत्रों, वायुनलिका की छोटी छोटी शाखाओं, केशिकाओं, नाड़ियों आदि से बने हुए सहस्राधिक सूक्ष्म फुफ्फुसखंडों से बने हुए हैं।

श्वासमार्ग[6] और वायुनलिका[7]।

"उभयत्रो रसो नाड्यौ वातवहे अपस्तंभौ नाम,"

सुश्रुताचार्य.।

नाक के द्वारा वायु गले और स्वरयंत्र में जाकर जिस रास्ते से फेफड़ों में जाती है, उसे श्वासमार्ग कहते हैं। गले में सामने की तरफ़ बाहरसे टटोलने पर (बड़ी उमरवालोंके तो बिना टटोले वह आँख से ही साफ़ दिखाई देती है) जो एक कड़ी और लम्बी चीज़ मालूम होती है, वह स्वरयंत्र है। उसके ठीक नीचे से शुरू होकर छाती के भीतर ४ थी पसली तक जो नली जाती है, वही 'श्वासमार्ग' है। वह ४॥ इंच लंबा है। उस का छिद्र करीब २ गोल होता है। श्वासमार्गका बाहरी भाग सामने से गोल और पीछेसे कुछ चपटा होता है।

---

1 Nerve. 2 Copillary. 3 Artery. 4 Lamphatic Glands. 5 Cells. 6 Trachea. 7 Bronchi.

श्वासमार्गका बाहरी हिस्सा उपास्थियों के छल्लों से बनता है जिनकी संख्या १६ से २० तक होती है। वे सब छल्ले स्नायुतंतुओं से आपसमें जुड़ेरहते हैं। भीतरी भाग मांस, स्नायुसूत्र और पतली झिल्ली से बनताहै। श्वासमार्गके दोनों ओर धमनियाँ सामनेमांस-पेशी एवं त्वचा और पीछे अन्ननलिका रहती है।

श्वासमार्गके वक्षःस्थलमें जाकर दो भाग होजाते हैं। उन दोनों भागोंको 'वायुनलिका' कहते हैं। दाहिनी वायुनलिका ६ से ८ और बांई ६ से १२ उपास्थियोंके छल्लों से बनती है। फेफड़ों में प्रवेश करनेके बाद वे दोनों वायुनलिकायें असंख्य शाखा-प्रशाखाओं में विभक्त होजाती हैं। जिन्हें सूक्ष्म वायु-प्रणालिका[1] कहते हैं।

फेफड़ों का कार्य और श्वास प्रश्वास।[2]

श्वास प्रश्वास और रक्तकी शुद्धि फेफड़ोंके ये दो मुख्यकार्य हैं। फेफड़ों के भीतर वायु के जाने और बाहर आने को श्वास-प्रश्वास कहते हैं।

श्वास—वायु के फेफड़ों में प्रवेश करते समय स्वभावतः उनके स्थिति स्थापक तंतु विस्तृत होते हैं, जिस से छाती और पेट ऊँचे उभरते हैं और फैलते हैं,इसलिये पसलियां और सामने की हड्डी ऊपर उठती हैं एवं फेफड़े बड़े हो जाते हैं।

प्रश्वास—वायु के फेफड़ों और नासिका से होकर बाहर निकलते समय फेफड़े सिकुड़ते हैं और नीचे दबते हैं, एवं वायुकोष छोटे होजाते हैं। पेट की मांसपेशियों, और स्नायुसूत्रों के लचीलेपन से और वक्षोऽस्थिके भार से श्वास के बाहर निकलने में मदद मिलती है।प्रश्वासके समय फेफड़े वायुसे बिलकुल ही खाली नहीं होजाते। उस समय भी उनमें थोड़ी बहुत वायु तो रहती ही है।

स्वस्थ रहने की इच्छा करने वाले प्रत्येक मनुष्य को हमेशा गहरा श्वास लेना चाहिये। गहरे श्वास लेने से फेफड़ों का प्रत्येक खंड वायुसे भरजाता है। आजकल लोग प्राय पूरे और गहरे श्वास नहीं लेते, इससे फेफड़े उतने नहीं फैलते जितने फैलने चाहियें।

साधारण श्वासके समय पुरुषों और बच्चोंकी छातीसे लेकर पेट तक के सम्पूर्ण अवयवोंमें और स्त्रियोंके सिर्फ छाती में हीसंचालन मालूम होताहै। यह विभिन्नता गहरे श्वास लेनेके समय नहीं रहती।

1 Bronchiole 2 Respration.

श्वास और प्रश्वास वायु के उपादानों में भिन्नता।

श्वासकी स्वच्छ वायुमें प्राणतत्व अधिक और कार्बोनिक एसिड वाष्प तथा जलीय अंश बहुत ही कम होता है। हानिकारक पदार्थ उसमें बिलकुल नहीं होते।

प्रश्वास-वायुमें प्राणतत्व कम, कार्बोनिकएसिड और जलीयवाष्प एवं अन्य हानिकारक पदार्थों की अधिकता रहती है।

श्वास प्रश्वासों की संख्या और नियम।

एक मिनटमें मामूली तौरसे १६ से २२ श्वास-प्रश्वास आतेहैं। श्वासका समय प्रश्वास की अपेक्षा कुछ कम होता है। एक श्वास-प्रश्वास में प्रायः ३ सेकिन्ड का समय लगता है। बचपन में श्वास-प्रश्वासकी संख्या अधिक प्रायः एक मिनटमें ४० बार होतीहै। फिर अवस्था बढ़ने के साथ २ इस संख्या में कमी होजाती है। इस के अतिरिक्त किसी प्रकार की मेहनत या कसरत करने, भागने, दौड़ने आदिके समय भी श्वास-प्रश्वासों की संख्या बढ़जाती है। जागने की अपेक्षा सोनेके समय भी श्वास जल्दी २ आते हैं।

हृदय और श्वास-प्रश्वास।

तन्दुरुस्ती की हालत में एक श्वास-प्रश्वासमें जितना समय लगता है; उतने समय में ४ या ५ बार हृदय का स्पंदन होता है।

रक्त का परिभ्रमण।

प्रतिक्षण हमारे शरीर में पुराने तंतुओं का क्षय और नवीन तंतुओं की वृद्धि होती रहती है। शारीरिक तंतुओंका क्षय होने से कार्बोनिक एसिड गैस नामक एक ज़हरी वाष्प की उत्पत्ति होती है। यह वाष्प शरीर के लिये बहुत हानिकारक है। क्योंकि यदि किसी-कोठरी में केवल यही वाष्प भरा हुआ हो और उसमें कोई प्राणी रक्खा जाय तो वह फ़ौरन मरजायगा। खून के जिस भाग में उपर्युक्त वाष्प और अन्यान्य हानिकारक पदार्थों की अधिकता होतीहै, वह अशुद्ध होता है, अतएव उसका रंग लाल न रहकर नीला हो जाता है। खून ही मनुष्य का जीवन है। इसी लिये यदि शरीर का सारा खून एक साथ अशुद्ध होजाय, तो मनुष्य का जीना मुश्किल होजाय। इसीलिये दयालु ईश्वरने फेफड़ों के द्वारा उसके शुद्ध करने का प्रबन्ध करदिया है। अशुद्ध रक्त सिराओं के द्वारा हृदय के दाहिने कोष में आता है। वहाँ से वह फुफ्फुसधमनी के द्वारा

दोनों फेफड़ों में—उनके प्रत्येक भाग में स्थित केशिका धमनियों में पहुंचकर श्वासके द्वारा अन्दर लीहुई प्राणवायु से शुद्ध होता है। वहां से फिर हृदय के बायें आशय में जाकर वह सारे शरीर में पहुंचता है, और उसका पोषण करता है।

प्राणवायु से फेफड़ों में रक्त किस प्रकार शुद्ध होता है इस को समझ लेने की ज़रूरत है। वायु का प्राणतत्व जीवन के लिये बहुत ज़रूरी चीज़ है। वह वायुनलिकाओं से फेफड़ों के प्रत्येक वायुकोष में जाता है। यह कहा जाचुका है, कि प्रत्येक वायुकोष के साथ केशिका धमनियां लगी हुई हैं, उन दोनों के बीच में सिर्फ वे पतली दीवारें हैं, जिन में से एककी चीज़ दूसरी में आसानी से आ जा सकी है। अस्तु। वायुकोषों में से प्राणतत्व केशिकाओं में और केशिकाओं में से कार्बोनिक एसिड वाष्प व रक्त में के अन्य हानिकारक पदार्थ वायुकोषों में प्रवेश करते हैं। प्राणवायु केशिकाओं में एक तो स्वभावतः गति करती है, दूसरे रक्त के भीतर रहनेवाले "हिमोग्लोबीन्" नाम के कण भी उसका विशेष रूपसे आकर्षण करते हैं। जिससे उसका अधिकांश भाग वहां चूस लिया जाता है। एवं उनमें का कार्बोनिक एसिड वाष्प,थोड़ा जलीय अंश और कुछ अन्यान्य हानिकारक पदार्थ वायुकोषों में जाकर प्रश्वासवायु के साथ बाहर निकल जाते हैं। इस प्रकार रक्त पूर्णरूप से शुद्ध होजाता है।

फुफ्फुस परीक्षा *

"आतुरगृहमभिगम्योपविश्यातुरमभिपश्येत् स्पृशेत्पृच्छेच्च । त्रिभिरेतैर्विज्ञानोपायै रोगाः प्रायशो वेदितव्या इत्येके । तन्न सम्यक् । षड्विधो हि रोगाणां विज्ञानोपायः । तद् यथा, पंचभिः श्रोत्रादिभिः, प्रश्नेन चेति ॥ तत्र श्रोत्रेन्द्रियविज्ञेया विशेषा रोगेषु व्रणास्रावविज्ञानीयादिषु वक्ष्यन्ते, सफेनं रक्तमीरयन्ननिलः सशब्दो निर्गच्छतीत्येवमादयः ॥

[सुश्रुत सूत्र, अ, १०]

* हमारे उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थों में फुफ्फुस और उनकी परीक्षा के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता। सिर्फ सुश्रुताचार्यजी के उपरिलिखित उद्धरणों से हम फुफ्फुसपरीक्षा का कुछ संकेत पाते हैं।

"हस्तमेव प्रधानतया यंत्राणामगवच्छ । तदधीनत्वात् यंत्र-कर्मणाम् । नाड्योयंत्राण्यप्यनेकप्रकाराणि, अनेकप्रयोजनानि एकतोमुखानि उभयतोमुखानि च स्रोतोगतशल्योद्धरणार्थं, रोगदर्शनार्थं, आचूषणार्थं क्रियासौकर्यार्थं चेति" ॥[सुश्रुतसूत्र, अ. ७]

हृदय और फेफड़ोंकी बीमारियों, उनकी विकृत तथा अविकृत क्रियाओं एवं अन्यान्य रोगों को ठीक २ जानने के लिये फुफ्फुस-परीक्षाका ज्ञान बहुत ज़रूरी है। हाथ आदि शारीरिक अवयवों और अन्यान्य भौतिक साधनों की सहायता से वक्षःस्थलके बाहरी आकार, उसके भीतरी संचलन, उसमें होनेवाले भिन्न२ परिवर्त्तनों और विकारों के ज्ञापक प्रतिध्वनिशब्दों के जानने का नाम ही फुफ्फुस-परीक्षा है।

उक्त परीक्षा में सुविधा हो, इस लिये हम यहां पर पहले वक्षःस्थल के भिन्न २ विभागों और उनके विवरण को चित्र और कोष्ठकों के द्वारा समझाये देते हैं।

आवश्यक सूचनायें–फुफ्फुस-परीक्षा के समय वक्षःस्थल को खुला रखना चाहिये। किसी रोगिणी को देखने के समय यदि वस्त्रके ऊपर से परीक्षा करनी पडे, तो बहुत सावधानी की आवश्यकता है। क्यों कि छाती के वस्त्र से ढकी रहने के कारण रोगके जानने में कभी कभी भ्रम हो जाया करता है। इसलिये रोगी और वैद्य दोनों के सुभीते के लिये छाती का खुला रखना ही अच्छा है। बैठे हुए रोगी की परीक्षा भली भाँति होती है। यदि रोगी बठने में असमर्थ हो तो लेटी हुई अवस्था में ही उस की परीक्षा करनी चाहिए। छातीके सन्मुख भाग की परीक्षा के समय रोगी के दोनों हाथों को नीचे की तरफ सीधे और लम्बे रखने चाहिये। पार्श्वों की परीक्षा के समय उन का सामने की ओर या मस्तक के ऊपर रखना सुविधा जनक है। पीठ की परीक्षा के समय हाथों का सामने रखने के साथ ही सिर को भी जरा छाती की ओर झुकाना चाहिए। वक्षःस्थल के चारों ओर किस किस स्थान में रोग का आक्रमण हुआ है, कहाँ कहाँ प्रदाह, क्षत और रक्त संचय आदि हुए हैं, और प्रतिदिन उन में क्या२ अंतर होता है, इन सब बातों को जानने के लिये वैद्य को स्थिर चित्त होकर प्रत्येक स्थान की कई बार जांच करके रोग की परीक्षा करनी चाहिए। जिस से किसी प्रकार के भ्रम की संभावना न रहे।

वक्षःस्थल के भिन्न भिन्न विभाग:—

सं०	प्रदेश	स्थान	आघात से होने वाला स्वाभाविक शब्द	भीतरी स्थान
१	अक्षकास्थि	गले के नीचे की हड्डी	वक्षोऽस्थि के पास आघात करने से साफ शून्य गर्भ, और अक्षकास्थि के बीचमें तथा कंधे की हड्डी के पास ज़रा घन गर्भ शब्द मालूम होता है।	फेफड़ों का ऊपरी हिस्सा
२	अक्षकास्थि के नीचे का भाग	अक्षकास्थि और चौथी पसली के बीच में	साफ शून्यगर्भ	फेफड़ों का ऊर्द्धखंड, श्वास मार्ग
३	स्तन-प्रदेश	चौथी और आठवीं पसली के बीच में	अत्यन्त साफ शून्यगर्भ	फेफड़ों का मध्यखंड, वायुनलिकाएँ वक्षोऽस्थि के पास ऊपरी हिस्सा, और बाईं ओर फेफड़ों से ढका हुआ हृदय
४	निम्न-स्तन प्रदेश	८ वीं पसली और उसकी उपास्थि के बीच में	दाहिनी तरफ पूर्णगर्भ शब्द, बाईं ओर पूर्णगर्भ या अस्वाभाविक प्रतिध्वनि।	दाहिनी ओर यकृत् और बाईं तरफ फेफड़ोंसे ढका हुआ आमाशयका कुछ भाग
५	वक्षोऽस्थि काऊर्ध्वदेश	वक्षोऽस्थिका ऊपरी अंश	सम्पूर्ण शून्यगर्भ	श्वासमार्ग

सं०	प्रदेश	स्थान	आघात से होने वाला स्वभाविक शब्द	भीतरी स्थान
६	वक्षोऽस्थि-कामध्यप्रदेश	वक्षोऽस्थिके बीच का भाग	सम्पूर्ण शून्यगर्भ	फेफड़ों के मध्यम खंड की सीमा
७	वक्षोऽस्थि-का अध. प्रदेश	वक्षोऽस्थि और उसकी उपास्थि के नीचे का हिस्सा	ऊपर शून्यगर्भ शब्द, मोटे आदमी के कुछ कम। नीचे प्रायः पूर्णगर्भ, और कभी कभी वायुपूर्ण शब्द।	ऊपरी भाग में फेफड़ों की सीमा नीचे हृदय, यकृत् और किसी २ के आमाशय भी।
८	कुक्षि	चौथी पसली के ऊपर भुजा के नीचे का वक्षः-स्थल का भाग	सम्पूर्ण शून्यगर्भ शब्द	फेफड़ोंके पार्श्वस्थखंडका ऊपरी भाग और वायुनलिका।
९	पार्श्व	चौथी और आठवीं पसली के बीच में	सम्पूर्ण शून्यगर्भ शब्द	फेफड़ों के पार्श्वस्थखंड का मध्यभाग
१०	निम्नपार्श्व प्रदेश	आठवीं पसली के नीचे	निम्न स्तनप्रदेश के समान	फेफड़ोंकेपार्श्वखंडकीसीमा दाहिनी ओरयकृत्बाईंतरफआमाशयऔरप्लीहा
११	स्कंधोर्ध्व प्रदेश	अक्षकास्थि और स्कंधास्थि की ऊपरी सीमा के मध्य में	लगातार आघात करने से पूर्णगर्भ शब्द. ठहर ठहर कर आघात करने से शून्यगर्भ शब्द। विशेषतः अक्षकास्थि के पास।	फेफड़ों का ऊपरी खंड और वृहत् वायुनली।

सं०	प्रदेश	स्थान	आघात से होने वाला स्वाभाविक शब्द	भीतरी स्थान
१२	स्कंधास्थि-देश	स्कंधास्थि और उसके नीचे वाली पेशीकी सीमा,	लगातार आघात करने से स्मात प्रतिध्वनि शब्द ।	फेफड़ों के पाछे का मध्यभाग ।
१३	स्कंधास्थि-मध्य	दोनों स्कंधास्थियों की भीतरीसीमाओं के बीच का हिस्सा	लगातार आघात करने से या हाथ पर हाथ रखके मस्तक को झुकाकर आघात करने से शून्यगर्भ शब्द ।	फेफड़ों के पिछले भाग का मूल देश और उनका भीतरी हिस्सा ।
१४	पृष्ठाऽधस्तन-देश	पीठ का निचला हिस्सा	ऊपर पसलियों के कोनों पर आघात करने से शून्यगर्भ शब्द, नीचे दाहिनी तरफ पूर्णगर्भ, आमाशय और बाईं ओर आध्मानिक ।	फेफड़ोंके पीछेका बिचला हिस्सा दाहिनी तरफ यकृत् और बाईं तरफ आमाशय ।

(क्रमशः)

प्राकृतिकचिकित्सा और औषधिविज्ञान।

प्राकृतिक चिकित्सा कोई विज्ञान अथवा नवीन खोज नहींहै स्वास्थ्य को अक्षुण्ण रखने के लिये जिन २ नियमों की आवश्यकता होती है उन नियमों की विशद् व्याख्या करना और उनका महत्त्व प्रकट करना ही प्राकृतिक चिकित्सा का काम है। जिन उपायों से स्वास्थ्य की उन्नति होसकती है उनपर विचार करते हुए अनुभूत प्रणाली का आविष्कार ही उसका अन्तिम लक्ष है। जिससमय वैद्य किसी रोगी की चिकित्सा करता है तो वह उपदेश देता है कि आहार विहार को नियमित रखना चाहिये। रोगी अपने संकुचित विचारों से इस महत्वपूर्ण उपदेश से यह परिणाम निकालता है कि जबतक वह रोगी है तबतक आहार विहार को नियमित रक्खे बाद को कुछ आवश्यकता नहीं। यदि प्रति समय आहार विहार, आचार व्यवहार, और नियमों पर ध्यान रक्खा जाय तो रोगों की गणना कम होजावे और मानव समाज का दुःख बहुत अंशों में कम होजावे। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा यह गारंटी नहीं दी जासकती है कि कभी कोई व्याधि उत्पन्न न होगी। अतएव, प्राकृतिक चिकित्सा के कारण वैद्यक विज्ञान का महत्त्व कम नहीं होसकता है। ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि प्राकृतिक नियमों को पालन करने से वैद्यकविद्या अनावश्यक होजावेगी। वैद्यकविद्या की आवश्यकता उस समय हुई थी कि जब भारत में चारोंओर जितेन्द्रिय ऋषि, मुनि और देवता लोग निवास कररहे थे। हम अपने पूर्वजों की तरह प्रकृतिसेवक नहीं हैं और न सदियों तक होसकते हैं। भारतवासी ऋषियों ने प्रकृति का जैसा अनुभव किया था और उसके साथ जैसा गम्भीर सहयोग कियाथा, उसका निदर्शन केवल इसी बात से होसकता है कि उन्होंने प्रकृति की जड़ी बूटियों से ऐसे उपचार निर्मित किये हैं कि जिनपर सारा विश्व आश्चर्य्य प्रकट कररहा है। फलतः प्राकृतिक नियमों के कारण वैद्यकविद्या का आदर कम नहीं होसकता है। वैद्यक ग्रन्थों के आरम्भ में रोगियों के लिये जो उपदेश दिये गये हैं—प्राकृतिक चिकित्सा उन्हीं उपदेशों का समयानुकूल विश्लेषण मात्र है। इससे सिद्ध

होना है कि औषधिविज्ञान के अन्तर्गत उपदेशात्मक चिकित्सा-प्रणाली भी सुरक्षित है अतएव, उसका एक भाग अथवा एक अंश उसको नीचा दिखलाने में कभी समर्थ नहीं हो सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा से वैद्यक शास्त्र का कोई विरोध नहीं हैं। वैद्यक शास्त्र ही प्राकृतिक चिकित्सा का पिता है। स्वास्थ्य सम्बन्धी सारा ज्ञान, वैद्यक विद्या के अन्तर्गत है। क्या कोई प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली से प्रत्येक रोग दूर करसकता है? प्राकृतिक चिकित्सा से वही रोग दूर होते हैं कि जिनका कारण सामान्य होता है और जिन को जड़ मज़बूत नहीं होती है। इसमें संदेह नहीं है कि प्राकृतिक नियमों को पालन करने से बड़ी २ व्याधियाँ भयङ्कररूप धारण नहीं करसकतीं। इसके सिवाय प्रकृति-सेवक सहसा बीमार भी नहीं होता। जो अपराध नहीं करता उसे दण्ड भी नहीं मिलता। परन्तु, मान लीजिये कि कोई प्रकृतिसेवक, पैतृक सम्पत्ति द्वारा उपदंश का रोग प्राप्त करता है और उसको शीघ्रही दूर करना चाहताहै। क्या प्राकृतिक चिकित्सा ऐसा इलाज करसकती है? जिन साधारण रोगों को प्राकृतिक चिकित्सा दूर करती है-उनके लिये भी समय की अधिक आवश्यकता होती है। दवा के सूंघते ही सर का दर्द दूर हो सकता है, परन्तु, प्राकृतिक चिकित्सा के सहारे प्रातः और सायंकाल पुष्पवाटिका में घूमना होगा। यदि ऐसा अवकाश न हो तो क्या किया जाय? प्रत्येक मनुष्य प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा समय का अधिक भाग व्यय नहीं कर सकता। शरीर में जो रोग हो उसे चिकित्सा से दूर करना चाहिये और भविष्य में प्राकृतिक नियमों द्वारा नियमित आचार विचार से जीवन व्यतीत करना चाहिये। ऐसा करने से भविष्यत् में स्वास्थ्य अच्छा होगा और औषधियों के सहारे बारम्बार भूलें न की जावेंगी।

मेरी राय में प्राकृतिक चिकित्सा और वैद्यक विज्ञान एकही बात है। चिकित्सा प्रणाली में जो दोष हैं वे दूर करने चाहियें। यदि समय के कारण जड़ी और बूटियों का प्रभाव परिवर्तन हो रहा हो तो उसकी खोज होनी चाहिये। अपनी ही त्रुटियों पर ध्यान देना आवश्यक है। चिकित्सा शास्त्र की बुराई इस कारणभी नहीं कीजासकती है कि उसका निर्माण किसीप्रकार की स्वार्थबुद्धि

से नहीं हुआ है। ओषधिविज्ञान ने ऐसा भरोसा नहीं दिखाया है कि जिससे खाद्य और अखाद्य का–कर्म और कुकर्म का विचार न रक्खा जाय। ओषधिविज्ञान पापप्रचार में सहायता नहीं देता है। रोगी लोग स्वयम् अपने हाथ से अपने पैर में कुल्हाड़ी मारते हैं। और अज्ञान वश, ओषधियों के भरोसे पर, मनमाना शारीरिक अत्याचार किया करतेहैं। प्राकृतिक चिकित्सा का काम है कि वह लोगों की यह भ्रान्ति दूर करे और वैद्यक विद्या का विमल चंद्र और भी उज्ज्वलता से प्रकाशित करे।

मान लीजिये कि माघ मास के जाड़े के दिनों में, सन्ध्या के समय, एक नदी में एक नाव जारही है। नाव में से एक बच्चा सहसा जल में गिर पड़े तो उसको बचाने के लिये अवश्य ही कोई मनुष्य जल में कूदेगा और वह इस बात का ख्याल न करेगा कि उसे शीत लग जायगा, ज्वर हो आवेगा एवं पीड़ित हो उठेगा। यदि वह मनुष्य सचमुच बीमार हो जाय तो प्राकृतिक चिकित्सा उसका क्या उपकार कर सकेगी? इस प्रकार प्राप्त की गई व्याधि किस प्रकार दूर हो सकेगी–इस बात का उत्तर सिवाय वैद्यक विद्या के और कोई नहीं दे सकता है। परोपकार आदि मार्गों में व्याधियों को हटाने वाला हमारा वैद्यक शास्त्र सर्वथा पूजनीय है और एक आध बार भूल जाने वाले व्यक्ति के साथ दया का व्यवहार करने वाला हमारा ओषधि–विज्ञान सर्वथा कर्तव्य परायण है। वह पापियों को पाप लालसा में उत्साहित नहीं करना चाहता। परन्तु, शरणागत का त्यागना भी नहीं चाहता। ऐसी अवस्था में वैद्यक शास्त्र से श्रद्धा हटा लेने का कोई कारण दिखलाई नहीं पड़ता है।

समय २ पर अच्छी 'ओषधियों का सेवन' समय भी बचाता है और धन भी। किन्तु हम पाठकों से यह अवश्य निवेदन करेंगे कि ऐसे लोगों के फेर में न पड़ें जो वैद्यक विद्या की ओर से स्वार्थपरता का शिकार खेल रहे हैं। ऐसे लोगों के द्वारा ही हमारा यह विज्ञान लाञ्छित होरहा है–इसमें कुछ सन्देह नहीं।

रोगी मनुष्य को चाहिये कि वह ऐसे सद्वैद्य से रोग के सम्बन्ध में परामर्शले जो सचमुच वैद्य हो और जिसका अभ्यास प्रकाशित हो रहा हो।

प्राकृतिक चिकित्सा की यही इच्छा है कि भारतवासी आरोग्य लाभ करें और तन एवं मन को सुदृढ़ बनाते हुए सुख प्राप्त करें। तन और मन की स्वस्थता ही विद्या, धन और कर्म को स्थिर रख सकती है। पापाचरणों के लालच में पड़ने से कभी भलाई नहीं हो सकती है।

वैद्यक विद्या की सहायता भलाई में लेना चाहिये—बुराई में नहीं। वैद्यक विद्या निर्जीव नहीं है—वह अटकल पर स्थित नहीं है और उसमें कोई बुराई नहीं है। वैद्यक विद्या में इतनी सजीवता है कि वह एक घण्टे के लिये मृत्यु को हटा सकती है और रोगी के बन्द गले से चार शब्द निकलवा सकती है। जिन लोगों को वैद्यक विद्या की करामात देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा वे मेरे शब्दों को भली भाँति समझेंगे।

—०—

मस्तिष्कविश्राम और शक्तिवर्द्धन।

शिष्य—महाराज, क्या आप आज मस्तिष्क के विश्राम और मस्तिष्कशक्ति बढ़ाने के विषय में कुछ कहेंगे?

वैद्य—हाँ, कहता हूँ, सुनो। मस्तिष्क को विश्राम देना एक विषय है और उसकी शक्ति बढ़ाना दूसरा विषय है। पहले, प्रथम खण्ड पर मनन करो।

शिष्य-मस्तिष्कको विश्राम देने के लिये बिलकुल एकान्त स्थान की आवश्यकता होगी?

वैद्य—नहीं। संसार के कोलाहल की परवाह न करो। चित्त की एकाग्रता ही एकान्त स्थानहै। परन्तु जहाँ तक होसके एकान्त स्थान प्राप्त करना उचित है। यदि एकान्त न हो तो अपने कमरे को ही एकान्त समझ लेना चाहिये। मेरा मतलब यह है कि एकान्त स्थान के बिना अभ्यास न किया जाय, ऐसा न समझना चाहिये।

शिष्य—क्या मस्तिष्क-विश्रामके लिये किसी विशेष समय की आवश्यकता है?

वैद्य—नहीं। मस्तिष्क में शक्ति बढ़ाने के लिये कुछ एकान्त की भी आवश्यकता है और विशेष समय की भी आवश्यकता है, परन्तु विश्राम के लिये सभी स्थान और सभी समय उपयुक्त हैं।

शिष्य—विश्राम करने के विषय में क्या क्या कर्त्तव्य है।

वैद्य—पहली क्रिया-"नेत्रों द्वारा किसी चित्र को साधारण भाव से देखना"। दूसरी क्रिया—"नेत्रों को बंद करके कानों द्वारा जो सुनाई दे उसे साधारण रीति से सुनना"। तीसरी क्रिया-"नेत्र और कानों को बंद करके अपने ध्यान को नासिका के अग्रभाग पर लगाना"। चौथी क्रिया-"नेत्र और कानों को बंदकर अपना चित्त दोनों भौओं के मध्य में स्थिर करना"-और पाँचवीं क्रिया—" नाक के दोनों स्वरों को बंदकर देना और सुषुम्णा में विश्राम करना"-चित्तविश्राम के लिये येही पाँच साधन हैं।

शिष्य—इनमें चाहे जौनसा साधन करना चाहिए?

वैद्य—नहीं। क्रमशः सबका अभ्यास करना पड़ता है। अन्तिम अवस्था में अर्थात् पाँचवीं साधना में पूर्ण विश्राम मिलता है।

शिष्य—कृपाकर इन पाँचों अभ्यासोंकी व्याख्या करदीजियेगा। नेत्रों द्वारा किसी चित्र को साधारण भाव से देखना, इसका क्या अर्थ है?

वैद्य—अपने कमरे में जहाँ कोई दूसरा व्यक्ति न हो, अपनी जगह पर चुपचाप बैठजाओ। किसी चित्र को जो कि तुम्हें अधिक प्रिय हो, अपनी निगाह के सामने लटका लो और उसकी तरफ एक घण्टे तक ताकते रहो। परन्तु ध्यान रहे कि चित्र की समालोचना मत करना और न किसी बात पर विचार करना। चित्त को स्थिर करने के लिये कुछ देखने की आवश्यकता समझकर, चित्र की व्यवस्था की गई है। चित्र को साधारण दृष्टि से देखते रहो। मस्तिष्क से कुछ काम मत लो। यह पहली साधना है।

शिष्य—"नेत्रों को बन्द करके कानों द्वारा साधारण रीति से जो कुछ सुनाई दे उसे सुनना"-यह दूसरा अभ्यास है।

वैद्य—चित्र देखने का अभ्यास १५ दिन तक एक घण्टे तक करना चाहिये। फिर १५ दिन तक कानों का अभ्यास करना चाहिये। अपने कमरे में चुपचाप नेत्र बन्द करके बैठजाओ और जो कुछ सुनाई दे उसी पर चित्त लगाओ। क्या सुनाई दे रहा है,

उसका क्या अर्थ है, इसपर ध्यान देने और विचार करने की आवश्यकता नहीं है। चित्त को किसी न किसी काम की आवश्यकता है, इस कारण उसको कान की क्रिया पर लगाना चाहिये।

शिष्य—जब चित्त को कहीं भटकाना ही है तो कान पर क्यों भटकाया जाय। पहली क्रियानुसार चित्र पर ही क्यों न अभ्यास किया जाय? मेरा यह पूछना है कि इन दोनों क्रियाओं में अन्तर क्या है?

वैद्य—इन दोनों अभ्यासों में बहुत अन्तर है और इन दोनों में एक गुप्त रहस्यहै। अच्छा बतलाओ कि किनर इन्द्रियों द्वारा चित्त को भटकाना पड़ता है?

शिष्य—नेत्रों और कानों के द्वारा।

वैद्य—ठीक है। पहले अभ्यासमें कानों की क्रिया बंद रही और नेत्रों द्वारा चित्त की स्थिरता का अभ्यास किया गया। चित्त को थोड़ासा विश्राम भी मिला और असली काम यह हुआ कि दृष्टि स्थिर हुई। दूसरे अभ्यास में नेत्र बंद किये गये और चित्त की वृत्ति कानों की क्रिया पर स्थिरहुई। किञ्चित् चित्तको विश्राम भी मिला और असली काम यह हुआ कि कानों का व्यापार भलीभाँति मालूम हो गया। जब तक नेत्रों और कानों की क्रिया भलीभाँति विदित न होगी तब तक दोनों का काम रोक देना सरल नहीं है।

शिष्य—कानों को वश में करने के लिये १५ दिन तक कानों के द्वार अच्छी तरह खुले रखने चाहियें, यह बात समझमें नहीं आई?

वैद्य-अगर कोई आदमी नीरव अर्थात् चुपचाप रहना चाहे तो उसको क्या करना चाहिये?

शिष्य—किसी से बोले-चाले नहीं।

वैद्य—नहीं। प्राकृतिक नियमों को बिना मनन किये किसी बात का उत्तर नहीं देना चाहिये। यदि कोई आदमी सहसा चुपचाप रहेगा तो उसको प्राकृतिक वाचालशक्ति अवश्य हैरान करेगी और किसी न किसी समय उसके प्रण को अवश्य भङ्ग करदेगी।

शिष्य—तो क्या करना चाहिये?

वैद्य—जो आदमी नीरव रहना चाहे उसे चाहिये कि वह दो सप्ताह तक रात दिन चिल्लाया करे। चाहे मन हो या न हो बराबर बोलता रहे। नीरव होने की यही सच्ची क्रिया है। ऐसा करने से

प्राकृतिक वाचालशक्ति थकित होजावेगी और भाषण करने से घृणा उत्पन्न होजावेगी । जो आदमी तबिअत से न बोलना चाहेगा वही नीरव रहसकेगा । इसके विपरीत जो आदमी साधारण इच्छानुसार नीरव रहना चाहेगा, वह कुछ दिन बाद अपनी ही इच्छा से बोलने लगेगा । अतएव. कानों को बन्द करने के लिये यह आवश्यक है कि उनसे खूब काम लिया जाय और उनको व्यर्थ सुनने से विरक्त करदिया जाय । समझे या नहीं ?

शिष्य—खूब समझ गया ।

वैद्य—क्या समझे ?

शिष्य—यहकि मनुष्यको व्यर्थ भटकाने वाले कान और नेत्र हैं । दोनों को बन्द कर लेने से शान्ति का काम आरम्भ होसकता है । परन्तु,कान तबतक स्थिर न होंगे कि जब तक उनको यह विश्वास न हो जायगा कि संसार अपने विविध प्रकार के कार्यों में लगा हुआ है और उसी से एक विचित्र और भयानक शब्द पैदा होरहा है, फलतः व्यर्थ इधर उधर की आवाज़ों और बातों को सुनने की आवश्यकता नहीं । इसी तरह से नेत्रों को समझाना होगा कि सामने ऊपर की ओर आकाश है जिसमें सूर्य्य भगवान् विराजमान हैं और नीचे पृथ्वी माता है । इन दोनों के मध्य में वायु देव विचर रहे हैं । गली की तरफ निगाह अधिक जाती है । लड़कियाँ कन्यापाठशाला जारहीं हैं और कोई कोई सुन्दर स्त्री किसी पड़ोसिन के घर जारही है, इन बातों के सिवाय और कोई विशेष घटना नहीं हो रही है । लीजिये, कान भी स्थिर हो गये और नेत्र भी । परन्तु, कान, आँख बंद करलेने से अगर केवल अन्धकार ही दिखाई दे तो कृपया उनको अपना २ काम ही करने दीजिये । हाँ, यदि कोई विचित्र प्रकाश दिखलाई दे और कोई अमूल्य रत्न हाथ लगे कि जिससे संसार का कुछ उपकार होसके तो वैसा करने दीजियेगा ।

वैद्य—(हँसकर) शिष्य हो तो ऐसा हो । कैसा ठोक पीठ कर सौदा करता है । अच्छा तीसरी क्रिया क्या है ?

शिष्य—नाक और आँखों को बंद करके नासिका के अग्र भाग पर ध्यान लगाना । परन्तु, महाराज ! यह बतला दीजिये कि इस विचित्र मार्ग द्वारा किस से भेंट हो जायगी ?

वैद्य—वही मस्तिष्क का विश्राम और उसकी शक्तिवर्द्धन ?

शिष्य—यह तो कोई ऐसा लाभ नहीं कि जिसपर लाग इतना प्रयत्न करेंगे ?

वैद्य-मैं लाभ की बात खोल कर नहीं कहना चाहता था। सोचा था कि तुम को खुद ही दिखला दूँगा। कहने से लोग बकवादी कहेंगे। परन्तु, तुम विश्वास नहीं करते हो।

शिष्य-मैं तो विश्वास करता हूँ। आप के कहने से मैं रामगङ्गा में कूद सकता हूँ। परन्तु, लोगों को विश्वास न होगा। गान्धी जी ने कहा कि स्वदेशी व्रत से, एकता से, परमात्मा पर विश्वास करने से और पवित्र बनने से स्वराज्य मिल जायगा, तब लोगों ने वेसा करना आरम्भ किया। यदि वे केवल यही कहते कि एकता करो, पवित्र बनो और स्वदेशी बनो, फिर आगे चल कर मज़ा मालूम होगा तो बात एक होने पर भी बहुत कम लाग ध्यान देते। इसी प्रकार स्वराज्य की तरह आप भी किसी रत्न विशेष का नाम लीजिये तो फिर आप की बात का अधिक प्रभाव पड़ेगा।

वैद्य-तुम्हारा कहना यथार्थ है। साल दो साल के बाद शायद तुम्हीं हमारे गुरु बन बैठोगे। मस्तिष्क की शान्ति या विश्राम कोरा विश्राम ही नहीं है, वह एक गुप्तस्थान का गुप्तमार्ग भी है। पूर्णशान्ति तो मनुष्य को कभी मिल ही नहीं सकती। पूर्णशान्ति का नाम मोक्ष है। हाँ, विश्राम से शक्ति क्षीण न होकर बढ़ती है, ज्ञान का प्रकाश होकर मोक्ष का मार्ग साफ़ हो जाता है।

शिष्य-राम राम! इस रत्नसे बढ़कर और कौनसा रत्न है! क्या प्राकृतिक चिकित्सा का यही भेद है कि (१) शारीरिक पूर्ण आरोग्यता (२) मानसिक विकाश और जीवन की सफलता (३) मोक्ष की प्राप्ति ?

वैद्य-तुम ठीक समझे। प्राकृतिक चिकित्सा का यही आधार है। एक नये मार्ग से परमतत्त्व की खोज करना ही हमारा उद्देश्य है, कुछ व्यर्थ की घिस घिस नहीं।

शिष्य-ठीक है। मुझे आप की बातों से पूर्ण तृप्ति हो गई। अब यह बतलाइये कि आँख और कान बन्द करके नाक कैसे देखी जायगी ?

वैद्य-ध्यान से, कल्पना द्वारा नाक के आगे का हिस्सा देखो। उस से चित्त स्थिर होगा। मार्ग चलते समय इधर उधर न देख कर नासिका के अग्रभाग को देखना चाहिये। इससे ध्यान में एकाग्रता आवेगी, देखने वाले सभ्य कहेंगे और विश्राम करते समय नासिका की कल्पना करना भी कठिन न होगा।

शिष्य-नासिका का अग्रभाग देखने से मटरगश्त करने वाले मन को एक काम भी मिल जायगा। क्योंकि इस विहारी जीव को रोक रखना बड़ा कठिन काम है।

वैद्य-इस के सिवाय एक बात और भी है। अभ्यास करतेर किसी दिन तुम को नासिका का अग्रभाग दीखने लगेगा।

शिष्य—दीखने लगेगा! नेत्र बन्द होने पर भी दीखने लगेगा! यह कैसी आश्चर्यजनक बात है।

वैद्य-तुमको जानना चाहिये कि मनुष्य के यह नेत्र बाहरी नेत्र हैं। जब भीतरी नेत्र खुल जाते हैं तो सब कुछ दिखलाई देने लगता है। अभी जो दिखलाई देता है वह सत्य-भ्रम और मिथ्या का मिश्र योग है। भीतरी नेत्रों के खुलने से जिस को कि दिव्यदृष्टि भी कहते हैं, केवल सत्य दिखलाई पड़ेगा। बाहरी नेत्र बन्द कर लेने पर भी जो नासिका का अग्रभाग दिखलाई देगा वह दिव्यदृष्टि द्वारा दिखलाई पड़ेगा। साथ ही यह बात भी स्मरण रक्खो कि वह नासिका का अग्रभाग लाल वर्ण का होगा?

शिष्य—लाल वर्ण का? यदि कोई मनुष्य काला हो तो उस की नाक भी काली होगी। उसको लाल नाक क्यों दिखलाई देगी।

वैद्य—वह नाक भी बाहरी नाक न होगी। भीतरी होगी।

शिष्य क्या नाक भी दो होती हैं?

वैद्य-तुम नहीं जानते हो, कि मनुष्य के शरीर में एक सूक्ष्म शरीर भी होता है। उस में सभी अङ्ग होते हैं। वह सूक्ष्म शरीर हमारे और तुम्हारे सारे शरीर में व्याप्त है। सब मानवों का सूक्ष्म शरीर श्वेत वर्ण का होता है। परन्तु प्रथम लाल दिखलाई देता है। कुछ दिनों बाद श्वेत दिखलाई देने लगता है। जब सारा सूक्ष्म शरीर दिखलाई देने लगता है तो दिव्यदृष्टि द्वारा सूक्ष्म शरीर का हृदय देखना होता है और उस हृदय में ही आत्मा का निवास है।

शिष्य-आप की बातों से मेरा आश्चर्य बढ़ता जाता है।

वैद्य-इन बातों को भूल जाने से ही भारत की यह दीनावस्था होगईहै। भारतकी श्रेष्ठता केवल आध्यात्मिक ज्ञानमें है। हमलोग उस ज्ञान को भूले हुए हैं और आत्मा२ चिल्लाते हैं। क्या ये असहयोगी भाई जो आत्मा २ कहा करते हैं, आत्मा को जानते भी हैं? कभी नहीं। अँग्रेज़ों से शारीरिक शक्ति द्वारा विजय पाना सम्भव नहीं। तुम लोग आत्मा की खोज करो। इसी कर्म से संसार तुम को गुरु मानेगा और अपना मस्तक तुम्हारे चरणों पर झुका देगा, जहाँ आत्मा को जाना, फिर कोई बात शेष नहीं रहती। इस के बाद सुख और शान्ति है, विद्या और लक्ष्मी है एवं स्वास्थ्य और शतायु है।

शिष्य—तो क्या आप मुझे योग सिखला रहे हैं?

वैद्य-नहीं। योग बहुत कठिन है। वह निवृत्ति का मार्ग है। हम प्रवृति मार्ग बतला रहे हैं। योगसे मोक्ष है किन्तु हमारे मार्ग से कि जो योग न होकर भी योग की सामान्य परिभाषा सरीखा है और जिसे स्त्री पुरुष एवं बच्चे भी बिना किसी विशेष नियम के कर सकते हैं। सामाजिक कल्याण का नवीन मार्ग है। यह योग नहीं वरन् मानवांचित शुद्ध पवित्र और प्रथम कक्षा का भोग है। योग दूसरी ही वस्तु है।

शिष्य-ठीक है। अब चौथी क्रिया अर्थात् नेत्र व कान बंद कर के भ्रुकुटियों के मध्य में ध्यान लगाना बतलाइये।

वैद्य-जब नासिका दीखने लगे तब चित्त को दोनों भ्रुकुटियों के मध्य में लेजाओ। इस बात की कोशिश मत करो कि नासिका का रूप श्वेत होजाय। श्वेत रूप का दर्शन करना योगियों का काम हैं। इस स्थान पर तुम अनेकों प्रश्न करोगे; परन्तु उन सब की व्याख्या हम अपने "सूक्ष्म शरीर" नामक व्याख्यान में करेंगे। जब लाल नासिका दीखने लगे तब ध्यानको भ्रुकुटियों के मध्य लेजाओ, अभ्यास करते २ किसी दिन दिखलाई पड़ेगा कि दोनों भौओं के मध्य में 'ॐ' शब्द लिखा हुआ है, उस शब्द को बड़ी श्रद्धा से देखा करो।

शिष्य-ॐ शब्द अपने आप आजायगा?

वैद्य-नहीं। वह सदैव से वहां पर है। देखनेसे दिखलाई देगा। मानव शरीर, विश्व के विराट् स्वरूप का नमूना है। स्वामी

शंकराचार्य्यजी ने अपने "शारीरिकभाष्य" नामक प्रसिद्ध और परम सत्य पुस्तक में लिखा है कि जितनी वस्तुयें संसार में हैं वे सब हमारे शरीर के भीतर मौजूद हैं ।

शिष्य-इस पुनीत शब्द का ध्यान करना चाहिये तभी तो उसके दर्शन होवें ?

वैद्य-हाँ, जब तक शब्दरूप ब्रह्म का दर्शन न हो तबतक ध्यान करते समय मन के द्वारा इस शब्द का उच्चारण करना चाहिये ।

शिष्य-ॐ का दर्शन होना बड़ा भारी सौभाग्य है ?

वैद्य-हाँ । यही मस्तिष्क का पूर्ण विश्राम है ।

शिष्य-धन्य हैं आप । अब पाँचवीं क्रिया समझाइये ।

वैद्य-वह क्रिया योगियों के लिये है, तुम्हारे लिये नहीं । उस क्रिया के करने से अपने आप संसार से वैराग्य हो जायगा, इस लिये अभी नहीं बतला सकते । इन चारों क्रियाओं द्वारा अपनी उन्नति करो । इन क्रियाओंसे शान्ति पाओगे । सरस्वती बढ़ेगी और ज्ञानका उदय होगा । आत्मासे उपदेश प्राप्त किया करोगे और यदि आत्मआदेश से चलोगे तो संसार में कल्याण होगा ।

एक प्रकृतिसेवक ।

प्रकृत-पेय ।

प्रकृत-पेय केवल दो जग में, प्रथम दूध पुन शीतल नीर ।
किन्तु, आप पीते हैं कितने, बने हुए पानी या क्षीर ?
सभी बनावट पेय द्रव्य में, रहता है पानी का भाग ।
मिले हुए जो अन्य पदारथ, उनको दीजे बिलकुल त्याग ॥
यदि वे पीने योग्य ठीक थे, यदि करते वे स्वास्थ्य सुधार ।
तो मंगलमय प्रकृति मात खुद, करती उनका विपुल प्रचार ॥
सोडावाटर, बरफ लेमनेट, भाँति भाँति की बनी शराब ।
छोड़ो, यह सब जीवननाशक, छोड़ो, यह सब वस्तु खराब !
दूध और पानी को तजकर, अन्य नहीं पीने के योग्य ।
चाहो रोग पिओ इन सबको, छोड़ो, यदि चाहो आरोग्य !
वही साधु है शुद्ध हृदय है, ताज़ा जल पीता जो प्राज्ञ ।
वही आत्मिक शक्ति बढ़ाकर, वही प्राप्त करसकता ज्ञान ॥

नयन ।

आविष्कार ।

राजमहल में बड़ी विपत्ति उपस्थित है। मामला क्या है? आज समस्त नगर में कोलाहल मचरहा है। कुछ दिन हुए राज-महिषी एक पुत्ररत्न को उत्पन्न करके उसी दिन स्वर्गलोक को सिधार गई हैं। नवजात शिशु अभी जीवित है, किन्तु उसकी रक्षा होना भी असम्भव जान पड़ता है। इतने बड़े साम्राज्य के चक्रवर्त्ती राजा का प्रथम और एकमात्र पुत्र, युवराज-जो भविष्य का सम्राट् है-उसकी प्राणरक्षा के लिये प्रयत्न करने में क्या किसी प्रकार की त्रुटि हो सकती है। राजा, मन्त्री, बड़े २ विद्वान् वैद्य, प्रवीण ज्योतिषी, अनुभवी और विचक्षण पुरुष सब इसी चिन्ता में मग्न हैं कि किस प्रकार राजकुमार के प्राणों की रक्षा हो। राजा की गोशाला में दुग्धवती असंख्य गौएं हैं; किन्तु गौ का दूध बालक को सहन नहीं होता। भेड़ी का दूध बकरी का दूध आदि सबकी परीक्षा करके देखलिया गया, किसी से कुछ भी लाभ न हुआ। माता के दुग्ध से वञ्चित बालक दिन प्रतिदिन सूखने लगा।

वृद्धा राजमाता विद्यमान हैं। बहू के सूतिकागार में पुत्र उत्पन्न होते ही राजमाता ने श्वशुर, स्वामी और पुत्र के वंशप्रवर्त्तक प्रियपौत्र को अपनी गोदमें उठा लिया। तबसे शिशु दादीकी गोदमें ही रहता है। राजमाता में स्नेह की मात्रा कम नहीं है; किन्तु उनके शुष्क स्तनों में दूध नहीं है। केवल स्नेह से ही उस नवजात शिशु की प्राणरक्षा नहीं हो सकती। सारे राज्य में इस शोक के कारण सन्नाटा सा छाया हुआ है। सभी लोग चिन्ता से व्यग्र हैं।

राजाने एक लाख रुपया इनाम देने की घोषणा की है कि जो कोई राजकुमार को बचा सकेगा, उसको एक लाख रुपया इनाम मिलेगा। इसके अतिरिक्त वह और जो कुछ पुरस्कार चाहेगा, वह भी उसको दिया जायगा। पुरस्कार के लोभ से बहुत से लोग इस के लिए प्रयत्न कररहे हैं, किन्तु किसी से कुछ उपकार होता दिखाई नहीं देता। राजकुमार जैसे दिन दिन क्षीण होता जाता था, वैसे ही होतारहा। अन्तमें एक दिन एक [illegible] ने राजद्वारमें आकर निवेदन किया कि मैं राजकुमार को बचा सकूँगी। स्त्री का वेशभूषा मलिन और वह [illegible] की मूर्ति थी। उसकी गोदमें एक

सप्ताह का उत्पन्न हुआ एक बालक था। राजाने अपने मन्त्री और राजवैद्यों के साथ परामर्श करके स्थिर किया कि स्त्री स्वस्थ्यप्रसूता है, इसलिये उसके स्तनों के दूध से राजकुमार की प्राणरक्षा हो सकती है। राजा की आज्ञा से स्त्री को अन्तःपुर में राजमाता के समीप पहुँचा दियागया। उसने एक फटे हुए वस्त्र के ऊपर अपनी सन्तान को भूमि में शयन कराकर राजमाता की गोद में से राजकुमार को अपनी गोद में लेलिया और एक स्तन उसके मुख के पास लगा दिया। माता के दूध से वञ्चित राजकुमार स्तन को पाकर बड़े आग्रह के साथ उसको पीने लगा। किन्तु एक दो बार पीकर ही उसने दूध को छोड़ दिया और चिल्लाकर रोने लगा। राजमाताने घबड़ाकर पौत्र को गोद में उठालिया। पहरेदार उस स्त्री को बाँधकर कारागार में लेगये। अनुसन्धान से मालूम हुआ कि-स्त्री का पति मनुष्यहत्या करने के अपराध में दोषी ठहराया जाकर दो तीन दिन पहले फाँसी की सज़ा पाचुका है। स्त्री की धारणा थी कि-उसका स्वामी निर्दोष था-अन्याय से उस बिचारे को प्राणदण्ड दिया गया है, इस लिए उसने प्रतिहिंसा करने की इच्छा से राजकुमार के प्राणहरण का सुअवसर पाने के लिए प्रार्थना की थी। वास्तव में राजकुमार की प्राणरक्षा करना उसका उद्देश्य नहीं था। केवल प्रारब्ध अनुकूल होने से राजकुमार के प्राण बचगये। उद्योगहीन होकर राजा ने पुरस्कार की मात्रा और बढ़ा दी। किन्तु पूर्वोक्त स्त्री की दशा देखकर सहसा कोई अग्रसर नहीं होता था। राजकुमार की क्षीणता बराबर बढ़ती जाती थी। अन्त में अधिक धन के लोभ से और एक स्त्री ने अपने पतिके साथ आकर राजद्वार में प्रार्थना की कि वह राजकुमार का पालन पोषण करेगी। राजा की आज्ञा से मन्त्री ने स्त्री और उस के स्वामी के सम्बन्ध में जाँच करके जान लिया कि पूर्वोक्त स्त्री की समान इस स्त्री के मन में किसी प्रकार की हिंसा का भाव नहीं है। राजा ने उसको अन्तःपुर में भेजदिया और यह सावधान करदिया कि यदि कुमार को किसी प्रकार की हानि हुई तो उसका परिणाम—प्राणदण्ड होगा। स्त्री ने इस बात को स्वीकार करके राजकुमार के पालन पोषण का भार अपने ऊपर लेलिया।

इस स्त्री का दुग्ध पान करके राजकुमार की क्षीणता की वृद्धि रुकगई; किन्तु एक सप्ताह में भी उस के पुष्ट होने का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया। स्त्री के एक महीने का बालक था। वह अपने बालक को जैसे अच्छी तरह रखती थी वैसे राजकुमार को नहीं रखती थी। वह तो केवल धनके लालच से आई थी। अपने गर्भ से उत्पन्न हुई सन्तान को छोड़कर और किसी की भी संतान पर उस के हृदय में लेशमात्र भी स्नेह नहीं था। एक सप्ताह तक भी जब कुछ उपकार होते नहीं देखा गया तब राजा ने विरक्त हो कर इस दम्पती को विदा करदिया।

इस के पश्चात् उस के पुरस्कार का परिमाण पाँच लाख तक करदिया। किन्तु साथ साथमें यह भी घोषणा करदी कि जो कोई राजकुमार को बचाकर हृष्ट-पुष्ट करसके वह पाँच लाख रुपये पावेगा। उस की इच्छा के अनुसार अन्यान्य पुरस्कार भी उसे दिये जायंगे; किन्तु कुछ उपकार न दिखासकने पर उस को प्राणदण्ड मिलेगा। राजा के इस भीषण आदेश से सारे राज्य में सनसनी फैल गयी। इधर राजकुमार की अवस्था भी शोचनीय हो उठी। किसी प्रकार उसकी रक्षा करना समझ में नहीं आता।

राजधानीके एक प्रान्तमें एक कुटी थी। उसमें एक दरिद्र दम्पती रहते थे। दो दिन हुए कि इन के एक पुत्र उत्पन्न हुआ था; किन्तु ईश्वर की इच्छा से जन्म के दूसरे दिन ही उस बालक की मृत्यु हो गई। अत्यन्त दरिद्रता होने पर भी नवप्रसूता को सन्तान का प्रेम बहुत था। हा! उसके कितने आदरका खज़ाना, दिनका प्रकाश, उस के नेत्रों का तारा दो दिन भी न जी सका। प्रसूता का शोक अनिवार्य होगया।

स्वामी का स्त्री से अगाध प्रेम था। स्वामी पुत्रहीना माता को सान्त्वना देता था। एक दिन के पुत्र पर इतना स्नेह क्यों? तुम और हम जीवित रहेंगे तो और कितने पुत्र होजायेंगे। किन्तु, माता के मन में शान्ति नहीं। वह बोली-मेरे पुत्र को तुम अभी लाकर दो। जैसे होसके अभी लावो। नहीं तो मैं किसी प्रकार जीवित नहीं रहूँगी।

राजा की घोषणा एक दिन उस दरिद्री की कुटी में भी पहुँची, तब उसके स्वामी ने विचारा कि मातृहीन राजपुत्र यदि इस को मिल जाय वह उसको स्त्री की गोदी में देकर इस के पुत्र शो

शोक को बहुत कुछ शान्त कर सकूँगा । किन्तु राजा की जो कठोर प्रतिज्ञा है उससे भरोसा नहीं होता । स्त्री ने विचार किया कि राजा का पुत्र होने पर भी वह अभागा है । माता के दुग्ध पान के बिना उस का प्राण बचना कठिन है । मैं यदि उस पुत्र को मनुष्य बनाने के लिये पाऊँ तो इसको अपनी छाती चीरकर अमृतपान कराकर बचाने में समर्थ हो सकती हूँ । किन्तु वह तो राजपुत्र है और मैं एक दरिद्रा भिखारिणी हूँ । राजपुत्र की शोचनीय अवस्था की बात मन में आते ही इस स्त्री के हृदय में पुत्र का उद्रेक हो जाता था । उस के दोनों स्तनों में से स्वयं ही दूध की धारा झरने लगती थी ।

अन्त में वह अपने मन के भाव को गुप्त न रखसकी, पति से बोली यह देखो ! अपने पुत्र की और राजा के मातृहीन पुत्र की याद मन में आते ही मेरे स्तनों में से दूध टपकने लगता है । इस लिए एकबार राजदरबार में जाओ, राजा से कहो-मैं तुम्हारे पुत्र को पालूँगा। मुझे पैसा कौड़ी कुछ नहीं चाहिये, केवल राजा के पुत्र को मनुष्य बना सकने से ही मैं बचजाऊँगी । किन्तु उस के स्वामी को इन बातोंसे कुछ भी भरोसा नहीं होता ।वह सोचता है कि हम ग़रीब आदमी हैं; प्रथम तो राजद्वार के प्रहरी लोग ही हमें ड्योढ़ी में घुसने नहीं देंगे । राजा के साथ साक्षात् करने की आशा तो उसको आकाशपुष्प की समान मालूम होती थी । पर स्त्री उस बातको कुछभी सुनना नहीं चाहती । वह बोली राजा जब अप्रसन्नहो कर दण्ड देगा तब एकबार उद्योगकर देखने में भी क्या हानि है । स्वामी स्त्री को शान्त करने के लिए बोला—किंतु यदि हम उसका पालन न करसके तो सब को फाँसी होगी । स्त्री ने कहा नहीं । निश्चय ही पाल सकेंगे । और यदि नहीं पालसके तो फाँसी का भय क्या है जैसे हमारा पुत्र हम को छोड़कर चला गया वैसे ही इस संसार में क्षण मात्र भी रहने की मेरी इच्छा नहीं है । अन्त में विवश होकर स्वामी को राजा के समीप जाना ही पड़ा ।

राजा के समीप जब वह किसी प्रकार पहुँच गया तब राजा ने उसको कृतकार्यता का पुरस्कार और विफलता के दण्ड की बात अच्छी तरह समझा दी । इसको सुनकर वह बोला—महाराज ! मैं अत्यन्त दरिद्री हूँ । मैं धन के लालच से आप के पास नहीं आया हूँ । मेरी स्त्री संतान के शोक से पगली की

समान होगई है। वह राजकुमार को अपने पुत्र की समान रख कर केवल लालन पालन करना चाहती है। मुझ को किसी पुरस्कार की इच्छा नहीं है। जो वह न पालसकी तो हम दोनों दण्ड स्वीकार करने को प्रस्तुत हैं। इस के लिए हम को केवल एक सप्ताह का समय देना चाहिये। राजा ने तब उस की स्त्रीको लाने के लिए उस को आज्ञा दी।

दरिद्रा, पुत्रहीना स्त्री दूसरे के पुत्र को गोद में लेकर फिर पुत्रवती हो गई। उस का पुत्रशोक शान्त हो गया। उस के हृदय का पुत्र वात्सल्य (प्रेम) अमृतधारा में परिणत होकर उस के स्तनों में दुग्ध की धारा रूपसे स्रावित होकर राजकुमार के क्षीण शरीर को पुष्ट करने लगा।

देखते २ ही एक सप्ताह बीत गया। इस एक सप्ताह के भीतर राजकुमार की आकृति में यथेष्टरूप से परिवर्त्तन होगया। पहले जिसके शरीर पर केवल अस्थिपञ्जरके ऊपर एक चर्म्मका आवरण-मात्र था अब प्रेमातुरा माता के स्तनपान करने से एक सप्ताह में ही उस शरीर पर रक्त-मांस-का संचार होगया। राजाने प्रसन्न हो कर इस स्त्री को ही अपनी सन्तान के लालन-पालन का भार पूर्णरूपसे सौंप दिया। राजमाता भी सन्तुष्ट और निश्चिन्त होगई। दूसरे सप्ताह में राजकुमार के शरीर पर प्राकृतिक लावण्यता क्रम से फिर आने लगी। एक महीने में उसका शरीर यथेष्टरूप से हृष्ट-पुष्ट हो गया।

राजा, मन्त्री, वैद्यराज आदि परामर्श करने लगे। तब उन्हों ने यह जाना कि मातृहीन बालक का पालन पोषण करना कौन चाह-ता है? संसार में यह एक अपूर्व आविष्कार है। इस आविष्कार के फल से कितने बालक अकाल मृत्यु के पंजे से मुक्त होते हैं, इस की गणना नहीं कीजासकती।

प्रसवके पश्चात् माता की मृत्यु होजाने पर या रोगिणी माता प्रसूतसन्तान को दुग्धपान कराने में समर्थ न हो तो धाय (Wet Nurse) की सहायता लेनी चाहिए। किन्तु केवल दुग्धवती धाय के होने से ही काम नहीं चलता-धायके हृदय में दूसरे की सन्तान की ओर स्नेह का सञ्चार होना चाहिए। यथार्थ में यह स्नेह की धारा ही बालक के लिये अमृत की समान कार्य्य करती है। सौ-भाग्य का विषय यह है कि माताएँ ईश्वरेच्छा से अपनी सन्तान के

प्रति जैसी स्नेहशीला होती हैं, दूसरे की सन्तान के लिये भी अधिकांश मातायें उसी प्रकार स्नेहवती होती देखी गई हैं। मातृत्वप्रेम का आस्वाद जिसने पालिया है, उसके लिए सब बालक एक समान स्नेह के पात्र हैं। इसी कारण हमारे देश के लोकाचार के अनुसार स्तनपान कराने वाली धाय अत्यन्त नीच जातिकी और दरिद्रा होने पर भी गर्भ धारण करने वाली माता की समान आदर पाती हैं।+ गोवर्द्धन शर्मा

मांस, मांसाहार और स्वास्थ्य।

(लेखक-श्रीगोपीनाथ गुप्त वैद्य।)

मांसके विषय में बहुत समय से विवाद चला आता है और शायद इस विवाद का कभी अन्त न होगा। एक समूह तो ऐसा है कि जो मांसको वानस्पतिक आहार से श्रेष्ठ बतलाता है और दूसरा समूह उसे अप्राकृतिक और निकृष्ट आहार बतलाकर उसके आनेकः निषेध करता है। निषेध करने वाले लोगों में धार्मिक नेता और स्वास्थ्य-विज्ञान-शास्त्री दोनों ही प्रकार के मनुष्य हैं। इस निबन्ध में इस विषय पर केवल स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से ही विचार करना उचित प्रतीत होता है।

यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि मांसमें मांसोत्पादक उपादानका भाग अधिक होता है, इस लिए उससे शरीर में मांस-वृद्धि अधिक हो सकती है, परन्तु हमारे नित्यके भोजन में मांसोत्पादक उपादानकी अपेक्षा कर्बोजो की अधिक आवश्यकता होती है, जो मांस अथवा अंडे इत्यादिमें प्रायः बहुत ही कम पाये जाते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि मांस सर्वाङ्गपूर्ण आहार नहीं है। शरीररूपी इंजन से काम लेनेके लिये जिस स्टीम या शक्ति की आवश्यकता होती है वह मांससे प्राप्त नहीं होसकती। वह शक्ति तो कर्बोजोसे ही प्राप्त होसकती है। हाँ, मांसभक्षण से शरीर भाग-गाड़ी की भाँति भारी अवश्य हो सकता है। इसके विपरीत वानस्पतिक आहारमें कर्बोज पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इस के साथ ही उसमें प्रोटीन और स्नेह इत्यादि उपादान भी इतनी मात्रा

+स्वास्थ्यसमाचार के एक लेख के आधार पर।

में पाये जाते हैं कि जिससे हमारा काम भलीभाँति चलसकता है। कुछ पदार्थों में तो मांससे भी अधिक प्रोटीड पाये जाते हैं। अतएव वानस्पतिक आहार सर्वांङ्ग पूर्ण और मांस अपूर्ण आहार है। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता, और यही कारण है कि मांसाहारियों को मांसके साथ २ वानस्पतिक आहार भी करना पड़ता है। शायद ऐसा एक भी मनुष्य न होगा कि जो केवल मांसपर जीवन व्यतीत करता हो, परन्तु केवल वानस्पतिक पदार्थों पर निर्वाह करनेवाले करोड़ों मनुष्य हैं। भारत का एक बड़ा भाग निरामिषभोजी ही है। बल, पुष्टि इत्यादि के लिये मांसभक्षी बनना एक बड़ी भारी भूल है। शक्ति उत्पन्न करने वाला पदार्थ तो मांसमें है ही नहीं। रही शरीरपुष्टि की बात सो बादाम, पिस्ता, अखरोट इत्यादि कितने ही शुष्क फल मांससे अधिक पौष्टिक होते हैं।

केवल यही नहीं कि मांसभक्षण अनावश्यक ही है, प्रत्युत वह हानिकारक भी है। जो खाद्य प्राकृतिक नहीं है (प्रकृतिने जो चीज़ हमारे खाने के लिये नहीं बनाई) उसे खाकर हम कभी सुखी और स्वस्थ नहीं रहसकते। प्रकृतिके नियमोंका उल्लङ्घन करना एक महान् पाप है। उसका दंड और कठोर दंड अवश्य ही भोगना पड़ता है।

मांसभक्षणको अप्राकृतिक सिद्ध करने के लिये बहुत से प्रमाण दिये जासकते हैं। सबसे पहले मानवशरीर की रचना पर ध्यान देनेसे ही मांसभक्षण अप्राकृतिक सिद्ध होता है। मनुष्य के पाचक यन्त्र मांस पचाने योग्य नहीं होते, उसके दाँत न तो मांसको फाड़ सकते हैं और न चबाही सकते हैं। यह बात दूसरी है कि मांसको पकाकर मसाले आदिके द्वारा उसे खाने के योग्य बनालिया जाय। नहीं तो कच्चा मांस खाना और पचाना कठिन ही नहीं, वरन् असाध्य है। बहुत खोजनेसे संसारमें कच्चा मांस खानेवाले मनुष्यों के उदाहरण भी मिलजाने सम्भव हैं, परन्तु उनसे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि सभी मनुष्य कच्चा मांस खासकते हैं या उसे पचा सकते हैं-अथवा मांस मनुष्यका स्वाभाविक भोजनहै। जिस प्रकार कभी कभी दो शिरवाला बच्चा पैदा होने का समाचार सुना जाता है, पर इससे यह अनुमान नहीं लगाया जासकता कि मनुष्य दो शिरवाला प्राणी है। इसी प्रकार इन कच्चा मांस खानेवाले अत्यन्त

उदाहरणोंसे भी मांसभक्षणकी स्वाभाविकता सिद्ध नहीं होसकती। हिंसक पशुओं और मनुष्यके शरीरमें भी कुछ अन्तर पाये जातेहैः-

१—मांसाहारी जानवरों के दाँत, तेज़, लम्बे, ऊँच नीचे और पैने होते हैं, परन्तु मनुष्य के दाँत अन्य फलाहारी जीवों की भाँति कुन्द छोटे, एक दूसरे के निकट और समथल होते हैं। इस प्रकार के दाँतों से मांस चबाने का काम नहीं होसकता और बिना चबाये उसका पचाना मुश्किल है। माना कि मांस में मुख की लार मिलाने की आवश्यकता नहीं है पर बिना बारीक हुए तो कोई पदार्थ पच ही नहीं सकता। आहार्य पदार्थों को बारीक करने वाले या तो दाँत हैं या आमाशय। जिस मांस को हड्डी के दाँत नहीं पीस सकते उसे पीसने में मांस का थैला आमाशय, किस प्रकार समर्थ होसकता है ?

२—मनुष्य की आँत मांसाहारी जीवों की अपेक्षा कई गुनी लम्बी होती है।

३—मांसाहारी जीवों की त्वचा से पसीना नहीं निकलता। पर मनुष्य के पसीना निकलता है।

४—मनुष्य पेय पदार्थों को अन्य फल और अनाज तथा शाक पात खाने वाले जीवों की भाँति घूट ले लेकर पीता है, परन्तु मांसाहारी जानवर इनको जीभ से चाट चाटकर पीतेहैं। इसीप्रकार अन्य कितनी ही बातों में मनुष्य मांसाहारी जीवों से भिन्नता और वनस्पत्याहारी जीवों से समानता रखता है, अतएव उसके प्राकृतिक आहार वानस्पतिक पदार्थ ही हो सकते हैं। सभी प्राणियों का प्राकृतिक आहार उनके शारीरिक संघटन के अनुकूल होता है, इसलिये सदृशतम शारीरिक गठन रखनेवाले प्राणियों का आहार भी सदृशतम ही होना चाहिये। देखाजाता है कि मनुष्यकी अपेक्षा अन्य प्राणी प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन बहुत ही कम करते हैं। इसीलिये निस्संकोच भाव से कहा जाता है कि मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणी जिस प्रकार का आहार करते हैं, वही उनका प्राकृतिक आहार है और मनुष्य से सादृश्य रखने वाले प्राणी जिस प्रकार का आहार खाते हैं उसी प्रकार का आहार मनुष्य का भी प्राकृतिक आहार होसकता है।

शरीर-शास्त्रवेत्ता विद्वानों का कथनहै कि मनुष्य के शरीर की बनावट बनमानुष से बहुत अधिक मिलती जुलती है। जर्मनी के

प्रसिद्ध विद्वान् हेकल का कहना है कि—"मनुष्य और वनमानुष के न केवल ढांचे ही एक दूसरे से मिलते हैं वरन् समस्त बड़ी २ बातोंमें दोनों एक दूसरे से समानता रखते हैं। हमारे और वन-मानुष के शरीर में तरुणास्थियां एक ही क्रम से पाई जाती हैं। जैसे—वनमानुष के हृत्पिंड (हृदय) के चार कोष्ठ हैं वैसे ही हमारे भी हैं। हमारे जावड़ोंमें जिस क्रम से ३२दाँत हैं उसी क्रमसे वनमा-नुषके जावड़ों में भी पायेजाते हैं। हमारे आमाशय में जैसी पाचक ग्रन्थियां हैं वैसी वनमानुष के आमाशय में भी हैं। दोनों का सन्ता-नोत्पत्ति क्रम भी एकसा ही है।"

विकासवाद के जगत्प्रसिद्ध पंडित डार्विन का तो कहना है कि हमारा वर्तमान रूप बानर का ही उन्नतरूप है। इसी प्रकार अन्य विद्वानों ने भी मनुष्य और वनमानुषों में बहुत अधिक समता मानी है। अतएव मनुष्य का प्राकृतिक आहार वही होना चाहिये जो वनमानुष का है। वनमानुष और बन्दर फल, अनाज और अन्य प्रकारकी वनस्पतियोंपर निर्वाह करते हैं। वे कभी मांस नहीं खाते। अतएव मनुष्य का प्राकृतिक आहार भी वनस्पतिक ही हो सकता है, न कि मांस या अण्डे इत्यादि।

प्रोफ़ेसर ओविन कहते हैं कि "वनमानुष और बन्दर, अपना खाद्य-फल, अन्न और अन्य प्रकारकी वनस्पतियों से प्राप्त करते हैं। मनुष्य और इन जानवरों के दाँतों का सादृश्य इस बात को प्रकट करता है कि आरम्भ से ही मनुष्य फलाहार को उपयुक्त समझता आया है।"

मूस्यो पोचटका कथन है कि "मनुष्य के आमाशय और दाँतों की बनावट से यह प्रकट होता है कि वह स्वभावतः शाक और फलादि खाने वाला प्राणी है।" इसी प्रकार और भी बहुत सी सम्मतियाँ उद्धृत की जासकती हैं, परन्तु विस्तारभय से ऐसा नहीं करते।

मांस में एक प्रकार का विष होता है, जिसे "यूरिक एसिड" (तेजाबशाकरा या मूत्राम्ल) कहते हैं। यद्यपि यह विष आहारके अन्य पदार्थों में भी पाया जाता है, पर मांसमें बहुत अधिक होता है। दूध में यह विष बिल्कुल नहीं होता। इस विषके शरीर मेंएक-त्रित होने और रक्तमें मिलने से स्वास्थ्यको बहुत हानि पहुँचती है। डा० हेग तथा अन्य कई डाक्टरों का। जिन्होंने "यूरिक एसिड" के

सम्बन्ध में बहुत अनुसन्धान किया है) मत है कि इस ज़हर के शरीरमें एकत्रित होने से अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं और शरीर में से इस ज़हरके निकाल देने पर वे रोग अच्छे हो जाते हैं।

यदि यह ज़हर ख़ूनके साथ घुलजाता है तो शिरःशूल, हिस्टेरिया; सुस्ती, निन्द्रानाश, श्वास, अजीर्ण, यकृत् (जिगर) के रोग, मधुमेह, प्रमेह, पथरी इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं। जब यह विष किसी जोड़ या मांसपेशी में इकट्ठा हो जाता है तब गठिया, शरीर के अंगों की सूजन, पाण्डु (पीलिया), खुजली, अन्त्रशूल, न्यूमोनिया, इन्फ्लूएन्ज़ा, यक्ष्मा इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं। यद्यपि उपर्युक्त रोग अन्य कारणों से भी होसकते हैं, पर शरीरमें "यूरिक एसिड" का एकत्रित होना भी इनका एक प्रधान कारण है।

"यूरिक एसिड" रक्तमें मिलकर रक्ताभिसरणक्रिया (दौराने-ख़ून) में बाधा उपस्थित करती है, जिससे शरीर के समस्त अंग प्रत्यंगों का भलेप्रकार पोषण नहीं होसकता और न शरीर के सब भागोंका मल ही अच्छी तरह बाहर निकलसकता है। इस लिये स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और शरीर निर्बल होजाता है।

जब "यूरिक एसिड" किसी मांसपेशी, पुट्ठे या जोड़ में एकत्रित होता है तोयह अपनी शक्ति से रक्त के समस्त विषैले पदार्थों को अपनी ओर खींच लेता है, इसलिये थोड़े समय तक रक्त शुद्ध हो जाता है। यही कारण है कि मांसभक्षण से कभी कभी शरीर में बल और पुष्टि आती हुई दिखलाई दिया करती है, परन्तु अवसर पाकर यह छिपा हुआ विष अपना प्रभाव दिखाता है और सारा बल, निर्बलता या रोगों के रूपमें परिणत होजाता है।

डाक्टर हेगका कथन है कि मांसभक्षियों को फलाहारियों की अपेक्षा थकान शीघ्र और अधिक आती है। मांसभक्षी किसी परिश्रमके कार्य को सहनशीलता पूर्वक अधिक समयतक नहीं कर सकते। मांसाहारियों में एक प्रकार का जोश, उत्तेजना या गरमी होती है पर वास्तविक बल और सहनशीलता उनमें नहीं होती।

मांसभक्षण से शरीरकी रोगापरोधक शक्तिका भी ह्रास होता है और यही कारण है कि मांसाहारियों पर रोग शीघ्र प्रभाव जमा लेते हैं। और मांसाहारी जब किसी रोग के चंगुलमें फंसजाते हैं तो वनस्पत्याहार करने वालों की अपेक्षा उनका छुटकारा कठिनता से होता है।

कितने ही विद्वान् चिकित्सकों का मत है कि मांसाहार से मनुष्य को क्षय, भगन्दर, स्नायुपीड़ा आदि कष्टसाध्य रोग आ दबाते हैं और उनसे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। सुप्रसिद्ध डाक्टर जौन वुड की राय है कि "मांसभक्षण निरुपयोगी, प्रकृतिविरुद्ध और रोगोत्पादक है।"

भगन्दर रोग के प्रसिद्ध चिकित्सक डाक्टरबेल ने अपनी एक अँग्रेज़ी पुस्तक में लिखा है कि प्रतिवर्ष संसार में दो करोड़ पचास लाख और केवल इङ्गलैण्ड और वेल्समें ही तीस हज़ार आदमी इस दुष्ट रोग से मरजाते हैं, जिसका मुख्य कारण मांसाहारके प्रचार का आधिक्य है। उक्त डाक्टरने बड़े परिश्रम और अनुभव से यह भी स्थिर किया है कि मांसाहार के त्याग और वानस्पतिक आहार के सेवन करने से यह रोग शीघ्र अच्छा हो जाता है।

मांसाहारियों को क्षय रोग भी अधिक होता है, इसका एक कारण यह भी है कि पशुओं में यदि एक पशु भी इस रोग से ग्रस्त होता है तो उसके मांससे रोगजीवाणु औरों के मांस में भी प्रवेश करजाते हैं और इस मासके खाने वाले मनुष्यों को यह रोग हो जाता है। यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि यक्ष्मा कितना भयंकर और प्राणघातक रोग है। यक्ष्मा ही क्यों, अन्य संक्रामक रोगों से भी जो पशुग्रस्त होता है, उसका मांस खाने से आ दबाते हैं।

यद्यपि शहरोंमें म्युनिसिपिल्टी द्वारा इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि रोगी पशुओंका मांस न बिकने पावे, परन्तु यह बात बहुत कठिन है कि साधारण परीक्षा से पशु के स्वास्थ्यका पूरा २ पता चलजाय, जितने पशु मारेजाते हैं, उन सब का सर्वथा स्वस्थ होना सम्भव नहीं।

यद्यपि मांसको पकाने से बहुत से जीवाणु नष्ट अवश्य हो जाते हैं, परन्तु मांस उनके विषसे सर्वथा विशुद्ध नहीं होसकता।

डा० विकरस्टाफ, डाक्टर राबर्ट्स, डा० वाक्स, डा० म्यूरकाश आदि कितने ही विद्वानों की सम्मति है कि स्नायु-पीड़ा का रोग प्राय मांसाहार से ही उत्पन्न होता है।

मांसाहार से केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही बिगड़ताहो यह बात नहीं, इससे मानसिक स्वास्थ्य भी नष्ट होता है। हमारे आचा-

विचारादि पर भी भोजन का बहुत प्रभाव पड़ता है। सात्त्विक या तामसिक जिस प्रकार का भोजन किया जाता है, विचार भी उसी प्रकार के बनते हैं। प्रसिद्ध कहावत है कि "जैसा खाइये अन्न, वैसा होवे मन" और विचारों के अनुरूप ही आचरण होते हैं। यदि सात्त्विक भोजन किया जाता है तो स्वभाव शान्त, सरल और सहनशील होता है। सात्त्विकाहारी का चित्त न तो शराब इत्यादि नशों को चाहता है और न उसको विषय वासनाएँही अधिक कष्ट दे सकती हैं। इसके विपरीत तामसिक भोजन से क्रोध, निर्दयता आदि दुर्गुणों की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। मांस भी एक तामसिक पदार्थ है उसमें उत्तेजक गुण अधिक होता है। अतएव उसके सेवन से मस्तिष्क में विक्षोभ उत्पन्न होकर मनावृत्तियाँ चञ्चल हो जाती हैं और मनोयोग का ह्रास होता है। यह तो सबपर ही प्रकट है कि कोई भी कार्य क्यों न हो, जबतक वह मनोयोग पूर्वक न किया जाय भले प्रकार उसका सम्पादन नहीं होसकता, परन्तु मांस सेवन से इस गुण का ह्रास होता है और धैर्य की मात्रा कम होजाती है। यही नहीं, बल्कि मांसाहार से बुद्धि, स्मरणशक्ति इत्यादि भी मन्द होजाती हैं इसके विपरीत वानस्पतिकाहार से विचारोंमें पवित्रता, चित्त में शान्ति और प्रेम भाव का उदय होता है। वानस्पतिक भोजन आचार को उन्नत करने के अतिरिक्त मानसिक शक्तियों का विकास और उनकी उन्नति भी करता है।*

जेनरल टाउफेरियर कहते हैं कि मन विचारों का परिशोधक यन्त्र (फिलटर) है। यदि यन्त्र विषाक्त कणों से लिप्त होगा तो विचार भी उसकी छूत से न बचसकेंगे। मांसाहार मनको मलिन, सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियोंको कुण्ठित और कर्मेन्द्रियोंको शिथिल करता है।

बेंजमिन फ्रेंकलिन का कथन है कि शुद्ध भाव और तीव्र कल्पना-शक्ति को उत्पन्न करने वाला एकमात्र उपाय निरामिष भोजन ही है। इसी प्रकार अन्य कितने ही विद्वानों का भी अनुभव है कि

*इसमें सन्देह नहीं कि सैकड़ों मांसाहारी भी तीव्र बुद्धि वाले सदाचारी और अत्यन्त सहनशील देखे जाते हैं, परन्तु ऐसे लोग मांसाहार को त्यागकर सात्त्विकाहार पर निर्वाह करते तो उनकी मानसिक शक्तियों का और भी अधिक उन्नत होना सम्भव था।

मांसाहार मानसिक शक्तियों के लिये बहुत हानिकारक है ।+

मांसाहार का प्रचार बढ़ने से भारत में उपयोगी पशुओं को दिन प्रतिदिन कमी होती जाती है। यह एक कृषिप्रधान देश है। यहाँ पशुओं के बिना कृषि नहीं हो सकती, अतएव पशुओं के मँहगे होने से अन्न भी मँहगा होता चला जाता है। यद्यपि वर्त्तमान मँहगी के और भी बहुत से कारण हैं, पर पशुओं की कमी भी एक प्रधान कारण है। जिस भारत में दूध की नदियाँ बहती थीं, आज वहाँ दूध, घी तो क्या छाछ मिलना भी कठिन है।

यह देश जो दिन पर दिन निर्बल होता जारहा है, दूध, घी का अभाव भी इसका एक कारण है। और यदि पशुवध की यही द्रुतगति रही तो वह दिन शीघ्र ही आने वाला है कि जब घी हकीमों के नुस्खों में ही लिखा जाया करेगा।

भारत एक निर्धन देश है। यहाँ सुलभ और सस्ते स्वास्थ्यवर्द्धक वानस्पतिक आहारको छोड़कर, अप्राकृतिक और रोगोत्पादक मांस

+मांसाहार के पक्षपातियों को कभी कभी यह कहते भी सुना जाता है कि भारत की निर्बलता, क्षीणता, हीनता और परतन्त्रता का एक मुख्य कारण मांसाहार को निकृष्ट समझना ही है। ऐसे लोग कहते हैं कि संसारमें मांसाहारी जातियाँ ही शक्तिशाली और विजयी होती हैं। उदाहरण के लिये वे लोग अँग्रेज़ जाति का नाम लेते हैं, परन्तु इस विचार में भ्रम के अतिरिक्त कुछ सत्यता नहीं है। किसी जाति की स्वाधीनता और पराधीनता मांसाहार अथवा निरामिष भोजन के ऊपर कभी निर्भर नहीं होसकती। यदि यही बात होती तो भारतके मुसलमान और बंगाली आज स्वाधीन होते, पञ्जाबियों को जलयानवाला बाग का नरमेध देखने का अवसर न मिलता। जापान, रूसपर विजय प्राप्त करनेमें सफलता प्राप्त न कर सकता। अतएव भारत की पराधीनता का कारण निरामिषाहार का प्रचार नहीं होसकता, न मांसाहार के प्रचार से हमारी खोई हुई स्वाधीनता पुनः प्राप्त होसकती है। इसके विपरीत स्वाधीनता प्राप्त के लिये वर्त्तमान आन्दोलन के महारथी महात्मा गांधी जी का तो कहना है कि-"अहिंसा और मारकाट के अभाव की अत्यन्त आवश्यकता का अनुभव किये बिना करोड़ों भारतीयों की स्वाधीनता प्राप्ति का कार्य पूरा होना सर्वथा असम्भव है।"

नव-जीवन १६-१२-२०

पर इतना अधिक व्यय करना किसी दशा में भी उचित नहीं है। जितने मूल्य से एक मांसाहारी का पोषण होसकता है उतने मूल्य से कई शाक-पात, अनाज और फलादि खाने वाले जीवन निर्वाह कर सकते हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि मांसाहार से स्वास्थ्य को कोई हानि नहीं पहुँचती, तब भी भारत जैसे निर्धन देश में जहाँ भरपेट भोजन नहीं मिलता, शरीर ढाँपने को वस्त्र नहीं मिलते वहाँ ऐसे मूल्यवान् पदार्थ को सेवन करना उचित नहीं है, जब कि उसके बिना खाये भी काम चल सकता है।

कुछ लोगों का कथन है कि आयुर्वेद में मांस के बहुत गुण बतलाये गये हैं और उसके खाने की भी आज्ञा है, ऐसे सज्जनों को याद रखना चाहिये कि आयुर्वेद में गुण.दोष तो सभी पदार्थों के वर्णन किये हैं, परन्तु वे गुण पदार्थों के विधिपूर्वक सेवन से ही प्राप्त होसकते हैं। सखिया बहुत बलदायक है, पर वही विधि-पूर्वक सेवन न करने से प्राणघातक है। आयुर्वेद में मांस सेवन की आज्ञा कतिपय रोगों में अवश्य है, पर आहार में मांस को स्थान नहीं दिया गया। आहार में मांसको सम्मिलित करना विधिविरुद्ध है इसलिये हानिकारक है।

चरक, वाग्भट्टादि के सूत्रस्थान में स्वास्थ्यरक्षा पर विचार किया गया है और वहाँ पर जो जो विधियाँ दी हैं वे सब स्वस्थ मनुष्यों के लिये हैं और उनका पालन करना स्वस्थ मनुष्यों के लिये आवश्यक है। चरक के सूत्रस्थान में कहा है कि—

"गुरु भोजनंदुर्विपाकानाम्"।

अर्थात् कठिनता से पचने वाले पदार्थों में गुरु भोजन सब से प्रथम है और फिर कहा है कि मांस गुरु-भोजन है, इससे प्रकट होता है कि मांस बहुत कठिनता से पचने वाला पदार्थ है। जो पदार्थ भलेप्रकार पच नहीं सकता, उससे किसी प्रकार के लाभ की आशा कैसी ? वाग्भट्ट ने सूत्र स्थान में कहा है कि—

"सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्"।

अर्थात्—बिना धर्म के सुख नहीं इस लिये मनुष्य को धर्मात्मा होना चाहिए। इसके आगे धर्म और पाप कर्मों को गिनाते हुए लिखा है कि—

हिंसास्तेयान्यथा कामं पैशुन्यं परुषानृते।
संभिन्नालाप व्यापादमभिध्या दृग्विपर्ययम्॥
पापं कर्मेति दशधा काय वाङ् मानसैस्त्यजेत्।

अर्थात्-हिंसा चोरी इत्यादि दश पाप कर्म हैं। इन्हें मन, वचन और कर्म से त्यागदेना चाहिये। अब सोचना चाहिये कि जो आयुर्वेद हिंसा को (पाप समझ कर) मन से भी त्याग करने का उपदेश देता है, वह उदरपोषण के लिये पशुवध की आज्ञा किस प्रकार दे सकता है। आगे चलकर वाग्भट्ट में एक स्थान पर लिखा है कि—

आत्मवत् सततं पश्येदापि कीटपिपीलिकाम् "।

अर्थात् कीट, पतंगों, चींटियों तक को भी सदैव अपने समान देखो। महर्षि चरक ने भी ऐसा ही उपदेश दिया है—

"सर्वप्राणिषु बन्धुभूतः स्यात्"।

अर्थात् सब प्राणियों को बन्धु की समान समझो। इन प्रमाणों से प्रकट है कि आयुर्वेद में मांसभक्षण की आज्ञा नहीं, बल्कि प्रबल निषेध है।

जो ऋषि कीट, पतंगों तक को बन्धुवत् समझने का उपदेश देते हैं वे उदरपोषणार्थ पशुवध की आज्ञा नहीं देसकते। अतएव आयुर्वेद शास्त्र का मत लेने पर भी मांसाहार अनुचित ही ठहरता है। (विज्ञान)

अफीम।

सं० नाम-अहिफेन | हिं०-अफीम— बं०-आफिंग | म०-अफू, अफू कडवी | गु०-अफेण | क०-अफेन | तै०-नाल्लामन्दु | इ०-ओपियम (Opium) | लै०-आप्यम् (Opium) फा०-अफयून-तिर्याक | अ०-लबनुल खसखास |

अफीम का वृक्ष छोटा डेढ़ या दो हाथ ऊँचा होता है। इस में अति मनोहर सफेद और लाल रंग के फूल आते हैं। किन्तु अफीम लाल फूल वाले वृक्षों में से बहुत कम निकलती है, इसलिए सफेद फूल के ही वृक्ष अधिकता से बोये जातेहैं। इसकी विधिपूर्वक खेती की जाती है। इसमें प्रायः सवा इञ्च चौड़े एक प्रकार के गोल फल लगते हैं, उनको पोस्त के डोरे कहते हैं। डोरे पुष्ट होकर जब,

पकने पर आते हैं तब उनको थोड़ा थोड़ा चाकूसे चीर देतेहैं। उन में से सफ़ेद दूध की समान एक प्रकार का रस निकलता है, यही रस सूखकर कुछ लाल होजाता है। फिर उसको गाढ़ा करके गोलाकार पिण्ड सा बनालेते हैं तब इसका रङ्ग कुछ काला सा होजाता है, उसी को अफीम कहते हैं। डोंरे में से जो बहुत सूक्ष्म सफेद २ दाने निकलते हैं, उनको पोस्त या खसखस कहते हैं।

अति प्राचीनकाल से अफीम भारतवर्ष में थी-यह बात समझ में नहीं आती। कारण कि चरकादि प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं है। किन्तु उसके पीछे के समय में तान्त्रिक रसचिकित्सा की पुस्तकों में और भावमिश्र के संगृहीत ग्रन्थ में अफीम का प्रयोग देखा जाता है। यवनों के राजत्वकाल से यह इस देश में आई थी। बादशाह लोग इस को बड़े प्रेम से नशे के रूप में सेवन करते थे। आधुनिक वैद्यक ग्रन्थों में इसके गुण इसप्रकार लिखे हैं:—

आफुकं शोषणं ग्राही श्लेष्मघ्नं वातपित्तलम्।
तथा खसफलोद्भूतं वल्कलं प्रायमित्यपि॥

अफीम—शोषक, ग्राही (धारक), कफनाशक, वायुवर्द्धक और पित्तकारक है। खस के फलों का वक्कल भी प्रायः अफीम की समान गुण करता है। शोषक वस्तु ही धारक होती है; किन्तु अफीम अत्यन्त धारक है। यह इसीका प्रभाव है। अफीमके प्रभाव से समस्त स्राव बन्द होजाते हैं। अफीम के द्वारा अन्य सब प्रकार के स्राव बंद होने पर भी स्वेदज क्रिया की वृद्धि होती है।

यह कफनाशक है—खाँसी के प्रबल होने पर जब कफ अधिक निकलता है तब अफीम का प्रयोग करने से कफ के निकलने में सुविधा होती है। किन्तु जहाँ फुस्फुस के पकजानेपर कफमिश्रित पीव निकलती है वहाँ अफीम को सेवन कराने से पीव गाढ़ी हो कर उल्टी हानि करती है। यह वातवर्द्धक है-अर्थात् वायुको उत्तेजित करके मस्तिष्क को आवृत कर उन्मत्तता और शिथिलता को उत्पन्न करती है। और यह पित्तवर्द्धक है-अर्थात् धारकगुण के कारण यकृत् के पित्त के निकलने में बाधा होकर अविरुद्ध पित्त के द्वारा शरीर में सन्ताप उत्पन्न होता है। अफीम के गुणोंके सम्बन्ध में एक श्लोक प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में देखा जाता है।

"आक्षेपशमनं निद्राजननं मदकारि च-
स्वेदनं वेदनाहृच्च मूत्रातीसारनुत्परम्।
कासश्वासातिसारघ्नं शोणितस्रुतिवारणम्॥"

अर्थात्—यह आक्षेपनिवारक, निद्राजनक, मादक, स्वेदजनक, वेदनानाशक एवं बहुमूत्र, श्वास, कास, अतिसार और रक्तस्रावादि रोगों का नाश करने वाली है।

प्रयोग—शास्त्र में स्थावर और जङ्गम इन भेदों से विष दो भागों में विभक्त कियागया है। वृक्ष, लता, फल, मूल, पत्रादि से जो विष उत्पन्न होता है, उसको स्थावर-और सर्पादि जीवोंके द्वारा जो विष संग्रह किया जाता है उस को जङ्गम विष कहते हैं। अफीम एक प्रकार का स्थावर विष है-और यह एकप्रकार का उपविष भी है। यथाः—

"अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गली करवीरकम्।
गुञ्जाऽहिफेनधुस्तूराः सप्तोपविषजातयः।"

अर्थात्-आक का दूध, थूहर का दूध, कलिहारी, कनेर, घुंघुची अफीम और धतूरा ये सात उपविष हैं। सर्पविष, संखिया आदि की अपेक्षा ये तीक्ष्णता में हीन होने के कारण उपविष कहेजाते हैं।

अन्यान्य उद्भिज्जादि पदार्थों से अफीम में विशेष पार्थक्य यह है कि अन्य वस्तुओं के पचजाने पर उन का गुण प्रकट होता है, किन्तु अफीम का विष उदर में जाते ही पचने से पहले ही अपनी शक्ति को प्रकाश करता है। जो वस्तु जितनी जल्दी प्राणनाश कर सकती है, वह यथाविधि प्रयोग करने से उतनी ही जल्दी रोगी को शान्ति प्रदान करसकती है। किन्तु विषका प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिये।

धातुभेद, स्थानभेद और अवस्थाभेद से अफीम की क्रिया में न्यूनाधिकता देखी जाती है। बाल्यावस्था में अफीम की बहुत थोड़ी मात्रा देने से भी उसका मादक गुण विशेषरूप से प्रकट होता है। इसलिये बड़ी सावधानी के साथ बालकों को अफीम व्यवहार करानी चाहिये। जहाँ तक हो बालकों को अफीम और अफ़ीममिश्रित ओषधि न देना ही अच्छा है। अफीम को थोड़ी मात्रा में सेवन करने से उत्तेजना और अधिक मात्रा में सेवन

करने से मादकता अधिकतर मालूम होती है। अधिक पीड़ा वाले रोगों में अधिकमात्रा में अफीम सहन हो सकती है।

अफीम किसी किसी रोग में अवश्य उपकार करती है, किन्तु इसको स्वाभाविक अवस्था में केवल नशे के लिये व्यवहार करने से बड़ा अनिष्ट होता है। अफीमसेवी मनुष्य प्रायः सदैव कोष्ठ-बद्धता से युक्त, शिथिल शरीर, रूक्षदेह, अनिद्रायुक्त, आलसी, उत्साहहीन और अकर्मण्य होजाते हैं। इसके अतिरिक्त उनके परिपाक शक्ति की हीनता, अरुचि और मन्दाग्नि अत्यंत बढ़जाती है, जिससे बहुत थोड़ा भी आहार नहीं किया जासकता। पुरुषत्व शक्ति प्रायः नष्ट होजाती है। बुद्धि, मेधा, स्मरणशक्ति, आत्मसम्मान आदि सब उच्चवृत्तियां विकृत होजाती हैं-और अकाल में ही जराग्रस्त होकर मृत्यु के मुख में जापड़ते हैं।

निम्नलिखित रोगों में अफीम का प्रयोग होता है—

एक प्रकार का संग्रहणी रोग होता है जिसमें खाद्य पदार्थ पेट में पहुंचने के थोड़ी देर बाद अर्थात् अच्छे प्रकार से जीर्ण होने के पहले ही दस्त होजाते हैं। रोगी का पेट साफ होजाता है और भूख लगने लगती है। भोजन करने पर कुछ देर तक अच्छा मालूम होता है, किन्तु खाद्य पदार्थ शरीर में शोषित होने से बहुत पहले मलरूप से बाहर निकल जाते हैं। इसलिये नाना प्रकार के कष्ट-दायक लक्षण प्रकट होते हैं। इस प्रकार का पुराना अजीर्ण रोग साधारणतः ६से लेकर १२वर्ष तक के बालकों को देखा जाता है। ऐसी अवस्था में भोजन से कुछ मिनट पहले उपयुक्त मात्रा में अफीम को सेवन कराने से पकाशय और आँतों की पेशियों के कार्य्य की अधिकता कम होजातीहै और खाद्य पदार्थों के निकलने में विलम्ब होता है। इसलिये भुक्त पदार्थों को जीर्ण होने के लिये उपयुक्त समय मिलजाता है।

मूत्राशय में पथरी के होजाने पर जो पीड़ा होती है, उस को निवारण करने के लिए अफीम अतिश्रेष्ठ औषध है।

शूलरोग में अफीमके द्वारा सुस्ती पैदा कीजाती है इसलिये इस से शूल की वेदना तत्काल दूर होजाती है। स्नायुशूल, बाधकशूल और पक्वाशय के शूलको शीघ्र नष्ट करनके लिए यह याय अमोघ औषध है। आमजन्य शूल में जब आमाशय में व्रण होजाते हैं और

उदर में ज़रा भी हलन चलन होने से पीड़ा होजाती है उससमय अफीमउदरके भीतरकी गतिक्रियाको रोककर तत्काल पीड़ाको शान्त करती है। नेत्रों के दुखने पर अफीम को जल में पकाकर उसको भाप देने से पीड़ा शीघ्र दूर होजाती है। अथवा अफीम को जल में घोलकर गरम करके नेत्रों पर लेप करने से भी पीड़ा नष्ट होती हैं। प्रसव के पश्चात् शूल की भयंकर पीड़ा में अफीममिश्रित औषधियों का प्रयोग करने से अथवा अफीम को जल में घोलकर गरम करके उदर और कमर पर सुहाता २ स्वेद देने से तत्काल पीड़ा दूर होजाती है।

जरायु में से रक्तस्राव होनेपर अफीम का प्रयोग करना अत्यन्त लाभदायक है। प्रसवके अथवा मासिकधर्म के पहले या पीछे रक्त का स्राव होने पर अफीम का उपयोग विशेष हितकर होता है, किन्तु ऐसी अवस्था में इसकी मात्रा के ऊपर विशेषरूप से ध्यान रखना चाहिए। मात्रा के ठीक न होने से लाभ के बदले हानि होना सम्भव है।

गर्भस्राव का उपक्रम होने पर अफीम का सेवन करने से विशेष उपकार होता है। यदि गर्भपात बालक के मरजाने पर जल गिरता हो तब इसका प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिये।

पुराने प्रमेहरोग में अफीम से विशेष उपकार होता है। विशेषकर बहुमूत्र रोग में अफीम की समान तत्काल लाभकारी आज तक एक भी औषध आविष्कृत नहीं हुई।

आमाशय रोगमें यह विशेष हितकारी है। आमाशय में-पेट में पीड़ा का होना, बारम्बार कठिनता के साथ पतले दस्तों का होना और शरीर की शिथिलता आदि विकारों को यह बहुत शीघ्र दूर करती है। किन्तु पेट में से आम के निकल जाने पर ही इसका प्रयोग करना अच्छा है। पेट में आम के होने पर यह कुछ भी फल नहीं करती, बल्कि उल्टा अपकार ही करती है।

एकतरा, तिजारी, चौथिया आदि ज्वरों में भी अफीम के द्वारा लाभ होता है।

कर्णमूल शोथ (कनवर), बगल की सूजन और हाथ पाँव में मोच आजाने पर जो सूजन होजाती है; उसमें अफीम का प्रलेप तत्काल फलप्रद होता है।

नाड़ी के क्षीण होजाने पर शरीर में इसका बाहरी लेपादि के द्वारा प्रयोग करने से नशा होकर निद्रा आजाती है—और नाड़ी की गति तीव्र होजाती है।

घाव को अच्छे प्रकार से धोकर उसकी पीव व क्लेद को साफ करके अफीम की पट्टी चढ़ाने से तत्काल पीड़ा शमन होकर वह शीघ्र आराम हो जाता है। घाव की सूजन और पीव आदि को दूर करने में इसकी समान अन्य औषधि नहीं है।

आक्षेपयुक्त रोग जैसे-हुपिंकफ, हिचकी, हिष्टेरिया आदि रोग अफीम के प्रयोग से शीघ्र शमन होते हैं। यदि इन रोगों में शरीर में शिथिलता मालूम हो तो अफीम कभी नहीं देनी चाहिये। जिन रोगों में अफीम प्रयोग करनी हो वहाँ यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि अफीम की मात्रा न बढ़जाय, और रोगी अफीम का अभ्यासी न बनजाय। अफीम के गुणों का यह संक्षेप से वर्णन किया गया है। यदि इसके समस्त गुणों का वर्णन विस्तार से किया जाय तो एक बहुत बड़ी पुस्तक तैयार हो सकती है। नीचे अफीम के कुछ अनुभूत योग लिखे जाते हैं।

कर्णमूल शोथ पर-अफीम का प्रयोग। अफीम १माशा,मुसब्बर ६ माशे और मसूर की दाल १ तोला-इनको एकत्र धतूरे के रस में खरल करके कुछ गरमकर कान के चारों ओर बारम्बार लेप करने से कान की जड़की सूजन शीघ्र ही दूर होती है। थूहर के पत्तों को अग्नि पर सेंककर उनका निकाला हुआ रस और धतूरे के पत्तोंका रस-समान भाग लेकर दोनों रसोंमें अफीम मिलाकर लेप करनेसे भी विशेष उपकार होता है।

चौथिया ज्वर पर। चौथिया ज्वर में अर्थात् दो दिन के बाद जो ज्वर आता है, उसमें रसंसिन्दूर ८ रत्ती, अफीम ३ रत्ती, लोह-भस्म २४ रत्ती और कौनेन २४ रत्ती-सबको एकत्र जल के साथ खरल करके चौबीस गोलियाँ बनालेवे। इनमें से प्रतिदिन तीन २ गोली शहद और निगुण्डी के पत्तों के स्वरस के साथ सेवन कराने से उक्त ज्वर दूर होता है।

खुले हुए मलमार्ग को संकुचित करने के लिये दो तोले अमल्ल-मूल को कूटकर ३२ तोले जल में पकावे। जब पकते २ चार तोले जल शेष रहजाय तब उतार कर छानलेवे। फिर उसमें सफेद

कत्था २ माशे भिजो देवे। कत्थे के गलजाने पर उसे छान कर उसमें ३ रत्ती अफीम और ६ रत्ती फटकरीका चूर्ण मिलाकर सलाई या तुम्बी आदि से मलमार्ग में बारम्बार लगाने से मलद्वार संकुचित हो जाता है।

आमाशय के विकारों पर-एक छुहारे की गुठली निकाल कर इसके भीतर एक चनेकी बराबर अफीम रखकर उसके ऊपर मैदा का दो अँगुल परिमाण लेप करके अँगारों की अग्नि में जलालेवे। लेप के सूख जाने पर उसको निकाल लेवे और उसको छुड़ाकर छुहारा ले लेवे। फिर उस छुहारे को पीस कर चने की बराबर गोलियाँ बनाकर रखलेवे। इसमें से प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल दो दो गोली जल के साथ पीसकर सेवन करने से सब प्रकार के आमाशय-सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं।

संग्रहणी पर-अफीम ३ माशे, शुद्ध मुलतानी हींग ३ माशे और सेलखड़ी का चूर्ण ८तोले इनको एकत्र मिलाकर डेढ़ माशे से लेकर ३ माशे की मात्रा तक शीतलचीनी के भिजोये हुये जल के साथ सेवन करने से शीघ्र उपकार होता है।

व्रण पर-अफीम, सफेदा, गन्धक का चूर्ण और सफेद राल का चूर्ण इनको समान भाग लेकर ताँबे के पात्रमें गोघृत के साथ खरल करके एक दिन तक धूप में रखकर सेवन करे। भीतर के घाव अथवा नाड़ीव्रण (नासूर) में अफीम मिला हुआ मरहम नहीं लगाना चाहिये।

स्वप्नदोष पर-अफीम $\frac{1}{8}$ रत्ती, कपूर $\frac{1}{2}$ रत्ती और शीतलचीनी का चूर्ण २ रत्ती सबका एकत्र मिलाकर रात्रि में शयन करते समय शीतल जल के साथ सेवन करने से तत्काल लाभ होता है।

बहुमूत्र पर-एक तोला रससिन्दूर को अच्छे प्रकार से पीसकर उसमें अफीम १ तोला, लोहभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, बङ्गभस्म १ तोला, कपूर १ तोला और गिलोय का सत्त्व १ तोला मिलाकर घीग्वार के रस में खरल करके दो दो रत्ती की गोलियाँ बनालेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली अड़हर के पत्तों के रस और शहद्के साथ मिलाकर सेवन करने से विशेष लाभ होता है।

अफीम की ओषधिरूप से मात्रा $\frac{1}{4}$ रत्ती से लेकर १ रत्ती तक है। इसकी विषैली मात्रा १०रत्ती से ३०रत्ती तक है। इस मात्रा से

अफीमको सेवन करनेपर ४-६ घंटेके बाद शिथिलता और ६से १२ घंटों के बीचमें मृत्यु होजाती है। १२ घंटोंके बीचमें मृत्यु न होने से प्रायः रोगी बचजाताहै। अफीम खायेहुए मनुष्यको विष फैलनेपर बारम्बार वमन कराना सब से आवश्यक है। कोई विशेष औषधि निकट न होनेपर तूतीयेका पानी,नमक मिलेहुये गरमजल आदिके द्वारा वमन करानी चाहिए। जबतक स्वच्छ-अफीम की गन्धरहित-जल न निकलने लगे तबतक बारम्बार उष्ण जल रोगी को पान कराना चाहिए। मस्तक पर शीतल जलकी धारा बराबर छोड़ता रहे। रोगी को कभी सोने न देवे। उसको पकड़ कर थोड़ी थोड़ी दूर टहलावे। उस समय रोगी की शारीरिक अवस्था के अनुसार चा, माजूफल का काथ, जम्बीरी नीबू का रस और नाड़ी के शाक का रस यथेष्ट परिमाण में सेवन कराना चाहिये।

---०---

युवति स्त्रियोंके जानने योग्य बातें।

----(*)----

मासिकधर्म–महीने में एक बार स्त्री की योनिसे रक्त के रूप में रज निकला करता है। जिस समय यह जारी होता है तब स्त्री रजस्वला, मासिकधर्म से व स्त्रीधर्म से, नहानी, अलगबैठी, फूल-वाली, अथवा ऋतुमती कहलाती है। यह रज स्त्रियों की छाती में रहता है। इससे गर्भस्थान में बालक का शरीर और स्त्री के स्तनों में दूध बनता है।

रज दो प्रकार का होता है-एक तो वह जो बच्चेकी बनावट और आहार में काम आता है—अर्थात् स्तनों में दूध बनकर रहता है। दूसरा वह जो बालक के साथ २ जच्चा के पेट से बाहर आता है।

मासिकधर्म का समय-भारत उष्णप्रधान देश है। इस लिये यहाँ १२ वर्षकी आयु से लेकर १४ वर्ष तक की आयु वाली कन्यायें रजस्वला हो जाती हैं। अतः जो लड़कियां बोर्डिङ्ग हाउस में रहकर स्कूलों में शिक्षा पाती हैं, उनकी अध्यापिकाओं को इस अवस्था वाली कन्याओं की ओर इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये। कारण, वे अल्पवयस्का लड़कियाँ इस रजोधर्म के गुण, दोषों से सर्वथा अनभिज्ञ होती

हैं। वहां उनको माता, बहनें आदि कोई हितैषिणी उनके पास नहीं होतीं, जो उस समय में उनकी सँम्भाल करसकें। वे दूसरों से उस बातको कहती हुईं लजाती हैं। कितनीहो लड़कियाँ तो इस मासिक को एक प्रकार का भयङ्कर रोग समझ कर अनेक प्रकार की रजशोधक औषधियों को सेवन करती हैं एवं अन्यान्य कितनी ही कुचेष्टायें करतीहैं जिनसे उनको जीवन पर्य्यन्त कष्ट भोगना पड़ता है। और फिर वे गर्भधारण करने के योग्य नहीं रहतीं। कितनी हो लड़कियाँ ऐसी अवस्था में जुल्लाब ले लेती हैं, योनि में पिचकारी लगाती हैं, सेंक करती हैं। इन क्रियाओं के करने से वे सदा रोगों के चंगुल में फँसी रहती हैं। उनको सदैव मासिकधर्म की शिकायत बनी रहती है। जैसे-कभी होता है, कभी नहीं होता, कभी अधिक होता है (अर्थात् कई कई दिन तक रज जारी रहता है) और कभी बहुत कम होता है। ऐसी लड़कियाँ मेंडककी समान पोली पड़जाती हैं-और हिस्टेरिया रोग से पीड़ित होजाती हैं। वे सन्तान उत्पन्न करने के योग्य तो रहतीं ही नहीं। साथ ही साथ पति की भी मिट्टी ख़राब कर देती हैं। अतः, यह पहले कहा जाचुका है कि-लड़कियों के विद्यालयों का सब प्रबन्ध स्त्रियों के हाथ में होना चाहिये-और उन अध्यापिकाओं का इस विषयमें विशेष लक्ष्य होना चाहिये। किंतु आजकल विद्यालयों में से निकलने वाली ५० फीसदी ऐसी लड़कियाँ मिलती हैं जिनके गर्भ स्थिर नहीं होता अथवा गर्भपात होजाता है और जो किसी तरह बच्चा पैदा होजाता है तो वह होते ही मर जाता है। कभी २ माताको भी साथ में लेजाता है। इस लिये आजकल अधिकांश विद्वानों की यह सम्मति है कि-लड़कियों को बोर्डिङ्ग में न रखकर घर परही शिक्षा देनी चाहिये। जो देश अधिकागर्म होते हैं, उनमें रजस्राव बहुत जल्द होता है और जो सर्द होते हैं, वहाँ देर से होता है। यहाँ तक कि किसी २ के तो ३०—३१ वर्ष की आयु में रजोदर्शन होता है।

रजस्राव अधिक से अधिक ३६० बार होचुकने पर फिर नहीं होता। कोई २ कहते हैं कि-पहले बालक की २५ वर्षकी आयु हो जाने पर फिर स्त्री के मासिकधर्म नहीं होता। जो युवति स्त्रियाँ खूब हृष्ट-पुष्ट होती हैं, उनको प्रायः महीने के २८ वें दिन ही रज-

स्राव के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। यह बात प्राय देश, काल के प्रभाव से होती है। शीघ्र रजःस्राव होने में तो कोई हानि नहीं होती, परन्तु विना कारण देरसे रजोधर्म होने से बहुत हानि होती है। अतः इसकी चिकित्सा करना अत्यावश्यक है। कारण रजके रुकजाने से स्त्रियों के नानाप्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं। अधिक दुर्बलता के कारण शरीर में रुधिर के कम होजाने से अथवा शुष्क होजाने से देर में मासिकधर्म होता है। अतएव दुर्बलता को दूर करने और रक्त को तरल करने का प्रथम उपाय करना चाहिए। इस रोग मे फलों का सेवन और शुद्ध वायु में भ्रमण करना बहुत ही लाभदायक है। यदि किसी कारण से रजःस्राव बन्द होगया हो तो निम्नलिखित औषधियाँ सेवन करानी चाहिएँ।

(१) कपास के फूल व पत्तों को आधपाव लेकर एक सेर पानी में पकावे। जब पकते २ पावभर पानी शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें २ तोले पुराना गुड़ डालकर पान करे। इससे शीघ्र रजःस्राव होने लगता है।

(२) नीम की छाल कुटी हुई २ तोले. सोंठ ४ माशे और गुड़ २ तोले-इनको डेढ़ पाव पानी में पकावे. जब आध पाव जल शेष रहजाय तब उतारकर छानकर पान करे।

(३) अथवा काले तिल १ तोला और गोखुरू १ तोला लेकर दोनों को रात्रि में थोड़े जल में भिजोदेवे, फिर प्रातःकाल छानकर मिश्री डालकर पान करने से भी लाभ होता है।

(४) किम्वा मूली, गाजर और मेथीके बीजों को समानभाग लेकर वारीक चूर्ण करके सेवन करे।

(५) केवल मजीठ के चूर्ण का ही सेवन करने से रजःस्राव शीघ्र होने लगता है !

होमियोपैथिक चिकित्सा।

डाक्टर जार का मत है कि-स्त्रियों की ऐसी अवस्था में "पलसेटीला" सेवन कराने से उनके समस्त उपद्रव शमन होते हैं। जिन स्त्रियों के सर्दी लगजाने से शिर और छाती में जकड़न, चेहरे पर तमतमाहट, भय, मूर्च्छा, उठते-बैठते अथवा चलते-फिरते चक्कर आना और रक्त का सञ्चालन न होना आदि लक्षण प्रतीत हों उनको "एकोनाइट" सेवन कराना चाहिए।

जिनके अधिक निर्बलता, मुखपर उदासी, पेडू के दहने भाग में पीड़ा, डंक मारने की सी दाह हो; उनके लिए "एपिसमे लिफिका" अत्यन्त लाभदायक औषध है ।

व्याकुलता, दाह, तृषा, अधिक दुर्बलता, मुख का वर्ण पीला होना, सर्दी लगना, सेक करने की इच्छा होना, आधी रात के समय या दिन के १२ बजे के बाद अधिक पीड़ा का होना आदि उपद्रव होने पर "आरसनिक" औषधि सेवन करानी चाहिए ।

शिरकी तरफ को रुधिर का अधिक बहना, कनपटी में पीड़ा होना, रोगिणी को हृदय में सर्दी मालूम होना, पेडू में बोझसा प्रतीत होना, बातचीत करना अथवा प्रकाश का अच्छा न लगना इत्यादि लक्षणों के होने पर "बिलाडोना" सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है ।

मासिकधर्म की बजाय नाक से रुधिर निकलना, कोष्ठबद्धता, व कभी कभी सूखा हुआ दस्त होना, सूखी खाँसी, पेडू में पीड़ा और चलने फिरनेसे अधिक कष्ट प्रतीत होताहो तो "ब्राइओनिया" सेवन करना चाहिए ।

जो स्त्रियाँ मादक पदार्थों के अधिक सेवन करने से दुर्बल होगई हों, पेट में अफारा रहता हो, शरीर का रंग पीला पड़गया हो, उनके लिए "चायना" सेवन कराना उपयोगी है ।

अत्यन्त निर्बल और क्षयरोग से ग्रसित जिन स्त्रियों के मुख से रुधिर निकलता हो अथवा रुधिर की वमन होती हो, छाती में जड़ता, सूखी खाँसी, दीर्घश्वास और सख्त पाखाना होता हो, उनके लिए "फास्फोरस" सेवन कराना अत्युत्तम है ।

शिर और छाती में अकड़न हो, दिलमें धड़कन हो, चक्कर और दीर्घश्वास (लम्बे २ श्वास) आता हो, स्थूलदेह और स्थूल उदरवाली स्त्री को पैर भीजेहुए से व ठंडे मालूम हों, शिर में पसीना अधिक आता हो, योनि से दूध की समान सफ़ेद पानी निकलता हो अथवा पानी में काम करने से शीतलता के कारण रज बन्द होगया हो तो "कलकेरिया कार्ब" औषध व्यवहार करानी चाहिए ।

जो स्त्री अत्यन्त क्रोधवती हो, जिसका एक गाल लाल और दूसरा पीला हो, मूत्र का रंग लाल या पीला हो, आँखों में गर्मी-

स्पत्ति की समान बोझ व अत्यन्त पीड़ा होती हो तो उस समय "केमोमिला" का प्रयोग करना हितकर होता है।

मासिकधर्म के बन्द होजाने पर प्रदर और हिस्टेरिया रोगों से आक्रान्त होने पर एवं कभी २ काले रंग के रुधिर की बूंदों के आने पर "काक्यूलस" सेवन करानेसे बहुत अच्छा फल होता है।

यदि पेडू में कोई जीवित वस्तु मालूम हो और काले रंग का रुधिर निकले तो "क्रोकस" सेवन कराना चाहिये।

जिनके पेडू में अधिक पीड़ा हो, बच्चा पैदा होने की सी धड़कन हो, लम्बे २ श्वास आते हों, नेत्रों के पलक सूजे हुए हों, उनके लिए "कालीकार्ब" बहुत ही लाभदायक है।

जो स्त्रियाँ अधिक स्थूल हों, हाथ-पैरों में बोझ सा मालूम हो, कभी कभी रजोदर्शन हो और थोड़ा २ पीला पानी निकले व शरीर पर दाने पड़गये हों और उनमें से शहद की समान चिपकता हुआ पानी निकलता हो तो "ग्रेफाइट्स" सेवन कराने से ये सब उपद्रव नष्ट होजाते हैं।

रजःस्राव बन्द होने पर-हृदयरोग, पेडू में दाह और शरीर में डंक मारने की सी पीड़ा होती हो तो "लीलियमटग" नामक ओषधि सेवन कराने से सम्पूर्ण विकार नाश होकर मासिकधर्म समयानुसार होने लगता है।

हरद्वारीसिंह. एच० एल० एम० एस०।

—o—

साँप के काटने की दवायें।

"इण्डस्ट्री" के गतांक में साँपके काटनेके कुछ इलाज बताये हैं। लिखा है कि—सर्प के डसने पर तुरन्त ही घाव के कुछ ऊपर दो तीन पट्टियाँ खूब कसकर बाँध देनी चाहिएँ। इससे उस स्थान के खून का प्रवाह बन्द होजाता है, जिससे विष का असर सारे शरीर में फैलजाने से रुकजाता है। जबतक यह निश्चय न हो जाय कि विष अब शरीरमें नहीं रहा तब तक पट्टियाँ कदापि न खोलनी चाहिएँ। रोगी से एक लालमिरच चबवावे, अगर वह उसे कड़वी न लगे तो समझ लेना चाहिये कि विष अभी शरीर में बाकी है। कभी २ जहाँ सर्पने डसा हो वहाँ एक तेज़ चाकू से नश्तर दे देते हैं

इससे विष खून के साथ बाहर निकल सकता है। अगर उस स्थान को अङ्गारे या लाल तपे हुये लोहे से दाग दिया जाय या तेजाब से जला दिया जाय तो और भी अच्छा हो। अगर सर्प ने हाथ या पैर की उंगली में डसा हो तो उसे जड़ से काट देने से विशेष लाभ होता है।

अगर ठीक समय पर कोई डाक्टर या वैद्य समीप न हो तो रोगी को एक तोला बारास (सोहागा) पानी में घोलकर पिला देना चाहिये। इससे विष शरीर में शीघ्र असर नहीं करेगा। यहाँ सर्प के डसे हुए मनुष्य के चिकित्सार्थ कुछ देशी नुस्खे देते हैं—

१-रोगी को थोड़ी थोड़ी देर के बाद तुलसी का रस देना और घाव पर लगाना चाहिये। याद रहे, कि तुलसी और ऐसी घास जिसमें नीबू की बू आती है और ईशरमूल के वृक्ष घर के चारों तरफ लगाने से सर्प नहीं घुस सकता।

२-रसलसान (चिनरोफला) के रस में नमक मिलाकर सर्प के डसनेपर रोगी को तुरन्त ही देने से निश्चय लाभ होता है। यह औषधि कठिन से कठिन समय पर लाभदायक पाई गई है।

३-दूसरी लाभदायक औषधि ईशरमूल की जड़ या पत्तियों का रस है। यह रस रोगी को एक छटॉक देना चाहिये।

४-द्रोणपुष्पी की पत्तियों को कूटकर उनका रस निकाल कर कुछ तो रोगी को पिलावे और कुछ उसकी आँखों पर लगावे। जो कुटी हुई पत्तियाँ बचें उनको घाव में भर देवे। अगर रोगी को मूर्च्छा आगई हो तो वह रस उसके कानों और नथनों द्वारा अंदर पहुँचाना चाहिये।

५-चौलाई की छोटी छोटी जड़ों को चावलों के धुले हुए जलमें पीस कर रोगी को घी के साथ देना चाहिये।

६-गाँजेकी चिलममें से कुछ कालख (कालोंच) खुर्चकर निकाल ले और पानी के साथ एक साफ पत्थर पर खूब रगड़े। उसमें से जो लाल रङ्गका जल निकले उसे घाव में डाले। इससे विषका नाश अवश्य होता है। यह दवा बहुत ही भरोसे की है।

७-आलियन्दर (करावी) की जड़ का रस ६ रत्ती रोगी को सेवन कराना चाहिये। आवश्यकतानुसार रस की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। परन्तु ३ माशे से अधिक कदापि न देनी चाहिये।

८–कपास की पत्तियों का रस ५ रत्ती से कुछ कम या विशल्यकरणी की पत्तियों का रस ३ माशे सेवन कराने से भी समान लाभ होता है।

९–अञ्जीर का एक फूल, चौलाई की एक जड़, और ढाई दाने काली मिरच, इन सबको खरल में डालकर बारीक चूर्ण कर लेवे। यह बुकनी विषनाशक है।

१०–एरण्ड की छाल को बासी जल में कूटकर एक तोला सेवन करना चाहिये।

११–बीजू केले की जड़ को ३ कालीमिरचों के साथ पीसकर लगाने से खासकर गोआ–कास्ट्रिक्टर नामक सर्प के विष का नाश होता है।

१२–जावित्री को थूक के साथ रोगी की आँखोंमें सुरमेकी तरह लगाना चाहिये और यही दवा घावपर मरहम की तरहभी लगानी चाहिए। अपने असर की वजह से इस दवा की बहुत प्रशंसा की गई है।

१३–थूहर का निचोड़ा हुआ रस घाव पर लगावे। इस की जड़ काली मिरचके साथ पीसकर रोगीको खिलाई और घाव पर लगाई जाती है।

डाक्टरी चिकित्सा।

१–सर्प के डसने पर तुरन्त ही घाव को तेज़ चाकू से ज़रा चौड़ा करके पोटाशियम परमगनेट भरकर बाँध देवें।

२–सर्पसे डसे हुए मनुष्य को एण्टीविनम का टीका भी देतेहैं।

—o—

प्राप्ति–स्वीकार।

——o——

आरोग्यविधान व भारतमें मन्दाग्नि–लेखकः–आयुर्वेदपञ्चानन, पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, सम्पादक–सुधानिधि। प्राप्तिस्थान–सुधानिधिकार्यालय, दारागंज, प्रयाग। मूल्य ।॥) रु०।

आज कल अधिकांश भारतवासी मन्दाग्नि,अजीर्ण आदि रोगों द्वारा सदैव पीड़ित रहकर अत्यन्त कष्टमय जीवन व्यतीत करतेहैं। यदि उक्त रोगों के पैदा होने के कारण और उनसे बचने के उपायों को भली भाँति जान लिया जाय तो वे शीघ्र ही दूर किये

जासकते हैं। इस पुस्तक में ऐसी उत्तम और विशद रीति से उक्त रोगों के कारण, लक्षण, उपद्रव, रोग से बचने और रोग को दूर करने के उपाय बताये गये हैं कि जिनको पढ़कर प्रत्येक मनुष्य सहज में अपनी आरोग्यरक्षा कर सकता है। इसको लिखकर शुक्ल जी ने देश का बड़ा उपकार किया है। इसमें सभी आरोग्यसम्बन्धी विषयों का विवेचन किया गया है। पुस्तक बड़ी उपयोगी है और विशेष अन्वेषण के साथ लिखी गई है। यह आयुर्वेदविद्यालय और हिन्दीसाहित्यसम्मेलन की परीक्षाओं में बहुत दिनों से भर्ती है।

--*--

मलावरोध चिकित्सा—लेखक और प्रकाशक-वैद्यराज पं० हनुमत्प्रसाद जी जोशी, वैद्यशास्त्री, मारवाड़ी औषधालय-कालबादेवी-रोड, बम्बई। मूल्य ।≥)

इस पुस्तक में मलावरोध (कब्ज़) के लक्षण और उसको दूर करने के उपाय विस्तृतरूप से बताये गये हैं। इस समय देश में घर घर कब्ज़ की शिकायत सुन पड़ती है। इस को पढ़कर प्रत्येक मनुष्य लाभ उठा सकता है-और इस दुष्ट रोग के पंजे से छुटकारा पासकता है।

---o---

हृदय वीणा—पंडित हनुमत्प्रसादजी जोशी, वैद्यशास्त्री, एक विद्वान् वैद्य होनेके सिवा अच्छे कवि भी हैं। प्रस्तुत पुस्तक आपही के हृदय की मधुर ध्वनि है। इसमें अनेक विषयों पर राष्ट्रिय भावों से पूर्ण सुन्दर कवितायें लिखी गई हैं। प्रत्येक हिन्दीप्रेमी को यह पुस्तक मंगाकर उसका रसास्वादन करना चाहिए। मूल्य ॥-) आने। प्राप्तिस्थान-पूर्वोक्त।

वैद्य के ग्राहकों को ये दोनों पुस्तकें आधे मूल्य में दीजायेंगी।

---o---

विविध-विषय।

शुक्लजी का त्यागपत्र—वर्तमान असहयोग आन्दोलन के कारण आयुर्वेदीय पञ्चानन पं० जगन्नाथ प्रसादजी शुक्ल ने प्रयाग-आयुर्वेदमहाविद्यालय के कार्य से इस्तीफ़ा दे दिया। शुक्ल जी

कर्मवीर पुरुष हैं। उन्होंने इस समय राष्ट्र की सेवा से अलग रहना उचित नहीं समझा; इसीलिये आपको अपने प्यारे आयुर्वेद-महाविद्यालय के कार्य्य से त्यागपत्र देना पड़ा। हम शुक्लजी को, राष्ट्रकार्य में संयुक्त होने के लिये बधाई देते हैं। स्वराज्य की प्राप्ति के बिना हमारी किसी भी कार्य की उन्नति नहीं होसकती। आयुर्वेदकी उन्नति भी स्वराज्यपर ही अवलम्बित है। नीचे आपके त्यागपत्र की नकल दी जाती है:—

त्यागपत्र।

महोदय, इस समय देश की विकट राजनीतिक परिस्थिति के कारण मेरी धारणा है कि इस देश के कर्त्ता पुरुष को भारतमाता की पुकार सुन उसकी सेवा के लिए दौड़ पड़ना चाहिये। तद्नुसार असहयोग आन्दोलन में योगदान करने के लिये मैंने अपने को समर्पित करदिया है—और अनिश्चित समय तक के लिए मैंने अपने घर का सम्बन्ध और व्यवसाय भी शिथिल करदिया है। ऐसी दशा में "प्रयाग-आयुर्वेद महाविद्यालय" के काम के लिए मैं समय नहीं दे सकता। और बिना विशेष समय दिये उसका सञ्चालन हो नहीं सकता, इसलिये विद्यालय के कार्य्य में क्षति न होने के लिये आपकी सेवा में मैं "आयुर्वेदमहाविद्यालय" के संयुक्त मन्त्री और उसकी कार्य्यकारिणी समिति के मन्त्रीपद का त्यागपत्र भेजकर प्रार्थना करता हूँ कि आप उसके लिये उचित प्रबन्ध करें और उस पद पर उपयुक्त सज्जन की नियुक्ति समिति द्वारा कराकर कार्य्य सञ्चालन करावें। यद्यपि आयुर्वेदमहाविद्यालय का कार्य्य भी राष्ट्रिय है और उसे सम्पादित करते हुए भी मैं राष्ट्र और भारतमाता की सेवा ही कररहा था, परन्तु इस विशेष प्रसङ्ग में विशेष सेवा के लिए अग्रसर होना ही मैंने उचित समझा और उसी से मुझे आत्मसन्तोष हुआ। मेरी समझ है कि इस संग्राम में यदि भारत विजयी होकर स्वराज्य का उपभोक्ता बनसके तो सम्पूर्ण राष्ट्रिय कार्यों की उलझनें आपसे आप सुलझ जावेंगी-और आयुर्वेद के अभ्युदय का भास्कर अपनी सम्पूर्ण प्रतिभाओं और किरणों के साथ प्रकाशमान होसकेगा। उस समय आयुर्वेद की उन्नति में बाधक कोई विघ्न ठहर नहीं सकेंगे। इसलिए आयुर्वेद की भविष्य कल्याणकामना को हृदय में लेकर

Regd. No A. 587.

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिक-पत्र

सम्पादक—शङ्करलाल वैद्य

वर्ष १० } मुरादाबाद। अगस्त सन् १९२२ { संख्या ८

विषय-सूची

१-आयुर्वेद के विद्यालय और परीक्षायें २०९
२-गर्भाधान २१३
३-जीवनशक्ति का पतन और मृत्यु २१७
४-डूबे हुए को जिलाना २२०
५-निद्रा २२४
६-माता का कर्त्तव्य २२५
७-शरदृतु का आहार विहार २३३
८-परीक्षित-प्रयोग २३५
९-प्राप्ति स्वीकार व संक्षिप्त समालोचना २३७
१०-विविध समाचार २३९

प्रकाशक—हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद।

वार्षिक मूल्य १॥) [एक संख्या का मूल्य ≈)

---o---

Printed by—Pt. Lakhi Ram Sharma,
at the Sharma Machine Printing Press,
MORADABAD.

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष १० } मुरादाबाद । अगस्त १९२२ { संख्या ८

आयुर्वेद के विद्यालय
और परीक्षायें ।

जब देश की आयुर्वेद की संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं की अपील को पढ़ते हैं तो यही जान पड़ता है कि अभी आयुर्वेद की जागृति के लिये बहुत कुछ प्रयत्न की आवश्यकता है। अभी एक भी आश्रय ऐसा नहीं जिससे वैद्यलोग अन्यचिकित्साओं का सामना कर सकें। क्योंकि अद्यावधि भारत में एक भी आदर्शविद्यालय आयुर्वेद की शिक्षा का नहीं, जहाँ सर्वाङ्गरूप से पठन, पाठन व अभ्यस्त कर्म का प्रबन्ध हो ! जब जब आयुर्वेद महामण्डल के प्रस्तावों को पढ़ते हैं तब तब यही आवश्यकता प्रतीत होती है कि नवीन प्रणाली के वैद्य तय्यार करने के लिये एक शिक्षालय की आवश्यकता है। जब हम विचारकर दृष्टिपात करते हैं तो आश्चर्य होता है कि यह क्या बात है। कुछ थोड़े से वैद्य तो इस बात की धुन में हैं कि एक आदर्शविद्यालय खुलना चाहिये जहाँ विधिपूर्वक शिक्षा का

श्रीधन्वन्तरये नमः।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष १० { मुरादाबाद । अगस्त १९२२ } संख्या ८

आयुर्वेद के विद्यालय
और परीक्षायें।

जब देश की आयुर्वेद की संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं की अपील को पढ़ते हैं तो यही ज्ञान पड़ता है कि अभी आयुर्वेद की जागृति के लिये बहुत कुछ प्रयत्न की आवश्यकता है। अभी एक भी आश्रय ऐसा नहीं जिससे वैद्यलोग अन्यचिकित्साओं का सामना कर सकें। क्योंकि अद्यावधि भारत में एक भी आदर्शविद्यालय आयुर्वेद की शिक्षा का नहीं, जहां सर्वाङ्गरूप से पठन, पाठन व अभ्यस्त कर्म का प्रबन्ध हो! जब जब आयुर्वेद महामण्डल के प्रस्तावों को पढ़ते हैं तब तब यही आवश्यकता प्रतीत होती है कि नवीन प्रणाली के वैद्य तय्यार करने के लिये एक शिक्षालय की आवश्यकता है। जब हम विचारकर दृष्टिपात करते हैं तो आश्चर्य होता है कि यह क्या बात है। कुछ थोड़े से वैद्य तो इस बात की धुन में हैं कि एक आदर्शविद्यालय खुलना चाहिये जहाँ विधिपूर्वक शिक्षा का

प्रबन्ध हो और परीक्षा भी यथाक्रम हो । इनकी पुकार तो अभीतक पूर्ण नहीं हुई । परन्तु नित्यप्रति पता चलता है कि अमुक स्थान में आयुर्वेद महाविद्यालय खुला है वहाँ शिक्षा का समुचित प्रबन्ध है । अमुक स्थान में परीक्षायें होती हैं, औषध निर्माणशाला है,वहाँ ऐसा उत्तम प्रबन्ध है, शल्यचिकित्सा का अभ्यास कराया जाता है, ऐसा है और वैसा है इत्यादि । अनेक विज्ञप्ति समाचारपत्रों में भी निकलती हैं जिनसे ज्ञात होता है कि आयुर्वेद की उन्नति के लिये बहुत कुछ काम हो रहा है । क्योंकि प्रतिवर्ष हज़ारों की संख्या में सैकड़ों नगरों की परीक्षाओं में विद्यार्थी उत्तीर्ण होकर अपने नामके अगाड़ी बड़ी बड़ी पदवी रखकर अपना प्रचार करते दीख पड़ते हैं-और यदि हिसाब लगाया जाय तो लाखों रुपया प्रचलित शिक्षाक्रम में व्यय भी होता होगा तो क्या हम इस प्रचारित कार्यक्रम को आयुर्वेद की उन्नति के लिये उपयुक्त नहीं मानसकते हैं । क्योंकि यह भी देखा जाता है कि बहुत से प्रचलित विद्यालय और परीक्षाओं का प्रबन्ध एवं उनकी जिम्मेवारी भारत के अच्छे २ विद्वान् संचालकों के हस्तगत है, फिर उनपर यह भी विश्वास नहीं होता कि कुछ गड़बड़ होती होगी, इसलिये क्या हम नहीं कह सकते कि आयुर्वेद की शिक्षा का एवं परीक्षाओं का प्रबन्ध बहुत अच्छा हो रहा है ? क्यों आयुर्वेदमहामण्डल के कार्यकर्ता इस बात की धुन में हैं कि एक आदर्शविद्यालय की आवश्यकता है ? क्या प्रचलित विद्यालय और परीक्षाओं के प्रचारको आयुर्वेदमहामण्डलके कार्यकर्त्ताओं अथवा जो प्रचलित कार्यक्रम के विरुद्ध हैं उनसे हम कह सकते हैं कि आपकी दृष्टिमें इनके प्रचलित कार्यों में क्या २ दोष हैं ? क्यों नहीं आप इस उन्नति को मानते हैं ? तो कहना होगा कि वर्तमान में प्रचलित आयुर्वेद के विद्यालय और परीक्षायें यथार्थ कार्य में तत्पर नहीं हैं, किन्तु स्वार्थतत्पर हैं । विद्यालय जो हैं उनमें तो केवल ग्रन्थों का पाठ बँचवाकर पास करादिया जाता है और जहाँ जहाँ मनमानी परीक्षायें जारी हैं वहाँ परीक्षा की पदवी के लालच से छात्र कुछ ग्रन्थों के अंशों को यादकर परीक्षा पास करलेते हैं । कई संस्थायें तो ऐसी जारी होगई हैं जो दक्षिणा लेकर ही वैद्यराज, आयुर्वेदविशारद और आचार्य आदि के टाइटिल का सार्टिफिकेट एवं पदक तक भेजदेती हैं । बहुत से गुरु भी ऐसे बन जाते हैं जो दक्षिणाके प्रलोभन से महामूर्ख को भी वैद्यराजका मुकुट

पहरा देते हैं। जहाँ देखो वहाँ हज़ारों आयुर्वेदाचार्य ऐसे मिलजा-यँगे जो आयुर्वेद के अर्थ तक की व्युत्पत्ति नहीं करसकते; ज्ञान होना तो दूर रहा। भारत में बहुत कम ऐसे वैद्य निकलेंगे जिनको यथार्थ में वैद्य कहसकते हैं। यहाँ तक धींगाधींगी होरही है कि तेली,तमोली,जुलाहे,चमार और भंगी तक अपने को धन्वन्तरि मान बैठे हैं। बहुतसे अन्य शास्त्रों के विद्वान् भी जब देखतेहैं कि हमारा जीवननिर्वाह अन्यवृत्ति से नहीं होता तो अपने को धुरन्धर वैद्य गिनने लगतेहैं। जहाँ कहीं व्याकरण आदिका कामपड़ा तो सिद्धान्त की फक्किकायें उड़ाने लगते हैं। वास्तव में धुरन्धर जो यह भी नहीं जानते कि त्रिकटु और फलत्रिक किसका नाम है। गुरुमुख से पढ़ कर वैद्य बनना तो उन्हेंलज्जास्पद मालूमहोताहै वेसमझते हैं कि हमने व्याकरण औरन्यायपढ़ लिया है तो वैद्यक क्या वस्तु है,यह पढ़े लिखे बहुत से वैद्यों की लीला है! वर्तमान में दिल्ली, पीलीभीत, लुधियाना, हरिद्वार खुर्जा, अलीगढ़, प्रयाग, लाहौर, अमृतसर, बम्बई, कलकत्ता आदि अनेक स्थानों में वैद्यकविद्यालय हैं और परीक्षायें होती हैं,परन्तु उनसे उत्तीर्ण हुए बहुत से वैद्य ऐसे हैं जिन्हें यह भी पता नहीं कि हमने जो पढ़ा है उसका ज्ञान भी हमें है या नहीं? केवल नाममात्र का प्रशंसापत्र ही रखते हैं! इन्हीं सब बातों को सोचकर आयुर्वेदमहामण्डल का जन्म हुआ था, जिसने कमर कसी थी कि जो खराबियाँ आयुर्वेद के लिये होरही हैं वे दूर करदी जायँगी। इसलिये उसके संगठित विद्वानोंने एक आयुर्वेदका शिक्षाक्रम बनाया और तदनुसार परीक्षा आदि का प्रबन्ध किया जो वर्तमान में भी जारी है। प्रत्येक वर्ष भिन्न भिन्न केन्द्रों में परीक्षायें होती हैं। सैकड़ों छात्र उत्तीर्ण होजाते हैं; परन्तु कहना होगा कि जो यथार्थ लक्ष्य था वह पूर्ण नहीं हुआ। किन्तु जैसी अन्य परीक्षायें लोगों ने मनमानी जारी करख्खी हैं वैसे ही अब आयुर्वेदविद्यापीठकी भी है,उनमें कुछभी प्रमुखता नहीं और न परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थी ही योग्य दीख पड़ते हैं। यहाँतक हमने देखा और सुना है कि केन्द्रों के अध्यक्ष विद्यार्थियों से मिलजाते हैं और प्रश्नपत्र को बतादेते हैं। कहीं कहीं तो विद्यार्थी पुस्तक तक पास में रखकर लिखा करते हैं। यही कारण है कि विद्यापीठ के उत्तीर्ण विद्यार्थी योग्य नहीं होते, इसलिये विद्यापीठ की परीक्षायें कुछ उपादेय नहीं? बल्कि ऐसे मूर्ख प्रशंसापत्र लेरहे हैं जो कदापि

वैद्य कहलाने के योग्य नहीं, इसलिये आयुर्वेद-महामण्डल की वर्तमान परीक्षा का प्रबन्ध वैद्यक के नाम को कलङ्कित करने वाला है। अतः बहुत शीघ्र आयुर्वेद की स्थायीसमितिको इस ओर ध्यान देना चाहिये। साथ ही हम वैद्यक की जो पुरातनसंस्था में हैं-जैसे दिल्लीका बी०एल०आयुर्वेदविद्यालयएवंतिब्बी एण्ड आयुर्वेद कालेज, पीलीभीत का ललितहरिकालेज, लाहौर का डी० ए० वी० कालेज का आयुर्वेद विभाग, जयपुर का महाराजासंस्कृतकालेज का आयुर्वेद विभाग, बम्बई का प्रभुरामआयुर्वेदकालेज, जहाँ आयुर्वेद की शिक्षा और परीक्षा का पूर्ण प्रबन्ध है-उनके संचालकोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे सब आपसमें विचारकर एकही प्रणालीको स्थित करके शिक्षा का पाठ्यक्रम मनोनीत करें, जिससे भारतमें एक ही प्रकारकी आयुर्वेदशिक्षा के वैद्य तय्यार होसकें। हमें यह जानकर परमहर्ष हुआ कि कलकत्ते में वैद्यकविद्यापीठ नाम की संस्था का कुछ रोज से उद्घाटन हुआ है, जिसके सचालक भी कलकत्ते के बड़े २ नामी कविराज हैं। साथही ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार का आयुर्वेद कालेज-जिसका बहुत दिनसे आन्दोलन होता आरहा है अब विदित हुआ है कि आनरेबुल लाला सुखवीरसिंहजी प्रधान ऋषिकुल के प्रमुख उद्योग से इस शुभकार्य-का प्रारम्भ होगया। कालेज की बिलडिंग बनने लगी और डाक्टर वी० के० मित्र भूतपूर्व दिल्ली-निवासी प्रिंसिपिल ३००) रुपये मासिक पर नियुक्त हुए हैं। पाठ्यक्रम जारी होगया है, परीक्षा भी इस वर्ष होचुकी। मैं विशेषकर ऋषिकुल आयुर्वेदकालेज के प्रधान महाशय जी से प्रार्थना करता हूँ कि पूर्व से ही कालेज का इस प्रकार प्रबन्ध होना चाहिए जिस से यह एक आदर्शविद्यालय बनसके? वर्तमानप्रणाली से जो कार्यारम्भ होरहा है वह आयुर्वेद की कमी को पूर्ण नहीं कर सकता, किन्तु जैसे और जगह नाममात्र के विद्यालय हैं उन्हीं की संख्या में यह भी गणनीय होजायगा। यह जो परीक्षा रक्खी है उसका ढंग बिलकुल अच्छा नहीं है इससे सिवाय नाममात्र के वैद्य बनने के और कुछ फल नहीं होगा इसलिये मेरी सम्मतिमें यह आदर्श विद्यालय बनाना चाहिये। सबसे पूर्व भारत के भिन्न २ प्रान्तों की एक समिति बननी चाहिये जो शिक्षाक्रम की योजना करे। अब तक जो समिति बन रही है वह नाममात्र के लिये ही है। क्योंकि अब

तक जो कार्य होरहा है वह शायद किसी भी समिति के सदस्य की सम्मति से नहीं होरहा है। इसलिये मनमानी कार्यवाही न होकर आशा है देश के विद्वानों की सम्मति से होगी। ऋषिकुल आयुर्वेद विद्यालय का क्या कर्त्तव्य है वह फिर कभी निवेदन करूँगा। अब जितने वर्तमान में वैद्यक के विद्यालय खुले हैं व जहाँ जहाँ परीक्षायें जारी हो रही हैं उनके सञ्चालकों से विनीत प्रार्थना है कि उन्हें अपने स्वार्थ को छोड़कर, आयुर्वेदकी दशाको देखकर उसपर करुणाकर, सब संस्थायें ऐक्यमत करलेनी चाहिये। सबमें एकसी शिक्षा और परीक्षायें होनी चाहिएँ। मनमानी प्रचलित परीक्षायें जो आयुर्वेद के नाम को बदनाम करती हैं एकदम बन्द करदेनी चाहियें।

आयुर्वेद-महामण्डल की स्थायी समिति से एवं देशके विद्वान् वैद्यों से निवेदन है कि "आयुर्वेद-महामण्डल" भारतवर्ष के वैद्यों की संस्था है इसलिये उनको इसकी त्रुटियाँ शीघ्र दूर करदेनी चाहिये। और आपस के वैमनस्य का दूरकर संस्था के महत्व पर ध्यान देना चाहिये।

निवेदक—नारायण शर्मा, वैद्यराज
मन्त्री० अ० भा० वैद्यसेवा० स०
नोहर (बीकानेर)।

—o—

गर्भाधान।

गर्भाधान शब्द इतना प्रसिद्ध है कि इसको आबाल गोपाल सभी जानते हैं। जरायुज, अंडज और पोतजन्मधारियों की उत्पत्ति बिना गर्भाधान के नहीं होसकती। अर्थात् क्या जरायु (झिल्ली) से पैदा होने वाले मनुष्य आदि, क्या अंडे से पैदा होने वाले पक्षी आदि, क्या पोत प्राणी सिंह आदि ये सभी जीवधारी गर्भ से ही पैदा होते हैं।

गर्भाशय-माता के उस अवयव को कहते हैं जो गर्भका आशय-रहने का स्थान हो अर्थात् जिसमें गर्भ का निवास-होता है। गर्भाशय के अगाड़ी की तरफ मूत्राशय (वस्ति) और पश्चाद्भाग में मलाशय रहता है। गर्भाशय के ऊपर का भाग मोटा होता है, नीचे का भाग जो योनि से जुड़ा रहता है पतला होता है। योनि का आकार शंख की नाभि जैसा होता है उसके भीतर एक के बाद

एक तीन आवर्त्त (चक्कर) होते हैं, उसके तीसरे चक्कर से जुड़ी हुई गर्भशय्या होती है। गर्भशय्या (गर्भाशय) एक तरह की थैली है जिसका आकार राहू मछली के मुख के समान बाहर से छोटा और भीतर से अधिक अवकाशवाला होता है या कुछ कुछ नाशपाती से मिलता जुलता होता है। गर्भाशय के भीतर जो जगह होती है वह बहुत संकुचित होती है। गर्भाधान (गर्भ रहने) के पश्चात् गर्भ की बढ़ती के मुआफिक गर्भाशयकी जगह धीरे२ बढ़ती जाती है। इस गर्भाशय में दंपती के संभोग से जब रज-वीर्य एक त्रित होता है उसी समय कर्मपाशबद्ध आत्मा उस गर्भाशय में प्राप्त हुए रज-वीर्यमें प्रवेश करके ठहरजाता है। इस संमिश्रण क्रिया का नाम गर्भाधान क्रिया है। जैसा कि 'अष्टांग' हृदय सहिता में आचार्य वाग्भट जी ने कहा है—

"शुद्धे शुक्रार्त्तवे सत्वः स्वकर्मक्लेशचोदितः।
गर्भः संपद्यते युक्तिवशादग्निरिवारणौ"॥ १ ॥
(शारीरस्थान प्र०अ०)

पुरुष की शुक्र धातु के शुद्ध होने पर तथा स्त्री की आर्त्तव धातु (मासिकधर्म) के शुद्ध होने पर जीव अपने पूर्वोपार्जित कर्मों को तथा राग, द्वेष, क्रोध, मान आदि दुःखों की प्रेरणा से गर्भाशय में प्राप्त शुद्ध शुक्र और आर्त्तव रूप योनिस्थान में योजना के प्रभाव से अरणी नाम की लकड़ी में अग्नि की तरह गर्भ धारण करता है।

गर्भाधान की उपयोगिता।

गर्भाधान ही संतानोत्पत्ति का प्रधान कारण है। जो स्त्रियाँ वन्ध्या आदि दोषों के कारण गर्भ धारण नहीं करसकती हैं वे संतान को भी उत्पन्न करने में असमर्थ होती हैं। मैंने "संतान का महत्व" नामके लेखमें यह बात अच्छी तरहसे समझाई है कि संसार में संतान का क्या महत्व है, अतः उत्तम सन्तान चाहने वाले दंपतियों-माता पिताओं-को उचित है कि उत्तम गर्भाधान करें। किसान तभी उत्तमोत्तम फल पासकता है जब कि उत्तम भूमि (ऊसर आदि दोषरहित में अच्छी तरह से वर्षा होने पर अनुकूल ऋतु में उत्तम पुष्ट बीज बोता है अन्यथा मेहनत व्यर्थ जाती है और एक दाना भी नहीं पाता है। ऐसा ही संतानोत्पत्ति का

हाल है। क्योंकि गर्भाधान योग्य स्त्री(माता ,मासिक धर्म (आर्तव), शुक्र और आहार के परिपाक से पैदा हुई सर्वशरीरव्यापी रस धातु ये चारों पदार्थ जबतक निर्दोष,पुष्ट और रोग रहित नहीं होंगे तब तक प्रथम तो संतान पैदा ही नहीं होगी अथवा पैदा भी हुई तो विकृत, अल्पायु, कुरूप और चिररोगिणी होगी।

ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्याद्गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः।
ऋतुक्षेत्रांबुबीजानां सामग्र्या अंकुरो यथा ॥ सु०शा०

रोगरहित माता निर्दोष आर्तव, वीर्य, और रस इन चारों के यथायोग्य मिलनेपर उत्तम गर्भाधान होताहै। जैसे वर्षादिक, ऋतु भूमि, जल और बीज इन चारों के ठीक मिलने से अवश्य अंकुर पैदा होता है।

गर्भाधान के योग्य माता।

जिस तरह फल के पैदा होने के लिए भूमि प्रधान है उसी तरह संतान-उत्पत्ति के लिए प्रधान कारण माता है। इस लिए सब से पहिले यह बात विचारणीय है कि स्त्री की अवस्था माता को पदवी प्राप्त करनेके लिए किस समय होजातीहै। यह प्राकृतिक नियम है कि लताओं में फल फूल का उद्गम समय पर ही होता है। अन्य प्राणियों में भी जब तक नियत समय(गर्भधारण का काल) नहीं आजाता है तब तक उनकी इच्छा कभी भी समागम या गर्भधारण करनेकी नहीं होतीहै। नरप्राणी चाहे जितनी कोशिश करे परन्तु मादा प्राणी कभी भी पास नहीं आने देतीहै। यही रीति मनुष्यजाति की है। परन्तु मनुष्य जितनाही शिक्षित प्राणी है उतना ही अनियमित असयमी तथा उद्दंडहै जिन मिथ्या आहार विहारोंसे अज्ञानी पशु भी बचा रहता है.उन्हीं मिथ्या आहार विहारों कायह ज्ञानी मनुष्य इन्द्रियों के वशीभूत होकर बड़े चाव से सेवन करता है यही कारण है कि पशुओंको मनुष्यों की अपेक्षा बहुत कम बीमारियाँ होती हैं और तन्दुरुस्ती भी बहुत अच्छी रहतीहै। मनुष्य तो विशेषकर आजकल के भ्रष्ट जमाने में सब तरह के मिथ्या आहार विहारों को करके अपना, संतान का वा देशभर का स्वास्थ्य नाश करता है और हमेशा रोगों का मन्दिर बना रहताहै। वास्तवमें सूक्ष्म रीति से देखाजाय तो प्रकृति देवी सर्वत्र एकरूप से विराजमान है। जो प्राकृतिक नियम पशु का मान्य हैं उनपर तो ज्ञानी मनुष्य

को चलना चाहिए, परन्तु ज्ञान अधिक होने से जिनमें अज्ञानी पशु आदि भूल चूक करजाते हैं उन भूलों को अपने ज्ञानप्रदीप से देख कर दूर करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। आज कल जो भारतवर्ष में हीन हीन मनोबलशून्य दुर्बल सन्तानें पैदा होती हैं उनमें से अत्यधिक संख्या में तो गर्भस्राव व गर्भपात के द्वारा गर्भावस्था में ही लोकान्तरित होजाती हैं, बाकी जो बचती हैं उनमें कुछ पैदा होते ही, कुछ बाल्यावस्था में, अकालमें हो कालकवलित होजाती हैं कुछ सन्तानें ऐसी पैदा होती हैं जैसा कि प्रसिद्धकवि रहीम ने कहा है-

रहिमन जो गति दीप की कुल कपूत की सोय।
बारे उजियारो करै बढ़े अँधेरो होय॥

इस उपर्युक्त निर्दर्शित क्रम से पाठकों को अच्छी तरह से ज्ञात होगया होगा कि कितनी सन्तानें स्वस्थ,बलवान् और सद्गुणी पैदा होती हैं। इन सबका कारण भारत में प्रचलित बालविवाह, वृद्ध विवाह, अनमेलविवाह और गर्भाधानविधि का अभाव आदि हैं।

बालविवाह से होनेवाली हानियाँ।

आजकल प्रत्येक समाज में ६-८-१० वर्ष तक ज्यादा से ज्यादा १२ वर्ष से पहिले ही पाणिग्रहण संस्कार करने की दृढ़प्रथा प्रचलित है। भारतीय जनसमुदाय की उस शारीरिक, मानसिक, स्वास्थ्यहीन दशा को देखकर और 'अग्निमूलं बलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवनम्'-मनुष्यों के बल का मूल अग्नि है और जीवन का मूल शुक्र धातु है। इस आप्त वचन के अनुसार जीवन के आधारभूत शुक्र को नाश करने वाली दुष्टप्रथा बालविवाह को देखकर तथा उससे होने वाली संक्रामक व्याधियों की तरह संतान प्रतिसन्तान में अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होनेवाली हानियों को विचारकर किस दयालु महामना का चित्त दया से द्रवीभूत न होता होगा।

गर्भाधान का काल।

जब स्त्री गर्भधारण के योग्य होती है उस समय उसके शरीर में बहुत से परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। जैसे हर महीने गर्भाशय से खरगोश के खून की समान व लाख के रङ्ग की समान तरल पदार्थ (एक तरह का खून) कम से कम ३ दिन ज्यादा से ज्यादह ५ दिन बहता है। गर्भाशय व गर्भमार्ग का आकार पहिलेसे बड़ा हो जाता है, स्तनों की वृद्धि होजाती है आदि। ये उपर्युक्त चिन्ह १२वर्ष को

अवस्था से लेकर १६ वर्ष तक की अवस्था में परिपूर्ण हो जाते हैं अतएव कम से कम १६ वर्ष की अवस्था में स्त्री गर्भधारण के योग्य होजाती है, जैसा कि आचार्य वाग्भट ने कहा है—

पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन संगता ।
शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि ॥
वीर्यवंतं सुत सूते ततो न्यूनाब्दयो पुनः ।
रोग्यल्पायुःकुरूपो वा गर्भो भवति नैव वा ॥

स्त्री की अवस्था पूरे १६ वर्ष की होनी चाहिए और पुरुष की २५ वर्ष की व कम से कम २० वर्ष की होनी चाहिए । गर्भाशय में प्रदर आदि कोई रोग नहीं होना चाहिए, मार्ग (गर्भाशय का रास्ता) किसी रोग से दूषित न हो, रक्त, शुक्र, वायु और हृदय ये सब निर्दोष हों, ऐसी अवस्था में समागम होनेसे माता बलवान्, धीमान्, सर्व गुण-सम्पन्न सुतको पैदा करती है । यदि ये सब पदार्थ कम हों व विकृत हों, विशेषकर माता पिता की अवस्था कम हो तो प्रथम तो गर्भ रहेगा ही नहीं, यदि रह भी गया तो बालक रोगी, थोड़ी उम्रवाला, कुरूप, लँगड़ा, लूला, अंधा आदि पैदा होगा । (शेष आगे)

पं० अभयचन्द्र जी जैन, वैद्यशास्त्री ।

जीवनशक्ति का पतन और मृत्यु ।

जिस शक्ति के द्वारा यह शरीर रूपीकल चलती है, उसका नाम जीवनी शक्ति है । इसकी प्रकृति किस प्रकार की है, यह आज तक नहीं मालूम हुआ; किन्तु इसका कार्य विशेषरूप से जाना जाचुका है ।

प्रथम अर्थात् जीवनके प्रारम्भ में यह शक्ति अत्यन्त बलवती होती है । जरायु में कई महीनों के भीतर चींटी की समान शरीर से तीन चारसेर वज़न के भारी शिशुका होजाना कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है । अग्नि जैसे प्रज्वलित होने पर तीव्रता से जलती है, उसीप्रकार गर्भिणी के जरायु में डिम्ब भी अत्यन्त शीघ्रता से बढ़ते रहते हैं । बालक के उत्पन्न होते ही जीवनीशक्ति कुछ कम होजाती है । गत साढ़े नौ महीनों में बालक की जैसी आश्चर्य्यजनक वृद्धि होती है वैसी फिर नहीं होती । कारण, उस समय शरीर का जो गठन हुआ है, बालकके उत्पन्न होनेपर उसकी

ही वृद्धि होगी, नया कुछ भी नहीं बनेगा। आगे बताते हैं कि बलवती जीवनीशक्ति किसतरह बाहरी जगत्से खाद्य और पेय पदार्थों को संग्रह करके शरीर की वृद्धि करती है। कई वर्षों में यौवन के आने-पर जीवनीशक्ति किसप्रकार और भी कम होजाती है और फिर शरीरकी वृद्धि नहीं करसकती। कितने ही वर्षों के बाद जब वृद्धा-वस्था आती है तब जीवनीशक्ति इतनी कम होजाती है कि शरीर का रात दिन जो क्षय होता है उसकी भी पूर्ति नहीं करसकती। उस समय शरीर क्षीण और बलहीन होजाता है। त्वचाके नीचे जो मेद (चर्बी) होती है उसके खर्च होजानेसे त्वचा शिथिल होजाती है। मस्तिष्क और मेरु-मज्जाका कार्य्य कम होजाने से नेत्र, कर्ण आदि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ अपना अपना कार्य्य करने में असमर्थ होजाती हैं एवं परिपाकयन्त्र, फुफ्फुस और हृदय ये अत्यन्त क्षीण होजाते हैं।

उससमय मृत्यु अनिवार्य्य और अलंघनीय होजाती है। वृद्धावस्थामें सामान्य कष्ट के होने से ही मृत्यु होजाती है। यदि कोई कष्ट न हो तो भी इस शिथिल यन्त्रका क्रम क्रम से कार्य्य रुकजाता है। दीपक का तैल जलजाने पर दीपक जैसे बुझजाता है, जीवनीशक्ति का लोप होनेपर मृत्यु भी उसी प्रकार उपस्थित होजाती है।

इसप्रकारकी मृत्यु केवल वृद्धावस्था में ही होती है, यौवन आदिके समय जो मृत्यु होती है, वह रोग अथवा अन्य किसी आगन्तुक कारण से होती है। वृद्धावस्था की मृत्यु शरीर की वृद्धि और पुष्टि आदि क्रियाओंके समान स्वाभाविक और अनिवार्य्य है। यौवन आदि अवस्थाओं की मृत्यु वैसी नहीं होती, वह अनेक समयमें निवार्य्य होती है इसलिए उसको कुछ अंशों में अस्वा-भाविक भी कहसकते हैं। ऐसी अवस्थामें रोग वा अन्य किसी कारणसे मृत्यु होने पर थोड़ी बहुत पीड़ा अवश्य होती है।

वृद्धावस्थामें मृत्यु होनेपर कुछ भी पीड़ा नहीं होती। बालक जैसे माताकी गोदमें सोता है, वृद्धभी उसी प्रकार धीरे धीरे इस जगत् को भूलकर उस विश्वजननी प्रकृति की गोदमें सोजाता है। किन्तु रोगजनित मृत्युसे थोड़ा-बहुत कष्ट अवश्य होता है।

इसके सिवा बेहोशी में मृत्यु होनेपर किसी प्रकारकी यन्त्रणा नहीं भोगनी पड़ती। सौभाग्यवश बहुत से रोगों में मनुष्य मृत्युके

पहले बेहोश होजाता है इसलिए उसको पीड़ा भी कुछ नहीं मालूम होती। और जो मृत्युयें हृदयकी क्रियाके रुकजाने के कारण होती हैं, (वज्राघात से या गालीके लगने से वा अन्यकिसी कारण से-अचानक हृदय का कार्य्य बन्द होजाय तो) उसमें भी मृत्यु इतनी शीघ्र होती है कि पीडा कुछ भी नहीं मालूम होती। वज्राघातकी मृत्यु तो इतनी जल्द होती है कि उसमें पीड़ा जानने का समय ही नहीं मिलता।

मृत्यु की पीड़ा कुछ अधिक भयंकर नहीं है। मृत्युके समय जैसी पीड़ा होती है, वैसा और उसकी अपेक्षा बहुत ज्यादह कष्ट हम जीवनकालमें कभी कभी सहते रहते हैं। किन्तु रोगीके मनमें- "मृत्यु आगई" यह जो भय होता है, मालूम होता है कि वही अत्यन्त भयङ्कर है। किन्तु उसमें भी विशेषता है। दुराचारी मनुष्य मृत्यु के समय जितने डरते हैं, धार्मिक मनुष्य उतने नहीं डरते। साधारणतः मरनेवाले व्यक्ति के भाई, बन्धु उसकी आसन्न मृत्यु को विचार कर और मलिनमुख देखकर जैसा दुःख पाते हैं, रोगीको उस प्रकार कुछ भी कष्ट नहीं होता। बहुत से रोग ऐसे हैं, जिनमें बहुत दिनोंतक यन्त्रणा भोगकर मृत्यु होतीहै कितने ही ऐसे रोग हैं, जिनमें मृत्युके निकट आनेसे पहले कष्ट सहन करनापड़ता है। किन्तु दयारूपाप्रकृति माता ने ऐसे नियम बना रक्खे हैं कि अधिकांश मृत्युओं में बहुत कम पीड़ा होती है और वह बहुत थोड़ी देरतक रहती है।

जब मृत्यु होजाती है तब शरीर धीरेधीरे कठिन होता जाता है एवं ग्रीष्म प्रधान देशों में थोड़ी देरके बाद ही शरीर गलना शुरू होजाता है। इन दोनों चिन्हों के प्रकट होने पर फिर कुछ भी सन्देह नहीं रहता कि मृत्यु होगई है। इस देशमें ग्रीष्म कालमें मृत्यु के दो घंटे के बाद ही शरीर सड़ने लगता है, इससे स्पष्ट जाना जासकता है कि—सड़ना इस विश्वभण्डार के पदार्थों का परिवर्त्तन होनेके सिवा और कुछ नहीं है। हमारे चारों ओर स्थित वायु अम्लजन नामक वाष्प (गेस) से परिपूर्ण रहता है। अम्लजन के सिवा और भी कई प्रकार के वाष्प एवं एक प्रकार के बहुत छोटे कीटाणु इस वायु के भीतर होते हैं। जिस मुहूर्त्त में मृत्यु होती है, उसी मुहूर्त्त में ये कीटाणु हमारे शरीर पर आक्रमण करलेते हैं। इसी समय बाहर की वायु में स्थित अम्लजन वाष्प कीटाणुओं

की सहायता से प्राप्त होकर क्षय करने में पूर्णरूप से समर्थ होती है। तब अम्लजन, शरीरस्थ अङ्गार नामक प्रकृत पदार्थ के साथ मिलकर आङ्गारिकाम्ल वाष्प बनकर उड़जाती है। अम्लजन ही जलजन नामक वाष्प के साथ मिलने पर जल और जलीय वाष्प बनकर कुछ उड़जाता है और कुछ पड़ा रहता है। एवं मांस, स्नायु आदि यवक्षारजन नामक प्रधान अंश एमोनिया वाष्प बनकर वायु के साथ मिलजाते हैं एवं हमारे शरीर का गन्धक अपने आप 'जलजनित गन्धक' नामक भयङ्कर दुर्गन्धित वाष्प बनकर उड़जाता है और एमोनिया की दुर्गन्धको और भी तीव्र करदेता है। इसीलिए जीवों का शरीर सड़ने पर इतना दुर्गन्धित मालूम होता है। इसी तरह शरीरस्थ चूर्ण (चूना) ,लोह, सोडा, पोटाश आदि समस्त धातु पदार्थ भूमि में गिरकर आस पास के वृक्ष, लता आदि के शरीर को पोषण करते रहते हैं और अस्थि, मद, केश आदि जो औरों की अपेक्षा कठिन और सारयुक्त पदार्थ हैं वे इतनी जल्दी नष्ट नहीं होते, किन्तु कालान्तर में वे भी विश्लिष्ट होकर अपनी अपनी स्वाभाविक प्रकृत धातुओं और अधातुओं की अवस्था को प्राप्त होजाते हैं-और निकट के वृक्ष, लतादि का आहार बनजाते हैं। यदि शरीर बिना सड़न हुए तत्काल जला दियाजाय तो उपयुक्त पदार्थों का रासायनिक विश्लेषण दो तीन घंटे के भीतर ही होजाता है।

डूबे हुए को जिलाना।

कहावत है कि साँप के पकड़ने वाले को मृत्यु प्रायः साँप के काटने से ही होती है। उसी तरह तैराकों की मौत भी प्रायः पानी ही में होती है। इटाली देश में मैनुएल नामी बड़ा भारी तैराक था, वह प्रायः तैरा ही करता था, उसे लोग जलजन्तु कहा करते थे। एक दिन इटलीनरेश ने स्वयं उसकी तैराकी देखनी चाही और कहाकि झीलभर में एक लाल मछली है उसे पकड़लाओ। विचारा मैनुएल उस मछली को पकड़ने के लिये पानी में घुसा, मछली भी अपने जीवन नाशके भय से एक घासके झुण्ड में घुसगयी। मैनुएल भी वहां घुसा। अन्त में मैनुएल इतना नीचे घुस गया कि संयोगसे उसकी टांग एक झाड़ी में इस प्रकार फँसगयी कि फिर वह न निकलसका। सारी दर्शकमण्डली इस लिए बाहर घंटों खड़ी रही

कि वह मैनुएलको देखे, लेकिन बिचारा मैनुएल सुरपुर को सिधार गया था। सशोक चित्त हो राजा लौट गये।

इसी प्रकार की हज़ारों घटनायें होती रहती हैं। अब हमें उन तरीकों पर विचार करना है कि जिनसे पानी में डूबा हुआ आदमी बाहर लाये जाने पर जीवित किया जासकता है। मैं कुछ ऐसे तरीकों को बतलाऊँगा जिनसे १५-२० मिनट का डूबा हुआ व्यक्ति भी जीवित होसकता है। आप हँसी हँसीमें तत्काल डूबी हुई मक्खी को हाथ में लेकर उसे धीरे धीरे गरम करिये, थोड़ी देरमें देखियेगा कि मक्खी उड़कर अन्यत्र कहीं चली जायगी। इससे हमें यह पाठ सीखना चाहिये कि डूबे हुए व्यक्ति के ठंडे शरीर में किसी प्रकार की कुछ गर्मी पहुँचानी चाहिए।

सबसे पहला उपाय जो हमें करना चाहिए वह यह है कि डूबे हुए व्यक्ति का श्वास शीघ्र चलने लगे। फिर रुधिरसंचार और शरीर की गरमाहट पर विशेष ध्यान दें। डूबे हुए व्यक्ति के कपड़ों को फौरन उतार कर फेंकदे। मुँह में पानी, झाग या कंकड़ इत्यादि चला गया हो तो उसे अँगुली डालकर फौरन निकाल दे। शरीर से जल निकालने के लिए डूबे हुए मनुष्य को उलटा करके लिटा दे। उसकी छातीके नीचे उस समय जो कुछ मिले रखदेवे। तकिया सब से अच्छा होता है। उसकी एक हाथ की कलाई पर उसका सिर रख दे। उसके मुख, नाक इत्यादि ज़मीन से न लगने दे, उसकी पीठ को तीन चार बार चार, पांच सेकंड तक दबावे, फिर उलटा लिटाकर उसके पेट के नीचेके हिस्से को दबावे। इससे पेट के भीतर का सारा जल निकल जायगा।

यदि डूबा हुआ व्यक्ति अधिक उमरका हो, शरीर अधिक मोटा ताजा हो तो उसे अच्छा करने में और भी किसी की मदद लेनी पड़ेगी। शुद्ध हवा का विशेष ध्यान रखना चाहिए। यदि उलटा करते समय जीभ न निकले तो उसे पकड़कर निकाल लेना चाहिए और सम्हालकर पकड़े रहे। यदि उपर्युक्त उपायोंसे श्वास चलने लगे तो फिर शरीर में गर्मी भी धीरे धीरे आ जायगा। यदि श्वास न चले तो नाक में बत्ती का प्रयोग करे। छींक आने से सम्भव है कुछ पानी के निकलने में भी सुभीता हो और श्वास भी चलने लग जाय।

उसके मुख, छाती और हाथोंको गरम करे। होसके तो तलुओं को गरम करे। यदि एक बार गर्म और एक बार ठंडे जलका छींटा सारे शरीर में दे तो अच्छा है। यदि चार पाँच मिनट के भीतर कुछ लाभ न मालूम पड़े तो नीचे लिखे हुए तरीकों का प्रयोग करे।

"अमेरिकन फिजिकल कलचर" में एक स्थान पर लिखा है कि तात्कालिक चिकित्साके साधारण तरीकों से डूबा हुआ मनुष्य यदि जीवित न हो तो उसे एक और विधि से जीवित करने का प्रयत्न करे।

डूबे हुए व्यक्ति को उलटा लिटा कर उसके पेट व पसलियों के नीचे कपड़ा या और किसी चीज का तकिया बनाकर रखदे। फिर उसे ऐसा सुलावे कि पीठ का कुछ भाग जमीन से छूता रहे। इस प्रकार करवट दिलाकर उलटाकरे। उलटा करनेसे शरीरकी हवा बाहर निकलती है और करवट से बाहर की हवा शरीर के भीतर प्रवेश करती है। एक आदमी केवल उसके सिर को घुमाते और उलटा करते समय एक हाथ मस्तक के नीचे लगाये रहे। थोड़ी ही देर में गरम वस्त्र से ढककर सूखा कपड़ा पहिना दे।

इतनी क्रिया होजाने पर हाथ पैरके गरम करनेपर विशेष ध्यान दे। यदि इससे भी चार पाँच मिनट के भीतर श्वास न चले तो और तरीके इस्तेमाल में लावे। इस तरीके में कम से कम तीन आदमी चाहिएँ।

डूबे हुए व्यक्तिको समथल भूमिमें चित्त लिटा दे। सिर और कंधेके नीचे तकिया लगादे। जीभको एक आदमी सावधानी से पकड़े रहे। चित्त लिटाकर सुलाने में जीभका पकड़ना ज़रूरी है। दूसरा आदमी दोनों हाथ पकड़कर, ज़रा ऊपरसे लाकर रोगी के सिरसे मिलादे। पसली ऊपर उठजाने के कारण छाती हलकी हो जाती है। इससे हवा शरीरके भीतर प्रवेश करती है। रोगीके हाथ उसके सिर से दो तीन सेकंड लगाये रखे। फिर नीचे लाकर छाती की ओर लगावे और दो तीन सेकंड तक दबाता रहे। इससे छाती की हवा बाहर निकलती है। इससे रोगी अवश्य हो श्वास लेने लगजायगा। पर एक बात पर विशेष ध्यान रक्खे कि जबतक रोगी अपने आप श्वास न लेने लगजाय तब तक इस

क्रियाको बराबर जारी रखे। कितने ही लोग तीन चार घंटेके बाद श्वास लेने लगे हैं।

यह विधि कुछ कठिन है और अकेले करना भी असम्भव है। पर इसको अपनी निगरानीमें एक अनजान आदमीसे भी रुकावट या प्रारम्भिक चिकित्सा जानने वाला करा सकता है। यदि दो आदमी थक जाँय तो और दूसरे दो आदमी लगजायँ। इसी प्रकार बराबर क्रिया जारी रहे। जब अपने आप श्वास आने जाने लगे तब इन बनावटी उपायों को छोड़ दे। गरम और ठंडा जल बारी बारी से मुखपर छिड़कता जाय।

जब श्वास चलने लगजाय तब हाथ पैरों पर सोंठ, कायफल इत्यादि को पीस कर मालिस करे। रोगीके समस्त शरीर को कपड़े से ढंककर उसे बराबर मलता रहे। शरीर का बराबर मलते रहने से खून आसानी से हृदय की ओर दौड़ता है। इससे रोगीको नीरोग होनेमें विशेष सुभीता होता है।

पेटके ऊपरी भागपर, दोनों बगलों में, पाँवोंके तलुओंके ऊपर तथा दोनों ऊरुओं के बीचमें गरम जलसे सेंके। होसके तो बोतल, गरम ईंट या बालू से भी सेंकना चाहिए।

इस प्रकार जब रोगीके शरीरमें काफी गरमी पहुँच जाय और वह गले से कुछ अपने आप उतारने लगे तब उसे दो तीन चम्मच गरम जल पिलावे। जलके उतर जानेके बाद गरम चाय, बादाम, दूध इत्यादि देवे। इन सब क्रियाओंके बाद रोगीको मुलायम बिछौनेपर सुलाने का प्रयत्न करे। अगर नींद आजाय तो इससे बढ़कर और क्या औषधि है। पर कभी कभी इतनी क्रिया होने पर भी श्वास रुकजाता है। उस समय राई या अलसीकी पुलटिस छातीपर बांधे। यदि श्वास रुके तो फिर पहली विधि को काम में लावे।

बहुत से लोग "नीचे सिर ऊपर टाँग" की विधिका प्रयोग करते हैं। यह विधि ठीक नहीं। इससे कभी कभी रुधिर सिरमें चढ़जाता है और बड़ीही विकट समस्या उपस्थित होजाती है।

जबतक श्वास चलने न लगजाय तबतक शरीरमें गरमी लाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। जबतक रोगी अपने आप न निगल सके तबतक उसे खानेके वास्ते कुछ नहीं देना चाहिये। इस प्रकार जलसे डूबे हजारों लोग बचाये जासकते हैं। (आज)

निद्रा।

निद्रा से सर्वप्रकार की थकावट दूर होती है और हम पुनः तरोताजगी प्राप्त करते हैं। शारीरिक और मानसिक व्यथा होने पर निद्रा आना कठिन है, परन्तु जब निद्रा आजाती है तब उतने समय के लिए हमारी सम्पूर्ण व्याधियाँ दूर होजाती हैं।

निद्रा की समान स्वास्थ्यके लिए औषध नहीं है। उत्तम निद्रा के आनेसे रोग का ज़ोर कम हो जाता है, थकावट दूर होती है और पुनः काम करने की शक्ति शरीर में उत्पन्न होती है।

निद्रा एक प्रकार की मृत्यु का प्रतिबिम्ब ही है। यदि यह सत्य है तो मृत्यु भी हमें सुखदायी होनी चाहिए।

निद्रा भगवान् की दी हुई अपूर्व देन है। यदि हम इसका पूरा पूरा महत्त्व समझजावें तो फिर हमें निद्रा नाश करनेवाले समस्त कारणों को दूर करदेना चाहिए।

अत्यन्त भोजन और कुपच निद्रा नाश करने का प्रबल कारण है इसलिए रात्रिकाल में मिताहार करना चाहिए और देर में पचने वाला भारी भोजन कदापि नहीं करना चाहिए। एवं बीच २ में उपवास करने से शरीर का स्वास्थ्य उत्तम रहता है।

चाय और काफ़ीके अत्यन्त सेवनसे निद्रा का नाश होता है। उसीप्रकार तमाखु, सिगरेट, मादक और उत्तेजक पदार्थभी निद्रा को नष्ट करते हैं। आजकल बहुत लोग उक्तपदार्थों के पञ्जे में फँसजाते हैं। हमारे देशमें इन पदार्थों का चलन दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। ऐसे पदार्थों के अत्यन्त सेवन करने से बहुत से मनुष्यों की निद्रा नाश होजाती है और जब वे इन सत्यानाशी व्यसनों का त्याग करदेते हैं तब उनका स्वास्थ्य पूर्ववत् हो जाता है और निद्रा भी पूरी आने लगती है।

अत्यन्त चिन्ता से भी निद्रा का नाश होजाता है। बीती हुई बातों का मनन करते रहने से निद्रा एकदम उड़जाती है और फिर सहज में नहीं आती।

निद्रालाने के उपाय—(१) शयन करते समय चित्तको पूर्ण शान्त रखना चाहिए। सर्वप्रकार की चिन्ताओं को दूर करदेना चाहिए। (२) मस्तिष्क ठंडा रहना चाहिए। (३) भोजन सादा और उस में घी, दूध, दही, मक्खन, फल और शाकादि पदार्थों का समावेश अधिकता से होना चाहिए। (४) प्रतिदिन थोड़ा, बहुत शारीरिक परिश्रम अवश्य करना चाहिए।

दशरथ बलवन्त यादव

माता का कर्त्तव्य।

(गत जुलाई सन्र-की संख्या से आगे)

नवाँ प्रकरण।

(बालक को हाथ से खिलाने के नियम।

यद्यपि बालक को दुग्धपान कराना ही श्रेयस्कर है, परन्तु जब प्रसूता दूध पिलाने में असमर्थ हो और योग्य दाई न मिलसकती हो तो ऐसी दशा में बालक का जीवन स्थिर रखने के लिए उसको कोई हितकर पदार्थ खिलाने के सिवा अन्य उपाय नहीं है। अथवा यह कहा जासकता है कि ऐसी दशा में लाचार होकर बालक का प्रतिपालन करना पड़ता है। जिस बालक की शारीरिक अवस्था उत्तम हो और वह बलवान् हो तो ऐसी दशामें बालक को सावधानी के साथ कोई उपयोगी पदार्थ सेवन कराने से उसका शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है। यदि बालकका शारीरिक स्वास्थ्य ठीक न हो अथवा जो बालक पूरे दिनोंका न हो तो ऐसा बालक उत्तम प्रकार से पालन-पोषण किये जाने पर भी शीघ्र ही मृत्यु के मुख में पतित होजाता है अथवा अनेक भयङ्कर रोगों से ग्रसित रहता है जिससे उसकी रक्षा करना बहुत ही कठिन होजाता है। इसलिए ऐसे बालकों का पालन-पोषण माता-पिताको विशेष सावधानी के साथ करना चाहिए।

यदि बालक को हाथसे खिलाने की आवश्यकता हो तो पूर्वोक्त नियम के अनुसार खिलाना चाहिए। पहले दुग्धपान के बदले कौनसी वस्तु देनी चाहिए और किस प्रकार सेवन करानी चाहिए।

पहले कहा जाचुका है कि बालक के लिए गधी का दूध सब से अधिक लाभदायक है। यदि गधी का दूध न मिलसके तो गाय अथवा बकरी के दूध में पानी और थोड़ी खाँड मिलाकर देना चाहिए। यदि गायका दूध देना हो तो उसके दो भाग दूध में एक भाग पानी मिलाकर देवे। फिर एक या दो सप्ताहके बाद पानी का भाग कम करता जावे। और जो बकरी का दूध देना आवश्यक हो तो उसके दूध में पानीका भाग कुछ अधिक मिलाना चाहिए।

कारण बकरी के दूध में गाय के दूध की अपेक्षा अधिक अम्लता होती है। माताके दूधके सिवा अन्य किसी प्रकार का दूध पिलाने के समय उसमें पानी मिलाने का मतलब यह है कि स्तन का दूध पहले बहुत पतला होता है पश्चात् बालक की अवस्था की जैसे २ वृद्धि होती जाती है वैसे ही दूध भी धीरे धीरे गाढ़ा होता जाता है। गाय का दूध पहले स्तनके दूध की अपेक्षा गाढ़ा होता है इसलिये यदि उसमें पानी न मिलाया जावे तो बालक बीमार पड़ जाता है।

स्त्री के स्तन के दूध की गरमी ९६-९८ डिग्री तक होती है। यदि बालकको किसी दूसरे का दूध दियाजावे तो उसकी भी इतनी ही गरमी रखनी चाहिए। अन्य दूध स्तन के दूध की समान गरम न होने से बालक उसे सहन नहीं करसकता, इस लिए बालक के पिलाने के लिए जिस दूध में पानी मिलाया जावे उसे गरम करने के बाद पिलाना चाहिए और दूध एवं पानी ताज़ा व स्वादिष्ट होना चाहिए। पिलाये हुए दूधमें से यदि कुछ दूध बचरहे तो उसे दुबारा गरम करके काम में नहीं लाना चाहिए, ऐसा करने से बालक को अजीर्ण होजाता है। बालक जिस समय दूध पीता है, उस समय वह अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ा थोड़ा दूध चूसता जाता है, यदि उसे हाथसे दूध पिलाने की आवश्यकता हो तो उसी प्रमाणा-नुसार उसे थोड़ा थोड़ा दूध देना चाहिए। इस कार्य के लिए बहुत से व्यक्ति "दूधदानी" एक प्रकार की शीशी का उपयोग करते हैं। इस शीशी के मध्यभाग में स्तन की समान रबड़ का बनावटी स्तन लगा रहता है उसमें एक छिद्र होता है। उसको बालक के मुँह में देदेने से बालक सहज में ही दूध पीने लगता है। अतएव चम्मच से दूध पिलाने की अपेक्षा उक्त शीशी से दूध पिलाना अच्छा है। यह शीशी बाज़ार में बिकती है। इसे सदैव स्वच्छ रखना चाहिए। बालक जब दूध पीचुके तब उसी समय शीशी को गरम पानी से अच्छी तरह धोडालना चाहिए। ऐसा न करने से शीशी में जो दूध का अंश लगा रहता है, उससे दो तीन घंटे के बाद उसमें खट्टी २ बास आने लगती है और फिर उस मैली शीशी में ताजा दूध डालने से वह खराब होजाता है। एवं बालक के पेट में जाने पर उत्तम प्रकार से हज़म नहीं होता और विकार उत्पन्न करदेता

है। इसलिए बहुत से डाक्टर "मेल्ड्स मिल्क" अर्थात् जो विलायती दूध टीन के डिब्बों में बन्द होकर आता है उसको प्रयोग करने का उपदेश देते हैं। यह डिब्बा बाजार में अँगरेज़ी दवाफ़रोशों की दुकानों पर मिलता है। उसमें से एक दो चम्मच दूध लेकर गरम पानी में मिलाकर पिलाया जाता है।

कितनी देर बाद बालक को दूध पिलाना चाहिए और प्रत्येक बार कितना दूध पिलाना चाहिए यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

पहले लिखा गया है कि गर्भसे उत्पन्न होनेके बाद बालक लगभग दो तीन सप्ताह तक बराबर सोता है। दुग्धपान करने के लिए बीच बीच में जाग उठता है और दूध पीकर फिर सोजाता है। उस समय उसके पेट का आकार छोटा होता है, अतः थोड़ा सा ही दूध पीने से उसका पेट भरजाता है। इसलिए यदि उसको उस समय हाथ से दूध पिलाया जावे तो ऐसा करना चाहिए कि प्रत्येक बार में थोड़ा २ दूध पिलावे और जब वह दूध पीने से अनिच्छा प्रकट करे अर्थात् मुँह फेरने लगे, तब दूध पिलाना बंद करदेना चाहिए। दो तीन सप्ताह तक प्रत्येक बार में थोड़ा थोड़ा करके पाव भर दूध से अधिक दूध नहीं देना चाहिए। अनेक स्त्रियाँ यह समझती हैं कि दूध पौष्टिक पदार्थ है इसी लिए यह बालक को अधिक पुष्ट करेगा। ऐसा समझकर पालक को अधिक मात्रामें दूध पिलाती हैं और जब बालक कै करदेता है तब बीमारी को अटकल लगाती हैं, किन्तु यह उनकी बड़ी भारी भूल है। उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि अधिक दूध पिलाने से ही बालक को कै होती है।

पहले दूध में पानी मिलाने का जो नियम लिखा गया है उस विधि के अनुसार दूध पिलाने से यदि बालक भलीभाँति पुष्ट रहे और बिना कष्ट के सोजावे और उसके पेट में किसी प्रकार का दोष दिखायी न देवे तो चार सप्ताह के बाद धीरे धीरे पानी का भाग कम करदेना चाहिए। इसके बाद जब बालक की अवस्था चार पाँच महीने की होजावे और उसका शरीर नीरोग तथा बलवान् हो तो उसे खालिस दूध पिलाना चाहिए। परन्तु जिस गाय का शरीर आरोग्य हो अर्थात् जिसे किसी प्रकार का रोग न हो तो उस गाय का दूध देना चाहिए। क्योंकि बीमार गाय

का दूध हानि पहुँचाता है। जिस गाय के शरीरमें किसी प्रकार का फोड़ा होगया हो तो उस का दूध पिलाना ठीक नहीं है।

बालकका पालन पोषण यदि उक्त विधि के अनुसार होसकता हो और उसमें किसी प्रकार की अड़चन न हो तो जब तक आगे के दाँत न निकल आवें तब तक अन्य कोई कठिन पदार्थ उसको नहीं खिलाना चाहिए। दाँत निकलने के बाद बालक को दूध पिलाने के विषय में जो परिवर्त्तन करने का नियम लिखागया है उसी के अनुसार परिवर्त्तन करना चाहिए।

अनेक बालकों के स्वास्थ्य के लिये कम पानी मिला हुआ दूध हितकर नहीं होता। यदि इस प्रकार पानी मिला हुआ दूध भी उसे हितकर न हो तो अरारोट को दूध में अच्छे प्रकार पकाकर पिलाना चाहिए। अथवा उत्तम प्रकारसे पकी हुई रोटीको दूधमें मलकर औटावे,जब वह पककर एक रस होजाय तब उसको खिलावे,परन्तु वह गाढ़ी न हो, पतली रहे। इस प्रकार रोटी खिलाने से पाखाना साफ़ होता है। जो दूध पीने से बालक के पेट में दर्द हो तो उत्तम मोटे आटे को चौगुने पानी अथवा दूध के साथ बहुत देर तक उबाले, जब वह अच्छी तरह पकजाय तब शीतल हो जाने पर उसको थोड़ी सी शक्कर मिलाकर खिलाना चाहिए।

बालक के लिए दूध अथवा रोटी के ऊपर का नरम बक्कल देना बहुत अच्छा भोजन है, क्योंकि उससे शरीर पुष्ट होता है। एक प्रकार के भोजन का प्रभाव लगभग एक सप्ताह तक देखना चाहिए। यदि उससे हानि होती हुई दिखाई दे तो फिर दूसरे प्रकार का भोजन देना चाहिए। अधिक मात्रा में अथवा बार बार बदल कर भोजन देना हानिकारक होता है, क्योंकि उससे अवश्य रोग उत्पन्न होजाता है।

अब इस बात का विचार किया जाता है कि खिलाने के बाद बालकको किस प्रकार रखना चाहिए। जन्म होने के बाद कई सप्ताह तक बालक का यह भाव रहता है कि वह दूध पीते ही सो जाता है। इसलिए खिलाने के बाद उसे शांतिपूर्वक सुला देना चाहिए। इस समय उसके शयन में बाधा नहीं डालनी चाहिए। बालक को तीव्र प्रकाश वाले दीपक के पास सुलाने से उसका भोजन नहीं पचता और पेट के दर्द से दस्त आदि

बीमारियाँ शुरू होजाती हैं। खिलाने के बाद यदि बालक को निद्रा न आवे तो कुछ समय के लिए उसे शान्त रखना चाहिए। क्योंकि उस समय उसके शरीर का संचालन होनेसे भोजन सुगमता पूर्वक नहीं पचसकता।

दशवाँ प्रकरण।

(बालक को दूध छुड़ाने के नियम)

इस प्रकरण में इस विषय का विचार किया जायगा कि बालक को किस समय और किस प्रकार दूध छुड़ाना चाहिए। हमारे देश में यह एक बहुत बुरी प्रथाहै कि बालक का ठीक समय पर दूध न छुड़ाकर बहुत विलम्ब कियाजाता है। इस कारण बहुत से बालक तीन चार वर्ष की अवस्था तक दूध पीते रहते हैं। परन्तु यह रीति बहुत हानिकारक है, इसीलिए माता और बालक के शरीर का ह्रास होता है।

बालक को दूध छुड़ाने के समय प्रथम इस बात का भली भाँति विचार करलेना चाहिए कि माताकी शारीरिक अवस्था और बालक का स्वास्थ्य उत्तम है या नहीं। यदि माताका शरीर स्वस्थ हो और स्तनों में पर्याप्त दूध हो तो जब तक बालक के दाँत न निकलें तब तक दूध नहीं छुड़ाना चाहिए। स्वस्थ बालकों के दाँत नौ अथवा दस महीनों में निकल आते हैं और दुर्बल बच्चों के दाँत निकलने में बहुत समय लगता है। ऐसे समय में स्वस्थ बालक के लिए दुर्बल बालक की अपेक्षा दूध छुड़ाने में अधिक समय लगाना चाहिए।

यद्यपि ऊपर लिखे समय के पहले माता के स्तनों में दूध कम हो जावे और उससे बालक की क्षुधा शान्त न हो एवं धीरे धीरे स्वास्थ्य क्षय होना प्रारम्भ होजावे तो दाँत निकलने के पहले धीरे धीरे दूध छुड़ादेना चाहिए। ऐसी दशामें दूध न छुड़ाने से जितनी हानि होती है, उतनी दूध छुड़ाने से नहीं होती। किन्तु जिस बालक के माता या पिताको क्षयरोग हो तो उस बालक को दो या डेढ़ वर्ष तक दाई का दूध पिलाने से उत्तम स्वास्थ्य और बल प्राप्त होता है। वर्ष में जिस समय वायु उत्तम हो और बालक को बाहर लेजाने से कष्ट न मालूम हो तो उस समय दूध छुड़ाना बहुत अच्छा होता है।

बालक को दूध छुड़ाने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि बालकको हितकर और लघुपाकी खीर, खिचड़ी आदि भोजन का अभ्यास कराकर दुग्धपान कराना कम करदेना चाहिए। सात आठ महीने की अवस्था में जब कि सामने के दाँत निकलने शुरू होते हैं तब दिनमें एकबार अथवा दोबार बहुत हलका भोजन देना चाहिए। पीछे भोजन की मात्रा इतनी बढ़ादेनी चाहिए कि उसे दूध पीने की इच्छा ही न रहे। ऐसा करने से वह बहुत जल्द दूध छोड़ देता है और माता तथा बालक को कोई हानि नहीं होती। परन्तु ऐसा न करके एकदम दूध छुड़ा दिया जाय तो माता के स्तनों से नियमानुसार दूध न निकलने के कारण बालक को दुःख होता है और एकदम नया भोजन खाने से बालकके अस्वस्थ होने की बहुत सम्भावना रहती है। इसलिए जिससमय दाँत निकलते हों अथवा अन्य किसी पीड़ा से उसे कष्ट हो तो उस समय दूध कभी नहीं छुड़ाना चाहिए ऐसा करने से शरीर में खिंचाव होता है अथवा पेट भारी होकर रोग होने की सम्भावना रहती है।

दूध छुड़ाने के बाद पतले पदार्थ के साथ रोटी आदि कठिन खाद्य पदार्थ मिलाकर खिलाने चाहिएँ। जैसे-दूधके साथ आरारोट, साबूदाना या रोटी अथवा चावलों को पकाकर उनमें खाँड मिलाकर खिलाना चाहिए। जबतक अच्छे प्रकार से दाँत न निकलआवें तबतक चर्वण करने योग्य कोई पदार्थ न देकर उक्तप्रकार का ही भोजन खिलाना चाहिए। परन्तु दूध छोड़ते ही अधिक पुष्टिकारक अथवा अधिक मात्रा में भोजन देना ठीक नहीं है।

दूध छोड़ने के समय बालक को जो अधिक पीड़ा होती है, इसका कारण यह है कि वह उससमय कुछ चिड़जाने से रोता है, जिससे उसको भूखा समझकर माता पिता आदि परिचारक कठिन भोजन देदेते हैं। ऐसा करनेसे बालक अधिक चिड़चिड़ा होजाता है और बार बार खिलानेसे उसके अजीर्ण होजाता है; अन्तमें वह भयंकर रोगों से ग्रसित होजाता है। जो माता ऐसे समय में विचार पूर्वक आहार का परिवर्त्तन करके नियम से बालक के लघु भोजन की व्यवस्था करती है तो वह बालक नवीन आहार का अभ्यास करके आरोग्य होजाता है।

दूध छोड़ने के बाद यदि बालक को अधिक भूख लगे, वह खाने के लिये अपनी इच्छा प्रकट करे और विशेषकर उसका पेट सख्त मालूम हो तो समझना चाहिए कि उसे गण्डमाला रोगने दबाना शुरू करदिया है। अधिक और भारी भोजन कराने से इस रोग की उत्पत्ति होती है। सर्वदा इस प्रकार का भोजन कराने से मांसपेशियाँ फूलने लगती हैं और अजीर्ण होकर स्वास्थ्य नष्ट होजाता है।

परन्तु इस विषय में सबको सावधान रहना चाहिए कि दूध-पीने वाले बालक को कुछ कष्ट होते ही ओषधि देना बहुत बुरा है। अधिकांश मनुष्यों की धारणा है कि रोग किसी पदार्थ की समान बाहर से आकर शरीर में प्रविष्ट होजाता है, इसलिए ओषधिद्वारा उसको नष्ट करनेका प्रयत्न किया जाता है; परन्तु यह उनकी भूलहै। जिस समय शरीर की क्रिया में किसी प्रकार का व्याघात होने लगता है तब समझना चाहिए कि रोग शुरू होगया है। अधिक भोजन कराने से ही बालक के शरीर में अधिकतर विकार होता है; इसमें सावधान रहने से ऐसा नहीं होसकता। यदि भोजन में सावधानी न रक्खी जाय और ओषधि सेवन करायी जाय तो रोग दूर होना तो अलग रहा वह और अधिक बढ़जाता है। ऐसा करने से अनेक बालक मृत्यु को प्राप्त होजाते हैं।

ग्यारहवाँ प्रकरण।

शरीर की सफ़ाई, कसरत, निद्रा आदि विषय।
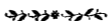
शरीर की सफ़ाई।

बाल्यावस्थामें शरीरकी त्वचा इतनी कोमल और पतली होती है कि उसमें सहजमें ही किसी प्रकारका आघात होनेसे व्रण होसकताहै और इतना ही नहीं चमड़े के द्वारा शरीर के अधिकांश भागों से पसीने की समान दूषित पदार्थ निकलता है। अतएव बालक को सुखी रखने के लिए शरीर के चमड़े को स्वच्छ रखना चाहिए। चमड़े से जो पसीना निकलता है उसका बहुतसा भाग पतला और बहुत सा भाग गाढ़ा होता है। पतला भाग भाप बनकर

हवा के साथ मिलजाता है और गाढ़ा भाग शरीर के चमड़े के ऊपर पहनेहुए कपड़े में लगजाता है। यद्यपि यह भाप हमारी आँखों से नहीं दिखाई देती तो भी यह बात बिलकुल सत्य है कि वह उड़जाती है। बहुत से मनुष्य जब एक छोटेसे कमरे में अधिक देर तक ठहरते हैं तब उसमें से भाप निकलता है और उसके संयोगसे एक प्रकार की दुर्गन्ध उत्पन्न होती है यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। बन्द कमरे में प्रातःकाल की बाहरी वायु के प्रवेश होने से दुर्गन्ध साफ़ मालूम पड़ती है, परन्तु दिनमें इस भाप की दुर्गन्ध अधिक नहीं जान पड़ती। इसका कारण यह है कि दिन को शरीर में से भाप निकलकर वायु में मिलकर चारों ओर फैलजाती है।

चमड़े में से जो मैल निकलता है उसका बहुतसा हिस्सा चमड़े में लगा रहने से वह ख़राब होजाता है और उस के छिद्र बन्द होजाते हैं, उनमें से फिर भलीभाँति पसीना नहीं निकल सकता। शरीर में से दूषित पदार्थ छिद्रों द्वारा न निकलने पर वह शरीर में रहकर हानि पहुँचाता है। फिर वह मल, मूत्रके मार्गसे अथवा श्वासमार्गसे निकलताहै और उक्तमार्गों में से निकलते समय अधिक उत्तेजना करता है इसलिए उन स्थानों में नानाप्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं। कभी कभी चमड़े में दर्द होकर वायुगोला उत्पन्न होजाता है।

इसलिए पसीने का कुछ भाग दिखाई नहीं देता। यह किसी प्रकार सुगमतापूर्वक निकल सकता है और गाढ़ा भाग चमड़ेके ऊपर लगा रहताहै। यह किस प्रकार दूर किया जासकता है, अतः इसके उपायों की योजना करनी चाहिए।

पहले लिखा जाचुका है कि बालक के शरीर में हलका, पतला और ढीला कपड़ा पहनाना चाहिए और उस कपड़े को सप्ताह में दो बार बदल देना चाहिए। दूसरा उपाय यह है कि प्रतिदिन नियमित रूप से यथासमय कुछ गरम पानी से स्नान कराना चाहिए।

बालक को जिस पानी से स्नान कराया जाय उसमें साबुन नहीं मिलाना चाहिए,क्योंकि उससे हानि होती है। साबुन मलकर शरीर को साफ करने से त्वचा में एक प्रकार के तेल का अंश लगजाता है जिससे वह नरम होजाती है,फिर पीछे जानेपर त्वचा शुष्क और कठिन होकर फटजाती है। (क्रमशः)

शरद ऋतुका आहार-विहार।

आश्विन, (क्वार) और कार्तिक दो मास शरद ऋतु कहलाता है।

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात्षडृतवः स्मृताः।
शिशिरोऽथवसन्तश्चग्रीष्म वर्षाशरद्धिमाः॥

इस ऋतु में सूर्य पिंगल वर्णके होजाते हैं। इसके पूर्व वर्षा होने से आकाश को धूल वगैरह दूर होजाती है जिससे इस ऋतुमें आकाश निर्मल होजाता है और कहीं कहीं सफ़ेद बादल भी देख पड़ते हैं। तालाब कमल और हंस गणोंसे शोभित होजाता है। पके धानों से खेत भरापूरा होकर पिलाई से चम्पक वर्ण सा शोभित होता है, हर एक जलाशयका जल प्रायः निर्मल होजाता है, धरती ऊंची खाली रहती है, कहीं कीचड़ रहता है और कहीं सूखा रहता है। इस ऋतुमें, कटसरैया, छितवन, बन्धूक और कास वगैरह अपने सुललित फूलों से मनुष्यके मनको मुग्ध किये रहते हैं।

वर्षा कालमें पानी की ठंडक से शरीरके रोम कूप प्रायः बन्दसे रहते हैं, जिससे शरीरकी गरमी बाहर न निकल कर शरीर के भीतर ही इकट्ठी होती रहती हैं। यह गरमी शरद ऋतुमें सूर्य की तेज धूपसे एकाएक उमड़ जाती है जिसे पित्तका कोप कहते हैं। पित्तके कोप से नीचे लिखे रोग होते हैं—शरीरमें फुन्सियां होना, खट्टी और धुंऐली डकार आना, प्रलापकरना, पसीना अधिक निकलना, बेहोश होना, शरीरमें बदबू आना, त्वचाका फट जाना, नशा जैसा मालूम होना, सन्धिबन्धनोंका ढीला पड़ जाना, फुन्सियों से शरीरका पकजाना, कहीं भी मन न लगना, प्यास अधिक लगना, चक्कर आना, गरमी मालूम होना, भूंख न लगना, आंखके सामने अँधेरा मालूम होना, मुंहका स्वाद कडुआ खट्टा और चरपरा होना, जलन होना, शरीरका पीला पड़जाना, पेट में ऐसी पीड़ा होना मानो कोई चीज़ पकती हो। यदि किसी का पित्त अधिक कुपित होता है तो उसे ये सब रोग होते हैं और यदि कम कुपित होता है तो इनमें से कुछ होते हैं। इस लिए पित्तकी शान्ति के लिए इस ऋतुके लगते ही कड़ा या मुलायम जैसा कोठा हो, उसके अनुसार किसी योग्य चिकित्सक के परामर्श से विरेचन

(जुलाब) अवश्य ले लेना चाहिए अथवा फस्द खुलवावे। या तिक्तघृत सेवन करे या प्रातःकाल चीनीके शरबतमें नीबूका रस डालकर पीवे। इस ऋतुमें भोजन कडुवा, मीठा, कसैला, हलका, और ठण्डा भूख लगनेपर करना चाहिए। चावल, मूंग, मिश्री, आंवला, परवल, शहद और नदीका निर्मल जल लाभकारी होता है। चन्दन, खस, कपूर, जैसी ठण्डी चीज़ोंसे विशेष लाभ होता है।

चांदनी में केवल ८ या ६ बजे राततक ही रहना चाहिए बाद नहीं।

इस ऋतुमें ओस, खारी चीज़ें, अधिक भोजन, दही, तैल, चर्बी, घाम, नशैली चीज, दिनमें सोना, इन सबोंसे दुश्मन की तरह बचना चाहिए। यही चीज़ें शरद ऋतुमें रोग पैदा करने वाली हैं।

जुलाब।

निसोत, मोथा, नेत्रवाला, चन्दनकाचूरा, मुनक्का, गुलाब के फूल, सनाय अमलतास, इन सब चीज़ोंको बराबर मात्रा से एक छटांक लेकर रातको पावभर पानी में भिगो दे। सुबह छानकर आधी छटाँक मिश्री डालकर पीने से दस्त आते हैं। जुलाब लेनेके पहिले दो दिन घी खिचड़ी खानी चाहिए। और जुलाब लेने के दिन दस्त हो जानेपर घी खिचड़ी खानी चाहिए।

तिक्तघृत।

छिनयन, अर्नास, अमलतास, कुटकी, पाढ़, मोथा, खस, त्रिफला, पित्तपापडा, परवलता, नीमकीछाल, मंजीठ, पीपल, पद्म काठ, कचूर, लालचन्दन, धमासा, इन्द्रायन, दारुहल्दी, हल्दी, गुरुच, सफेद कालो सारिवा, मूर्वा, अडूसा, शतावर, त्रायमाणा, इन्द्रजव, मुलेठी, चिरायता, ये सब दवाएं बराबर लेकर और सब दवाओं से चौगुने गायके शुद्ध घीमें, घीसे दूना हरे आंवलोंका रस या काढ़ा और घीसे अठगुना पानी डालकर मधुर आंचसे कई दिनोंतक पकाना चाहिए। जब घीमें फेन आना बन्द होने लगे और घीमें छोड़ी हुई दवाको अग्निमें डालनेपर चरचराहट न आवे तो उतार कर छानके रख लेना चाहिए। यह महातिक्तघृत है। 'शरद ऋतु के अतिरिक्त कुष्ठ, वातरक्त, रक्तपित्त, खूबरा, सोन

पाण्डु रोग, हृद्रोग, वायुगोला, प्रदर, गण्ड माला, और ज्वर, आदि रोगों में भी लाभकारी है।

सर्वे सन्तु निरामयाः।

वैद्य श्रीहरिनारायण शर्मा (काव्यतीर्थ) प्रतापगढ़।

परीक्षित-प्रयोग।

विजय सुन्दर चूर्ण

(अतिसार संग्रहणी आदि रोगों पर)

(द्रुतविलम्बित)

मरिच पीपल सोंठ १हरीतकी, २कुटज ३मुस्तक चव्य ४विभीतकी।
तज इलायचि५बिल्वगिरी६निशा, ७सुरभिबालककूठ८अतीविषा॥१॥
९इन्द्रक१०चित्रक११दाडिम तिन्तिडी, लवँग पुष्करमूल १२शठीबड़ी।
द्विविध जीरक १३जायफलामली, १४भुजगकेसर वायविडंगली॥२॥
१५विमलटङ्कण सोंफ १६यवानिका, त्रिमल संचल सैन्धव१७धानिका।
सब पदार्थ समान समानले, विमल भाँग सुपाद प्रमान ले॥३॥
करहु उत्तम चूर्ण यथाविधि विजय सुन्दर है कहते सुधी।
विविध रोग भयङ्कर नाशना, विविध शक्ति अचिन्त्य प्रकाशना॥४॥
पवन पित्तकफो अतिसार जे, रुधिर आम समेत विकार जे।
परम दुस्तर संग्रहणी तथा, अरश और अजीरण की व्यथा॥५॥
उदर शूल समस्त निवारता, जठर ज्वाल चतुर्गुण कारता।
सजल तक्र दही अनुपान से, करहु सेवन टङ्क प्रमाण से॥६॥

एक विद्यार्थी।

पुराने कास श्वास रोग पर-(१) पीपल १ तोला, कालीमिरच १ तोला, काकड़ासिंगी १ तोला, सोंठ १ तोला, अनार का बक्कल १ तोला और चार बर्ष का पुराना गुड़ १०तोले लेवे। प्रथम पूर्वोक्त पाँचो औषधियों को कूट पीस कर कपड़छन करके गुड़ में मिला

---

(१) हरड़ (२) कुड़ा (३) नागरमोथा (४ बहेड़ा (५) बेलगिरी-बेल का सूखा गूदा (६) हलदी (७) सुगंधवाला (८) अतीस. (९) बिजोरा नीबू (१०) चीता (११) अनारदाना (१२) बड़ा कचूर (१३) जायफल और आमले (१४) नागकेसर (१५) शुद्ध सुहागा (१६) अजवायन (१७) धनिया।

कर खूब कूटे, फिर जब सब ओषधियाँ और गुड़ मिलकर एकम-एक होजाय तब शुद्ध पात्र में भरकर रखदेवे। इस ओषधि का प्रतिदिन जठराग्नि के बल के अनुसार ३ माशे से लेकर ६ माशे तक दिन में ३-४ बार रात्रि में २ बार गरम जल के साथ सेवन करने से ४-५ दिन में ही नयी न पुरानी खाँसी दूर होजाती है और इसी प्रकार इसको १५-२० तक सेवन करने से श्वास रोग समूल नष्ट होता है।

(३) जायफल, जावित्री, बादाम की गिरी, पिश्ते, लौंग, बड़ी इलायची, सफेद चन्दन का चूरा, अकरकरा, काले तिल, लोवान, निबौली की गिरी, बहेड़े की गिरी, चिरौंजी, मालकाँगनी और करञ्ज की गिरी इन सबको समानभाग लेकर बालुकागर्भपाताल-यन्त्र में डालकर तेल निकाल लेवे। इस तेल की १ या २ बूंदें पान में लगाकर खाने से खाँसी, श्वास, दुर्बलता, शिरपीड़ा, हड़फूटन आदि अनेक रोग नाश होते हैं।

कास श्वास रोग पर अमोघ योग-(४) मृगशृङ्ग [हिरन के सींग] पर सातबार कपरौटी करके सुखाकर उसको रविवार या भौमवार के दिन क्वारी कन्या के हाथ से गाय के गोबर से लिपवायी हुई भूमि में एक मन उपलों में रखकर अग्नि जला देवे। जब उसकी उत्तम प्रकार से भस्म होजाय तब शीतल होजाने पर निकाल लेवे, और बारीक पीसकर शीशी में भरकर रख लेवे। इस भस्म को $\frac{1}{2}$ रत्ती से लेकर २ रत्ती की मात्रा तक शहद, मलाई, घृत अथवा पान के साथ खाने से कास, श्वास रोग अवश्य नष्ट होते हैं।

(५) कटेरी २ तोले, कलमीशोरा २ तोले और चौवर्षा पुराना गुड़ ४ तोले-तीनों को एकत्र कूटकर तीन २ माशे की गोलियाँ बना लेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली जल के अनुपान से सेवन करे तो इससे कफ दूर होकर खाँसी शमन होती है। इसी विधि से इस ओषधि को ८ दिन तक सेवन करने से श्वास रोग समूल नष्ट होजाता है।

(६) पेठे की जड़ १० तोले, और मिश्री १० तोले, दोनों का एकत्र बारीक चूर्ण करके ६ माशे परिमाण लेकर दूध के साथ सेवन करने से श्वास रोग में अत्यन्त लाभ होता है।

(७) वंगभस्म १ रत्ती, धतूरे के पत्तों का स्वरस ६ माशे और मिश्री ६ माशे इनको एकत्र खरल कर सेवन करे तो प्रश्वास रोग १०-१५ दिन में ही समूल नाश होजाता है।

(८) कटेरी के स्वरस और अडूसे के पत्तों के स्वरस में मिश्री मिलाकर पान करने से श्वासरोग में अतिशय उपकार होता है।

कविराज पं० शम्भुदत्त शर्म्मा, इन्द्री, करनाल।

प्राप्ति स्वीकार व संक्षिप्त समालोचना।

माधुरी—यह हिन्दी की नवीन साहित्यिक मासिक पत्रिका लखनऊ के सुप्रसिद्ध नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित होने लगी है। इसके सम्पादक हिन्दी के सुयोग्य लेखक श्रीयुत बाबू दुलारेलाल भार्गव और दूसरे हिन्दी के सुविख्यात कवि एवं सुलेखक पं० रूपनारायण पाण्डेय हैं। रूप, रंग और आकार प्रकार में यह सरस्वती की टक्कर की है। इसकी दूसरी संख्या हमारे सामने है। इस अंक में कविता, आख्यायिका, समालोचना, जीवनचरित, सुमनसंचय, विविधविषय आदि सब प्रकार के लेखों की संख्या २७ है। कई रंगीन और कई सादे मनोरम चित्र हैं। टाइटिल पृष्ठ का राधाकृष्ण का चित्र बहुत ही मधुर है। प्रायः सब लेख हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वानों के लिखे हुए हैं और हिन्दी में उच्चकोटि के साहित्य उत्पन्न करने वाले हैं। इन में सम्राट् चन्द्रगुप्त, सम्पत्ति व्यक्ति और समाज, विहारी बोधिनी, सूर्य्य और चन्द्र, गरम देश और सभ्यता आदि लेख विशेष महत्व के हैं। पुराने लखनऊ की झलक, अधिकार चिन्ता नामक गल्प स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी, महिला मनोरंजन आदि लेख बड़ी योग्यता से लिखे गये हैं। आशीर्वाद, तेरी छवि, हँसी, छलिया आदि कवितायें अधिक भाव पूर्ण और मधुररस विशिष्ट हैं।

माधुरी के सभी लेखों में मधुरता पायी जाती है। वास्तव में माधुरी माधुरी है। हम इसका हृदय से स्वागत करते हैं। हमारी राय में इस पत्रिका को हिन्दी संसार वह आदर देगा जिसकी यह सर्व प्रकार से पात्री है। पृष्ठ संख्या प्रत्येक अंक की १०० से अधिक। वार्षिक मूल्य ६॥) रु०। प्राप्ति स्थान—गंगापुस्तकालय, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

साहित्य—यह मासिक पत्र अभी थोड़े दिनों से कलकत्ते से निकलने लगा है। आकार प्रकार और सजधज में यह भी प्रायः सरस्वती की समान है। इसके सम्पादक श्रीयुत पं० छविनाथ पाण्डेय बी० ए०, एल एल० बी० हैं। प्रकाशक-हिन्दी पुस्तक एजेन्सी नं० ११६ हरिसनरोड, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य ५) पृष्ठ संख्या प्रत्येक अंक की ६० से अधिक।

अब तक इसकी तीन संख्यायें निकल चुकी हैं। तीसरी संख्या हमारे सामने है। इसमें सब लेख और कविताएँ १७ हैं। दो सुन्दर रंगीन और दो सादे चित्र हैं। रंगीन चित्र बहुत ही बढ़िया है। लेख सब गवेषणापूर्ण और सार गर्भित हैं। कवितायें भी अच्छी हैं। अनन्यभक्ति, स्वप्न, स्वर्गीय लोकमान्य तिलक, सौन्दर्य, साहित्यिक जीवन आदि लेख अधिक महत्व के हैं। हम सहयोगी का हृदय से अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं, कि यह हिन्दी साहित्य का चिरकाल तक सेवा करके अपने नाम को सार्थक करेगा।

अध्यापक—यह संयुक्त प्रान्तीय अध्यापक मण्डल का पाक्षिक पत्र है-और अभी थोड़े दिनों से इसी नगर से प्रकाशित होने लगा है। इसके सम्पादक-श्री बाबू कुञ्जबिहारीलाल और प्रकाशक पं० मुरारीलाल बुकसेलर, कृष्णश्वरी प्रेस मुरादाबाद। वार्षिक मूल्य २)

इसमें अध्यापकों के कर्त्तव्य, उनकी उन्नति के उपाय आदि लेखोंके सिवा शिक्षा सम्बन्धी लेखों का भी अच्छा संग्रह रहता है। पत्रका सम्पादन बड़ी योग्यता से होता है। इसके द्वारा अध्यापक और विद्यार्थी गण दोनोंही लाभ उठासकते हैं। पत्र होनहार प्रतीत होता है। हम इसकी हृदय से उन्नति चाहते हैं।

शान्ति—यह चातुर्थिकी पत्रिका १५ अगस्त सन् २२ से भागलपुर (विहार) से निकलनी आरम्भ हुई है। इसके सम्पादक और प्रकाशक हैं—श्रीयुत पं० अशर्फीमिश्र, महर्षिप्रेस—भागलपुर। वार्षिक मूल्य ६)

यह पत्रिका राष्ट्रियमत की पोषक है—और इस का उद्देश्य है असहयोग आन्दोलनद्वारा जगत् में शान्ति स्थापित करना।

लेख ज़ोरदार और पढ़ने योग्य होते हैं। समाचारादिकों का संग्रह उत्तमढंग से कियाजाता है। व्यापार सम्बन्धी समाचारों को विशेषरूप से स्थान दियाजाया है। हिन्दी समाज को इसे अपनाना चाहिए। हम इसका स्वागत करते हैं और इसके दीर्घायुषी होने की भगवान से प्रार्थना करते हैं।

विविध विषय।

मलेरिया की नवीनऔषध-मि० हैरिस विलिस नामक ब्रह्मदेश के एक पुलिस डाक्टर ने मलेरिया ज्वर की एक नवीन औषध आविष्कृत की है। मलेरिया ज्वर पुराना हो जाने पर कोनेन से दूर नहीं होता, किन्तु उक्त डाक्टर साहब की आविष्कृत औषध के द्वारा सब प्रकार का नया व पुराना मलेरिया दूर हो जाता है। कोनेन से रुधिर के लाल कण नष्ट हो जाते हैं किन्तु उक्त डाक्टर साहब की औषध से रुधिर के लाल कण नष्ट नहीं होते, बल्कि रुधिर की वृद्धि होती है। डाक्टर साहब ने इस औषध का आविष्कार एक यूनानी पुस्तक के आधार पर किया है। एक प्रकार के नीबू के साथ कैलसियम नामक धातु के तीन प्रकार के नमक मिला कर यह औषध तैयार की जाती है।

अधिक दूध पियो।

"इण्डियन साइन्स एग्रीकलचरिष्ट" मासिक पत्र में लिखा है कि आज कल इङ्गलेण्ड में अधिक दूध पीने के लिये जोर शोर से आन्दोलन हो रहा है। उक्त आन्दोलन के विषय में वहां का "मिल्क इण्डस्ट्री" (दुग्ध व्यवसाय) मासिक पत्र लिखता है, कि अमेरिका में वैज्ञानिक प्रयत्नों से दूध की मांग अधिक हो गयी है। वैसे ही प्रयत्न करने से हमारे यहां भी दूध की मांग अधिक हो सकती है। इस आन्दोलन की सफलता के लिये बालकों के आहार की विशेष आयोजना, प्रदर्शिनी विज्ञापन आदि आवश्यक हैं। डाक्टरों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं को इस ओर ध्यान देना चाहिये। अमेरिका के वोस्टन नगर के दाँत-अस्पताल में एक लाख बालकों के दांतों की परीक्षा हो चुकी है। उसके प्रधान डाक्टर पर्सी होवे लिखते हैं, कि बालकों के अच्छे दांत होने के लिये दूध के खनिज पदार्थ, पौष्टिक पदार्थ जिनसे हड्डी आदि बनती है तथा वनस्पति के रेशे अत्यन्त आवश्यक हैं। डाक्टर होवेने यह बात वैज्ञानिक

प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दी है कि कुक काउराटीकी डाक्टर हैरिचट फुमर कहती हैं, कि स्कूलों में ८५ प्रति शतक बालकों के दांत खराब होते हैं। आप कहती हैं कि यदि इन बालकों को उनके बचपन में ही दूध अधिक पिलाया गया होता तो इनमें से ५० प्रति शतक से अधिक बालक दांत के रोग से बच सकते थे। दांत विज्ञान के पंडितों का कहना है कि दांतों को अच्छा और मजबूत रखने के लिये दूध से उत्तम कोई पदार्थ नहीं है। बाल्यकाल में बालकों को यदि प्रचुरता से दूध न मिले तो उनके जबड़े की हड्डियां पूर्णरूप से नहीं बढ़ती और दांत अपरिपक्व अवस्था में रह जाते हैं और धीरे २ घटने लगते हैं। भारत में गोवंश कम हो रहा है और उसकी नस्ल भी दिनोंदिन खराब होती जाती है। इस लिये हम अधिक तो दूर पहले जितना दूध भी नहीं पी सकते "

स्त्रियों की स्वास्थ्य हानि—इस समय भारत की स्त्रियों का स्वास्थ्य पुरुषों से भी अधिक शोचनीय अवस्था में दीख पड़ता है। मूर्च्छा, हिस्टेरिया, प्रदर, रजोदर्शन की खराबी आदि नाना प्रकार के भयंकर रोग आज स्त्री समाज को पीड़ित कर रहे हैं। विशेषकर शहरों में रहने वाली और बड़े २ घरों की स्त्रियों में ये रोग अधिकता से पाये जाते हैं। बहुत सी स्त्रियों के तो भोजन का न पचना, शिर में दर्द का होना, बार २ मूर्च्छा होना आदि साधारण सी बातें हो गई हैं। अर्थात् ये बीमारियां निरन्तर ही उनको सताती रहती हैं। थोड़ासा काम करतेही उनका श्वास फूल जाता है और शिर दुखने लगता है। इस प्रकार हमारी गृहदेवियों के स्वास्थ्य भङ्ग होने के यद्यपि अनेक कारण हैं, परन्तु अधिक विलास प्रियता, आलस्य, (किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम न करना) आदि इसके मुख्य कारण हैं। यदि प्रत्येक स्त्री विलास प्रियता व आलस्य को छोड़कर नियमितरूप से थोड़ा २ शारीरिक व मानसिक परिश्रम करना आरम्भ करदें तो उनका स्वास्थ्य बहुत शीघ्र सुधर सकता है और वे उक्त रोगों के चंगुल से शीघ्र मुक्त हो सकती हैं। हमारी राय में प्रत्येक स्त्री को प्रति दिन अपने कुटुम्ब के निर्वाह के लिये कुछ आटा पीसना और चर्खा कातना चाहिए। चक्की पीसने और चर्खा कातने से शरीर की अनेक मांसपेशियों का संचालन होता है, जिससे एक उत्तम व्यायाम हो जाता है। शरीर बलवान, दृढ़ और सुडौल होकर कार्य करनेमें समर्थ होता है।

Regd. No A. 587.

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिक-पत्र

सम्पादक—शङ्करलाल वैद्य

वर्ष ११ | मुरादाबाद। जनवरी, सन् १९२३ | संख्या १

विषय-सूची

१-नव वर्षका अभिनन्दन (टा०के२रे पृष्ठ पर)
२-नव-वर्ष स्वागत १
३-चरक की चिकित्सा प्रणाली २
४-प्रकृति-पूजा १०
५-उत्तम सन्तानप्राप्ति के उपाय ११
६-वाजीकरण २१
७-भांग-विजया २४
८-आयुर्वेदोन्नति में आवश्यक कर्त्तव्य २८
९-विविध-संग्रह ३१
१०-परीक्षित प्रयोग ३४
११-हमारा नया वर्ष ३५

प्रकाशक-हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद।

वार्षिक मूल्य १॥)] [एक संख्या का मूल्य ≡)

Printed by—Pt. Lakhi Ram Sharma,
at the Sharma Machine Printing Press,
MORADABAD.

नव वर्ष का अभिनन्दन।

पधारो, स्वागत, हे नव वर्ष!
सुखी हो प्यारा भारतवर्ष॥

हृदय में हरदम हो उत्साह,
सत्य की सर्वोपरि हो चाह,
जगत् में जय की प्रिय हो राह,
मगर औरों से करें न डाह,
सभी बातों में हो उत्कर्ष, पधारो, स्वागत० ॥१॥

नया व्रत, नया हृदय का भाव,
नया आरम्भ, नया ही चाव,
नया सब साज, नया पहनाव,
नई कल्पना, नया फैलाव,
नयापन है उन्नति-निष्कर्ष, पधारो, स्वागत० ॥२॥

देश को दुर्गति का है रोग,
ज्ञान उस पर अनुभूत प्रयोग,
शीघ्र ही लादो वह संयोग,
सबल चंगे हों जिसमें लोग,
रहे हर घड़ी हृदय में हर्ष, पधारो, स्वागत० ॥४॥

देश भारत के सारे व्यक्ति,
छोड़दें नीच स्वार्थ-आसक्ति,
बुराई वैर विकार विरक्ति,
शक्ति हो तन में, मन में भक्ति,
छोड़ जाओ अपना आदर्श, पधारो, स्वागत० ॥४॥

रूपनारायण पाण्डेय (कविरत्न)

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ११ } मुरादाबाद । जनवरी १९२३ ई० { संख्या १

नव-वर्ष का स्वागत ।

स्वागत ! हे नव-वर्ष तुम्हारा-
नाम मनोरम अतिशय प्यारा-
आओ ! मित्र नवीन ! नई सज धज धारण कर आओ ।
दूर करो बदरँग, रँग अब नूतन ही प्रकटाओ ॥
सभी वर्ष आते दुखदाई-
लाते हैं वे साथ लड़ाई-
करते बण्टाढार विश्व का, तुम्हीं शान्ति सरसाओ ।
द्वेष द्रोह दुख दूर करो अब, मीठी बीन बजाओ ॥
देश मध्य पुनि सम्पति आवे-
दुखद अकाल मृतक हो जावे-
संकट सकल शान्त कर जग का, नूतन मार्ग लखाओ ।
हो यदि सच्चे वर्ष हर्ष का तो इतिहास सिखाओ ॥

कई वर्ष बीते हैं रोते-
नर-जीवन हम दुख में खोते-
समय, शक्ति के साथ देश में, बिजली सी चमकाओ।
कर दो देशोद्धार अन्यथा मिट्टी बीच मिलाओ॥
कब तक हम सब रहें ससकते-
अच्छा था जो बिलकुल मरते-
अर्थ कहाँ उत्कर्ष हमारा, सत्य भेद बतलाओ।
हँसते हुए पधारो प्यारे, हँसते घर को आओ॥
तन को शुभ आरोग्य दीजिये-
मन को शुचि अनमोल कीजिये-
प्रेम नीति छा रहे, देश में, मङ्गल मोद बढ़ाओ।
शक्ति प्रेम को लाल हरी, दो ध्वजा यहाँ फहराओ॥
पाठक! नूतन वर्ष बधाई-
जीवित रहिये मित्र सदाई-
सखा-भाव मत भूल भूलना, अपनी कृपा जनाओ।
"वैद्य" देय आशीष, सदा ही मंगल-मोदक खाओ॥

नयन।

चरक की चिकित्सा-प्रणाली।

जिस शास्त्र में आयु का हिताहित वर्णन किया गया हो, उस का नाम आयुर्वेद है। आयुः शब्द का अर्थ है—शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा का संयोग। आयुके अन्य नामधारि जीवित, नित्य और अनुबन्ध हैं। मन, आत्मा और शरीर ये तीनों भिन्न भिन्न हैं इन तीनों का संयोग ही पुरुष की उत्पत्ति का कारण है। पुरुष ही पुमान, पुरुष ही चेतन और पुरुष ही आयुर्वेद का अधिकरण है। जो गुण सदैव पुरुष का अनुवर्त्ती है, वही मन है। इन्द्रियाँ मनके अनुवर्त्ती होकर ही विषय ग्रहण करने में समर्थ होती हैं। मन का अतियोग, हीनयोग और मिथ्यायोग प्रकृति और विकृति का कारण है। मनुष्यों की इन्द्रियाँ और मन जब वशमें नहीं रहते तब रोगरूपी राक्षस का प्रादुर्भाव होता है। जिससे मनुष्यों के तप,

उपवास, अध्ययन, व्रत, संयम और आयुमें विघ्न उपस्थित होता है। उस समय प्राणियों पर दया करके पुण्यशील महर्षिगण हिमालय के पार्श्व में एकत्रित होकर जगत् में आयुर्वेद के प्रचार की चेष्टा करते हैं। संसारमें आयुर्वेद के प्रचारके लिए भगवान् धन्वन्तरी पुण्यभूमि काशी में दिवोदास के नाम से अवतरित हुए और आयुर्वेदका इन्होंने सम्पूर्ण भूमण्डलपर प्रचार किया। उनके शिष्य-सम्प्रदाय में महर्षि मित्र के पुत्र महर्षि सुश्रुत सर्वश्रेष्ठ थे। अबसे कोई २॥हज़ार वर्ष पहले इसी देशमें महर्षि सुश्रुत का प्रादुर्भाव हुआ था। भरद्वाज की चिकित्सा प्रणाली में द्रव्यविज्ञानका विशेष रूपसे वर्णन देखा जाता है, किन्तु सुश्रुत की चिकित्सा-पद्धति में केवल द्रव्यविज्ञान के ऊपरही निर्भर न रहकर शरीरके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गों का वर्णन करके शस्त्रक्रिया का उपदेश दियागया है। महर्षि भरद्वाजके प्रवर्तित चिकित्साशास्त्र का नाम हुआ चरकसंहिता और महर्षिसुश्रुतके प्रवर्तित चिकित्साशास्त्र का नाम हुआ सुश्रुतसंहिता। चरक की चिकित्सा वात, पित्त और कफ इन तीन श्रेणियों में विभक्त करके लिखी है रोगोंके विषयमें स्वतन्त्र चिकित्सा सम्बन्धिनी कोई बात नहीं लिखीगयी है। सम्पूर्ण रोगों को वात पित्त, कफ इन तीन श्रेणियों में विभाग करके उनको अतिसरल रीति से चिकित्सा लिखी गयी है। चरकसंहिता का प्रत्येक अध्याय तीन श्रेणी के मनुष्योंकेलिये लिखागया है।यथा-उत्तम बुद्धि,मध्यमबुद्धि और अधम बुद्धि। जैसे किसी रोग का स्वभाव उष्ण है,इसलिये उसकी चिकित्सा उसके अनुकूल ही होनी चाहिए, उत्तम बुद्धिवाले मनुष्यों के लिये केवल इतना ही कहा गया है। मध्यम बुद्धिवाले मनुष्यों को यह विषय कुछ और स्पष्ट करके समझाया गया है—अर्थात् उक्त रोग की चिकित्सा में तिक्त औषधियाँ हितकर हैं। कारण ये शीतवीर्य हैं। इसके पश्चात् अधम बुद्धिवालोंके लिए विशेष रूपसे स्पष्ट करके बतलाया गया है कि इस रोग की चिकित्सामें नीम की छाल, अडूसा, गिलोय आदि तिक्त औषधियों का क्वाथ प्रयोग करना चाहिए। यहाँ तीनों प्रकार की बातों का अर्थ एक ही है। इसको समझनेमें अधिक कष्ट न होगा। किन्तु जहाँ यह लिखा है कि शुक्ररोग प्रदर, रक्तपित्त और नपुंसकता प्रभृति रोगोंकी चिकित्सा एक है। अथवा जहाँ यह लिखा है कि जब पित्तके क्षय होनेपर कफ वृद्धि

को प्राप्त होकर प्रकुपितस्थ वायु को रोकता है तब शीत, आरीपन और ज्वर होता है। इस प्रकारके संकेत मध्यम बुद्धि और अधम बुद्धि वालों की समझमें साधारणरूप से नहींआसकते, इसलिये यह सांकेतिक वाक्य उत्तम बुद्धिवालों के लिये ही लिखे गये हैं। पहले कहा जाचुका है कि चरक की चिकित्सा वात, पित्त और कफ को श्रेणि विभाग करके लिखी गयी है, इसलिये शुक्ररोग, प्रदर, रक्त-पित्त, क्लीबता आदि की चिकित्सा एक है। इस प्रकार सांकेतिक बातोंसे जानाजाता है कि शुक्ररोग, प्रदर, रक्तपित्त और नपुंसकता आदि रोगों में मनुष्य की शारीरिक अवस्था एकही प्रकारकी होती है, ऐसा समझ लेना कुछ बुरा नहीं है। उत्तम बुद्धिवाले इसी का भली भाँति विवेचन करके सब रोगों की चिकित्सा करने में समर्थ हों, यहाँ यही चरकसंहिता का संकेत है। चरकसंहिता में अस्त्र-चिकित्सा का उल्लेख न होने पर भी फल-मूलाहारी ऋषियोंने इस में रोगों के निर्णयका विचार जिस विशद रूपमें किया है, वैसा अन्यशास्त्रों में नहीं है। आर्य्यऋषि इस श्रेष्ठग्रन्थ में ज़ोर देकर लिखगये हैं कि यदि यकृत्में विद्रधि उत्पन्न हो तो श्वासकी गति तीव्र होजायगी। यदि तुम्हारे मुखमण्डल पर तेज है तो मूत्र में खाँड आनेपरभी वह मधुमेह नहींहै। तुम्हारे यदि, जलोदर होने की सम्भावना हो तो एकदम जल बन्द करदेना चाहिए, जिससे कि वह शीघ्र जलोदर के रूप में परिणत न हो। इस प्रकार के निश्च-यात्मक सिद्धान्त और किसी भी चिकित्सा शास्त्र में नहीं हैं। चरकसंहिता में क्षय रोग १८ प्रकार का कहा गया है। आयुर्वेद के प्रायः सभी ग्रन्थोंमें इसकी पुनरावृत्ति कीगयीहै। क्षयरोग १७प्रकार का या१९प्रकार का है यहबात आजतक कभी किसीने साहस करके नहीं कही। महर्षि कहते हैं कि राजयक्ष्मा रोग के उत्पन्न होने पर स्कन्ध (कन्धे), पार्श्व (पसली) में पीड़ा, हाथ पैरों में दाह और हर समय ज्वर बना रहता है।

यदि इनतीन लक्षणोंमेंसे एकभी लक्षण न हो तो मुखमेंसे कित-ना ही कफ, रक्त और पीव क्यों न गिरे तो भी राजयक्ष्मा नहीं है। छींक को रोकने से अमुक अमुक रोग उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार वमन और श्वास के वेगको रोकने से नानाप्रकार की व्याधियाँ प्रकट होती हैं। इन सब विषयों की व्याख्या करने से शारीरिक

तत्त्वज्ञान का उत्तम प्रकार से परिचय नहीं होता, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने अन्य विषयों में चाहे जितनी उन्नति की हो, परन्तु इन बातों की तरफ़ वे उतने अग्रसर नहीं हुये। हिचकी क्यों आती है, वमन कैसे होती है, श्वास किसप्रकार चलता है, श्लेष्मवहा स्रोतों की क्रिया किस प्रकार सम्पन्न होती है ये सब विषय डाक्टरी ग्रन्थों में अच्छे प्रकार से लिखे गये हैं। किन्तु इनसब व्याख्याओंके साथ चरक की व्याख्याओं का समाधान नहीं होसकता। किस प्रकार दीर्घजीवन प्राप्त किया जासकता है, यही चरकसंहिता का मुख्य उद्देश्य है। इसीलिए महातपस्वी महर्षि भरद्वाज ने इन्द्र से आयुर्वेद का अध्ययन किया था।

"दीर्घजीवितमन्विच्छन् भरद्वाज उपागमत्।
इन्द्रमुग्रतपा बुद्धा शरण्यममरेश्वरम्॥"

कारण और कार्य की परिभाषा का निर्देश करके धातुओं की समता व आरोग्यता का विचार कर चरकसंहिता लिखी गई है। चरक के मतसे यही चिकित्सा का प्रधान सूत्र है। इस सूत्र से जाना जाता है कि चरक का दर्शनशास्त्र में विशेष अधिकार होना चाहिए। चरक के सूत्रस्थान में षड्दर्शन की मीमांसा का उल्लेख है। चरक कहते हैं कि जो गुण पुरुष के सदैव अनुवर्त्ती है, वही उसका मन है। इन्द्रियाँ मनके अनुकूल होकर ही विषयों को ग्रहण करने में समर्थ होती हैं। दृष्टि, श्रवण, घ्राण, रसन और स्पर्शन ये पाँच इन्द्रियाँ हैं। इन पाँचों के उपकरण यथाक्रम से ज्योति, आकाश, क्षिति, जल और वायु हैं। इन पञ्चेन्द्रियों के अधिष्ठान व आश्रयस्थान यथाक्रम से दोनों नेत्र, दोनों कर्ण, दोनों नासिका के रन्ध्र, जिह्वा और त्वचा हैं। इन पाँचों इन्द्रियों के भोग्यविषय यथाक्रम से रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श हैं। इन पञ्चेन्द्रियों के बोध को दर्शनबोध, श्रवणबोध, घ्राणबोध, रसबोध और स्पर्शबोध कहते हैं। इन्द्रिय इन्द्रियार्थ,मन और आत्मा इनका संयोग होते ही उक्त बोधों की उत्पत्ति होती है। बुद्धि क्षणिका और निश्चयात्मिका रूप से दो प्रकार की है। मनका विषय बुद्धि, आत्मा आदि कई शुभाशुभ प्रवृत्तियोंका हेतु है। पुरुष की क्रिया द्रव्याश्रित है; इसलिए इन्द्रियाँ पञ्चमहाभूतों के विकार हैं। ज्योति या प्रकाश नेत्रों में, आकाश कर्णों में, पृथिवी घ्राणमें, जल रसना में और वायु

स्पर्शन में विशेष रूप से विद्यमान है। जो इन्द्रिय जिस महाभूत के द्वारा निर्मित हुई है, वह इन्द्रिय उसी भावको प्राप्त होकर उसी महाभूत के कारण विषय का अनुसरण करती है। उस विषय का अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग होने से मन और इन्द्रियाँ विकृत होती हैं। एक प्रकार से इसी का दूसरा नाम रोग है। मनुष्यों के शरीर में जिससे रोग उत्पन्न न हों इसके लिए महर्षि चरक अपने ग्रन्थ के आरम्भ में उच्चस्वर से घोषणा करगये हैं:—

असात्म्य विषयों (अहितकर विषयों) को छोड़कर सात्म्य (हितकर) विषयों का अनुसरण करना चाहिए। समीक्ष्य-कारिता के साथ देश, काल और आत्मा के अनुकूल व्यवहार करना चाहिए। सदैव सब विषयों में मनको स्थिर रखकर सत्कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए। उन कामों को एक साथ करने से ही मनुष्य आरोग्यता की प्राप्ति और इन्द्रियों को जीतने में समर्थ हो सकता है। चरकचिकित्सा का यही मुख्य अभिप्राय है। चरक के इस अभिप्राय को समझ कर जो चिकित्साकार्य में दीक्षित होते हैं, उनकी ही चिकित्सावृत्ति सार्थक होती है। रोगके होनेपर उसके प्रतिकार का उपाय करना चाहिए, यह बात तो सभी चिकित्सा शास्त्रों ने निर्दिष्ट की है; किन्तु जिससे रोगका आक्रमण ही न होसके—ऐसे उपाय चरकसंहिता के प्रारम्भ में ज़ोर देकर कहे गये हैं। सांसारिक मनुष्य इस घोषणा को सुनकर जब स्वास्थ्य-विधि का पालन करना जानते थे तब मनुष्यों की परमायु एक सौ वर्ष की होती थी। आजकल के मनुष्यों की परमायु प्रायः ५० वर्ष तक की होती है। चरक ने कहा है कि प्रत्येक शताब्दि में मनुष्य का जीवन एक २ वर्ष कम होता जाता है। इस हिसाब से एक सौ वर्ष की परमायु के ५०, ६० वर्ष कम होने में कितने वर्ष लगेंगे। त्रैराशिक के नियम से उसको निश्चित करने पर चरक के प्रादुर्भाव का निर्दिष्ट समय सत्ययुग और त्रेतायुग के सन्धिकाल में अनुमान किया जासकता है। चरकमें सत्ययुग और त्रेतायुग का वर्णन भी है। जो हो, यहाँ उनके प्रादुर्भाव समय का निर्णय करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य नहीं है। इस लिए उस विषय को लेकर मगज़ पच्ची करना भी आवश्यक नहीं जान पड़ता।

चरक स्वास्थ्यरक्षा के उपायों का निर्देश करते समय जिन सदाचारों का उपदेश करगये हैं, यदि उन उपदेशों को मनुष्य उत्तम प्रकार से नियमानुसार पालन करें तो उनको रोगों की यन्त्रणा भोगनी न पड़े। नीरोग और स्वस्थ शरीर से उनको दीर्घ-जीवन प्राप्त होसकता है, यह बिलकुल निश्चित बात है। चरक के अमूल्य उपदेशों का सारांश यही है-कि " देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध और आचार्यजनों की पूजा व शुश्रूषा करनी चाहिए। पूर्वाह्ण और सायंकाल दोनों समय जल से आचमन करना चाहिए। सदैव मल-मूत्र के स्थान और दोनों चरणों को पवित्र रखना चाहिए। एक पक्ष में तीन बार क्षौर कर्म करवाना और नखों को कटवाना चाहिए। सर्वदा साफ सुथरे वस्त्र पहरना, प्रसन्न चित्त रहना और सुगन्धित पदार्थों को धारण करना चाहिए। उत्तम वेश और सुन्दर केश होने चाहिएँ। मस्तक, कर्ण, नासिका और पैरोंमें नित्यप्रति तैलमर्दन करना चाहिए। आगन्तुकसे अत्यन्त नम्र और मधुरवाक्य बोलने चाहिएँ। आपद्ग्रस्त मनुष्य को आश्वासन देना चाहिए। अतिथियों की पूजा करे। पितरों को पिण्डदान करे, समय पर हितकर, परिमित और मधुर रस वाले वाक्यों का उच्चारण करे। संयतात्मा और धर्मात्मा बने। जिस कारण से जिसकी उन्नति हो, उस कारण के प्रति ईर्ष्या करनी चाहिए; किंतु उस कारण के फल के प्रति ईर्ष्या कदापि नहीं करनी चाहिए। निश्चिन्त, निर्भीक, लज्जावान, विचारशील, उत्साही, चतुर, क्षमावान्, धार्मिक और आस्तिक होना चाहिए। विनय, बुद्धि और विद्या में जो उन्नत हों, जो वयोवृद्ध, सिद्ध और आचार्य्यहों उनकी उपासना करनी चाहिए। छाता, दण्ड, पगड़ी या टोपी और जूता धारण करना चाहिए। चलने समय सामने चार हाथ तक के स्थान के प्रति दृष्टि रखनी चाहिए। सदैव माङ्गलिक कार्यों को करे, निन्दित वस्त्र, अस्थि, काँटे, अशुद्ध बाल, भूसा, उत्पात, भस्म और कपालों के समीप नहीं जाना चाहिए। रहने के सब स्थानों को साफ सुथरा रखना चाहिए। थकावट मालूम न होनेके पहले ही परिश्रम करना त्यागदेना चाहिए। सब प्राणियों के प्रति मित्रता का भाव दिखलाना चाहिए। क्रोधी मनुष्य को अनुनय और भयभीत मनुष्य को आश्वासन देकर सन्तुष्ट करना चाहिए। दरिद्र

मनुष्यों पर अनुग्रह करे, सत्यसन्ध होवे और चारों गुणों में से साम गुण को प्रधान रूप से ग्रहण करे। दूसरे के कठोर वाक्यों पर सहिष्णुता प्रदर्शित करे, किन्तु अपने आप कठोर न बने। श्रेष्ठ गुणों को उत्साहपूर्वक ग्रहण करें। राग-द्वेष के कारणों से बचा रहे, असत्य भाषण न करे, दूसरे का धन हरण न करे, परस्त्री की इच्छा न करे, दूसरे की लक्ष्मी को देखकर दुःखित न होवे, वैरभाव की कल्पना न करे, पापकर्म न करे, बुरे आदमी के साथ भी बुराई न करे, दूसरे के दोषों को न कहे, दूसरे की गुप्तबात को प्रकाशित न करे। अधार्मिक और राजा से द्वेष करने वाले मनुष्यों के साथ नहीं रहना चाहिए। उन्मत्त, पतित, भ्रूणहत्या करने वाले, क्षुद्र और दुष्ट मनुष्यों के साथ नहीं रहना चाहिए। बुरी सवारी पर न चढ़े, कष्टदायक आसन पर न बैठे, सङ्कीर्ण, तकिये के विना, अश्रेष्ठ और विषम स्थान में शयन न करे। पर्वत की गुहा या पर्वत के शिखर पर न विचरे। वृक्ष पर न चढ़े। तीव्र स्रोतवाले जलाशय में अवगाहन न करे। बेर के वृक्ष की छाया में न बैठे। अग्नि के उत्पात के समीप न जावे। ज़ोर से न हँसे। सबके सामने अपान वायु को न छोड़े। मुँह को बिना ढके जमुहाई, छींक और हास्य न करे। नाक को न कुरेदे, दाँतों को और नखों को न बजावे, अस्थि में आघात न करे, भूमि में लकीरें न खींचे, वृक्ष अथवा तृण को न तोड़े, अङ्ग प्रत्यङ्गों को बुरी तरह से प्रसारित या सङ्कुचित करके अथवा ऐंड़ता हुआ कोई कार्य न करे। अत्यन्त ज्योतिमय (चमकदार) पदार्थों को अथवा अपवित्र और निन्दित अग्नि को न देखे। रात्रि के समय देवालय, चैत्य, चिता, यज्ञभूमि, चौराहा, उद्यान, श्मशान और वधस्थान में नहीं जाना चाहिए। सूने घर में अथवा जंगल में अकेले प्रवेश नहीं करना चाहिये। दुराचारिणी स्त्री, दुराचारी मित्र, पापी भृत्य आदि की सेवा नहीं करनी चाहिए। श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ विरोध नहीं करना चाहिये और नीच पुरुषों की उपासना नहीं करनी चाहिये। अतिसाहस, अतिनिद्रा, अतिजागरण, अतिस्नान, अतिपान और अतिभोजन इन सबको त्याग देना चाहिये। ऊपर को घुटने करके बहुत देर तक न बैठे। सर्प, सूकर आदि तीक्ष्णदन्तवाले और सींगवाले जीवों के निकट न जावे। पूर्वदिशा की वायु, सामने की धूप, शीत और अत्यन्त प्रबल वायु का सेवन न करे। कलह न करे। जबतक थकावट दूर न हो

जाय और पसीना न सूख जाय तबतक स्नान न करे। अशुद्ध वस्त्रसे शिर न पोंछे। अशुद्ध वस्त्र न पहरे। रत्न, घृत, दही, अन्यान्य माङ्गलिक और पूज्यपदार्थ एवं पुष्पादिकों स्पर्श किये विना बाहर न जावे। हाथमें विना रत्न धारण किये, विना स्नान किये, विना वस्त्र पहरे, विना जप किये, विना होम किये, देवताओं को विना भोग लगाये, पितादि गुरुजन और आराध्य जनों को विना दान दिये, सुगन्धितपदार्थ और मालाको विना धारण किये, हाथ, पैर और शरीर को विना धोये, विना शुद्ध मुख और उत्तरमुख हुये भोजन नहीं करना चाहिये। अपमानित, अभक्त, अशिष्ट, अपवित्र और भूखे परिचारक के समीप बैठकर अपवित्र पात्र, कुमय, अशुद्ध स्थान और जनाकीर्ण स्थानमें भोजन न करे। अग्निको विना जिमाये, अन्नको प्रोक्षण जलसे प्रोक्षित किये विना और मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किये विना भोजन न करे। शत्रुके लाये हुए अन्न को भक्षण न करे। शुष्क और बासी अन्नको न खावे। रात्रिमें दही न खाय। दिनमें केवल सत्तू खाकर न रहे। रात्रिमें और भोजन के पश्चात् सत्तू न खावे। दाँतों से विना चबाये किसी पदार्थ को भक्षण न करे। शरीर को टेढ़ा या तिरछा करके न छींके, न भोजन करे और न शयन करे। मल-मूत्र का वेग होने पर उसको त्याग किये बिना कोई काम न करे। मार्ग में मूत्रत्याग न करे। रजःस्वला, व्याकुल या पीड़ित, अपवित्र और अन्य पुरुषको चाहनेवाली स्त्री से प्रसङ्ग न करे। परस्त्री में कदापि गमन न करे। प्रातःकाल और सायङ्कालमें स्त्रीसम्भोग न करे। इन्द्रियोंके आधीन न बने। चञ्चल मनको अधिक चञ्चल न बनावे। बुद्धि और इन्द्रियों को अधिक भारापन्न न करे। अत्यन्त आलसी न बने। क्रोध और हर्ष के होनेपर उन्हीं के अनुसार कार्य न करे। ब्रह्मचर्य ज्ञान, दान, मैत्री, करुणा और हर्षोत्पादनके द्वारा शान्तिपरायण होना चाहिए।" इनके अतिरिक्त चरक के सद्वृत्त अध्याय में और भी अनेक उपदेश दियेगये हैं। परन्तु हमने इस प्रबन्धके बढ़ जानेके भय से जो विशेष आवश्यकीय विषय हैं, उन्हीं को यहाँ उद्धृत किया है। (अपूर्ण)

प्रकृति-पूजा ।

प्रकृति की कृति को अवलोकिए ।
सुखद-साधन हैं कितने दिये ॥
प्रकृति के अनुकूल बने रहो । -
बस अनामयता सुख को लहो ॥१॥
शयन को तज ब्राह्म मुहूर्त में ।
जग पड़ो जगदीश्वर में रमें ॥
सुखद सुन्दर शीतल वात है ।
गगन-मण्डल भी अवदात है ॥२॥
पवन है मनको हरती हुई ।
बह रही सुखमें भरती हुई ॥
सुरभि शीतल मन्द मनोज्ञ है ।
भ्रमण में हितकारक योग्य है ॥३॥
प्रकृति से कितने फल फूल हैं ।
विविध औषध सुन्दर मूल हैं ॥
समय के अनुकूल उन्हें लहो ।
उचित सेवन भी करते रहो ॥४॥
प्रकृति से इस शीतल-काल में ।
सलिल उष्ण मिला करता हमें ॥
फिर कभी जब तीव्र निदाघ हो ।
सलिल शीतल सेवन को लहो ॥५॥
प्रकृति को लखके व्यवहार हो ।
उचित दैहिक दिव्य सुधार हो ॥
प्रकृति ही सुख का शुभ मूल है ।
प्रकृति के चलना अनुकूल है ॥६॥
प्रकृति के न विरुद्ध कभी करो ।
मुदित स्वस्थ नहीं गद से डरो ॥
प्रकृति की हितसे शुभ साधना ।
प्रकृति से बल है मिलता घना ॥७॥
प्रकृति ने सब साज सजा दिये ।
मनुज-मण्डल के हितके लिये ॥

मत करो इनकी अवहेलना।
यह कलेवर है उससे बना ॥८॥
विधि-विधान विलक्षण तत्व है।
प्रकृतिसिद्ध सुसत्व महत्व है॥
मिलसकी जिससे कि निरोगता।
मनुज मंगल जीवन भोगता ॥९॥
प्रकृति के प्रतिकूल किया जहाँ।
प्रकृति ने झट दण्ड दिया वहाँ॥
प्रकृति ही सुख सार उदार है।
प्रकृति-सेवन दिव्य विहार है ॥१०॥
प्रकृति के गुण को अपनाइये।
सुखद जीवन योग बनाइये॥
प्रकृति की गति विश्व विलोकिये।
प्रकृति के बलको मत रोकिये ॥११॥
प्रकृति-देवि, विनीत प्रणाम है।
प्रकृति-कार्य चला अविराम है॥
प्रकृति ही सुख, मंगल अङ्ग है।
प्रकृति रंग अभंग प्रसंग है ॥१२॥

"कविकुमार" महेश्वरप्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य

उत्तम सन्तान-प्राप्ति के उपाय।
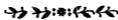
यदि कोई मनुष्य अपनी सन्तान को वास्तविक सुखी, दीर्घ-जीवी, आरोग्य, बुद्धिमान् और धर्मात्मा बनाना चाहे तो उसको पहले उत्तमफल कीआकाङ्क्षा करनेवाले कृषककी समान शुद्ध मन और शुद्ध भाव से योग्यकाल में (अर्थात् स्त्री के मासिकधर्म से निवृत्त होजाने पर) गर्भाधान करना चाहिए। पुत्र को सदाचारी और उन्नतिशील देखने की इच्छा करनेवाले मनुष्य को सब से पहले अपने मन और भावों को उन्नत बनालेना चाहिए, उसके बाद पुत्रोत्पादन करना चाहिए। प्राचीन महर्षियों और सत्पूर्ण

शास्त्रों का एकमात्र उपदेश यही है कि पुरुष को पहले ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना चाहिए, पश्चात् सन्तान उत्पन्न करनी चाहिए। विद्याध्ययन, तपश्चर्य्या, इन्द्रियसंयम आदि के द्वारा उत्तम प्रकार से शुक्ररक्षा करके प्रथम अपने में मनुष्यता प्राप्त करलेनी चाहिए, फिर दूसरे को मनुष्यत्व प्रदान करने का उद्योग करना चाहिए। शुक्ररक्षा ब्रह्मचर्य्यव्रत का एक प्रधान अङ्ग है। महर्षियोंने एक वीर्य-रक्षा को ही मनुष्य-जीवन का सर्वश्रेष्ठ कार्य बतलाया है। वर्त्तमान काल में इन ऋषि मुनियों के मार्ग का अनुसरण किये बिना हमारी जातीय उन्नति होने का और कोई सरल उपाय नहीं है। आजकल के मनुष्य घोड़ा, बैल, गौ, कुत्ता आदि की उन्नति का तो विचार करते हैं; किन्तु किस प्रकार मनुष्य उत्तम उत्पन्न होगा, इस विषय का कुछ भी विचार नहीं करते। किन्तु हमारे पूर्वपुरुष उत्तम सन्तान प्राप्त होने के उद्देश्य से सैकड़ों, हज़ारों प्रकार के बड़े बड़े कठिन नियमों का पालन करते थे।

उत्तम सन्तान-प्राप्ति के लिए प्राचीन महर्षि जिन प्रशस्त नियमों को पालन करने का आदेश देगये हैं और वर्त्तमान कालके पाश्चात्य बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में जिन जिन विज्ञानसम्मत तत्त्वों का आविष्कार किया है, उनका नीचे संक्षेप से उल्लेख किया जाता है। पहले विकृत सन्तान के कारणों को भलीभाँति समझ लेने पर ही हम उत्तम सन्तान-प्राप्ति के उपायों को स्पष्टरूप से हृदयङ्गम करसकते हैं। एक समय चरकसंहिता के रचेता महर्षि अग्निवेशने भगवान् आत्रेय मुनि से विकृत सन्तान उत्पन्न होने के कारणों को जानने की इच्छा प्रकट की। वे कहते हैं—
"कस्मात्प्रजां स्त्री विकृतां प्रसूते।"

अर्थात् हे भगवन्, किसी किसी स्त्री के किस कारण से अङ्ग हीन, विकलाङ्ग (स्वभाव से जिसका न्यून या हीन अङ्ग हो) और अधिकाङ्ग वाली सन्तान उत्पन्न होती है? भगवान् आत्रेय ने उनके इस प्रश्न का समाधान करते हुए अनेक तत्त्वों और कारणों का वर्णन किया है। किन्तु उन सबमें जीव के भाग्य का दोष, माता-पिता के रज-वीर्य का दोष, काल का दोष, सहवास में अनियमि-तता, गर्भावस्था में माता के आहार की अव्यवस्था, माता का विकृत अथवा परपुरुष को देखना, गर्भरक्षा के नियमों का पालन न करना और सूतिकागार के दोष इत्यादि अनेक कारणों से विकृत

और विकलाङ्ग सन्तान उत्पन्न होती है। इन कारणों में से हम नीचे सहवास की और आहार की अनियमितता, विकृत अथवा परपुरुष को देखना, गर्भिणी की नियमभङ्गता और सूतिकागृह के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से आलोचना करते हैं। उत्तम सन्तान-प्राप्ति के उपायके सम्बन्ध में अमेरिका के प्रसिद्ध डाक्टर जोन कावन एम० डी० महोदय ने लिखा है:-"संसार का प्रत्येक मनुष्य उत्तम सन्तान प्राप्त करने की इच्छा करता है। किन्तु केवल इच्छा करने से ही उत्तम सन्तान की प्राप्ति नहीं होती। अतः, जिससे सर्वगुणसम्पन्न, स्वस्थ, सुन्दर और किसी न किसी विषय में प्रतिभाशाली सन्तान उत्पन्न हो. इसके लिए प्रत्येक माता-पिता को प्रबल आकाङ्क्षा और प्राणपण से यत्न और चेष्टा करनी चाहिए। जगत् में प्रतिभाशाली मनुष्यों की संख्या इतनी थोड़ी क्यों है? क्यों इस पृथ्वीतल में कोई अथवा हज़ारों मनुष्यों में बहुत थोड़े मनुष्य कुशलता प्राप्त करते हैं? क्यों इस समय संसार में इतने पाप, सन्ताप, कष्ट और अकालमृत्युयें देखी जाती हैं? क्यों वास्तविक सुखी और योग्य मनुष्यों की संख्या इतनी न्यून है? और क्यों इस भूमण्डल पर पुण्यात्मा मनुष्यों की अपेक्षा पापी मनुष्यों की संख्या इतनी अधिक है? ये प्रश्न बहुत ही कठिन हैं, किन्तु इनकी मीमांसा बहुत सहज है।"

माता-पिता का आपस में अत्यन्त प्रेमभाव से रहना, एक मत होना और उत्तम प्रकार से नियमों का पालन करना आदि कारणों से १० हज़ार सन्तानों में एक उत्तम सन्तान उत्पन्न होती है और नौ हज़ार नौसौ निन्यानवे सन्तानें माता-पिता के सञ्चित किये हुए पापों के बोझे को लेकर उत्पन्न होती हैं। जब संसार में सर्वत्र ऐसी भीषण अवस्था है तब धार्मिक, न्यायशील, सुखी और दीर्घ-जीवी मनुष्यों का अभाव क्यों न होगा! और सब देशोंमें जो पापी, सन्तापी, नशेबाज, धूर्त्त, जुआरी, चोर, आत्मघाती, दुराचारी, मूर्ख और रोगी मनुष्य देखे जाते हैं, इसमें आश्चर्य की क्या बात है! इसलिए जबतक माता-पिता सहवास आदि के सम्बन्ध में विशेष आग्रहपूर्वक नियमों का पालन न करेंगे तब तक मानव-समाज की प्राकृतिक उन्नति नहीं होसकती। एवं धर्म और न्याय का राज्य भी कभी नहीं रहसकता।

१ सहवास में अनियमितता—गर्भाधान के सम्बन्ध में चरकसंहिता के शारीरस्थान के जातिसूत्रीय अध्याय में महर्षि आत्रेय ने कहा है:—

" स्त्रीपुरुषयोरव्यापन्नं शुक्रशोणितं योनिगर्भाशययोःश्रेयसीं प्रजामिच्छतोस्तन्निर्वृत्तिकरं कर्म्मोपदेक्ष्यामः। "

अर्थात् जिस पुरुष का शुक्र और जिस स्त्री का शोणित(डिम्ब)[1] तथा योनि औरगर्भाशय किसी प्रकार के दोष से दूषित नहीं हों तो उनके उत्तम सन्तान होती है। उनको जो२ कार्य्य करने आवश्यक हैं यहाँ उन्हीं कार्य्यों के विषय में उपदेश दिया जाता है।

" ततः पुष्पात् प्रभृति, त्रिरात्रमासीत् ब्रह्मचारिण्यधःशायिनी पाणिभ्यामन्नमजर्जरपात्रे भुञ्जाना नच काञ्चिद्व मृजामापद्येत। "

अर्थात् स्त्री मासिकधर्म के पहले दिन से तीन रात्रिपर्यन्त ब्रह्मचारिणी (अर्थात् पतिप्रसङ्गसे रहित) होकर बाहु का तकिया लगाकर भूमि में शयन करे और धातुनिर्मित पात्रों को त्याग कर मृत्तिका आदि के पात्रों में भोजन करे। इस समय में स्नानादि किसी प्रकार का शारीरिक सुधार व शृङ्गारादि नहीं करना चाहिये।

इसी सम्बन्ध में प्लिनि (pliny) नामक एक पश्चिमीय विज्ञानवेत्ता विद्वान् ने लिखा है कि -" ऋतुमती स्त्री अत्यन्त अपवित्र होती है। वह जिस स्थान में रहती है, वहाँ के उद्भिज्ज पदार्थों में विशेष प्रकार की पीड़ा होती है, मद्य अम्लता को प्राप्त होजाती है और इसी प्रकार के अन्य अनेक विकार उत्पन्न होजाते हैं।"

भगवान् मनुजी ने लिखा है:—

"ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः॥"

(मनु सं० ३ अ० ४५ श्लोक।)

अर्थात् निन्दनीय पहली चार रात्रियों से लेकर स्त्रियों का ऋतुकाल (गर्भाधान का समय) सोलह अहोरात्रपर्य्यन्त जानना चाहिए।

---

१ डिम्ब रक्त से उत्पन्न होता है और ऋतुकाल के रक्त के साथ २ जरायु में से आता है। इसलिए आयुर्वेदशास्त्र ने सब जगह डिम्ब को 'शोणित' नाम से वर्णन किया है।

"तासामाद्याश्चतस्त्रस्तु निन्दितैकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥"

(मनु ३ अ० ४७ श्लोक)

अर्थात् उनमें की पहली चार रात्रियें एवं ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि इस प्रकार ६ रात्रियें सहवास में निषिद्ध हैं। शेष दस रात्रियाँ स्त्रीप्रसंग में उत्तम हैं।

"निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥" (५० श्लोक)

अर्थात् जिन निन्दित ६ रात्रियों और जिन अनिन्दित १० रात्रियों में से जो कोई मनुष्य आठवीं रात्रि या चौदहवीं रात्रि में स्त्रीप्रसंग त्यागकर शेष दो रात्रियों में स्त्रीप्रसंग करे तो वह किसी आश्रम में क्यों न रहे, ब्रह्मचारी ही रहता है। इसके ब्रह्मचर्य की किसी प्रकार हानि नहीं होती।

चरकसंहिता में महर्षि आत्रेय ने लिखा है—"ततश्चतुर्थे"।

अर्थात् ऋतुकाल के पश्चात् चौथे दिन उस स्त्री को हल्दी से उबटन करके और शरीर को उत्तम प्रकार से मर्दन करके शिर से स्नान करावे और श्वेत वस्त्र पहरावे। इसी प्रकार पुरुष भी उस दिन स्नान करके शुक्ल वस्त्रों को धारण करे।

"स्नानात्प्रभृतियुग्मेष्वहःसु संवसेतां पुत्रकामौ तथायुग्मेषु दुहितृकामौ"।

अर्थात् पुत्र उत्पन्न होने की इच्छा से ऋतुस्नान के बाद युग्म दिनों में (ऋतुकालकी १६ रात्रियों की छठी, आठवीं, दसवीं और बारहवीं रात्रि में) और कन्या उत्पन्न करने की इच्छा से अयुग्म दिनों में (पाँचवीं, सातवीं और नवीं रात्रि) में प्रसंग करना चाहिए। इस विषय में सभी महर्षियों का एक मत है।

किन्तु भगवान् मनु और महर्षि सुश्रुतने और भी कहा है कि:— "पुरुष के वीर्य्य की अधिकता होने से अयुग्म रात्रियों में भी पुत्र और स्त्री का रज अधिक होने से युग्म दिनों में भी कन्या उत्पन्न होसकती है।

इसके सिवा सुश्रुतसंहिता में लिखा है कि—"ऋतुकाल के चौथे दिन से आगे के बारह दिन अर्थात् १६ दिनों में उत्तरोत्तर

क्रम से जितने दिनों बाद गर्भ रहेगा, उतनी ही सौभाग्यवती और बलशालिनी सन्तान उत्पन्न होगी। ऋतुकाल के तेरह दिन के बाद स्त्रीप्रसंग नहीं करना चाहिए।"

"न च न्युब्जाम्।"

अर्थात् स्त्री यदि टेढ़ी तिरछी पड़ी हो अथवा करवट से लेट रही हो तो उस समय वह वीर्य्य ग्रहण न करे। स्त्री को सदा चित्त लेटकर ही वीर्य्य ग्रहण करना चाहिये।

"तत्रात्यशिता क्षुधिता पिपासिता भीता।"

अर्थात् स्त्री को चाहिए कि वह अधिक भोजन करने पर, या भूखी, प्यासी होने पर, वा भयभीत, चञ्चलचित्त, शोकान्वित, और क्रोधित होने पर अथवा अन्य पुरुष की इच्छा करने पर या अत्यन्त कामातुर होने पर गर्भधारण न करे। यदि ऐसी अवस्था में गर्भधारण होगा तो विकृत सन्तान उत्पन्न होगी।

"अतिबालामतिवृद्धाम्।"

अर्थात् अत्यन्त बालिका, अत्यन्त वृद्धा, बहुत दिनों की पुरानी रोगिणी अथवा अन्य किसी भयंकर रोग से ग्रस्त स्त्री के साथ सहवास नहीं करना चाहिए।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध डाक्टर जोन कावन एम० डी० महोदय ने ऊपर कही हुई महर्षियों की व्यवस्थाओं के सम्बन्धमें जिन वैज्ञानिक तत्वों का वर्णन किया है, उनको नीचे संक्षेप से उद्धृत करते हैं।

मनुजी ने कहा है:--"ऋतु स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।" अर्थात् स्त्रीजाति का ऋतुकाल सोलह अहोरात्र पर्य्यन्त जानना चाहिए।

इसी सम्बन्धमें डा०जोन कावन एम०डी० महोदय कहतेहैं कि:-"प्रत्येक ऋतु के समय एक एक डिम्ब (ओवम्) पकता है और जरायु में आता है। ऋतुकाल की ८वीं रात्रि से लेकर १४ दिनों में यह डिम्ब जरायु में से निकल जाता है। इसके बाद प्रायः दो सप्ताह तक जरायु में डिम्ब नहीं रहता। इसलिये इस समय सहवास करने से गर्भस्थिति नहीं होती। किन्तु इन्द्रिय की अस्वाभाविक उत्तेजना के कारण असमय (सोलह रात्रियों के बाद) में भी गर्भस्थिति होसकती है।"

उक्त डाक्टर महोदय और भी कहते हैं:—

"माता गर्भ के नौ महीनों में नाना प्रकार के उत्तम नियमों का पालन करती हुई अपने गर्भस्थ शिशु को जिस प्रकार सम्पूर्ण विषयों में उन्नत भावापन्न बना सकती है, उस प्रकार विश्व के सम्पूर्ण विद्यालयों के समूह सर्व प्रकार के उत्तम नियमों की जीवन पर्य्यन्त शिक्षा देने पर भी बालक को वैसा उन्नत नहीं बना सकते। कुम्हार जैसे अपनी इच्छा से मृत्तिका द्वारा नाना प्रकार के घटादि पदार्थों को निर्माण कर सकता है,माता भी उसी प्रकार सन्तान को (गर्भाधान के समय गर्भावस्था और स्तन्यपान के समय) इच्छानुसार निर्मित और चारित्रवान् बना सकती है।

'विवृतशायिनी।" (चरक शा० स्थान)

जो गर्भिणी स्त्री हाथ पाँव तथा अन्यान्य अङ्गों को फैला कर शयन करती है और रात्रि में भ्रमण करतीहै उसके उन्मत्त (पागल) सन्तान उत्पन्न होती है। जो गर्भवती स्त्री सर्वैव गाली गलौज आदि वाक्यों तथा हाथा-पाई आदि शरीर के द्वारा लड़ाई झगड़ा करती है और जो सर्वदा पति-सहवास करती है, उसके कानी, लूली, लंगड़ी, अंगहीन, निर्लज्ज अथवा स्त्रैण सन्तान उत्पन्न होती है। जो गर्भिणी स्त्री शोकग्रस्त, ईर्षावाली और दूसरे की वस्तु को लेने की इच्छा करने वाली, दूसरे को कष्ट देने वाली, चोरी करने वाली, क्रोध वाली, निरन्तर सोनेवाली, झूठ बोलने वाली और मद्यपान करने वाली होती है, उसके विकृत, दुःसाध्य रोगोंसे युक्त, ईर्षालु और झूठ बोलने वाली सन्तान उत्पन्नहोती है।

इस सम्बन्धमें डाक्टर जोन कावन महोदय लिखते हैं:—"पति पत्नी को साधारण कारणों के होने पर कलह नहीं करना चाहिये। कारण,उनके इस कलह का सन्तान पर बहुत बुरा असर पड़ता है। अर्थात् सन्तान भी वैसीही कलहप्रिय होतीहै। एक स्त्रीने गर्भावस्था में अपने पति के साथ कुछ दिनों तक बात चीत नहीं की। उसकी सन्तान बड़ी होने पर जब वह पिता की गोद में गयी तब वह भी चुपचाप पड़ी रही"। माता पिता के झूठ बोलने पर या मिथ्या कार्य्य करने पर सन्तान भी मिथ्यावादी होती हैं। क्योंकि माता-पिता के सम्पूर्ण गुण, दोष सन्तान में रहते हैं। एक बालक को झूठ बोलने के अपराध में जब शिक्षा दीगयी तब उसने अपने

पिता से पूछा कि-"पिताजी, क्या आप बाल्यकाल में झूँठ नहीं बोलते थे? यह सुनकर पिताने लज्जा के मारे नीचे को मुँह कर लिया। पुत्रने फिर पूछा। तब पिताने कहा कि-"ना" पुत्र ने फिर पूछा-"तो क्या मा छोटी अवस्था में झूँठ बोलती थी।" पिताने कहा-"मैं नहीं जानता, तुम उसीसे पूछो।" तब पुत्र ने कहा कि-"आप दोनों में से कोई न कोई अवश्य झूँठ बोलता होगा, यदि ऐसा न होता तो मैं झूँठ क्यों बोलता?"

"एक खूनी मनुष्य ने अदालत में जाकर कहा था-"मैंने अपने स्वभाव को उत्कृष्ट बनाने के लिये जीवन पर्य्यन्त यत्न और चेष्टायें कीं, ईश्वर से बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ अनकानेक प्रार्थनायें भी कीं; किन्तु जिन माता-पिता से मेरा जन्म हुआ है, वे इस शरीर और मन में जिन रस, रक्तादि धातु और प्रकृति दुष्ट प्रवृत्ति) को मुझे सौंप गये हैं, उनके दूषित होने से मेरे सारे यत्न निष्फल होगये। इसलिये बाल्यकाल से जीवन पर्य्यन्त मैंने झूँठ बोलना, चोरी करना, जालसाज़ी, दग़ाबाज़ी आदि नाना प्रकार के पापकर्मों को करके अन्त में यह नरहत्या की है। अतएव मेरे बदले मेरे उन माता-पिताओं को ही दण्ड देना चाहिए।"

"तत ऋत्विग् प्रागुत्तरस्यां दिशि।" (चरक सं०)

इन सब श्लोकों का आशय यह है कि-"गर्भाधान के समय और पहले माता-पिता अनेक प्रकार के होम, यज्ञ, मन्त्रोच्चारण आदि के द्वारा ईश्वर की आराधना और उसका चिन्तवन करें। उनको सदा पवित्रभावों से युक्त रहना चाहिये और शरीर, मन, वाणी से धार्मिक जीवन की उन्नति होने का प्रयत्न करते रहना चाहिये।

हमारे सभी प्राचीन महर्षि एक स्वर से स्त्री-पुरुषों को गर्भाधान के समय, गर्भावस्था में, सन्तान को स्तन्यपान कराने के समय और जीवन की सर्व प्रकार की अवस्थाओं में धर्मचिन्तन और धर्म के जीवन में उन्नति करने के उपदेश देगये हैं।

इसीलिये हिन्दू लोग इस समय भी जीवन के प्रत्येक कार्य्य में अर्थात् आहार, विहार, शयन, निद्रा यहाँ तक कि पत्र लिखते समय छींक आजाय तो ईश्वर का नामस्मरण करते हैं।

इस विषय में सुविख्यात डाक्टर ओन कावन महोदय ने भी प्राचीन महर्षियों की प्रत्येक बात का समर्थन किया है। उन्होंने लिखा है:—

"प्रत्येक माता पिता को नैतिक उन्नति करनी चाहिए। भावी सन्तान में सब विषयों में प्रतिभा देखने की इच्छा हो तो भी माता पिता को अपने धार्मिक जीवन की उन्नति का यत्न करना चाहिए। माता पिता को प्रत्येक दैनिक चिन्ता, कथा, वार्त्ता और प्रत्येक कार्य्य में धार्मिक सम्बन्ध रखकर जीवन व्यतीत करना चाहिए। प्रत्येक कार्य्य में मनको एकाग्र रखना आवश्यक है। वास्तविक धर्मजीवन का अर्थ यह है कि माता-पिता को प्रतिदिन प्रत्येक मुहूर्त्त में धर्मनिष्ठता और पवित्रता प्राप्त करने के लिए तन-मन-वचन से पूर्ण उद्योग करना चाहिए। उनको जान बूझकर कोई अनुचित कार्य नहीं करना चाहिये। किसी प्रकार का धर्म्म में ढोंग नहीं करना चाहिए। मानवजीवन जिससे आनन्ददायक और सुखमय बने, इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए। जीवन की पवित्रता की ओर हमेशा लक्ष्य रखना एवं निःस्वार्थभाव से परोपकार करना और अपने धर्म्म में दृढ़ विश्वास रखना चाहिए। माता-पिता को अत्यन्त यत्नके साथ उक्त सद्गुणों को प्राप्त करनेके लिये विशेषरूप से चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि भावी सन्तान की आत्मा में भी ये ही सद्गुण अप्रत्यक्षरूप से संचारित होंगे।"

"सौम्याभिश्चैनाम्।" (चरक संहिता)

अर्थात् गर्भिणी स्त्री के (गर्भसंचार के समय, गर्भावस्था और सन्तान पालन के समय) मन के अनुकूल ऐसे सान्त्वनारूप वचनों से मनको सन्तुष्ट करना चाहिये। और जिन पुरुषों व स्त्रियों के नम्र और सुन्दर स्वभाव, मधुर वचन, उत्तम आचरण और सत्कर्म हों, उन सबके एवं इन्द्रियों को तृप्त करने वाले अन्याऽन्य उत्तम पदार्थों के उसे दर्शन कराने चाहिये। और उसकी सखी, सहेलियों को चाहिये कि उस स्त्री के हृदय को प्रिय तथा हितकर पदार्थों के द्वारा और मनको आनन्द देने वाले गीत, वाद्य आदि के द्वारा उत्तम प्रकार से सेवा करें।

"तथा सायमवदातशरणम्।" (चरक संहिता)

उक्त स्त्री को सायङ्काल के समय पवित्र गृह में निवास, पवित्र शय्या पर शयन, शुद्ध आसन पर बैठना, शुद्ध पेय पदार्थों का पीना, शुद्ध वस्त्रों का धारण करना और उत्तमोत्तम आभूषणों का पहरना आदि के द्वारा उत्तम प्रकार से वेशभूषा बनाना चाहिए

डाक्टर जोन कावन महोदय ने भी कहा है:—

"जिनको सुन्दर सन्तान प्राप्त करने की इच्छा हो, उनको कोई मनोहर चित्र अथवा आदर्श मूर्ति अपने घर में लाकर रखनी चाहिए। अथवा पति पत्नी दोनों किसी देवता व मनुष्य की रमणीय मूर्ति को अच्छे प्रकार से देखें और बड़े यत्न के साथ उसको अपने मन में अङ्कित करलेवें। इस प्रकार उस छवि का निरन्तर ध्यान करें और मानसिक शक्ति के साथ उसी प्रकार की सन्तान को प्राप्त करने के लिए आतुर होजायँ तो भावी सन्तान का शरीर अवश्य सौन्दर्य्य पूर्ण संगठित होगा।"

गर्भावस्था (दस महीनों) में केवल माता के अत्यन्त यत्न करने से ही सन्तान प्रतिभाशाली होती है। माता जब जिन जिन अङ्ग--प्रत्यङ्गों को संचालन करती है तब उन उन अङ्ग--प्रत्यङ्गों में रक्त का प्रवाह होताहै,इसलिये गर्भस्थ सन्तानके उन२ अङ्ग--प्रत्यङ्गों में भी उसी के अनुसार रुधिर का संचार होता है। और वह उन्हीं की समान पुष्ट होता जाता है। बालक के अङ्ग--प्रत्यङ्ग बहुत कोमल होते हैं, अतः उसमें प्रकृत प्रतिभा का बीज अंकुरित होजाता है।

यदि सन्तान को सङ्गीत विद्या में निपुण बनाने की इच्छा हो तो माता--पिता को गर्भसञ्चार से पहले एवं माता की गर्भावस्था में और स्तन्यपान के समय गाने बजाने में विशेषरूप से अनुराग करना चाहिए ऐसा करने से उनकी सन्तान भी गीत-वाद्य आदि कार्यों में योग्यता प्राप्त करेगी।

इसी प्रकार माता-पिता जिस विषय में सन्तान को पारदर्शी बनाना चाहें तो उनको गर्भाधान के समय, गर्भावस्था और बालक को स्तन्यपान कराते समय उन विषयों की विशेषरूप से आलोचना करनी चाहिये * (अपूर्ण)

---

*स्वास्थ्य समाचार के एक लेख के आधार पर।

वाजीकरण।

उत्पत्ति—आयुर्वेद के शल्य, शालाक्य आदि आठ अङ्गों में "वाजीकरण" भी एक प्रधान अङ्ग है। वाजीकरण, चिकित्सा विशेष का नाम है। जिस चिकित्सा से अल्पवीर्य, क्षीणवीर्य, शुष्कवीर्य और वात आदि दोषों से दुष्टवीर्य फिर पुष्ट और शुद्ध होकर तरोताज़ा होजाय उसे वाजीकरण कहते हैं।

भिन्न २ आचार्यों ने इस शब्द का भिन्न २ अर्थ इस प्रकार किया है।

न वाजी-अवाजी-"अवाजी वाजी क्रियतेऽनेन तद् वाजीकरणम्"। जो घोड़ा नहीं है उसे घोड़ा बना देनेवाले को वाजीकरण कहते हैं। अर्थात् जिस प्रकार घोड़ा घोड़ी के साथ समाधान किया में प्रसक्त होता है उसी वेग से मनुष्य भी जिस क्रिया द्वारा शक्तिशाली हो उसे वाजीकरण कहते हैं।

वाजीवातिबला येन यात्यप्रतिहताऽङ्गनाः।
येन नारीषु सामर्थ्यं वाजीवल्लभते नरः॥
व्रज्यते (व्रजेत्) चाभ्यधिकं येन वाजीकरणमेव तत्।

(वाग्भट, चरक)

अथवा धजनं वाजः = वेगः। (प्रसङ्गाच्छुक्रस्य) स विद्यते येषां ते वाजिनः, न वाजिनोऽवाजिनः-अवाजिनः, वाजिनः क्रियन्तेऽनेन तद्वाजीकरणम्।

वाज का अर्थ वेग हुआ, प्रसङ्गवश शुक्र का वेग, जिन्हें शुक्र का वेग (पुष्ट और अधिक शुक्र) है वे वाजी हुए, किन्तु जो वाजी (अधिक शुक्र वाला) नहीं है उसमें अधिक शुक्र पैदा करने वाले को वाजीकरण कहते हैं।

अथवा—वाजी शुक्रमवाजी वाजी क्रियतेऽनेन तद् तथोक्तम्। जिसमें शुक्र बिल्कुल ही नहीं है एवं वह नपुंसक है, उसके शुक्र पैदा करने वाले को वाजीकरण कहते हैं।

अथवा—

वाजी मैथुनम्-अवाजी वाजी क्रियतेऽनेन सत् । जिसमें मैथुन करने की शक्ति नहीं है उसमें वह शक्ति पैदा करने वाले को वाजीकरण कहते हैं।

वाजो नाम प्रकाशत्वात्सच मैथुनसंज्ञितम् ।
वाजीकरणसंज्ञाभिः पुँस्त्वमेव प्रचक्षते ॥
(हारीत)

कुछ इतिहास—जिसप्रकार आजकल के हरएक डाक्टरों को यद्यपि चिकित्सा सम्बन्धी सभी विषयों का ज्ञान रहना है। परन्तु उनमें कोई सर्जरी का विशेषज्ञ होता है, कोई कुष्ठ का चिकित्सक, कोई अक्षि-रोग का चिकित्सक और कोई अगदतन्त्र का ज्ञाता इत्यादि। उसी प्रकार पहले के चिकित्सकाचार्य भी अष्टाङ्गपूर्ण-आयुर्वेद के ज्ञाता होते हुए भी कोई शल्य, कोई शारीरिक चिकित्सा और कोई रसायन आदि में विशेष निपुण होते थे। जो २ आचार्य जिस २ अङ्ग में प्रवीण होते थे उनके उन उन विषयों में बहुत से स्वतन्त्र ग्रन्थ भी आज तक पाये जाते हैं। परन्तु वाजीकरण तन्त्र में इससमय एकभी स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं। पहले बहुतसे ग्रन्थ हों, परन्तु इधर तो हजारों वर्षों से लुप्त हुए जान पड़ते हैं। क्योंकि यदि होते तो कहीं न कहीं जीर्ण-शीर्ण अवस्था में वे अवश्यही पाये जाते। अथवा टीकाकार ही प्रमाणके लिये उद्धृत करते। इनका एक दम अभावभी नहीं माना जासकता, क्यों कि वात्सायन मुनिकृत कामसूत्र के औपनिषद् अधिकार में बहुत से वाजीकरणयोग देख पड़ते हैं।

अनुमान होता है कि पहले कामसूत्रकारों ने पुरुषमें अधिक पुँस्त्व शक्ति लानेके लिये उपनिषद् अधिकार रचा और बादमें यह आयुर्वेद का "वाजीकरण" नामक एक स्वतन्त्र अङ्ग होगया।

मुसलमानी इतिहासों और हकीमी किताबों से पता लगता है कि मुसलमान बादशाहों के समय वाजीकरण तत्ववेत्ता अधिक थे। बादशाह लोग कामकला में बड़े ही निपुण होते थे और इसी लिए वे वाजीकरण आचार्यों की विशेष प्रतिष्ठा किया करते थे जिससे वे लोग परिश्रम से ढूँढ २ कर वाजीकरण के नये २ आविष्कार करनेमें मग्न रहा करते थे। यही कारण है कि हकीमी

किताबों में भी वाजीकरण के नये २ ढङ्ग वाले उत्तम २ अनेक प्रयोग लिखे पड़े हुए हैं।

प्रयोजन—काम-कला प्रियता पुरुषोंमें स्वाभाविक है, स्त्रियों में उनकी अपेक्षा अठगुनी होती है। अन्यान्य सुख होते हुए भी जिन ललनाओं को काम-सुख नहीं होता, उनमें प्रायः अपने पति के प्रति प्रेम और भक्ति बहुत ही कम अथवा एकदम नहीं होती। जिससे अन्त में व्यभिचार होने की सम्भावना होजाती है।

इसका कारण वीर्य की दुर्बलता ही है। इसी कारण से सन्तानें भी नहीं होतीं अथवा अधिक लड़कियाँ ही होती हैं। क्योंकि पुरुष वीर्य और स्त्री का रज मिलकर गर्भ रहता है उसमें भी यदि वीर्य अधिक हुआ तो पुत्र और यदि रज अधिक हुआ तो पुत्री।

कितने लोग काम-कैलि में कामिनियों को तो पराजित करते हैं,पर सन्तान उनके नहींहोती जिसके सन्तान नहींहोती वह संसार में ठूंठे पेड़, चित्रलिखित दीप, सूखा तालाब, मुलम्मा का गहना और काठके पुतले के समान समझा जाता है। सब उसे निखट्टू कहते हैं। वह एकदम प्रतिष्ठाहीन होजाता है। अक्सर लोग निःसन्तान मनुष्य को बातों में कहदिया करते हैं कि 'वह तो मियाँ बीवी है, उन्हें किस बात की फ़िक्र।

और जिसके सन्तान होती है उसकी लोग विविध प्रकार से प्रशंसा करने लगते हैं। कोई उसे पुण्यात्मा, भाग्यवान्, कोई धन्य कोई तारीफ लायक, कोई बली,-बहादुर और कोई बड़ी सन्तान वाला कहता है। सन्तान वाला आदमी सबसे प्रीति करता है। सन्तान रहने से मनुष्य अपने को बली सुखी समझता है। सन्तान वाले की जीविका भी जल्दी लगजाती है, सन्तान ही से विस्तार होता है और कुल-वृद्धि होती है। अनेक प्रकार से चिन्तित रहने पर भी मनुष्य अपनी सन्तान को देखकर चिन्तारहित होकर प्रसन्न होता है। यहाँ तक कि सन्तान रहने से ही धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्ग में मनुष्य की अधिक प्रवृत्ति भी होती है।

वाजीकरण ऊपर लिखे दोनों प्रकार के (स्त्री-वैमनस्यजनित व्यभिचार और निःसन्तानता) दुःखों को बहुत जल्दी दूर करदेता है, जिससे मनुष्य संसार में स्त्री-लोक और मानव-लोक दोनों से पूजित होता है। कितने लोगों के लड़का भी होता है, परन्तु

वह जल्दी मर जाता है अथवा चौपटानन्द होता है किन्तु वाजीकरण से दोनों बातें नहीं होतीं—लड़का चिरजीवी और गुणवान् होता है। यही बातें आयुर्वेद के बृहद् ग्रन्थों में लिखी हुई हैं।

अच्छायश्चैकशाखश्च निष्फलश्च यथा द्रुमः।
अनिष्टगन्धश्चैकश्च निरपत्यस्तथा नरः॥
चित्रदीपः सरःशुष्कमधातुर्धातुसन्निभः।
निष्प्रजस्तृणपूलीति ज्ञातव्या पुरुषाकृतिः॥
अप्रतिष्ठश्च नग्नश्च शून्यश्चैकेन्द्रियश्च ना।
मन्तव्यो निष्क्रियश्चैव यस्यापत्यं न विद्यते॥
मङ्गल्योऽयं प्रशस्योऽयं धन्योऽयं वीर्यवानयम्।
बहुशाखोऽयमिति स्तूयते ना बहुप्रजः॥
प्रीतिर्बलं सुखं वृत्तिर्विस्तारो विपुलं कुलम्।
यशोलोकाः सुखोदर्काः, तुष्टिश्चापत्यसंश्रिताः॥
तस्मादपत्यमन्विच्छन् गुणांश्चापत्यसंश्रितान्।
वाजीकरणनित्यः स्यादिच्छेत् कामसुखानि च॥
वाजीकरणमन्विच्छेत् पुरुषो नित्यमात्मवान्।
तदायत्तौ हि धर्मार्थौ प्रीतिश्च यश एव च॥
पुत्रस्यायतनं ह्येतद् गुणाश्चैते सुताश्रयाः।
अपत्यसन्तानकरं यत्सद्यः संप्रहर्षणम्॥
वाजीवातिबलो येन यात्यप्रतिहतोऽङ्गना।
भवत्यतिप्रियः स्त्रीणां येन येनोपचीयते॥
तद्वाजीकरणम्। (क्रमशः)

पं० हरिनारायण शर्मा, वैद्य शास्त्री आयुर्वेदाध्यापक

भाँग-विजया।

संस्कृत नाम-विजया, त्रैलोक्यविजया शुक्राशन, भङ्गा, मत्कुणारि, वीरपत्रा, अजया, आनन्दा, हर्षिणी, मोहिनी, भृङ्गी, धूर्त्तवधू, मातुलानी, नीलो, मनोहरा, उन्मत्तिनी, योगिनी, शिवप्रिया इत्यादि। हिन्दी-भाँग, भङ्ग। बं०-सिद्धि, भाँग। म०-भाँग। ब्रह्मी-बिष। गु०-भाँग्य। तै०-जनपहितुल। अं०-इण्डियन हेंप। लै०-केनाबिस सेटाईवाँ। फा०-किन्नाबिष, बरकुलख्याल। अ०-किन्नबकेन।

भाँग भारत के अनेक प्रदेशों में प्रचुरता से उत्पन्न होती है। भाँग का क्षुप ३—४ हाथ ऊँचा होता है। पत्ते आकृति में कुछ कुछ नीम के पत्तों की समान लम्बे और कंगूरेदार होते हैं। पतली डंडी पर तीन, पाँच अथवा सात पत्ते होते हैं। फूल हरे रंग के गुच्छों में आते हैं। बीज, समा (सान) की समान बहुत छोटे छोटे होते हैं। यह वृक्ष, पुरुष और स्त्री इन भेदों से दो प्रकार का होता है। पुरुष जाति के क्षुप से पत्ते लिए जाते हैं। ये सूखे हुए पत्ते ही भाँग के रूप में व्यवहृत होते हैं-और स्त्रीजाति के क्षुप के फूलों, फूलों की शाखाओं और पत्तों के द्वारा गाँजे की उत्पत्ति होती है। गाँजे को मर्दन करने से जो उसमें से एक प्रकार का रस निकलता है, उसको चरस कहते हैं। गाँजे को संस्कृतमें गञ्जा, गञ्जाकिनी, सम्विदा मञ्जरी आदि कहते हैं। हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती आदि सब देशी भाषाओं में गाँजा कहते हैं। औषध कार्य्य में भाँग, भाँग के बीज, गाँजा और कहीं कहीं चरस भी लिया जाताहै। मद-रूप से भाँग का प्रचार इस देशमें बहुत कालसे देखाजाताहै। किन्तु औषधरूप से इसका प्रचार सुदीर्घकाल से नहीं ज्ञात होता। वैद्यक के प्राचीन ग्रन्थों में इसका अधिक उल्लेख नहीं देख पड़ता। केवल आत्रेय (हारीत) संहितामें इसके कुछ गुण-दोषों का वर्णन मिलता है। धन्वन्तरिनिघण्टु, राजनिघण्टु, भावप्रकाश आदि ग्रन्थों में इस के गुण-दोषों का उत्तम प्रकार से विवेचन किया गया है। यूनानी-चिकित्सा में इसका उपयोग बहुत समय से होता है। डाक्टरी चिकित्सा में भी इसका चलन कम नहीं है। वैद्यक ग्रन्थों में भाँग के गुण निम्नप्रकार से वर्णित हैं।

भाँग—कड़वी, कषैली, कफनाशक, गरम, पाचक, अग्नि-प्रदीपक, ग्राही (मलको रोकने वाली) रुचिकारक एवं मद, मोह और वाक्शक्ति को बढ़ाने वाली, निद्रा, आनन्द और भ्रम को उत्पन्न करने वाली, तीक्ष्ण, कामशक्तिवर्द्धक, वीर्य्य को स्तम्भित करनेवाली, धातुपोषक, रसायन, बलकारक, पीड़ानाशक और आक्षेप को निवारण करने वाली है। वैद्यक-चिकित्सा में भाँगका दो प्रकारसे अधिक उपयोग होता है। एक आमाशय सम्बन्धी रोगों में परिपाक शक्ति को बढ़ाने के लिए और दूसरा वाजी-करण औषधियों के साथ कामशक्ति को बढ़ाने के लिए। पुराना

अतिसार, संग्रहणी, प्रवाहिका आदि रोगों में इसका बड़ा अच्छा फल होता है । जठराग्नि को दीपन करने और क्षुधाको बढ़ाने की इसमें भारी शक्ति है। अतएव यह अजीर्ण और अजीर्ण से सम्बन्ध रखने वाले नाना प्रकार के रोगों को दूर करती है। यहाँ तक कि यह विषूचिका रोग को भी निर्मूल करती है। इससमय कितने ही पाश्चात्य डाक्टरों की सम्मति है कि यह विषूचिका में अफ़ीम से भी अच्छा फल करती है। हैज़े की प्रथमावस्था में इसका उपयोग होनेसे विलक्षण फल देखने में आता है। वाजीकरण औषधों में इसका चूर्ण, घृत, पाक, मोदक, अवलेह आदि नानारूप से व्यवहार होता है। रतिशक्ति और स्तम्भनशक्ति की वृद्धि के लिए जो कामेश्वर या महाकामेश्वर पाक,महामदनमोदक, रतिवल्लभरसायन आदि पौष्टिक पाक तैयार कियेजाते हैं, उन सबमें भाँग का मुख्यरूप से उपयोग होता है। उसी प्रकार यूनानी तबीबों की पौष्टिक माजूनों और याकूतियों में भी भाँगका प्रधानता से समावेश देखाजाता है। इस समय अनेक पाश्चात्य डाक्टरों ने भाँग के कई अद्भुत गुणों का पता लगाया है। धनुस्तम्भ रोगमें भाँग या गाँजे का धुआँ पिलानेसे धीरे धीरे रोग का आक्षेप कम होजाता है और रोगी को अधिक दुर्बलता नहीं होती । बार बार इसका धुआँ पीनेसे रोग निर्मूल होजाता है। भाँग स्नायुओंमें शिथिलता उत्पन्न करती है, इस कारण धनुस्तम्भ या आक्षेपरोग में स्नायुओं के कार्यको शिथिल करने के लिए कितने ही डाक्टर भाँग, विशेषकर गाँजा या गाँजे के सत्व (चरस) को तमाखु के साथ चिलम में रखकर पीनेकी सलाह देते हैं। सुप्रसिद्ध डाक्टर कास्तगिर, बम्बई के प्रसिद्ध डाक्टर जो० सी० लूकस, डाक्टर डिमिक, डाक्टर ओशनेशी आदि विद्वानोंने केवल भाँग (गाँजे) का धुआँ पिलाकर कितने ही धनुस्तम्भरोगियों को लाभ पहुँचाया है। डाक्टर ओशनेशीने कितने ही रोगोंमें इसकी परीक्षा करके इसके सम्बन्धमें अपना मत स्थिर किया है कि यह-धनुस्तम्भ, जलसंत्रास (पागल कुत्ते या पागल गीदड़ के काटने से उत्पन्न हुआ जलसंत्रास रोग) वात, बालकों का तड़का और विषूचिका रोगकी उत्तम औषध है। अमेरिकन डाक्टर हेअर खाँसी, श्वास और क्षय की खाँसी को दूर करने के लिये भाँग की प्रशंसा करतेहैं

यूनानी हकीम प्रमेह और अन्त्रवृद्धि रोगमें बहुत दिनों से इस का व्यवहार करते आते हैं। दूधके साथ भाँग को पीसकर बवासीर के मस्सों पर लेप करने से बवासीर आराम होती है। अथवा भाँग की धूनी देने से भी बवासीर की घोर पीड़ा तत्काल शमन होती है। भुनी हुई भाँग के चूर्ण को शहदके साथ मिलाकर खानेसे अतिसार, संग्रहणी और मन्दाग्नि दूर होती है। भाँगके पूरे वृक्षको पीसकर ताज़े घावके ऊपर बाँधने से बहुत लाभ होता है-और चोटकी पीड़ामें इसका लेप करने से उक्त पीड़ा शीघ्र कम होजाती हैं। अनिद्रा रोगमें-किञ्चित् भाँग को जलमें पीसकर उसमें थोड़ा दूध और मिश्री मिलाकर पान करने से अथवा भाँगको दूधके साथ पीसकर पैरों पर लेप करने से सुखपूर्वक निद्रा आती है। भुनी हुई भाँगको पुराने गुड़में मिलाकर खाने से विषमज्वर दूर होता है। गनारिया अर्थात् सोज़ाकमें भी भाँग का अच्छा फल होता है। भाँग को जलके साथ पीसकर पान करने से या उसकी पिचकारी लगाने से सोज़ाक की पीड़ा शीघ्र कम होजाती है। भाँग का क्वाथ बनाकर विसर्प, कुष्ठ आदि रोगों पर सेचन करने से बहुत लाभ होता है। स्त्रियों के अधिक रजःस्राव होनेपर भाँग का सेवन अत्यन्त हितकारी है। एवं गर्भाशय आदि से रक्तस्राव होनेपर भी भाँग अच्छा गुणकरती है। विलम्बसे प्रसव होनेके समय और प्रसव की वेदनामें भाँग का सेवन करानेसे उक्त वेदना दूर होकर शीघ्र ही प्रसव होता है। भाँगमें जो ग्राही गुण है, वह अफीम की अपेक्षा कम है। भाँग मलरोधक होनेपर भी अफीम की समान मलको बाँधकर कोष्ठबद्धता उत्पन्न नहीं करती है-और न यह अफीम की समान अरुचि, अफारा, क्षुधामान्द्य, शिरःपीड़ा आदि विकारों को ही उत्पन्न करती है। इस के सिवा अफीमकी समान इससे स्वास्थ्य की अधिक हानि भी नहीं होती। भाँग मदकारक पदार्थ है। अतएव अधिक मात्रामें सेवन कीहुई यह मोह और भ्रम को उत्पन्न करती है एवं मनको चञ्चल करती हैं, इसलिए इसको औषधरूपसे ही सेवन करना चाहिये। केवल नशे के लिए सेवन करना महाहानिकारक है।

भाँग के मद को दूर करने वाले कुछ उपायः—

(१) भाँग का अधिक नशा होजाने पर कुछ लाल या सफेद

इलायचियों को चबाने से अथवा इलायचियों को जल में घोटकर और मिश्री डालकर पीने से तत्काल नशा उतर जाता है।

(२) सोडावाटर, लेमनेड वाटर आदि विलायती ढंग के पानी को अथवा अन्य किसी प्रकार के पाचक जलको पीने से भी भाँग का नशा शीघ्र उतर जाता है।

(३) दही, दूध और खाँड तीनों को एकत्र जल में घोलकर अथवा कलाकन्द या पेड़े को जल में घोलकर और उसमें इलायची का चूर्ण डालकर पान करने से भाँग का नशा शीघ्र कम हो जाता है।

(४) अधिक खुश्की होने पर दोनों कानों में और शिर में बढ़िया चमेली का या और कोई सुगन्धित तेल डालने से विशेष लाभ होता है।

(५) भाँग के सेवन से शरीर में वायु की वृद्धि होने पर सोंठ या अदरक को सेवन करने से वायु की पीड़ा दूर होकर भाँग का नशा शीघ्र ही कम होने लगता है।

आयुर्वेदोन्नति में आवश्यक कर्त्तव्य।

शिक्षित समुदाय इस बातसे भलीभाँति परिचित है कि भारत की देशी चिकित्सा से देशको कितना लाभ पहुँचता है। जब बड़े २ विदेशीय शास्त्रके पारङ्गत भी किसी जटिल रोगकी समस्या को हल नहीं करसकते हैं तो लाइलाज़ कहकर छोड़ देते हैं तब वह रोगी अकर्मण्य (लाचार) होकर विवश और दीन होता हुआ वैद्यों की शरणागत होता है; उससमय वह मुमूर्षु होता हुआ भी भारतकी देशी चिकित्सापद्धति से स्वल्पकाल में ही आरोग्य होकर सुख प्राप्त करता है। ऐसे लाखों उदाहरण प्रतिवर्ष दृष्टिगोचर होते हैं, जिनको देखकर बड़े बड़े विदेशीय चिकित्साभिमानी आश्चर्यान्वित होते हैं ! यह सब जानतेहैं कि भारत की देशी चिकित्सा भारतवासियों के लिये कितनी उपादेयहै। किन्तुयह सब कुछ होते हुए भी इसकी उन्नति दिखायी नहीं देती, इसका वास्तविक

कारण क्या है ? यदि अनुसन्धान कियाजाय तो वर्त्तमानमें भी उन्नति की चरमावस्थामें पहुँचीहुई अन्यचिकित्साओं से हमारी देशी चिकित्सामें ही उन्नतिकी संख्या अधिक रहेगी। फिर भी इससमय इस विद्या का ह्रास ही दिखाई देता है ? कहना नहीं होगा कि इस में वैद्यों की कायरता है ! क्योंकि पहिले निश्चय होचुका है कि इस विद्या की उन्नति की सहायक न तो सरकार ही होसकती है न देशी राजा ही। अनेक बार सरकार और राजाओं से सविनय निवेदन किया गया, परन्तु कुछ भी फल न हुआ। फिर यदि हम वैद्य लोग न चेतें को कायरता नहीं तो क्या है ? कितने खेद की बात है कि देश में इतने वैद्यों की संख्या होने पर भी जो त्रुटियाँ वैद्यसमाज की अधोगति की कारणभूत हैं वे दूर नहीं हो सकीं ! मैं देश के वैद्यबन्धुओं से निवेदन करचुका हूं कि अब निद्रा को छोड़ अपने वैद्यत्व को सार्थक कीजिये। परन्तु दुःख है कि अद्यावधि किसी ने यहाँतक भी आन्दोलन नहीं किया कि हमारे क्या २ कर्तव्य हैं ? ज्यादह न लिखकर वैद्यसमुदाय के निम्नलिखित नेताओंसे साञ्जलि प्रार्थनाहै कि आप या तो आयुर्वेद की वर्तमानावस्था को सुधार कर एक योजना स्थिरकीजिये या स्पष्ट अपना अभिप्रेत जनता में प्रकट करदीजिये कि हम सब कार्यों में असमर्थ हैं।

१—कविराज गणनाथसेन सरस्वती जी, कलकत्ता।
२—स्वामी लक्ष्मीरामजी आचार्य्य, जयपुर।
३—पं० यादव त्रिविक्रमजी आचार्य, बम्बई।
४—कविराज योगेन्द्रनाथसेनजी, कलकत्ता।
५—पं० उमाचरणजी भट्टाचार्य, बनारस।
६—कविराज यामिनीभूषण एम० ए०।
७—पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल, प्रयाग।

यद्यपि और भी बहुत से विद्वान् देश में आयुर्वेद के मर्मवेत्ता हैं, परन्तु उक्त महानुभाव आयुर्वेदसंसार में मुख्य गणनीय हैं-इसलिये मैंने पिछले दिनों स्वतन्त्र और बङ्गवासी समाचार पत्रोंमें 'आयुर्वेदके विद्यालय और परीक्षाओंकी व्यवस्था' के विषय में कुछ दिग्दर्शन दर्शाते हुए सुधार के लिये निवेदन कियाथा, परन्तु किसी विद्वान्ने उसके सुधारके लिये प्रतिवचन

नहीं दिया। इसलिये मुझे आज फिर खुले शब्दों में उक्त महानु-भावों से आग्रहपूर्वक कहना पड़ता है कि या तो आयुर्वेद की उन्नतिमें जो कुछ त्रुटियाँ है उनको दूरकर इसको साङ्गोपाङ्ग समृद्ध करने के लिये सन्नद्ध हूजिये या यही लिखकर सन्तोष दिला दी-जिये कि हम लोग कुछ नहीं करसकेंगे। जब देखते हैं कि देश में आयुर्वेदोन्नति में लाखों रुपया प्रतिवर्ष व्यय होता है, परन्तु उससे फल कुछ भी नहीं। यद्यपि हालमें ही कई अच्छे विद्यालयों का उद्घा-टन हुआ है तथा कई दानवीरों ने कई लक्ष रुपया इसको जागृति के लिये दान किया है और हिन्दुविश्वविद्यालयमें सुनाहै आयुर्वेदो-न्नति के लिये पूर्ण विचार होगा इसीलिये माननीय मालवीयजी ने कई लक्ष रुपया इस कार्य के लिये एकत्रित किया है। परन्तु कब होगा? कैसेहोगा? इसका कुछभी पतानहीं! इसलिये सन्तोष नहीं होता कि हमारी मनोकामना पूर्ण होगी या निराशा धारण करेगी।

इस समय मेरी सम्मतिमें क्या कर्त्तव्यहै उसको मैं निवेदन करता हूँ। सब से पूर्व आयुर्वेद-महामण्डलजो वैद्योंकी सार्वजनिक संस्था गणनीय होचुकी है उसका सुधार होना आवश्यक है।

मदरास, बङ्गाल या संयुक्तप्रदेश में उसका कार्य्यालय होना चाहिए। उसके प्रचलित कार्यों का सुधार होना भी अत्या-वश्यक है और एक आदर्श विद्यालय खुलने की परमावश्य-कता है। विद्यालय के अङ्गों में सब से पूर्व शल्यचिकित्सा (सर्जरी) की चिकित्सा का प्रबन्ध परमावश्यक है। इसकार्य के लिए पूर्व देशके आयुर्वेदीय विद्वानों को सिखाकर तैय्यार कियाजाय।

औषधनिर्माण और वनस्पति विज्ञान की शिक्षा की भी वैद्यों में बड़ी त्रुटी है वह भी दूर कीजाय। इसलिए यह काम वैद्यसमाज के लिए कुछ भी कठिन नहीं है यदि उक्त महानुभाव प्राणपणसे कुछ अपना समय देकर विचार करेंगे तो आशा है कि उक्त विद्यालय के कई विद्यालय बनसकते हैं और आयुर्वेद की उन्नति में जो बाधायेंहैं वे दूरहोकर वैद्योंका मुख उज्ज्वल होसकताहै। मुझे आशा है पूर्वोक्त महानुभाव बहुत शीघ्र एक समिति सङ्गठित कर विचार करेंगे।

विनीत—नारायणदत्त शर्मा वैद्यराज, सदर मेरठ।

विविध-संग्रह ।
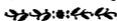
मांसाहार की अपेक्षा वनस्पत्याहार की उत्कृष्टता— सन् १९०८ में ६ महीने तक लन्दन की विजिटेरियन सोसाइटी के सेक्रेटरी मिस्टर एफ० आई० निकलसे ने प्रतिदिन १०००० लड़कों को अन्न और फलों का आहार कराना शुरू किया—और उसीसमय लन्दन की काउन्टी कौन्सिल के १०००० लड़कों को ६ महीने तक मांसाहार दिया गया। ६ महीने के पश्चात् दोनों प्रकार के लड़कों की डाक्टरी जाँच कीगयी। उससे यह बात पूर्णतया साबित होगयी कि वनस्पति-आहार करने वाले लड़के मांसाहार करने वालों की अपेक्षा अधिक हृष्ट-पुष्ट, बलवान्, दृढ़ शरीर और सुन्दर वर्ण वाले थे।

अमेरिका में वेश्याओं के बहिष्कार का फल—अमेरिका में गत तीन वर्षों से विशेष आन्दोलन करने पर वहाँ के यूनाइटेड स्टेट्स के नगरों से वेश्याओं के ८३ मोहल्ले खाली होगये हैं। जिससे ८०० शहरों की चरित्रनीति सुधर गयी है। इस समय वहाँ सैनिक लोगों में उपदंश, सोज़ाक आदि घृणित रोगों का औसत घटकर ९० से ६२ रहगया है। इस कार्य्य के सम्पादन में वहाँ की महिलाओं ने बड़ा परिश्रम किया था। देखें, भारत के सुधारक लोगों का इस ओर कब तक ध्यान आकर्षित होता है?

मिट्टी के तेल का नया आविष्कार—सहयोगी "समय" लिखता है-इस समय अमेरिका के एक वैज्ञानिक विद्वान् ने कैरोसियन आयल (मिट्टी के तेल) को जमाकर बर्फ़ की समान कठिन बनानेका उपाय ढूँढ निकाला है। किन्तु यह जमा हुआ कैरोसियन आयल बर्फ़की समान गलता नहींहै। उसको बर्फ़के टुकड़ेकी समान या लकड़ी के टुकड़ेकी समान काट काट कर जलाया जाताहै। यह तेल घर में बत्ती की समान जलाकर रक्खा जासकता है। इसमें यह एक बड़ी अच्छी बात है कि इसको जलाने के लिए किसी बत्ती या पलीते की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसको अधिक जल मिला

कर खूब पतला करके भी जलाया जासकताहै। जमने और सङ्कुचित होने के कारण इसकी उत्ताप शक्ति और प्रज्वलन शक्ति भी प्रायः अधिक बढ़जाती है। केवल एक दियासलाई लगादेने से जमा हुआ कैरोसियन आयल बत्ती की समान सहजमें ही जलजाताहै-और फिर वह अन्त समय तक अर्थात् जबतक उसे स्वयं न बुझाया जाय तब तक वह बराबर जलता रहताहै। उसका प्रकाश बराबर एक सा रहता है, न कम होता है और न ज्यादह होता है। अग्नि लगने का भय भी इस में नहीं रहता। यदि यह समाचार ठीक है तो बड़े आनन्द की बात है। सर्वसाधारण के सुभीते और स्वास्थ्य के लिए एवं मिट्टीके तेलके द्वारा होनेवाले अन्य सब उत्पातों को दूर करनेके लिए कैरोसियन तेल को बर्फ की समान बनादेना वास्तव में बड़ा अच्छा कार्य्य हुआ है। हम समझते हैं कि जमे हुए कैरोसियन तेलका प्रचार होते ही वर्त्तमान कैरोसियन तेलका व्यवहार एकदम बन्द होजायगा। एवं इसके द्वारा देश के सैकड़ों अभागे स्त्री-पुरुषों के जलनेका भय भी बिलकुल दूर होजायगा।

रंगचिकित्सा—भिन्न भिन्न प्रकारके रंगोंके द्वारा मनुष्य के मन और शरीर पर भिन्न भिन्न प्रकार का परिणाम होता है। पानी और भिन्न भिन्न प्रकार के पदार्थों के तेलों को भिन्न भिन्न प्रकार की बोतलों में भरकर कुछ निर्दिष्ट समयतक सूर्य्यकी धूप में रक्खा जाताहै, उससे उनमें कितनेही मुख्य २ रोगों को नष्ट करनेकी शक्ति उत्पन्न होजाती है। रंगविज्ञान का उपयोग करने में वस्त्र, घरकी दीवारें और हमेशा काम में आनेवाली चीज़ों का रंग निश्चित करके मनुष्य अधिक सुख और आरोग्यता प्राप्त करसकते है। नीला रंग आरोग्यता के लिए बहुत लाभदायक है। रोगी के स्थान में नीला रंग रहने से रोगी अत्यन्त आनन्दित और आशावान् रहता है। परन्तु लाल या पीले रंग से उल्टा परिणाम होता है। यह शिरपाड़ लांड्रल का मत है।

ब्यूबोनिक प्लेग, कालरा, अरुचि, मन्दाग्नि, पेचिश और दूसरे अनेक शारीरिक व मानसिक रोगों पर रंगचिकित्सा का आश्चर्य-जनक फल देखा जाता है।

चिकित्सा में एक महिला का नया आविष्कार—गत वर्ष चिकित्सा विज्ञान में दो नये आविष्कार हुए हैं। उनमें एक आविष्कार ऐसा है जिसकी खोजका सारा श्रेय एक विलायती डाक्टर महिला हैरियट चिक को है। उनका आविष्कार कितने अधिक महत्व का है, यह इसी से मालूम होता है कि आज समस्त वैज्ञानिक संसार उनके आविष्कार पर विचार कर रहा है। डाक्टर हैरियट चिक ने बताया है कि सूर्यकी किरणें प्राणियों का खाद्य हैं। ये (किरणें) इतनी ही शक्तिवर्द्धक हैं जितनी कि घी, दूध, रोटी दाल होसकती हैं। वास्तवमें सूर्य की किरणें प्राणियों को ऐसी रहस्यमय वस्तुएं देती हैं जिनका गुण घी की भाँति होता है।

इसके प्रमाणमें आपने बताया है कि उत्तरीय ध्रुवके ग्रीनलेण्ड देशमें जाड़े के दिनों में वहाँ सूर्य नहीं निकलता, इसलिए वहाँ के लोगों को जीवित रहने के लिए बहुत चर्बी खानी पड़ती है।

आस्ट्रियाकी राजधानी वायना नगरमें डाक्टर हैरियट चिक वहां के बालकों की चिकित्सा करती थीं। उन्हें मालूम हुआ कि सर्दी के दिनोंमें यदि बालकोंको चर्बी अथवा मछली का तेल न खिलाया जाय तो वे बहुत बीमार रहते हैं। परन्तु धूपसे उनकी बीमारी अच्छी होगई।

यूरुप में धूप कम निकलती है-इस लिए बड़े लम्प बनाये गये। उनकी किरणें बीमार बच्चों पर डालकर देखी गयीं। उससे भी बहुत से बालक अच्छे होगये।

श्रीमती डाक्टर हैरियट चिक के इस नवीन आविष्कार से बहुत सी मातायें लाभ उठारही हैं। उन्हें मालूम होगया कि जाड़ेके दिनों में बच्चों की खुराक में मक्खन की मात्रा बहुत अधिक करदेनी चाहिये और गरमियों में बच्चों को खूब धूप खिलानी चाहिये।

धूप से इलाज करने की इस नवीन विज्ञानकी खूब उन्नति हो रही है। हेलिङ टापू में बच्चोंको धूपमें समुद्रस्नान कराया जाता है। इस आविष्कार में उक्त डाक्टरनी महाशया की और भी कई डाक्टरनियों ने सहायता की है। अब वे बालकों की अन्य बीमारियों के इलाजका भी अध्ययन कररहीं हैं। यही नहीं, बल्कि अब वे बता रहीं हैं कि स्त्री और बच्चोंकी बहुत सी बीमारियाँ अन्धेरे के

कारण होती हैं। वैज्ञानिक स्त्रियाँ वैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार कर रही हैं कि लड़कियों को खेलना उचित है कि नहीं। वे लड़कियों और स्त्रियों के फेफड़े और दिलों की जाँच कररही हैं। इसमें उन्हें बहुतसी नई बातें मिली हैं। थोड़े ही समयमें वे बतासकेंगी कि किन स्त्रियोंको प्रत्यकतके खेल खेलने चाहियें और किनको नहीं। इसके अतिरिक्त कई स्त्रियाँ क्षयरोग, ज़हरबाद तथा इन्फ्लूएञ्जा आदि रोगों के नाशका उपाय सोच रहीं हैं। सम्भव है, कि इन में से कोई महिला उपर्युक्त रोगोंकी भी चिकित्सा खोज निकाले।

परीक्षित-प्रयोग।

पौष्टिक चूर्ण—सालिममिश्री १ तोला, शकाकुल मिश्री १ तोला, तोदरी सफेद १ तोला, कौंच के बीजों की गिरी १ तोला, इमली के बीजों की गिरी १ तोला, गुजराती बीजबन्द १ तोला, तालमखाना १ तोला, सरवाली के बीज १ तोला, सफेद मुसली १ तोला, काली मुसली, १ तोला, सेमल की मुसली १ तोला, बहमन सफेद १ तोला, बहमन लाल १ तोला, शतावर १ तोला, कीकड़ का गोंद १ तोला, कीकड़ की कच्ची या सूखीहुई फली १ तोला, कीकड़ का सत्त्व १ तोला, ढाक की कोमल कली १ तोला और शुद्ध देशी कच्ची खाँड १८ तोले लेवे। इन सब औषधियोंको एकत्र कूट पीसकर कपड़छन करके खाँड में मिलालेवे। फिर प्रतिदिन प्रातः और सायङ्काल एक २ तोले की मात्रा से धारोष्ण दुग्ध के साथ अथवा आधसेर गोदुग्ध को ३ उफान देकर उसमें ५ तोले सफेद देशी खाँड डालकर उसके साथ सेवन करे। इस चूर्ण के सेवन करने से बीसों प्रकार के नये तथा पुराने प्रमेह, धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, आशुपात, शिरकी पीड़ा, कमरकी पीड़ा, हृदय और मस्तिष्क की निर्बलता, स्मरणशक्ति का नाश आदि सब रोग दूर होते हैं। इस औषध को ४० दिन तक सेवन करना चाहिए। गुड़, तेल, मिरच, खटाई आदि तीक्ष्ण पदार्थों से परहेज़ रखना चाहिए और १॥ महीने तक ब्रह्मचर्य्यव्रत का पालन करना चाहिए।

श्री पं० शम्भुदत्तजी कौशिक मिश्र।

हमारा नया वर्ष ।

करुणामय भगवान् की असीम अनुकम्पासे वैद्य अपनी आयु के दश वर्ष पूरे कर इस संख्या से ग्यारहवें वर्षमें पदार्पण करताहै। गत दश वर्षों में वैद्य ने जैसी कुछ सेवा की है वह आपको विदित है, उसका बताने का हमें अधिकार नहीं है। किन्तु आज हम यह बतादेना आवश्यक समझते हैं कि वैद्य दश वर्षों से जिस प्रकार बराबर अपना कर्तव्य पालन करता आरहाहै उस-प्रकार आप महानुभावों की उसपर दयादृष्टि नहींमालूम होती यदि आपका ज़रा भी ध्यान उस की सेवाओंकी ओर होता तो क्या दश वर्षों में भी एक हजार ग्राहक "वैद्य को प्राप्त नहीं होते और सदाही घाटे का पात्र बना रहता? अन्य वैद्यकपत्रों की स्थिति को देखते हुए और भी आश्चर्य होता है। इससे जान पड़ता है वैद्यसमाज वैद्यक पत्रोंकी आवश्यकता ही नहीं समझता। एवं हिन्दीप्रेमियों की भी वैद्यकपत्रों के प्रति वैसी सहानुभूति नहीं देखी जाती। ऐसी स्थितिमें वे कबतक जीवन धारण करसकते हैं। अभी थोड़े दिनों पहले जहाँ हिन्दी में वैद्यक के आधी दर्जन से भी अधिक पत्र निकलते थे, वहाँ आज एक दो ही दिखाई पड़ते हैं। अहमदाबाद का सहयोगी 'हिन्दी-वैद्यकल्पतरु' बहुत दिनों तक घाटा सहकर ग्राहक महाशयों की यथेष्ट सहायता के बिना सदा के लिए अस्त होगया। कानपुर के सहयोगी 'चिकित्सक' को भी इसी कारण रोगाक्रान्त होकर स्वयं चिकित्साधीन होना पड़ा है। लाहौर के सहयोगी 'देशोपकारक' को भी इसीलिए सुदीर्घ निद्रा लेनी पड़ी है। वैद्यक-संसार में जागृति उत्पन्न करनेवाला और सबसेपुराना सहयोगी 'सुधानिधि' भी ज्यों त्यों करके अपने दिन पूरे कररहा है। ऐसी अवस्थामें 'वैद्य' भी कब तक आपकी सेवा करसकता है। केवल आयुर्वेद के प्रचार के लिए हम इस पत्र के द्वारा प्रतिवर्ष ५००) ६००) रुपयों की आर्थिक हानि सहन करते आरहे हैं और भविष्यमें भी जहाँतक हमसे होसकेगा हानि सहकर इसको चलाते रहेंगे। परन्तु ज़रा आप ही विचारिये कि इसतरह कबतक हानि उठाई जासकती है? हानि की भी कोई सीमा होनी चाहिए। यह बड़े खेद का विषय-

है कि हिन्दी भाषा में वैद्यक का एक पत्र भी अच्छी स्थितिमें नहीं दीखपड़ता। अन्य भाषाओं में चिकित्सा और स्वास्थ्यसम्बन्धी बीसों पत्र व पत्रिकायें निकलती हैं और वे सभी अच्छी स्थितिमें देखी जाती हैं। पर हिन्दी में ऐसे दो चार पत्रों का चलना भी बड़ा कठिन होगया है। इससे अधिक वैद्य-समाज और हिन्दी प्रेमियों के लिए लज्जा का विषय और क्या होसकता है?

गतवर्ष पहले ही से सूचना देनेपर भी हमारे ग्राहक महाशयों ने इतने वी० पी० लौटादिये थे कि जिससे हमारा उत्साह भङ्ग होना स्वाभाविक था, पर 'वैद्य' के कितने ही अनन्यप्रेमी और सच्चे सहायक तथा अपने पृष्ठपोषक महाशयोंकी विशेष सहानुभूति से हम आज और भी उत्साह के साथ इसका सञ्चालन कररहे हैं। गतवर्ष 'वैद्य' की कई संख्यायें बहुत देर से निकलसकीं, इसके लिए हमें दुःख है। इस विषय में हम अपने सहृदय ग्राहकों से क्षमा चाहते हैं—और आगे को इसके ठीक समय पर निकलने की आशा करते हैं। अन्तमें हम अपने ग्राहक और पाठक महाशयों से प्रार्थना करते हैं कि वे दो दो या कमसे कम एक एक नवीन ग्राहक बनाकर 'वैद्य' की सहायता करें। इससे वैद्य की स्थिति अच्छे प्रकार से सुधर सकती है और अनियमितता आदि सब दोष दूर होकर वैद्य अमरत्व प्राप्त करसकता है। हम आशा करते हैं हमारी इस नम्र प्रार्थना पर आप अवश्य ध्यान देते हुए अपना कर्त्तव्य पालन करेंगे।

(विविध संग्रह का शेषांश)

कैसे शयन करना चाहिए—विलायत के बड़े बड़े डाक्टरों का कहना है कि यदि गाल के नीचे हाथ रखकर शयन कियाजाय तो उस ओर की आँख बैठजाती है। यदि हाथ पाँव सकोड़कर या पेट में घुटने टेककर शयन कियाजाय तो शरीर में थकता आती है, अधिक ऊँचा तकिया लगाकर शयन करने से नाक टेढ़ी होनेकी संभावना है। चित्त होकर शयन करने से रुधिर के संचालन में गड़बड़ी होती है। श्वासोच्छ्वास की गति खराब होजातीहै। बाईं करवट से शयन करने से हृदयपिण्डपर दबाव पड़ता है इससे उस का कार्य्य ठीक २ नहीं होता। अतः दाहिनी करवट से शयन करना ही स्वास्थ्य के लिये सर्वोत्तम है।

रसायन व वाजीकरण औषधियाँ।

चन्द्रोदय मकरध्वज।	फी तोला	२४)
रससिंदूर	,,	४)
स्वर्णमालिनी वसंत	,,	२४)
लघुमालिनी वसंत	,,	४)

भस्में।

अभ्रकभस्म सहस्रपुटित	फी तोला	२४)
अभ्रकभस्म शतपुटित	,,	५)
अभ्रकभस्म दशपुटित	,,	२)
रौप्यभस्म	,,	८)
कान्त लोहभस्म	,,	१०)
लोहभस्म नं० १	,,	४)
लोहभस्म नं० २	,,	२)
मंडूरभस्म	,,	१)
हरताल भस्म (तपकी)	फी तोला	१०)
गोदन्ती हरतालभस्म	,,	॥)
ताम्रभस्म	,,	१)
रङ्ग (वंग) भस्म	,,	१)
मौक्तिकभस्म	,,	३०)
सुवर्णमाक्षिक भस्म	,,	५)
खर्पर भस्म	,,	१)
प्रवाल भस्म	,,	१)
यशद भस्म	,,	॥)
शुक्तिभस्म	,,	।॥)
कपर्दिकभस्म	,,	।)
शंखभस्म	,,	।)

वनौषधियाँ।

शिवलिंगी बीज	फी तोला	१)
निर्विषीकन्द	,,	॥)
ब्राह्मीपत्र	फी सेर	४)
शंखपुष्पी	,,	७)
चिरचिटा (ओंगा)	,,	१)
पुनर्नवा	,,	१)
दशमूल	,,	२)
विदारीकन्द	,,	४)
वाराहीकन्द	,,	४)
अशोक की छाल	,,	२॥)
भिरैंटी	,,	॥)
कंघी	,,	॥)
सहदेई	,,	१)
रास्ना	,,	१)
शालपर्णी	,,	२॥)
पृष्ठपर्णी	,,	२॥)
कालेधतूरे के बीज	,,	२)
सफेद कनेर	,,	४)
ब्रह्मदण्डी	,,	१)
जलनीम	,,	२)
बन्दाल	,,	२)
द्रोणपुष्पी (गूमा)	,,	॥)
दन्ती	,,	४)
रेणुका	,,	४)
वासा (अडूसा)	,,	१)
अरणी	,,	२)
कुम्भेर	,,	२)
पाढर	,,	२)
कटेरी	,,	॥)
बड़ी कटेरी	,,	२)
श्यानाक (अरलू)	,,	२)
विधारा	,,	२)
सेमल की मुसली	,,	२)
सफेद मुसली	,,	१२)
सालिममिश्री	फी तोला	।)

Regd. No A. 587

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिक-पत्र

सम्पादक—शङ्करलाल वैद्य

वर्ष ११	मुरादाबाद । फरवरी, मार्च सन् १९२३	संख्या २-३

विषय-सूची

१-मृत्यु का आगमन ३७
२-ज्वरक की चिकित्सा-प्रणाली ३८
३-उत्तम सन्तान-प्राप्ति के उपाय ४५
४-प्लेग से बचने के उपाय ५७
५-प्लेग की सामान्य चिकित्सा ६१
६-अल संग्राम ६२
७-प्राचीन दिगम्बर जैनाचार्यों के रचे हुए वैद्यकग्रन्थ ६७
८-स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी कटेरी) ६६
९-निगाह ७२
१०-म्युनिसिपल बोर्डों का नया चुनाव ७५
११-परीक्षित प्रयोग ७७
१२-कुछ ज्ञानवर्धक बातें ८०
१३-विविध-समाचार ८०
१४-प्राप्ति-स्वीकार ८२
१५-माता का कर्त्तव्य ८५

प्रकाशक-हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद ।

वार्षिक मूल्य १॥)] [एक संख्या का मूल्य ≈)

Printed by—Pt Lakhi Ram Sharma, at the Sharma Machine Printing Press, MORADABAD.

❀ वैद्य के नियम ❀

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिकमूल्य डाकमहसूल सहित केवल१॥)रु०ही पेशगी मनीआर्डर भेजने से १॥) रु० और वी० पी० मँगाने से १॥।) रु० पड़ेगा।

(३) 'वैद्य' का नमूने में कोई सा एक अङ्क भेजदिया जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषयक लेख, कविता, अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वे पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायँगे। परन्तु लेखको घटाने बढ़ाने आदिका अधिकार सम्पादक का होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिए, जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिए कार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँचकर भेजा जाता है, किंतु बहुत से ग्राहक किसी २ अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं। इसका कारण रास्तेकी असावधानी ही होसकती है। जिन महाशयों को जो अङ्क न मिले वे दूसरे अङ्कके पहुँचते ही हमें सूचना दें। अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सर्वप्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि "वैद्य-शंकरलाल हरिशंकर वैद्यआफ़िस मुरादाबाद" के पते से आने चाहिएँ।

वैद्य

मासिक-पत्र

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ११ | मुरादाबाद। फरवरी, मार्च १९२३ ई० । | संख्या २-३

मृत्यु का आगमन ।

(१)

कृपया किवाड़ खोलो ।

दीपक तैल-विहीन तुम्हारा,
चमक चुका सौभाग्य-सितारा,
आज खिलाड़ी हूँ पौबारा,

हाँ, अब तो सच सच बोलो ।

(२)

जीवन, एक-'विचार'-सरीखा,
उसको मूढ़, बनाया तीखा,
जो दीखा सो तीखा दीखा,

अब और न थोड़ा तोलो ।

(३)

जीवन केवल साँस ख़ज़ाना,
खूब लुटाया है मनमाना,
खाना, सोना, पीना, गाना,

का करते अपयश ढोलो ।

(४)

तन को कितने भोग भुगाये,
मनको कितने विषय सिखाये,
धन से कितने पाप कमाये,
मैं आई क्षणभर खो लो।

(५)

तन से जो उपकार कमाते,
मन को अगर विशुद्ध बनाते,
तो क्यों इस विधि आज लजाते,
लो उठो साथ ही हीं लो।

कृपया किवाड़ खो लो।
नयन।

चरक की चिकित्सा-प्रणाली।

(गतसंख्या से आगे)

पूर्वोक्त उपदेशों के पश्चात् तीन प्रकार की एषणाका उपदेश है। एषणा शब्द का अर्थ है-चेष्टा वा अन्वेषण। पुरुष को चाहिए कि मन, बुद्धि, पौरुष और पराक्रम को ऐसा बनावे, जिसमें किसी प्रकार का व्याघात न हो एवं इहलोक और परलोक की मङ्गलकामना करता हुआ तीनों एषणाओं का अनुसरण करे। इन तीनों एषणाओं के नाम हैं-प्राणैषणा, धनैषणा और पारलोकैषणा। इनमें प्राणैषणा अथवा प्राणों की रक्षा का उपाय सब से प्रथम अनुसरण करना चाहिये। इसलिए स्वस्थ मनुष्य को यथोचित स्वास्थ्य की रक्षा और पीड़ित व्यक्ति के रोग को शमन करने का उचित उपाय करने योग्य है, इसके बाद दूसरी एषणा अर्थात् धनैषणा का उद्योग करने योग्य है। कारण, धन न होने से मनुष्य पापी बनजाता है और दीर्घायु प्राप्त नहीं करसकता। तदनन्तर तीसरी एषणा या पारलौकिक एषणा का अनुसरण करना चाहिये। इस लोकसे च्युत होनेपर फिर किस रूप में उत्पन्न होंगे अथवा होंगे या न होंगे इस विषय में प्रायः अनेक मनुष्यों को सन्देह होसकता है, किन्तु

युक्तियों के द्वारा विद्वानों ने स्थिर किया है कि-पृथिवी, जल, तेज, वायु आकाश और आत्मा का समवायसम्बन्ध होने से गर्भ की उत्पत्ति होती है और आत्मा के साथ परलोक का सम्बन्ध है। कर्त्ता और कारण इन दोनों के योग से ही क्रिया होती है। किये हुए कर्म्म का फल होता है और अकृत कर्म्म का फल नहीं होता। क्योंकि बीज के न होने पर अङ्कुर की उत्पत्ति नहीं होसकती। इसलिए पुनर्जन्म को स्वीकार किये बिना काम नहीं चलसकता। पुनर्जन्मको स्वीकार करनेपर धर्म्मबुद्धिका अवलम्बकरना चाहिए; क्योंकि पारलौकिक एषणा का अनुसरण उसी के लिए करना आवश्यक है। जो चरक की इन तीनों एषणाओं के अनुकूल चल सकता है, वह इस लोक में नीरोग और स्वस्थ शरीर से दीर्घायु प्राप्त करके परलोक में स्वर्गसुख का अनुभव करसकता है।

चरक कहता है कि-आहार, उत्तम निद्रा और इन्द्रियदमन ये तीनों शरीर को धारण करनेवाले तीन स्तम्भ (थम्भे) हैं। इन तीनों स्तम्भों को युक्तिपूर्वक व्यवहार करने से जीवन पर्यन्त शरीर में बल, वर्ण की वृद्धि होती है। इन तीनों का अनुचित व्यवहार ही रोग है। यह रोग साधारणतया तीन भागों में विभक्त है। यथा-स्वाभाविक, आगन्तुक और मानसिक। जो रोग शरीरस्थ वात, पित्त और कफ के द्वारा उत्पन्न होते हैं, उनको स्वाभाविक रोग समझना चाहिए। भूतबाधा, विष, तीव्रवायु, अग्नि, शस्त्रप्रहार आदि से जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे आगन्तुक रोग हैं और प्रियवस्तु के अप्राप्त तथा अप्रिय वस्तु के प्राप्त होने से मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। रोगके स्थान व रोग के मार्ग तीन प्रकार के हैं-शाखा, मर्मस्थानों की सन्धियाँ और कोष्ठ (कोठा)। शाखा शब्द का अर्थ है-रस, रक्तादि सातों धातुयें और त्वचा। ये ही रोग के बाह्य मार्ग हैं। वस्ति (पेड़ू), हृदय, मस्तक आदि मर्मस्थान एवं अस्थि, अस्थि और अस्थियों के संयोग का समूह ये रोग के मध्यम मार्ग हैं। कोष्ठ के अन्यान्य नाम हैं-महास्रोत, शरीरका मध्य, महानिम्न आमाशय और पक्वाशय। ये ही आभ्यन्तरिक रोगमार्गहैं। गलगण्ड, गलडमाला, पिडिका, अपची, चर्मकील, अर्बुद, अधिमांस, अलसक, कुष्ठ और व्यङ्ग आदि बाह्यरोग कहलाते हैं, क्योंकि ये बाह्यमार्गों से

उत्पन्न होते हैं। विसर्प, शोथ, गुल्म, अर्श, विद्रधि आदि रोग शाखानुयायी हैं। पक्षाघात, अङ्गग्रह, अपतानक, अर्दित, शोथ, राजयक्ष्मा, अस्थिशूल, सन्धिशूल, गुदभ्रंशादि रोग एवं शिरोगत, हृदयगत, वस्तिगत और आदि रोग मध्यम मार्गानुसारी हैं। ज्वरातिसार, वमन, अलसक, विसूचिका (हैज़ा), श्वास, खाँसी, हिचकी, आनाह, उदरसम्बन्धी रोग और प्लीहादि रोग तथा आभ्यन्तर मार्गों में उत्पन्न हुए विसर्प, शोथ, गुल्म, बवासीर और विद्रधि आदि को भी कोष्ठ-मार्गानुसारी रोग कहते हैं। इनकी चिकित्सा के लिए चरकने तीन प्रकार की ओषधियों का उल्लेख किया है-१ दैवव्यपाश्रय,२ युक्तिव्यपाश्रय और ३ सत्त्वविजय। मन्त्र, ओषधिधारण, रत्नधारण, मङ्गलाचरण एवं बलि, पूजा, होम, व्रत, प्रायश्चित्त, उपवास, स्वस्तिवाचन, प्रणति, तीर्थयात्रा आदि को दैवव्यपाश्रय कहते हैं। युक्तिपूर्वक पथ्य और औषध-प्रयोग का नाम युक्तिव्यपाश्रय और अनुपयुक्त विषयों से मन को रोकने का नाम अथवा शान्ति का नाम सत्त्वविजय है। वात, पित्त और कफ के कुपित होने से शरीर में जो रोग उत्पन्न होते हैं, उनको निवारण करने के लिए जिन ओषधियों की आवश्यकता होती है वे भी तीन प्रकार की होती हैं। यथा—अन्तर्मार्जन, बहिर्मार्जन और शस्त्रप्रणिधान। जो औषधें शरीर में जाकर आहार के दोष से उत्पन्न हुई व्याधियों को नष्ट करती हैं, उनका नाम अन्तर्मार्जन है। जो ओषधियाँ स्पर्शनेन्द्रिय (त्वचा) को आश्रित करके अभ्यङ्ग, स्वेद, प्रलेप, परिषेक और उद्वर्त्तन (उबटन) आदि के द्वारा रोगनाश करती हैं, उनका नाम बहिर्मार्जन है—और शस्त्रद्वारा छेदन, भेदन, बन्धन, विदारण, लेखन, उत्पाटन, पृच्छन, सीवन, एषण और क्षार व जलौकाप्रयोग (जोंक लगवाना) आदि को शस्त्रप्रणिधान कहते हैं। चिकित्साकार्य्य में ये तीनों प्रकार की चिकित्सायें आवश्यकीय हैं। चरक में शस्त्रद्वारा चिकित्सा का विषय वर्णित न होने पर भी त्रिकालदर्शी महर्षियों का अन्वेषण इन विषयों में किस प्रकार से लिखा गया, इसको विचारने से महान् आश्चर्य होता है। बुद्धिमान् विरक्त कृष्णात्रेय ने एषणा, उपस्तम्भ, बल, कारण, रोग, रोगमार्ग, वैद्य और औषध इन आठों विषयों में से प्रत्येक को तीन

तीन भागों में विभक्त करके जो उपदेश दिया है, उसी के ऊपर चिकित्सा की नींव रक्खी हुई है।

वात, पित्त, कफ का विचारपूर्वक निर्णय करना ही चरक की प्रधान चिकित्सा है। इनका परिचय इस प्रकार करना चाहिए कि जिस शक्ति के द्वारा इन्द्रियों की और शारीरिक यन्त्रों की क्रिया सम्पन्न होती है, उसका नाम वायु है। पित्त-अल्प स्नेह वाला, उष्ण, दाहकत्व आदि तीक्ष्ण गुणयुक्त, द्रव, अम्ल, सारक और कटु है। कफ गुरु, शीतल, मृदु, स्निग्ध, मधुर, स्थिर और पिच्छिल है। इन तीनों का विकृत वैषम्य होना ही समस्त रोगों का कारण है। इनमें वायु प्रधान है। कारण, वातविकार के बिना कोई भी रोग उत्पन्न नहीं होसकता। इसलिए सब प्रकार के रोगों को वातव्याधि में गिना जासकता है। उदाहरण के लिए यह कहा जासकता है कि आमाशय में रहने वाली वायु के कुपित होने से हृदय, नाभि, पार्श्वभाग (पसली) और उदरमें शूल, तृषा, उद्गार (डकार), विसूचिका, खाँसी, कण्ठ, शोष और श्वास रोग उत्पन्न होते हैं। इन सब रोगों की चिकित्सा प्रथम रूक्ष स्वेद और फिर स्निग्धस्वेद के द्वारा करनी चाहिए। कारण, आमाशय कफ का स्थान है, वायु उसमें आगन्तुमात्र है। पक्वाशय में स्थित वायु के कुपित होने से आँतों का कूँजना, शूल, आटोप (वायु के कारण पेट में अफारा और गड़गड़ शब्द होना) मूत्रकृच्छ्र, मलकृच्छ्र, आनाह (अफारा), त्रिक या कमर में पीड़ा होती है और कर्ण आदि की शक्ति नष्ट होजाती है। कोष्ठगत वायु के कुपित होने से मल-मूत्र का विबन्ध, ब्रध्न (बद्द), हृदयरोग, गुल्म, अर्श और पार्श्वशूल रोग उत्पन्न होते हैं। आमाशय, ग्रहणी, आँतें, मूत्राशय, रक्ताशय, हृदय-उन्डुक और फुफ्फुस इनका नाम कोष्ठ है। त्वचागत वायु के कुपित होनेसे त्वचा-रूक्ष, विदीर्ण, सुप्त (सुन्नीयुक्त), कृश, काली, सुई चुभोने सरीखी पीड़ा वाली, विस्तृत और रक्तवर्ण होजाती है। रक्तगत वायु के कुपित होने से तीव्र वेदना, सन्ताप, विवर्णता, कृशता, अरुचि, शरीरमें फुन्सियों का निकलना और भोजन के पश्चात् शरीर में जड़ता होना है। मांस और मेद-स्थित वायु के कुपित होने पर अङ्गों में भारीपन एवं दण्डाघात या मुष्टिप्रहार की पीड़ा की समान पीड़ा होती है। इसके अति-

रिक अत्यन्त शूल और थकावट मालूम होती है। मज्जा और अस्थिगत वायु के कुपित होने पर अस्थि और सन्धि स्थानों में तोड़ने सरीखी पीड़ा, सन्धियों में शूल,मांस का क्षय, अनिद्रा और शरीर में निरन्तर वेदना होती है। शुक्रगत वायु के कुपित होने से वीर्य्य और गर्भका शीघ्र पतन होताहै या वे बद्ध होजाते हैं, इसलिए शुक्र और गर्भ इन दोनों में वि ार उत्पन्न होता है। स्नायुगत वायु के प्रकोप से पक्षाघात रोग होता है। धनुस्तम्भ रोग भी इसी वायु के विकृत होने से होता है। शिरागत वायु के प्रकोप से शरीर में अल्पपीड़ायुक्त शोथ, शुष्कता और कम्प होता है एवं शिरायें सुप्त और सूक्ष्म अथवा स्थूल होजाती हैं। सन्धियों में वात से भरी हुई मसक की समान स्पर्शवाले शोथ की उत्पत्ति होना सन्धिगत वायु के प्रकोप का फल है। आमवात रोग इसी वायु के विकार से होता है। सारांश यह है कि शरीरमें सब प्रकार के रोगों की उत्पत्ति का कारण वायु का विकार ही है। धातुओं के क्षय होने अथवा मार्गावरोध होने से वायु कुपित होता है। वात, पित्त और कफ शरीर के समस्त स्थानों में विचरण करके शरीर की रक्षा करते हैं। वायु कुपित होकर कफ और पित्त को वहन करके स्थानोंको जबदूषित करता है तब वायुका सञ्चरणमार्ग पित्त और कफ के द्वारा रुक जाता है, इससे वह रसादि धातुओं को शुष्क करके सम्पूर्ण रोगों को उत्पन्न करता है। जैसे इस लोक में वायु, सूर्य्य और चन्द्रमा के विकृत होने पर जगत् पीड़ित होता है और अविकृत होनेपर ये संसार का रक्षा करते हैं, उसी प्रकार वात, पित्त और कफ दूषित होने पर शरीर को पीड़ित और अविकृत होने पर शरीर को सुरक्षित रखते हैं। इन वात, पित्त और कफ का मुख्य आधारमनुष्य की वस्ति (पेड़ू), हृदय और मस्तक है। अतएव चरक के मत से चिकित्सा करने पर सबसे पहले स्थान का सम्बन्ध समझ लेना चाहिए। इन स्थानों के विषयको समझकर हिताहित का विचार करता हुआ जो चिकित्सा करता है वही चिकित्सा कर्म में यश लाभ करता है। सात्म्य और असात्म्य का विचार करने में ज्ञान न होने पर भी चिकित्सा नहीं की जासकती। वात, पित्त और कफ परस्पर विरुद्ध होने पर भी परस्पर सात्म्य होने से पारस्परिक सम्बन्ध को विच्छेद नहीं

करते। इसका प्रमाण यह है कि जैसे सर्पविष दूसरे के शरीर में प्राणघाती होने पर भी सर्प के लिये सात्म्य है, अत वह सर्प को नष्ट नहीं करता। तात्पर्य यह है कि धातुओं की विषमता ही रोग है और धातुओं की समता को स्थिर रखने के लिए ही चिकित्सा की आवश्यकता है। चिकित्सा में कुशल वैद्य इन बातों को विचार कर रोगी के रोग का निवारण करने की चेष्टा करे-यही महर्षि पुनर्वसु का सारगर्भित उपदेश है।

चरक में सम्पूर्ण रोगों के नाम और लक्षण कहकर समस्त रोगों के विशेष २ विवरण विशद रूप से वर्णन किये गये हैं, इसी लिये सब रोगों का स्पष्टरूप से उल्लेख नहीं है। वात, पित्त और कफ के लक्षणों को देखकर उनके सब रोगों की चिकित्सायुक्तिपूर्वक करनी चाहिये। यह भी महर्षि पुनर्वसु का आदेश है। यथा—

"रोगा ये ह्यत्र नोदिष्टा बहुत्वान्नामरूपत।
तेषामप्येतदेव स्याद्दोषादीन् वीक्ष्य भेषजम्॥"

(चरकसंहिता चि० स्थान, श्लोक १६५)

यह बात कहकर अब चरक संहिता की ओर आते हैं। मुख से लेकर आमाशय तक, नासिका से लेकर मस्तक पर्य्यन्त और मलद्वार से ऊर्द्ध सीमा तक के स्थानों में जो रोग उत्पन्न होते हैं, उन आभ्यन्तरिक रोगों को औषधियों के आभ्यन्तर प्रयोगों से दूर किया जाता है। शरीर के बाह्यभाग में जो विसर्प और पिड़िकादि रोग होते हैं, उनके स्थान को जानकर [प्रलेपादि करने से वे अच्छी तरह शमन होजाते है, इत्यादि। चरक के चिकित्सा स्थान में सब रोगों का उल्लेख न होनेपर भी चरक को आद्योपान्त पढ़ने से चरक में किसी भी रोग की चिकित्सा में कमी नहीं है, यह बात जानी जाती है। कृमि, विसूचिका, अलसक और विलम्बिका इन रोगों का निदान और औषधि विमानस्थान के आठवें अध्याय में, भगन्दर, गण्डमाला, फोड़े आदि शोथ अध्याय में, मूत्र रोगों की संख्या आदि का वर्णन ग्रहणीरोग के अध्याय में और वातव्याधि के परिच्छेद में विशेष रूप से किया गया है। अम्लपित्त—चरक में ग्रहणी रोग के अन्तर्गत है। गर्भिणी, बालक, प्रसूता और धात्रीचिकित्सा ये सब विषय शारीरस्थान के आठवें अध्याय में कहे गये हैं। हृदयरोग, मूत्राघात और जिन शिरोरोगों

का वर्णन यथास्थानमें नहीं कियागयाहै वे तथा और भी वात रोग सिद्धिस्थान के नवें अध्याय में कहे गये हैं। इसलिये चरक में जो सम्पूर्ण रोगों की चिकित्सा का वर्णन कियागया है, उनको उत्तम बुद्धिवाले मनुष्यों को समझने में कष्ट नहीं होगा। चरक कहता हैः—वातिक पैत्तिक और श्लैष्मिक भेद से सब रोगों की चिकित्सा तीन प्रकार की है, अतएव चिकित्सा स्थान में किसी रोग की चिकित्सा का वर्णन न होने पर भी लक्षणों के देखने पर उसकी चिकित्सा होसकतीहै। यहाँ उदाहरणके लिए डाक्टरी एसियाटिक कालरे का नाम लिया जासकताहै। एसियाटिक कालरे का आयुर्वेदीय नाम है-विसूचिका। इस विसूचिका की चिकित्सा चरक में वर्णन नहीं कीगयी है, किन्तु इसके लक्षण यदि मिलाये जाँय तो चरक के मत से इसकी चिकित्सा बहुत ही सहज में कीजासकती है। एसियाटिक कालरा में—

१-विष्ठा का वर्ण चावलों के धोये हुए पानी की समान सफेद होना है। चरक के मत से यह श्लेष्मा का लक्षण है।

२-हठात् बल का नाश। चरक में यह वायु के प्रकोप का लक्षण है।

३-समस्त अङ्गों का शीतल होना। चरक में यह वात, कफ और पित्त का लक्षण है।

४ शरीर में एंठन होना। यह चरक में वायु के प्रकोप का लक्षण है।

५-नाड़ी दबजाना। वायु के प्रकोप का लक्षण है।

६—निरन्तर असह्य तृषा का होना। यह भी वायु के कुपित होने का लक्षण है।

७—शरीर के भीतर दाह होना और अङ्गों को इधर उधर पटकना। यह वात और कफ के प्रकोप का लक्षण है।

८-श्याम वर्ण होना। वायु के प्रकोप का लक्षण है।

९—सम्पूर्ण अङ्गों में सुई चुभोने की समान पीड़ा होना। वात के प्रकोप का लक्षण है।

१०—शिर में शूल होना। वायु अथवा वात-कफके प्रकोप का लक्षण है।

११-नेत्रों का बन्द होना। वात के कुपित होने का लक्षण है।

१२-स्वरभङ्ग। यह भी वात या वात-कफ के प्रकोप का लक्षण हैं।

१३-श्वास। वायु अथवा वात-कफ के प्रकोप से होता है।

१४-मूत्राघात-वातजनित है।

१५ आध्मान-यह भी वायु से उत्पन्न होता है।

१६-तन्द्रा-वायु अथवा वात-कफ से उत्पन्न होती है।

अतएव यह सिद्धान्त स्थिर किया जासकता है कि यह रोग वात-कफाधिक्य और हीन पित्त वाला सन्निपात है। इसलिए ताप और स्वेदादि एवं दशमूलादि इसकी औषधें हैं। उक्त सब रोगों की चिकित्सा उनके लक्षण मिलाकर की जासकती है। वास्तव में चरक की चिकित्सा अपूर्व चिकित्सा है। इस चिकित्सा की तुलना नहीं की जासकती। जगत् का कोई भी चिकित्साशास्त्र चरक की समता नहीं करसकता। किन्तु दुःख का विषय है कि यह अमूल्य चिकित्सा इस समय प्रायः लुप्त सी होगई है। भारतवासियों की दुर्बल इन्द्रियाँ असमय वृद्धावस्था और अकाल मृत्यु ये अवस्थायें चरक की चिकित्सा के लुप्त होने से ही हुई हैं। डाक्टर वेयाइज और अमेरिकाप्रवासी अङ्गरेज तक यह बात स्वीकार करते हैं। हमारा दुर्भाग्य है कि हम इस बात को नहीं समझते। हमने बहुमूल्य रत्नों के भ्रम में आज काँच का आदर करना सीखा है इसलिए हमने अपनी मृत्यु का मार्ग आप ही परिष्कृत कर लिया है।*

—+—

उत्तम सन्तान-प्राप्ति के उपाय।

(गत सङ्ख्या से आगे)

"मातृजं चास्य हृदयं मातृहृदयाभिसम्बद्धं रसवाहिनीभिः सम्पद्यते"। (चरकसंहिता।)

अर्थात् गर्भस्थ बालक का हृदय माता से उत्पन्न होता है, इस कारण माता के हृदय के साथ गर्भस्थ बालक का हृदय उत्तम प्रकार से सम्बद्ध रहता है। इस प्रकार रसवाहिनी धमनियों के

*कविराज श्री एस० सी० सेन के एक लेख के आधारपर।

द्वारा माता का और गर्भस्थ सन्तान का संयोग होता है। अर्थात् माता का रुधिर सन्तान के शरीर में धमनियों के द्वारा प्रवाहित होता है। इसलिए चिकित्सकगण गर्भावस्था में विरुद्ध आहार और विरुद्ध आचरणादि के करने का निषेध करते हैं; कारण, इससे गर्भस्थ सन्तान विकृत होजाती है।

इस सम्बन्ध में सुविख्यात डाक्टर जान काउजन एम० डी० महोदय लिखते हैं—

"गर्भस्थ सन्तान और माता में एकमात्र रुधिर के सञ्चालन से ही सम्पर्क स्थिर होता है। माता के शरीर का रुधिर भ्रूण (गर्भस्थ शिशु) के शरीर में प्रविष्ट होकर उसको पुष्टि करता है और उसके साथ साथ उसके भावी जीवन के आचार, व्यवहार और चरित्र को सगठित करताहै। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होताहै कि गर्भावस्था में माता को उत्तम विचार और उत्तम आचरणों के साथ साथ खाद्य पदार्थों पर विशेषरूप से ध्यान रखना चाहिए। कारण, उस समय वह जो कुछ भोजन करती है, वह उसके आत्मीय शरीर की समान सन्तान के शरीरस्थ रुधिर में भी परिणत होता है और उस रुधिर में ही सन्तान के भावी जीवन और चरित्रगठन के उपादान रहते हैं।

खाद्य पदार्थों का रस (सारभाग) रुधिर में परिणत होकर मनुष्य-शरीर की पुष्टि करता है। यह रस जब रुधिर में परिणत होता है तब मनुष्य के दैनिक विचार और कार्यादि इस रस के अनुसार ही क्रिया करते हैं-अर्थात मनुष्य के विचार और कार्यादि की प्रकृति इस रस से सञ्चारित होती है। इस प्रकार जब प्रकृति क्रम से रुधिर को अनुप्राणित करती है तब मनुष्य को स्नायु-मण्डल, उसके पश्चात् चरित्र, विचार और कार्यादि की प्रकृति प्राप्त होती है। इस प्रकार मनुष्य का चरित्र अच्छा या बुरा बनता है। अतएव यह बात निश्चितरूप से कही जासकती है कि एक रुधिर के बिन्दु में भी मनुष्य का चरित्र और भाव प्रस्फुटित होते हैं।

इस प्रकार शोकान्वित और क्रोधवती जननी के रुधिरके प्रत्येक बिन्दु में ये समस्त भाव सञ्चारित होते हैं और गर्भस्थ सन्तान उस रुधिरके प्रभाव से बढ़ती है। मनुष्य जिन प्रवृत्तिओं का अधि-कारी होनेपर भी उनकी आकांक्षा नहीं करता, उन समस्त वृत्तिओं

के साथ बालक जन्म लेता है। इसलिए गर्भावस्था में माताको शुद्ध सात्विक अन्न, फल, शाकादि के द्वारा बना हुआ भोजन करना अत्यन्त श्रेयस्कर है।

" मद्य नित्यपिपासालुमनवस्थितचित्तं वा।
गोधामांसप्रिया शर्करिलमश्मरिणम्॥"
(चरकसंहिता)

अर्थात् गर्भावस्था में जो स्त्री सदैव मद्यपान करती है, गोह का मांस या शूकर का मांस भक्षण करती है और जिसको मत्स्य व मांस अधिक प्रिय लगते हैं और जिसका सदैव मधुर, अम्ल, कटु, कषाय, तिक्त आदि रसवाले पदार्थों में चित्त चलायमान रहता है, उसकी सन्तान विकृत और अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित होकर जन्म लेती है।

इस सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध डा० जान काउजन महोदय कहते हैं:—
बालक का पूर्णरूप से विकाश होने के लिए, शुद्ध रुधिर की अत्यावश्यकता है। माता यदि चर्बी और मांसादि पदार्थों का एवं गरम मसाले चा, काफी और मादक पदार्थों का आहार करे तो उसके पवित्र,सुन्दर और प्रियदर्शन सन्तान का उत्पन्नहोना सर्वथा असम्भव होजाता है। माता को मांसादि पदार्थों का भोजन करना सन्तान के लिए किसी अवस्था में भी हितकर नहीं है।

"सूतिकान्तु खलु बुभुक्षिताम्। तस्यास्तु खलु यो व्याधिरुत्पद्यते "॥
(चरक संहिता)

इन सब श्लोकों का सारांश यह है कि सन्तान उत्पन्न करने के समय गर्भावस्थामें और बालकको स्तनका दूध पिलाते समय माता को आहार-विहार,पान आदि विषयोंमें विशेषरूपसे सावधान रहना चाहिए और सब प्रकार के मानसिक उद्वेग, क्रोध, शोक, चिन्ता, द्वेष आदिसे दूर रहना चाहिए। माता को सदैव प्रसन्न चित्त और स्वस्थ शरीर से रहने का प्रयत्न करना चाहिए। इस विषय में उक्त डाक्टर महोदय लिखते हैं:—

"सन्तान को वास्तव में प्रतिभाशाली बनाना हो तो सन्तान उत्पन्न करने से पहले और उसको स्तनपान कराते समय माता को विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है।"

सन्तान के भूमिष्ठ होने के पश्चात् ६-१० महीने तक सन्तानके भविष्य चरित्रके गठनमें माता का प्रभाव विशेष रूपसे होता है। अतएव इस समय तक माताको संयमसे रहना अत्यावश्यक है।

माता प्रतिदिन जो कुछ आहार करती है, वह दुग्धरूपमें परिणत होकर सन्तानको पुष्ट करता है। माता का रुधिर जब दुग्धमें परिणत होता है तब माताको सब प्रकार की मानसिक अवस्थायें इस दुग्धमें अच्छे प्रकारसे सङ्क्रामित होती हैं। इस कारण सन्तान के उस मातृदुग्धको पान करने पर उसके भीतरभी माताकी वे समस्त मानसिक और शारीरिक अवस्थायें सञ्चारित होती हैं। इससे जाना जाता है कि माता का दायित्व कितना महत्त्व पूर्ण है।

एक स्त्री अपने किसी पड़ोसीसे अत्यन्त उत्तेजित होकर कलह कररही थी, उसी समय उसने अपने बालक को स्तनपान कराया। इसके थोड़ी देर के बाद ही देखा गया तो बालक के शरीर में आक्षेपके लक्षण विद्यमान थे। फिर वह बालक शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होगया।

इस विषयमें चरकसंहिता में भगवान् आत्रेयने कहा है:—

"सत्ववैशेष्यकराणि पुनस्तेषां तेषां प्राणिनां मातृपितृसत्वान्यन्तर्वल्याः श्रुतयश्चाभीक्ष्णं स्वोचितञ्च कर्मसत्वविशेषोऽभ्यासश्चेति।"

अर्थात् शुक्र और शोणित के संयोगके समय (सम्भोग के समय) माता-पिता के मनमें जिसप्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं, वे सब भाव तथा पुराण, शास्त्र, वेदादि के विषय में जो भाव वर्णित हैं वे सब भाव और जन्म जन्मान्तरों के बारम्बार के सब संस्कार सन्तान को प्राप्त होते हैं।

"गर्भोपपत्तौ तु मनः स्त्रिया यं जन्तुं व्रजेत्तत्सदृशं प्रसूते।"

अर्थात् गर्भकी प्रथम उत्पत्ति (प्रसङ्गके समय) स्त्री जिस प्राणी का चिन्तवन करती है, उसीके अनुसार उसके आकार प्रकारवाली सन्तान उत्पन्न होती है। अर्थात् सहवास के समय माता-पिताके जैसे भाव होते हैं, उन्हीं के अनुसार सन्तानके भाव भी होते हैं। इस विषय में महर्षि सुश्रुत कहते हैं:—

"पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमङ्गना।
तादृशं जनयेत्पुत्रं भर्तारं दर्शयेदतः॥" (सुश्रुतसंहिता)

अर्थात् ऋतुमती स्त्री ऋतुस्नान के पश्चात् जिस पुरुष को प्रथम देखती है, उसी पुरुष की आकृति वाली उसके सन्तान उत्पन्न होती है। इस लिए स्त्री को प्रथम अपने पति का ही मुख देखना चाहिये।

अष्टाङ्ग हृदयमें महामति वाग्भटाचार्य्य लिखते हैं: –

"गर्भोपपत्तौ तु मनः स्त्रिया यं जन्तुं व्रजेत्तत्सदृशं प्रसूते।"

अर्थात् वीर्य्य ग्रहण करते समय स्त्री का मन जिस प्राणी की ओर जाता है उसीके अनुसार उसके सन्तान उत्पन्न होती है। चक्रपाणिदत्त कहते हैं कि उक्त समय जिस प्राणी का ध्यान किया जाता है, उसीके अनुसार सन्तान उत्पन्न होती है।

भावप्रकाश में लिखा है:–"पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशमिति।"

अर्थात् ऋतुमती स्त्री (चौथे दिन) ऋतुस्नान करके सबसे पहले पति का अथवा पुत्रादि प्रियजन का दर्शन करे। कारण, ऋतुस्नानके पश्चात् स्त्री जैसे पुरुष का दर्शन करती है उसी प्रकारकी उसके सन्तान उत्पन्न होतीहै।

इस सम्बन्ध में डाक्टर कार्पेण्टर महोदय लिखते हैं:—

गर्भावस्था में माता के मन में किसी विशेष प्रकार के भाव उत्पन्न होने पर वे सन्तान को प्राप्त होते हैं।

"किसी स्त्री की किसी पुरुष के प्रति दृढ़ भावना होने पर यदि इन्द्रियसम्बन्ध न हो तो भी उस भावना से उसकी सन्तान को उस पुरुषकी छाया प्राप्त होती है।

सुविख्यात डाक्टर संफेयर महोदय ने अपने "धात्री विद्या" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि प्राचीन वैज्ञानिक पण्डितों ने विशेष अनुसन्धान के द्वारा स्थिर किया है कि–"माता की सब प्रकार की मानसिक अवस्थायें और धारणायें सन्तान को प्राप्त होती हैं।

आज कल के बड़े बड़े वैज्ञानिक पण्डितों ने भी ये सब बातें प्रत्यक्ष और परोक्षभाव से स्वीकार की हैं।

सुप्रसिद्ध डाक्टर हलश्रोक महोदय कहते हैं:—

माता के हृदयमें जो कुछ दृढ़ धारणा या विकृति उत्पन्न होतीहै, वह सन्तानको भी प्राप्त होती है।"

जगद्विख्यात डाक्टर रउक महोदय लिखते हैं:—

"भय (त्रास) के अतिरिक्त और जो भावनायें स्त्री के मनमें उत्पन्न होती हैं, वे सब सन्तान को प्राप्त होती हैं।"

सुविख्यात डाक्टर क्रेनकेन महोदय ने इसके सम्बन्ध में अनेक बातों का उल्लेख किया है। हम संक्षेप से उनका मत नीचे उद्धृत करते हैं।

"भ्रूण की वृद्धि के साथ साथ माता की मानसिक धारणा का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध देखा जाता है। गर्भावस्था में माता के मन में बाह्य वस्तुओं के द्वारा जो धारणा उत्पन्न होती है, उसी के अनुसार गर्भस्थ भ्रूण आकृति व विकृति को प्राप्त होता है।"

सुविख्यात डाक्टर स्मिथ कहते हैं:-"एक भावुक आयरिश रमणी गर्भावस्था के समय एक दिन एक मार्ग में बैठी थी, उसी समय एक हाथ की अङ्गुली से हीन भिक्षुक हाथ फैलाकर उस रमणी के समीप भिक्षा माँगने आया था। इस घटना के पश्चात् यथासमय उस स्त्री के एक कन्या उत्पन्न हुई, तब देखा गया कि उस कन्या के हाथ की एक अँगुलि नहीं है।"

चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेदिक ग्रन्थों में एवं धर्मशास्त्र, पुराण और डाक्टरी ग्रन्थों में लिखा है कि शिशु, बालक और युवक जिन भयङ्कर रोग, अङ्गविकृति अथवा मानसिक विकार, व दुर्बलता आदि विकारों से ग्रसित होते हैं, वे सब उनको माता पिता से ही प्राप्त होते हैं। गर्भ में ही बालक के शरीर में रोग के बीज माता पिता के शरीर में से आकर उत्पन्न होते हैं। फिर बालक के भूमिष्ठ होने पर उसके शरीर की जितनी २ वृद्धि होती है उतनी ही उस बीज की वृद्धि होती है। फिर अकस्मात् बाहिरी किसी कारण से वह बीज या विकृति अपना भीषण रूप धारण करके प्रकट होती है। सारांश यह है कि सन्तान को माता-पिता से केवल शरीरही प्राप्त नहीं होता, किन्तु माता-पिता का स्वभाव, चरित्र, स्वास्थ्य और सब प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोग और विकार न्यूनाधिक परिणाम में अवश्य प्राप्त होते हैं।

गर्भिणी के नियम--गर्भिणी को जो जो नियम पालन करने चाहिएँ और जिन जिन कारणों से गर्भगत बालक के नाना प्रकार के रोग, अङ्गविकृति और अकाल मृत्युयें होती हैं, उनको महर्षि आत्रेय लिखगये हैं। हम चरकसंहिता से उन्हें नीचे उद्धृत करते हैं। यथाः-

"गर्भोपघातकरास्त्विमे भावा भवन्ति।"

गर्भिणी को कभी ऊंचे स्थान में खड़ा नहीं होना चाहिए। असमान (अर्थात् जो समान न हो-ऊँचा नीचा हो) स्थान और कठिन आसन पर नहीं बैठना चाहिए। मल-मूत्र के वेग को कदापि नहीं रोकना चाहिये। तीक्ष्ण औषधि वा तीक्ष्ण पथ्य कभी सेवन नहीं करना चाहिए। बहुत थोड़ा भोजन या अधिक भोजन, हाथी, घोड़े आदि की सवारी पर चढ़ना, शरीर का अधिक सञ्चालन, कटु शब्दों का सुनना, अप्रिय या भयंकर दृश्यों का देखना, शारीरिक और मानसिक परिश्रम, भारी बोझ को उठाना, दूर गमन करना और रात्रि में जागना ये सब बातें त्यागदेनी चाहिएँ। क्योंकि इनसे गर्भपात होसकता है।

गर्भवती स्त्री को सवारी पर चढ़ना, रात्रि में जागना, नाचना, बहुत से मनुष्यों के समुदाय में जाना, भारी भोजन, अल्पभोजन, मांसभोजन और मादक पदार्थों का सेवन इन सब का सर्वथा त्याग करना चाहिये।

सुश्रुतसंहिता में लिखा है:-

"गर्भिणी स्त्री को ऋतु के पहले दिन से लेकर प्रसन्नचित्त, पवित्र, अलङ्कृत, शुक्ल वस्त्र धारण करना और धर्मपरायण रहना चाहिए। अपवित्र, मलिन, विकृत अथवा अङ्गहीन मनुष्य का दर्शन व स्पर्श नहीं करना चाहिए। वह दुर्गन्धित पदार्थों का व्यवहार करे, एवं जिन पदार्थों को देखने से मनमें भय और घृणा उत्पन्न हो ऐसे पदार्थों का कभी दर्शन न करे। चित्त में उद्वेग उत्पन्न करने वाला वार्त्तालाप कभी नहीं करे। दूषित अन्न का कदापि भोजन न करे। इसी प्रकार बाहर भ्रमण, दूर देश में जाना, सूने घर में रहना, अथवा श्मशान में जाना ये सब बातें गर्भिणी के लिये सर्वथा त्याज्य हैं। उसको क्रोध वा भय के कारण सर्वथा छोड़देने चाहिए। गर्भावस्था में सदा तैलादिक का मर्दन अथवा अधिक शारीरिक परिश्रम नहीं करना चाहिये। कोमल और सुखप्रद शय्या अथवा आसन पर शयन करना और बैठना चाहिए। अर्थात् शय्या और आसन अत्यन्त ऊँचा या टेढ़ा, तिरछा अथवा किसी तरह का कष्टदायक नहीं होना चाहिए। मधुर और प्रिय पदार्थ, पतले पदार्थ, अग्निप्रदीपक और स्निग्ध पदार्थों का भोजन करना चा-

हिए। साधारणतया प्रसव के समयतक उसको इनसब नियमों का पालन करना आवश्यक है।

गर्भवती स्त्री के आहार विहारादि दोषों से सन्तान के जो जो अङ्ग विकृत और भयंकर रोगों से ग्रसित होते हैं, उनको महर्षि आत्रेय विस्तृतरूप से वर्णन करगये हैं, नीचे संक्षेप से उन्हें उद्धृत करते हैं :

जो गर्भिणीस्त्री हाथ-पाँव और अन्यान्य अङ्गोंको विस्तृत करके शयन करती है तो उन्मत्त सन्तान उत्पन्न होती है।

जो गर्भवती सदा अपशब्दों (गाली-गलौज) के द्वारा अथवा हाथा-पाई के द्वारा लड़ाई झगड़ा करती रहती है उस स्त्री की सन्तान अपस्मार रोग से ग्रसित होती है।

जो स्त्री गर्भावस्था में सदैव पुरुष के साथ सहवास करती है, उसकी सन्तान कानी, कुबड़ी, लूली, विकल अङ्गवाली, निर्लज्ज स्त्रैण (स्त्री के अत्यन्त वशीभूत अथवा स्त्रियोंके से लक्षणोंवाली) होती है।

जो गर्भवती स्त्री सदा शोकातुर रहती है, उसकी सन्तान भय-भीत, क्षीण अङ्गवाली या अल्पायु होती है।

जो स्त्री गर्भावस्थामें हरसमय दूसरों की वस्तु लेना चाहती है, उस स्त्री की सन्तान दूसरों को पीड़ा देनेवाली, अत्यन्त ईर्षालु अथवा स्त्रैण होती है।

जो गर्भिणी स्त्री चौर्य्यशीला हो उसकी सन्तान थोड़ेसे परिश्रम सेही श्रान्त होजातीहै और हमेशा चोरी, कलह आदि नीचकर्म करती रहती है।

जो गर्भवती स्त्री क्रोधवती होती है, उसके उत्पन्न हुई सन्तान सदैव क्रोध करनेवाली और कपटाचारी होती है।

जो स्त्री गर्भावस्था में हर समय सोती या ऊँघती रहती है, उस स्त्री के मूर्ख और तन्द्रायुक्त सन्तान उत्पन्न होती है।

जो स्त्री गर्भावस्था के समय सदा मद्यपान करती है, उस स्त्री के चञ्चल और भ्रामिक चित्तवाली सन्तान उत्पन्न होती है।

सदैव मांस की इच्छा करनेवाली गर्भवती के जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसके क्रम क्रम से नेत्रों के पलक गिरजाते हैं और नेत्रों में घोर पीड़ा होती है।

गर्भावस्थामें जो स्त्री सदैव मधुर पदार्थों को भक्षण करती है, उसके मूर्ख और स्थूल सन्तान उत्पन्न होती है।

जो स्त्री गर्भावस्था में हमेशा अम्ल (खट्टे) पदार्थ खाती है उस स्त्री के नाना प्रकार के चर्मरोग और नेत्ररोगग्रसित सन्तान उत्पन्न होती है।

जो स्त्री गर्भावस्था में सर्वदा लवणरसवाले पदार्थ (नमकीन) सेवन करती है, उसकी सन्तान के थोड़ी अवस्था में ही त्वचा में शिथिलता, बालों का पकना अथवा गंज रोग होना है।

गर्भकी अवस्था में जो स्त्री मिरच आदि तीक्ष्ण पदार्थ भक्षण करती है, उस स्त्री के अत्यन्त दुर्बल, अल्पशुक्रवाली अथवा अपत्यहीन (जिसके सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्ति न हो) और विविध प्रकार के चर्मरोगों से ग्रसित सन्तान उत्पन्न होती है।

जो गर्भवती स्त्री सदा तिक्तरस वाले (कड़वे) पदार्थों को भक्षण करती है उस स्त्री की सन्तान दुर्बल और यक्ष्मारोग से पीड़ित होती है।

और जो स्त्री गर्भावस्था में कषायरसवाले पदार्थ सेवन करती है, उसकी सन्तान नानाप्रकारके रोगों से आक्रान्त होती है।

इसलिये जो स्त्री सम्पूर्ण विषयों में उत्कृष्ट सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा करे तो उसको गर्भधारण करनेसे पहले दिनसे ही उपर्युक्त विविधप्रकार के नियमों के अनुकूल चलना एवं पवित्र और शान्तचित्त से रहना चाहिये।

सुश्रुतसंहितामें लिखा है:—"गर्भ सञ्चार के दिनसे लेकर माता इन सब नियमों का उत्तमप्रकारसे पालन करे।"

गर्भिणी स्त्री को कदापि गुरुपाकी पचनेमें भारी) पदार्थ नहीं खाने चाहिएँ। गर्भिणी स्त्री के वस्त्र सुन्दर और स्वाभाविक होने चाहिएँ अर्थात् जिनके द्वारा उसको किसी प्रकार का कष्ट न हो।

किसी प्रकार के उत्तेजक पदार्थों का आहार नहीं करना चाहिये। एवं रात्रिमें जागरण और मल-मूत्रके वेगको रोकना नहीं चाहिये। गर्भवती स्त्री को सदैव धर्मचर्चा और धर्मानुष्ठान करते रहना चाहिए।

इस सम्बन्धमें सुप्रसिद्ध डाक्टर टेनर महोदय अपने 'बाल-चिकित्सा" नामक ग्रन्थमें लिखतेहैं:—"गर्भिणी स्त्री का खाद्य

लघुपाकी, परिमित और पौष्टिक होना चाहिये। गर्भावस्थामें किसी प्रकार के भी गुरुपाकी अथवा मादक पदार्थ सेवन करने नहीं चाहिए। यदि अस्वाभाविक आहार में गर्भिणी की अभिलाषा हो तो वह उसको कभी नहीं देना चाहिये। गर्भिणीकी पोशाक हलकी और पतली होनी चाहिये। इस समय उसको स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धी समस्त नियमों का यत्नपूर्वक पालन करना चाहिये और कुछ शारीरिक परिश्रम अवश्य करना चाहिये।"

"गर्भवती स्त्री नियमित रूपसे स्नान और शरीरमार्जन आदि नित्यक्रिया को और समस्त मानसिक प्रवृत्तियों को स्थिर रखने का विशेष रूप से यत्न करे। किसी भी शत्रु को आश्रय न देवे। स्वस्थ और पवित्र मनसे घरके कार्यों में लगी रहे एवं आशा और विश्वासके ऊपर निर्भर रहकर कालयापन करे।"

विख्यात सिविल सर्जन डाक्टर श्रीयुक्त धर्मदास बसु एम० डी० महोदय अपने "स्वास्थ्यरक्षा और साधारण स्वास्थ्यतत्त्व नामक ग्रन्थमें लिखते हैं:—

'गर्भवती स्त्री को मल-मूत्र का वेग रोकना अनुचित है। इसका कारण यह है कि मूत्राशय और मलाशय अधिकभरे रहनेसे जरायुके ऊपर बोझ पड़ता है, इससे उस यन्त्र की वृद्धि होने में व्याघात होता है"।

"पेषण द्वारा उसमें नाना प्रकार की पीड़ायें उत्पन्न होजाती हैं और जरायु अपने स्थान से हटजाता है एवं कभी २ मल मूत्र त्यागना भी असम्भव होजाता है।"

"गर्भवती स्त्री को हाथी-घोड़ा आदि की सवारी पर चढ़ना और भ्रमण करना नहीं चाहिए। ये दोनों बातें उसके लिये बहुत ही हानिकारक हैं। इसके सिवा और किसीप्रकार से अर्थात् अचानक आघात पहुँचने से, उदरमें चोट लगने से अथवा बहुत देर तक पैदल चलने से गर्भपात होसकता है।"

"गर्भिणी स्त्रीको सदैव अपने घरके कामकाजमें लगे रहना चाहिये। क्योंकि बिलकुल परिश्रम न करनेसे भी स्वास्थ्य की हानि होती है। यह सभी जानते हैं कि जो स्त्रियाँ गर्भावस्थामें घरके कामों में लगी रहती हैं उनके यथासमयमें निर्विघ्नरूपसे सन्तान उत्पन्न होती है और जो आलस्यमें पड़ी रहती हैं, उनको बहुत दिनों तक वेदना

सहनी पड़ती है। कभी कभी प्रसवकार्य्य के लिये औषध और अन्यान्य कठिन उपाय भी करने पड़ते हैं"।

"गर्भवती को किसी कारणसे भी अधिक रात्रिजागरण नहीं करना चाहिये इससे पित्तकी वृद्धि, शिरमें पीड़ा, क्षुधाकी मन्दता और कोष्ठबद्धता होसकती है।"

सूतिका-घर।

आजकल सूतिका-गृह के दोषोंसे अधिकांश बालक अकाल ही काल के ग्रास होजाते हैं। कोई कोई कहते हैं कि हमारे देश में किसी समय भी सूतिका घर का सुप्रबन्ध नहीं था। जो भूलकर भी वे एकबार अपने शास्त्रों को पढ़कर देखें तो वे इस प्रकार की बातें अथवा विचार प्रकट न करें। इससे ज्यादह और क्या आश्चर्य्य का विषय होसकता है! जो हो। इस समय सूतिका-गृहके दोष से इस देशके बहुत से बालक असमयमें मरते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। बालकों की इसप्रकार भीषण अकालमृत्यु के कारणों के सम्बन्धमें सुप्रसिद्ध डाक्टर यदुनाथ मुखोपाध्याय महाशय अपने "धात्री शिक्षा" नामक ग्रन्थमें, विख्यात सिविल सर्जन धर्मदास बसु एम० डी० महोदय और भूतपूर्व सिविल सर्जन डाक्टर गोपालचन्द्र राय महाशय "नेशनेल इण्डिया" नामक पत्रिकामें, डाक्टर वार्च महोदय और सुप्रसिद्ध डा० अक्षयकुमारदत्त महाशय अपने "धर्मनीति" ग्रन्थ में विस्तृत और तीव्ररूप से समालोचनायें करगये हैं।

हम यहाँ सूतिकागृह किसप्रकार बनाना चाहिए और उसमें क्या क्या वस्तु रखनी चाहिए, इन सबबातोंको चरक और सुश्रुत संहितासे नीचे उद्धृत करते हैं। महर्षि आत्रेय लिखते हैं:—

"प्राक् चैवास्या नवमान्मासात्सूतिकागारं कारयेदपहृतास्थि-शर्कराकपाले देशे प्रशस्तरूपरसगन्धायां भूमौ प्राग्द्वारमुदग्द्वारं वा"।

अर्थात् गर्भिणी के नौ महीने बीतने से पहले ही सूतिकागृह तैयार करलेना चाहिये और उस स्थान में से हड्डी, कंकर-पत्थर, खोपरे आदि कूड़े करकट को निकालकर उसको साफ़ करलेना चाहिये। उस घर की भूमि उत्तम रूप, रस और उत्कृष्ट गन्धवाली होनी चाहिये और सूतिकागृह का दर्वाज़ा पूर्व को अथवा उत्तर को रखना चाहिये।

"तत्र वैश्यानां काष्ठानाम्।"

अर्थात् उस घरके आसन, पीढ़ी, खाट आदि, आच्छादन और किवाड़ इत्यादि बेल, तेंदु, इंगुदी, भिलावा, बरना और खैर इन वृक्षों की लकड़ी के बनेहुए होने चाहियें। और मनोयोग के साथ ऋतुओं के सुख का अनुभव होने के लिये उसमें गर्भिणी के वास्ते अग्नि, जल, ओखली, मल-मूत्र त्यागनेका स्थान, स्नानागार और रसोईघर उत्तम प्रकारसे बनवाना चाहिये।

'तत्र सर्पिस्तैलमधुसैन्धवम्।"

अर्थात् प्रसूत-घरमें घृत, तैल, मधु, सैंधानमक, कालानमक, बायविडङ्ग, गुड़, देवदारु, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, वच, सफ़ेद सरसों, लहसुन, चावलों की भूसी, चावलों की किनकी, कदम्ब, अलसी, भोजपत्र, मैरेय नामक मद्य और आसव इन सब पदार्थों को सदैव सम्हालकर रखना चाहिए।

"तथाश्मानौ"।

अर्थात् प्रसूत-गृहमें शिल, पत्थर, ओखली, गधी, गौ, एक सोनेकी और दो चाँदी की बनी हुई तीक्ष्ण छुरियें एवं लोहे के बने हुए कितने ही अस्त्र, प्रसूता के लिए बेलकी लकड़ी के बनेहुए दो पलंग और अग्निको प्रज्वलित रखनेके लिये तेंदू और इंगुदी वृक्ष की लकड़ियें रखनी चाहियें। इसके सिवा जिस स्त्री के अनेकबार सन्तान उत्पन्न होचुकी हो ऐसी स्त्री, तथा कार्य्यकरने में तत्पर और चतुर, समझदार, क्लेशको सहनेवाली और देखने में सुन्दर ऐसी स्त्रियों को वहाँ सदैव रखना चाहिये। गर्भिणी के मनमें जिससे किसी प्रकार का भय उत्पन्न हो ऐसी उनको कोई बात नहीं कहनी चाहिए।

"ततः प्रवृत्ते नवमे मासे।"

अर्थात् इस के पश्चात् नवें महीने के शुभ दिनमें शान्तिकर्म्म आदि देवाराधना करके शुद्ध मनसे गर्भिणीको सूतिकागृह में प्रवेश कराना चाहिए। फिर प्रसवकाल तक उसको उसी घर में शान्तिपूर्वक रखना चाहिए।

सुश्रुतसंहिता में लिखा है:—बेल, बड़, तेंदू और भिलावे इन चारों प्रकार के वृक्षों की लकड़ियों के द्वारा प्रसूता की खाट बनवानी चाहिए। सूतिकागृह की दीवारों को उत्तम प्रकारसे लीपना

चाहिए और उसका दर्वाज़ा पूर्व अथवा दक्षिण की तरफ होना चाहिए। यह घर लम्बाई में आठ हाथ और चौड़ाई में चार हाथ, एवं रमणीय और माङ्गलिक वस्तुओं से सुसज्जित होना चाहिये।

प्रसव से पहले और प्रसव के समय में जो जो नियम पालन करने चाहिएँ, उनको श्रीमहर्षि आत्रेय इस प्रकार बतला गये हैं:—

" आवी प्रादुर्भावे तु। "

अर्थात् जब गर्भिणी के प्रसव की वेदना उत्पन्न हो तब भूमि में कोमल शय्या बिछाकर उसपर उसको शयन करादेवे। गर्भिणी उस शय्या पर शयन करती रहे और पूर्वोक्त स्त्रियाँ उसके समीप बैठी रहें एवं सरल और सरस उपदेशोंके द्वारा गर्भिणीको सान्त्वना देती रहें।

"दारुणव्यायामवर्जनं हि गर्भिण्याः।"

महर्षि आत्रेय ने गर्भिणी के सम्बन्ध में दारुण (अत्यन्त असाध्य) परिश्रम को सर्वथा त्यागदेने का निषेध किया है। कठिन परिश्रम करने से गर्भिणी और सन्तान दोनों की बड़ी भारी हानि होती है।

" अथास्यै दद्यात्। "

अर्थात् इसके पश्चात् गर्भिणी को सूँघने के लिए कूठ, इलायची, सफेद वच, चीता और करञ्जुये का चूर्ण देवे और भोजपत्रों की धूनी देवे। फिर मन्दोष्ण अर्थात् सुहाता२ तेल गर्भिणी को कमर, पसली, पीठ और जङ्घाओं में बहुत सहज सहज नीचा मुँह करके मले। जब गर्भगत सन्तान गर्भिणी के उदरमें होकर वस्तिस्थान में आती है तब वह प्रसूता प्रसव की वेदना से अस्थिर होजाती है। उस समय उसको खाट पर बैठा कर किंचने के लिए कहना चाहिए।

—०—

प्लेग से बचने के उपाय।

प्लेग कई प्रकार का होता है पर हमारे देशमें ग्रन्थि वाला प्लेग ही अधिक देखने में आता है।

इसके साधारण चार लक्षण हैं—अधिकज्वर, चित्तभ्रम, अधिक थिकना और सन्निपात। यदि रोगी जीवित रहे तो कभी कभी

शरीरके भीतर रुधिर भी बहने लगता है। बहुत बड़ी बड़ी गिल्टियाँ दूसरे या तीसरे दिन बग़ल या जाँघमें निकल आती हैं। कभी कभी फेफड़ों पर भी असर होजाता है। इस दशामें इस रोग और न्यूमोनिया में भेदको पहचानना ज़रा कठिन होता है।

इस रोगके उत्पादक एक प्रकार के कीटाणु हैं। जिनका पता एक जापानी डाक्टर ने संवत् १९५०में लगाया था। ये इतने कोमल होते हैं कि किसी प्राणधारी के शरीर का आश्रय लिए बिना और कहीं जीवित नहीं रहसकते। यह चिरकालसे देखागया है कि इस रोगके फैलनेसे पहले चूहे बहुत मरते हैं। इन कीटाणुओं का पता लगाने के बाद यह निश्चित किया गया कि चूहों की बीमारी असली प्लेग है। प्लेग और चूहों के सम्बन्ध पर वर्त्तमान में समस्त संसार के विद्वान् चिकित्सकों का विशेष गवेषणाके साथ विवेचन हुआ है। प्लेग कमीशन को विशेषकर बम्बई और पञ्जाब के दो गाँवों में इस विषयमें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसका सारांश मेजर लेम्ब साहब ने बम्बई मेडिकल काँग्रेस में इस प्रकार वर्णन किया है:—

(१) मनुष्य के शरीरमें इस रोगका सञ्चार होना चूहे के रोग-पर पूर्णरूप से निर्भर है।

(२) यह रोग एक चूहे से दूसरे चूहेको और पिस्सुओं द्वारा चूहोंसे आदमियों को लगजाता है।

(३) इस रोगका सञ्चार केवल रोगी मनुष्य के द्वारा कदापि नहीं होता, क्योंकि मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट हुए कीटाणु चूहों की सहायता के बिना प्लेग का सञ्चार कदापि नहीं कर सकते।

(४) शहरके गन्देपन का प्लेग के फैलने से कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु गन्दा स्थान चूहों के रहने के लिए अवश्यमेव सुखकर होता है, अत एव ये चूहे ही प्लेग का कारण होते हैं।

(५) प्लेग एक स्थानसे दूसरे स्थानमें चूहोंके पिस्सुओं द्वारा प्रवेश करताहै। ये पिस्सु या तो हमारे कपड़ों में या हमारे शरीरमें चिपट कर अन्यत्र पहुँच जाते हैं और वहाँ के मनुष्यों पर आक्रमण करके प्लेग का सञ्चार करते हैं। मनुष्य शायद ही कभी इनके हमलेसे बचता है।

प्रथम घरके चूहों को प्लेग होता है। परन्तु जब वे इस रोग से मरने लगते हैं तो और दूसरे चूहे अपने स्वभाव के अनुसार उस घरको छोड़कर भागजाते हैं और असंख्य पिस्सू अपने बिलों में छोड़जाते हैं। वे पिस्सू रोगी चूहों का खून चूसते हैं, इसलिए उनके भीतर प्लेगके कीटाणु प्रवेश करजाते हैं। चूहों के चलेजाने के कारण भूखे होने से वे पिस्सू बिलों से निकलकर घर के आदमियों को काटने और उनमें प्लेग का संचार करते हैं।

ऊपरके वर्णनसे हमें दो शिक्षायें ग्रहण करनी चाहियें। प्रथम यह कि प्लेग का रोगी स्वयं प्लेग नहीं फैला सकता, इसलिए उस के समीप जाने में किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए।

दूसरी यह कि प्लेगका रोकना केवल घरकी स्वच्छतापर निर्भर है। केवल जनता को इस बात का विशेष प्रयत्न करना चाहिए कि घरोंमें कूड़ा करकट जमा न होने पावे, जिससे कि चूहे वहाँ अपना निवासस्थान न बनासकें। अपने घरों के समीप भोज्य पदार्थ नहीं फेंकने चाहियें, क्योंकि वहाँ भी चूहे अपना निवास स्थान बनालेते हैं। तात्पर्य्य यह है कि चूहोंको घरेलू जानवर न होने देना चाहिए। चूहे अधिकतर यूरुप निवासियों के यहाँ घरेलू जन्तुओं की तरह नहीं पाये जाते। परन्तु एक प्रथा उनके यहाँ भी ऐसी है कि जो चूहोंको घरेलू बनानेमें सहायक होती है। वह यह है कि साईस घोड़ों का दाना न चुरायें, इसलिए स्त्रियाँ उसे घरमें रखलिया करती हैं। अतः, इस बातकी सदैव सावधानी रखनी चाहिए कि अपने अथवा अपने सेवकों के घरोंमें चूहे न रहने पायें। इससे इस बात का सर्वदा भय रहता है कि सेवकोंके घरके प्लेग के चूहे अपने यहाँ आकर न मरजायँ। कारण, ऐसा होनेपर चूहे का मृतक शरीर शीतल होते ही चूहे के पिस्सू उसे त्यागकर सम्भव है कि वे हमको काटें और हम इस रोगसे ग्रसित होजायँ।

प्लेग के बहुत से आक्रमण इसी प्रकार से होते हैं। एक ग्रन्थकार का कहना है कि-" एक यूरुपीय महिला को प्लेग होगया। उसका कारण खोजने पर यह ज्ञात हुआ कि उसके शृङ्गार करने की मेज़ में एक चूहा मरगया था। इस बात का भी विशेष ध्यान रखना आवश्यक है कि प्लेग एक स्थान से दूसरे स्थान में बहुधा उन

मनुष्यों के कपड़े आदि के साथ चिपट कर आये हुए चूहों के पिस्सुओं से पैदा होता है, जो प्लेगग्रसित स्थानों से आते हैं। अब प्रश्न यह है कि इस आपत्ति से बचने का उपाय क्या है? सौभाग्य से इस प्रश्न का कप्तान कनिंघम (ounningham.l.m.) का वर्तमान खोजने समाधान करदिया है। उन्होंने बतलाया है कि इसके लिए किसी महान् और व्ययसाध्य उपाय की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना करना आवश्यकहै कि अपने कपड़े और बिस्तरों को प्रतिदिन धूप में कुछ देर तक सुखालेना चाहिए, जिससे सूर्य्य की किरणें पिस्सुओं का नाश करदें। कप्तान कनिंघम ने इस विषय में नीचे लिखे कुछ नियम बतलाये हैं, हम अपने पाठकों से आग्रह करते हैं कि वे इन नियमों का अवश्य पालन करें।

(१) इस कामके लिये ऐसा स्थान होना चाहिए, जहाँ पर धूप प्रातः काल से लेकर सायं काल तक बराबर रहे

(२) स्थान चौरस हो और घास, फूँस, कँकड़-पत्थर आदि से रहित हो, जिससे कि इन पिस्सुओं को बचने का अवसर न मिले।

(३) वहाँ पर तीन इञ्च गहरी बालू बिछी होनी चाहिए।

(४) बालू का ताप क्रम १२०° फ०=४४.५ श होना चाहिए।

(५) कपड़े इकहरे बिछाये जाने चाहियें और उनकी धूपमें १ घंटे पड़ा रखना चाहिए। रुई के कपड़े या रजाई को एक या दो बार पलट देना चाहिए।

(६) बालू के किनारों से तीन फुट की दूरी तक कोई कपड़ा नहीं होना चाहिए।

(७) समस्त स्थान के चारों ओर एक घेरा होना चाहिए, जिससे कि पिस्सू कपड़ों पर न आसकें।

इससे यह मालूम होताहै कि प्लेग रोकने का प्रश्न बहुत सरल है। इस रोगसे हमारी पराजय का कारण हमारे ज्ञानकी न्यूनता नहीं है; परन्तु जनता की अज्ञानता है। इसीलिए प्लेग के निवारण करने में वह बाध्य है।

विवेकयुक्त विद्या का प्रचार ही इसकी औषध है। हम आशा करते हैं कि यह हमारा थोड़ा सा लेख इस रोग के निवारण करने में बहुत सहायक होगा। (कल्पतरु से उद्धृत)

—०—

प्लेग की सामान्य चिकित्सा।

प्लेग में मनुष्य के हृदयकी शक्ति अत्यन्त क्षीण होजाती है, इसलिए इसमें ऐसी कोई औषधि नहीं देनी चाहिए, जिससे हृदयका बल क्षीण होजाय। बहुत पसीना लानेवाली और अधिक दस्तावर दवायें भी इसमें नहीं देनी चाहियें। जहाँ तक हो रोगी को खूब विश्राम करनेदे। गाँठ के ऊपर आक का दूध, भिलावा, जमालगोटा आदि बहुत तीक्ष्ण दवायें नहीं लगानी चाहियें। जब तक गाँठ अच्छे प्रकार से न पकजाय तब तक उसको चीरना भी नहीं चाहिए। अधिक सेंकना भी ठीक नहीं है, क्यों कि इन उपायों से गाँठ की सूजन बढ़जाती है और रोगीको अत्यन्त कष्ट होता है। जो ज्वर १०३ डिग्री से अधिक बढ़जाय तो उसको शमन करने का उपाय करे। कोलन वाटरमें भीजे हुए कपड़े की गद्दी को या बरफ को कपड़े में बाँधकर उसकी थैली को सिर पर रक्खे इस रोग में रोगी के हृदय की गति अति दुर्बल होजाती है, इस कारण इसमें नमक मिलाहुआ थोड़ा थोड़ा गुनगुना पानी पिलाना अच्छा है। अपच की अवस्थामें पिचकारी लगानी चाहिए, इससे हृदय बलवान् रहता है। इसमें किसी प्रकार की शराब रोगी को न देवे। विशेषकर पहली अवस्था में शराब का देना तो बहुत ही हानि-कारक है। किन्तु, यदि हृदय की गति बहुत मन्द पड़गई हो तो द्राक्षासव या दशमूलासव अथवा थोड़ी २ बढ़िया मद्य देनी चाहिये। शतपुटित अभ्रकभस्म अथवा मकरध्वज आदि औषधियें देनी चाहियें। हाथ पैर ठंडे होने लगें तो बोतलों में गरम पानी भरकर उनसे सेंकना चाहिए। श्वास की गति यदि ३० से अधिक होजाय तो छातीको अलसी आदि की पुल्टिस से सेंकना चाहिए। या नारायण तेल अथवा तारपीन के तेल की मालिश करनी चाहिए। खाँसी से अधिक कष्ट हो तो शहद, द्राक्षारिष्ट या वासावलेह देना चाहिए। यदि मलावरोध (कब्ज़) होजाय तो काढ़ुभाव या त्रिफलक चूर्ण थोड़ा २ देना चाहिए। रोगी को इस दशा में दूध नहीं देना चाहिए। आवश्यकता होने पर बादाम का पानी या चावलों का माँड देना चाहिये। अथवा सोडा मिलाकर

दूध देना चाहिए। रक्तातिसार में शहद के साथ प्रवालभस्म देनी चाहिए। रोगी के मुँह को गरम जलमें भिजोये हुए कपड़े से साफ़ करदेवे उसके होठ, दाँत और मसूड़ों पर नीबू का रस शहद में मिलाकर लगावे। दस्त आते हों तो कत्था, जायफल, इलायची आदि स्तम्भक ओषधियाँ देवे। दूध पिलाना कम करदेवे। गाँठ को धतूरे के पत्ते उबाल कर उससे सेंके अथवा उसपर बिलाईकंदे का लेप करे और गरम गरम धतूरे के पत्ते गाँठ पर बाँधे। अथवा लोबान, कपूर, एलुआ और कूठ इनको पीसकर गाँठपर लेप करे। गाँठ में अधिक कष्ट हो तो बिलाईकंदे को अफीम में मिलाकर लेप करे, अथवा अलसी की पुल्टिस से सेंके। पसीना अधिक आनेपर राख और अजवायन मिलाकर मले। पेशाबके रुक-जाने पर पेड़ू और पीठ को तेल मलकर सेंकना चाहिए। अथवा डाइसेरेन को गरम जल में घिसकर पेड़ू पर लगाना चाहिए। प्यास अधिक होने पर बरफ़ या थोड़ा थोड़ा गरम जल देना चाहिये। थोड़ी थोड़ी चा और काफी भी दीजासकती है। अबतक इस रोग का कोई अनुभूत इलाज नहीं मालूम हुआ। अतएव इसकी विधिपूर्वक लाक्षणिक चिकित्सा और उत्तम प्रकार से परिचर्या करने से रोगीके बचने की बहुत कुछ आशा होसकती है। रोग के उत्पन्न होते ही किसी उत्तम वैद्य से इसकी चिकित्सा आरम्भ करानी चाहिए। अनाड़ी हकीमों के फन्दे और विज्ञापनी दवाइयों के जाल में कभी नहीं फँसना चाहिए। क्योंकि इससे सिवा हानि के कोई लाभ नहीं होता। इस रोग में रोगी की हालत बहुत जल्द बदल जाया करती है, इसलिये प्रत्येक हालत के अनुसार ही चिकित्सा करनी चाहिये।

—•—

जलसंत्रास।

अर्थात् पागल कुत्ते, गीदड़ आदि के काटने का रोग।

पागल कुत्ते, अथवा गीदड़ के काटने पर मनुष्य को जो रोग होता है, उसको जलसंत्रास कहते हैं। इस रोग का यह नाम होने का कारण यह है कि जिस व्यक्ति को यह रोग होता है, उसको

प्यास बहुत लगती है और उसके गले की नाड़ी के भीतर एक प्रकार का ऐसा खिंचाव होता है कि जल पीना उसके लिए अत्यन्त कष्टदायक और एक प्रकार से असम्भव होजाता है। किन्तु कुत्ते आदि अन्य प्राणियों को जलपान करने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। इसलिए अँगरेज़ी में मनुष्यों के इस रोग को हाइड्रोफोबिया कहते हैं और कुत्ते आदि के इसरोग को रेबीज़् या उन्मत्तता अथवा पागल होजाना कहते हैं।

मनुष्य के शरीर में यह रोग अपने आप उत्पन्न नहीं होता। पागल (अर्थात् रेबीज़् द्वारा आक्रान्त) कुत्ता, गीदड़, घोड़ा, सियार, बिल्ली, बन्दर, गौ, बैल, भैंसा, भेड़, सूअर आदि जानवरों के मुख की लार में इस रोगका विष (एक प्रकार के जीवाणु) रहता है। इस देशमें, प्रधानता से कुत्ते और गीदड़ को ही यह रोग होता है। यह कुत्ता या गीदड़ जब गौ, भैंस आदि पशुओं को काटलेता है तब गौ, भैंस आदि को भी यह रोग होजाताहै। जो हो, यह याद रखना चाहिये कि रेबीज़् या पागल पशुके मुखकी लारमें ही इस रोगका विष रहता है। इस लिये यदि कोई पागल कुत्ता किसी मनुष्य के हाथ को चाटे और उस के हाथ में यदि कोई घाव फोड़ा, या चोट लगी तो उसके हाथके प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष छिद्रके द्वारा उस मनुष्य के शरीर में जलसंत्रास रोग का विष प्रवेश करजाता है।

रोग का विष एक जाति का होने पर भी, कुत्ते के रेबीज़् और मनुष्य के जलसंत्रास रोग के लक्षण भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। इसलिए उनका पृथक् पृथक् रूप से नीचे वर्णन कियाजाता है।

कुत्ते का रेबीज़् रोग—पागल कुत्ता दूसरे आरोग्य कुत्ते को जब काटता है, तब स्वस्थ कुत्ते को रेबीज़् रोग होजाता है। किन्तु काटते ही यह रोग प्रकट नहीं होता, काटने के तीन महीने से लेकर छः महीने तक इस रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। जिस कुत्ते को यह रोग होता है, वह तीन से छः दिन के बीच में मर-जाताहै। पालतू कुत्ता और रास्तेमें जो आवारा कुत्ते घूमते फिरते हैं, उनमें इस रोग की प्रथम सूचना भिन्न प्रकार से होती है।

यदि रास्ते के कुत्ते को रेबीज़् रोग होता है तो वह कुत्ता चारों ओर को पागल की समान घूमता फिरता है और सामने जिसको देखता है उसको ही काटलेता है। यहाँ तक कि पागलपन में कभी

कभी अपने आपको भी काट लेता है। रास्ते में घूमने वाले पागल कुत्ते के नेत्र लाल, मस्तक और दोनों भौंवें सिकुड़ी हुई एवं मुखसे लार टपकती रहती है। कुत्ते के बच्चों को यह रोग होने पर चाहे वह घर के पालतू हों या रास्ते में घूमने वाले हों, उनके रोगकी पहली अवस्था एकसी होती है।

घर के पालतू कुत्ते के शरीर में रेबीज् रोग के लक्षण प्रकट होने से पहले की अवस्था उपर्युक्त प्रकार से भिन्न होती है। वह कुत्ता अन्धेरे कोनेको ढूँढने केलिए भागताहै और वहाँ जाकर थोड़ी देर के लिए छिपजाता है। कुछ देर के बाद वह घर के आदमियों के पास स्नेह की आशा से दौड़कर आता है। वह मनुष्यके समीप जितनी बार आता है, उतनी ही बार उस मनुष्य के शरीर को चाटता है, अथवा हाथ, पैर को काटने की चेष्टा और इच्छा प्रकट करता है। उसको कुत्ते की विष्ठा खाने की प्रबल इच्छा होती है। वह अपना बिछौना या गद्दी को छोड़कर भागजाता है। मिट्टी खोदता फिरता है। जंजीर और खूँटे को काटता है और सामने जो कोई भी पशु आताहै, उसको काटनेके लिए खूब उद्योग करता है। पालतू कुत्ता पागलपन की पहली अवस्था में कभी मनुष्य को नहीं काटता है।

पालतू अथवा रास्ते में घूमने वाला कुत्ता जब इस रोग से अच्छे प्रकार से व्याप्त होजाता है, तब दोनों के शरीर में एक ही प्रकार के लक्षण प्रकट होतेहैं। किन्तु वे क्रम क्रम से होते हैं। कुत्ता खाना छोड़देता है, भौं भौं करके सामने को ताकता रहता है। सामने जिसको पाता है उसीको काटलेताहै। पहली पहल स्वजाति (कुत्ते) को ही काटने की उसकी प्रबल इच्छा होती है, फिर दूसरे जानवरों को और अन्त में मनुष्य को काटने की प्रबल चेष्टा होती है। बारम्बार समयर पर उसके शरीर में ऐंठन होती है और उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग बेकार होजाते हैं पक्षाघात होजाता है)। प्रथम पाछे के पैर बेकार हाते हैं, फिर अन्तमें मृत्यु आकर उसको पीड़ाका अन्त करदेती है। जब मृत्यु समीप होती है, उस समय कुत्ते को आहार करने और जल पीने में बड़ा कष्ट होता है। किन्तु इससे पहले पागल कुत्ते को खाने पीने में कभी कष्ट नहीं होता।

मनुष्य का जलसंत्रास रोग—ये दो बातें सभी को स्मरण रखनी चाहियें प्रथम कुत्ते के काटते ही जलसंत्रास रोग नहीं होकर, जैसे विषैले सर्प के काटने पर सभी मनुष्य नहीं मरते। कारण सब कुत्तों के मुख की लार में इस रोग का विष नहीं होता है। दूसरे-कुत्ते के न काटने पर भी केवल शरीर को जीभसे चाटने से भी मनुष्य को यह रोग होसकता है। क्योंकि कुत्ते के मुख की लार में विष रहता है।

पागल या विक्षिप्त पशु के काटने पर दो महीने के भीतर मनुष्य के शरीर में इस रोग के लक्षण दिखाई देतेहैं। यदि कपड़े, जूते या मोजे को भेद करके जो पागल पशु मनुष्य को काटता है तो इस रोग के होने का भय बहुत कम होता है। कारण, पहले तो दाँत मनुष्य के शरीर की सम्पूर्ण त्वचा को भेद नहीं सकते और दूसरे यदि शरीर की त्वचा का विदीर्ण कर भी दें तो पागल कुत्तेके मुख की लार का अधिक भाग जूते या मोजे में ही लगजाता है और लार जूता और मोजे से जैसे लगती है वैसे ही मनुष्य के शरीरकी त्वचा से पुँछजाती है। उघड़ी त्वचा में जितना अधिक गहरा दाँत गड़ता है, उतना ही रोग अधिक होने की सम्भावना होती है।

जलसंत्रास रोग के प्रारम्भमें—रोगी का मन खराब होजाता है। वह अकेला रहना चाहता है। किसी कामकाजमें हाथ लगाना नहीं चाहता। रह रह कर डरता है। रात्रि में भयङ्कर स्वप्न देखकर चिल्ला उठता है। ठहर ठहर कर शीतऋतु के कम्प की समान काँपता रहता है। उसका सारा वक्षःस्थल जकड़गयाहै, ऐसा उसे मालूम होता है। कभी कभी वह दीर्घ श्वास लेता है और दोनों कन्धों को उचकाकर चलता है। उसके बाद ऐंठन शुरू होती है। मुखकी नानाप्रकार की विकृति होती है अथवा समस्त शरीर में खिंचाव होता है। जल देखने से या जल गिरने का शब्द सुनने से या स्वयं जल पीने से अथवा कुछ खाने ही रोगी को कण्ठनाली के भीतर अत्यन्त कष्ट के साथ खिंचाव होता है। उसको उस समय इतना कष्ट होता है कि श्वास लेना भी असम्भव होजाताहै। मुखमें लार बहुत बढ़जाती है। इसलिए वह निरन्तर चारों तरफ को थूकता फिरताहै। इससे आहार करना और जल पीना उसके लिए

इसका कारण होता है कि वह बारबार अपने गलेको खुजाता रहता है। उसके नेत्र लाल लाल होजाते हैं। नेत्र चारों ओर को घूमते रहते हैं। कण्ठ का स्वर मन्द पड़जाता है। खाँसी का शब्द फटासा हो जाता है। नीचे को जाव लटक जाता है।

मनुष्य को समय पर प्रकट जलसंत्रास रोग होता है। कारण, जलपीते ही रोगी के अत्यन्त कष्टदायक और श्वास को रोकने वाला कण्ठनाली के भीतर खिन्चाव होताहै। पशुओं की समान ही मनुष्य के मुख की लार में इस रोग का विष रहता है।

चिकित्सा—यदि किसी कुत्ते ने मनुष्य को काट लिया हो या किसी पशु को काटा हो और यदि वह जाना हुआ कुत्ता हो तो दस दिन तक उसको बाँधकर नज़रबन्द रखना चाहिये। दस दिन में यदि कुत्ते का रेबीज़ रोग प्रकट न हो तो कुछ नहीं करना चाहिए—और जो दस दिन में उस कुत्ते का रेबीज़ दिखाई दे अथवा अनजान किसी पशु ने काटलिया हो तो अधिक विलम्ब न करके तत्काल चिकित्सा करानी चाहिए।

काटे हुए स्थान को तत्क्षण असली कार्बोलिक एसिड या नाइट्रिक एसिड अथवा पार्मेंगनेट आफ पोटास के दाने से दग्ध कर देना चाहिए। केवल ऊपर ही ऊपर उसको नहीं लगाना चाहिए—जहाँ तक दाँत गड़ा हो वहाँ तक अथवा उसको चीरकर कुछ गहरी जगह दग्ध करदेवे। यदि दाँत न गड़ा हो तो जहाँ तक काटा हो, उस स्थान तक औषध को लगाना चाहिए।

इस प्रारम्भिक क्रिया के पश्चात् मूर्खों की ओषधियों के द्वारा प्राण नहीं गँवाने चाहिएँ। पागल पशु के काटने की एकमात्र और अमोघ ओषधि—पास्तूर साहब की आविष्कृत इञ्जेक्शन चिकित्सा है। इस इञ्जेक्शन के करने से किसी भी विपत्ति की आशङ्का नहीं रहती। भारतवर्ष में यह तीन जगह बिना मूल्य प्राप्त होती है। कसौलि (शिमला पहाड़ के समीप), कनूर (मद्रास में नीलगिरि पर और शिलांग (आसाम में)। इन स्थानों में जाना अत्यन्त व्यय-साध्य है। इन सब स्थानों में अत्यन्त शीत होता है—और इस इञ्जेक्शन चिकित्सा के लिए उन स्थानों में दस पन्द्रह दिन तक रहना पड़ता है। इस कारण जो लोग उन स्थानों में जावें, उनके

साथ जितने कम आदमी हों उतना ही अच्छा है। यथेष्ट परिमाण में गरम कपड़े, मसहरी और बुरुश आदि का प्रबन्ध साथ में होना चाहिए। सरकारी कर्मचारियों को पागल कुत्ते के काटने पर दरख्वास्त के देते ही छुट्टी और एक महीने का वेतन पेशगी मिल जाता है। जो सरकारी काम नहीं करते और जिनकी अवस्था अच्छी नहीं है, वे स्थानीय पुलिस या हाकिम के समीप दरख्वास्त भेजने पर थर्डक्लास रेलवे का पास पासकते हैं। भारत सरकार के शिक्षा (स्वास्थ्य) विभाग का सर्कुलर नं० १६८८-१६६८ ता० ३ सितम्बर १८१२ इस नियम का पोषक है।

डा० श्री रमेशचन्द्रराय एल० एम० एस०।

—o—

प्राचीन दिगम्बरजैनाचार्यों के रचे हुए वैद्यक ग्रन्थ।

जगत् को अहिंसा धर्म की शिक्षा देने वाले जैनधर्म के प्रभाव से देश में हिंसावृत्ति बहुत कम होगई है। वैद्यक के प्राचीन ग्रन्थों में औषध और पथ्यरूप से अनेक प्राणिज पदार्थों का व्यवहार देखा जाता है। ऐसे पदार्थों से अहिंसाधर्म की रक्षा होना असम्भव समझकर जैनाचार्यों ने वैद्यक विषय के ऐसे अनेक ग्रन्थों की रचना की है कि जिनमें प्राणिज पदार्थों का कुछ भी उपयोग नहीं किया गया है। उन्होंने केवल निरामिष औषधप्रयोगों के ही ग्रन्थों की रचना नहीं की बल्कि, बिना औषध के केवल मानसिक शक्ति के द्वारा अनेक दुस्तर और असाध्य रोगों को निर्मूल करने में भी खूब ख्याति प्राप्त की थी।

प्राचीन जैनाचार्यों ने जिस प्रकार विविध विषयों के ग्रन्थों की रचना कर साहित्य के अनेक अङ्गों की पुष्टि की है, उसी प्रकार उन्होंने वैद्यक ग्रन्थों की रचना कर वैद्यक साहित्य को भी विशेषरूप से पुष्ट की है। बड़े बड़े विद्वानों का कथन है कि भारत के प्राचीन साहित्यसंरक्षण और पुष्टि में जैनधर्म ने बड़े महत्व का कार्य किया है।

प्राचीन समय में अनेक स्थानों में जैन विद्वानों का राज्याश्रय होने के कारण उन्होंने विविध प्रकार के वैद्यक ग्रन्थों का निर्माण किया था। पादपूर्तिसिद्धि में तो जैनाचार्यों, विशेषकर जैनयति-वर्ग का नाम बहुत ही प्रसिद्ध है। किन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि बहुत लोग जैन लोगों को नास्तिक, अनीश्वरवादी आदि कह-कर उनके बनाये हुए ग्रन्थों का स्पर्श करना तक पाप समझते हैं। यह कैसे संकीर्ण विचार हैं! इस समानता और उन्नति के युग में साम्प्रदायिक भेदभाव को छोड़कर हमें विद्या का आदर करना चाहिए। जैनाचार्यों के बनाये हुए वैद्यक ग्रन्थरत्नों का उद्धार करना चाहिए। जैन लोगों को भी उचित है कि जैन-साहित्य में से वैद्यक-ग्रन्थों को निकाल कर सर्वसाधारण के हितार्थ उन्हें प्रकट करें। ग्रन्थों को पुराने शास्त्रभण्डारों में पड़े पड़े सड़ने देना बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं कहा जा सकता। अतः समस्त जैनबन्धुओं से विनीत प्रार्थना है कि आपके पास, मन्दिरों के भण्डारों में, यति और मुनि महाराजाओं के पास संस्कृत या प्राकृत के जो जैन वैद्यक ग्रन्थ मिलें, उनके विषय में निम्नलिखित बातें इस पत्र में या सुधानिधि आदि दूसरे वैद्यकपत्रों में प्रकाशित करानी चाहियें। जैसे-ग्रन्थ का नाम, ग्रन्थकर्त्ता का नाम, ग्रन्थरचना का समय, ग्रन्थ विस्तार, ग्रन्थ का विषय आदि। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों प्रकार के जैनाचार्यों के बनाये हुये सैकड़ों संस्कृत और प्राकृत भाषा के वैद्यक ग्रन्थों के नाम सुने जाते हैं। नीचे कुछ दिग-म्बर जैनाचार्यों के रचे हुए वैद्यक ग्रन्थों के नाम लिखे जाते हैं। श्वेताम्बर जैनाचार्यों के रचे हुए वैद्यक ग्रन्थों के नाम फिर कभी दिये जायँगे।

नाम ग्रन्थकार	ग्रन्थ नाम
१ कुन्दकुन्दाचार्य	१ वैद्यगाहा (प्राकृत भाषा)
२ इन्द्रनन्दी (भट्टारक)	२ औषधकल्प (मन्त्रशास्त्र)
३ उग्रादित्याचार्य (भट्टारक)	३ भिषक् प्रकाश
	४ रामविनोद (वैद्यकग्रन्थ)
४ यशःकीर्ति (भट्टारक)	५ जगत् सुन्दरी वैद्यक ग्रन्थ
५ उग्राचार्य (यति)	६ कनकदीपक (वै. ग्र. श्लो० ८०००)
	७ वैद्यालंकार (,, ,, ७००)

नाम ग्रन्थकार	नाम ग्रन्थ
६ चिकना पंडित)	८ गुणपाठ (श्लोक२०००)
७ पद्मसेन	९ पद्मनन्दी, १० निघण्टु
८ माधसेन [कवि]	११ निघण्टु भावप्रकाश [श्लोक २४०००]
९ रेवाणक सिद्धि [कवि]	१२ निघण्टु संस्कृत [वै०ग्रन्थ श्लो०१२०००]
१० अभिनव [गृहस्थ]	१३ निघण्टु संस्कृत [वै०ग्र०श्लो०४०००]
११ धनञ्जय(राजाभोज के समय का एक गृहस्थाचार्य)	१४ निघण्टु(वै० ग्र०श्लोक५०००)
१२ धनमित्र [गृहस्थाचार्य]	१५ निघटुसंस्कृतवै.ग्र.श्लो०२०००
१३ वाग्भट गृहस्थाचार्य)	१६ निघण्टु व०ग्र०(श्लो०२२००)
	१७ दन्तचिकित्सा
१४ शिवघोष (कवि)	१८ रससार
१५ पूज्यपाद	१९ वैद्यक
१६ माणिक्यदेव	२० रसावतार+

—०—

स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी कटेरी)
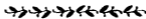
संस्कृत नाम स्वर्णक्षीरी, कांचिणी, कटुपर्णी हेमशिखा, हिमावती, पीतपुष्पा, स्वर्णदुग्धा, स्वर्णाह्वा, काञ्चनी, हिमाद्रिजा, इत्यादि । हिन्दी–सत्यानाशी कटेरी, पीले फूल की कटेरी, पिसोला । इस प्रान्त में बहुत लोग इसको भूल से ऊंटकटीरा भी कहते हैं। बं०–स्वर्णक्षीरी, शोणा खिरुई । म०–कांटेधोत्रा, फिरंगी धोत्रा । गु०–दारुड़ी । क०–चिकणिकेयभेद । ता०–ब्रह्मदण्डविरई । अं०–गॅबोज थिसल (Gamboge Thistld) । मेकसिकन् आर्गिमोन (Maxican Argemon) । लै०–आर्गिमनी मेक्सीकेना ।

सत्यानाशी कटेरी के क्षुप चौमासे के अन्त में जङ्गल और खेतो में जहाँ प्राय: जल भरा रहता है वहाँ और विशेषकर नीची भूमि में अधिक उत्पन्न होते हैं। पत्ते–कटेरी के पत्तों से अधिक लम्बे कटीले

+सनातनजैन के एक लेख से इसमें विशेष सहायता लीगई है।

और नीले रङ्ग के काँटेदार होते हैं। इसपर वसन्तऋतु में पीले रंग के फूल आते हैं। फल डोरे में लगते हैं और उनके चारों तरफ़ काँटे होते हैं। उनमें से काले रङ्ग के बीज निकलते हैं। उन बीजों में से तेल निकाला जाता है। इसके वृक्ष में से पीले रङ्ग का दूध निकलता है, इसलिए इसको स्वर्णक्षीरी, क्षीरिणी इत्यादि कहते हैं। इसकी जड़ को चोक कहते हैं। इसकी जड़ (चोक), छाल, पत्र, रस, घनरस, (एक्सट्राक्ट), बीज, बीजों का तेल आदि का उपयोग किया जाता है। प्रायः ग्रामीण लोग इसके बीजों को कुछ सेंककर और खूब छड़ करके अरण्डी की तरह पानी में उबाल कर उनका तेल निकालते हैं-और उसको खुजली, दाद, चकत्ते, चोट, फोड़ा, गूमड़ा आदि रोगों में प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेद में इसके गुण निम्नप्रकार से वर्णित हैं-

यह रेचक (दस्तावर), स्वेदल (पसीना लाने वाली) उबकाई लाने वाली, पित्तनाशक, कृमिनाशक, कफहारक, रक्तशोधक, कण्डू, कफ, आनाह, विष, कुष्ठ, अर्श, मूत्ररोग, पथरी, दाह, प्रमेह, प्रदर, उपदंश, शोथ, वात का पीड़ा और नेत्ररोगों को विनाश करने वाली है। तथा कामोद्दीपक और रसायन है।

इसका उपयोग निम्नलिखित विधि से किया जासकता है।

रस–इसके वृक्ष को लाकर उसको कुचल करके वस्त्र में दबा कर निचोड लेवे। उसको रस या स्वरस कहते हैं।

घनरस–जिनपर फूल न आये हों ऐसे छोटे छोटे क्षुपों को लेकर ओखली में खूब अच्छी तरह कुचल करके गाढ़े कपड़े में रखकर उसका स्वरस निकाल लेवे। फिर उसको लोहे की कढ़ाई में डाल-कर मन्द मन्द अग्नि से पकावे। जब वह पककर खूब गाढ़ा होजाय तब उसको सुखाकर एक २ रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। यह सूखा हुआ घनरस (सालिड एक्सट्राक्ट) है। यदि इसको नरम (लिक्विड-एक्सट्राक्ट) रखना हो तो जब वह सीरे की समान पतला हो तब उसको उतार कर उसमें आठवाँ भाग रेक्टिफाइड स्प्रिट मिलाकर किसी उत्तम काँचवाले बर्तन में भरकर रखदेवे और काँच की डाट लगादेवे। इसकी मात्रा दो रत्ती से चार रत्ती तक है।

शर्बत–इसका रस और खाँड दोनों को समानभाग लेकर गरम जल में मिश्रित करके धीरे धीरे मन्द मन्द अग्नि से पकावे।

जब किंचित् चिपक पैदा होजाय, तब उसको उतार लेवे और बोतलों में भरकर रखदेवे। इसकी मात्रा १० से २० बूँद तक है।

चूर्ण—इसकी जड़ की छाल को धूप में सुखाकर खूब बारीक चूर्ण करके वस्त्र में छानलेवे और शीशी में भरकर रख देवे। इस को १॥ से लेकर ३ रत्ती तक सेवन करे। इसके बीजों का चूर्ण भी इसी प्रकार बनाना चाहिए।

इसकी जड़ की छाल का अर्करूप से टिंचर भी बनता है।

यह एक तीक्ष्ण औषधि है। इसलिए इसको अल्पमात्रा से सेवन करना चाहिए। अधिक मात्रा में इसका उपयोग होने से शरीर में दाह तृषा,शोष और चित्तमें व्याकुलता उत्पन्न होजाती है।

आजकल उपदंश, कुष्ठ आदि विविध प्रकार के त्वचा सम्बन्धी रोगों में और रुधिर को शुद्ध करने के लिए जो नाना प्रकार के सार्सा पारिला, सालसा, सारिवादि कषाय आदि औषधियाँ प्रचलित हैं, उनकी अपेक्षा यह अधिक फलप्रद है। इसके स्वरस या घनरस को सेवन करने से उपदंश, फिरंग, दाद, चकत्ते, शरीर के पुराने व्रण, दुष्ट कुष्ठ नाड़ीव्रण आदि रोग शीघ्र नाशको प्राप्त होते हैं। इसको उचित मात्रा से सेवन करना और व्रणादि पर लेप करना चाहिए। इसके रस को घी से चुपड़ी हुई थाली में भरकर इस प्रकार धूप में सुखावें कि जिसमें उसमें धूल न पड़े। जब वह सूखजाय तब उसको पपड़ी को चाकू से धीरे धीरे खुरच लेवे और शीशी में भरकर रखलेवे। उसको बकरी के दूध में घिसकर प्रातःकाल और सायंकाल नेत्रों में आँजने से नेत्रों का दुखना, नेत्रों की गरमी, दाह, पीड़ा, लाली, रतौंधा, जाला फूला, मानिया-बिन्द और अश्रुस्राव आदि सब प्रकार के नेत्ररोग दूर होते हैं। नेत्रों के दुखने ही इसको घिसकर या इसके स्वरस की २ बूँदें नेत्रों में डालने से नेत्रों का दुखना और उसकी पीड़ा शीघ्र कम होजाती है। कुछ दिनों तक इसके स्वरस को शहद में मिलाकर लगाने से नेत्रों का जाला, फूला आदि सब विकार नष्ट होजाते हैं। इसके रस या घनरस को नेत्रों में डालने में कोई भय नहीं। अथवा इसके स्वरस को घी के साथ घोटकर उसका रगड़ा बना करके नेत्रों में लगाने से नेत्रों के कई रोग दूर होते हैं और ज्योति उज्ज्वल होती है। इस मरहम को व्रण,उपदंश के व्रण, नाड़ीव्रण [नासूर], दाद,

खुजली आदि त्वचा के विकारों पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है। प्रथम इस मरहम को लगाकर ऊपर से ज़रा सा जस्त का फूल बुरका देवे।

यदि सत्यानाशी कटेरी का दूध या रस न मिले तो इसकी जड़ की छाल का बारीक चूर्ण बनाकर उसको घी में मिलाकर लगाना चाहिये। विशेषकर त्वचा के रोगों में इसकी छाल के चूर्ण को या बीजों के चूर्ण को दही में मिलाकर लगाना अच्छा है। इसको दही में या दूध में मिलाकर लगाने से व्रणादि त्वचा के विकार शीघ्र भरजाते हैं। इसके बनाये हुए मरहम पर मक्खियाँ न बैठने पातीं। इसलिये इसके ऐडोफ़ार्म की समान गुण लिखे हैं॥ इसकी जड़की छालको बारीक पीसकर पुराने गुड़ में मिलाकर खाने से एक दो दस्त होकर कोठा साफ़ होजाता है और उपदंश के व्रण सूखने लगते हैं। इसके पञ्चाङ्ग को पीसकर तेल में पुल्टिस करके बाँधने से अथवा इसके पञ्चाङ्ग के द्वारा तेल बनाकर उस तेल को मलने से वायुकी पीड़ा उदरशूल,अफ़ारा और शोथ ये सब दूर होते हैं। इसका तेल भी रेचक (दस्तावर) है और उपदंश, शोथ, व्रण आदि रोगोंमें भी व्यवहृत होता है। इसकेशर्बत को जल में डालकर अल्पमात्रा से पीने से मूत्रकृच्छ्र की पीड़ा और प्रमेहादि रोग दूर होते हैं। इसके पञ्चाङ्ग के द्वारा तेल पकाकर उस तेल की मालिश करने से इन्द्रिय की शिथिलता व नपुंसकता आदि रोग दूर होते हैं। इसके स्वरस को बिच्छू,भिर्र,कानखजूरा आदि के काटे हुए स्थान पर लगाने से बहुत लाभ होता है। इसके पञ्चाङ्ग का भबके में अर्क खींचकर उसको सेवन करने से खाँसी, ज़ुकाम, पुराने रुधिर के विकार और मूत्रकृच्छ्रादि रोग शमन होते हैं।

इसके सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है, वह सब अनुभव किया हुआ है। वैद्यकग्रन्थों में विशेषकर यूनानी चिकित्सा के ग्रन्थों में इसकी बड़ी प्रशंसा लिखी है। वैद्यराज।

—०—

निगाह।

आँखोंसे जो दीखताहै वहदृश्य कहलाताहै दृश्यको देखने वाली शक्ति ही,, निगाह के नाम से पुकारी जाती है। यद्यपि यह काम प्रत्येक मनुष्य, नित्य ही किया करताहै, परन्तु यह कोई नहीं जानता

कि वास्तव में निगाह है क्या चीज़ ? यह बात ग़लत है, कि निगाह में केवल आंखों की रोशनी ही शामिल है । मान लीजिये कि आप सन्ध्या समय टहलने को चले । मार्ग में आपने देखा कि एक वृक्ष खड़ा है । आगे चलकर आपने देखा कि आपका एक बिछुड़ा हुआ मित्र सामने से आ रहा है । वृक्ष के देखने से आपकी निगाह सामान्य ही रही । परन्तु, प्रिय मित्र को देखकर आपकी निगाह में परिवर्तन और विचित्रता अवश्य हुई । आंख का काम तो केवल देखना ही है । सर्प को देखकर डर जाना आँख का काम नहीं । फलतः निगाह, तन की भी होती है और मन की भी । निगाह के कारण हजारों भाव पैदा हुआ करते हैं । परन्तु वे भावनाएँ, मन की ही होती हैं-निगाह की नहीं । जो लोग अन्धे होते हैं, वे तन की निगाह खो बैठते हैं । किन्तु, मन की निगाह से उनका काम चला ही जाता है । सूरदास जी कहते हैं:—

को मोहि सूर बतावै

अरे बावरे, मोकहं कोई, कैसे गैल लखावै ?
आंखिन वाले अन्धे देखे, सूरदास पद गावै ॥
हमने गैल लखी है पिय की, जिसका दिल हो आवे ।
मनकी आंखे गज़ब मचावें, मोकहूँ सकल दिखावें ॥

ग़ौर करने से पाठक समझ सकते हैं कि वास्तव में निगाहें दो हैं । जो मनुष्य दोनों निगाहों में होशियार हैं, वे ही, आँखों वाले कहे जा सकते हैं ।

निगाह में रोग पैदा हो सकते हैं । शारीरिक निगाह में, कम दीखना, रतौंधी लगना, और भ्रम दीखना आदि ज्योति सम्बन्धी अनेक विकार पैदा हुआ करते हैं । दिमाग़ी कामों से ज्योति में शिथिलता भी आ जाती है । शारीरिक निगाह का सम्बन्ध, आहार और विहार से है । इसके सिवाय, धुन्ध, जाला, माड़ा, नाखूना, जलन, खुजली सुर्खी और पड़वाल आदि नेत्र-रोगों के कारण भी स्थूल निगाह पर असर पड़ा करता है । इन रोगों की चिकित्सा की जा सकती है । परन्तु मानसिक निगाह की बीमारियों की चिकित्सा, योगी के सिवाय और कोई भी नहीं कर सकता है । मानसिक निगाह की बीमारियों के लक्षण इस प्रकार से हैं:—

(१) सुन्दर फूलको देखकर एक मनुष्य हँसता हुआ चला जाता है और दूसरा मनुष्य उसे तोड़ कर कुछ समय बाद धूल में डाल देता है।

(२ सुन्दर स्त्री को देखकर एक मनुष्य प्रकृति कि कारीगरी की सराहना करता हुआ चला जाता है और दूसरा मनुष्य उस स्त्री के साथ प्रसंग करने के लिये तन, मन और धन से परिश्रम करने लगता है।

(३) किसी को दुनियाँ में, मिथ्या व्यवहार, बदमाशी और पाप ही दीखता है।कोई दुनियाँ को श्रेष्ठतम स्वर्ग समझ अपना कर्तव्य पालन करते हैं।

इसी भाँति से भिन्न २ प्रकार की निगाहों की पहिचान लेना चाहिए।

अब कुछ ऐसे अनुभूत प्रयोग लिखेजाते हैं कि जिनका अभ्यास करने से निगाह के समस्त दोष दूर होसकते हैं। यदि अभ्यास की रीति सन्तोष प्रद हुई और दृढ़ता आगई तो वही निगाह 'दिव्य-दृष्टि' का स्वरूप धारण कर सकती है पूर्वकाल के साधुओं ने यह बात स्वीकार की है और सत्य दृष्टि कोही 'दिव्य-दृष्टि' बतलाया है।

(१) रात्रि को सोते समय नत्रों को धो लेना चाहिये।

(२) प्रातः उठकर, शौच के पहिले ही, नेत्र साफ करो। शौच के पश्चात्, गले का कफ, उगली से बाहर निकालो। गले का मैल, निगाह को कमज़ोर करता है:

(३ मस्तक पर अधिक बाल मत रक्खो।

(४) तैल-मर्दन से निगाह तेज़ रहती है। किन्तु इश्तहारी तैलों से बचाव रक्खो। शिर में डालने के लिये बढ़िया चमेली का तैल या आमले का तैल ठीक है।

(५) प्रातः उठकर आधी छटॉक घी में मिश्री और कालीमिर्च मिलाकर खाओ इसका सेवन जारी रक्खो कालीमिर्च खूब डालना चाहिये।

(६) नदी या साफ तालाब में डुबकी मार कर जल के भीतर नेत्र खोलने का अभ्यास करो यह बड़ा लाभकारी नुस्खा है।

(७) रात्रि को अधिक जागना ठीक नहीं है।

(८) मार्ग में आंखें फाड़कर मत चलो। इधर उधर मत देखो। नीची निगाह रखकर चलना ही सभ्यता है। ज्ञानवान् व्यक्ति, नाक के अग्र भाग पर निगाह रखते हैं।

(६) पराई स्त्री को कुटिल निगाह से मत देखो। इससे दो हानियाँ होती हैं निगाह खराब होती है और अन्तःकरण दूषित होता है।

(१०) संसार में अच्छाई और बुराई दोनों ही हैं। किसी की बुरी निगाहका अनुकरण इसलिये न करो कि संसारमें ऐसा होता है। प्रत्येक मनुष्य अपनी २ करनी अपनी २ जेबों मे रखते हैं और मुखपर लिखे हैं।

(११) मैं क्या हूँ संसार क्या है और परमात्मा कैसा है--जब तक यह महान् परन्तु प्रारम्भिक प्रश्न हल न करलो तब तक अपने को निगाह वाला मत समझो।

(१२) अपनी निगाह अपने पास रक्खो। जिस तरह से तुम औरों को देखते हो, उसी तरह से तुम्हारी आत्मा तुमको देखती है अगर देखना है तो अपने को देखो। स्त्रियों के गोरे चमड़े में देखने योग्य क्या है? अपनी निगाह के आईने में अपने चरित्र का मुख देखा करो।

[१३] मन की निगाह से देखो--न बाज़ार है और न शहर। अकेला तू है और है एक विचित्र सराय। करना है तो भलाई कर और देखना है तो अपने प्रत्येक श्वास को देखो।

श्री शिवनारायण आचार्य

—:o:—

म्युनिसिपल बोर्डों का नया चुनाव।

यह जानकर हर्ष हुआ है कि इस बार के चुनाव में कई शहरोंमें कांग्रेसके लोग ही अधिक संख्यामें निर्वाचित हुए हैं।

यह कहना पुनरुक्तिमात्र होगा कि कांग्रेस इस देशमें इसी देश के कलाकौशल ज्ञान आदि के द्वारा स्थूल तथा सूक्ष्म समस्त वस्तुओं का व्यवहार होना अपना मुख्य कर्तव्य समझती है।

इसमें सन्देह नहीं कि म्युनिसिपलिटी पर शहर के स्वास्थ्य का बड़ा भारी उत्तर-दायित्व है। अबतक तो बाड शहरके स्वास्थ्यका

प्रबन्ध आयुर्वेद और हिकमत की अवहेलना कर नयी चिकित्सा-प्रणाली एलापैथी के ही नियमानुसार करता आया है। पर अब हम आशा करसकते हैं कि नवनिर्वाचित बोर्ड शहर के आरोग्यका प्रबन्ध इस देशके चिकित्सकों के परामर्श से भी करना प्रारम्भ करेंगे। हमें एलोपैथी चिकित्सासे द्वेष नहीं है, परन्तु यह सभी लोग जानते हैं कि विदेशी चिकित्सा प्रणाली के नियम, उपनियम और बचाव भारतवर्ष के जल-वायुके बिलकुल प्रतिकूल हैं। जो मनुष्य जिस देशका है उसके लिये औषध भी उसी देशकी होनी चाहिये। 'यस्य देशस्य या जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं हितम्'। वाग्भट

यद्यपि कितने लोग कह सकते हैं कि यहाँकी चिकित्सा प्रणाली उन्नत नहीं है, वहाँ बाबा प्रमाण लिये बैठा है। परन्तु तब तो फिर यहाँ चरखे आदिका आन्दोलन भी छोड़देना चाहिए क्योंकि विदेशमें ये सब काम थोड़े समय में और वैज्ञानिक ढगसे किये जाते हैं, परन्तु वह कार्य यहाँ उन्नत नहीं है। लेकिन जिस प्रकार हमें यहाँ खद्दरका काम जोरसे बढ़ाना है, उसी प्रकार हमको यहाँ अपने देशका चिकित्सापद्धति की भी जड़ मजबूत करना, और इज्जत बढ़ाना है।

निर्वाचकों को चाहिये कि अब शहरके स्वास्थ्यविभाग का काम ओरोंके साथ देशी चिकित्सकों के परामर्शसे कराने के लिए बोर्डको मजबूर करें।

स्वनामधन्य महात्मा गांधीजी ने अहमदाबादकी कांग्रेसमें देशी चिकित्साके विषयमें प्रस्ताव करते समय कहा था कि स्वराज्य होने पर यह सब आप ही हल हो जायगा। एक प्रकार से काँग्रेस भक्तोंको करीब करीब नागरिक स्वराज्य प्राप्त होगया। अब आप लोगोंका देश के प्रति अपनी देशहितैषिता कार्य के द्वारा दिखला देनी चाहिये। मेरा मतलब यह नहीं कि एलोपैथीको एकदम त्याग देना चाहिये, क्योंकि शारीरिक चिकित्सामें निपुण न होते हुए भी वह सर्जरीमें देशी चिकित्सा से बहुत ही बढ़ी चढ़ी है। किन्तु अब म्युनिसिपलटी का कर्तव्य है कि जिस प्रकार वह डाक्टरोंकी इज्जत करे, उसी प्रकार हकीम और वैद्योंका भी आदर करे।

यदि म्युनिसिपलटीके कर्मचारीगण बीमार होनपर छुट्टी लेने के लिये हकीम या वैद्यका सार्टिफिकेट लावें तो उन सार्टिफिकेटों का भी आदर कर उनकी छुट्टी मञ्जूर कीजाय।

यह नहीं कहाजासकता कि सब वैद्य अधिक हैं, जिसके सार्टि-फिकेट पर विश्वास कियाजाय। क्योंकि हर एक शहरमें प्रायः दो चार विद्वान् और नामी वैद्य या हकीम अवश्य रहा करतेहैं। और यों तो कितने अयोग्य डाक्टर भी हैं, परन्तु बड़े डाक्टरोंके ही सार्टीफिकेट माने जाते हैं। इसी प्रकार बोर्डको शहरके विज्ञवैद्यों को चुन कर उनके परामर्श का आदर अवश्य करना चाहिये।

अन्तमें मैं हर एक शहरके देशीचिकित्सकोंसे भी प्रार्थना करता हूँ कि अब आप लोग जागिये और इसके लिये शान्तिके साथ घोर आन्दोलन कीजिए।

निवेदक—हरिनारायण शर्मा वैद्य
आयुर्वेदाध्यापक, प्रतापगढ़। (अवध)

—०—

परीक्षित-प्रयोग।

अजीर्ण रोगपर चूर्ण—जीरा १ तोला, काला जीरा ४ तोले, सोंठ १ तोला, नागौरी असगन्ध १ तोला, पीपल १ तोला, पीपलामूल १ तोला, अकरकरा १ तोला, कलौंजी १ तोला, सोये के बीज १ तोला, लौंग १ तोला, कूठ मीठा १ तोला, देशी अजवायन १ तोला, खुरासानी अजवायन १ तोला, अजमोद १ तोला, सैंधा-नमक ३ माशे, साँभर नमक ३ माशे, कालानमक ३ माशे, हींग ६ माशे, और सुहागा ६ माशे सबको एकत्र कूट पीसकर कपड़ेमें छान करके शीशीमें भरकर रखदेवे। इस चूर्णका ५ माशे से लेकर ६ माशे तक गरम जलके साथ दोनों समय भोजन के पश्चात् सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से भोजन शीघ्र पचजाता है और भूख खूब लगती है। और भोजन करनेके बाद पेटका फूलना, खट्टी डकारों का आना, वायु के कारण जोड़ों में पीड़ा होना, वातज्वरके पश्चात् क्षुधा न लगना इत्यादि सम्पूर्ण उपद्रवों को यह चूर्ण शीघ्र दूर करता है।

उरःक्षत पर—वंशलोचन ६ माशे, छोटी इलायची ६ माशे, कहरवा ६ माशे, शक्करतिगाल ६ माशे, काकड़ासिंगी ६ माशे, गिले अरमनी ६ माशे, गिले मख्तूम ६ माशे, रूमी मस्तगी ६ माशे, इसबगोल ६ माशे, बीकड़ का गोंद ६ माशे और कतीरा ६ माशे

इन सब औषधियों को खूब बारीक कूट पीसकर, कपड़छन करके १८ तोले शर्बत खसखास में मिलालेवे। इस औषध के सेवन करने से फेफड़ों में से रुधिर का गिरना तत्काल बन्द होता है।

अर्शरोग पर-खियारसौत १ तोला, एलुआ १ तोला, इन्द्रजौ १ तोला, प्याज के बीज १ तोला, मूली के बीज १ तोला और बकायन की निबौली की गिरी १ तोला, इन सब को कुकरौंदे के स्वरस में ३ दिन तक खरल करके झड़बेर की बराबर गोलियाँ बनालेवे और छाया में सुखाकर रखलेवे। इनमें से प्रतिदिन एक २ गोली केरी के स्वरस या क्वाथ के साथ सेवन करने से खूनी व बादी दोनों प्रकार की बवासीर दूर होतीहै। ये सब प्रयोग हमारे अनेक-बार के परीक्षा किये हुए हैं।

कविराज पं० शम्भुदत्त शर्मा, कौशिक मिश्र।

—:*:—

क्षयकास, उरःक्षत व रक्तपित्त रोग पर—आमलों का स्वरस १ सेर, पेठे का स्वरस १ सेर, अडूसे का स्वरस १ सेर और बकरी का दूध १ सेर-इन सबको एकत्र मिलाकर उत्तम लोहे की कड़ाई में पकावे। जब वह खूब गरम होजाय तब उसमें १ सेर मिश्री पीसकर डालदेवे और मन्द मन्द अग्नि से पकता जावे। फिर अवलेह की समान तैयार होजाने पर नीचे उतार कर उसमें वंशलोचन, छोटी इलायची, सूखे आमले, मुलैठी, कीकड़ का गोंद, दारचीनी, कहरवा, धनियाँ, मस्तगी और चन्दन का चूरा ये प्रत्येक एक २ तोला बारीक चूर्ण करके मिलादेवे। एवं चाँदी के वर्क ६ माशे और शहद पावभर डालकर सबको करछी से घोट करके एकमएक करदेवे। यह उत्तम आमलकीकूष्माण्डरसायन पुरानी क्षय की खाँसी, श्वास, उरःक्षत (फेफड़ों से रुधिर का गिरना) एवं मुख, नासिका, गुदा आदि मार्गों के द्वारा होने वाले रुधिर-स्राव को शीघ्र दूर करती है और हृदय को बल प्रदान करती है।

पुरानी खाँसी और श्वास पर-दारचीनी, कालीमिरच, पीपल, धतूरे के बीज, कौड़ी की भस्म, शङ्खभस्म, शुद्ध आमलासार गन्धक और अकरकरा प्रत्येक औषधि को एक २ तोला

लेकर एकत्र कूट-पीस करके चिरचिटे के रसमें या चिरचिटेके क्वाथ में खरल करके एक एक रत्ती की गोलियाँ बनालेवे। इनमें से प्रतिदिन प्रातः काल और सायङ्काल में एक एक गोली मिश्री के शर्बत के साथ सेवन कर ऊपर से बकरी का दूध पीवे। इससे पुरानी खाँसी और श्वास का वेग शीघ्र शान्त होजाता है।

—:#:—

श्वास के वेगमें—अत्यन्त श्वास का वेग होने पर एक धतूरे के पत्ते को चिलम में रखकर उसका धूम्रपान करने से अथवा उसका सिगरेट बनाकर पीनेसे श्वास का वेग तत्काल कम होजाता है।

—:#:—

सबप्रकार के प्रदर पर—सफ़ेद राल, मस्तगी, चिकनी सुपारी, मोचरस, कीकड़ का गोंद, पपरिया कत्था, वंशलोचन, छोटी इलायची, मायजुआँ के फूल और अनार की कली इन सब औषधियों को समानभाग लेकर एकत्र कूटपीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर सब चूर्ण की बराबर मिश्री मिलाकर प्रतिदिन प्रातः और सन्ध्या के समय ६-६ माशे की मात्रासे गौ के दूध के साथ सेवन करे। इस औषधि के सेवन से स्त्रियों का श्वेत, रक्त, पीत आदि सब प्रकार का नया व पुराना प्रदररोग शीघ्र दूर होता है।

रक्तशोधक गोलियाँ—चलुआ १ तोला, बड़ी हरड़ १ तोला, बसवा १ तोला, सनाय १ तोला और केसर १ माशा, सबको एकत्र कूट पीसकर गुलाब के अर्क में खरल करके दो दो रत्ती की गोलियाँ बनालेवे। फिर एक २ गोली प्रातः सायङ्काल जलके साथ सेवन करे। इन गोलियों को सेवन करने से दस्त होकर कोठा साफ़ होजाता है और उपदंश, वातरक्त आदि रुधिर के विकार दूर होते हैं।   वैद्य लीलाधर शर्मा।

कुछ जानने योग्य बातें।

ज्वर में दाँत शीघ्र निकलते हैं—आन्द्रे शिवा के डाक्टर एच० एडल्स ने विशेष अनुभव के द्वारा यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि बालक को ज्वर होनेपर उसके दाँत जल्दी निकल आते हैं। शायद ज्वरकी उष्णता से दाँतों के निकलने में विशेष सहायता मिलती है। उन्होंने ११ से लेकर २७ मास तक के कई बालकों की परीक्षा करके अपना मत प्रकाशित कराया है। इनका यह भी कहना है कि माता शीतला आदि को तीव्र ज्वर होनेपर बालक के दाँत और भी शीघ्रतासे निकलते हैं। आपकी राय में यह सर्वसाधारण का ख्याल ठीक नहीं है कि दाँत निकलने से ज्वर आता है। बल्कि आपकी राय में ज्वर के होनेसे दाँत जल्दी निकल आते हैं।

मद्यपान और सेब—विलायत के एक डाक्टर की राय है कि यदि पुराना मद्यसेवी मनुष्य भी भोजन के साथ या भोजन के पीछे कुछ दिनों तक अधिक परिमाण में सेब भक्षण करे तो उसके मद्य पीने की इच्छा अवश्य कम होजाती है।

स्त्रियों में अधिक वाचालता का कारण इङ्गलैण्ड के मरजेम्स ब्राउनने अपने विशेष अनुभव से यह मालूम किया है कि स्त्रियों के मस्तिष्क के पिछले भाग में पुरुषों के मस्तिष्क की अपेक्षा अधिक ज़ोर से रुधिर का सञ्चार होताहै—और उसीप्रकार पुरुषों के मस्तिष्क के अग्रभाग में स्त्रियों के मस्तिष्ककी; अपेक्षा रुधिर का सञ्चार अधिक ज़ोरसे होताहै। उनके कहने का मतलब यह है कि इस कारण स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से बोलती हैं। इसीलिए पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में मनोविकार भी अधिकतर होते हैं।

विविध-समाचार।

प्लेग का प्रकोप—इस समय देश में चारों ओर प्लेगका प्रकोप अधिकता से बढ़ता जारहा है। विशेषकर युक्तप्रान्त में

इसने ग्रामीसे बड़ा भयङ्कररूप धारण करलिया है। प्रतिमास सहस्रों मनुष्य प्लेग से पीड़ित होकर अचानक काल के मुख में पतित होजाते हैं। न मालूम यह दुष्टरोग कब इस देशका पिण्ड छोड़ेगा।

दवाके धोखे विषसे राजाकी मृत्यु—इस दिनअक्कलकोटके महाराज की दवामें धोखे से बेरियम सल्फेट की जगह बेरियम सल्फाइड (विष) दिये जाने के कारण अचानक मृत्यु हो गयी। अब पूना के ड्रगस्टोर्सके हेड कम्पाउण्डर जे० एम० फरनन्डेज पर ताजीरातहिन्द की दफ़ा २७६ और २८४ का जुर्म लगाकर मुक़दमा चलाया गया है। बेरियम सल्फेट एक प्रकार का नमक है और बेरियम सल्फाइड एक अत्यन्त विषैला पाउडर है, जो बाल उड़ाने की दवाओं के काम में आता है।

ऋषिकुल-विद्यालय—हरद्वार के ऋषिकुल का आयुर्वेद विद्यालय खुलगया। पढ़ाई का कार्य सुचारु रूपसे होरहा है। उक्त विद्यालय को युक्तप्रान्त की सरकार ने एक साथ ५०००० हज़ार रुपये देने का वचन दिया है और प्रतिवर्ष ५०००) हज़ार रुपये देने को कहा है। परन्तु उक्त सहायता उस समय मिलेगी, जब विद्यालय की कमेटी प्रथम एक लाख रुपये प्राप्त करलेवे। अस्सी हज़ार की लागत से उसका भवन बनाया जायगा। श्रीयुत डाक्टर बी० के० मित्र उसके प्रिंसिपल नियत हुए हैं।

देशी चिकित्साप्रणाली।

कुछ दिन हुए व्यवस्थापिका सभा के सदस्य मुहम्मद उस्मान साहब की अध्यक्षता में मद्रास सरकार ने एक कमेटी देशी-चिकित्सा-प्रणाली की जाँच के लिये बैठायी थी। बहुत जाँचकर और सारे हिन्दुस्तान से इस सम्बन्ध में पूछताछ कर उनलोगों ने रिपोर्ट दी है। विज्ञान और कला दोनों की दृष्टि से देशी चिकित्साप्रणाली कमेटी की राय में पूर्णरूप से वैज्ञानिक है। यद्यपि चीरफाड़ के काम में इस प्रणाली को सहायता की आवश्यकता है, पर अन्य कामोंमें यह पूरी है। इस चिकित्साके अबलोग तभी लाभ उठासकते हैं जब देशी चिकित्साप्रणाली अमल में लायी जाय। इसलिये कमेटीने सिफारिश की है कि चीरफाड़ और दवा दोनों

विषयोंमें इसे पूर्णता प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये सबसे पहला उपाय यह है कि सरकार घोषणा करदे कि वह देशी-चिकित्साप्रणाली को सम्मानित करेगी।

——:o:——

प्राप्ति-स्वीकार ।

आरोग्य शास्त्र-लेखक, कविराज श्रीहरदयालजी वैद्यवाचस्पति K. R. A. V. M. A. S. प्रोफेसर आयुर्वेदविद्यालय, डी० ए० वी० कालेज ॥ प्राप्तिस्थान-दास ब्रादर्स, पुरानी अनारकली, लाहौर । मूल्य १।) छपाई, काग़ज़, साधारण ।

इस पुस्तक में स्वास्थ्य के लक्षण, आरोग्यशास्त्र के नियम, स्वास्थ्य नष्ट होने के कारण, स्वास्थ्यरक्षा के उपाय, दिनचर्य्या, रात्रिचर्य्या, ऋतुचर्य्या, वायु, जल, भोजन और भोज्यपदार्थों का वर्णन, प्लेग, कालरा, मलेरिया, इन्फ्लुएञ्जा आदि संक्रामक रोग और उनसे बचने के उपाय, गर्भिणीचर्य्या, शिशुपालनविधि, रोगी-सेवा, गृहनिर्माणविधान आदि स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखने वाले अनेक विषयों का संग्रह है। संग्रह अच्छा हुआ है। प्रत्येक विषय विस्तार के साथ लिखा गया है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों के सिवा पाश्चात्य आरोग्यशास्त्र की भी इसमें सहायता लीगई है, इससे पुस्तक की उपयोगिता अधिक बढ़गई है। हिन्दी में यह आरोग्यशास्त्र सम्बन्धी शायद पहली पुस्तक है।

—o—

दिगम्बर जैन का खास अङ्क-दिगम्बरजैन नामका मासिक-पत्र कई वर्षों से सूरत से निकलता है। इसके सम्पादक और प्रकाशक-बाबू मूलचन्द किशनदास कापड़िया बड़े उत्साही सज्जन हैं। आप प्रतिवर्ष नये वर्ष के आरम्भ में इसका खास अङ्क निकाला करते हैं। अबकी बार भी इसका विशेष अङ्क विशेष सजधज के साथ निकाला गया है। इस अङ्क में लगभग १०० पृष्ठ हैं। २५ लेख, कवितायें और ७ चित्र हैं। लेख अधिकतर हिन्दी और कुछ गुजराती भाषा में लिखे हुए हैं। एक कविता अङ्गरेज़ी और एक मराठी भाषा की भी है। लेख साधारणतः अच्छे हैं। किन्तु कवितायें बहुत ही साधारण हैं। सम्पादक महोदय की मातृभाषा हिन्दी

न होने के कारण हिन्दी के लेखों में बहुतसी अशुद्धियाँ रहगयी हैं तथापि कापड़ियाजी का उद्योग प्रशंसनीय है। प्रत्येक जैनी भाई को इस पत्र का ग्राहक बनकर कापड़ियाजी का उत्साह बढ़ाते रहना चाहिये।

—:o:—

भ्रमर—यह एक नवीन मासिकपत्र है। अभी थोड़े दिनों से बरेली से प्रकट होने लगा है। इसके सम्पादक–पण्डित गोपीवल्लभ उपाध्याय और संस्थापक–प्रसिद्ध कथावाचक पण्डित राधेश्याम हैं। छपाई, कागज़ बढ़िया, वार्षिक मूल्य ३)।

इसकी पाँचवीं होली की संख्या हमारे सामने है। इसमें कुल १३ लेख और कवितायें हैं। सभी लेख प्रायः होली के रंग में रंगे हुए और बढ़िया ढङ्ग से लिखे गये हैं। कवितायें भी खूब रंगीली हैं। पत्र का सम्पादन बड़ी योग्यता से होता है। हम सहयोगी का हार्दिक स्वागत करते हैं।

—o—

ब्राह्मणहितैषी–यह ब्राह्मणजाति का पाक्षिकपत्र है। मैनपुरी से एक वर्ष से प्रकाशित होरहा है। इस का नये वर्ष के आरम्भ में विशेष अङ्क निकला है। इसमें उक्तजातिसम्बन्धी और दूसरे सर्वसाधारणोपयोगी कितने ही लेखों और कविताओं का संग्रह है। लेख साधारणतः सब अच्छे और सुपाठ्य हैं। वार्षिक मू० २॥)

—:o:—

शिशु–यह छोटे बालकों के लिए सात वर्षों से प्रयागसे प्रकाशित होनेवाला सचित्र मासिकपत्र है। इसके सम्पादक और प्रकाशक हैं–पण्डित सुदर्शनाचार्य्य जी बी० ए०। कागज़, छपाई बढ़िया। वार्षिक मूल्य २)

इसकी आठवें वर्ष की प्रथम संख्या हमारे सामने है। इसमें बालकोपयोगी विशेषकर छोटे बालकों के काम के कई अच्छे २ लेख हैं। एवं बालकों के मनोरञ्जन के लिए कितने ही अनूठे चित्र भी दिये गये हैं। शिशु का प्रत्येक घरमें आदर होना चाहिए।

—o—

तिजारत–यह शिल्प एवं व्यापारसम्बन्धी मासिकपत्र है। श्रीयुत बाबू बाँकेलाल (अक्तर) के सम्पादकत्व में शाहजहाँपुर से

प्रकाशित होताहै। पहले यहपत्र उर्दू में निकलता था, किन्तु अब थोड़े दिनों से हिन्दी में निकलने लगा है। वार्षिक मूल्य २) इसमें अनेक प्रकार की दस्तकारी और व्यापारसम्बन्धी बातें इतनी उत्तम और सरलरीति से लिखी जाती हैं कि जिनको बांचकर मनुष्य घर बैठे सुखपूर्वक जीविका चलासकता है। पत्र सर्वसाधारण में विशेष आदर पाने योग्य है।

शिखामहत्त्व—लेखक और प्रकाशक-पं० कल्याण प्रसाद उपाध्याय, कोटा स्टेट। मूल्य ।) इस पुस्तिकामें कई शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियों के द्वारा शिखा (चोटी) का महत्त्व सिद्ध किया गया है। पुस्तक पढ़ने के योग्य है।

जीवन—यह राष्ट्रभाषाका नवीन साप्ताहिक पत्र है। अभी कुछ दिनोंसे श्रीयुत इन्द्र जी के सम्पादकत्वमें मथुरा से निकलना आरम्भ हुआ है। इसका वार्षिक मूल्य ३)रु०।

इसमें राष्ट्रिय मत के ज़ोरदार लेख प्रकाशित होते हैं। इसका उद्देश्य देशमें नवीन राष्ट्रिय जीवन का सञ्चार करना है। पत्र का सम्पादन बड़ी योग्यतासे होता है। हम सहयोगी का हृदयसे स्वागत करते हैं।

स्वाधीनता यह नवीन साप्ताहिक पत्र है। अभी थोड़े दिनोंसे फ़र्रुखाबाद से निकलने लगा है। सम्पादक और प्रकाशक-बाबू केशवराम जी टंडन हैं। वार्षिक मूल्य ३॥)

यह राष्ट्रिय मत का पोषक है। लेखोंका संग्रह अच्छा रहता है। हम आशा करते हैं कि सहयोगी भविष्यमें अधिक उन्नति करेगा।

कल्पवृक्ष—नवीन मासिक पत्र है। सम्पादक और प्रकाशक हैं—पं० दुर्गाशङ्कर नागर और बाबू पन्नालाल वर्मा, उज्जैन। वार्षिक मूल्य २॥) रु०।

इसमें मनोविज्ञानसम्बन्धी अच्छे अच्छे लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी में इस विषय का शायद यह पहला मासिकपत्र है। पत्र होनहार प्रतीत होता है। सहयोगी का हम स्वागत करते हैं।

माता का कर्तव्य ।

(गत दिसम्बर १९०२ की संख्या से आगे)

दाँत निकलनेकी पहली अवस्थाके लक्षण ये हैं:-बालकोंके मुँह के भीतर की गर्मी कम होजातीहै और शरीर मन्द होजाताहै । उनका मन खिन्न रहताहै,मुँहमें से लार अधिक निकलती है और वे ज़रा २ से कष्टसे रोने लगते हैं । इस प्रकार बालक जब रोता है तब उसकी आँखें और गाल लाल होजाते हैं, भूख कम होजाती है, प्यास अधिक लगती है, निद्रा अच्छी तरह नहीं आती, अधिक स्वप्न दीखनेके कारण बालक बारबार जाग उठता है और उसे सारे शरीर में पीड़ा होती हुई जान पड़ती है । उसके मसूड़ों में पहिले विकार नहीं होता, परन्तु इस अवस्था में वे फूलजाते हैं । उनमें गर्मी बढ़जाती है और वेदना शुरू होजाती है । बालक जब हाथकी किसी वस्तु को मुँह में डालकर उससे अपने मसूड़ों को घिसता है तब उसे आराम मिलता है ।।उस समय उसके उदरविकार रहता है, किन्तु उससे कुछ हानि नहीं होती । इस लिए इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए । कुछदिनों के बाद सब विकार धीरे धीरे कम हो जाते हैं । फिर बालक कुछ समय तक आराम में रहता है :

इसके बाद दूसरी अवस्था प्रारम्भ होती है । उस समय बालक किसी वस्तु को मुँह में नहीं डालता । कारण, उस समय किसी वस्तु का भी मुँह में स्पर्श होने से वह डरता है और यदि असावधानी से किसी वस्तु का स्पर्श होजाता है तो वह तुरन्त रोने लगता है । इस समय मसूड़े और मुँह के भीतर अग्नि की समान तीक्ष्ण गरमी जान पड़ती है और मसूड़ों के ऊपर कुछ गुलाबी रंग का फूला हुआसा दाग स्पष्ट दिखायी देता है । उसको दबाने से बड़ा कष्ट होता है । उस समय बालक का रंग बार बार बदलता है और उसे बड़ी बेचैनी मालूम होती है । वह खाना नहीं चाहता, बल्कि माता की गोद में ही पड़ा रहना चाहता है । उसे किसी प्रकार भी सुख नहीं मिलता । वह अनेकबार दूध पीना चाहता है,किन्तु थोड़ी देर पीकर फिर पीड़ाके कारण छोड़देता है ।

वह प्रत्येक चीज़ को अपने हाथ में लेना चाहता है, परन्तु हाथ में कोई वस्तु नहीं आती। इससे यह जाना जाता है कि उस समय बालक की इच्छा वृद्धि होती है, किन्तु वह शारीरिक कष्टके कारण पूर्ण नहीं होती। प्रकार अच्छी तरह दाँत न निकलने से सब विकार दूर नहीं होते। परन्तु बहुत से बालक विशेषकर जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है और जिनकी उत्तम प्रकार से रक्षा की जाती है उनके दाँत बिना कष्ट के ही निकल आते हैं।

पहले यह लिखाजाचुका है कि मनुष्य के दाँत निकलना एक स्वाभाविक बात है। परन्तु यह निश्चितरूप से नहीं कहा जासकता कि दाँत निकलते समय बालक को किसी प्रकार की पीड़ा अथवा आपत्ति में फँसना ही पड़ेगा। बाल्यावस्था में शरीर में सहज ही विकार उत्पन्न होजाते हैं। वे दाँत निकलते समय और बढ़जाते हैं। इस समय मामूली कारणों से भी अधिक पीड़ा होने लगती है और एक बार पीड़ा के होने पर फिर वह बड़ी विपत्ति का कारण होजाती है। इसलिए जन्मकाल से ही बालक का यथाविधि पालन पोषण करने से उसकी इस भारी संकट से रक्षा होसकती है। परीक्षा द्वारा जाना गया है कि बालक में एक अधिक और धातुयें उग्र होती हैं। विशेषकर जो बालक सदैव घरमें ही रक्खा जाता है अथवा गोदी में ही रहता है और जिसके खान पान का कुछ नियम नहीं होता, उस बालक के दाँत निकलते समय अत्यन्त पीड़ा होती है। जिस बालक की धातुयें उत्तम हों, जिसको अधिक खिलाया जाता हो और जिसका पालन पोषण तथा शारीरिक व्यायाम प्राकृतिक नियमानुसार उत्तम प्रकार से होता हो तो उसके दाँत निकलते समय कोई पीड़ा नहीं होती।

बालकों के पालन पोषणसम्बन्धी नियम पहिले लिखे जा चुके हैं, इस लिये उनकी यहाँ पुनरुक्ति करना ठीक नहीं है। इस विषय में केवल इतना ही कहाजासकता है कि बालकों को दाँत निकलते समय स्वच्छ वायु का सेवन कराना चाहिये। बालकों को बचपन में जो नानाप्रकार के रोग घेरे रहते हैं, इसका मुख्य कारण यह है कि उस समय बालकों का शरीर बहुत कोमल होता है, इसलिए वे सहजही रोगग्रसित होजाते हैं। इन विकारों की निवृत्ति केवल निर्मल वायुके सेवनसे होसकती है। इससे अच्छा

और कोई दूसरा उपाय नहीं है। जो बालक प्रतिदिन कई घंटे तक बाहरकी स्वच्छ वायु में रहता है। खुले हुये और स्वच्छ वायु के आने जाने वाले कमरे में रहता है और जिसको अधिक भोजन नहीं कराया जाता उस बालक के दाँत निकलते समय कोई कष्ट नहीं होता। परन्तु इसके विपरीत कार्य्य करनेसे बालकों को अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ता है।

बालकको मामूली और हलके कपड़े पहराकर बाहर की स्वच्छ वायु सेवन कराते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि जब वसन्त, शरदादि उत्तम ऋतुकाल हो और निर्मल मन्द मन्द वायु चलरहा हो तब ऐसा करना चाहिए, और जो वर्षा या हेमन्तादि ऋतु हो और शीतल, आर्द्र तथा तीक्ष्ण वायु चलरहा हो तो बालक को हलके कपड़े नहीं पहराने चाहियें; किन्तु उस समय उसे गरम कपड़े पहनाकर थोड़ी देर बाहर की स्वच्छ वायु सेवन करानी चाहिए। कारण, उस समय उसका शरीर सहजही रोगाक्रान्त होनेकी सम्भावना रहती है। इस लिए इस विषय में विशेष सावधान रहना चाहिए। इससमय बालक को बलवान् और स्वस्थ बनाये रखने का मतलब यह है कि कदाचित् उसे शीतल, भीगी हुई अथवा प्रबलवायु में लेजाने का काम पड़े तो उसके गले की नाली में और छाती में रोग न होने पावे। यदि बालक के शरीर पर इतना हलका कपड़ा होगा कि जिससे शरीरमें गर्मी उत्पन्न न होसकती हो तो उससे भी उस समय एक प्रकार की पीड़ा होजाती है। इसलिए बालक के वस्त्रों पर भी विशेष ध्यान रखना चाहिये। अन्यथा वेदना और उपद्रव बढ़जाते हैं।

दाँत निकलते समय बालक को बहुत हलका और सुपाच्य भोजन देना चाहिए, जिसके सहज में पचजाने से उसे दस्त साफ़ हो जाया करे। इस समय बालक को अधिक अथवा अनुपयोगी भोजन खिलाने से जितनी हानि होती है, उतनी केवल दाँत निकलने से नहीं होसकती। जो बालक माता के दूध के सिवा और कुछ नहीं खाता, उसके दाँत निकलने की पहली अवस्था बिना किसी उपद्रव के व्यतीत होजाती है। ऐसा प्रायः देखा जाता है। इस लिए बालक को उस समय स्तन के दूध के सिवा और कोई वस्तु नहीं खिलानी चाहिए।

जब दाँत निकलने की पीड़ा होनी आरम्भ हो तब अथवा इससे पहले बालक को गरम पानी से स्नान कराने से विशेष लाभ होता है । कारण उससे शरीर चैतन्य रहताहै और निद्रा खूब आती है । इसी प्रकार अन्य समय अथवा उसी समय बालक को अनेकबार गरम पानी से स्नान कराने और उसके सब अङ्ग प्रत्यङ्गों को खूब मल मल कर धोने से शरीर में स्फूर्ति उत्पन्न होती है और कोई हानि नहीं होती ।

जिस समय दाँत निकलने आरम्भ हों, उस समय शरीर में उत्तेजना न बढ़े, इस बात की सावधानी रखनी चाहिए। पहिले लिखा जाचुका है, कि उत्तम ऋतु में बालकों को अधिक देर तक बाहर की वायु में रखना अच्छा है, परन्तु भीगी तथा शीतल वायु में बाहर रखना अच्छा नहीं है । अर्थात् जिस समय वायु तीव्र हो, उस समय बालक को बाहर न लेजाकर घरके बड़े कमरे के एक तरफ़ के दरवाजे को खोलकर उसमें खेलने देना चाहिए । दाँत निकलते समय बालक को आम खिलाने से लाभ होता है, परन्तु आमको अधिक मात्रा में नहीं देना चाहिए । और मांसरस आदि पदार्थ कदापि नहीं खिलाने चाहिएँ । जबतक दाँतों के निकलने की पीड़ा दूर न होजाय तब तक बालक को किसी प्रकार का पुष्टिकारक भोजन नहीं देना चाहिए । यदि माता का दूध छोड़ने से प्रथम ही बालक के दाँत निकलने लगें तो उस समय उसे कोई कठिन और देर में पचने वाला भोजन न देकर शीघ्र पचने वाला हलका भोजन देना चाहिए । यदि बालक को रोटी खिलानी हो तो दूध में मलकर खूब नरम होजाने पर खिलानी चाहिए । परन्तु दूध आधा पानी डालकर औटाया हुआ होना चाहिये । माता को इस समय किसी प्रकार की व्यर्थ चिन्ता नहीं करनी चाहिए ।

दाँत निकलते समय मस्तक की ओर से रक्त शीघ्रता से प्रवाहित होता है । इससे शरीरमें आकर्षण अथवा मस्तिष्कमें पीड़ा उत्पन्न होती है, जिससे अन्त में भारी विपत्ति का सामना करना पड़ता है । इसलिए बालक का मस्तक शीतल रखना और उसके मस्तक-किसी प्रकार भी उत्तेजित नहीं होने देना चाहिए । बालकको प्रसन्न रखने के लिए अधिक व्याकुलता प्रगट करना बुरा है । कारण, इस व्याकुलता को देखकर बालक की पीड़ा बढ़सकती

है। तात्पर्य यह है कि बालक की इस प्रकार रक्षा करनी चाहिए, जिससे वह सदैव प्रसन्न चित्त और हँसमुख रहे। वह अपने प्रतिपालक को व्याकुल और चिन्तातुर देखकर आपभी व्याकुल होजाता है और अधीर हो उठता है। यदि बालक के मुँह में से अधिक लार निकलती हो तो मस्तक की पीड़ा नहीं होती। अतएव बालक के बड़े होजाने पर लार टपकाने को उससे मना नहीं करना चाहिये। क्योंकि लार टपकने से पेट में रोग होजाने पर भी मस्तक और फेफड़े का रक्त नीचे आने से शरीर सुखी रहता है। उस समय यदि दस्त अधिक होते हो तो इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यदि किसी औषध द्वारा मुँहकी लार अथवा दस्तों को एक दम बन्द कियाजाता है तो शरीर में भयंकर रोग उत्पन्न होने लगते हैं। यदि कोई भयंकर रोग उत्पन्न होजाय तो यह न समझना चाहिए कि दाँतों के ही कारण इस रोग की उत्पत्ति हुई है और दाँत निकलनेके बाद यह स्वयं शान्त होजायगा, बल्कि उसकी परीक्षा किसी चतुर चिकित्सक से कराकर उसकी यथासाध्य चिकित्सा करानी चाहिए। यह बात ऊपर लिखी जा चुकी है कि दाँत निकलते समय बालक का पालन पोषण किस प्रकार करना चाहिए। अब मसूड़ों की वेदना अथवा उससे जो कष्ट होते हैं उनको निवारण करने के उपाय लिखे जाते हैं।

जिस बालक के मसूड़ों के फूल जाने पर और अधिक उष्णता बढ़जाने पर पीड़ा हो अथवा किसी अनिश्चित या असाधारण पीड़ा के लक्षण दिखायी दें तो उस समय उसके माता पिता को चाहिये कि वे अपनी बुद्धि और भाग्य के भरोसे न बैठे रहें, वरन किसी अनुभवी वैद्य के पास जाकर उससे रोग होनेका मूल कारण मालूम करें। यदि उसे थोड़ा कष्ट हो और रोग के भयंकर होने के चिन्ह न मालूम पड़ें तो माता को चाहिये कि वह पहली अवस्था में अपनी अँगुली से बालक के मसूड़ों को धीरे धीरे घिसे। उससे बालक को आराम मालूम होता है। अथवा एक रबड़ का टुकड़ा या उसी की समान कठिन कोई और चीज़ उसके हाथ में देदेवे, जिसको वह अपनी इच्छानुसार मुँह में डालकर शान्त रहे। परन्तु जब मसूड़े अधिक गरम हों तो उनको दबाने से बालक को आराम नहीं मालूम होता, किन्तु दुःख होता है।

इसलिए मसूड़े छिलने से पहले बालक को सुख होगा या दुःख होगा यह बात माता को खूब विचार लेनी चाहिये । जिसके मसूड़े या जावड़े अधिक न दुखते हों तो उसे चूसने योग्य पदार्थ देने चाहिएँ। कारण,चूसने योग्य पदार्थों का मसूड़ोंपर स्पर्श होनेसे दाँत सुगमता से निकल आते हैं । किन्तु, मसूड़े या जावड़े अधिक गरम हों तो मुलायम रोटी के ऊपर का वक्कल खाने को देना चाहिए । उससे मुँह में से अधिक लार निकलने से पीड़ा कम हो सकती है।

जिस बालकके मसूड़े और जावड़े अधिक फूले हुए हों और शारीरिक वेदना अधिक हो तो उसके मसूड़ोंको छेदकर रक्त निकाल देनेसे आराम होजाताहै। किन्तुदाँत निकलनेकी प्रारम्भिक अवस्था में ऐसा करना चाहिए। यदि उस समय दाँत न भी निकलें तो भी कोई हानि नहीं होती। परन्तु दूसरी अवस्था में जिस समय दाँत निकलने शुरू होते हैं, उस समय इस प्रकार रक्त निकालना ठीक नहीं है। इस प्रकार रक्त निकालदेने से फिर कितने ही दिनों बाद दाँत निकलने शुरू होते हैं। परन्तु यह काम अनुभवी डाक्टर द्वारा कराना अच्छा है।

—:०:—

तेरहवाँ प्रकरण ।

दूध छोड़ने के पश्चात् दो वर्ष तक बालक के पालन पोषण करने के नियम ।

इस निबन्ध में जो बाल्यावस्था का वर्णन किया गया है, वह दो समयों में विभक्त किया जासकता है। पहला समय जन्म काल से लेकर दूध छोड़ने तक और दूसरा समय दूध त्यागने के पश्चात् दूध के दाँत निकलने तक समझना चाहिए। बहुत से बालक नौ महीने से लेकर एक वर्ष तक दूध छोड़देते हैं और दो वर्षमें अथवा उससे कुछ अधिक समय में उनके सब दूध के दाँत निकल आते हैं। इसलिए सामान्यतः ऊपर के दोनों समयों में से पहले को बाल्यकाल का पहला और दूसरे को दूसरा वर्ष कह सकते हैं।

अगले प्रकरण में जो विषय लिखा जायगा वह सब पहले काल के लिए है। परन्तु दूसरे समय में भी उन सब बातों पर दृष्टि रखते हुए कार्य्य करना चाहिए। यद्यपि जन्मकाल से लेकर एक वर्ष के भीतर जितने बालक मरजाते हैं, उतने दूसरे वर्ष में नहीं मरते तथापि जीवन के दूसरे भाग अर्थात् दूसरे वर्ष में बहुत से बालक मरतेहुए दिखाई देते हैं। दाँत निकलते समय मन में ऐसा भाव उत्पन्न होता है कि जिस से कष्ट पहुँचने का भय लगा रहता है। इस लिए इस समय बालक का पालन पोषण किस प्रकार करना चाहिए, इस बात का जानना बहुत ज़रूरी है। उपर्युक्त समय में अधिक मृत्युयें क्यों होती हैं? और किन उपायों से वे निवारण हो सकती हैं इस विषय का वर्णन इस प्रकरण में कियाजायगा।

पहले लिखा जाचुका है कि बालको को एक वर्ष की अवस्था तक जितने रोग उत्पन्न होते हैं, उनमें से बहुत से तो शारीरिक दुर्बलताके कारण और बहुतसे पालनपोषण सम्बन्धी दोषों के रहजाने से होते हैं। दूसरे वर्ष में भी उन्हीं कारणों से बालकों के रोग होते हैं, क्योंकि उस समय शीघ्रता से शारीरिक अवयव बढ़ने के कारण शरीर का कार्य तेज़ीसे होता है। अतः साधारण कारण से ही शरीर में विकार होकर पीड़ा होने लगती है। क्योंकि दाँत निकलते समय शरीर को गुरुतर कार्य करना पड़ता है, इस से उसके शरीर की ऐसी अवस्था होजाती है कि शरीर पर थोड़ी सी अशुद्ध वायु के लगने से अथवा भोजन पर दृष्टि न रखने से रोग उत्पन्न होजाता है। इस अवस्था में बालक को प्रत्येक पदार्थ नवीन दिखाई देता है और उन पदार्थों की ओर उसका चित्त आकर्षित होता है। उससमय बालक अपनी इन्द्रियोंसे बाह्य पदार्थों का ज्ञान उत्तम प्रकारसे प्राप्त करना शुरू करता है। उसके मनमें नवीन भाव तथा इच्छायें उत्पन्न होती हैं और किसी पदार्थ को देखकर उस की परीक्षा करने में उत्साह उत्पन्न होता है। उस समय उसमें अपनी इच्छाओं को स्पष्टरूप से प्रकाशित करने की और उन इच्छाओं के अनुसार हाथ पैर चलाने की समझ आजाती है। इसके बाद बोलने की शक्ति उत्पन्न होने पर वह मनुष्य के साथ बातचीत करके प्रसन्न होता है, और इस

प्रसन्नता से उसका मन बारम्बार उत्तेजित होता है। इस प्रकार के अनेक कारणों से द्वि वर्ष के बालकका शरीर और मन सदैव चंचल रहता है इत्यादि पालन पोषण सम्बन्धी दोषों से अथवा अन्य अनेक कारणों से बालक कष्ट भोगता है और कभी कभी मर भी जाता है।

दूसरे वर्ष में जो दाँत निकलते समय बालक को अनेक प्रकार के रोग होते हैं, अतएव ऐसे समय बालक के पालन पोषण के विषय में प्रत्येक माता पिता को सावधान रहना चाहिए। यदि पूर्वोक्त नियमों के अनुसार बालक का पालन पोषण किया जावे तो दाँत निकलते समय उसको कोई कष्ट न भोगना पड़े। परन्तु खाने पीने अथवा औषध आदि में किसी प्रकार की भी गड़बड़ होजाने से निस्सन्देह भयङ्कर आपत्ति आदबाती है। जिन नियमोंसे बालकों का पालन पोषण करना चाहिए, उन नियमों का वर्णन विस्तारपूर्वक से पहले प्रकरणों में किया जाचुका है। सारांश यह है कि पहले वर्ष बालकों के शरीर की जैसी अवस्था रहती है दूसरे वर्ष भी वैसीही रहतीहै। इसलिए दाँत निकलते समय पहले वर्षमें जो नियम पालन करने बतलाये गये हैं उन नियमों को दूसरे वर्ष में भी पूर्णरूप से पालन करना चाहिए। उस समय शारीरिक अवस्था पर विशेष ध्यान देना चाहिए। बालकों के पालन पोषण में सावधानी रखनेके लिए फिर भी यही लिखाजाता है कि पहले बालक कीशारीरिक अवस्था देखकर उसी के अनुसार उसका लालन पालन करना चाहिए। इसके सिवा दाँत निकलने के कष्टको दूर करने का अन्य कोई सुगम उपाय नहीं है। सारांश यह है कि उक्त नियमों का विधिवत् पालन करने से अनेक दुर्बल बालक इस आपत्ति से मुक्त होसकते हैं अन्यथा अनेक प्रकार के सुख में रहने वाले बलवान् बालक भी पालन पोषण के दोष से मरजाते हैं।

बाल्यावस्था में अनेक भयंकर रोग होते हैं। उनमें से बहुत से रोग अपच अर्थात् भोजन के न पचने के कारण से उत्पन्न होते हैं। यह दोष माता पिता के लाड़ प्यार अथवा असावधान रहने से होता है। इस विषय में उन्हें सावधान रखने के लिये आगे अनेक उपदेशप्रद बातें लिखी जायँगी।

(अपूर्ण)

Regd. No. A. 587

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिक-पत्र

सम्पादक—शङ्करलाल वैद्य

वर्ष ११ | मुरादाबाद । अप्रैल सन् १९२२ | संख्या ४

विषय-सूची

१—विनम्र निवेदन ९३
२—आहार शुद्धि ९४
३—नाड़ी परीक्षा १००
४—निर्बल दृष्टि १०४
५—माता का कर्त्तव्य १०६
६—प्रसिद्ध सन्तान कारक उपचार ११७
७—तमाखू महिमा १२०
८—प्राप्ति-स्वीकार १२१

प्रकाशक—हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद ।

वार्षिक मूल्य १॥)] [एक संख्या का मूल्य =)

Printed by—Pt. Lakhi Ram Sharma,
at the Sharma Machine Printing Press,
MORADABAD.

❀ वैद्य के नियम ❀

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिकमूल्य डाकमहसूल सहित केवल १॥) रु० है। पेशगी मनीआर्डर भेजने से १॥) रु० और वी० पी० मँगाने से १॥।) रु० पड़ेगा।

(३) 'वैद्य' का नमूने में कोई सा एक अङ्क भेजदिया जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषयक लेख, कविता, अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वे पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायँगे। परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिए, जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिए कार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँचकर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी २ अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं। इसका कारण रास्तेकी असावधानी ही होसकती है। जिन महाशयों को जो अङ्क न मिले वे दूसरे अङ्कके पहुँचते ही हमें सूचना दें। अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सर्वप्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि "वैद्य-शंकरलाल हरिशंकर वैद्य आफिस मुरादाबाद" के पते से आने चाहिएँ।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

वर्ष ११ } मुरादाबाद अप्रैल सं० १९२३ ई० । { संख्या ४

विनम्र निवेदनम् ।

(ग़ज़लगीतम्)

आयुर्वेदं भज गतखेदं, हर्त्तारं जनतानिर्वेदम् ।
विशदीकृतरुज-रिपुगण-भेदं, धर्त्तारं सुखशान्तिमखेदम् ॥
धन्वन्तरि—सुश्रुत—हारीता—, मेयैर्वन्दितपादम् ।
हरति निरन्तरमथ जनतानां, यो दारिद्र्यविषादम् ॥
सतत सुरेन्द्र-धरेन्द्र-महीसुर-, सेवितचरणसरोजम् ।
परम सुशोभितमिह पशुपतिमिव, क्षोभितरोगमनोजम् ॥
प्रकटित निखिल निगम गुणतत्त्वं, कर्त्तार भक्तेषु महत्त्वम् ।
आसादितनरदेवप्रियत्त्वं, त्यक्त्वेमं युज्यसे ह्रिया त्वम् ॥
अत एवाद्य वदामि त्यज त्वं, "वैदेशिकमिह भेषजतत्त्वम् ।"
भज भज भज निजमानमहत्त्वम्, भज वैद्यकभेषजप्रियतत्त्वम् ॥

आयुर्वेदाचार्य श्रीरामदेव ओझा काव्य-साहित्यपुराण
तीर्थ, चिकित्सकः ।

आहार शुद्धि ।

शरीर की रक्षा करना प्राणिमात्र का धर्म है । शरीरके द्वारा ही समस्त ऐहिक और पारलौकिक कार्यों की सिद्धि होती है । शरीर ही से धर्म अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है । शरीर ही सम्पूर्ण साधनों का मूल है । अतएव शरीर की रक्षा सब प्राणियों को करनी चाहिए ।

शरीर अन्नके आधीन है । अतः धर्म, अर्थादि पुरुषार्थ भी अन्नके आधीन हैं । प्राणरक्षक होने के कारण ही अन्नको नारायण कहते हैं । छान्दोग्य उपनिषद् में अन्न को ही प्राण कहा है । आहार के साथ केवल शरीर का ही सम्बन्ध नहीं है, किन्तु आहार के साथ इन्द्रिय, मन और प्राणों का भी सम्बन्ध है ।

"अन्नमशितं त्रेधा विधीयते यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति । यो मध्यमस्तन्मांसं योऽणिष्ठः तन्मनः ॥" (छान्दोग्य उपनिषद्)

अर्थात् भक्षण किया हुआ अन्न तीन भागोंमें विभक्त होता है । सब से स्थूल भाग मल (विष्ठा), मध्यम भाग मांस और सूक्ष्म भाग मनके रूपमें परिणत होता है ।

आहार की अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था ।

जैसा आहार होता है उसी प्रकार का मन बनता है । मांसाहारी प्राणियों के देहमें और तृणाहारी जीवों के देह में जैसी विभिन्नता देखी जाती है, वैसी ही विभिन्नता उनके इन्द्रिय और मनमें भी पायी जाती है ।

"आपः पीता त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः ।" (छान्दोग्य)

पिये हुए जल का स्थूलभाग मूत्र, मध्यम भाग रक्त और सब से सूक्ष्मभाग प्राण रूपमें परिणत होता है ।

अनुभवात्मक मन और आध्यात्मिक वायु ही प्राण है । यह भी उपनिषद् का मत है । इससे यह जाना जाता है कि मनके उपादान में अन्न-और प्राण के उपादान में जल विद्यमान है । अनुभवात्मक मन और आध्यात्मिक वायु रूपी प्राण जब भौतिक हैं तब

अवश्य ही यह अन्न, जलादि के द्वारा निर्मित होते हैं। मन और प्राणके बीच में जो कुछ अभौतिक पदार्थ है वह चैतन्य का अंश है।

"तेजोऽशितं त्रेधा विधायते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति, यो मध्यमः सा मज्जा योऽणिष्टः सा वाक्।" (छान्दोग्य)

अर्थात् तेज भुक्त होकर तीन भागों में विभक्त होता है। स्थूल भाग अस्थि के रूपमें, मध्यम भाग मज्जाके रूपमें और सबसे सूक्ष्मभाग वाणीके रूपमें परिणत होता है। इसप्रकार अन्नमय मन, जलमय प्राण और तेजोमय वाक् है। मांस, अस्थि, मज्जा, रक्त ये सब आहार द्वारा ही प्रस्तुत होते हैं। आहार के द्वारा ही इन सब की रक्षा होती है और आहारके अभावसे इनका प्रत्यक्षमें नाशदेखा जाता है। अन्नका सूक्ष्म परिणाम मन, जल का सूक्ष्म परिणाम प्राण और तेज का सूक्ष्मपरिणाम वाक् है। ये सब विषय हम युक्ति पूर्वक चाहे न समझा सकें, किन्तु आहारके साथ मन और प्राण का जो साक्षात् रूपसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, वह सहजमें ही हृदयङ्गम होसकता है। अन्न, जल (आहार) से प्राणों की रक्षा होती है और मानसिक शक्ति की वृद्धि होती है। गर्भस्थ भ्रूण माता के सेवन किये हुए अन्न जलादि से क्रम से बढ़कर अन्तमें मनुष्याकार धारण करता है। इन्द्रिय क्रमसे प्रस्फुटित होतीहैं। मन और प्राणों का धीरे धीरे विकाश होता है। यहाँ तक कि एक दिनके भ्रूण में भी विकाश होता है। यद्यपि इस अवस्थामें मन, प्राण सूक्ष्मरूप में होते हैं और इन्द्रियाँ भी सूक्ष्म रूपमें होती हैं, किन्तु यह निश्चय है कि आहार द्वारा ही उनका विकाश होता है। पीछे उनका आकार बढ़ जाने पर वे अपने २ कार्य्य करने में समर्थ होती हैं। आहार न करने पर उनका होना न होने की बराबर है। देह भी पहले सूक्ष्म अवस्थामें होता है। पीछे आहार के द्वारा पुष्ट होता है। अतएव आहार के साथ मन, प्राण का घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस में कुछ भी सन्देह नहीं।

कईदिन तक निराहार रहने वाला अत्यन्त मेधावी छात्र भी अपने पाठ को स्मरण नहीं करसकता और अत्यन्त सरल विषय को भी उत्तम प्रकार से नहीं समझ सकता।

तुम जिस प्रकार अपने देह और इन्द्रियों का गठन करना चाहते हो, अपने मन और प्राण को जिस रूपमें देखना चाहते हो, उसी प्रकार का आहार करो। यहाँ तक कि जिसको जिसप्रकार की सन्तान इच्छित हो, उसको उसी प्रकार के आहार विहारादि करने चाहियें। वृहदारण्यक में-जिसको जिसप्रकार के पुत्रकी इच्छा हो उस को उसी के अनुसार चरु प्रस्तुत करके खाने को देने की व्यवस्था देखी जाती है।

"य इच्छेत्पुत्रो मे पिङ्गलो जायेत स द्वौ वेदौ अनुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति क्षीरौदनकौं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तीमश्नीयातानसीश्वरौ जनयित वै। अथवा य इच्छेत्पुत्रो मे श्यामो लोहिताक्षो जायेत स त्रीन् वेदान् अनुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति ओदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयित वै॥"

अथ य इच्छेद्दुहिता मे पण्डिता जायेत सा सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयित वै।" इत्यादि (वृहदारण्यक)

पुत्रके समय वेदज्ञ हो ऐसी इच्छा होती है, किन्तु पुत्री के समय वेदज्ञा हो ऐसी आकाङ्क्षा नहीं देखीजाती। पर विदुषी हो, इस प्रकार प्रार्थना की जाती है। जिस वृहदारण्यक में गार्गी,मैत्रेयी आदि ब्रह्मवादिनी स्त्रियों के ब्रह्मज्ञान का उल्लेख है, उसमें भी साधारण स्त्रियों के लिए वेदज्ञा हो, इस प्रकार की प्रार्थना नहीं है।

"आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः"

आहार की शुद्धि से ही मन की शुद्धि होती है। आहार के फलसे ही सत्त्वगुण की वृद्धि, एवं रजोगुण और तमोगुण का क्षय होता है।

मन और प्राणके साथ आहार का घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण आहार द्वारा चित्त की शुद्धि होती है। प्राणों की शक्ति बढ़ती है-और आहार के दोषसे मनमें मलिनता एवं प्राणों में दुर्बलता उत्पन्न होती है। प्रकृति सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों वाली है। मनुष्य की प्रकृति भी सत्त्व, रज और तम इन भेदों से त्रिगुणात्मिका है। वात, पित्त और कफ इन दोषों में भी उक्त गुणोंका प्रभाव देखा जाता है। कोई आहार वायु की वृद्धि करता है, कोई पित्त की

वृद्धि करता है और कोई आहार कफ की वृद्धि करता है। पर शरीर के साथ खान-पान का जितना सामीप्य सम्बन्ध है, मन, प्राण के साथ उतना नहीं है।

प्रकृति और अवस्थाके भेदसे सब प्राणियों के लिये एक प्रकार का आहार उपयोगी नहीं हो सकता। और सब लोग एक ही प्रकार का आहार पसन्द भी नहीं करते।

अपने २ स्वभाव और रुचि के अनुसार उत्तम आहार करने से शरीर की पुष्टि और वृद्धि होती है। इन्द्रियाँ सामर्थ्यवान्, मन स्फूर्तियुक्त और प्राण शक्तिशाली होतेहैं। आहार के गुणसे आयुकी वृद्धि होती हैं। आयुकी वृद्धि होनेसे दीर्घजीवन की प्राप्ति होती है। आहार के दोष से मनुष्य नानाप्रकार के रोगों की यन्त्रणा को भोगता है। अनेक प्रकार के अत्याचार अनियम, कुकर्म और पाप के फल से आयु शेष होने पर भी, मनुष्य शीघ्र ही मृत्यु के मुख में पतित होजाता हैं। जैसे दीपकमें यथेष्ट तेलके होनेपरभी दीपक की बत्ती हवा के झोके से बुझजाती है।

वर्त्याधारस्नेहयोगाद्‌ यथा दीपस्य संस्थितिः। "
विक्रियापि च दृष्टैवमकाले प्राणसंशयः॥"

कुपथ्य आहारादि कारणों से परमायु होनेपर भी मनुष्य मृत्यु को आलिङ्गन करता है यह शास्त्रकारों का मत है। प्रारब्ध का भोग अनिवार्य्य है। किन्तु पूर्वजन्म के सञ्चित कुकर्मों को मनुष्य तपके द्वारा क्षय करसकता है और अत्याचारों के द्वारा वृद्धि करसकता है। सञ्चितकर्मों का फल मनुष्य के हाथ में है। आहारादि की शुद्धि और उसके नियमादि को पालन करनेसे-रोगों के आक्रमणसे बचना होसकता है, और परमायु की भी वृद्धि की जासकती है। इस जन्ममें मनुष्य जो नवीन कर्म करता है, उसीका नाम क्रियमाण कर्म है।उस क्रियमाण कर्मके ऊपर मनुष्यकी स्वाधीनता निर्भर है। क्रियमाण कर्मके द्वारा मनुष्य इस जन्म में पुण्य, पाप उत्पन्न करताहुआ सुख-दुःख प्राप्तकरसकता है। किन्तु इससे इस जन्मकी साधना और अत्याचारों के द्वारा आयु की वृद्धि और क्षय होना संभव है। आहार के नियमों को पालन करने से शुभफल और उन नियमों को नहीं पालन करने से अशुभफल अवश्य प्राप्त होगा? भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गीता में कहतेहैं:—

"आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धना।
रस्या स्निग्धा स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रिया॥"

अर्थात्--जो आयु और सत्त्वगुण की वृद्धि करता है, बल,आरोग्यता, सुख और प्रीति को बढ़ाता है, वह सुरस, स्निग्ध, स्थिर और हृदयको प्रिय सात्त्विक आहार है। सत्त्वगुणकी प्रधानता वाले मनुष्यों को सात्त्विक आहार ही प्रिय होता है। जीवरक्षा का एक मात्र उपाय-आयु और सत्त्वगुण की वृद्धि करने वाला होने के कारण उसके साथ धर्म का सम्बन्ध विद्यमान है।

आहार केवल शरीररक्षा के लिए है, धर्माधर्म का इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है,इस बातको हम मानने के लिए तैयार नहीं हैं। शरीररक्षा का जैसा उद्देश है, वैसा ही सत्त्वशुद्धि, मनः शुद्धि और इन्द्रियोंकी शक्तिवृद्धि करने का भी उद्देश है। शरीररक्षा को जितनी आवश्यकता है, उतनी ही इन्द्रिय, मन और प्राणों की उन्नति की भी आवश्यकता है। शरीर के स्थूल होने पर वह यद्यपि चिकना और कोमल होगा, किन्तु उससे इन्द्रिय, मन और प्राणों की कुछ भी उन्नति नहीं होगी। जिस आहारसे इन्द्रिय, मन और प्राणोंकी अवनति होती है, वह आहार सात्त्विक नहीं कहा जासकता। इस प्रकार का आहार सभी प्राणियों के लिये पापरूप है। जो जीवन रक्षा की हानि करता है, वह भोजन अखाद्य है। उसी प्रकार वह इन्द्रिय, मन और प्राणों की हानि करनेवाला है। यहाँ तक कि वह आध्यात्मिक उन्नति का भी शत्रु है। ऐसा आहार अभक्ष्य है--और इस प्रकार के आहार का सेवन प्रत्येक मनुष्यके लिये अधर्म है। साधारणरूप से जो आहारमनुष्यों के लिए अखाद्य है, वह पशु-पक्षियों के लिए भी अखाद्य है। किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से जो आहार अभक्ष्य समझा जाता है,वह साधारणदृष्टि से अभक्ष्य नहीं समझा जाता। आहार जिसप्रकार मनुष्यों की प्रकृति को परिवर्त्तित करता है, उसी प्रकार उस परिवर्त्तित प्रकृति का उसी रूप में सञ्चालन करता है।

हमारे शास्त्रोंमें लिखा है कि जो आहार सत्त्वगुण का विरोधी है; काम, क्रोधादि को उत्पन्न करता है और चित्त की कोमल वृत्तियों का संहार करता है, वह पापरूप है। आहार के साथ

मनुष्यकी प्रकृति, मन, प्राण और इन्द्रियों का जो सम्बन्ध है, उस को जगत्के प्रायः सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं।

आहार के सम्बन्ध में कितने ही वैज्ञानिकों के भिन्न २ मत देखे जाते हैं। कई पाश्चात्य पण्डित आहार को केवल अभ्यास मात्र कहगये हैं। उनका कहना भी बिलकुल निस्सार नहीं है; कितने ही अंशोंमें सत्य है। किन्तु अभ्यास के अतिरिक्त आहारमें एक विशेषत्व है, जो अभ्यास की अपेक्षा किसी प्रकार कम नहीं है। वास्तव में अभ्यास की शक्ति असीम है। किन्तु आहार की एक सीमा है। अभ्यास का प्रभाव प्राणियोंके ऊपर थोड़ा बहुत अधिकार किये हुए है। किन्तु ऐसा होने पर देश, काल, प्रकृति और पारिपार्श्विक अवस्था को भी उड़ादेना ठीक नहीं। मनुष्य का आत्मा जिस जातिके सँस्कार से युक्त मनको लेकर और जिस विषयको ग्रहण करने वाली इन्द्रियों को लेकर जन्म लता है, उससे आत्मा को सम्पूर्ण विपरीत मार्गों में पृथक् पृथक् खींचकर ले जाने की शक्ति अभ्यास में नहीं है। उक्त संस्कार के प्रभावसे एक दम बचाना भी अभ्यास के अधिकारमें नहीं है। एक ही माता-पिता की सन्तान एक ही प्रकार के आहार को सेवन कर, एक ही प्रकार की शिक्षा पाकर और एक ही प्रकारसे लालित पालित होने पर भी भिन्न भिन्न रुचि और पृथक् पृथक् प्रवृत्ति वाली होती हैं।

कर्मकी विचित्रता नाना प्रकारके इन्द्रिय और मनः सम्पन्न एवं विभिन्न सँस्कार वाले मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकारके आहारों में अनुरागी होसकते हैं। ऐसा होने पर भी आहारकी एक आत्मीय शक्ति है इन्द्रिय और मनको उत्कृष्ट बनानेकी क्षमताहै प्रकृति और सँस्कार के विरुद्ध उसकी एक कार्य्यकारिता प्रतीत होती है। दैवके विरुद्ध पुरुषार्थ का, प्रकृति के विरुद्ध साधना का और रोग के विरुद्ध चिकित्सा का जिस प्रकार स्वातन्त्र्य है, उसी प्रकार प्रकृति और संस्कार के विरुद्ध आहार की भी एक स्वतन्त्र विशिष्टता देखी जाती है। आयुर्वेद में तो यह दृष्टिगोचर होता है, किन्तु अदृष्ट प्रतिपादक प्रधान २ दर्शनशास्त्रों में भी उसको स्पष्टरूप से सिद्ध किया गया है। हमारे सूत्रकारोंने यह बिल्कुल सत्य कहा है कि:—

"आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिरिति॥" श्रीशर्मा।

नाड़ी परीक्षा।

नाड़ियों के संख्याभेद व कार्यभेद का निर्णय।

(गत नवम्बर १९२२ की संख्या से आगे)

मनुष्य के सम्पूर्ण शरीरमें स्थूल व सूक्ष्म साढ़ेतीनकरोड़ नाड़ियाँ हैं, और उनका मूल नाभिकन्द है। वहीं से निकलकर ये नाड़ियाँ सम्पूर्ण शरीर में नीचे ऊँचे तथा तिर्य्यग्भाव में फैलकर शरीर के प्रत्येक अवयवको उसप्रकार सन्तर्पित करती हैं,जैसे छोटी२ नदियाँ समुद्र को और क्यारियाँ क्षेत्र को सन्तर्पित करती हैं। यहाँ साढे तीन करोड़ संख्या सिरा, स्नायु,धमनी, स्रोत और कण्डराओं की सम्मिलित संख्या को लेकर के ही लिखीगई हैं-नकि केवल विशुद्ध नाड़ी के लक्षण युक्त नाड़ी की क्योंकि ऐसा एक भी प्रमाण नहीं है, जहाँ केवल नाड़ी की ही इतनी संख्या लिखी हो। शिवसंहिता में तो-"सार्धलक्षत्रयं नाड्यः सन्ति देहान्तरे नृणाम्"। इस पद्य से नाड़ियों की संख्या साढे तीन लाख बतलाई गई है-, किन्तु यह ठीक नहीं। क्योंकि साढे तीन लाख बतलाने वाला इसके अतिरिक्त दूसरा कोई प्रमाण नहीं मिलता—और पूर्वोक्त संख्या को पुष्ट करने वाले अनेक प्रमाण अब भी मौजूद हैं। अतएव समझना चाहिये—कि यहाँ कुछ प्रधान २ नाड़ियों की ही संख्या लिखी गई है, चाहे-"लक्ष" शब्द का अर्थ करोड़ मान लियागया है। अन्यथा-"सार्धं त्रिकोट्यो नाड्यो हि"-इस पद्य से होने वाले विरोध का समन्वय होना कठिन ही नहीं, असम्भव है। महर्षि पराशर "तिस्रः कोट्यर्धकोटी च यानि लोमानि मानवे"-इस पद्यसे समस्त शरीरस्थ लोम की संख्या साढे तीन करोड़ बतलाते हैं। और आचार्य्य सुश्रुत "तासां मुखानि लोमकूपप्रतिबद्धानि"-इस प्रमाण से प्रत्येक रोमकूप में नाड़ियाँ लगी हैं,यह सिद्ध करते हैं इनदोनों मतों की एकता को लेकर ही हमारे नाड़ीविज्ञान के रचयिता आचार्य्य कणादने "सार्धं त्रिकोट्यो नाड्यो हि"-लिखकर सिद्धकिया है कि मनुष्य के शरीर में साढे तीन करोड़ ही नाड़ियाँ हैं, कम नहीं।

पहले कहा जाचुका है--कि स्थूल व सूक्ष्म भेद से साधारणतः नाड़ियां दो प्रकार की हैं। उन दोनों में स्थूल नाड़ियाँ बहत्तर ७२

हज़ार हैं, और वे ही श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का ज्ञान कराने वाली हैं, तथा सभी नाड़ियों में प्रधान हैं। उनमें सूक्ष्म छिद्रवाली सात सौ धमनियाँ हैं, जो अपने छिद्रों द्वारा अन्न के रसको उन २ प्रदेशों में पहुँचाकर समुद्र को नदियोंकी भाँति सन्तर्पित करती हैं। इन नाड़ियों द्वारा मनुष्य का शरीर उस तरह से आवृत है, जैसे-सूक्ष्मचर्म्ममय जाल से कोई वस्तु आवृत हो। इन सात सौ नाड़ियों में विशेषतः वही नाड़ी परीक्षणीय है, जो पुरुष के दक्षिण हाथ से लेकर दक्षिण पैर तक लगी है, और स्त्रियों के वाम हाथ से लेकर वाम चरण तक लगी है। क्योंकि लिखा है-"वामभागे स्त्रिया योज्या नाडी पुंसस्तु दक्षिणे"। यहाँ दक्षिण हस्त और वाम हस्त लिखने का कारण यह है कि मनुष्य के शरीर में एक कूर्मचक्र रहता है, उसी के अनुसार यह भेद होता है। मुनिवर दत्तात्रेय कहते हैं--

> "स्त्रीणामूर्ध्वमुखः कूर्म्मः पुंसां पुनरधोमुखः।
> अतः कूर्म्मव्यतिक्रान्तात्सर्व्वत्रैव व्यतिक्रमः॥
> लक्ष्यते दक्षिणे पुंसां या च नाडी विचक्षणैः।
> कूर्म्मभेदेन वामानां वामे सैवावलोक्यते॥"

अर्थात्—स्त्रियों के शरीर में कूर्म की स्थिति ऊर्द्धमुख, और पुरुषों के शरीरमें अधोमुख रहती है। इसी कूर्म्म के स्थितिभेद से स्त्री और पुरुषों की नाड़ियों में भेद पायाजाता है। पुरुषों के दहिने हाथ में जो नाड़ी देखी जाती है, वही स्त्रियों के वाम हाथ में देखी जातीहै। यदि नपुंसक हो तो आकार प्रकार के अनुकूल परीक्षाकर लेनी चाहिये। अर्थात्-यदि स्त्री नपुंसक हो तो स्त्री की भाँति और पुरुष नपुंसक हो तो पुरुष की भाँति। कोई कोई कहते हैं कि सभी नपुंसकों के वामहाथ की ही नाड़ी देखनी चाहिये। पहले लिखा गया है कि पुरुषों के दक्षिण हाथ से लेकर दक्षिण पैर तक, और स्त्रियोंके वामहाथसे लेकर वामपैर तक की नाड़ी की परीक्षा करनी चाहिए। अब प्रश्न यह होता है कि हाथ में और पैरमें किन किन स्थानों पर परीक्षा करनी चाहिए। कहते हैं-हाथकी नाड़ी की परीक्षा तो पूर्ववत् करनी चाहिए, किन्तु पैर में-पुरुषों के दहिने

पैर के पीछे बायें पँजरे की नाड़ी, तथा गुल्फप्रदेश की ऊपर की नाड़ी, और स्त्रियों के बायें पैर के पीछे दहिने पँजरे की नाड़ी तथा गुल्फप्रदेश के ऊपर को नाड़ी परीक्षणीय है। इसके अतिरिक्त और और स्थानों में भी नाड़ीपरीक्षा कीजाती है। जैसे-कण्ठ, दोनों नासापुट तथा उसके समीप में विद्यमान नाड़ियों में, नाड़ियों की गति स्पष्ट मालूम पड़ती है। अतएव उन स्थानों में जीव के सञ्चार का परिज्ञान यत्नपूर्वक करना चाहिए। कण्ठ की नाड़ी-आगन्तुक ज्वर, प्यास, परिश्रम, मैथुनकर्म, भय, शोक और कोपको सूचित करती है। नासिका की नाड़ी-जीवन, मरण, कामाभिलाष, कण्ठ के रोग, शिरके दर्द और कान तथा मुखमें उत्पन्न होनेवाले रोगों को सूचित करती है। एवं कान, जिह्वा और लिङ्ग की नाड़ियाँ भी तत्तत्स्थानों के रोगों का बोधित करती हैं। सच तो यह है कि जो जो मांसहीन चर्म्ममय स्थान हैं, वहीं नाड़ियों की गति स्पष्ट मालूम पड़ती है। पाश्चात्य विद्वान् भी इसी मत की पुष्टि करते हैं। नाड़ी ऐसी वस्तु है जिसके द्वारा वात, पित्त, कफ, द्वन्द्वदोष, सन्निपातदोष, रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र की समानता, क्षीणता, वृद्धि तथा इन दोष-दूष्यों के द्वारा उत्पन्न रोगों की साध्यता और असाध्यता का अधिक क्या शरीर के समस्त भावों का परिज्ञान आसानी से वैद्यों को होजाता है। किन्तु इसकी परीक्षा केवल शास्त्रसाध्य नहीं है, वरन् अभ्याससाध्य है। जैसे केवल शास्त्रीय उपदेशके द्वारा रत्न की परीक्षा नहीं कीजासकती, वैसे ही नाड़ी की भी परीक्षा केवल शास्त्रीय ज्ञान से नहीं कीजासकती। अतएव नाड़ी का विज्ञान पुनः प्राप्त करनेके लिये हमलोगों को पूर्णतया दत्तचित्त होजाना चाहिये। सुनाजाता है कि हमारे पूर्वज वैद्य इस विद्यामें योग्यता की इस सीमा तक पहुँचे हुये थे कि वे नाड़ी को देखकर केवल रोग ही नहीं, वरन् प्राणियों के खान, पान, आचार, विचार प्रभृति सभी भावों को जानलिया करते थे। और हमलोग इस ज्ञान में आज इतने निर्बल और ज्ञानशून्य होगये हैं कि इन बातों के सुनने पर भी हमें विश्वास तक नहीं होता। अस्तु-अब "हमें गतं न शोचामि"-के अनुसार गतबात की चिन्ता को छोड़कर इस समय इस विज्ञान की प्राप्ति के लिये पुनः सन्नद्ध हो, जाना चाहिये।

तीन अङ्गुलियों से त्रिदोषविज्ञान की विधि।

अँगूठे की जड़ में जो नाड़ी है, वह प्राणियों के जीवन की साक्षिणी (गवाह) है। इसी की चाल के द्वारा प्राणिमात्र के दुःख, सुख की परीक्षा कीजाती है। यद्यपि मैं ऊपर लिख आयाहूँ कि नाड़ी, सिरा व धमनी में बहुत भेद है तथापि प्राचीन तन्त्रकारों के तन्त्रों में नाड़ी के ये पर्य्यायवाचक शब्द मिलते हैं। स्नायु, वसा, हिंस्रा, धमनी, धामनी, धावनी, धावन्ती, धरा और सिरा।

नाड़ियों के देखने केसम्बन्ध में जब विचार किया जाता है तब ऐसे २ विचार मस्तिष्क को आघेरते हैं; और इस तरह की भाँति २ की दलीलें व प्रमाण सूझने लगते हैं, जिनसे फिर भी अन्ततः कोई निश्चित फल नहीं मिलता। कोई कहते हैं—

"आदौ च वहते वातो मध्ये पित्तं तथैव च।
अन्ते च वहते श्लेष्मा नाड़िकात्रयलक्षणम्॥"

नाड़ी के स्पर्श क्षण में अर्थात्-प्रथम निपीडन के समय वायु का, द्वितीय निपीडन के क्षण में पित्त का, और तृतीय निपीडनक्षणमें कफ का ज्ञान होता है। क्योंकि वायु गतिशाली, चञ्चल, वक्रचलने वाला, और सभी दोषों में प्रधान है, अतएव उसका ज्ञान अङ्गुलिनिपीडन समकाल में ही अर्थात्-प्रथम निपीडनक्षण में होजाया करता है। पित्त और कफ पङ्गु हैं-बिना वायु की सहायता से चल नहीं सकते। अतएव वायु के पश्चात्-द्वितीय तृतीय निपीडनक्षण में क्रमशः पित्त और कफ का ज्ञान उसी नाड़ी में होता है, जिसमें पहले वातज्ञान हुआ था। इन दोनों दोषों में कफ की अपेक्षा पित्तमें प्रधानता, चञ्चलता, एवं उष्णगुण की अधिकता होने के कारण द्वितीय निपीडनक्षणमें पित्त का ज्ञान, और मन्द, स्थूल, शीतल तथा चिरकार्यकारी होने के कारण, उसी नाड़ी में अङ्गुलिनिपीडन के तृतीय क्षण में कफ का ज्ञान होता है, अर्थात्—एकही नाड़ी में क्षणभेद से तीनों दोषों का विज्ञान होजाया करता है। मानो-तत्तत्क्षण में तत्तद्दोषों की प्राकृतावस्था या वैकृतावस्था का ज्ञान हो जाता है। और इसी प्राकृत वैकृत ज्ञानसे नाड़ी देखने वाले उन २ वातादिजन्य रोगों का ज्ञान करके रोगों की चिकित्सा करने में सफल मनोरथ होते हैं।

उपर्युक्त पद्य का अर्थ करने वाले लोग यह कहते हैं कि "आद्यौ च वहते वात." का अर्थ-तर्जनी अङ्गुली के सन्निवेशन स्थान में, वा "अन्ते प्रभञ्जनो ज्ञेयः" इस प्रमाणसे अनामिका सन्निवेशन स्थान में वायु का, मध्यमा के सन्निवेशन स्थान में पित्त का और अनामिका के सन्निवेशन स्थान में कफ का ज्ञान होता है। ऐसा जो कहते हैं, वे भूल करते हैं। क्योंकि दोषभेद से नाड़ी के स्थानभेद का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। वरन् नाड़ी के सर्वदोषवाहिनी होने के प्रमाण तो अनेक मिलते हैं। जैसे—

न हि वातं सिरा काश्चिन्न पित्तं केवलं तथा।
श्लेष्माणं वा वहन्त्येता अतः सर्व्ववहा स्मृताः॥
प्रदुष्टानां हि दोषाणामुच्छ्रितानां प्रधावताम्।
ध्रुवमुन्मार्गगमनमतः सर्ववहाः स्मृताः॥

महर्षि सुश्रुत कहते हैं कि कोई भी नाड़ी केवल वात, वा पित्त अथवा कफ का अभिवहन नहीं करती, अत उन्हें सर्व्वदोषवाहिनी समझना चाहिये। जब दोष अपनी स्थिति को छोड़ कर उच्छृङ्खल की भाँति इतस्ततः गमन करने लगते हैं, तब वे अवश्य ही सभी दोषों के अभिवहन करने से सर्वदोषवाहिनी कही जाती हैं। महर्षि सुश्रुत के इस प्रमाण से यह अवश्य सिद्ध होता है कि एक ही नाड़ी समयभेद से भिन्न २ दोषों का अभिवहन करने के कारण सर्वदोषवाहिनी तथा सर्वदोषबोधनी कही जाती है। वैद्यवर भावमिश्र जी ने जो--

वाताऽधिकं भवेन्नाडी प्रव्यक्ता तर्ज्जनीतले।
पित्ते व्यक्ता मध्यमायां तृतीयाङ्गुलिगा कफे॥

इस श्लोक के द्वारा दोषभेद से नाड़ी के स्थानभेद का उल्लेख किया है, वह नाड़ीविज्ञान की प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करने वाले बाल वैद्यों को लक्ष्य करके लिखा है।

कोई तर्ज्जनी, मध्यमा और अनामिका के द्वारा नाड़ीनिपीडन के समय तर्ज्जनी में प्रथमाघात, मध्यमा में मध्यमाघात और अनामिका में तृतीयाघात मानकर इन्हीं तीन आघातों में क्रमशः वात, पित्त और कफ का ज्ञान बतलाते हैं। कोई अनामिका से शुरू कर तर्जनी पर्य्यन्त प्रथम, मध्यम और तृतीय आघात बतलाते हुये कहते हैं कि अनामिका में वात, मध्यमा में पित्त, और तर्ज्जनी में

कफ का ज्ञान होता है। परन्तु ये दोनों ही मत ठीक नहीं; क्योंकि एक भी ऐसा प्रबल प्रमाण नहीं मिलता, जिसमें इन दोनों मतों की पुष्टि हो। और अनुभव से भी पृथक् २ अङ्गुलियों के नीचे भिन्न २ नाड़ियों के स्पंदन का ज्ञान नहीं होता। अतएव प्रथम अर्थ ही सर्व्वसम्मत समझना चाहिये।

[शेष आगे]

निर्बल दृष्टि।

शार्ट-साइड वाले संसार को कैसे देखते हैं।
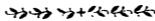
नेत्रों की रचना बड़ी विलक्षण है, और उसमें भी प्रकाश ग्रहण करने वाले बिंदु की। नेत्रों ही के द्वारा हम देखते हैं, परन्तु वह विशेष स्थान, जिसके संयोग से प्रकाश की किरणों के साथ दृष्टव्य पदार्थ का मेल होता है, पारिभाषिक भाषामें 'दृष्टि' या 'तिल' और 'रेटीना' (Retina)कहलाताहै। इस 'दृष्टि' और आँख के बाहरी भाग के मध्य में चार पटल और हैं; जिन में छनकर पदार्थों का प्रतिबिम्ब रेटीना तक पहुँचता है। अस्तु, यहाँ इस छोटे से लेख में नेत्रों की सूक्ष्म रचना नहीं बताई जासकती। केवल रेटीना के विषय में ही कुछ बता देने से इस समय हमारा काम चल जायगा।

साधारणतः दो प्रकार की दृष्टिवाले नेत्र देखे जाते हैं-एक नतोदर,दूसरे उन्नतोदर। दृष्टि या तिल एक प्रकार का काँच-जैसा चमकदार स्थान है; जहाँ पदार्थों का प्रतिबिम्ब पड़ता है। यह जब ठीक स्थान पर रहता है, तब प्रकाश उक्त छः पटलों से होकर सरलता से वहाँ केन्द्रीभूत होजाताहै। परन्तु यदि यही तिल-बिंदु इधर-उधर हटजाता है, तो उन पटलों में होकर जाने वाली किरणें उचित-रूप से केन्द्रीभूत नहीं होतीं, और देखने वाले को ठीक-ठीक दिखाई नहीं देता। किन्तु अपने दाएं-बाएं या ऊँचे-नीचे की ओर जिधर को वह तिल हटजाता है, दिखाई देता है। सुश्रुत के उत्तरतंत्र, अध्याय सात में इसे 'दृष्टिमध्य गत दोष' कहा है। पाठक यदि विशेष जानना चाहें, तो उक्त ग्रंथमें देखलें। अस्तु।

जिस तिल की बनावट नतोदर होती है, वह मध्य में कुछ गहरा होता जाता है; जिस प्रकार प्याला या सीपी । इस आकार के तिल पर प्रकाशकिरणें केन्द्रमें एक स्थान पर मिलजाती हैं, और दृष्टि दूर तक पहुँचती है। ऐसी दृष्टिवाले निकट की वस्तु को यत्न करने पर भी कठिनता से देख सकते हैं, विशेषकर सूक्ष्म चिन्ह अक्षर आदि । उन्नतोदर प्रकार की रचना इसके विपरीत होती है । उसका तिल, बादाम का तरह, बीच में उठा हुआ होता है । इसप्रकार की रचना का फल यह होता है कि प्रकाश-रश्मियाँ एक स्थान पर केन्द्रित नहीं होतीं । जिससे दृष्टि भी फैलजाती है । यही कारण है कि ऐसी रचना के नेत्रों वाले मनुष्य दूर तक स्पष्ट नहीं देख सकते। मगर निकट के पदार्थों को वे नतोदर नेत्र वालों की अपेक्षा अधिक सुगमता से देख सकते हैं। वे कम प्रकाश में भी अत्यन्त सूक्ष्म अक्षर और चिह्न निकट होने पर, देख लेते हैं। ऐसे लोग ही शार्ट-साइड वाले (Short Sighted) कहे जाते हैं। इन्ही को अंग्रेजी भाषा में Myopia कहते हैं। इस लेख में यह दिखाने का प्रयत्न किया जायगा कि शार्ट-साइड। वालों को संसार कैसा देख पड़ता है।

लोगों का साधारण विचार यह है कि माइओपिया वालों की दृष्टि में केवल यही दोष होता है कि वे दूर के पदार्थों को स्पष्ट और स्वच्छ नहीं देखसकते, परंतु वास्तव में यह बात नहीं है। माइओपिया वाले साधारण दृष्टि वालों की अपेक्षा कम तो देखते ही हैं, किन्तु उन्हें दृश्य भी भिन्न प्रकार के देख पड़ते हैं। जङ्गल में हरी घास के खेत साधारण दृष्टिवालों को आकर्षक और सुन्दर देख पड़ते हैं; किंतु माइओपिया वालों को वे खेत हरे-हरे बिखरे रंगकी ऐसी रेखायें जान पड़ती हैं, जैसे कूंची से किसी बच्चेने हरा रंग फेर दिया हो। हरियाली की प्राकृतिक स्निग्धता का उन्हें कुछभी अनुभव नहीं होता। अच्छी दृष्टिवाला घास की प्रत्येक पत्ती को, वृक्ष की डाली को, और डाली की हरएक पत्ती को स्पष्ट और अलग अलग देखता है, तथा प्रत्येक डाली, पत्ती और शाखा के बीच का अन्तर भी उसे स्पष्ट सूझता है; परंतु शार्ट-साइड वाले के लिये ये सब पत्तियाँ और घास एक में मिली लिपी-पुती-सी दिखाई देती हैं। इसीप्रकार वह सभी दूरस्थ पदार्थों को परस्पर

मिला हुआ देखता है। उसे उन पदार्थों के मध्य का अन्तर और उन पदार्थों की वैयुक्तिक रचना दिखाई नहीं देती। बड़े-बड़े मकान भी उस की दृष्टि में धुंधले और बीहड़ ढेर से दिखाई देते हैं। संक्षेप में यह कहसकते हैं कि उस को किसी भी दूर के पदार्थ का वास्तविक रूप नहीं दिखाई देता। वह किसी वस्तु को,दूर होने की दशा में, उस के विशेष लक्षणों से नहीं पहचान सकता।

दूर के पदार्थों को वह प्रायः अपने निकट देखता है और बड़ा भी; परंतु फिर भी स्पष्ट नहीं देखता। यह एक विलक्षण बातहै। परन्तु स्पष्ट न देखसकने का कारण यह है कि उसे प्रत्येक वस्तु फटी फटी और रूखी दिखाई देती है। वह आकाश को साधारण दृष्टिवालों की अपेक्षा अपने निकटतर अनुभव करता है, परन्तु फिर भी आकाश में स्थित बादल उसे स्पष्ट नहीं जान पड़ते। वह उन्हें एक प्रकार का धुंआसा अनुभव करता है। साधारणतः हम लोग तारों को इस प्रकार देखते हैं, मानों किसी नीली या काली छतमें प्रकाशमान बिन्दु जड़े हैं। परंतु शार्ट-साइड वालों को वे ही ऐसे ज्ञात होते हैं, जैसे चमकदार, गोल, सफ़ेद(चाँदीकी सी बनी) तश्तरियाँ रक्खी हों। कोई भी तारा स्पष्ट नहीं दिखाई देता। प्रायः खिले हुए ऐसे सफ़ेद फूल के समान जान पड़ते हैं; जिसकी पँखड़ियां उसके केन्द्र से चारों ओर को निकल कर एक वृत्त बनाती हों। शार्ट-साइड वाला चन्द्रमा को देखकर उसका आकार नहीं बतासकता, और न वह यही कहसकता है कि उसमें कितनी कलायें हैं। कारण, चन्द्रमा भी उसे अपने वास्तविक रूप से बड़ा और फैला हुआ, तथा प्रत्येक दशा में प्रायः गोल ही दिखाई देता है। कहने का अभिप्राय यह है कि वह चन्द्रमा को देखकर भी न तो उसका आकार और न उसका बिम्ब ही स्पष्ट देखसकता है।

उसी मार्ग में चलते चलते ऐसा जान पड़ताहै कि जो मार्ग (या सीढ़ी आदि) दूर है, वह निकट आगया। यदि कभी किसी घुमावदार जीने पर चढ़ना पड़े, तो उसे अकसर धोखा होगा, क्योंकि उसे प्रत्येक सीढ़ी पर ऐसा जान पड़ता है कि वह निकट है। आप बाजार में जाइये, और रात्रि में देखिये, तो जान पड़ेगा कि सड़क के दोनों ओर लालटेनों की पंक्ति खड़ी है। प्रत्येक लालटेन स्पष्ट

दिखाई देगी, और उस का परस्पर अन्तर भी स्पष्ट ज्ञात पड़ेगा। लैंप की दीप-शिखा भी आप को देख पड़ेगी। परन्तु माइ ओपिया वाले के लिये वह सब कुछ वैसा न होगा। वह देखेगा कि कितने ही बड़े-बड़े चमकदार चक्कर या गोल वृत्त हैं, जो साधारणतः अग्नि-रश्मियों से बनगए हैं। वे रश्मियाँ किसी एक केन्द्र से निकलती हैं। वे गोल वृत्त एक दूसरे के ऊपर चढ़े हैं, उन सबने मिलकर बाज़ार या सड़क को घेर लिया है। वह उन्हीं वृत्तों के कारण, छोटे-छोटे पदार्थों को तो देखही नहीं सकेगा, बड़े पदार्थ भी उसे स्पष्ट नहीं प्रतीत होंगे। वह यह अनुमान करेगा कि इन प्रकाश-वृत्तों ने आगे से मार्ग को रोक दिया है। घोड़ागाड़ी के इधर उधर दो लैंप लगे हैं; वह दोनों लैंप ही इस शार्ट-साइड वाले की निगाह से बचा लेंगे। वह यह समझेगा कि दो परस्पर जुड़े हुए दीप्त चन्द्रों के अतिरिक्त और कुछ नहीं आ रहा है। अस्तु।

इसी प्रकार वह चैतन्य पदार्थों को भी कुछ का कुछ देखताहै। साधारण रीतिसे वह स्त्री-पुरुषों के मुखमण्डल, और किसी २ दशा में सिर भी नहीं देखता। वह उन्हें मानव-योनि से भिन्न योनिके प्राणियों के आकार का देखता है। घरके मनुष्यों से प्रायः उसका काम पड़ताहै, अतः वह उन्हें चाल-ढालसे तुरन्त पहचान जाता है, परन्तु घरके बाहर निकलने पर उसे बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ताहै। जो मनुष्य अभी शार्टसाइड वालेके पाससे होकर जाता है, वह आगे थोड़ी दूर जाने पर ही हवा में उड़जाता है। जैसे क़िस्से-कहानियों के भूत प्रेत आँखों से ओझल होजाते हैं। ज्यों ज्यों वह दूर हटता जाता है, त्यों त्यों उसकी विचित्रता देख पड़ती है। कुछ दूर तक उस मनुष्य का सफ़ा और धुंधला शरीर देख पड़ता है, फिर ऐसा ज्ञात होता है, मानों कोई लाठीही चलरही है, या उसे कोई धुंधली चीज़ चला रही है। और आगे बढ़कर यह बात भी नहीं रहती।

परन्तु जब वह चश्मा लगाकर इन्हीं पदार्थों को देखता है, तो उसे आश्चर्य होता है। वह यह समझने लगता है कि वास्तव में संसार को उसने अभी देखा है। उसे पदार्थों के वास्तविक आकार दिखाई देते हैं। वह अपने सम्बन्धियों के मुखों को देखकर चकित होता है, और चश्मे का आविष्कार करने वाले का उपकार मान कर उसे धन्यवाद देता है। (माधुरी)।

माता का कर्तव्य।

(गतसंख्या से आगे)
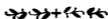
माता पिता बालक को बलवान् बनाने की इच्छा से अधिक और पौष्टिक भोजन खिलाते हैं और जब चाहे तब भोजन देदिया करते हैं। बालक भी बारम्बार उत्तम २ पदार्थ को सामने आते ही अधिक मात्रामें खालेताहै, और हमेशा गोद या पलनेमें रखने के कारण उसे खेल कूद सम्बन्धी परिश्रम कराया नहीं जाता, इसलिये वह सदैव खाने की इच्छा करता है। वह इच्छा स्वाभाविक नहीं होती, बल्कि बेकार पड़े रहने से होतीहै। वह अपनी इच्छा से जो भोजन करता है, उससे अजीर्ण नहीं होता। बालक स्वभाव से ही चंचल होते हैं, वे सदैव ज़रा ज़रासी बातपर मचल कर रोदिया करते हैं और हम लोग बालक के रोने पर उसे मिठाई देकर शान्त करने की चेष्टा करतेहैं; किन्तु यह नहीं समझते कि इससे उस के शरीरकी कितनी हानि होती है। बालकको प्रथम इस बात का अभ्यास कराना आवश्यक है कि वह भोजन के पहले अथवा अन्तमें कोई वस्तु न खावे। क्योंकि शरीर के अन्य अवयवों की समान आमाशय को भी समय समय पर विश्राम देना चाहिये। ऐसा करने से पचनक्रिया की वृद्धि होती है। आमाशय को विश्राम न देकर बालक को सर्वदा उसकी इच्छानुसार भोजन देने से अपच होकर शारीरिक स्वास्थ्य सर्वथा नष्ट होजाता है।

दूसरे वर्ष बालक के माता-पिता उसे शक्तिशाली बनाने के लिए पौष्टिक पदार्थ देने शुरू करते हैं। परन्तु ऐसे पदार्थों से बालकका शरीर पुष्ट न होकर उल्टी हानि होतीहै; क्योंकि जिसप्रकार तन्दुरुस्त बालक बिना अच्छे भोजन के दुर्बल हो जाता है, उसी प्रकार पौष्टिक भोजन मिलने से वही बालक बलवान् हो सकता है। किन्तु अजीर्ण अथवा अन्य शारीरिक कष्टके कारण जो बालक दुबला हो जाता है उसे हलका भोजन देने से ही उसका शरीर धीरे धीरे पुष्ट होता है। ऐसे बालक को जितना भारी पदार्थ खिलाया जावेगा उसके शारीरिक सुख का ह्रास भी उसी परिमाण से होगा।

परीक्षा द्वारा मालूम हुआ है कि बालक को माँस का भोजन खाने से जितनी हानि होती है, उतनी किसी दूसरे पदार्थ से नहीं होती। जिस समय बालक के सामने के चार दाँत और उनके जोड़ के दो दाँत निकल आते हैं उस समय बालक को सहजमें पचने योग्य कठिन पदार्थ खिलाने चाहिएँ। परन्तु माँस का भोजन देना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। इन बातों का विचार कर यदि बालक का पालन पोषण किया जावे तो बिना किसी विपत्तिके सहज में दाँत निकल आते हैं। एवं शारीरिक स्वास्थ्य और शक्ति की वृद्धि होती है।

दाँत निकलने के पश्चात् बालकको फल, मूल, कन्द, शाक आदि का आहार कराना चाहिए। बालक को जो भोजन कराया जावे उसे भली भाँति चबाकर खिलाने का अभ्यास कराना चाहिए, ऐसा करनेसे भोजन शीघ्र पच जाताहै। बालकों को पके हुए आम, अनार, अंगूर, केला, सन्तरा, नारंगी आदि फल बहुत पसन्द होते हैं, इसलिए अन्य सब पदार्थों की अपेक्षा केवल ये फल ही यथोचित परिमाण में सेवन कराने चाहिएँ। फल शीघ्र पचकर बालक के शरीर को खूब पुष्ट करते हैं, और इनसे अजीर्ण होनेका भयभी जाता रहताहै। बालकके लिए हलका भोजन जितना लाभदायक और उपयोगी है, मांस उसकी अपेक्षा बिलकुल उपयोगी नहींहै। अमेरिका के आलकाट जैसे सुप्रसिद्ध डाक्टरों का कथन है कि केवल दूध और फलों का आहार ही बालकों के लिए उपयुक्त भोजन है; मांस उनके लिए सर्वथा हानिकारक है।

इस समय बालक को तीक्ष्ण ओषधि, गरम मसाले, और भारी पदार्थ का भोजन देना बहुत बुरा है; क्योंकि ऐसे भोजन से बालक के शरीर की स्वाभाविक उग्रता बढ़ती है। बालक के शरीर में पानी का हिस्सा अधिक रहता है इस लिए उसे ऐसे पदार्थ लाभ पहुँचा सकते हैं जिसमें कि पानी का हिस्सा बहुत कम हो।

प्रायः सभी मनुष्य भोजन करते समय अपने बालकों को पास बैठाकर नानाप्रकार के रसविशिष्ट भोज्य पदार्थ खिलाया करते हैं। परन्तु ऐसे प्रेम से लाभ की अपेक्षा हानि होनी सम्भव है। जो वस्तु बालक के लिए हानि कारक हो, उसको उस समय बालकके सामने नहीं रखना चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार प्रकाश को देखकर

मंत्रों का दर्शन करने की स्वाभाविक लालसा उत्पन्न होती है, और जिस प्रकार दुःखित व्यक्ति को देखकर दया उत्पन्न होती है उसी प्रकार उत्तम भोज्य पदार्थों को देखकर उसको खाने की स्वाभाविक इच्छा होतीहै। इसलिए बालक के सामने ऐसे खाद्य पदार्थ को रखकर उसे लोभ दिखाना नहींचाहिए, जिससे कि हानि होने की सम्भवना हो। और ऐसा करके फिर भोजन उठा लेना या खाने देना मानों बालक के साथ विश्वासघात और अन्याय करना है। इससे यही अच्छाहै कि वह पदार्थ उसके सामने लाया ही न जावे। इसके अतिरिक्त भोजन के समय यदि बालक पास हो अथवा कोई दूसरा व्यक्ति कोई पदार्थ खाता हो तो बालकके हृदय में स्वभावतः यह इच्छा होती है कि मैं भी इस पदार्थ को खाऊँ। उस पदार्थ के न मिलने से वह असन्तुष्ट हो जाता है और रोने लगता है। अतएव बालक को ऐसे स्थानसे दूर रखना चाहिए।

नियमितरूपसे भोजन करनेके पश्चात् भूख न लगने परभी बालक को मिष्टान्न आदि पदार्थ खिलाये जातेहैं इससे उसको अधिक खाने का बुरा अभ्यास पड़जाता है और दूसरे अजीर्ण रोग हो जाता है। इस लिए नियमित भोजन के पश्चात् पक्वान्न, मिष्टान्न आदि पदार्थ कदापि नहीं खिलाने चाहिएँ।

दूसरे वर्ष के अन्त में बालक को किस प्रकार का भोजन कराना चाहिए, इस विषयके सम्बन्ध में डाक्टर "मेनसेल" के ग्रन्थों के कुछ अवतरण नीचे दिये जातेहैं।

दो तीन वर्ष की अवस्था में बालक का स्वास्थ्य उत्तम होजाता है, और प्रातः कालके ५, ६ बजे अथवा उससे पहले भूख और प्यासके कारण वह शीघ्र जागउठताहै। उस समय उसे पतली रोटी के टुकड़े को ताज़े दूधमें मलकर या दाल तरकारी[1] के साथ खाने को देना चाहिए। इसप्रकार भोजन कराने के पश्चात् बालक फिर एक दो घंटे के लिए सो जाताहै। फिर ९ बजे उसे दूसरी बार भोजन कराना चाहिए। उस समय गरम पानी में रोटी को भिगो कर रखदेवे, जब वह खूब नरम हो जाय तब उसमें ताज़ा दूध थोड़ा

१ भिंडी, मूली, ज़िमींकंद, मूँगफली, और भटा आदि की तरकारी एवं अरहर और मूँगकी दालके साथ मिलाकर देना चाहिए।

पानी और शक्कर मिलाकर खिलानी चाहिए। इसके पश्चात् १ बजे के लगभग भोजन कराना चाहिए। इस समय बालक को ताज़े फल खिलाने चाहिएँ और स्वच्छ जल पिलाना चाहिए। प्रातः काल ६ बजे जिस भोजन की व्यवस्था कीजावे, सायङ्काल के ६-७ बजे भी वही व्यवस्था करनी चाहिए। बालकका शरीर यदि स्वस्थ हो और वह दिन में अधिकतर बाहर की शुद्ध वायु में रहता हो तो हलका भोजन कराने के पश्चात् वह अवश्य सोजाता है। रात्रि के समय उसको खिलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। जबतक बालक की अल्पायु रहे तबतक उसे उपर्युक्त प्रकार का ही भोजन देना चाहिए। बालक को ५, ६ वर्ष का होजाने पर भी रोटी और दूध देना चाहिए। उस समय दूध में पानी डालने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु शीत व ग्रीष्म काल और बालक की रुचि के अनुसार गरम अथवा ठण्डा दूध देना चाहिए। इस अवस्थामें प्रातःकाल निद्रा भङ्ग होते ही बालक को भोजन देने की ज़रूरत नहीं रहती। इसलिए प्रातःकाल बालक के शौचादि से निवृत्त होजाने पर पके हुए मधुर फल खिलाने चाहिएँ, और नियमित रूप से हलका भोजन कराना चाहिए।

बालक के भोजन का समय निश्चित होने से माता और बालक दोनों को लाभ होता है। नियमित रूप से भोजन कराने से बालक के सुख और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है, और माता को बारबार भोजन कराने की दिक्कत नहीं पड़ती। बालकको यदि यह मालूम होजावे कि मुझे रोने से भोजन मिलता है, तो वह सदैव भोजन के लिए रोया करेगा और माता को उसको खुश करने के लिए सदैव दासी की समान प्रयत्न करना पड़ेगा। इसलिए बालक के रोने पर कभी भोजन नहीं देना चाहिए। कारण अनियमित भोजन से बालक के रोग उत्पन्न होजाता है। इसके अतिरिक्त यदि बालक को मालूम होजाय, कि मुझे नियमित समय के बिना खाने को नहीं मिलेगा, तो वह धैर्य्य धारण करके उस समय की प्रतीक्षा करता रहेगा, और किसी प्रकार भी व्याकुल न होगा। खाने की इच्छा न होने पर भी बालक को जो स्नेह पूर्वक खिलाने की रीति है वह बहुत ही बुरी है; कारण अधिक खाजाने से बालक को अजीर्ण (कब्ज) और दस्तों की बीमारी हो जाती है। विशेष कर जिन्हें

गर्मी के पश्चात् एकदम ठण्ड और ठण्ड के पश्चात् एक दम गर्मी लगती है, उन्हें ऐसी अवस्था में यदि अधिक भोजन दिया जावेगा तो उससे आमाशयमें पीड़ा न होनेपर भी चक्कर आने से अवश्य पीड़ा होगी। जिस प्रकार बालक को अधिक भोजन देना बुरा है उसी प्रकार कम भोजन देना भी हानिकारक है। इसलिए बालक को नियमित समय पर भूख के अनुसार शीघ्र पचजाने वाला पौष्टिक भोजन देना चाहिए।

बाल्यावस्था में अथवा युवावस्था में सदैव एक प्रकार का ही भोजन करने से आमाशय की शक्ति नष्ट होजाती है, इसलिए भोजन को बीच बीच में बदलकर खाना चाहिए। ऐसा करने से पाचन शक्ति बलिष्ठ होती है और शारीरिक सुख की वृद्धि होती है। बालक को कभी कभी गेहूँ का दलिया, अरारोट अथवा साबूदाना पकाकर देना चाहिए; किन्तु निरन्तर ये पदार्थ भी नहीं देने चाहिएं। अथवा कभी शाक, भाजी तैयार करके उसके साथ रोटी खिलानी चाहिए। परन्तु एक साथ नानाप्रकार के पदार्थों को अलग २ अथवा एकत्रित पकाकर नहीं देना चाहिए। ऐसा करने से बालक को भूख से अधिक खाने की इच्छा होती है और अधिक भोजन करने से रोग उत्पन्न होता है।

एकवर्ष के बालक के लिये जिसप्रकार स्वच्छ रखने का नियम लिखा गया है, उसी प्रकार दो वर्ष के बालक को भी स्वच्छ रखना चाहिए। उसमें केवल इतना ही फेरफार होगा कि दो वर्ष के बालकको स्नान करानेका पानी कुछ गरम होनाचाहिए। पहले वर्ष के बालक को स्नान कराने का पानी ९८ डिग्री तक गर्म होना चाहिए और दो वर्ष के बालक के लिए केवल ७५ डिग्री ही पानी की उष्णता होनी चाहिए। इसके बाद १० डिग्री गर्मी कम करदेनी चाहिए; क्योंकि इस समय बालक का बल बढ़ने लगता है और उसमें शरीर की स्वाभाविक गर्मी को सञ्चित करने की शक्ति उत्पन्न होजाती है। इसलिए जैसे जैसे बालक की अवस्था बढ़ती जावे वैसे ही वैसे स्नान कराने के पानी की गर्मी धीरे धीरे कम करते जाना चाहिए। परन्तु शीतकाल में अथवा बालक का शरीर दुर्बल होने पर थोड़े गरम पानी से स्नान नहीं कराना चाहिए। पानी को गरम रखने का साधारण नियम यह है कि जब बालक

की अवस्था एक वर्ष की अथवा पन्द्रह महीने की हो तब उसको प्रातःकाल स्नान कराने से बालक को कोई कष्ट न हो और वह प्रसन्न रहे। परन्तु इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि बालकको बहुत देर तक पानी में न डुबाया जावे, बल्कि उसका सारा शरीर हाथों से या गाढ़े के अँगोछे से खूब मल मलकर धोया जावे। फिर तुरन्त पानी में से निकालकर सूखे कपड़े से उसके शरीर को पोंछ डालना चाहिए। दुर्बल बालक को बहुत अधिक ठण्ड लगती है इसलिए उसे ८५ अथवा ९० डिग्री से कम गरम पानी से स्नान नहीं कराना चाहिए। बालकों के संरक्षकों को यह बात खूब याद रखनी चाहिए कि प्रतिदिन बालक को स्नान कराकर अथवा गीले कपड़े से शरीर को पोंछकर स्वच्छ रखना जितना लाभदायक है, उतना और कोई उपाय नहीं है। बालक को निरन्तर स्नान कराने से शरीर में समान रूप से रुधिर का सञ्चार होता है और शरीर के समस्त कार्य्य उत्तम प्रकार से होते हैं इसलिए बालक को एक दम कोई रोग नहीं होता। यदि कोई रोग हो भी जाय तो अधिक ओषधि खिलाने की आवश्यकता नहीं होती।

दूसरे वर्ष में सन्ध्या के समय बालक के शरीर को धोने की या स्नान कराने की ज़रूरत नहीं रहती, क्योंकि उस समय उसको स्वयं स्वच्छ रहनेका अभ्यास होजाता है। यदि आवश्यकता हो तो कुछ गरम पानी से स्नान कराना चाहिए। बालक के दाँत निकलते समय जो पीड़ा, अशान्ति, और अनिद्रा के कारण क्लेश होता है। उस समय सायङ्काल में गरम पानी से स्नान कराने से विशेष लाभ होता है। परन्तु भोजन के बाद स्नान कभी नहीं कराना चाहिए।

बालकों को कपड़े इस प्रकार के पहनाये जावें कि जिनके द्वारा उनके शरीर को ठण्ड और गर्मी न सता सके। इसलिए कपड़ों को सर्वदा बदलते रहना चाहिए। कपड़े जितने हलके और ढीले हों उतना ही अच्छा है। यदि बालक दुर्बल हो और वह अपने शरीर की गर्मी संचित न करसकता हो तो ठंड में उसको नरम फुलालेन का वासकट पहिनाना चाहिए। परन्तु गर्मी के दिनों में और बालक के बलवान् होने पर फुलालेन का कपड़ा पहनाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इससे हानि होती है। मतलब यह है कि जिससे शरीर की स्वाभाविक गर्मी संचित हो और ठंड न लगे ऐसे

वस्त्र पहराने चाहिये, परन्तु बहुत अधिक कपड़े पहनाने भी ठीक नहीं हैं। बालक के शरीर पर अधिक या कम कपड़े होने की बात बालक के शरीर का भाव देखने से तुरन्त समझ में आजाती है। अधिकांश बालकों को फुलालेन के कपड़ों की अपेक्षा सूती कपड़े अधिक लाभदायक होते हैं। उनमें भी बालक को अन्य कपड़ों की अपेक्षा गाढ़े के कपड़े पहराने चाहिएँ, परन्तु जिस बालक का चमड़ा सूखा, कठोर और कुछ आसमानी रङ्गमिश्रित पीलेरङ्ग का हो तो बालक को रुईके या फुलालैन आदिके कपड़े पहराने चाहिएँ; क्योंकि सूती कपड़ों से एक दम बालक की ठण्ड नहीं रुक सकती।

यदि शहर की खुली हवा में बालक दौड़कर न खेल सकता हो, घर में समान अवस्था के और बालक न हों, उस का शरीर और मन स्वस्थ न हों, उसके रक्त का संचालन उत्तम प्रकार से न होता हो और चमड़ा सूखा व ठंडा हो तो फुलालैन आदिके गरम कपड़े न पहनाने से उसे सुख नहीं मिल सकता। और जो बालक मैदान की खुली हवामें समान अवस्थावाले बालकोंके साथ चंचल भावसे सदैव खेलता रहे, बलवान् हो और शरीर के रुधिर का दौरान शीघ्रता से होता हो तो फुलालैन आदि के गरम कपड़े पहनाने की ज़रूरत नहीं है। कारण, ऐसी अवस्था में गरम कपड़े पहराने से जो पसीना निकलता है, वह उसके शरीर में खुश्क होजाने से रोग उत्पन्न होजाना सम्भव है।

दूसरे घरमें बालक को कष्ट पहुँचाने का एक कारण यह है, कि जिस घरके कमरे के भीतर अथवा बाहर ठंडी वायु अधिक प्रवेश करती हो उसके शरीर पर लगने से अथवा कमरे को लीपने, पोतने या धोने के कारण उत्पन्न हुई सील से बालक के गले, गले की नाली, छाती अथवा पेट में रोग उत्पन्न होजाता है। ऐसे समय में घर के बाहर की शीतल और भीगी वायु के प्रभाव में बालक को और भी अधिक पीड़ा होसकती है। इसलिए ऐसा करना चाहिए कि घरमें थोड़ी २ वायु आती रहे और उस कमरे में सील बिलकुल न रहने पावे।

शीत निवारण के लिए गरम वस्त्रोंसे बालक के शरीर को ढकने के जो नियम लिखे गये हैं उनका यह मतलब नहीं है कि किसी प्रकार की शीतल वायु का स्पर्श न कराकर उसको सदैव

घर की बन्द हवामें ही रक्खा जावे। जैसे एकदम बहुत ठंड और बहुत गरमी लगने से हानि होती है, उसी प्रकार सदैव घर की बन्द हवा में रहने से भी हानि होती है। जो व्यक्ति सर्वदा एक ही प्रकार का भोजन करते हैं और एक ही प्रकार का काम अथवा एक ही प्रकार का परिश्रम करते हैं उनकी शक्ति और प्रफुल्लता का भाव स्वस्थ व्यक्ति के समान नहीं रहता। और उसके उक्त कार्यों में परिवर्त्तन होने से रोग उत्पन्न हो जाता है।

परमात्मा ने इस मानव शरीर को नाना प्रकार की रचनाओंसे सुसंगठित कररक्खा है। यदि इसमें अधिक विचित्रता न होती तो सहज में ही सबको सुखकी प्राप्ति होजाया करती। यदि दुर्बल बालक को ठँडके दिनों में नङ्गे शरीर रक्खे अथवा हलके वस्त्र पहनाकर बाहर की स्वच्छ हवा में उसको कुछ देर तक दौड़ावे तो उसके स्वास्थ्य में उतना अन्तर नहीं पड़सकता, जितना कि बाहर की हवा को घर में बैठकर सेवन करने से अथवा थोड़े कपड़े पहन कर बिना काम बैठे रहने से पड़ता है। जिसको बहुत ठंड अथवा बहुत गर्मी न लगे और जो सर्वदा बे काम घरमें बैठना न चाहे तो उस बालक को चाहे जहाँ खुली हवा में इच्छानुसार खेलने देना चाहिए।

दो वर्ष के बालक को शरीर से सुखी बनाने के लिए उसको योग्य परिश्रम और निर्मल वायु का सेवन कराना अतिशय उपयोगी है। इस प्रकार करने से बालक दाँत निकलने के क्लेश से सहजमें ही बचसकताहै। दिनमें बाहर की वायु में रहकर बालक अपनी इच्छा के अनुसार जितना शारीरिक व्यायाम करसके उतना ही अच्छा है। छोटी अवस्था के कारण यदि वह चल न सकता हो तो घास पर सुलाकर उसके पास कुछ खिलौने रख रख देने चाहिये। वह उन खिलौनों को लेकर भली भाँति खेल सकताहै। जो घास से आच्छादित भूमि अच्छे प्रकार से सूखी न हो तो उसपर एक गलीचा अथवा और कोई कपड़ा जिसमें पानी प्रवेश न करसकता हो बिछा देना चाहिए। अथवा कमरे के भीतर इसी प्रकार से गलीचा आदि बिछाकर उस पर बालक को खेलने देना चाहिए। (क्रमशः)

अस्थिसन्धानकारक उपचार ।

अस्थिभग्न अर्थात् हड्डी का टूटना, स्थान से हटजाना, टेढ़ी-तिरछी होजाना या मुड़जाना, सन्धि की पीड़ा आदि रोगों पर सामान्य चिकित्सा ।

(१) आमिया हल्दी, मैदा लकड़ी और सज्जी खार । प्रत्येक को दो दो भाग लेकर बारीक पीसकर वस्त्र में छानलेवे । फिर उसमें गेहूँ की मैदा तीन भाग, गुड़ एक भाग, भेड़ का घी एक भाग और अलसी का तेल एक भाग-इन सबको एकत्र मिलाकर पुल्टिस बना लेवे । उस पुल्टिस का बाँधने से हड्डी का भङ्ग होना और उसकी भयङ्कर पीड़ा शीघ्र कम होजाती है । एवं टूटा हुआ मांस और जमा हुआ रुधिर साफ़ होजाता है । दो दो घंटे के बाद यह पुल्टिस बाँधनी चाहिए ।

(२) हल्दी, कलई का चूना और मिलावा इन तीनों ओषधियों को समान भाग लेकर ईख के रसके सिरके में पकाकर उसका लेप करने से अस्थि वा सन्धि की भयङ्कर पीड़ा शीघ्र कम होजाती है और टूटा हुआ हाड़ जुड़जाता है ।

(३) हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, गिलोय और घर का धुआँसा इन सब वस्तुओं को समान भाग लेकर १० भाग तिलके तेल और ४० भाग जल में मिलाकर पकावे । जब पककर केवल तेलमात्र शेष रहजाय तब उसको उतार कर छानलेवे । इस तेल में कपड़ा भिजोकर ज़ख्म के ऊपर रखकर ऊपर से पट्टा बाँधदेना चाहिए ।

(४) सेंक करने की ओषधियां-पुराने नारियल की गिरी, काले तिल, आमिया हल्दी और पुराने पान इन चारों को एकत्र पीसकर पोटली में बाँधकर उसके द्वारा सेंक करना चाहिए । अथवा हल्दी और मैदा लकड़ी ये प्रत्येक एक एक छटांक और सज्जी ३ तोले इनको एकत्र कूट पीसकर कपड़छन करलेवे । फिर उसमें आधपाव गेहूँ की मैदा और थोड़ा मीठा तेलिया मिलाकर उसकी एक पोटली बना लेवे । उस पोटली को गरम करके अच्छे प्रकार से सेंके । फिर उड़द की बारीक पिट्ठी पीसकर उसमें थोड़ी सज्जी मिलाकर उसकी एक रोटी बना लेवे, उसको एक

तरफ़ सेंक कर तेल चुपड़कर बाँध देवे। इस प्रकार करने से हड्डी की चोट और उसकी पीड़ा तत्काल कम होजाती है।

(५) हड्डी की पुरानी चोट और सूजन—सोंठ, मैदालकड़ी और कुचले के टुकड़े इन तीनों को समान भाग लेकर एक सेर जल में डालकर मिट्टी के बर्त्तन में पकावे। जब पानी तीसरा भाग बाकी रहजाय तब उसके द्वारा बफारा देवे। फिर उस पानी को चोट के स्थान पर ढाल देवे और उसके कल्क को वस्त्र में रखकर चोट के ऊपर बाँध देवे।

(६) शिराओं के दबजाने या पिचजाने पर—अरण्डीके बीजों की गिरी को भेड़ के दूध में पीसकर गरम करके बाँधने से शिराओं की पीड़ा और सूजन शीघ्र कम होजाती है।

(७) शिराओं में चोट लगने पर—दारुहलदी आमिया हलदी मुलेठी और पीला देवदारु—इन प्रत्येक को दो दो तोले लेकर बारीक पीसकर वस्त्र में छानलेवे। फिर उसमें दो तोले कज्जल डालकर खरल करे। इसके पश्चात् उसको ३० तोले शीतल जल में डालकर पकावे। जब पककर आधा पानी बाक़ी रहजाय तब उसमें १५ तोले तिलका तेल डालकर मन्द मन्द अग्नि से पकावे। जब पानी सब जलजाय और तेलमात्र शेष रहजाय तब उस तेल को उतारकर छानलवे—और चोट के स्थानपर लगावे। इससे नसों का दबजाना, पिचजाना, कुचलजाना आदि की भयङ्कर वेदना शीघ्र कम होने लगती है। विचलित हुई या स्थान से हटी हुई शिरायें ठीक अपने स्थान पर आजाती हैं। इतना ही नहीं, मांस का टूटजाना और त्वचा का फटजाना आदि विकार भी आराम होजाते हैं।

(८) हाड़ के मुड़जाने पर—गेहूँ की भूसीको जलमें पकाकर उसमें हड़संघारीका चूर्ण और थोड़ा अलसी का तेल मिलाकर बाँधना चाहिए। अथवा चमेली की जड़को पीसकर शहदमें मिलाकर उसका लेप करके पट्टी बाँध देवे। या कच्चे सुहागे को शहद में मिलाकर लेप करे। इससे भी अधिक लाभ होताहै। अथवा कबूतर की विष्ठा और गूगल दोनों को एकत्र पीसकर गरम करके लेप करने से हाड़ के मुड़जाने की पीड़ा शीघ्र कम होजाती है।

(६) टूटे हुए हाड़पर मरहम—अंडी का तेल १० तोले, भेंड़ का घी १० तोले और नीम का स्वरस १० तोले इन सब चीज़ों को एकत्र मिलाकर उसमें १॥ माशा केसर डालकर खूब अरल करे। फिर टूटे हुए हाड़पर इस मरहम का लेप करके पट्टी बाँधदेवे।

(१०) अथवा शिलाजीत, अलसी का तेल; मोम और भेंड का घृत इन चारों औषधियों को एकत्रित करके विधिपूर्वक मरहम बनालेवे। इस मरहम को टूटे हुए हाड़ पर लगाने से वह शीघ्र जुड़ जाता है—और उसकी पीड़ा दूर होती है।

(११) खाने की औषध—अकरकरा; दारचीनी, नागरमोथा, आमिया हल्दी, मैदा लकड़ी, असगन्ध, बालछड़, त्रिफला, त्रिकुटा और कुन्दुरु का गोंद—इन सब औषधियों को समानभाग लेकर एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्ण को गुड़ में मिलाकर चार २ रत्ती की गोलियाँ बनालेवे। फिर एक गोली प्रात. काल और एक गोली सन्ध्या के समय दूध के साथ सात दिन तक सेवन करनी चाहिए। इन गोलियों को खाने से टूटी हुई हड्डी के जुड़ने में विशेष सहायता मिलती है।

अथवा केवल एक शिलाजीत को ही यथोचित मात्रा से प्रतिदिन प्रातः सायङ्काल में थोड़े गरम दूध के साथ सेवन करे। या शुद्ध गूगल को घृत में मिलाकर गरम दूध के साथ दोनों समय सेवन करे तो शीघ्र लाभ होता है।

अथवा पीपल के पत्तों के काढ़े में सावरसींग को घिसकर और उसमें कुछ गुड मिलाकर उसको दिनमें एक एक चमचा भर तीन बार पीने से टूटा हाड़ शीघ्र जुड़जाता है।

अथवा बादामगिरी ५॥ नारियल १ तोला, खसखस १ तोला, बिनौलों की गिरी १ तोला, गेहूँ का सत्त ३ तोले, हल्दी ६ माशे, दारचीनी ६ माशे. काली मिरच १ माशा और केशर २ रत्ती इन सब को जल में पीसकर घृत और मिश्री मिलाकर हरीरा तयार करे। इसको सुहाता सुहाता दिन में दो बार या एक बार पान करे। इससे अस्थिसन्धान में बहुत लाभ होता है।

गेहुँओं की भुर्जी के भाड़ में भुनवाकर उनमें गुड और घृत मिलाकर लड्डू तैयार करलेवे। इन लड्डुओं को खाने से टूटा हुआ हाड़ जुड़जाता है। भिषक्राज।

तमाखू–महिमा।

काश्मीर स्टेट अस्पताल के डाक्टर श्रीराम ने (Health and Happiness) नामक अँगरेज़ी मासिक पत्र में तमाखू के सम्बन्ध में एक प्रबन्ध प्रकाशित कराया है। हम उसका सारांश "वैद्य" के पाठकों के लिए नीचे उद्धृत करते हैं।

१ भारतवर्ष में एक वर्ष में जितने चुरुट पिये जाते हैं, यदि उनको लम्बा २ रखकर उनके एक सिरे से दूसरे सिरे को जोड़ा जाय तो उन चुरुटों का इतना बड़ा घेरा होजायगा कि उससे कई बार इस पृथ्वी का लपेटा जासकता है।

२ जितने सिगरेट पिये जाते हैं, उनको यदि उसी प्रकार एक तार में लम्बा लम्बा बाँधकर टेलिग्राफ के तार की समान तैयार किया जाय तो वह पृथ्वी से चन्द्रलोक तक कईबार जा और आ सकता है।

३ सिगरेट बड़ा पक्का गणितज्ञ है। यह मनुष्य के स्वस्थ शरीर में स्नायविक पीडा का योग करता है, मनुष्य के शारीरिक तेज़ का वियोग करता है, उसकी यन्त्रणा और वेदना को कई गुना बढ़ा देता है—और उसकी मानसिक एकाग्रता और शक्ति के अनेक भाग (टुकड़े) करदेता है। तमाखू इस प्रकार मनुष्य के कर्म से प्रसन्नता पूर्वक कौड़ी कौड़ी का हिसाब चुका लेता है। और जीवन की सफलता के मूल्य का ह्रास (Discount) करता है।

४ तमाखू की पत्नी का नाम है-निकोटिन बीबी। इस मुसम्मात निकोटिन (तमाखू का विष) बीबी के चरित्र का परिचय इसप्रकार है:--यह चोर, गाँठकटा, खूनी और जादूगरनी है।

क-यह निकोटिन बीबी मनुष्य के शरीर का वज़न कम कर देती है।

ख-यह शरीर की पुष्टि में व्याघात करती है।

ग-हृदय को दुर्बल बनाती है।

घ-मूत्रनाली में घाव करदेती है।

ङ-सुषुम्नानल ग्लांड को क्षय करती है।

च-फुफ्फुस को रोगी करती है और गलेमें खुश्की करती है।

छ-यकृत् का कार्य करने में हानि पहुँचाती है।

ज-मुख में दुर्गन्ध उत्पन्न करती है। और दाँतों को हिला देती है।

झ-दृष्टिशक्ति को क्षीण करती है, इससे अन्तमें नेत्रों के स्नायु दुर्बल होजाते हैं।

ञ-उदर की परिपाक क्रिया में व्याघात उत्पन्न करके कोष्ठ-बद्धता, अतिसार और उदरसम्बन्धी अन्यान्य रोगों की उत्पत्ति करती है।

ट-लाल रक्तकणों की संख्या५८०००००से घटाकर २४०००००तक करदेती है।

इसप्रकार बीबी निकोटिन की चरित्र-महिमा अद्भुत है। उसके गुणों की सीमा का वर्णन नहीं किया जासकता।

ऐसी बीबी का कौन भक्त होना चाहता है?

—(*)—

प्राप्ति-स्वीकार।

—*—

शिक्षा का सम्मेलनाङ्क—शिक्षासम्बन्धी पत्रों में पढ़ने की शिक्षा का आसन बहुत ऊँचा है। इसमें शिक्षा और साहित्य सम्बन्धी उच्चकोटि के लेख प्रकाशित होते हैं। श्रीयुत पण्डित सकलनारायण जी शर्म्मा और श्रीयुत पं० चन्द्रशेखर जी शास्त्री इसके सम्पादक हैं। इस समय सम्मेलन के अवसर पर उसने अपना विशेषाङ्क या सम्मेलनाङ्क निकाला है। कागज़, छपाई अत्युत्तम। टाइटिल पृष्ठ पर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति बाबू पुरुषोत्तमदास जी टण्डन का चित्र दिया गया है। साइज़ बड़ा डबल क्राउन $\frac{1}{8}$ पृष्ठ संख्या ४८। इस अङ्क का मूल्य ।॥) वार्षिक मू० ५) रु०।

इसमें कुल २७ लेख और कवितायें हैं। लेख सब उत्तम, विद्वत्तापूर्ण और विशेष गवेषणा के साथ बड़े बड़े विद्वानों के द्वारा लिखे गयेहैं। इसका समस्त शिक्षक और विद्यार्थिवर्ग में अधिक प्रचार होना चाहिए।

व्यास जी की पुस्तकें—"वैद्य" के पाठकों के पूर्वपरिचित, हिन्दी के सुलेखक और हमारे स्नेहभाजन पण्डित नरोत्तम व्यास ने स्वरचित आठ पुस्तकें हमारे पास भेजने की कृपा की है। इसके लिए हम व्यास जी को विशेष धन्यवाद देते हैं। पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं—

१ गान्धी गौरव। २ गान्धी गीता। ३ महाभारत। ४ हरिश्चन्द्र शैव्या। ५ महात्मा विदुर। ६ सती विपुला। ७ सती पद्मरत्न। ८ स्वर्णोपदेश। सभी पुस्तकें बढ़िया कागज़ पर अत्यन्त सुन्दरता से छपी हुईं और अनेक रंगीन मनोमोहक चित्रों से अलङ्कृत हैं।

१ गान्धी गौरव—इसमें जगत्पूज्य महात्मा गान्धी का जीवन वृत्तान्त अतिविशद रूपसे लिखागया है। महात्मा जी के बाल्यकालसे लेकर इस समय तक की प्राय सभी मुख्य मुख्य घटनाओं का उत्तम प्रकारसे अतिसरल भाषामें वर्णन किया गया है। इस पुस्तक को पढ़ने से महात्मा गान्धी और उनके समस्त कार्यों का भली भाँति परिचय होसकता है। गान्धी जी के भक्त तो इसे मँगाकर पढ़ेंगे ही, परन्तु जो लोग उनके सिद्धान्तों को न जानकर उनके प्रति सदैव अपने विरुद्ध विचार प्रकट किया करते हैं, उनको भी यह पुस्तक मँगाकर अवश्य पढ़नी चाहिए। इसमें महात्माजी और अन्य नेताओं के २५ मनोहर चित्र दिये गये हैं। साइज़ छोटा। पृष्ठसंख्या ३६१। बढ़िया रेशमी जिल्द बँधी हुई पुस्तक का मूल्य ३)। छपाई सफ़ाई अत्युत्तम।

---

२ गान्धी गीता—इसमें सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, सदाचार, स्वदेशी प्राच्य और प्रतीच्य सभ्यता, शिक्षा, राष्ट्रभाषा, धर्म्म, नीति और असहयोग आदि अनेक विषयों पर महात्मा जी के महत्त्वपूर्ण उपदेशों का संग्रह है। इसको पढ़ने से महात्मा जी के स्वतन्त्र विचारों का खूब पता लगता है। एक जगह डाक्टरों के सम्बन्ध में महात्मा जी ने लिखा है कि "डाक्टरोंने भी हम लोगों का सत्यानाश किया है। हम लोग अज्ञानवश डाक्टर बनते हैं। एक अँगरेज विद्वान्‌ने एक वृक्षकी कल्पना की है। उसमें वकील, डाक्टर आदि निरुपयोगी व्यवसाय वालों को उसकी

डालियाँ बनाया है। उसकी जड़ पर नीति धर्मरूपी कुल्हाड़ा रक्खा है। अनीति इन सब व्यवसायों की जड़ सिद्ध कीगई है। इससे आप समझ सकते हैं कि मैं जो कुछ तुमसे कहता हूँ, वह मेरा ही मत नहीं है, वरन् अनेक विद्वानों और मेरे अनुभव का फल है। जिस प्रकार आजकल सब लोग डाक्टरों पर मोहित हैं, उसी प्रकार मैं भी इन का परम भक्त था, समझता था कि वे लोग देश की बड़ी भारी सेवा करते हैं। परन्तु अनुभवके साथ अब वह मोह दूर होगया। हम लोगों में जो वैद्य के व्यवसायको अच्छा नहीं कहागया है, उसका कारण और विचार का महत्त्व मुझे अब मालूम हुआ है" इत्यादि। पुस्तक की भाषा बड़ी सरल है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन और महात्मा जी के कई सुन्दर रंगीन चित्र दिये गये हैं। पुस्तक छोटी साँची के २३० पृष्ठोंमें पूर्ण हुई है। बढ़िया रेशमी जिल्द का मूल्य २॥) पुस्तक सब के पढ़ने योग्य है।

---

३ हिन्दी महाभारत—इसमें महाभारत की सभी मूल कथाओं का बड़े विशद रूपसे वर्णन किया गया है। भाषा इसकी इतनी सरस और रोचक है कि इसको पढ़ने में उपन्यास का सा आनन्द मिलता है। इसमें अत्यन्त चित्ताकर्षक २२ रंगीन चित्र हैं। साइज छोटा, पृष्ठसंख्या ३२२। छपाई सफाई देखने योग्य। बढ़िया रेशमी जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य ३।) सचमुच महाभारत का इतना अच्छा और सस्ता संस्करण अन्यत्र कहीं नहीं देखने में आया।

---

४ हरिश्चन्द्र शैव्या—इसमें सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र और उनकी धर्मपत्नी सतीशिरोमणी महाराणी शैव्या का पवित्र चरित्र उपन्यास के ढंग पर सरसभाषामें लिखा गया है। बड़े ही सुन्दर और मनोरम १५ रंगीन चित्र दिये गये हैं। साइज छोटा, पृष्ठसंख्या २२५। छपाई सफाई बढ़िया। मूल्य सुनहरी जिल्द का २॥)।

उपर्युक्त चारों पुस्तकें कलकत्ते की प्रसिद्ध आर० एल० वर्मन कम्पनी, नं० ३७१, अपर चितपुर रोड- ने प्रकाशित की हैं और वहीं से प्राप्त होसकती हैं।

Regd No. A 587

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिक-पत्र

सम्पादक—शङ्करलाल वैद्य

वर्ष ११	मुरादाबाद । मई जून सन् १९२३	संख्या ५-६

❀ विषय सूची ❀

१—आयुर्वेद और धर्म शास्त्र १२५	८—बिच्छू के काटे का इलाज १६०
२—स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक स्थिति बनायें १२९	९—[illegible] एक विषकी औषध १६३
३—नाड़ी परीक्षा १३२	१०—कुछ जानने योग्य बातें १६४
४—वाजीकरण १४१	११—विविध विषय १६६
५—आत्महत्या १४५	१२—वैद्य महानुभावों से विनम्र निवेदन १७१
६—माता का कर्त्तव्य १५०	१३—वैद्यक शब्द-सागर १७३
७—फालसा १५८	१४—[illegible]निघण्टु कोष १७७

प्रकाशक—हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद ।

वार्षिक मूल्य १॥)] [एक संख्या का मूल्य ≈)

Printed by—Nemi Chand Jain
at the Sharma Machine Printing Press
MORADABAD

❀ वैद्य के नियम ❀

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिकमूल्य डाकमहसूल सहित केवल १॥ रु० है। पेशगी मनीआर्डर भेजने से १॥, रु० और वी० पी० मँगाने से १॥।) रु० पड़ेगा।

(३) 'वैद्य' का नमूने में कोई सा एक अङ्क भेज दिया जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषयक लेख, कविता, अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वे पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायेंगे। परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिए, जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिए कार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँचकर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी २ अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं। इसका कारण रास्ते की असावधानी ही होसकती है। जिन महाशयों को जो अङ्क न मिले वे दूसरे अङ्क के पहुँचते ही हमें सूचना दें। अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सर्वप्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि "वैद्य-शंकरलाल हरिशंकर वैद्य आफिस मुरादाबाद" के पते से आने चाहिएँ।

वैद्य में विज्ञापन छपाई व बटाई।

	१ वर्ष १२ बार	६ मास ६ बार	३ मास ३ बार	१ मास १ बार
एक पृष्ठ	५०)	३०)	१७)	६)
आधा पृष्ठ	३०)	१७)	१०)	३॥)
चौथाई पृष्ठ	१८)	१०)	६)	२)

विज्ञापन बटाई विज्ञापन दिखाकर तै कीजिये।

भवदीय—मैनेजर "वैद्य", मुरादाबाद

श्रीधन्वन्तरये नमः।

वर्ष ११ | मुरादाबाद। मई, जून १९२३ ई०। | संख्या ५-६

आयुर्वेद और धर्मशास्त्र।

मनुष्य के जीवन की रक्षा के लिये और उत्तमता की सिद्धि के लिये जो २ उपदेश धर्मशास्त्र में मिलते हैं; उन्हीं उत्तमोत्तम उपदेशों के भाव से गर्भित मनुष्यजीवनोपयोगी शिक्षायें आयुर्वेद में भी देखी जाती हैं। कुछ लोगों का कहना है कि धर्मशास्त्र में और आयुर्वेद में जीवन के हितार्थ जो विषय वर्णित हैं, उनमें कुछ अन्तर है। किन्तु यदि अन्तर्दृष्टि करके देखाजाय तो दोनों ही शास्त्र मनुष्य के लिये समानरूपसे उपकारी और समय २ पर लाभदायक हैं।

प्रथम हम मनुष्य की नित्यक्रिया पर विचार आरम्भ करते हैं। धर्मशास्त्र कहता है कि मनुष्य प्रातः काल ब्राह्ममुहूर्त्त में अर्थात् ६ घड़ी रात्रि रहने पर निद्रा को त्याग कर उठे और धर्म्म, अर्थ का चिन्तन करे।

ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय धर्मार्थावनुचिन्तयेत्।

इसी प्रकार शयन का समय भी नित्य ६ घड़ी रात्रि गये पीछे नियत करलेना चाहिये। यदि मनुष्य रात्रि के प्रथम प्रहर के बीतने से पहले सोवे और चतुर्थ प्रहर के प्रारम्भ में ही उठे तो उसके आयुष्य, आरोग्य और ज्ञानद्रव्य की वृद्धि होती है।

आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम् ।

उषः कालमें उठकर मलादि को त्याग करने से मनुष्य की आयु की वृद्धि होती है । इसी विषयमें किसी पश्चिमीय विद्वान् ने कहा है कि-(Early to bed and early to rise make a man healthy welthy and wise)

धर्मशास्त्र ने सूर्यास्त और सूर्योदय के समय शयन करने में दोष लिखा है । यथा—

सूर्योदये तु या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी ॥

अर्थात् सूर्योदय के समय जो निद्रा आती है वह मनुष्य के पुण्यों को अपहरण करती है । वास्तव में पूर्वोक्त शास्त्रों के अनुसार यह बात यथार्थ ही है । क्योंकि जो मनुष्य उचित समय पर नहीं जागता है, उसके शरीर में विशेष आलस्य और अङ्गों में अत्यन्त शिथिलता उत्पन्न होती है, जिससे वह मनुष्य अंगड़ाता हुआ और जमुहाई लेता हुआ आरोग्य होने पर भी रोगी सा प्रतीत होता है । और इसी कारण स्नान, सन्ध्या वन्दनादि नित्यकर्मों के करने में अनासक्त होकर गृह सम्बन्धी कार्यों की चिन्ता में ग्रस्त होता हुआ पुण्यकर्मों से सदा वञ्चित रहता है ।

यदि किसी मनुष्य की प्रकृति नित्य अधिक निद्रा लेने की बन जाय तो उसके रोगी होने में भी कुछ सन्देह नहीं हो सकता । अर्थात् वह अवश्य अपने जीवनमूल अमूल्य श्वासों को वृथा खोकर एक न एक दिन रोग का शिकार बन जायगा । अतः सात ७ घटे से अधिक निद्रा रूपी रोग से बचने के लिये प्रत्येक मनुष्य को धर्मशास्त्र और आयुर्वेद शास्त्रके सिद्धान्तों का अवश्य अवलम्बन करना चाहिये । अन्यथा इस अधिक निद्रा के रोग को मनुष्य जितना बढ़ाना चाहेगा, यह उतना ही बढ़ता जायगा । यहाँ तक कि वह निद्रा में त्रेता के कुम्भकर्ण को भी परास्त कर सकता है ।

कहा भी है —क्षुधा निद्रा मैथुनञ्च,सेवमानस्य वर्द्धते ।

अतएव परिमित निद्रा, मनुष्य की आरोग्यता और धर्म के लिये सर्वथा अनुकूल है ।

एवं यथासमय नियमपूर्वक मल को त्यागना, दन्तशुद्धि करना और स्नानादि करना ये कार्य भी आरोग्य और धर्म इन

दोनों से सम्बन्ध रखते हैं। जो प्रतिदिन नियम पूर्वक दातौन आदि से दन्तशुद्धि नहीं करते, उनके आहार करते समय जो कुछ अंश दांतों के छिद्रों में लगा रहजाता है, उसके शनैः २ सञ्चित होकर उसमें सड़न पैदा होने से अनेक प्रकार के दन्तरोग उत्पन्न होजाते हैं। इसके अतिरिक्त मुखमें दुर्गन्धयुक्त निःश्वास के आने जाने से मनुष्य के शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं। इससे उनके धर्म और स्वास्थ्य दोनों में बाधा पड़ती है। इसी प्रकार स्नान के द्वारा जो मल नित्य रोमकूपों से निकल कर शरीर पर फैलजाता है उसको, अथवा दिन रात के पवनस्पर्श से अंगों पर जो रज और सूक्ष्म जीवाणु लगजाते हैं उन की भी शुद्धि होजाती है। ऐसा करने पर सन्ध्यादि धार्मिक नित्यकृत्य का अधिकार सिद्ध होता है। अतएव धर्मशास्त्र में लिखा है:—

गुणा दश स्नानपरस्य साधो रूपञ्च तेजश्च बलञ्च शौचम्।
आयुष्यमर्थश्च यशश्च मेधा नीरोगताऽलोलुपता भवन्ति॥

अर्थात् नित्य स्नान करनेवाले पुरुष को रूप, तेज, बल, शौच, आयु, अर्थ, यश, बुद्धि, नीरोगता और निर्लोभता ये दश प्रकारके गुण प्राप्त होते हैं।

आयुर्वेद शास्त्र में स्नान के गुण इस प्रकार लिखे हैं।

"पवित्रं वृष्यमायुष्यं श्रमस्वेदमलापहम्।
शरीरबलसन्धानं स्नानमोजस्करं परम्॥"
(चरक सूत्रस्थान)

स्नान—पवित्रताकारक, वीर्य्य को बढ़ाने वाला, आयुवर्द्धक, थकावट, पसीना और मलको दूर करने वाला, शारीरिक बलको बढ़ाने वाला और ओज की अत्यन्त वृद्धि करने वाला है।

"निद्रादाहश्रमहरं स्वेदकण्डूतृषापहम्।
हृद्यं मलहरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रियविशोधनम्॥
तन्द्रापापोपशमनं तुष्टिदं पुंस्त्ववर्द्धनम्।
रक्तप्रसादनं चापि स्नानमग्नेश्च दीपनम्॥" (सुश्रुत)

स्नान—निद्रा, दाह (जलन, थकावट, पसीना, खुजली और प्यास को नष्ट करता है। एवं हृदय को हितकारी, मैल को दूर करने वाले उपायों में सर्वोत्तम और समस्त इन्द्रियों की शुद्धि करने वाला है। तथा तन्द्रा (ऊँघना) और पापों (दुःख) को नाश करता है। स्नान करने से चित्त प्रसन्न होता है, पुरुषार्थ खून बढ़ता है, साफ होता है और अग्नि प्रदीप्त होती है।

शीतल जल के सींचने से शरीर के बाहर की गरमी दबकर भीतर चली जाती है, अतएव मनुष्य की जठराग्नि प्रबल होजाती है। यह देखा जाता है कि भूख कैसी ही कम क्यों न हो, पर स्नान करते ही कुछ न कुछ अवश्य बढ़जाती है।

इसके अनन्तर नित्य सन्ध्योपासन और प्राणायाम के करने से शारीरक रोगों का ह्रास और आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति होती है। सन्ध्योपासन और प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु के शुद्ध होजाने से किसी प्रकार रोग होने की सम्भावना नहीं होती। प्राचीन समय में प्राणायाम के बल से ही महर्षि लोग आरोग्यतापूर्वक हज़ारों वर्ष की आयु भोगते थे। यह प्राणायाम का दृष्टफल है। यह चिकित्साशास्त्र में भी चरक आदि ग्रन्थों में देखा जाता है। धर्मशास्त्र में इसका प्रत्यक्ष फल इस प्रकार लिखा है:—

संध्यामुपासते ये तु सततं शंसिता व्रता।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥

अब वस्त्रधारण करने पर यदि विचार किया जावे तो इसमें भी दोनों शास्त्रों का मत एक ही है। यद्यपि दोनों शास्त्रों में फल भेद है, परन्तु वस्त्रों की स्वच्छता दोनों में समानरूप से अपेक्षित है। आयुर्वेद के मत से मलिन वस्त्रों को धारण करने से त्वचा में कई रोग उत्पन्न होजाते हैं और घर्मजल (पसीना) आदि से दूषित हुये वस्त्र मनुष्य के अन्दर जाने वाली स्वच्छ वायु को भी दूषित करदेते हैं, इससे मनुष्यों को कई प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। धर्मशास्त्र कहता है कि मलिन वस्त्र सदैव अशुद्ध हैं। उनके धारण करने में पाप है-और ऐसे वस्त्रों को धारणकर सन्ध्यादि धार्मिक कार्य करना दोष है। इन सभी उल्लिखित नियमों की शिक्षा के विषय में धर्मशास्त्र में एक अत्युत्तम श्लोक कहा गया है। वह श्लोक सुखाभिलाषी पुरुषों को अपने हृदय-पटल पर अवश्य मुद्रित कर लेना चाहिए।

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणम्,
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानम्,
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥" इति।

कविराज पं० ठाकुरदत्तशर्मा वैद्य
नृसिंह औषधालय, शुजाबाद, (मुलतान)

स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक विशेषतायें ।

(गत १० वें वर्ष की १०वीं संख्या से आगे)
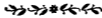
(ग) रक्त का जलीय अंश—स्त्रियों के रक्तमें जल का भाग पुरुषों की अपेक्षा अधिकतर होता है ।

(घ) रक्तके लाल कण—Red Corpuscles । पुरुष के रक्त में लाल कण अधिक होते है, इस बातको सबही मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं ।

(ङ) हिमेग्लोबिन—स्त्रियों के रक्त में पुरुषों से सौ में ८वाँ भाग हिमेग्लोबिन कम होता है । पुरुषों के सौ में १४·५, स्त्रियों के १३·३, और गर्भावस्था में ६ से १२ भाग तक रहता है ।

(च) आपेक्षक गुरुत्व का परिवर्त्तन—डाक्टर लायड जोन्स महादय ने कहा है कि १६ वर्ष की अवस्था तक स्त्री और पुरुष के रक्त का आपेक्षिक गुरुत्व प्रायः समान रहता है । स्त्रियों क १७ से ४५ वर्ष तक (गर्भाधान के समय में) रक्त का आपेक्षिक गुरुत्व कम होता है; किन्तु वृद्धावस्था में बढ़जाता है । इसी लिए स्त्रियाँ चिरजीविनी होती हैं ।

(छ) रुधिर के उपादान—

रुधिर के उपादान	पुरुष	स्त्री
रक्त के कण	५१३·००	३६६·२०
हिमेग्लोबिन और ग्लाबिउलस	१५६·६०	१२०·१०
धातुसम्बन्धी लवण	३·७०	३·५५
प्लाजमा	४८६·६०	६०३·८०
जल	४३६·००	५५२·००
फाइब्रिन	३·६०	१·६१
एलब्यूमेन एवं अन्यान्य पदार्थ	३६·६०	४४·७६
लवण	४·१४	५·०७

(ज) देशभेद, जातिभेद और आहार की न्यूनाधिकता के भेद से रक्त के तुलनात्मक गुरुत्व का परिवर्त्तन ।

देशभेद, जातिभेद, बाल्यकाल और यौवनकाल में आहार की अवस्था विशेष से रक्त के आपेक्षिक गुरुत्व के परिमाण में कुछ परिवर्तन होता है। किन्तु संसार के सभी देशों की सभी जातियों के यहाँ तक कि अन्यान्य प्राणियों के स्त्री-पुरुषों के रक्त का भी आपेक्षिक गुरुत्व और उपादान का सदैव ही विशेष अन्तर देखा जाता है।

(झ) माता के शरीर में लोह किस लिए सञ्चित होता है?

सुप्रसिद्ध डाक्टर वेङ्ग महोदय ने कहा है कि-"प्रथम गर्भ के सञ्चार होनेके पहले से ही माता के शारीरिक यन्त्रोंमें थोड़ा२ लोह सञ्चित होता है। उसके पश्चात् गर्भावस्था में इस लोह का अँश माता के रक्त के साथ मिलकर गर्भ की पुष्टि करता है।" डाक्टर फिडजाक्र महाशय ने कहा है कि—'माता के दूध में लोह का अँश थोड़ा होता है, और सन्तान का पालन पोषण करने से उसका अँश कम नहीं होता। अधिक अवस्थावाली स्त्रियों के रक्त में लोहका अँश होता है, इस कारण सन्तान के पालन पोषण में विघ्न उपस्थित होता है।

५२ स्त्री, पुरुष और बालकों की आभ्यन्तरिक उष्णता का अन्तर ।

प्रातःकाल		दोपहर	सायंकाल
नवजात शिशु	३७·४१	३७·८०	३७·६१
बालक-बालिका	३७·३७	३८·०७	३७·१२
पुरुष	३७·० प्रा:६८ ४का	३७·२५	३६·६०
स्त्री	३७·२२	३७·५५	३७·१०

५३—स्पर्शज्ञान—(Touch) स्त्रियोंके स्पर्श ज्ञानकी शक्ति पुरुषों की अपेक्षा प्रबल होती है।

५४—पीड़ाको सहन करनेकी शक्ति—Sensibility of Pain.

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के पीड़ा को सहन करने की शक्ति बहुत ज्यादह होती है। इसके सिवा स्त्रियों में आत्मत्यागकी शक्ति भी पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है।

५५. घ्राणशक्ति—(Smell) स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की घ्राणशक्ति अत्यन्त प्रबल होती है।

५६ आस्वादन शक्ति—(Teste) स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की आस्वादन शक्ति तीव्र होती है।

५७ श्रवण शक्ति—(Hearing) स्त्रियों की श्रवणशक्ति पुरुषों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है।

५८ दृष्टिशक्ति—(Sight) स्त्रियों के निकट की दृष्टिशक्ति पुरुषों की अपेक्षा अत्यन्त अधिक होती है, परन्तु दूरदृष्टि पुरुषों की अधिक होती है।

५६ स्त्री, और पुरुषकी शारीरिक शक्ति का पार्थक्य।

स्त्रियों की शारीरिक शक्ति पुरुषों की अपेक्षा तृतीयाँश कम होती है। पुरुष अपने शरीर के वज़न से दुगुने पदार्थ को उठा सकता है। स्त्री अपने शरीर के वज़न से आधे वज़न के पदार्थ को उठा सकती है। पुरुष १२० से १३० गज की दूरी तक बलपूर्वक जासकता है। किन्तु स्त्री ७० से लेकर १०० गज से अधिक दूर बलपूर्वक नहीं जासकती। इस कारण, शारीरिक शक्ति और शीघ्र गति में स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा बहुत हीन होती हैं।

६० शीत सहन करने की शक्ति—डाक्टर वाउसेट कहते हैं कि—"स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा बहुत अधिक शीत सहन करसकती हैं। इसलिए स्त्रियों को बहुत से वस्त्रों की आवश्यकता नहीं होती।"

उष्णता सहन करने की शक्ति-पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अग्निकी गरमी को अधिक सहन करसकती हैं। मिस्टर वेव महोदय ने कहा है कि—"स्त्री और पुरुष अग्नि के समीप रहनेपर स्त्रियाँ ही उत्तम प्रकार से कार्य्य करसकती हैं।

हस्ताक्षर—(Hand Writing) स्त्रियों के हस्ताक्षर पुरुषों की अपेक्षा बड़े होते हैं। थोड़ासा लिखना हो तो स्त्रियाँ पुरुषों की

अपेक्षा झटपट लिख सकती हैं; किन्तु अधिक देर तक लिखना हो तो पुरुष जितनी जल्दी और जितना अधिक एवं जिस प्रकार बिना कष्ट के लिखसकता है स्त्रियां वैसा नहीं लिखसकतीं।

६२—हाथ के कामों में निपुणता—हाथके किये हुए सब कामों में स्त्रियाँ पुरुषोंकी अपेक्षा हीन होती हैं।

६३ मानसिक शक्ति—डाक्टर गिलबर्ट कहते हैं कि-"यह बात सभी युगों में देखी गई है कि-लड़के लड़कियों की अपेक्षा अधिकतर भ्रमरहित होते हैं।

डाक्टर फ्राङ्ज़ और हास्टन आदि महोदयों ने कहा है कि लड़के लड़कियों की अपेक्षा समय, दूरदर्शिता, समानभाव, परिमाण आदि विषयों में विशेष भ्रमशून्य होते हैं।

६४ बुद्धिशक्ति—पुरुषोंकी विचारशीलता और विचार प्रणाली अत्यन्त गम्भीर और विवेकयुक्त होती है। स्त्रियाँ साधारण विषयों को यद्यपि बहुत जल्द समझ सकती हैं; किन्तु उनकी विचार प्रणाली वैसी गम्भीर नहीं होती। तथापि स्त्रियों में प्रत्युत्पन्नमति और हठबुद्धि पुरुषों से अधिक होती है। यह सभी जानते हैं कि-सन्तान, पति अथवा अन्य किसी प्रियजन के आपद्ग्रस्त होने पर स्त्रियाँ हठ से किसी उपाय को स्थिर करके उसको तत्काल उस विपत्ति से बचालेती हैं।

६५ असमय में बुद्धि का विकाश—पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के असमय में ही बुद्धि का विकाश होजाता है। इस लिये लड़कियाँ बाल्यावस्था में लड़कों की अपेक्षा अधिक चालाक और चतुर देखी जाती हैं। किन्तु वृद्धावस्था के होने पर स्त्रियाँ पुरुषों की समान गम्भीर बुद्धि का परिचय नहीं देसकतीं।

डाक्टर रिकार्डि कहते हैं कि-स्त्रियों का सामाजिकता में, साधारण शिक्षा में, गृहकार्यों में और प्राचीन रीति नीति में अत्यन्त प्रेम देखा जाता है।

६६ व्यवसाय वाणिज्य आदि में चतुरता- मिस्टर डाल्नी ने बहुत से बड़े २ व्यवसायियों से पूछकर यह मालूम किया है कि-स्त्रियाँ यद्यपि साधारण शिल्प, वाणिज्य कार्य (कारीगरी) में

पुरुषों की अपेक्षा परिश्रमी होती हैं, किन्तु पुरुषों से उनकी बुद्धि मन्द होती है। और वे अधिक कठिन परिश्रम का काम भी नहीं कर सकतीं।

मिस्टर सिडनि वेब महोदय कहते हैं कि-"प्रतिदिन के निर्दिष्ट कार्य्यों के सिवा और किसी कामका भार स्त्रियों को सौंप कर उसके पूरे होने का भरोसा नहीं किया जासकता।"

सांसारिक सभी कार्य्यों को स्त्रियाँ पुरुषों की समान बहुत जल्दी और निःसन्देह करसकती हैं; किन्तु गुरुतर और कठिन कार्य्य का भार स्त्रियों के ऊपर पड़नेसे वे पुरुषोंकी बराबरी नहीं कर सकतीं। कारण, स्त्रियों की शारीरिक शक्ति पुरुषोंसे बहुत कम होती है। वास्तवमें मातृत्व के विकाश के लिए ही स्त्रियोंकी शारीरिक और मानसिक शक्ति अथवा मनोवृत्तियाँ पुरुषोंकी अपेक्षा उग्र होती हैं; किन्तु पुरुषाश्रित किसी कार्य्य मे भी स्त्रियाँ पुरुषोंका बराबरी नहीं करसकतीं।

स्त्रियाँ दूसरे के ऊपर अपना प्रभुत्व नहीं करसकतीं, क्योंकि वे कठिन कामको उत्तम प्रकारसे सिद्ध करने में असमर्थ होतीहैं। इस विषयमें अधिक कहना व्यर्थहै। उपर्युक्त अनेक कारणोंसेही आजकल गवर्नमेन्ट स्त्रियों को डाक, तार और क्लर्क विभागमें नियुक्त करना नहीं चाहती। यदि स्त्रियों को इन कार्य्यों में नियुक्त करदिया जाय तो गवर्नमेन्ट को बहुतसी कठिनाइयाँ भोगनी पड़ेंगी।

६७ स्त्री पुरुषों के कार्य्यों की भिन्नता—आजकल पाश्चात्य देशों में प्रायः सर्वत्र स्त्रियाँ का डाक और तार विभाग में नियुक्त किया जारहा है। इन दोनों विभागों में भी स्त्रियाँ पुरुषोंकी समान सम्पूर्ण विषयोंमें दृढ़ता के साथ कार्य्य नहीं करतीं। कारण, स्त्रियाँ पुरुषों की समान कठिन परिश्रम नहीं कर सकतीं; थोड़े परिश्रम से ही घबड़ा जाती हैं—और सामान्य कष्ट ही कार्य्य में अनुपस्थिति (गैरहाज़िरी) करदेती हैं।

पुरुष जितनी योग्यता के साथ दिन रात जितने टेलिग्राम (तार) भेज सकते हैं, स्त्रियाँ वैसे परिश्रम के साथ उतने टेलिग्राम नहीं भेजसकतीं। यहाँतक कि टेलिग्राम के डेस और डट इत्यादि को भी स्त्रियाँ नियमानुसार संयोजित नहीं करसकतीं। कोई स्त्री टेलिग्राम भेजे तो दूसरे प्रान्त के पुरुष समझजाते हैं कि-

स्त्री ने यह टेलिग्राम भेजा है, कारण स्त्रियों से बहुत सी भूलें होजाती हैं।

डाक विभागके कार्य्य में भी बहुत सी स्त्रियाँ नियुक्त कीगई हैं। किन्तु उसमें भी स्त्रियाँ पुरुषों की समान निपुणता प्राप्त नहीं कर सकतीं। स्त्रियों की नियुक्ति से यद्यपि खर्च कुछ कम पड़ता है, किन्तु स्त्रियाँ कठिन परिश्रम नहीं करसकतीं रात्रिमें काम नहीं कर सकतीं। और रात्रिमेंही डाक विभाग के अधिकांश कार्य्य करने आवश्यक होते हैं। स्त्रियोंके लिए अलग विश्रामस्थान तथा पाखाना आदि स्थानों की और उनकी रक्षाके लिए पुरुषकी आवश्यकता होती है।

६८ अविमिश्रित ज्ञान—Abstract thought।

सत्यके विषयमें स्त्रियाँ जैसा सुनती हैं, वैसा ही मान लेती हैं। किन्तु पुरुष नित्य नवीन सत्य की कल्पना किया करते हैं। स्त्रियाँ प्रायः समस्त विषयों में बालकों की समान होती हैं।

६९ धर्म्मतत्त्व—पृथ्वी पर प्रायः ६०० प्रकार के भिन्न भिन्न धार्मिक सम्प्रदाय हैं। उनमें से केवल सात सम्प्रदाय स्त्रियों के द्वारा स्थापित किये हुए हैं। इससे यह बात स्पष्ट रूपसे मालूम होती है कि-स्त्रियाँ धार्मिक भावों को जिसप्रकार सहजमें धारण करसकतीं हैं, उसप्रकार किसी धर्म्मतत्त्व का आविष्कार नहीं कर सकतीं।

७० शिल्प ज्ञान—क्या चित्रविद्या, क्या सङ्गीत विद्या, क्या भास्कर विद्या (पत्थर की मूर्त्ति बनाना व पत्थर में अक्षर खोदना आदि) किसी विषय में भी स्त्रियाँ पुरुषों कीसमानता नहीं करसकतीं।

स्त्रियाँ यद्यपि सदैव गानेबजाने में चतुर देखी जाती हैं, किन्तु अबतक कोई भी स्त्री किसी नये वाद्ययन्त्र का आविष्कार नहीं करसकी।

७१ साहित्यज्ञान—साहित्य चार भागों में विभक्त है। जैसे-मनोविज्ञान, योगतत्त्व, कवित्व और कल्पना।

मनोविज्ञान में पुरुषकी ही प्रधानता देखी जाती है। यहाँतक कि तृतीय श्रेणी की लेखिका भी स्त्रियों में दृष्टिगोचर नहीं होती।

जो योगतत्त्व धर्म का मूल है, उस योगतत्त्व में स्त्रियों का विशेष अधिकार आजतक भी नहीं देखा गया।

कविता में भी स्त्रियाँ पुरुषों की समानता नहीं करसकतीं। ऐसी स्त्री-कवि बहुत थोड़ी देखीजाती हैं, जिनकी कविता की भाषा, भाव, गम्भीरता और विचारशीलता आदि की पुरुष-कवि के साथ तुलना कीजासके।

७२ साहित्यसेवियों की संख्या—साधारणतः, साहित्य संसार में समस्त विषयों में पुरुष का ही प्राधान्य देखा जाता है। अबतक योरपमें ४५०० लेखक हुएहैं, उनमें प्रति सैकड़ा केवल ४स्त्रियाँ हुई हैं। सुप्रसिद्ध ग्रन्थकार हॅव्लॅक इलस महोदय ने लिखा है कि-वृटिश जाति में अबतक सम्पूर्ण विभागों में १०३० प्रतिभाशाली मनुष्य उत्पन्न हुएहैं, उनमें प्रति सैकड़े ५ स्त्रियाँहैं।

७३ मानसिक उत्तेजन—स्त्रियों के स्नायुमण्डल की गठनप्रणाली पुरुषों से बिलकुल भिन्न होती है। सामान्य कारणसे ही स्त्रियों के स्नायुमण्डल की क्रिया उत्तेजित होजाती है। स्त्रियाँ स्नायु सम्बन्धी नाना प्रकार की पीड़ाओं से अधिकतर आक्रान्त रहती हैं।

स्त्रियों के कुछ थोड़ीसी मानसिक उत्तेजना होने से ही उनके स्तनों का दूध विषैला होजाता है। सामान्य क्रोध या किसी प्रकार के शोक, सन्ताप, भय, त्रास आदि कारणों से माताका दुग्ध विकृत व विषैला होजाता है।

७४ जन्म-मृत्यु की संख्या—आजकल संसार के प्रायः सभी देशों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है।

यद्यपि पुरुष-सन्तानें अधिक उत्पन्न होती हैं तथापि स्त्रियों की संख्या ही अधिक देखी जाती है।

स्त्रियों की संख्या अधिक होने का कारण यह है कि जन्म से लेकर मृत्यु पर्य्यन्त पुरुषसन्तानों की मृत्युसंख्या बहुत अधिक होती है। कन्याओं की अपेक्षा छोटे बालकों की मृत्युसंख्या अत्यन्त अधिक होती है। पुरुष शिशु के शिरकी खोपड़ी (Skull) लड़कियों की अपेक्षा कुछ बड़ी होने के कारण बहुत से पुं-शिशु प्रसव के समय अथवा उस के बाद मरजाते हैं। दाँत निकलने के

समय पुंसन्तानें ही अधिकतर मृत्यु के मुखमें पतित होती हैं। जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक स्त्रियाँ दीर्घजीवनी, आरोग्य और बलवती रहती हैं। स्त्रियों की जीवनीशक्ति पुरुषों की अपेक्षा श्रेष्ठ होती है।

७५ जननेन्द्रिय—यह स्त्रियों और पुरुषोंमें सर्वथा भिन्नप्रकार कीहोतीहै। पुरुषकी जननेन्द्रिय-बाह्य जननेन्द्रिय और अण्डकोष हैं। स्त्रियों की जननेन्द्रिय-बाह्य जननेन्द्रिय, जरायु, फेलोपियान ट्यूब (डिम्ब नाली के द्वारा डिम्बकोष से जरायु में डिम्ब आता है), डिम्बकोष और इसके आनुषङ्गिक स्तन इत्यादि।

इनकी क्रियायें भी बिल्कुल अलग २ हैं। एक जरायु में और गर्भाशय में प्रतिमास जितने परिवर्तन होते हैं, उनके साथ पुरुषों के किसी यन्त्र की क्रिया की तुलना नहीं कीजासकती। स्त्रियोंकी जरायुक्रिया ही सर्वप्रधान है। यह जरायुक्रिया ही स्त्रियों की मध्यविन्दु है, अर्थात् इस जरायु की ओर लक्ष्य रखकर ही प्रकृति ने स्त्रियों के शारीरिक गठन और क्रियाओं को यथोचितरीति से निर्म्माण किया है।

७६ ऋतु—प्रतिमास जरायु के भीतर की पुरानी झिल्ली (पर्दा) गिरजाती है और नई झिल्ली उत्पन्न होती है। इस झिल्ली के टूटनेपर जो रक्तस्राव होता है उसको "ऋतु" कहते हैं। जैसे प्रत्येक वर्ष में वृक्षपर नये पत्ते आते हैं, उसीप्रकार झिल्ली भी (गर्भसञ्चार के लिए) प्रत्येक मास में नवीन संगठित होती है। गर्भ रहने पर, और दूध पिलाते समय ऋतु बन्द रहता है। उस समय सब यन्त्रों की क्रियायें बन्द होजाने पर केवल स्तनों की क्रिया होती है। स्त्रियों के १३-१४ वर्ष की अवस्था से ४५ वर्ष की अवस्था तक ऋतुक्रिया होती है। ऋतुकाल के ३-४ दिन तक स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं में नाना प्रकार के परिवर्तन होतेहैं। इनदिनोंमें स्त्रियोंकी शारीरिक गरमीकी कुछ वृद्धि, प्रस्वेद के उपादानों का व्यतिक्रम, दृष्टिशक्तिकी कुछ क्षीणता, स्नायु-मण्डलकी क्रियाका उत्तेजित होना, क्षुधाकी अल्पता, गलेके स्वरका परिवर्तन होना, रोगिणीशक्ति का ह्रास और स्वभाव में चिरचिरा-पन इत्यादि लक्षण होते हैं। ऋतुकाल में बहुतसी स्त्रियाँ अनेक प्रकार के अपराध और आत्महत्या तक करडालती हैं।

जगत्प्रसिद्ध विद्वान् स्मिथ महोदय ने कहा है कि:-" ऋतुमती स्त्री किसी वृक्ष को छूलेवे तो वह वृक्ष सूखजाता है। बीज को छू लेन से वह बीज नष्ट होजाता है। खाद्य पदार्थों को छू लेने से वे खराब होजाते है। मद्य को छूलेने पर उसमें अम्लता आजाती है। वृक्ष के नीचे रहने से उस वृक्ष के फल झड़पड़ते हैं, इत्यादि।"

स्त्री-पुरुषके गठनका पार्थक्य पहले साधारणरूपसे वर्णन किया जाचुका है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के शारीरिक गठन, सम्पूर्ण क्रियाओं, समस्त शक्ति-और यहाँ तक कि स्त्रियों के देह के प्रत्येक परमाणुको प्रकृति ने पुरुषों से भिन्न क्यों रक्खा है, इसी विषय का हम नीचे संक्षेप से वर्णन करते हैं।

१ अस्थि (Bones)-स्त्रियों की अस्थियाँ पुरुषों से हलकी, छोटी, चिकनी और सरल होती हैं। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के वस्तिप्रदेश, पंजर और, छाती की हड्डियों की गठन-प्रणाली पुरुषों से बहुत पतली, चिकनी और सरल देखी-जाती है। इस भिन्नता का कारण क्या है? केवल प्रसव आदि को सुविधा के लिये स्त्रियों की अस्थियाँ पुरुषों से भिन्न रक्खीगई हैं। स्त्रियों के वस्तिस्थान की हड्डियाँ यदि पुरुषों के ही समान होतीं तो स्त्रियाँ किसी प्रकार भी प्रसव नहीं करसकती थीं। स्त्रियों के शरीर के वस्तिप्रदेश की हड्डियों की गठनप्रणाली और मुखके माप में ही पुरुष से भेद कियागया है, यह बात नहीं, बल्कि गर्भावस्था में वस्तिस्थान की सन्धियों में जो परिवर्त्तन होते हैं, उनसे अस्थिसञ्चालन में सुविधा होती है। सन्धिस्थानों की अस्थियाँ और उपास्थियाँ फूली हुई और कोमल होती हैं। एवं दो खण्ड (टुकड़े) उपास्थिया के संयोगस्थान में जो मस्तक की झिल्ली में रहते है, वे परिवर्त्तित और पतले पदार्थ से पूर्ण होते हैं।

इसप्रकार स्त्रियों के शरीर की प्रत्येक अस्थि केवल मातृत्व के विकाश की सहायता के लिये ही पुरुषों से भिन्न निर्माण कीगई है।

(अपूर्ण)

नाड़ी-परीक्षा।

(गतांक से आगे)

स्वस्थ नाड़ी के लक्षण।

यह बात स्वभावसिद्ध है कि किसी भी वस्तु की विकृति (विकार) का ज्ञान किसी भी मनुष्य को तबतक नहीं होसकता, जबतक उसे उसकी प्रकृति (असली स्वरूप) का स्पष्ट पूर्णज्ञान प्राप्त न हो। क्योंकि विकृति तो प्रकृति की ही होती है। अतएव प्रत्येक प्राणी का उचित है कि वह विकृति-ज्ञान के पहले ज्ञातव्य वस्तु की प्रकृति का ज्ञान अवश्य करले, अन्यथा उसके कर्त्तव्य की सिद्धि नहीं होसकती। इसी सिद्धान्त के अनुकूल हमारे नाड़ी-विज्ञान के विज्ञानी आचार्यों ने विकृतनाड़ी के लक्षण लिखने के पूर्व प्रकृतिस्थ नाड़ी का लक्षण लिखा है। वे कहते हैं-" भूलता भुजगप्राया स्वच्छा स्वास्थ्यमयी सिरा।" अर्थात् जो नाड़ी केंचुआ या साँपके समान धीरे धीरे चलती है, और जिसकी गतिमें किसी तरह की जड़ता या रुकावट नहीं होती, वह, भलीभाँति प्राणियों के स्वास्थ्य का अपनी गति द्वारा सूचित करती है। कोई२ " भूलता भुजगप्राया " की जगह "भूलतागमनप्राया" पाठ लिखकर भूलता (केंचुआ) के गमन के समान गमन करने वाली अर्थ करते हैं, एवं "स्वच्छा" की जगह " स्वस्था " लिखकर-जो नाड़ी प्रकृतिस्थ हो, अर्थात् प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल में जिसकी गति क्रमशः स्निग्धता, उष्णता और चञ्चलता से युक्त हो वह नाड़ी स्वास्थ्य सूचक होतीहै, ऐसा अर्थ करतेहैं। इनदोनों पाठ-भेदों में प्रथम का प्रथम पाठ और द्वितीय का द्वितीय पाठ सर्व्व सम्मति से स्वीकृत, प्रशंसनीय तथा सराहनीय है। नीरोग मनुष्य की नाड़ी का लक्षण लिखते हुये आचार्य्य कहते हैं—" सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया यथा बलवती मता"। अर्थात् नीरोग मनुष्य की नाड़ी मन्द चलती हुई भी पूर्ण बलशालिनी होती है। कतिपय आचार्य्य "सुखितस्य" की जगह " सुखिनः", पाठ लिखकर, साधारण सुख शाली मनुष्यकी नाड़ीका यह लक्षण समझना चाहिए, अतिसुखशाली मनुष्यका नहीं। क्योंकि 'भुक्तस्य शान्तस्य च मेदुरस्य निद्रारतस्यापि

तथाचिरंतैः। कफाकुलस्यानिसुखे रतस्य स्थौल्यं दधाना शिथिलं प्रयाति"। इस प्रमाण से अत्यन्त सुख में लीन मनुष्य की नाड़ी स्थूलता युक्त और शिथिल चलने वाली रहती है, ऐसा कहते हैं।

समय भेद से नाड़ी का गतिभेद।

जिस तरह ऋतुभेद से दोषों के सञ्चय, प्रकोप और प्रशमन में परिवर्त्तन हुआ करता है, जैसे ग्रीष्म में वायु का, वर्षा में पित्त का, और हेमन्त में कफ का संचय, एवं वर्षा में वायु का, शरद् में पित्त का, और वसन्त में कफ का प्रकोप, तथा शरत् में वायु का, वसन्त में पित्त का, और वर्षा में कफ का प्रशमन होता है, इसे आर्त्तविक (ऋतुजन्य) परिवर्त्तन कहते हैं। उसी तरह दोषों का एक दैनिक परिवर्त्तन भी हुआ करता है। जैसे-दिनके आदि में कफ का, दिन के मध्य में पित्त का, और दिन के अन्त में वायु का, एवं रात्रि के आदि में कफ का, रात्रि के मध्य में पित्त का, और रात्रि के अन्त में वात का प्रकोप होता है। और उन उन समयों में ठीक उन्हीं २ दोषों के अनुकूल शारीरिक समस्त भावों का परिवर्त्तन भी हुआ करता है। जैसे-प्रातःकाल कफ के प्रकोप का समय है तो उस समय कफ के स्वभाव के अनुकूल, एवं मध्याह्न पित्त के प्रकोप का समय है तो पित्त के स्वभाव के अनुकूल तथा सायंकाल वात के प्रकोप का समय है तो उस समय वात के स्वभाव के अनुकूल ही नाड़ी की गति होती है। इसी भाँति रात में भी हिसाब लगा लेना चाहिये। इसी आशय को लेकर समय भेद से नाड़ी के गतिभेद को बताते हुये आचार्य्य कहते हैं:-

"प्रातः स्निग्धमयी नाड़ी मध्याह्नेऽप्युष्णतान्विता।
सायंकाले च धावन्ती चिराद्रोगविवर्जिता॥"

अर्थात्—चिरकाल से जिसे कोई रोग नहीं हुआ है और भविष्यत् में भी चिरकाल तक जिसे कोई रोग होने वाला नहीं है, उसके शरीर की नाड़ी प्रातःकाल में स्निग्धतायुक्त, मध्याह्नकाल में उष्णतायुक्त, और सायंकाल में चंचलतायुक्त रहती है। अर्थात्— प्रातःकाल में कफ गुणविशिष्ट, मध्याह्नकाल में पित्तगुणविशिष्ट, और सायंकाल में वात गुणविशिष्ट नाड़ी की गति होती है। जिसे यह दोषानुरूप नाड़ी का मतभेद ज्ञात है, वह नाड़ीज्ञान में कभी भी मोह को प्राप्त नहीं होता।

अस्तु;अब यहाँ प्रकृतिस्थ नाड़ीके लक्षण लिखनेके बाद बाल,युवा और वृद्ध मनुष्य की प्रकृतिस्थ नाड़ी की स्पन्दन संख्याका लिखा जाना भी अत्यावश्यक है। क्योंकि साधारण मनुष्य-जिन्हें नाड़ियों का सूक्ष्मज्ञान नहीं है, वे नाड़ियों की स्पन्दन संख्या के ज्ञान से भी नाड़ियों के विकार का ज्ञान प्राप्त करके रोगों का निदान, एवं चिकित्सा करने में सफल मनोरथ होसकेंगे। अतएव उनका हिसाब नीचे लिखा जाता है।

नाड़ियों की स्पन्दन संख्या।

एक गुरुवर्ण के उच्चारण करने में जितना समय लगता है, उसे निमेष करते हैं। और ६० निमेष का एक पल. तथा २॥ पल का एक मिनट होता है। ६० पल अर्थात्-२४ मिनट का एक दण्ड और २॥ दण्ड अर्थात् ६० मिनट का एक घण्टा होता है।

तत्काल उत्पन्न हुए लड़के की नाड़ी एक मिनट में१४० बार धड़कती है। ज्यों २ बालक बड़ा होता है, त्यों २ यह नाड़ाकी स्पन्दन संख्या भी क्रमशः कम होती जाती है। स्वस्थ (नीरोग) सुखपूर्वक बैठे हुये, या आनन्दपूर्वक सोये हुये लड़कों के नाड़ीस्पन्दन निम्न-लिखित प्रकार से होता है।

६ से १२ मास तक के लड़के की नाड़ी प्रतिपल ४२ अर्थात् २॥ पल (१ मिनट) में १०५ से प्रतिपल ४६ अर्थात्-२॥ पल (१मिनट) म ११५ बार तक धड़कती है। और २ से ६ वर्ष तक के बालक की नाड़ी प्रतिपल ३६ अर्थात्-२॥ पल (१ मिनट) में ९० से प्रतिपल ४२ अर्थात्-२॥ पल (१मिनट) में १०५ बार तक धड़कती है। ७ से १० वर्ष तक के बालक की नाड़ी प्रतिपल ३२ अर्थात्-२॥ पल (१मिनट) में ८० से प्रतिपल ३६ अर्थात् २॥पल(१मिनट)में९० बार तक धड़कती है। ११ से १४ वर्ष तक के बालक की नाड़ी प्रतिपल ३० अर्थात् २॥पल (१मिनट) में ७५ से अर्थात्-प्रतिपल ३४ अर्थात् २॥पल (१मिनट) में ८५ बार तक धड़कती है।

नीरोग मनुष्य का नाड़ीस्पन्दन प्रति मिनट में ७०—७५ बार होताहै। वृद्धावस्थामें नाड़ीस्पन्दनकी संख्या कुछ अधिक,और अतिवृद्धावस्था में उससे भी अधिक होती है। प्रौढ पुरुषों के नाड़ी स्पन्दन की अपेक्षा प्रौढस्त्रियों का नाड़ीस्पन्दन प्राय: दो बार अधिक होता है। सच तो यह है कि—सद्योजात बालक से लेकर

उत्तरोत्तर प्रौढावस्था तक नाड़ीस्पन्दन की संख्या कम होती जाती है, और पुनः वृद्धावस्था आने पर ज्यों २ वृद्धावस्था बढ़ती है, त्यों २ नाड़ीस्पन्दन की संख्या भी बढ़ती है।

अधिक भय, गर्मी, क्रोध, श्रम, अतिहर्ष, ज्वर, मैथुनेच्छा, भोजन, जलपान तथा व्यायाम करने के समय स्वभावतः नाड़ीस्पन्दन की संख्या प्रायः अधिक, एवं क्लेश, कमजोरी, उपवास, अचानक भयजनक दृश्य, तथा शोकजनक समाचारों के सुनने और देखने से नाड़ीस्पन्दन की संख्या स्वभावतः कुछ कम हो जाती है।

सारांश यह है कि जिन २ कारणों से हृदयस्पन्दन होता है, उन्हीं २ कारणों से नाड़ीस्पन्दन भी होता है। क्यों कि हृदय १ मिनट में जितनी बार रक्त को ग्रहण या मोचन करता है उतनी ही बार नाड़ीस्पन्दन भी होता है। इसका कारण यह है कि- हृदयविमुक्त स्वच्छ रक्त धमनियों द्वारा जब समस्त शरीर में फैलने लगता है, तब उसमें जो रक्त द्वारा धमनियों में आघात पहुँचता है उसी आघात से नाड़ियों में गतियाँ उत्पन्न होती हैं, और वे गतियाँ ही नाड़ीस्पन्दन रूप ज्ञात होती हैं।

दृष्टान्तप्रदर्शनपूर्वक वातादि नाड़ियों का गतिवर्णन।

यद्यपि यह पहले कहा जाचुका है कि दोषों के स्वाभाविक लक्षण, प्रकोप तथा समय के अनुकूल ही नाड़ियों में गतियां उत्पन्न होती हैं और उन्हीं गतियों को देखकर वैद्य लोग उन २ दोषों का यथार्थविज्ञान करलिया करते हैं। तथापि शिष्यों को सुगमता, पूर्वक नाड़ीविज्ञान की शिक्षा देने के लिये फिर भी दृष्टान्त प्रदर्शन पूर्वक प्रकुपित दोषों की नाड़ियों का लक्षण लिखते हुए आचार्य कहते हैं--

"सर्पजलौकादिगतिं वदन्ति विबुधाः प्रभञ्जनेन नाडीम्
पित्तेन काकलावकभेकादिगतिं विदुः सुधियः॥
राजहंसमयूराणां पारावतकपोतयोः।
कुक्कुटस्य गतिं धत्ते धमनी कफसंवृता॥"

अर्थात्-प्रकुपित वायु के संयोग से नाड़ी की गति साँप, जोंक और बिच्छू की भाँति प्रतीत होती है। जैसे-सर्पप्रभृति जन्तु कभी कुटिलतायुक्त धीरे २ चलते हैं और कभी दौड़ते हुए अतिशीघ्र सीधे चलते हैं, उसी तरह प्रकुपित वायु को नाड़ी भी कुटिलतायुक्त

मन्द २ और कभी सीधे भाव से जल्दी २ चलती है। एवं प्रकुपित पित्त की नाड़ी— काक, लवा, और मेड़क (बेंग) की भाँति कभी धीरे २ कूद २ कर, और कभी सीधे वेगसे चलती है। प्रकुपित कफकी नाड़ी—राजहंस, मोर, पारावत (चित्रविचित्र कण्ठ वाला कबूतर) कपोत (साधारण कबूतर) और मुर्गे की भांति चलती है। अर्थात्-जैसे हंस प्रभृति पक्षी अपनी गम्भीर गति से पृथ्वी को नमित करते हुये कभी अन्त:प्रविष्ट के से, और कभी ऊपर विद्यमान केसे मालूम पड़ते हैं, उसी तरह प्रकुपित कफ की नाड़ी भी गम्भीर अन्त: प्रविष्ट तथा मन्द चलती हुई सी मालूम होती है।

द्वन्द्वज नाडियों का लक्षण

जो नाड़ी बारंबार तुरन्त साँप की तरह टेढ़ी चलती है, और फिर तुरन्त ही मेडक की भांति कूद २ कर चलती है, उसे वात पैत्तिक नाड़ी समझना चाहिये।

वायु और कफ के प्रकोपसे नाड़ी-कभी साँप की भाँति टेढ़ी और कभी राजहंस की भांति गम्भीर चलती है।

पित्त और कफ के प्रकोपसे-नाड़ी कभी मेड़क की भाँति, और कभी कबूतर की भाँति चलती है।

कोई कोई कहते हैं कि पित्त और कफ की नाड़ी सूक्ष्म, शीतल और स्थिर चलती है। और कफ तथा वायुकी नाड़ी-सांप और हंस की भाँति चलती है।

[क्रमशः]

वाजी-करण।

(प्रथम संख्या से आगे)

वाजीकरणका अधिकारी मनुष्य-(१) वाजीकरण का प्रयोग युवापुरुषके लिए ही अधिक उपयुक्त होताहै। बालक या वृद्धपुरुष को यह क्रिया एकदम नहीं करनी चाहिए। क्योंकि बालक के शरीर में सब धातुयें पूर्ण रूपसे बढ़कर उतनी स्थिर और पुष्ट(मज़बूत) नहीं रहती जितनी कितरुण पुरुषमें।बाल्यावस्थामें सब धातुयें बढ़ती रहती हैं। किसी वस्तु को वर्द्धनकाल में छेड़ने से उसकी वृद्धि मारी

जाती है। इसलिए जो बालक वाजीकरण औषधका सेवन कर स्त्री-प्रसङ्ग करताहै तो उसका शरीर और शुक्र आगे बढ़ने नहीं पाता और वह स्वयं इस प्रकार सूखजाता है जिस प्रकार अधिक पानी खर्च करने से पहले ही कम पानी वाला नया तालाब सूखजाता है।

इसी प्रकार वृद्ध पुरुषके भी सब धातुयं प्रायः कमी पर रहते हैं। उनके सब धातु और शरीर दिन २ क्षीण होते जाते हैं। ऐसी अवस्थामें स्त्रीसेवन करने से बूढ़ा आदमी इतनी जल्दी नष्ट हो सकता है जितनी जल्दी ज़रासा भी आघात पहुँचने पर-ठूंठ, और गला सड़ा पेड़।

जैसे कहा भी है—

"अतिबालो ह्यसम्पूर्णः सर्वधातुः स्त्रियो व्रजन्।
उपतप्येत सहसा तडागमिव काजलम्॥
शुष्कं रूक्षं यथा काष्ठं जन्तुजग्धं विजर्जरम्।
स्पृष्टमाशु विशीर्येत तथा वृद्धः स्त्रियो व्रजन्॥
(चरक सं० वाजीकरण प्रकरण।)

(२) "वाजीकरण" औषध उसको ही सेवन करना चाहिए। जो समय पर कुमार्ग से अपनी इन्द्रियों को हटा सकता है। इन्द्रियासक्त पुरुष वाजीकरण सेवन कर अवैध रूपसे सांसारिक सुख में प्रवृत्त होकर अपने को हरतरह से नष्ट करसकता है।

(३) जिनके घरमें गृहिणी नहीं है वे भी वाजीकरण से अलग रहें।

(४) ब्रह्मचारी मनुष्य जिसे हर तरह से मैथुन क्रिया से अलग रहना उचित है, उसे भी "वाजीकरण" से दूरही रहना चाहिए। क्योंकि वाजीकरण क्रिया का यह स्वाभाविक गुण है कि उससे जो शरीर में शुक्र तयार होता है; वह गर्भाधान के लिए ही उपयुक्त होता है, वह शरीर में रुक नहीं सकता। वह मन और शरीर में ऐसा जोश पैदा करदेता है जिससे प्रेरित होकर न चाहते हुआ मनुष्य भी गर्भाधान क्रिया में जबर्दस्ती प्रवृत्त होजाता हैं।

वाजीकरणस्त्वोषधयः स्वबलगुणोत्कर्षाच्छुक्रं शीघ्रं विरेचयन्ति। (सुश्रुत सं० सू० स्था०)

अर्थात्-वाजीकरण ओषधियाँ तीन प्रकार से शरीर में उपयुक्त शुक्र को पैदा कर गर्भाधान के लिये शीघ्र ही शरीर के बाहर

निकाल देती हैं। कोई अपने बल (प्रभाव) से जैसे-स्त्री आदि कोई गुण से जैसे-दूध घी वगैरह, और कोई प्रभाव और गुण दोनोंसे। जैसे-किंवाच उर्द आदि।

वाजीकरण का तात्कालिक प्रभाव।

यद्यपि ऐसा लिखा है—

स खलु त्रीणि त्रीणि कलासहस्राणि पञ्चदश च पकैकस्मिन् धातावबतिष्ठते, एवम्मासेन रसः शुक्रो भवति स्त्री ण्यार्तवम्॥

किये गये भोजन से रस तो एक ही दिन में पैदा होजाता है-लेकिन रक्त आदि और धातुयें पाँच २ दिन में पैदा होती हैं। इस प्रकार से शुक्र और स्त्रियों का आतव एक मास में पैदा होना है।

परन्तु वाजीकरण औषध से उसी दिन शुक्र पैदा होजाता है। यह उसका प्रभाव है।

वृष्यादीनि प्रभावेण सद्यः शुक्रादि कुर्वते।

सेवन विधि।

वाजीकरण औषध शरीर शुद्ध करके ही सेवन करनी चाहिए। अशुद्ध देह में औषध अपना पूरा प्रभाव नहीं दिखासकती। जिस प्रकार मैले कुचैले कपड़े पर रङ्ग ठीक नहीं चढ़ता।

स्रोतःसु शुद्धेष्वमले शरीरे वृष्यं यदा नाऽमितमत्ति काले।
वृषायते तेन परम्मनुष्यस्तद्बृंहणञ्चैव बलप्रदञ्च॥
तस्मात्पुरा शोधनमेव कार्यं बलानुरूपं नहि वृष्ययोगाः।
सिद्ध्यन्ति देहे मलिने प्रयुक्ताः क्लिष्टे यथा वाससि रागयोगाः॥

(च. वा. अ)

विरेचन की दवायें।

हरड़, सैंधानमक, आमला, गुड़, वायविड़ङ्ग, बालवच, हलदी, पीपल, और सोंठ। इन सबको चूर्ण करके गर्म जलके साथ सेवनकरे। विरेचन द्वारा इस औषध से शरीर शुद्ध होजाने पर ५ दिन तक घी मिलीहुई खिचड़ी अथवा और कोई हलकी चीज खाय। जिससे शरीर पूर्ववत् फिर बली होजाय। तदनन्तर ५ दिन तक दलिया घी के साथ खावे। इससे जो कुछ पुराना मल बाकी रहता है वह भी निकलजाता है। इस प्रकार जब जानले कि शरीर साफ और मन प्रसन्न होगया तब अपनी शक्ति, रुचि, प्रकृति और अवस्था के अनुसार वाजीकरण औषध सेवन करना आरम्भ करे।

*हरीतकीनां चूर्णानि सैन्धवामलकेगुडम्।
वचां विडङ्गं रजनीं पिप्पलीं विश्वभेषजम्॥
पिबेदुष्णाम्बुना जन्तुः स्नेह स्वेदोपपादितः।
तेन शुद्धशरीराय कृतसंसर्जनाय च॥
यावकं सर्पिषा दद्यात्पञ्चाहं वै प्रयत्नतः।
पुराणस्य पुरीषस्य शुद्धिरेतेन जायते॥
शुद्धकोष्ठन्तु तं ज्ञात्वा वृष्ययोगमुपाचरेत्।
वयः प्रकृतिसात्म्यज्ञो यौगिकं तस्य यद्भवेत्॥

वाजीकरण के अधिकारी की शुद्धि।

वाजीकरण स्वस्थ (तन्दुरुस्त) पुरुष को ही सेवन करना चाहिये, क्योंकि रुग्ण शरीर में इस प्रकार की औषध का कुछ भी असर नहीं होता। उल्टा उससे रोग बढ़ता ही है। इसीलिये सर्व श्रेष्ठ वाजीकरण-दूधको प्रमेह का निदान माना है। कितने चिकित्सकगण शुक्र प्रमेह में वाजीकरण औषध का प्रयोग करते हैं, परंतु यह नितान्त विपरीत है क्योंकि प्रमेह रोग में वाजीकरण औषध अपने प्रभाव से जो नवीन शुक्र पैदा करता है वह भी पहले के दूषित शुक्र के साथ मिलने से दूषित होकर प्रमेह को पहले से भी अधिक प्रबल अवस्था में परिणत करदेता है। इसलिये पहले प्रमेह या और दूसरे रोग को चिकित्सा से दूर करके बाद में वाजीकरण का प्रयोग करना उचित होता है।

(ले० पं० हरिनारायण शर्मा, वैद्य।)

—०—

आबोहवा।

पहले भारतवासियों को जीवनसंग्राम के लिए इसप्रकार हाहाकार नहीं करना पड़ता था। उस समय यहाँ अन्न, वस्त्रादि का अभाव नहीं था, जनसंख्या की इतनी अधिकता न थी। विदेशी

*यद्यपि यह शोधन रसायन अधिकार में कहा गया है, परन्तु मैंने इसीको वाजीकरण अधिकार में भी रखना उचित समझा। और मूलपद्यों में एक आध जगह कुछ परिवर्त्तन भी किया है। यदि अनुचित हो तो युक्ति और प्रमाण मिलने पर इसे निकाल भी सकता हूँ।

लोग विदेश से आकर भारत की सस्य सम्पत्ति को लूटते न थे और विलासप्रियता का भी जब इतना प्रभाव नहीं था। उस समय भारतवासी खुली हवा में रात दिन शारीरिक परिश्रम करते थे। सुख तथा स्वच्छन्दतापूर्वक बलवान् और स्वस्थ शरीर से प्रसन्न चित्त होकर बड़े आनन्द से समय व्यतीत करते थे। उस समय स्वास्थ्य की रक्षा के लिए शुद्ध-वायु के लिए इस प्रकार तरसना नहीं पड़ता था। किन्तु, आजकल समय के प्रवाह से पाश्चात्य सभ्यता और उसकी आनुषङ्गिक विलासिता ने देश, समाज और मनुष्यों में बिलकुल परिवर्त्तन करदिया है। जीवनसंग्राम की कठिनता, अनेक प्रकार की प्रतियोगिता, अनाहार, आधा आहार, वस्त्रों का अभाव, उग्र और तीक्ष्ण वीर्यवाली विदेशी ओषधियाँ ये सब पदार्थ बराबर मनुष्यों के स्वास्थ्य को खराब करते रहते हैं। और इसीप्रकार रेलका धुआँ, नाली नालोंकी खुदाई और अनेक कल कारखानों के कारण इस देश के जल-वायु सदैव दूषित रहनेसे नानाप्रकारके रोग उत्पन्न होतेरहतेहैं। वास्तव में, मनुष्य स्वास्थ्य-विज्ञान को भूल जाने के कारण ही स्वास्थ्य सुख से वञ्चित रह-कर सदैव भयङ्कररोगों की यन्त्रणायें भोगा करते हैं। और उसपर लोभी, निर्दयी, मायावी और स्वास्थ्यविज्ञान से सर्वथा अन-भिज्ञ चिकित्सक लोग जौंक की तरह रोगी मनुष्य के पीछे लगकर उसकी प्रकृति और देश के जल-वायु के विरुद्ध तीक्ष्ण और विषैली ओषधियों का प्रयोग करके उसके रक्त को सुखा देते हैं। उस समय रोग के भयङ्कर और पुराने होजाने पर प्रायः सभी श्रेणी के चिकित्सक रोग को आरोग्य करने में असमर्थ होकर रोगी को केवल जल-वायु के परिवर्त्तन करने के लिये राय दिया करते हैं। वास्तव में शरीर की नाना प्रकार की विकृतावस्था में वायु का परिवर्त्तन ही एक उत्तम औषध है। किन्तु यह महौषध निर्धन और असमर्थ लोगों के लिए दुष्प्राप्य है। धनवान् लोग ही इससे लाभ उठा सकते हैं।

आबोहवा (Climate) भिन्न भिन्न ऋतुओं में, भिन्न भिन्न स्थानों में, गरमी, आर्द्रता, भूकम्प, प्रबल वायु, भूमि की अवस्था और विद्युत् आदि के द्वारा विशेष प्रकार की अवस्था उत्पन्न करती है। उस के द्वारा जीवों में विशेषरूपसे परिवर्त्तन होताहै। उष्णप्रधान

स्थान विषुवरेखा (दोनों मेरुदण्डों के समीपवर्त्ती स्थान में जो मण्डलाकार रेखा पूर्व-पश्चिम के गोले के चारों ओर व्याप्त रहती है, सूर्य्य के इस रेखा पर उपस्थित होने से दिन रात बराबर होते हैं) के दोनों पार्श्वों में ३५° डिग्री तक हैं। न अति शीत और न अति उष्ण स्थान ३५° डिग्री से ५०° वा ५५° डिग्री तक उत्तर और दक्षिण में हैं। शीतप्रधान स्थान ५०° वा ५५° डिग्री से सुमेरु और कुमेरु पर्य्यन्त हैं। इनके सिवा आर्द्र, शुष्क, पर्वतमय, समतल, समुद्रतटस्थ सब स्थान विषुवरेखा के निकटवर्त्ती हैं। इन स्थानों में स्वभाव से ही वायु और गरमी के प्रभाव से सब जीवों में परिवर्त्तन होता है। यहाँ अन्यान्य स्थानों के विस्तृत विवरण लिखकर प्रबन्ध को जटिल न करके हम केवल अपने हमेशा के वासस्थान भारत का ही संक्षेप से वर्णन करेंगे।

हमारे वासस्थान बहुत से समुद्रों के निकट हैं, इस कारण सूर्य्योदय के कुछ देर पीछे समुद्र स स्थल के सामने शीतलवायु बहता है, उसको सामुद्रिक वायु (Sea Wind) कहते हैं। सूर्य्यास्त के पीछे इस प्रकार का जो वायु प्रतिकूल दिशाओं में बहता है, उसको स्थलवायु (Land Breeze) कहतेहैं। भारतवर्ष के उत्तर पश्चिम भागों में "लू" वायु प्रवाहित होता है। प्रबल वायु एक स्थान से दूसरे स्थान में शीतलता व उष्णता को बहाती है, उससे गरमी और आर्द्रता का सहसा परिवर्त्तन होता है। इस प्रकार यह एक स्थान की आवोहवा अन्य स्थानों में प्रवाहित होती है। प्रबल वायु के मध्य में सामयिक वायु व "मानसून" (Monsoon) हमारे देश में वृष्टि करता है। यह मानसून वायु भारत समुद्र के ऊपर चलने के समय और भी बदलकर आषाढ़, श्रावण, भादों और आश्विन मास में वृष्टि करता है और वैशाख जेठ की गरमी की अधिकता को कम करता है। एवं इस देश की आवोहवा को शीतल और आर्द्र करदेता है।

स्थल वायु की गर्मी—आर्द्रता, निर्म्मलता, अम्लजान (अदृश्यवाष्प), अनेक प्रकारकी हानिकर वाष्प, धूल, मृत वा जीवित कीटाणु वा उद्भिज्जाणु आदि का मनुष्य के स्वास्थ्य पर विशेष प्रभाव पड़ताहै। इस कारण आषाढ़, श्रावण, भादों, और आश्विन महीनों में इस देश में मलेरिया का प्रादुर्भाव होता है। इन दिनों

में जलाशय (तालाब) मरे हुए उद्भिज्जाणुओं के द्वारा भरजाने के कारण उनसे मलेरिया का विष उत्पन्न होता है। वह वायु के द्वारा मनुष्यशरीर में प्रविष्ट होकर अपना प्रभाव फैलाता है। आजकल मच्छरों के काटने से मलेरिया का प्रादुर्भाव होता है, यह सिद्धान्त निर्द्धारित हुआ है। किन्तु वटेवियर नामक एक अँगरेज़ डाक्टर ने उक्त मत का खण्डन कर "वायु द्वारा ही यह विष मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता है", इस बात को विशेषरूप से प्रमाणित करदियाहै। इस वायुके प्रभावसे इन दिनों में साधारणतः मनुष्य आलसी; सम्पूर्ण कार्य्यों में अनुत्साही और शक्तिहीन देखे जातेहैं। यकृत् और चर्म्म की क्रिया अधिकतासे होती है। इस लिये इस समय यह यन्त्र सहजमें रोगाक्रान्त होजाताहै। परिपाक शक्ति मन्द होजाती है। इसी कारण इस समय को आयुर्वेद में मन्दाग्नि का समय निर्दिष्ट किया गया है। इस समय स्नायुओं में शिथिलता होजाती है और रोगी मनुष्य की जीवनी-शक्ति अधिक दुर्बल होजाती है।

इसके बाद शीतऋतु आती है। साधारणतः शीतप्रधान देशों में रहने वाले मनुष्यों का शारीरिक बल अधिक, स्वभाव उग्र, पेशियाँ सबल, परिपाक यन्त्र स्वस्थ और स्नायविक शक्ति मन्द होती है और वे दीर्घजीवी होते हैं। हम भी साधारणरूप से देखते हैं कि शीतकालमें हम कुछ बलवान् होजाते हैं और खाद्य पदार्थों को उत्तम प्रकार से परिपाक (हज़म) करनेमें समर्थ होते हैं। इस समय वायु की शीतलता के कारण हमारे श्वास-प्रश्वास का वायु गरम होता है। स्थलवायु के अधिक आर्द्र रहने से शरीर में से पसीना कम निकलता है और उससे बाहिरी शारीरिक गरमी भी क्षय होती है। इस समय सूर्य्य के उत्तरायण होने से जो वायु चलता है, वह अत्यन्त शीतल होता है। वह भी शारीरिक गरमी को कम करता है। वस्त्रों के आच्छादन, अग्नि व सूर्य्य की गरमी के द्वारा उसको कुछ कम किया जासकता है, किन्तु इस समय प्रबल वायुके चलनेसे उत्पन्न हुई शीतलताको कम करना कठिन है। साधारणतः शीतकालका वायु शुष्क और आर्द्र वायु की अपेक्षा बलकारक होता है। आर्द्र वायु गरमी को सञ्चालित करता है, किन्तु इस से चर्म में से पसीना कम निकलता है। शुष्क वायु के द्वारा शारीरिक

गरमी के अधिकतर कम होजाने से श्वास प्रणाली में उग्रता उत्पन्न होकर निमोनिया आदि भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं। शीतल, व आर्द्र वायु से सर्दी, ब्रङ्काइटिस और वातसम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिए इस देशमें इस ऋतु में ये रोग अधिक देख पड़ते हैं। वर्षाऋतु में मलेरिया ज्वर से जिन मनुष्यों की अस्थि, मज्जा, मेद, माँस,रक्तादि धातुयें निर्बल होजाती हैं,वे शीतकालमें शुष्क और तरल वायु के प्रभाव से तथा पौष्टिक खाद्य और वस्त्रों के अभाव से शीत को न सह सकने के कारण सर्दी, खाँसी, ब्रङ्काइटिस, निमोनिया आदि रोगों से ग्रसित होकर दीन-दरिद्र मनुष्य अधिकतर मृत्यु के मुख में पतित हुआ करते हैं।

वर्षा और शीतऋतु का प्रभाव कम होजानेपर इस देश में वसन्त ऋतु का आविर्भाव होता है। यह ऋतु न बहुत शीतल और न बहुत गरम होती है। इस ऋतु में साधारण गरमी ६०° से ७०° डिग्री तक रहती है। वायु में अधिक तरलता व शुष्कता नहीं रहती। इस समय पाश्चात्य देशों के पर्वतों का वायु बहा करता है। वह वायु शरीर में विशेषरूप से कार्य करता है। अस्थि, मज्जा, रक्त, मांस आदि को पुष्ट और स्वस्थ करता है। इस वायु के द्वारा यकृत् फुफ्फुस आदि सब यन्त्र बलवान् होते हैं। खाद्य पदार्थ सहज में पचजाते हैं और क्षुधा की वृद्धि होती है। इसलिए शरीरस्थ जीवाणु और उद्भिज्जाणु सहजमें नष्ट होजाते हैं। अतएव मलेरिया के जीवाणु शरीर में प्रविष्ट और पुष्ट नहीं होसकते। अधिक शीत और अधिक गरमी के नहोने से मनमें स्फूर्त्ति और स्नायविक शक्ति की वृद्धि होती है। भूवायु का भार इस समय इस देश में प्रायः ३० इञ्च पारे के स्तम्भ के बराबर होता है। इस कारण वायुकोष का विस्तार बढ़जाता है। श्वास-प्रश्वास की क्रिया और धमनी की गति क्षीण होजाती है। अम्लजान का शोषण और अङ्गों की अम्लता दूर होती है। क्षुधा बढ़जाती है। अतएव इस वसन्तऋतु को कवियों ने ऋतुराज कहकर वर्णन किया है। दीन, दुःखी, वस्त्रहीन और व्याधिग्रस्त मनुष्यों के लिए इस ऋतु की आबहवा शान्ति और सुख के देने वाली होती है। इस समय प्रातःकाल में दक्षिणसे जो वायु बहता है,उसको मलय वायु भी कहते हैं। कारण, दक्षिण दिशा में ही मलय पर्वत है। जो हो, इस ऋतु में प्रातःकाल

और सायंकाल की, खेतों वा तालाबों की निकटवर्ती अथवा मरुभूमि की आबोहवा आधि-व्याधि ग्रस्त मनुष्यों के लिए अत्युत्तम है।*

माता का कर्त्तव्य।

[गत संख्या से आगे]

बालक को इस प्रकार कसरत कराने से वह बहुत प्रसन्न होता है, और उसके मांसपिण्ड बलवान् होकर वे शीघ्रता पूर्वक बिना किसी विघ्नबाधाके अपना काम करते हैं। जब तक बालक में यथार्थ बल न आजावे तब तक उसको नहीं चलने देना चाहिए। और जब बालक का शरीर यथोचित रीति से बलवान् होजावे तब उसको स्वयं चलने देना चाहिए। जब वह एक दो सप्ताह अच्छे प्रकार से चलने लगे तो उसमें बल की वृद्धि होने के लिए उसका अभ्यास बढ़ाते रहना चाहिए। यदि उसमें चलने फिरने की शक्ति न हो तो उससे उक्त कोई काम नहीं लेना चाहिए; क्यों- कि, ऐसा करने से उसके हाथ और पीठ टेढ़ी होजाती है। पहले लिखा जाचुका है कि जब तक बालक का रीढ़ मज़बूत न होजाय तब तक उसे सीधा न बैठाना चाहिये। कहने का मतलब यह है कि रीढ़ कड़ी होने पर भी जब तक कि वह भोजन न करे, और खेलते खेलते थकने न पावे तब तक उसे सीधा न बिठाना चाहिये। क्योंकि इन समय उसका शरीर दुर्बल रहता है इसलिए उस समय सहारा देकर बैठाने से उसको आराम मिलता है। फिर बलवान् होने पर कसरत करानेसे वह शक्तिशाली होजाता है। यह नियम युवा मनुष्यों को भी पालन करना चाहिए कि भोजन करने के बाद अथवा शारीरिक व मानसिक अधिक परिश्रम करने के पश्चात् कुछ समय तक आराम करें।

पहले लिखा जाचुका है कि बालक की निद्रा के विषय में कोई नियम नहीं होना चाहिए। इसलिए अब यहाँ पर केवल इतना ही लिखा जाता है कि बालक जब कुछ बड़ा और बलवान् होजाय,

*स्वास्थ्य समाचार के एक लेख के आधार पर।

अर्थात् जब उसकी अवस्था दो वर्ष की होजाय तब सवेरे की निद्रा छुड़ा देनी चाहिए। विशेषकर शीतऋतु में नहीं सोने देना चाहिये। कारण यह है कि प्रात:काल में ठण्डी वायु।का सेवन करना बहुत अच्छा है। निद्रा में यह समय व्यतीत करदेने से स्वास्थ्य भङ्ग होने का भय रहता है इसलिए शीतऋतु में प्रातःकाल सोना किसी प्रकार भी अच्छा नहीं है।

बालकों को बड़ी अवस्था में दिन में शयन कराना आवश्यक है। परन्तु इस अभ्यास के बहाने से माता को स्वयं अवकाश मिलने के लिये बालक को अधिक समय तक कदापि नहीं सुलाना चाहिए। बालक के सोने से माता को अवकाश मिलता है इसलिए माता की यही इच्छा रहती है कि मेरी सन्तान अधिक देर तक सोती रहे। इसी कारण अनेक मातायें अपने सुकुमार बालकों को अफ़ीम की गोली खिला खिलाकर उनके शरीर को ख़राब कर डालतीं हैं और उनको पहली अवस्था में ही दिन में सुलाने का अभ्यास डालदेती हैं इससे बालकों को अत्यन्त कष्ट होता है। इसलिए बालक को अफ़ीम आदि कोई विषैला पदार्थ कभी नहीं देना चाहिए। बालक को नियमित रूप से थोड़ी देर तक दिनमें शयन कराने से और रात्रिमें भी निश्चित समय से कुछ पहले शयन करादेने से वह प्रसन्नचित्त और स्वस्थ रहसकता है। इसप्रकार शयन कराने से बालक का शनैः शनैः बल प्राप्त होने पर उसके क्षुधा और पाचनशक्ति की वृद्धि होती है। किन्तु जो बालक दिनमें नहीं सोते वे दिन में सोनेवाले बालकों से अधिक बलवान् और चञ्चल होते हैं।

एक दो वर्ष तक की अवस्था वाले बालक की निद्रा के समय कमरे में किसी प्रकार की गड़बड़ नहीं करनी चाहिए। इसके बाद उतनी सावधानी रखनेकी ज़रूरत नहीं है। परन्तु किसी प्रकार की पीड़ा होने के समय उसके सामने किसी प्रकार की आवाज़ न करना चाहिए, ऐसा करने से उसे अच्छेप्रकार से निद्रा न आवेगी और वह असन्तुष्ट रहेगा।

यहाँ प्रसंगवश एक अनुचित पद्धति का वर्णन करना पड़ता है। वह यह है कि अनेक मातायें बालकों को कोठरी में लेजाकर गोदमें सुलानेके बाद बिस्तर पर सुलाया करती हैं। इसप्रकारसे रोता हुआ

बालक सुलाया ज़रूर जासकता है, परन्तु इससे उसका और माता का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। क्योंकि एकबार कोठरी में सोने का अभ्यास होजाने पर फिर माता को हर समय बालक को उठाकर कोठरी में सुलाना पड़ता है। यह देखा जाता है कि बालक को कोठरी में लेजाकर बिस्तर पर सुलाने से वह जाग कर रोने लगता है। इसलिए बालक माता की गोद में चिपटा रहता है और जब तक निद्रा नहीं आती तब तक वह उकताता रहता है और उसका समय कष्ट में व्यतीत होता है। किन्तु खुली हवा में बिस्तर पर सुलाने के बाद जब उसे निद्रा आजाती है तब उसको जितना सुख और आराम मिलता है उतना कोठरी में सुलाने से कदापि नहीं मिलसकता। इस लिये बालक को जन्मकाल से लेकर कई सप्ताह तक कोठरी में लेजाकर नहीं सुलाना चाहिए। उदर रोग (पेट की बीमारी) और श्वास रोग के कारण अनेक बालक बचपन ही में मरजाते हैं। इसलिए इन सब विषयों की ओर माता पिता को विशेषरूप से ध्यान देना चाहिए। इन रोगों की औषध किस प्रकार करनी चाहिए? इस विषय का वर्णन इस पुस्तक में करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती, क्योंकि किसी योग्य चिकित्सक के सिवा माता पिता इन रोगों की यथोचित चिकित्सा नहीं करसकते। यहाँ केवल इतना ही लिखना आवश्यक है कि पालन पोषण के दोषों को निवारण करने से ही ये सब रोग दूर होसकते हैं। उत्तम प्रकार से पालन पोषण किया जाने पर अनेक बालक भयंकर रोगों से सर्वथा मुक्त होते देखेगये हैं। अनुभव द्वारा सिद्ध हुआ है कि जिन बालकों का पालन पोषण नियम पूर्वक किया जाता है वे अधिकतर उक्त रोगों के पंजे में फँसते ही नहीं और जो कदाचित् फँस-जाते हैं तो शीघ्र आरोग्य होजाते हैं। अतएव इस में कुछ भी सन्देह नहीं कि नियम पूर्वक पालन पोषण करने से बहुत लाभ होता है।

बालक के रोगी होनेपर घर के लोगों की असावधानी के कारण अनेक बालक मरजाते हैं। इस विषय में उनका क्या कर्त्तव्य है इसका विवेचन संक्षेप से नीचे किया जाता है। अनेक स्त्रियाँ बालक को अस्वस्थ देखकर उसको सदैव औषध सेवन कराती

रहती है। इस प्रकार बालकको औषध देने से लाभ तो कुछ नहीं होता और हानि अधिक होती है। इसका कारण यह है कि बिना रोग का निदान किये औषध देने से कुछ लाभ नहीं होता, इसलिये पहिले रोग का मूल कारण खोजकर फिर तदनुसार औषध देकर उसको निर्मूल करने का यत्न करना चाहिये। दाँत निकलते समय अजीर्ण होजाने से, पेट में कृमि पडजाने और इसी प्रकार के अन्यान्य कारणों के एकत्रित होजाने से शरीर में रोग होने का भय रहता है। यदि कोई बालक उक्त रोगों से ग्रसित हो और उस समय विशेष रूप से उन रोगों के कारण की खोज न की जाकर उसे सामान्य औषध दी जावेगी तो उस से रोग दूर नहीं होगा, बल्कि जिस कारण से रोग उत्पन्न हुआ है वह कारण यदि प्रबल होगा तो रोग का मिटना तो दूर रहा वह कारण ही बढ़कर भयंकर रूप धारण करलेगा। इसलिए माता पिता को बालकों के रोगों में विशेष सावधान रहना चाहिए। अर्थात् रोग का उत्तम प्रकार से विचार किये बिना बालकों को इच्छानुसार औषध नहीं देनी चाहिए।

बालक को किसी चतुर वैद्य के हाथ में सौंपकर भी जो मनुष्य दूसरों की सम्मति से भिन्न २ ओषधियाँ देते हैं उनसे बहुत हानि होसकती है। इसका कारण यह है कि बालक के अधिक पीडित होने पर केवल माता पिता ही चिन्तित होते हों यह बात नहीं, बल्कि अपने बन्धु बान्धव और पास पड़ोस के आदमी भी उदास होजाते हैं। इसलिये कोई कहता है कि "अमुक बालक को अमुक रोग हुआ था तो उसे अमुक औषध से लाभ हुआ था, अतएव वही औषध खिलानी चाहिए?" ऐसे अवसर पर बालक के माता पिता को दूसरों की बताई औषध न देकर केवल वैद्य की ही औषध देना ठीक है। बात यह है कि यदि माता उक्त व्यक्तियों के कथनानुसार गुप्तरीति से दवा देने लगे और प्रकट रूपसे वैद्य या डाक्टर की औषध देवे तो दो प्रकार की औषधों के संयोग विरुद्ध होने से रोग की वृद्धि होकर हानि होने की सम्भावना है।

सारांश यह है कि गुप्त रूप से बालक को औषध खिलाना महाहानिकारक है। क्योंकि ऐसी दशा में वैद्य अपनी औषध के गुण व दोष को नहीं समझसकता और वह भ्रम में पड़जाता है।

उस समय यदि बालक की मृत्यु होजाती है तो उसका झूँठा कलंक उस निर्दोष चिकित्सक के सिर मढा जाता है अतएव ऐसी अवस्था में माता पिता का कर्त्तव्य है कि वे दूसरों के कहने में आकर गुप्तरूप से कोई औषध न देवें। और यदि अमुक औषध देना अत्यावश्यक ज्ञान पड़े तो बालक की चिकित्सा करने वाले वैद्य से स्पष्टरूप से कह देना चाहिए कि हमारा अमुक दवा देने का अनुरोध है, सो अनुग्रहकर कहिए कि इस विषय में आपकी क्या राय है? इसपर यदि डाक्टर अथवा वैद्य को उक्त दवा देना पसंद हो तो वह दवा देना चाहिए और यदि पसंद न हो तो नहीं देना चाहिए। इसविषय में डाक्टर अथवा वैद्य का मत होने पर भी यदि कोई मित्र अथवा प्रियबन्धु अपनी सम्मतिसे औषध खिलाने का आग्रह करें तो वह उस औषध के खिलाने से पहले उसके गुण, दोषों को वैद्य से अच्छे प्रकार से समझ लेवें। जब वह उपयुक्त ज्ञान पड़े तब देवे अन्यथा न देवे।

बालक को यदि कोई भयंकर रोग होग होगयाहोतो जिस कमरे में वायु का आवागमन अच्छे प्रकार से होता हो और जिस कमरे में किसी प्रकार की गड़बड़ न हो उस कमरेमें उसे रखना चाहिए। इस प्रकार रखने का अभिप्राय यह है कि यदि वह स्पर्शजनित रोग हुआ तो वह दूसरे बालक को हानि नहीं पहुँचा सकता और इस प्रकार के फेरफार से रोगी को भी लाभ पहुँचता है। रोगी जिस कमरे में रहे, उस कमरेमें चिन्तातुर होकर न बैठना चाहिए। क्योंकि समीप में बैठे हुये व्यक्ति की उदासीनता को देखकर बालक अधीर होजाता है। रोगी के पास बहुत से मनुष्यों का जमाव होना अच्छा नहीं है; क्योंकि बहुत से मनुष्यों के एकत्रित होने से कमरे की वायु दूषित होजाती है। जिस कमरे के दरवाज़े बन्द न रहते हों और जो बहुत गरम हो उस कमरेमें ज्वर आदि रोगोंसे पीड़ित बालक को न रखना चाहिए। क्योंकि ऐसे कमरे में रखने से रोग और बढ़ जाता है। उस रोगी का बिस्तर मैला नहीं होना चाहिए। मशहरी छोटी न हो और उसके शरीर पर बहुत से कपड़े भी नहीं होने चाहिएँ। भोजन के दोष से अनेक बालक रोग से शीघ्र मुक्त नहीं होसकते. इसलिए डाक्टर अथवा वैद्य का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह रोगी बालकों के भोजन के विषय में विशेष रूपसे उपदेश देवे और इस बात की खोज करता रहे कि मेरे उपदेश के

अनुसार काम होता है या नहीं। बालक को ज्वर आदि मामूली रोगों के होनेपर बहुत हलका भोजन देना चाहिए। उस समय पुष्टि-कर भोजन देने से रोग बढ़ता है और शरीर दुर्बल होता है।

अनेक बालक जो बचपनमें ही काल के ग्रास होजाते हैं, इसका एक विशेष कारण यह भी है कि जब बालक बीमार होतेहैं तब उनके माता पिता अथवा अन्यान्य मनुष्य भूतप्रेत के फेर में पड़कर बिना औषध किये झाड़फूक के द्वारा ही उसको अच्छा करना चाहते हैं। इसी कारण वे रोगी को किसी वैद्य या डाक्टर को नहीं दिखाते। जब रोग खूब बढ़जाता है तब दिखाते हैं। परन्तु फिर उससे कुछ लाभ नहीं होता,इसलिए ऐसा करना बहुत बुरा है। क्योंकि बचपन में अनेक रोग गुप्तरूप से बालक के शरीर में रहते हैं। उन रोगों के प्रकट होते ही वैद्य से सलाह न लेकर मनमानी कार्यवाही करना ठीक नहीं है। जिसका बालक दुर्बल हो और जिसके रोग के विशेष चिह्न दिखाई न देते हों तो भी एकबार यह मालूम करलेना चाहिए कि रोग बढ़ तो नहीं रहा है। इसके लिए किसी अनुभवी डाक्टर अथवा वैद्य को दिखलाना चाहिए। जब कि बालक को दस्त न होता हो, अथवा अधिक दस्त होते हों या अनियमित रूप से श्वासोच्छ्वास चलता हो, शरीर बहुत गरम अथवा अधिक ठंडा होजावे और वह घोर निद्रा में बारम्बार चौंक उठता हो उस समय इनसब कारणों की खोज करके उन्हें दूर करने का उपाय करना चाहिए। ऐसा करने से वह अकाल मृत्यु से बच सकता है।

इस निबन्ध को पूर्ण करने के पहले इसमें दो बातों का लिखना आवश्यक जानपड़ता है। उनमें पहली बात यह है कि जिस दिन बालक को ज्वरादि कोई रोग शुरू हो उसीदिन किसी डाक्टर या वैद्य को नहीं दिखाना चाहिए। जब कि माता पिता घबड़ाकर शीघ्रही वैद्य को बुलालेते है तो उस समय ठीक व्यवस्था न हो सकने के कारण रोगी को जो औषध देदी जाती है उससे महाहानि होती है। इसलिए दो दिनके बाद किसी योग्य चिकित्सक को दिखलाकर जब उससे चिकित्सा कराई जायगी तो बहुत शीघ्र लाभ होगा, रात्रिकाल में भी बालक को नहीं दिखलाना चाहिए। इसका कारण यह है कि वैद्य दिन के परिश्रम से थका हुआ होने के कारण उस समय भलीभाँति रोग की जाँच नहीं करसकता।

दूसरी बात यह है कि बालक चाहे रोगी हो या निरोगी उस समय उस को शान्तिपूर्वक कड़वी, कसैली आदि औषध खिलाने के अभिप्राय से वैद्य का नाम लेकर बालक को भयभीत नहीं करना चाहिये, बल्कि ऐसा उपाय करना चाहिये कि बालक वैद्य से प्रेम करने लगे । ऐसा करने से बालक बीमारी के समय वैद्य को देखकर शान्त रहेगा और उस का मन स्थिर रहेगा । सारांश यह है कि वैद्य पर भक्ति होने से वह शीघ्र नीरोग होजायगा । क्योंकि वैद्य जो कुछ कहेगा, उसे वह प्रसन्नता से करेगा । जब कभी बालक औषध नहीं खाना चाहता है तब उस समय अनेक मूर्ख मातायें बालक को नाना प्रकार के भय दिखला कर उस को डराती हैं । वे कहती हैं कि यदि तू औषध न खावेगा तो मैं डाक्टर से कहदूँगी । अथवा भूत पकड़ लेजायगा इत्यादि । इस प्रकार भय दिखाने से अच्छी से अच्छी औषध भी बेकार होजाती है । जब बालक औषध खाने में अधिक हठ करता है तब कहाजाताहै कि डाक्टर आकर शरीर काटकर खून निकालेगा, पकड़ करले जायगा । अथवा भूत आकर खालेगा । इस प्रकार-नाना भांति के भय दिखाने से उसका अन्तःकरण चिंतित हो उठता है। फिर जिस समय वैद्य आता है, उस समय वह उसे देखकर अधीर हो उठता है । वैद्य इस बात का अनुभव नहीं कर सकता कि उस का भय दिखाने से बालक को कितनी अशांति और बेचैनी हुई है। ऐसे समय में बालक को शान्तिपूर्वक समझानेसे ही वह भविष्य में आरोग्यता प्राप्त करसकता है, अन्यथा नहीं ।

बाल्यावस्था में ही क्या किसी अवस्था में भी नियमानुसार भोजन करने अथवा परिश्रम करने से शरीर अच्छा रहसकता है । परन्तु इन नियमों का पालन सब लोग समान रूप से नहीं कर सकते; इस लिए इन नियमों का वास्तविक तात्पर्य ग्रहण करने के लिए पात्र तथा विशेष अवस्था में युक्ति और परीक्षा द्वारा कार्य करना चाहिए। अतएव जिन नियमों का पालन करना हो उस समय इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि उक्त नियमों का उल्लंघन न हो ।

बाल्यावस्था में (दरिद्र) ग्रामीण बालक बाहर की निर्मल वायु में खेलते हैं, और दिनभर घोर परिश्रम करके रात्रि में कुछ कपड़े ओढ़ कर सख्त ज़मीन पर सोरहते हैं । एवं प्रातः काल शीतल जल में

स्नान करके रूखीसूखी रोटी खाकर बिना किसी विघ्नबाधा के उस को सहज में पचालेते हैं। इसके विरुद्ध शहर के श्रीमानों के लड़के गरम घरों में सदैव बेकार पड़े रहते हैं, या गरम कपड़े पहिन कर बाहर फिरते रहते हैं। ऊनी कपड़ों में सोते हैं और हल्का भोजन खाते हैं। उन्हें शीतल जल में स्नान कराना और मोटा अन्न खिलाना मूर्खता का काम है। इन दोनों प्रकार के बालकों की शारीरिक अवस्था तथा खान पान की सम्पूर्ण क्रियायें जुदी जुदी हैं उन में से एक की क्रिया को दूसरे के काम में लाने से वह कदापि सुखी नहीं होसकते।

यदि दिन में बालक को थोड़े कपड़े उढ़ाये जावें एवं रात्रि में कोमल बिस्तर पर सुलाया जावे, और ऊपर से गरम कपड़े उढ़ादिये जावें, तो उसका स्वास्थ्य नष्ट होजाता है। क्योंकि दिन को वस्त्र पहिना कर रात्रि में गरम बिस्तर पर सुलाने से बालक का चमड़ा शिथिल होजाता है। और कुछ ठंडी वायु लगने से सर्दी होकर पीडा उत्पन्न होजाती है। बालक का जन्म होने के बाद पहिले एक दो महीने तक ठंड में गरम बिस्तर पर सुलाना अच्छा है।

यहाँ एक बात और लिखदेनी आवश्यक है। वह यह कि बिस्तरपर दो अथवा दो से अधिक बालकों को नहीं सुलाना चाहिए। बीचबीच में अन्तर रखकर एक एक बिस्तर पर एक एक को जुदा जुदा सुलाना अच्छा है। ऐसी दशा में प्रत्येक बालक निर्मल वायु का उपभोग करसकता है। बिस्तर की चादर तथा फटे हुए कपड़ों को खींचने तानने से वे शरीर पर से उतर जाते हैं, जिस से ठंड लगना सम्भव है। इस लिए इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कपड़ा ऊपर से न उतरने पावे।

दूसरा एक साधारण नियम यह है-कि बालक के एक बार जाग उठने पर वह भली भाँति चैतन्य होजाता है, उसस मय उसे फिर बिस्तर पर न सुलाना चाहिए। यदि उसको सुलाया जावेगा तो वह दुर्बल और आलसी होजावेगा। तंदुरुस्त बालक का शरीर भली भाँति निद्रा आने से चंचल हो उठता है और निद्रा के दूर होते ही वह परिश्रम करना चाहता है।

समाप्त।

—o—

फालसा ।

फालसा, परुषा, पेरुसा, फरुसा, फेरुसा, फरुषा. फेरुषा । सं० परूषकः, गिरिपीलुः, नीलचर्म, नीलमण्डल इत्यादि । बं०—परुष, फलसा, फल्सा, शकरी । म०-पर्पका । क०—बेट्टहा, दागली, द्रोगली, द्रोगलि । ते०-पुटिकी, फुटिकी । ता०-तडाची । ते०—विट्टीडु । गु०-भ्रामण । म०—फालस्या, ,प०—फालसा, प्रा०—फलूहे; फरुषा, शुकरी । सिन्ध-फारहो, फाल्सा, कोल०-सिधिन दामिन । सन्ता०-जंगोलट । पुश्ती०-पस्तश्रोनी, शिकारिम, पवाह । फा०-पालसा, फालसह, पालसह । अ०-फालसह । लै०-Greeviaasiaticaअँ०-Asiatic Greevia ।

यह सीलोन, अवध तथा भारतवर्ष के कितने ही प्रान्तों की वाटिकाओं में रोपण किया जाता है ; किन्तु पूर्व बंगाल में कम दीख पड़ता है ।

इसका वृक्ष मध्यमआकार का होता है । छाल भूरे रंग की होती है । पत्ते चार पाँच इञ्च लम्बे, २-२॥इञ्च चौड़े, गोलाकार, प्रायः तीनभागवाले, अनीदार और नुकीले होते हैं । वसन्तऋतु में पुराने पत्ते गिरकर नवीन पत्ते निकल आते हैं । प्रायः इसी समय यह वृक्ष फूलता फलता है । ४-५ फूलोंके गुच्छे लगते हैं । फूल पीले रँग के होते हैं । फिर फल आकर वे वैशाख, जेठ तक पकजाते हैं । फल मटर के समान, कच्ची अवस्था में भूरे और पकने पर काले पड़जाते हैं ।

आ० म० गुण के दोष-शीतवीर्य, मूत्रदोष को शोधन करने वाला तथा वात, पित्त, प्रमेह, योनिदाह और लिङ्गकी दाहको नष्ट करनेवाला है ।

फालसे के कच्चे फल—खट्टे, कषैले, स्वादिष्ट, हल्के, गरम, रूखे, पित्तकारी, चरपरे तथा कफ और वात का नाश करने वाले हैं ।

फालसे के पके फल—मधुर, शीतल, स्वादिष्ट, रुचिकर, पाक के समय मधुर, विष्टम्भकारक, पुष्टिकारक, हृदय को हितकारी, तृप्तिजनक तथा वात, रक्तपित्त, दाह, तृषा, शोफ, पित्त, रुधिरविकार, ज्वर और क्षयरोग को हरने वाले हैं ।

यू० म० गुण दोष—तीसरे दर्जे में ठंडा और पहले में रूक्ष, हृदय, आमाशय और गरम यकृत् को बलप्रदान करनेवाला, पित्तज अतिसार, वमन; हिचकी और तृषा को निवारण करनेवाला एवं ज्वर की गरमी, वक्षःस्थल की दाह, आमाशय की दाह, मूत्र की दाह और प्रमेह को दूर करनेवाला है। इसका स्वरस आमाशय के लिए बलकारी, हृदय की व्याकुलता और धड़कन को हरने वाला और गरमी की तृषा को शान्त करनेवाला है। तथा शीत प्रकृति वाले मनुष्यों के लिए हानिकारक, मदनाशक, अनीसून और गुलकन्द है।

प्रयोग-(१)—इसकीजड़, छाल, पत्ते और फल ओषधिके काम में आते हैं। सलालालोग इसकी जड़ की छालको सन्धिवातपर व्यवहार करते हैं। इसकी छाल का काढ़ा स्निग्धताजनक होता है। पत्ते फोड़े, फुन्सी, छाले आदि पर लगाये जाते हैं। फल—संकोचक शीतल और अग्निप्रदीपक होते हैं। इसका शर्बत रुचिकर और रक्त-शोधक होताहै। इससे मद्य भी बनायी जातीहै। (२) प्रमेह और मूत्र की दाहपर इसकी जड़की छालको टुकड़े २ करके रात्रिमें जलमें भिजो देवे, फिर प्रातःकाल उसको मलकर और वस्त्रमें छानकर पान करे तो विशेष लाभ होता है। (३) इसके शर्बत को पीनेसे दाह दूर होती है। (४) उदरशूल में—अजवायन के चूर्ण को इसके गरम रस के साथ सेवन करने से विशेष उपकार होता है। (५) फोड़े को पकाने के लिए—इस के पत्तों को पीसकर बाँधना चाहिए। (६) ओषधियों की चरपराहट पर इसकी छाल का हिम पिलाते हैं। (७) गठिया में इसकी जड़की छाल के काढ़े को सेवन करने से आरोग्य लाभ होता है। (८) मूत्रकृच्छ्र पर इसकी १४ माशे जड़को पावभर पानी में रात्रि में भिजादेवे, और प्रातःकाल खूब मलकर वस्त्र में छानलेवे। इस प्रकार से उसको एक या दो सप्ताहतक सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। (९) इसकी जड़को पीस-कर स्त्री की नाभि, वस्ति और योनिपर लेपकरनेसे मूढ़गर्भ निकल आता है। (१०) बादी की वमन, रुधिरविकार और उदर की दुर्बलता पर काले रँग के मीठे फालसों के रस में गुलाबजल और दुगुनी चीनी मिलाकर शर्बत तैयार करके उसको पान करने से शीघ्र लाभ होता है (११) चार तोले छाल को शीतल जलमें पीसकर

और मिश्री मिलाकर शर्बत बनालेवे। उस शर्बत को सेवन करनेसे श्वेतप्रदर नष्ट होता है। (१२) सूज़ाक पर-पके फलों को १॥ छटाँक जलमें भिजोकर १ घंटे के बाद उनको अच्छी तरह से मलकर वस्त्र में छानलेवे। उसको मिश्री मिलाकर पीने से पेशाब की, कमी चिनग, जलन आदि उपद्रव नष्ट होते हैं। फल के अभाव में इसकी छाल लेनी चाहिए। (रूपनिघण्टुकोष)।

—०—

बिच्छू के काटे का इलाज।

बिच्छू के काटे की दवा—१ बिच्छू के काटे हुए स्थान में प्रथम गूगल की धूनी देवे, फिर उसपर आक के पत्तों को पीसकर लेप करे अथवा आक का दूध लगावे तो शीघ्र लाभ होता है।

२—कसौंदी के डंठल को खोखला करके उसके द्वारा कान में फूँक मारने से बिच्छू का विष शीघ्र दूर होता है।

३- गाय के गरम घी में सैंधानमक और गन्धक को मिलाकर काटे हुए स्थान पर लेप करने से बिच्छू का विष नष्ट होता है।

४—काली तुलसी की जड़को पानी में पीसकर गोली बनालेवे। फिर उस गोली को जलमें घिसकर बिच्छू के काटे हुए स्थान पर लगावे तो बिच्छू का विष दूर होता है।

५ जीरे को पीसकर घी और सैंधेनमक के चूर्ण में मिलालेवे, फिर अग्निपर गरम करके उसमें शहद मिलाकर दंष्ट्र स्थानपर लेप करे तो उक्त विष नष्ट होता हैं।

६—हाथीशुण्डा वृक्ष के रसको काटे हुए स्थान पर लगाने और पीने से बिच्छू का विष शमन होता है।

७—हुलहुल वृक्ष के पत्तों को मसल करके सुँघाने से बिच्छू का काटा हुआ आदमी तत्काल शांति लाभ करता है।

८—बड़े पत्तों की निर्विषी को पीसकर लगानेसे बिच्छू का विष दूर होता है।

९—मौलसिरी के बीजों को जल के साथ पत्थर पर घिसकर काटे हुए स्थान पर चन्दन की समान लेप करने से जलन तत्काल बन्द होती है।

१०—सोंठ को पीसकर नस्य देनेसे बिच्छू का विष दूर होताहै।

११-आमड़े की छाल अथवा उसके कच्चे पत्तों को पीसकर दंशित स्थान पर लेप करने से या आमड़े के पत्तों का रस निकाल करके उसमें गुड़ मिलाकर लगाने से बिच्छू के काटे की जलन शान्त होती है।

१२ अरण्ड के दूध को बिच्छू के काटे हुए स्थान पर बारम्बार लगाने से जलन दूर होती है। उक्त दूध को नदी की सीपी में रखना चाहिए।

१३-चौलाई की जड़ के रस को बारम्बार लगाने से बिच्छूके काटे की जलन शीघ्र शमन होती है।

१४-तम्बाखू के गुल को पीसकर दंष्टस्थान पर लगानेसे जलन शान्त होती है।

१५-मूसाकानी के पत्तों के रस को बिच्छू के काटे हुए स्थान पर बार बार लेप करने से उस स्थान की दाह शान्त होती है।

१६-छोटे प्याज के रस को बार बार लगाने से बिच्छू के काटे हुए स्थान की ज्वाला और विष शीघ्र नष्ट होते हैं।

१७-सेम के बीजों का जल में पीसकर काटे हुए स्थान पर लेप करने से अत्यन्त तीक्ष्ण विष वाले बिच्छू के काटने की जलन और विष दूर होता है।

१८-हुक्के की कीट (अर्थात् तम्बाखु पीते समय हुक्के में जो मैल जमजाता है उस) को बिच्छू के काटे हुए स्थान पर बारम्बार लेप करने से उक्त यन्त्रणा दूर होती है।

१९-बिच्छू के काटे हुए स्थान पर बार बार तारपीन का तेल लगाने से भी जलन शान्त होती है।

२०-हींग को जलमें पीसकर चन्दन की तरह काटे हुए स्थान पर बारम्बार लेप करने से जलन दूर होती हैं।

२१-बकरे की मेंगनों (मल) को जल में घोलकर काटे हुए स्थान पर लगाने से बिच्छू के विष की जलन शमन होती है।

२२-पत्थर के कोयले को पानी में घिसकर चन्दन की समान प्रलेप करने से बिच्छू के काटे की पीड़ा दूर होती है।

२३-गाय के गोबर को गरम करके काटे हुए स्थान पर लगाने से बिच्छू का विष नष्ट होता है और दाह शान्त होती है।

२४-नमक को बारीक पीसकर जलमें घोललेवे। फिर उसको अग्नि पर गरम करके उस से दाहयुक्त स्थान पर स्वेद देवे तो पीड़ा और जलन तत्काल नष्ट होजाती है।

२५-फटकरीके एक टुकड़े को चीमटेसे पकड़कर अग्निपर गरम करे। फिर उसको उठाकर उसी समय काटे हुए स्थान पर लगा देवे। उस गरम फटकरीके लगाने से,प्राणान्त होने की समान वेदना तो अवश्य होगी पर बिच्छू के काटने की पीड़ा तत्काल दूर हो जायगी। इसी प्रकार उसका बार बार लगावे। इससे अत्यन्त तीक्ष्ण विषले बिच्छू का विष भी शीघ्र शमन होता है। यह हमारा अनुभूत प्रयोग है।

२६-हल्दी को पीसकर काटे हुए स्थान पर लगाने और शरीर में मालिश करने से बिच्छू के काटे की पीड़ा और हाथ-पांव की जलन शान्त होती है।

२७-घोंघा या सीपी की भस्म में चूना मिलाकर दंष्ट स्थान पर लगाने से यन्त्रणा दूर होती है।

२८-राल को सरसों के तेल में अच्छे प्रकार से मिलाकर लेप करने से बिच्छू के काटने की पीड़ा दूर होती है।

२९-अमलतास के बीजों को घिसकर अथवा उसके पत्तों का रस काटे हुए स्थान पर लगाने से जलन शान्त होती है। उपलों की पुल्टिश बाँधने से भी जलन शमन होती है।

३०-केंचुए की मिट्टीको काटे हुए स्थान पर लगाने से बिच्छू के काटे की यन्त्रणा दूर होती है।

३१--उत्तम पीने के तम्बाखू को जलमें घोलकर छानलेवे। फिर रोगी के जिस अङ्ग में बिच्छू ने काटा हो, उससे दूसरी तरफ के कान में उसकी ४-५ बूंदें डालदेवे। उसके डालते ही बिच्छू के काटे की जलन और पीड़ा निवृत्त होती है।

३२--कच्चे कैथ के पत्तों को पीसकर बिच्छू के काटे हुए स्थान पर लेप करने से भी जलन दूर होती है।

३३--जलकुम्भी के पत्तों को पीसकर लगाने से बिच्छू के काटे की जलन शान्त होती है।

३४-सन् १८४० ई०को विक्टोरिया के सिक्के,के रुपये को मुँह की लार से काटे हुए स्थान पर चिपकादेने से बिच्छू के काटे की जलन, पीड़ा और विष शीघ्र नष्ट होता है। यह परीक्षा किया हुआ प्रयोग है।

(बंगला आयुर्वेद से अनुवादित)

सांप के विष की औषध।

शरीरके जिस भागमें साँप काटे उसी समय उस भागको ऊपर नीचे रस्सीसे अच्छी तरह बांधदेवे, जिससे विष शरीरमें न फैले और रक्तप्रवाह भी रुकजाय। इसके बाद दहीमें कालीमिरच पीसकर घाव पर लगादेनी चाहिए, या साधारण जलमें मिलाकर पन्द्रह २ मिनट के बाद तब तक लगाते रहनाचाहिए जब तक कोई दूसरा इन्तज़ाम न होजाय। साथही नीम के पत्ते चबाते रहना चाहिए।

(२) इसके अतिरिक्त शर्तिया इलाज यह है कि जिस समय साँप काटे उसी समय केलेकी छाल या पत्ते लेकर उसको पीसकर रस निकाल लेवे और उसको छानकर एक लोटे में रक्खे। उसमें से रोगी को डेढ़पाव रस फौरन पिला दे। यदि दाँत जुड़जाँय तो चम्मच या और किसी वस्तु से (परन्तु वह लोहे का न होना चाहिए) दाँतों को खोलकर उसके गले के नीचे उतार देना चाहिए फिर इसको पिलाने से रोगी को थोड़ी देर में मूर्छा आजाती है इससे घबराना नहीं चाहिए। प्रति आध २ घन्टे के बाद रस पिलाता रहे।

(३) साँप के काटने पर इस प्रकार से उस के दोनों ओर रस्सी बाँधे कि जिससे रक्तसंचार न हो। इसके बाद किसी तीक्ष्ण अस्त्र से घाव को आधा इन्च काट डालें और रक्त को बहने देवे। अच्छातो यहभीहै कि वमन द्वाराभी रक्त निकालदे जिससे किअन्दर दूषित रक्त न रहे। परन्तु यह तब करना चाहिए जब मुखमें घाव छाले आदि न हों। इसमेंप्रथम कालेरँगका रक्त निकलेगा अन्तमें लालरङ्ग का निकलने लगेगा। इस लाल रक्त को भी थोड़ी देर निकलने देना चाहिए, बल्कि चूसकर निकाल देना चाहिए जिससे आभ्यंतरिक विष होने का सन्देह भी दूर होजाय। इसके बाद रोगी को आधी छटाँक नीम के पत्ते चबाने को देने चाहियें और पीछे बादाम घोटकर गरम दूध पिलाना चाहिए और घावपर पानी का कपड़ा बाँध देना चाहिये। कपड़े को गीला ही रखना चाहिये। उसपर पानी डालते रहना चाहिये। यदि घाव अच्छा न हो तो उसपर मरहम लगा देना चाहिए। घाव चीरने और चूसने में हिचकिचाहट करने से नुक़सान होता है, क्योंकि ऐसे काम में देर करना मुनासिब नहीं है। मृत्यु का भय है।

(४ घावको काटने चीरनेके बाद उसमें परमैंगनेट आफ पोटास (Potassum Permenganate) भरदेना चाहिए । यह औषध बाजार में अङ्गरेज़ी दवाखानों में मिलजाती है ।

(५) यदि बेफिकरी से विष शरीर में फैलचुका हो तो उस की यह औषध है कि कच्ची और गीली पृथ्वी में गड्ढा खोद कर रोगी को इसमें सुलादे और उसके शरीर को गीली मिट्टी से ढक देवे । श्वास अच्छी तरह लेने के वास्ते नाक पर मट्टी न डाले । मट्टी जहर को चूस लेती है और रोगी १ घंटे में ठीक हाजाता है ।

(६) घाव को चीरने के बाद उसपर गीली ठण्डी मिट्टी की पुल्टिश बाँधे जिससे सर्पदंश का स्थान अच्छी तरह ढकजाय अर्थात् जैसे हाथ में सर्प काट गया हो तो सम्पूर्ण हाथ में मिट्टी बांध दे । यदि पैर में काटे तो सारे पैर को मिट्टी से ढाँपदे । प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह अपने मकान में जहाँ धूप न आती हो मिट्टी जरूर इकट्ठी रखे । यदि रोगी बेहोश होने लगे और उसका श्वास रुकने लगे तो गरम जल या लौंग का काढ़ा पिलाना चाहिए और रोगी को खुली हवा में सुलाना चाहिये । परन्तु उसके शरीर के चौतर्फ गर्म ३ बोतल रखनी चाहियें और फुलालैन का कपड़ा लेकर सब शरीर को गरम जल से मलना चाहिये ।

कुछ जानने योग्य बातें ।

जन्तुशास्त्र पर एक ग्रीक डाक्टर का मत—यूनान देश के एम० काबजर नामक एक प्रसिद्ध डाक्टर ने रोगके जीवाणुओं के सम्बन्ध में अपना मत प्रकाशित करायाहै । आपकी राय में रोग में जीवाणुओं या बीजाणुओं का कुछ भी अस्तित्व नहीं है । अणुवीक्षण यन्त्र के द्वारा विज्ञानवेत्ता लोग जो जीवाणुओं का अस्तित्व सिद्ध करते हैं, वह उनकी केवल भूल है । इसी भूलमें पड़कर उक्त जन्तुशास्त्रियों ने आज आकाश पातालको एक करडाला है । प्रत्येक रोग में इन को जन्तु ही जन्तु दिखाई देते हैं । काबजर साहब का मत है कि जब हमारे मनमें किसी प्रकार का विकार या उत्तेजना उत्पन्न होती है तब उसके परिणाम में शरीरमें एक प्रकार के विष की उत्पत्ति होती है और वह विष ही उक्तरोग का कारण होता है । वे आगे और भी कहते हैं कि जब हम क्रोधान्वित होते हैं, जब

हमारा मन ईर्ष्या,द्वेष,हिंसा,क्लेश, घृणा आदि भावों से युक्त होता है तब हम अत्यन्त विषाक्त कार्बोनिक एसिड गैस को श्वास के द्वारा छोड़ते हैं। उसके फल से हमारे चारों ओर की वायु विषाक्त हो-जाती है। उस विषैली वायु के अधिक बढ़जाने पर जब हम उसको फिर श्वास द्वारा ग्रहण करते हैं तब वह हमारे शरीर के सम्पूर्ण रुधिर में मिलकर और उसको दूषित करके किसी प्रकार के रोग को उत्पन्न करदेती है। उक्त डाक्टर महोदय इसको सत्य प्रमाणित करने के लिये इस विषय का विशेष अनुसन्धान कर रहे हैं।

मांस और इन्फ्लूएञ्जा—लन्दनके बेक्लिफ कालेज में यह बात अच्छी तरह प्रमाणित होचुकी है कि मांसाहारियों की अपेक्षा निरामिषभोजियों में इन्फ्लूएञ्जा का आक्रमण बहुत कम होता है। पिछले दिनों जब यहाँ इन्फ्लूएञ्जा हुआ था तब उक्त कालेज के मांसाहारी लड़कों में प्रतिशत ८० और निरामिषभोजियों में प्रतिशत २० इन्फ्लूएञ्जा के रोगियों का औसत देखने में आया था। इसलिए उक्त कालेजके प्रिंसिपल को यह बात माननी पड़ी कि निरामिष भोजन विषनाशक है-और शरीर को अनेक प्रकार के विषैले रोगों से बचाता है। श्रीयुमती टेरियनलैंग बम्बई के असि-स्टेन्ट सेक्रेटरी का यह कहना बिल्कुल ठीक है कि जो इन्फ्लूएञ्जा से बचना चाहें उनको फलाहारी बनना चाहिए।

— x —

मांसाहार और गंज—एक अनुभवी विद्वान् का मत है कि जो मनुष्य मांस, मछली आदि पदार्थ अधिक खाते हैं उनके ही गंज का रोग अधिकता से देखने में आता है।

—o—

मधुमेह की नवीन औषध—आजकल अमेरिकामें मधु-मेह की एक नवीन औषध आविष्कृत हुई है। उसका नाम है—इन्स्यूलिन (Insulin)। कहते हैं कि यह मधुमेह को बिलकुल दूर करसकती है। यह औषध प्राणिज है। प्राणियों के क्लोम स्थान से निकाली जाती है।

विविध-विषय।

"गरमी में गरम चाय"—चाय का नित्य सेवन स्वास्थ्य के लिए बड़ा हानिकारक है। विशेषकर भारत जैसे गरम देशवासियों के लिए तो चाय की कुछ भी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। पर दुःख का विषय है कि आजकल इस देश में इस हानिकारक पदार्थ का प्रचार इतना बढ़ता जारहा है कि जिसको देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। बहुत लोग सबेरे उठते ही पहले चाय देवता की आराधना करते हैं, पीछे और काम करते हैं। बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े बड़े शहरों में तो प्रायः सभी श्रेणी के लोग दिनमें कई कई बार चायपान करते हैं। वर्षा, शरद्, ग्रीष्म आदि सभी ऋतुओं में चाय की दूकानों पर चाय के आराधकों की निरन्तर भीड़ लगी रहती है। आजकल जैसी भयङ्कर गरमी में भी चायका वैसाही आदर है। अत्यन्त गरमी में जब कि लोग अनेक प्रकार के ठंडे अर्क, शर्बत, बर्फ, लेमनेट आदि शीतल पदार्थों को बारम्बार सेवन करते हुए भी प्यास को शान्त नहीं करसकते तब चायपान के द्वारा किस प्रकार शान्तिलाभ करसकते हैं, यह समझ में नहीं आता। चाय के व्यवसायी तरह तरहके वाग्जालों द्वारा लोगों की आँखों में धूल डालकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। "गरमी में गरम चाय ठंडक पहुंचाती है।" इस प्रकार के मिथ्या और विरुद्ध वाक्यों से पूर्ण चायकम्पनियों के विज्ञापन आज भारत के छोटे बड़े सभी नगरों की दीवारों पर चमक रहे हैं

भोले भारतवासी प्रायः ऐसी विज्ञापनी बातों के प्रलोभ में आकर चाय के चिरबहचर बनजाते और अपने स्वास्थ्य सुखको तिलाञ्जलि देबैठते हैं। चाय वास्तव में बड़ी ही हानिकारक चीज़ है। यह अत्यन्त उष्ण, तीक्ष्ण और विषाक्त है। इसको पान करते ही शरीर और मनमें एक प्रकार की स्फूर्त्ति मालूम होती है। किन्तु पीछे वही स्फूर्त्ति पहले से भी अधिक शिथिलता उत्पन्न कर देती है। चाय के अधिक अभ्यास से स्नायविक दुर्बलता उत्पन्न होती है, परिपाक यन्त्र ख़राब होकर भूख बन्द होजाती है। निद्रा नष्ट होजाती है और शरीर में विविध प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है।

न मालूम हम यह कब समझेंगे कि कौनसा पदार्थ हमारे लिये हितकर है और कौनसा अहितकर ।

खाद्य पदार्थों में मिलावट—खाद्यपदार्थों में आजकल जिस प्रकार मिलावट हो रही है, उसको देखकर बड़ा भय होता है। मनुष्य ऐसे मिलावट के पदार्थों को सेवन कर कब तक अपने स्वास्थ्य को स्थिर रखसकता है ? क्या शुद्ध ताज़े गाय, भैंसके घृत के अभावमें चर्बी और दूसरे हानिकर पदार्थों का बनाया हुआ सड़ा घी हमारे स्वास्थ्य की रक्षा करसकता है ? क्या अमृत की समान शुद्ध दूध के बदले मक्खन निकाला हुआ या पानी मिला हुआ अथवा अन्य पदार्थों के संयोगसे बनाया हुआ नकली दूध हमारे शरीर में बल, वीर्य्य पैदा करसकता है ? और हमारे शरीर को रोगों के आक्रमण से बचासकता है ? क्या हाथ की चक्की से घरके पिसे हुए शुद्ध आटे के बदले में अनेक हानिकारक पदार्थों से मिलाहुआ मेशीन का आटा हमारे शरीर का भली भाँति पोषण करसकता है ? क्या शुद्ध देशी खाँडके बदले शीरा, गुड़ और निम्नजातिके पदार्थों से मिली हुई विलायती-अनाम स्वदेशी खाँड़ हमारे स्वास्थ्य की रक्षा कर सकतीहै ? हमारे खाने-पीने के पदार्थों में कोई भी पदार्थ भारत के बाज़ार में आज मिलावट से खाली नहीं दीख पड़ता । पर आश्चर्य्य यह है कि इस मिलावटको रोकने का गवर्नमेन्ट या म्युनिसिपिल्टियों की ओर से कोई विशेष प्रबन्ध देखने में नहीं आता। यदि मिलावटी घी या कोई दूसरा पदार्थ पकड़ कर अदालत में भेजा जाता है तब वह वहाँ से प्रायः यह कह कर छूटजाता है कि इसमें कोई हानिकारक पदार्थ नहीं है। इससे प्रमाणित होता है कि मिलावट को रोकने वाला कोई क़ानून ही नहीं है।

स्थानीय म्युनिसिपिल्टी का कार्य—स्थानीय म्युनिसिपिल बोर्ड का नया चुनाव होजाने पर अवश्य उसके कार्यों में पहले की अपेक्षा कुछ कुछ उन्नति हुई है। किन्तु जनता का इससे अधिक उपकार नहीं होसकता। अब भी अनेक स्थानों में विशेष कर मौहल्लों के भीतर गली कूचों में कूड़ा-कचरा और कीचड़ के ढेर के ढेर कई कई दिनों तक पड़े सड़ाकरते हैं। नाले और नालियों की सफ़ाई की ओर भी बहुत कम ध्यान दिया जाता है। रोगियों का

प्रबन्ध भी प्रशंसनीय नहीं कहाजासकता। किसी किसी गली में इतना अन्धकार रहता है कि हाथ में हाथ तक नहीं सूझता। हम आशा करते हैं कि स्थानीय म्युनिसिपिल्टी अपनी इन त्रुटियों को सुधारनेका शीघ्र यत्न करेगी।

स्थानीय डिस्ट्रिक्टबोर्ड और देशी चिकित्सा—

समझा था कि नवीन म्युनिसिपिलबोर्ड और डिस्ट्रिक्टबोर्ड का चुनाव होजाने पर देशी चिकित्सा की उन्नति का कोई अच्छा उपाय निकलेगा; पर फल उसके विपरीत देखने में आया। गतवर्ष जो यहाँ के डिस्ट्रिक्टबोर्ड की तरफ से कुछ आयुर्वेदीय और यूनानी दातव्य चिकित्सालय खोलेगये थे, उनमें से कई इस वर्ष तोड़ दियेगये-और जो अभी शेष बचे हैं उनके भी शीघ्र ही टूटने की खबर है। यही नहीं, बल्कि इनके विरुद्ध कई एलोपैथिक दवाखाने खोले जारहे हैं। जगहर डाक्टरी चिकित्सा को सहायता दीजारही है। समझ में नहीं आता कि डिस्ट्रिक्टबोर्ड देशी चिकित्साओं (वैद्यक और यूनानी) को सहायता देने में इतनी कृपणता और डाक्टरी चिकित्सा की सहायता करने में इतनी उदारता क्यों दिखारहा है! क्या यह बात डिस्ट्रिक्टबोर्ड के मेम्बर महोदयों को ज्ञात नहीं है कि देशी चिकित्सा ही सदा से इस देश-वासियों के स्वभाव के अनुकूल है। आयुर्वेदीय चिकित्सा की ऐसी स्थिति में भी प्रतिवर्ष जितने रोगी इसके द्वारा आरोग्य लाभ करते हैं उतने और किसी चिकित्सा के द्वारा नहीं करते। देशी चिकित्सा की समान कोई भी चिकित्सा हमारा उपकार नहीं कर-सकती। इसके सिवा इसमें सुलभता भी खूब है। अभी थोड़े दिन हुए मद्रास की व्यवस्थापक सभा की ओरसे देशी चिकित्साओं की जाँच के लिए मोहम्मद उसमानखाँ की अध्यक्षता में एक कमीशन नियत हुआ था। उसने अनेक स्थानोंमें घूम फिरकर अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि "देशी चिकित्सा ही हिन्दुस्थानियों को अधिक उपयोगी और सस्ती पड़सकती है"। कई विद्वानों का मत है कि देश में विदेशी चिकित्सा का इतना प्रचार होने से ही देश में रोगों की वृद्धि होरही है। हम स्थानीय डिस्ट्रिक्टबोर्ड के मेम्बर महो-दयों का ध्यान इस तरफ आकृष्ट करते हैं।

डाक्टर दीक्षित—आजकल इस शहरमें डाक्टर के० वी० दीक्षित महोदय का नाम बहुत प्रसिद्ध है। आप अपनी उत्तम चिकित्सा और अपने सौजन्य पूर्ण बर्त्ताव के द्वारा नगरनिवासियों का बड़ा उपकार कररहे हैं। एक सच्चे चिकित्सक में जो गुण होने चाहिएँ. वे आप में सब मौजूद हैं। आप एक अच्छे अनुभवी विद्वान् और बड़े ही सज्जन पुरुष हैं। आप का स्वभाव बड़ा सरल है। अभिमान और लोभ आप में नाममात्र को भी नहीं है। प्रति-दिन आप बीसों दीन दुःखी और असमर्थ रोगियों का इलाज उसी प्रकार जी लगाकर करते हैं, जिस प्रकार कि बड़े बड़े धनवानों का। बल्कि गरीब लोगों की चिकित्सा में आप और भी अधिक ध्यान देते हैं। यही कारण है कि आपके हाथसे थोड़े ही दिनोंमें कितने ही जटिल और दुस्साध्य रोगी आरोग्य हो चुके हैं। आपके द्वारा यहाँ की साधारण जनता का जो विशेष उपकार होरहा है उसके लिए आपको जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है। यदि अन्य डाक्टर भी आप का अनुकरण करें तो देश का बहुत कुछ दुःख दूर होसकता है।

रूप-निघण्टुकोष—उक्त कोष की ८०-८० पृष्ठों की ३ हस्त-लिखित कापियाँ हमें प्राप्त हुई हैं—और साथ ही इस कोष के लेखक बाबू रूपलाल वैश्यकी लिखी हुई एक अपील भी मिली है। अपील अन्यत्र प्रकाशित कीगई है। आशा है सहृदय पाठक उसको मनोयोग देकर पढ़ेंगे।

इस समय वैद्यक के कई बड़े बड़े कोष तैयार होरहे हैं। उनमें यह रूपनिघण्टुकोष भी अपने ढंग का अद्वितीय होगा, इसमें सन्देह नहीं। वैद्य, हकीमों के सिवा अन्य साधारण लोग भी इस को पढ़कर लाभ उठासकेंगे। बाबू रूपलाल वैश्य ने इसको लिख-कर वैद्यक जगत् का विशेष उपकार किया है। उन्होंने रेल्वे आफ़िस की साधारण क्लर्की करते हुए २५ वर्षों के घोर परिश्रम से इसको तैयार किया है, इसलिए वे विशेष धन्यवाद के योग्य हैं।

इसमें अकारादि क्रमसे संस्कृत, हिन्दी, बँगला, मराठी, उर्दू आदि कई भाषाओं के शब्द लिखे गये हैं। उनके आगे सरल भाषा में अर्थ लिखा गया है। मुख्य मुख्य शब्दों के आगे उनका विस्तृत

रूप से वर्णन कियागया है। उक्त भाषाओंमें से किसी भाषा में भी किसी ओषधि का एक नाम ज्ञात होने पर उसका पूरा परिचय इस के द्वारा सहज में ही मिलसकता है। इसमें ओषधियों के चित्र इतने अच्छे और स्पष्टरूप से दिये गये हैं कि उनको देख कर साधारण मनुष्य भी ओषधियों की आकृति को भली-भाँति पहचान सकता है। वास्तव में ग्रन्थ बड़ा उपयोगी होगा।

इसमें हमें कुछ त्रुटियाँ भी मालूम हुई हैं, उनको बतादेना हम उचित समझते हैं। ओषधियों के नामों में भाषासम्बन्धी, विशेष-कर प्रान्तिक भाषाओं के नामों में अनेक अशुद्धियाँ रहगई हैं। कहीं कहीं एक ही बात को कई बार लिखकर व्यर्थ पिष्टपेषण किया गया है। ओषधियों के चित्रों में ऐसी ओषधियों के कई कई चित्र दिये गये हैं, जो घर बाहर सर्वत्र पैदा होती हैं और सब जगह आसानी से मिलजाती हैं। दुष्प्राप्त या कठिनता से मिलने वाली ओषधियों के अधिक चित्र देनेमें अवश्य लाभ है, परन्तु सर्वजनपरिचित और सर्वत्र सुलभता से मिलने वाली ओषधियों के कई कई तरह के चित्र देकर व्यर्थ चित्रसंख्या बढ़ाने से कुछ भी लाभ नहीं। इस ग्रन्थमें अनेक ग्रन्थ और ग्रन्थकारों के मत उद्धृत किये गये हैं; पर लेखक महाशय ने उनके नामों को देने की उदारता नहीं दिखाई है। इससे लेखक के अनुदारभाव ही प्रकट नहीं होते; किन्तु ग्रन्थ की प्रामाणिकता में भी सन्देह हो सकता है। हम आशा करते हैं कि बाबू रूपलाल जी हमारी इन बातों की तरफ़ अवश्य ध्यान देंगे।

वैद्यक-शब्दसागर—यह भी एक बृहद्वैद्यक कोष है। ऊपर जिस रूपनिघंटुकोष के विषय में लिखागया है, उससे यह कुछ भिन्नप्रकार का है। इसमें प्रायः वैद्यक सम्बन्धी समस्त संस्कृत शब्दों को अकारादि क्रम से लिखकर उनकी पुँल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्गादि संज्ञा, उसके आगे सरल संस्कृत में शब्दार्थ, उसके आगे हिन्दी अर्थ या ठेठभाषा में अर्थ लिखागया है। मुख्य मुख्य शब्दों की व्याख्या विस्तृतरूप से कीगई है। इस कोष में जिस ग्रन्थ का जो शब्द आया है, उसका नाम भी शब्द के अन्त में लिखदिया गया है। पाठकों के देखने के लिए उसका कुछ अंश इस संख्या में अन्यत्र दियागया है।

यह ग्रन्थ बड़े परिश्रम से बहुत समय में तैयार हुआ है। छपने का प्रबन्ध न होने के कारण बहुत दिनों से हमारे पास पड़ा हुआ है। जिनके लिए यह ग्रन्थ लिखवाया था,उनको हिम्मत अब इसके छापनेकी नहीं मालूम होती। इसलिए अब हमने स्वयं ही इसके छापने का निश्चय किया है। ग्रन्थ बहुत बड़ा होने के कारण एक साथ इसको छापना हमारी शक्ति के बाहर है। इस कारण इसको हमने मासिक रूप से निकालने का विचार किया है। इसके प्रति मास २०-२६ साइजके ५ फार्म अर्थात् वैद्यके आकारसे ड्यौढ़े ४०पृष्ठ बढ़िया काग़ज़ पर छपाकर निकाले जायँगे। इस प्रकार एक वर्ष में ६० फार्म प्रकाशित किये जासकेंगे। इस प्रकार तीन वर्ष में ग्रन्थ पूरा होजायगा। सर्वसाधारण के सुभीते के लिए इसका वार्षिक मूल्य केवल५)रु०निश्चय कियागया है। अभी हमारे पास मूल्य भेजने की आवश्यकता नहीं,सिर्फ़१कार्ड भेजकर ग्राहकश्रेणीमें नाम लिखा दीजिए। पहला अंक छपकर तैयार होजाने पर आपकी सेवा में वी०पी० द्वारा भेजदिया जायगा और वार्षिक मूल्य ५)रु० वसूल कर लिये जायँगे। फिर आगे के कोष के अंक प्रतिमास बराबर आपकी सेवा में पहुँचते रहेंगे। जो लोग मूल्य पेशगी भेजकर हमारी सहायता करेंगे उनका नाम धन्यवाद सहित पुस्तक की आदि में प्रकाशित किया जायगा। केवल ३०० ग्राहक होजाने पर इस कोष के छापने का कार्य आरम्भ करदिया जायगा। हम आशा करते हैं कि यदि ग्राहक महाशयों की कृपा हुई तो हम विजयादशमी से पहले ही इसके ५ फार्म का पहला अंक निकाल सकेंगे।

सम्पादक वैद्य।

वैद्य महानुभावों से विनम्र निवेदन।

बड़े हर्ष का विषय है कि आयुर्वेदिक संस्थाओं, वैद्यों तथा आयुर्वेदप्रेमियों के उत्साह एवं भगीरथप्रयत्न से-इस शर्त पर कि आयुर्वेदपद्धति की [जिसको सरकार बराबर अवैज्ञानिक कहती आरही थी] जाँच के लिए, अर्थात् यह वैज्ञानिक है या अवैज्ञानिक इस बात की पूर्ण परीक्षा करने के लिए,सरकार ने आयुर्वेद पद्धति को थोड़ा सा अधिकार देकर अपनाया है। और उसीके फलस्वरूप म्युनिसिपिलबोर्ड; लोकलबोर्ड व डिस्ट्रिक्टबोर्ड की ओर से आयु-

वैदिक दातव्य औषधालय खोलने का आदेश प्रतिप्रान्त व प्रतिमंडल [जिला] को दियागया है। इतना होने पर भी कहीं २ तो वहाँ की जनता के उत्साह एवं इच्छा तथा प्रेरणा से औषधालय खुल चुके हैं, किन्तु न जाने क्यों ? अधिकांश प्रान्त व मण्डलों [जिलों] का भाव अभी आयुर्वेद की ओर से शुद्ध नहीं हुआ है। अपने देश की बनी हुई दवाओं के ऊपर प्रेम तथा विश्वास न होकर विदेशीय दवाओंपर विश्वास होना देशके लिए कल्याणकारी नहीं है इस संबंध में मुझे दो बातों का निवेदन करना अत्यावश्यक तथा उचित प्रतीत होता है। एक तो यह कि—प्रत्येक प्रान्त की वैद्यसंस्था तथा वैद्यवृन्द अपने २ यहाँ से हर जगह दातव्य औषधालय खोलने के लिए म्युनिसिपलिटियों, लोकलबोर्डों तथा डिस्ट्रिक्टबोर्डों ,को अपने अपने प्रस्तावों द्वारा सूचित करें कि वे जहाँ तक होसके शीघ्रता के साथ अपने अपने अधिकार में औषधालय खोलदें, जिससे आयुर्वेद को कार्यक्षेत्र में उत्तीर्ण होने का मौका मिले। जबतक उसे काम करने का मौका न मिलेगा, तबतक सरकार के हृदय में वह सप्रेम अपना अधिकार नहीं जमासकता। दूसरा यह कि—प्रत्येक लब्धप्रतिष्ठ एवं अधिकारप्राप्त वैद्यों से सादर प्रार्थना इसलिए है कि इससमय आप अपने पारिवारिक तथा अन्यान्य सम्बन्धियों को छोड़कर आयुर्वेद के नाते से ऐसे २ सुयोग्य वैद्यों की ही नियुक्ति होने दें, या उनकी नियुक्ति होने में किसी तरह की मदद पहुँचावें, जो पूर्णतया आयुर्वेदिक ज्ञान में प्रवीण हों। अन्यथा कमज़ोर अज्ञानी वैद्यों की नियुक्ति यदि आप की असावधानी या पक्षपात से होगी तो ध्यान रहे कि कुछ काल में ही जो आपको आयुर्वेदोद्धार के लिए अधिकार मिला है, छीन लिया जायगा, और चिरकाल के लिए अवैज्ञानिक होने के कलङ्क का टीका आयुर्वेद के माथे लगजायगा। इस पाप के भागी हम वैद्यक प्रेमियों के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं होगा। अतएव बन्धुओं, कृपया आप पूर्ण सावधानी से ध्यानपूर्वक और धैर्य्यपूर्वक काम कीजिए, सफलता अवश्य होगी। इस देशिक आन्दोलन युगमें यदि आपका आसन पीछे रहेगा तो फिर कभी आगे होने का मौका आपको नहीं मिलेगा।

आयुर्वेदाचार्य्य श्रीरामदेव ओझा का० सां० पु०-तीर्थ।

वैद्यक-शब्द-सागर।

रोचनः (पु०) कूटशाल्मलिवृक्षः = कालासेमल। (अ० को०)। श्वेतशिग्रुः = सफेद सहिंजना। पलाण्डुः = प्याज। आरग्वधवृक्षः = अमलतास का पेड़। करञ्जवृक्षः = करञ्ज का पेड़। अङ्कोटवृक्षः = अङ्कोल का पेड़। दाड़िम्बवृक्षः = अनार का पेड़। निम्बुकवृक्षः = नीबू का पेड़। (रा०नि०)। कम्पिल्लः = कबीला। रोचना = गोरोचन। (भा० प्र०)

रोचनकः(पु०)जम्बीरवृक्षः = जम्बीरी नीबू का पेड़।(रा०नि०)

रोचनफलः (पु०) बीजपूरः = बिजौरा नीबू। (रा० नि०)

रोचनफला (स्त्री०) चिर्भिटा = फूट, सेंध। (रा० नि०)

रोचनिका (स्त्री०) वंशरोचना = वंशलोचन। (रा० नि०) गुण्डारोचनी = एक प्रकार की घास। कमलागुण्डी बँगला। (र०मा०)

रोचना (स्त्री०) रक्तकह्लारवृक्षः = लाल कमोदनी। गोरोचना = गोलोचन।

रोचनी (स्त्री०) आमलकी = आमला। गोरोचना = गोरोचन, गोलोचन। (रा०नि०)। मनःशिला = मैनसिल। (हे०को०) श्वेतत्रिवृता = सफेद निसोत। कम्पिल्लः = कबीला। (अ० को०) चुक्रिकाशाकम् = चूका, चूके का शाक (भा०प्र०)। क्षुद्रक्षुपविशेषः = पोदीना। इसके गुणः—

रोचनी वह्निजननी वक्त्रजाड्यनिषूदनी।
कफवातहरी बल्या हृद्या रोचककारिणी।

पोदीना = अग्निप्रदीपक, मुख की जड़ता को दूर करने वाला, कफ-वातनाशक, बलकारक, हृदय को हितकारी और रुचिकर है। (अ०स०)

रोची-(स्त्री०) हिलमोचिका = हुलहुल का शाक (आ०स०)।

रोटिका (स्त्री०) पिष्टकविशेषः = गेहूँ, जौ आदि नाजों की बनी हुई रोटी। यथा-

शुष्कगोधूमचूर्णेन किञ्चित्पुष्टाञ्च पोलिकाम् ॥
तसके स्वेदयेत्कृत्वा भूर्य्यङ्गारैश्च तां पचेत् ॥
सिद्धैः सा रोटिका प्रोक्ता गुणास्तस्याः प्रचक्ष्महे ।
रोटिका बलकृद्रुच्या बृंहणी धातुवर्द्धनी ॥
वातघ्नी कफकृद्गुर्वी दीप्ताग्नीनां प्रपूजिताः ॥

उत्तम प्रकार से सूखे हुए गेहूँओं के आटे को जल में अच्छे प्रकार से मलकर उसको हाथ से अथवा बेलन से बढ़ाकर रोटी बनावे। उसको पहले तवे पर सेंके, फिर धूई में रखकर सेकें। उसको विद्वान् लोग रोटी कहते हैं। उसके गुण इस प्रकार हैं:—

रोटी बलकारक, रुचिकारक, पुष्टिकर, धातुवर्द्धक, वातनाशक, कफकारक, पचने में भारी और दीप्त अग्नि वाले मनुष्यों के लिए हितकारी है।

रोदनम् (न०) क्रन्दनम् = रोना, काँदना। अश्रु = नेत्रों का पानी (मे०को०)।

रोदनिका } (स्त्री०) दुरालभा = धमासा।
रोदनी }

रोधः (पु०) नदीतीरम् = नदी का किनारा।

रोधवक्रा (स्त्री०) नदी। नदी।

रोधिनी (स्त्री०)लज्जालुः = लज्जावन्ती। छुईमुई। (नि०र०)।

रोधिरम् (न०) रक्तम् = रुधिर, खून। (अ०को०)।

रोधोवक्री } (स्त्री०) नदी नदी। (त्रि०शे०)। (रा०नि०)।
रोधोवती }

रोध्रः (पु०) लोध्रः = लोध। (वा०म०)।

रोध्रकम् (न०) लोध्रकाष्ठम् = लोधकाठ, लोध की लकड़ी। (वै० को०)

रोध्रपुष्पः (पु०)मधूकपुष्पवृक्षः = महुवे का पेड़। (रा०नि०)।

रोध्रपुष्पकः (पु०) शालिधान्यविशेषः = एक प्रकार के शालिधान। (सु०सं०)

रोध्रपुष्पिणी (स्त्री०) धातकी = धाय के फूल, धाय का पेड़। (रा०नि०)

रोध्रयुग्मम् (न०) लोध्रद्वयम्=लोध और पठानी लोध।

रोध्रादिगणः (पु०) रोध्रयुक्तद्रव्यसमूहः। लोध आदि ओषधियों का समुदाय। यथा—

रोध्रसावरलोध्रपलाशकुटन्नटाशोकफञ्जीकट्फलैलवालुकसल्लकीजिंगनीकदम्बशालाःकदलीचेति ॥ इसके गुण—

एष रोध्रादिरित्युक्तो मेदः कफहरो गणः।
योनिदोषहरः स्तम्भी वर्ण्यो विषविनाशनः ॥ (सु०सं०)

अर्थात्–लोध, पठानी लोध, ढाक, श्योनाक, अशोक, भारंगी, कायफल, एलुआ, सालई, मजीठ, कदम्ब, साल और केला—इन सबको रोध्रादिगण कहते हैं। यह गण मेद, कफ और योनिदोष को हरने वाला है, एवं स्तम्भन करने वाला, वर्ण के लिए हितकारी और विषनाशक है।

रोपः (पु०) बाणः=तीर। (अ०को०)।

रोपणः (पु०) पारदः=पारा। भूधामनवृक्षः=भुई धामिन का पेड़ (नि०र०)। क्षतादिपूरणम्=घाव आदि का भरना। अञ्जनभेदः=एक प्रकार का अञ्जन (भा०प्र०)

रोपणचूर्णम् (न०) नयनाञ्जनविशेषः=एक प्रकार का नेत्रों का अञ्जन। (भा०प्र०)

रोपणाऽञ्जनम् (न०) कषायस्नेहसंयुक्ताऽञ्जनम्=ओषधि आदि के क्वाथ और घृतादि को मिलाकर जो अञ्जन बनाया जाता है। (तो०न०)।

रोपणीवर्त्तिः (स्त्री०)नेत्राऽञ्जनविशेषः=नेत्रों में लगाने की एक प्रकार की अञ्जन की बत्ती (भा०प्र०)

रोप्यातिरोप्यः (पु०) धान्यविशेषः=एक प्रकार के शालिधान। इसके गुण—

रौप्यातिरौप्यलघवः शीघ्रपाका गुणोत्तराः।
अदाहिला दोषहरा बल्या मूत्रविवर्द्धनाः ॥

रौप्यातिरौप्य धान–लघु, शीघ्र पचनेवाले, अधिक गुणवाले, दाह न करने वाले, त्रिदोष नाशक, बलकारक और मूत्र को बढ़ाने वाले हैं। (सु०सं०)

रोमम् (न०) जलम्=पानी । (श०चं०) । पत्रम्=तेजपात । (ग्र० नि०) ।

रोमः } (पु०) महानिम्बवृक्षः=बकायन का पेड़ ।
रोमकः } (नि०र०)

रोम (न्) न० । शरीरजाताङ्कुरः=शरीर के रुयें, रोम, लोम, । संस्कृत नाम-लोम, अङ्गजम्, त्वग्जम्, चर्म्मजम्, तनूरुहम् (रा० नि०) । तनुरुहम् । तनुरुट् (श० र०) तत्तु गर्भस्थस्य बालकस्य षष्ठे मासे भवति । रोम गर्भगत बालक के छठे महीने में उत्पन्न होते हैं । (सुखबोध)।

रोमकम् (न०) पांशु लवणम्=रेहगवाँ नमक । साम्भारी लवणम्=साँभर नमक । अयस्कान्त भेदः=एक प्रकार का कान्तलोह । (रा० नि०) ।

रोमकः (पु०) अयस्कान्तमणिभेदः=चुम्बक पत्थर । (रा० नि०) ।

रोमकन्दः (पु०) पिण्डालुः=पिंडालु । रक्तालुः=रतालु । (रा० नि०) ।

रोमकपत्तनम् (न०)देशविशेषः=रोमदेश ।

रोमकर्णः } (पु०) शशकः=खरगोश ।
रोमकर्णकः } "

रोमकाल्यम् (न०) साम्भारीलवणम्=साँभर नमक । मृत्तिकालवणम्=खारी नमक । कान्तलौहम्=कान्तलोह, फौलाद ।

रोमकूपः (पु०) लोमविवरम्=रोमकूप, शरीर के रोमों के छिद्र, मसामात ।

रोमकेशरम् } (न०) चामरम्=चमरः चौंर, चमरी
रोमगुच्छम् } [हे० को०]
रोमगुच्छकम् }

रोमतस्वरी } (स्त्री०) अरोमस्त्री=रोमरहित स्त्री ।
रोमतच्छरी } जिसके शरीर पर रुयें न हों, ऐसी स्त्री ।
(श० र० म०) ।

रोमक्रिपिः कृमिः = कीड़ा । (रा०नि०)

रोमभूमिः (स्त्री०) चर्म्म = चमड़ा (रा० नि०)

रोमन्थः (पु०) पशूनां चर्वितचर्वणम् = पशुओं का जुगालना। चारे को चबाकर खाना। (अ० को०)

रोम फला (स्त्री०) डिण्डिश = ढेंढस । (नि०र०)

रोमलता (स्त्री०) रोमराजी = रुओं की पंक्ति । रोमावली (श० चं०)

रोमलवणम् (न०) साँभरलवणम् = साँभर नमक । सौवर्चलवणम् = काला नमक । (र० मा०)

रोमवल्ली (स्त्री०) कपिकच्छूः = कौंछ । (रा० नि०)

रोमविकारः (पु०) रोमाञ्चः = रोमाञ्चों का होना, रुओं का खड़ा होना । (हे० को०)।

रोमशः (पु०) मेषः = भेड़ । (हे० को०) । पिण्डालु = पिंडालु । कुम्भी पुष्पविशेषः = जलकुम्भी । शूकर = सूअर, सूकर । (रा०नि०) मलान्तकवृक्षः = एक प्रकार का खार का पेड़ (भा० च०)

वैद्यराज, वैद्यकप्रेमी और अन्य महानुभावों की सेवा में प्रार्थना ।

रूप-निघण्टुकोष ।

मैंने लगभग २५ वर्ष के कठिन परिश्रम से और बहुत साद्रव्य खर्च करके उक्त औषधिकोष तैयार किया है । इसमें औषधियों के विविध भाषाओं के नाम अकारादि क्रम से लिखे गये हैं। एवं औषधि का उत्पत्तिस्थान, विवरण, स्पष्ट चित्र और प्रयोगादि सभी आवश्यक विषयों का समावेश किया गया है । "कोष और निघण्टु" दोनों विषय इसमें उत्तमता से विस्तारपूर्वक आगये हैं । संस्कृतके सिवा भारत के अनेक प्रान्तों में बोली जाने वाली भाषाओं के नाम, देहाती नाम और फ़ारसी, अरबी आदि नाम भी सम्मिलित हैं । इन शब्दों के आगे विविध प्रान्तों के सांकेतिक चिन्ह दियेगये हैं और उनके पर्य्यायवाची नाम सरल भाषामें लिखेगये हैं।

शब्दार्थ में पहला नाम वही लिखा गया है जिसके आगे ओषधि का विस्तृत विवेचन किया गया है। ओषधि के परिचय में (१) विविध प्रान्तों के नाम (२) उत्पत्तिस्थान, (३) विवरण, (४) चित्र। चित्र इतने स्पष्ट बनाये गये हैं कि इनके द्वारा कोई मनुष्य भी वनस्पतियों के पहचानने में पूर्ण लाभ उठासकता है, (५) आयुर्वेदीय मतानुसार गुण-दोष, (६) यूनानी मतानुसार गुण-दोष, (७) प्रतिनिधि (८) दर्पनाशक; (६) मात्रा और (१०) प्रयोग। इसमें (१) उपयोगी अङ्ग, (२) डाक्टरी सम्मति, (३) व्याख्या और (४) अनुपान सेवनविधि है। आयुर्वेदीय ओषधियों के सिवा कितनी ही यूनानी ओषधियों का भी इसी प्रकार सचित्र वर्णन किया गया है।

शब्दार्थ में लिखागया पहला नाम मुख्य है। क्योंकि इसी के आगे उसका पूर्ण परिचय दिया गया है। जिसमें पढ़ने वाले किसी एक ओषधि का, किसी प्रान्त का, कोई एक नाम जानकर क्षणमात्र में उसका पूर्ण परिचय पासकें और अन्य निघंटु की तरह घण्टों ढूढ़ने का कष्ट न उठावें। अर्थात् कोई एक नाम जानने से वह शब्द देखकर उसके अर्थ में जो पहला नाम लिखा गया है उसको देखने से ही प्रत्येक विषय भलीभाँति जानसकते हैं।

जिस प्रकार ओषधियों के नामों में एक नाम प्रधान मानकर उसके आगे उसका पूर्ण परिचय दिया गया है, उसी प्रकार रोगों के नामों को भी अकारादि क्रम में सम्मिलित करके एक नाम प्रसिद्ध मानकर उसके आगे उसका संक्षिप्त निदान तथा इस ग्रन्थ में आये हुए तत्तद्रोगनाशक ओषधि और प्रयोग के नम्बर भी लिख दिये गये हैं, जिससे पढ़ने वाले रोगनाशक ओषधियों की सूची सहज में ही प्राप्त करसकें।

यह ग्रन्थ विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। क्योंकि वे संदिग्ध शब्दों का अर्थ चाहे जिस भाषा में हो सहज में जान सकते हैं और वनौषधि के पहचानने में उन्हें इसके चित्रों द्वारा बहुत सहायता मिलसकती है।

ग्रामीण वैद्यों के लिये भी यह ग्रन्थ अत्यन्त लाभदायक होगा। अत्तार और पंसारी लोग भी इससे लाभ उठासकते हैं।

यद्यपि मैं हिन्दी लिखने तथा हिन्दी के ज्ञान से बिलकुल अनभिज्ञ हूँ। फिर भी येन केन प्रकारेण इस कार्य्य को अकेला ही उत्साहपूर्वक सम्पन्न करता आया हूँ। इस पुस्तक से संग्रह करके "दशमूलनिर्णय" को मैंने युक्तप्रान्तीय प्रथम वैद्यसम्मेलन की सेवा में भेजा था और अधिवेशन के समय निघण्टु साथ लेकर स्वयं सम्मेलन में उपस्थित हुआ था। कतिपय विद्वान् वैद्यों ने इसकी उपयोगिता स्वीकार करते हुए मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और "दशमूलनिर्णय" को सर्वश्रेष्ठ मानकर सम्मेलन ने मुझे एक रौप्य-पदक प्रदान किया।

श्रीपूज्यवर कविरत्न, कविराज उमाचरण भट्टाचार्य्य निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेदीय वैद्यसम्मेलन के सभापति, निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद परीक्षक तथा महामहोपाध्याय ने प्रशंसापत्र देने की कृपा की है एवं सुप्रसिद्ध श्रीपूज्यवर भिषक् अर्जुनमिश्र ने इसकी समालोचना की है।

इस पुस्तक की उपयोगिता के विषय में मुझे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। जो महानुभाव इसको देखना चाहें उन्हें मैं प्रसन्नता पूर्वक दिखलाने को तैयार हूँ। यह पुस्तक ८०-८० पृष्ठ की कापियों पर लिखी गयी है। इसकी तीन कापियाँ-नं० ३५, ३६ और ३७ पृष्ठसंख्या २७४१ से २८८१ तक अर्थात् २४० पृष्ठ, जिनमें चित्र नं० ६९१ से ७५७ तक अर्थात् ५७ चित्र हैं वे श्रीमान् सम्पादक "वैद्य" की सेवा में भेजीजाती हैं। मेरा अनुरोध है कि सम्पादक महोदय इनको भलीभाँति निरीक्षण कर अपनी सम्मति के साथ इस अपील को "वैद्य" के पाठकों के सामने प्रकाशित करदें।

यह ग्रन्थ लगभग ५५०० पृष्ठों में पूरा होगा और इसमें १४०० चित्र दिये जायेंगे। जिन में लगभग ३००० पृष्ठ तथा ८०० चित्र प्रेस में देने को तैयार हैं। और शेष २५०० पृष्ठ तथा ६०० चित्र लिखने को बाकी हैं। मैं रेलवे कर्मचारी होकर अवकाश के समय प्रतिदिन ८ घण्टे दिन रात में परिश्रम करता आया हूँ और अपने उपार्जन का कुछ हिस्सा इसके साथ खर्च करता आया हूँ। इस अनवरत परिश्रम का सब से बुरा फल मेरे स्वास्थ्य का बिगड़ जाना हुआ। स्वास्थ्य के बिगड़ने से और अन्यान्य कारणों से भी अब आर्थिक दशा भी बिगड़ गई है। आर्थिक दशा के बिगड़ने से इस

Regd. No A. 687

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिक-पत्र

सम्पादक—शङ्करलाल वैद्य

वर्ष ११	मुरादाबाद। जुलाई, सन् १९२३	संख्या ७

विषय-सूची

१—वर्षा ऋतु की श्रेष्ठता १८१

२—विसूचिका और कालरा १८५

३—स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक विशेषतायें १९०

४—भोजन की पुकार १९९

५—अपराजिता २०२

६—परीक्षित प्रयोग २०४

७—आँखों की रक्षा २०७

८—प्रेरित पत्र २०८

९—नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय मद्रास की शिथिलता २०९

१०—प्राप्ति-स्वीकार २११

प्रकाशक—हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद।

वार्षिक मूल्य १॥)] [एक संख्या का मूल्य ॥)

Printed by—Nemi Chand Jain,
at the Sharma Machine Printing Press,
MORADABAD.

❀ वैद्य के नियम ❀

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डाकमहसूल सहित केवल १॥) है। पेशगी मनीआर्डर भेजने से १॥) रु० और वी० पी० मँगाने से १॥।) रु० पड़ेगा।

(३) 'वैद्य' का नमूने में कोई सा एक अङ्क भेज दिया जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषयक लेख, कविता, अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वे पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायेंगे। परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिए, जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिए कार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँचकर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी २ अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं। इसका कारण रास्ते की असावधानी हो होसकती है। जिन महाशयों को जो अङ्क न मिले वे दूसरे अङ्क के पहुँचते ही हमें सूचना दें अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सर्वप्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि–
वैद्य शंकरलाल हरिशंकर, वैद्य आफिस, मुरादाबाद.
के पते से आने चाहियें।

वैद्य में विज्ञापन छपाई व बटाई की दर।

स्थान.	१ वर्ष १२ बार	६ मास ६ बार	३ मास ३ बार	१ मास १ बार
एक पृष्ठ	५०)	३०)	१७)	६)
आधा पृष्ठ	३०)	१७)	१०)	३॥)
चौथाई पृष्ठ	१८)	१०)	६)	२)

विज्ञापन बटाई विज्ञापन दिखाकर तै कीजिये।

मैनेजर "वैद्य", मुरादाबाद

अब सघन घनों से सर्व्वथा वे घिरे हैं।
तपन न दिखते हैं--आज मानो निरे हैं॥ ५॥

सब विधि तब प्राणी नीर से हीन मीन।
जस दुख लहते हैं, हो गये थे मलीन॥
अब जिधर विलोको नीर ही दीखता है।
जल सुख दिखने को नेत्र भी सीखता है॥ ६॥

जिधर नज़र जाती सौख्य की थी न पानी।
गगन धरणि धूली आग सी थी लखाती॥
अब पथ चलने में पाँक ही पाँक सूझे।
जलमय मग में तो पन्थ कोई न बूझे॥ ७॥
पवन बह रहा था अग्नि-सन्ताप-धारी।
नरु, तृण, सरिता का शीघ्र संहारकारी॥
अब मृदु अनिलों से वृक्ष पूरे हरे हैं।
शुभ जल नद भी तो—नीर से ही भरे हैं॥ ८॥
प्रतिदिन तब वायु-व्याप्त संसार होता।
खग मृग मनुजों का शान्ति संहार होता॥
अब पवन बना है प्राण से भी पवित्र।
अतिसुख सरसाता देह में है विचित्र॥ ९॥
प्रखर पवन वात्या व्रात के व्याज से था।
तब जन--सुख--हारी नृत्य नीदाघ से था॥
अब घर घर बाजा मेघ मानो बजाते।
घन-तड़ित-विवाह-व्रात को हैं सजाते॥ १०॥
निश्चय पवन का तो सर्व्वथा था प्रधान।
सकल मनुज सेवें, शीत उद्यान गान॥
तदपि न सुख पावें, कष्ट संसार में था।
नियत बहु सताया नित्य नीदाघ ने था॥ ११॥
विविध मछलियाँ जो नीर से हीन हो के।
तपन-खर-करों की पीर से दीन हो के॥
तड़प तड़प मानो प्राण जो दे रही थीं।
प्रिय निज जल के ही साथ को दे रही थीं॥ १२॥
अब अतिसुख पाके नीरदों की कृपा से।
भरित जलसरों में खेलतीं नीर पाके॥

मनुज नियति के है--साथ ही मीन की भी ।
नियत नियति जागी-वे यथा हो सना(?)भी ॥१३॥
कफ कर जग में तो भाव कोई नहीं था ।
निश्चित पवन होता था न कोपी कभी था ॥
अब वह अति कोपी हो यहाँ राजता है ।
निज रुजगण पाके भूप हो भ्राजता है ॥ १४ ॥
उस समय लखाता व्योम था धूलि पूर्ण ।
प्रकट विधु न होता था, न था तेज पूर्ण ॥
उस जगह, यहाँ है-वृष्टि से ध्वस्तरेणु ।
गगन विशद होता है, कभी ज्यों सरेणु ॥ १५ ॥
सुधि बुधि मनुजों की ताप से नष्ट जो थी ।
यह विषम समस्या है नहीं कष्ट जो थी ॥
तपन पवन ने तो हिंसकों के विरोध ।
निजभुज विभुता से ही किये थे निरोध ॥ १६ ॥
जब मृग विपिनों में वृक्ष की शीत छाया ।
हरिगण युत सेवें--छोड़ के मोहमाया ॥
हरिणशिशु मृगेन्द्र प्राणप्यारी--स्तनों में ।
रुचिर मुख लगाये दूध पीते वनों में ॥ १७ ॥
इस तरह निदाघ प्राणियों की सभास ।
प्रकृति विमुखता को है दिखाया प्रकाश ॥
उस जगह यहाँ है—आज क्यों प्राणियों में ?
प्रकृति उचित भाव व्याप्त संसारियों में ॥ १८ ॥
यह सुन कर बोले मित्र से वैद्यराज ।
प्रतिदिन करते जो लोक का शुद्ध काज ॥
नय निपुण नहीं क्यों भारतीयों उचारें ।
मृत विषय समाज प्राण को वे उबारें ॥ १९ ॥
निशिदिन जनता को जो सताता सदा है ।
पर-मन कटुवाक्यों से दुखाता सदा है ॥
वह नर न कदापि प्रेम से मातृभू के ।
भरित हृदय होता, कार्य में व्यर्थ चूके ॥ २० ॥
इस तरह निदाघ प्राणियों को सताके ।
कटुतर किरणों से भूमि को भी तपा के ॥

अब विमल हुआ है, प्रेय अम्भोधरों का।
समय सुभग आया, ज्ञान आया नरों का ॥ २१ ॥

अब सब सुख पाते हैं यहाँ बुद्ध हो के।
विमल मति जभी है-शास्त्र से शुद्ध होके ॥
निज निज गुण योग्य प्रेम से कार्य्य को हैं।
सविधि कर रहे वे, स्वीय सद्धर्म्म जो हैं ॥ २२ ॥

जब तब दश बुन्दें नीर की नीरदों से।
गिरकर थमजातीं, कामिनीं पीड़कों से।
विपुल सलिल वर्षा हो कभी मेदिनी को ॥
अतिसरस बनाती सौख्य देती सभी को ॥ २३ ॥
जहँ तहँ घनमाला व्योम में घूमती है।
द्विरद समदमाला ज्यों सदा झूमती है ॥
हिमकर किरणों को है छिपाती कभी तो।
रुचिर परिधि होती चन्द्रमा में कभी तो ॥ २४ ॥
अब गगन पयोदों से सदा ही घिरा है।
सुभग नभ छटा का दृश्य भी तो निरा है ॥
रुचिकर जुगनू भी, दीप से दीपते हैं।
अमरपति-धनू भी सर्व्वथा दीखते हैं ॥ २५ ॥
मन वश करलेती है छटा दामिनी की।
विविध विवुधरंगी इन्द्र-बाणावली की ॥
अति निविड तमिस्रा में तडित् का प्रकाश।
पथ अभिसर कान्ता को दिखाता विकाश ॥ २६ ॥
सब कुछ पचजाता था जहाँ प्राणियों को।
अनल विकृत होवे जो वहाँ प्राणियों को ॥
यह उचित सही है, देह की क्षीणता से।
अनल मृदुल होती तीक्ष्ण भी दीनता से ॥ २७ ॥
अब मृदु सुखपाकी द्रव्य को जो सदा ही।
समुचित चखते हैं, हैं न खाते विदाही ॥
वह नर न हुताश-त्रास को प्राप्त होते।
निज तन सुखकारी भाव को भी न खोते ॥ २८ ॥
अब वह गरमी तो नष्ट हो ही गई है।
रुचिकर अशनादि प्राप्ति भी होगई है ॥

मृदु लघुतर आओ सर्व्वथा सौख्ययुक्त ।
वपु सुख सरसाओ रोग से हो विमुक्त ॥ २६ ॥
यह सुन कर बोला वैद्यजी से वयस्य ।
निज वचन सुधा ले जो करे लोकवश्य ॥
ऋतुवर यह पृथ्वी ताप को है हटाया ।
विकसित तरुओं को है बनाया बढ़ाया ॥ ३० ॥
प्रियवर ! अतएव श्रीरमा की कृपा से ।
ऋतुनृप यह होवे, तापहारी प्रभा से ॥
अगद निगम को भी देव देखें दया से ।
जनप्रिय यह भी हो, युक्त हो स्वप्रभा से ॥ ३१ ॥

ले०—आयुर्वेदाचार्य श्रीरामदेव ओझा, चिकित्सक
काव्य, सां०, पु० तीर्थ।
वैद्यनाथ औषधालय
सरैयागंज, मुज़फ़्फ़रपुर।

विसूचिका और कालरा।

आयुर्वेदोक्त विसूचिका (हैजा) रोग कालरा है या नहीं ? इस विषय में चिकित्सकों में बहुत दिनों से मतभेद चला आरहा है। कोई कहते हैं कि विसूचिका ही कालरा है; और कोई कहते हैं कि-कालरा विसूचिका से बिलकुल भिन्न रोग है। अधिकांश होमियापैथिक और एलोपैथिक डाक्टर अन्तिम मतके ही पक्षपाती हैं। हम इस प्रबन्ध में इसी विषय की सत्यता प्रकट करने का प्रयत्न करेंगे।

जो लोग विसूचिका को कालरा कहने में सन्देह करते हैं, उनका सन्देह यह है कि विसूचिका अजीर्ण रोग से उत्पन्न होता है—और कालरा जीवाणुओं का आक्रमण होने से उत्पन्न होता है। किन्तु, हम केवल इसी युक्ति के ऊपर निर्भर रहकर विसूचिका को कालरे से पृथक् नहीं मान सकते। हम उसके कारणों को विशेष रूप से निर्दिष्ट करेंगे।

पहले यह देखना चाहिए कि कालरा जीवाणुओं से उत्पन्न होता है या नहीं ? इस विषय की अनेक बार परीक्षा करने से मालूम हुआ है कि कालरा केवल जीवाणुओं के उदरस्थ होने से ही उत्पन्न नहीं होता; क्योंकि कितने ही प्राणियों को

परीक्षा के लिए कालरे के जीवाणु खिलाकर देखा गया, किन्तु उनको कालरा नहीं हुआ। अनेक स्वस्थ मनुष्यों के मल में कालरे के जीवाणु निकलते हैं। इसलिए केवल जीवाणुओं को ही कालरा उत्पन्न होने का कारण नहीं कहा जासकता। कालरा-जीवाणुओं के अतिरिक्त और भी कुछ कारणों को चाहता है-जिनसे कि रोग उत्पन्न होसके। न्यायशास्त्र में कारण तीन प्रकार का कहा गया है। पहला समवायि कारण-जैसे सूत्र, वस्त्रका समवायि कारण है। दूसरा असमवायि कारण-जैसे सूत्रों का वस्त्ररूप में एकत्र संयुक्त होना वस्त्र का असमवायि कारण है-और तीसरा निमित्त कारण जैसे-तुलियें, कूची आदि वस्त्र के निमित्तकारण हैं। यहाँ पर यदि कालरे के जीवाणुओं को कालरे का समवायिकारण कहाजाय तो भी अन्य दो कारणों की आवश्यकता है। वे दो कारण कौन से हैं? उनको इसप्रकार बतला या है, जैसे-जलके साथ मिलकर जीवाणुओं का शरीरमें प्रविष्ट होना असमवायि कारण है-और अजीर्ण को यदि निमित्त कारण कहाजाय तो कालरे के जीवाणु भी कालरे के कारण होसकते हैं और अजीर्ण भी कालरे का कारण कहा जासकता है। इसलिए प्राच्य और पाश्चात्य दोनों शास्त्रों का सिद्धान्त ठीक जान पड़ता है।

दूसरे आजकल जो रोग जीवाणुजनित कहे जाते हैं, (राजयक्ष्मा आदि) वे आयुर्वेद में जीवाणुजन्य कहे गये हैं या नहीं? इस के उत्तर में यही कहना पड़ेगा कि-नहीं। (इससे कोई यह न समझे कि जीवाणुवाद=Germ Theory को हम मिथ्या मानते हैं) केवल एक कृमिरोग के निदान में कहागया है कि छः प्रकार के कृमि कुष्ठरोग को उत्पन्न करते हैं। इससे यह मालूम होता है कि अदृष्ट रोगजनक जीवाणु हमारे महर्षियों की ज्ञानदृष्टि से बाहर न थे। यहाँ यह शंका होती है कि जब यह बात थी तो उन्होंने अन्यान्य जीवाणुजन्य रोगों के जीवाणुओं का वर्णन क्यों नहीं किया? इसके उत्तर में यह अवश्य कहना पड़ेगा कि-आधुनिक "जीवाणुवाद मिथ्या है"; पाश्चात्य डाक्टर अपनी इस भ्रमपूर्ण परीक्षा में बिल्कुल मिथ्या को सत्य मानते हैं, क्योंकि हमारे आयुर्वेदाचार्य्य महर्षिगण अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा जीवाणुवादको जानलेने पर भी यह उसको ही केवल रोगका कारण नहींमानते थे।

किन्तु इतना ही कहने से काम नहीं चलेगा । जीवाणुओं का उल्लेख न होने पर भी अनेक रोगों की संक्रामकता का विषय आयुर्वेद में वर्णित है । जैसे—

"प्रसङ्गाद्गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात्सह भोजनात् ।
एकशय्यासनाच्चैव वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥
ज्वरकुष्ठश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥"

अर्थात्-प्रसङ्ग करनेसे,दूसरे के शरीर का स्पर्श होनेसे, दूसरे के श्वास को ग्रहण करने से, एक साथ भोजन, एक शय्यापर शयन और एक आसन पर बैठने से वा दूसरे के पहरे हुए वस्त्र, माला और अनुलेपन (चन्दनादि) का व्यवहार करने से-ज्वर, कुष्ठ, राजयक्ष्मा, नेत्राभिष्यन्द (आँखों का दुखना) और औपसर्गिक रोग एक मनुष्य के शरीर से दूसरे मनुष्य के शरीर को आक्रान्त करते हैं । ऐसे कितने ही रोग हैं, जो एक के शरीर से दूसरे के शरीर में प्रविष्ट होते है । अब यहाँ शंका यह होती है कि औपसर्गिक रोग किसको कहते हैं । इसके सम्बन्ध में शास्त्र में कहा है कि जो रोग प्रथम उत्पन्न होकर कुछ समय के बाद दूसरे रोग को उत्पन्न करता है, उसको औपसर्गिक रोग कहते हैं । वही रोग-हेतुक होता है । फिर कुछ समय के बाद उसको उपसर्ग कहते हैं ।

विसूचिका रोग में-अतिसार, मूर्च्छा आदि रोग उपद्रव रूपसे उत्पन्न होते हैं, इस लिए विसूचिका रोग भी औपसर्गिक रोगों के अन्तर्गत है । अतएव यह संक्रामक है ।

इससे यह सिद्ध होता है कि इस समय पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र के मत से जो रोग जीवाणुजनित कहे जाते हैं, उनको आयुर्वेदज्ञ महर्षियों ने जाना हो चाहे न जाना हो;परन्तु रोग सम्बन्ध में उन्होंने इस प्रकार की कोई बात नहीं लिखी है । पर यक्ष्मा रोग के जीवाणुओं का उल्लेख न होने पर भी किसी विद्वान् ने यक्ष्मा-को थाइसिस से पृथक् रोग नहीं माना है । इसी प्रकार विसूचिका के जीवाणुओं का वर्णन न होने पर भी उसको कालरे से भिन्न रोग नहीं कहा जासकता ।

विपक्षी लोगों का दूसरा भ्रम यह है कि-विसूचिका कालरे की समान तत्काल मारात्मक रोग नहीं है । किन्तु उनका यह भ्रम

बिल्कुल युक्तिहीन है। कारण आयुर्वेद में इस का उल्लेख न होने पर भी विसूचिका को सर्वथा मारात्मक कहागया है। विसूचिका रोगकी चिकित्साके प्रारम्भ में ही कहा गया है:—

"साध्यासु पार्ष्णिर्दहनं प्रशस्तमग्निप्रतापो वमनञ्च तीक्ष्णम् ॥"

अर्थात्-रोग के साध्य होनेपर पार्ष्णि (पैर की एँड़ी) को खूब तपायी हुई लोहे की शलाका से दग्ध करके स्वेद देवे और तीक्ष्ण औषधियों के द्वारा वमन करावे।

पहले जो यह कहागया है कि रोगके साध्य होनेपर इसप्रकार की चिकित्सा करनी चाहिए ऐसा कहकर इस रोगकी विशेष रूपसे असाध्यता सिद्ध की गई है। उसके बाद रोगकी चिकित्सा के पूर्व में ही पार्ष्णि को दग्ध करने की व्यवस्था की है। इस बातको आयुर्वेद का जानने वाला प्रत्येक चिकित्सक जानता है कि रोगके मारात्मक होनेपर ही इसप्रकार की दाहक्रिया कीजाती है। साधारण मनुष्यों के जानने के लिए हम यहाँ इसीप्रकार का दूसरा प्रयोग लिखते हैं। सन्निपातज्वर की चिकित्सामें कहा है:—

"पादयोर्हस्तयोर्मूले कण्ठकूपे च शङ्खयोः।
स्वेदेषु च कुलत्थानां कणानां चूर्णघर्षणम् ॥"

अर्थात्-सन्निपात ज्वर में (रोगी के बेहोश होजाने पर) हाथ-पैरों की मूल, कण्ठकूप और दोनों कनपटियों का खूब तपायी हुई लोहे की शलाका के द्वारा दग्ध करे। जब खूब पसीना निकलने लगे तब कुलथी या पीपल का चूर्ण शरीर पर मले।

संन्यास रोग की चिकित्सा में कहा है कि:—

"सूचीभिस्तोदनं शस्तं दाहगोड़ानखान्तरे।
लुञ्चनं केशलोम्नाञ्च दन्तैर्दंशनमेव च ॥
आत्मगुप्तावघर्षश्च हितास्तस्यावबोधने ॥"

अर्थात् संन्यास रोगमें नखोंके भीतर सुई चुभोना, तपी हुई लोहे की शलाका के द्वारा दग्ध करना, केश, रोमादिक आदिका उखाड़ना, दाँतों से काटना और कौंचकी फली को शरीर पर घिसना-इन सम्पूर्ण क्रियाओं के द्वारा रोगी को होश में लाना चाहिए।

उक्त दाहक्रिया जिस रोगकी मारात्मक अवस्था में प्रयोग की जाती है, उसको विद्वान् वैद्य ही जान सकते हैं। इस लिए

कालरा जो पहले से ही मारात्मक रूप धारण करता है वह असाध्य होने पर शीघ्र मारात्मक होजाता है। आगे हम इस विषय को और प्रमाण देकर सिद्ध करते हैं।

विलम्बिका-विसूचिका रोग की एक अवस्था विशेष है। विलम्बिका रोगके सम्बन्ध में लिखा है कि:—

'दुष्टन्तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्त्तते नोर्द्ध्वमधश्च यस्य।
विलम्बिकां तं भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः॥

अर्थात्-जिस रोगमें वायु और कफके द्वारा दूषित हुआ भुक्त पदार्थ ऊर्द्ध्व वा अधोमार्गसे न निकल सके उसको विलम्बिका रोग कहते हैं। प्राचीन आयुर्वेदज्ञ महर्षियों ने कहा है कि ऐसे रोगी की चिकित्सा नहीं करनी चाहिए।

ऐसे रोगी की चिकित्सा क्यों नहीं करनी चाहिये? इस का कारण यह है कि-यह रोग आरोग्य नहीं होता। जो रोग पहलेही से असाध्य है और विसूचिका की समान भयङ्कर औपसर्गिक है, वह रोग निस्सन्देह मारात्मक होगा। इसीलिए शास्त्रकारों ने कहा है कि यह रोग नहीं है, वल्कि साक्षात् यम की मूर्त्ति है। अतएव इस रोग की चिकित्सा करने से कुछ लाभ नहीं होता।

इस रोग के सम्बन्ध मेंबिल्कुल इसी प्रकार का उल्लेख पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्रवेत्ता डाक्टर असलर (Osler) के चिकित्सा ग्रन्थ में (Practice of Medicine) में देखा जाता है।

इससे यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि जो विसूचिका को कालरे की समान शीघ्र मारात्मक न कहकर दोनों रोगों को पृथक् पृथक् मानते हैं, उनकी युक्ति ठीक नहीं है। क्योंकि विसूचिका शीघ्र मारात्मक है। विलम्बिका रोगोको त्याग देने की जो बात कही गयी है, इस विषय में यह कहना अत्यावश्यक है कि जिन्होंने आयुर्वेदशास्त्र नहीं पढ़ा है,वे ही शास्त्रकारो को दोष देसकते हैं। जब भयंकर रोग हो तब रोगी की चिकित्सा नहीं करनी चाहिए, यह कैसा उपदेश है? यहां वास्तव में उक्त वाक्य का उद्देश्य रोगका असाध्यत्व और शीघ्र मारात्मकत्व निश्चित करना है, रोगी को असाध्य समझ कर त्यागने का मतलब नहीं है। क्योंकि शास्त्रकारों ने स्पष्ट कहा है कि:—

"यावत्कण्ठगताः प्राणा यावन्नास्ति निरिन्द्रियः।
तावच्चिकित्सा कर्त्तव्या कालस्य कुटिला गतिः॥"

अर्थात्-जब तक इन्द्रियों की शक्ति बिल्कुल क्षीण न होजाय और जब तक प्राण कण्ठमें स्थित रहें तबतक चिकित्सा करनी चाहिए। क्योंकि कालकी गति अत्यन्त कुटिल है अर्थात् क्या मालूम कि असाध्य रोगी अच्छा होजाय।

वायु और जलके दूषित होनेसे इस रोग का आक्रमण होता है, इस बात को पाश्चात्य चिकित्सक भी मानते हैं-और संक्रामक रोग का प्राबल्य दूर करने के लिए वायु की शुद्धिके वास्ते सुगन्धित और जन्तुनाशक पदार्थों का जलाना और जलशुद्धि के लिए पोटासपरमेंगनेट को कुओं में डालनेका आदेश देते हैं। रोगका बीज मिल जाने से अथवा अन्य किसी कारण से वायु और जल दूषित होकर रोगोत्पादक होजाते हैं।

आयुर्वेद में कहा है कि-कालके अयोग, अतियोग और मिथ्या योग से रोगका प्राबल्य होता है। इसके सिवा काल विशेष में संक्रामक रोगों की भी प्रबलता होती है। आजकल जैसे शीतकाल में प्लेग,वसन्तऋतुमें माता-शीतला और वर्षा व ग्रीष्मऋतुमें विसूचिका अथवा कालरे की प्रबलता का वर्णन करके हम इस बातको सिद्ध करसकते हैं।

देश के दूषित होने पर संक्रामक रोगों की प्रबलता होती है। संक्रामक रोगों से बचने के लिए उस देश को छोड़ देने की आज्ञा प्राच्य और पाश्चात्य दोनों प्रकार के चिकित्सा शास्त्रों में दीगई है। आयुर्वेद में-जनपद के ध्वंस होने के समय कर्त्तव्य कर्म्म के सम्बन्ध में लिखा है कि:—

"हितं जनपदानाञ्च शिवानामपसेवनम्।"

अर्थात्-निर्दोष नगर में रहना उपयोगी है, इससे मालूम होता है कि विसूचिका आदि संक्रामक रोग समय पर प्रबल होकर बहुतसे मनुष्यों का प्राणनाश करते हैं। (अपूर्ण)

स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक विशेषतायें।

(गत संख्या से आगे)

२ मांसपेशी Muscles.

स्त्रियों की मांसपेशियाँ कोमल होती हैं; वे अस्थियों के साथ उतनी दृढ़ता से मिली हुई नहीं होतीं। इसका कारण यह है कि-

स्त्रियों की मांसपेशियाँ यदि पुरुषों की समान दृढ़ होतीं तो उनके सहज में सन्तान प्रसव नहीं होसकती थी। कोई २ कहते हैं कि-स्त्रियाँ पुरुषों की समान नियमानुसार व्यायाम नहीं करतीं, इस लिए उनकी मांसपेशियाँ कोमल और शारीरिक शक्ति में पुरुषों से अत्यन्त हीन होती हैं। इसके विषयमें अमेरिका के सुप्रसिद्ध लेखक डाक्टर जि० जे०इञ्जिलमेन महोदय ने इस विषय की एक पत्रिका में लिखा है कि:-" स्त्रियों को पुरुषों की समान शारीरिक व्यायाम नहीं करना चाहिए। शक्तिशालिनी स्त्रियोंके जरायु की नानाप्रकार की पीड़ायें उत्पन्न होती हैं और मातृत्व का विकाश होने में सब प्रकार की बाधायें उत्पन्न होजाती हैं।"

३ श्वास-प्रश्वास=Respiration.

यह पहले लिखा जाचुका है कि पुरुष के श्वास-प्रश्वास के समय उदर की मांसपेशियों की क्रिया और स्त्रियों के छाती की मांसपेशियों की क्रिया अधिक होती है। इसका कारण यह है कि-गर्भावस्था में स्त्रियों के उदर की मांसपेशियों की क्रिया उत्तम प्रकार से नहीं होसकती। इस लिए प्रकृति देवी ने स्त्रियों की छाती के द्वारा श्वास-प्रश्वास लेनेका सुप्रबन्ध करदिया है। इसी के लिये स्त्रियों के पंजर की हड्डियों के साथ मेरुदण्ड के सन्धिस्थान, और छाती की हड्डी आदिका इतना परिवर्त्तन कियागया है।

४ स्त्रियों के दीर्घजीवनका कारण।

स्त्रियाँ अपने हाथसे अपनी सन्तान का पालन-पोषण करने के कारण स्वस्थ शरीर, बलवती, नीरोगिणी और दीर्घजीविनी होती हैं। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य देशके बड़े२ विज्ञानवेत्ता पण्डितों ने निर्द्धारित किया है कि:-" माता के करकमल द्वारा सन्तान का पालन-पोषण होने से सन्तान का जैसा उपकार होता है, माता के स्वास्थ्य का भी वैसा ही उपकार होता है। बालक के जन्म के पश्चात् एक महीने तक प्रसूत रोगके आक्रमण को निवारण अथवा उसकी सम्भावना को दूर करने के लिये यह (सन्तान का लालन पालन करना) एक श्रेष्ठ उपाय है। सन्तान का पालन-पोषण करते समय माता का स्वास्थ्य जिस प्रकार बढ़ता है, माता जिस प्रकार बलिष्ठा और नीरोगिणी रहती है; उसके जीवन के अन्य किसी समय में उस प्रकार की घटना प्रायः नहीं देखी जाती। बहुतसी कृश अङ्ग

वालीं और अस्वस्थ स्त्रियाँ भी उस समय (सन्तान-पालन के समय) बलवती होजाती हैं।

५ मस्तिष्क-Brain

पुरुषोंके मस्तिष्क का वजन स्त्रियों की अपेक्षा ५-६ औंस अर्थात् प्रायः तीन छटाँक अधिक होता है । यह बात पहले लिखी जाचुकी है । यहाँ इसके भेदका कारण क्या है, इस विषय की आलोचना की जायगी ।

प्रथम अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य जाति ने सम्पूर्ण विषयों में सर्वोच्च स्थान क्यों पाया है: इस बात को विचारना चाहिए ? अन्य प्राणियों के मस्तिष्क की विशेष रूपसे आलोचना करने से मालूम होता है कि-उनके मस्तिष्क का गठन अर्थात् मग़ज़ के ऊपर के अधिकांश स्थान चिकने हैं;बीच बीचमें २-१ स्थान कुछ ऊँचे और उनके समीप में सामान्य रेखा या गड्ढे दिखाई देते हैं। मस्तिष्कों की इन उच्चताओं को पाश्चात्य विज्ञानशास्त्र में फाइरि या कनव्ल्यूशन कहते हैं। वह सालकाश या फिसारके द्वारा भिन्न भिन्न हैं। अन्य प्राणियों से लेकर मनुष्य तक क्रम से उच्चतर श्रेणी के मस्तिष्कों का विशेष रूपसे अनुसन्धान करने पर मालूम होताहै कि अत्यन्त निम्नश्रेणी के जीवों की अपेक्षा उच्चतर प्राणियों की ये उच्चतायें अत्यन्त स्पष्ट, उन्नत और गड्ढे गहरे दिखाई देते हैं। वास्तव में मनुष्य के मस्तिष्क की इस उच्चता या कनव्ल्यूशन के अत्यन्त उन्नत, स्पष्ट और गड्ढों के अत्यन्त गम्भीर होने के कारण ही मनुष्य ने अन्य समस्त प्राणियों से सब विषयों में उच्चता एवं बुद्धिमत्ता और ज्ञानमें सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया है।

पाश्चात्य अनेक वैज्ञानिक विद्वानों ने कहा है कि-मस्तिष्क की ये उच्चतायें एक २ मानसिक वृत्तियों की केन्द्रस्थान हैं।मस्तिष्क के किस केन्द्र से किस वृत्तिका विकाश होता है, इस बात को अब तक विद्वान् लोग स्पष्टरूप से निर्द्धारित नहीं करसके हैं। किन्तु मस्तिष्क के सामने का भाग उन्नत प्रतिभा का केन्द्र स्थल है, इसको प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। पुरुषों के मस्तिष्क का यह सम्मुख भाग (Frontal lobe) स्त्रियों की अपेक्षा अधिक उन्नत होता है।

पहले यह बात लिखी जाचुकी है कि-स्त्रियों के शिरकी खोपड़ी पुरुषों से कुछ छोटी होती है और मस्तक की ऊँचाई

(फ्रन्टेल एमिनेन्स) पुरुषों के बहुत उन्नत होती है। इसके सिवा फ्रन्टेल बोनर (मस्तक की अस्थियों को फ्रन्टेल बोनर कहते हैं) के पश्चाद्भाग वा भीतरी भागमें जो सीता वा गड्ढा होता है(जिसमें मस्तिष्क का सम्मुख भाग मिलता है) वह स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों के अधिकतर उन्नत और गड्ढे बहुत गहरे होते हैं। इसी कारण स्त्री की अपेक्षा पुरुष ने बुद्धि और ज्ञान में श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त किया है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की बुद्धि और ज्ञान अत्यधिक उन्नत होता है, इस बात को अधिकांश विज्ञानवेत्ता विद्वानों ने स्वीकार किया है। ज्ञान और बुद्धि की प्रखरता और प्रसारता के कारण पुरुष सब में श्रेष्ठ है। पुरुषकी सूक्ष्म बुद्धि, दुरूह और कठिन अज्ञानरूपी पर्वत को भेदकर उसके भीतर से सत्यको प्रकट करती है। दूसरे पक्षमें अपत्य-स्नेह, दया, माया, स्नेह,संयम, पति प्रेम, सहिष्णुता, लज्जाशीलता, भक्ति, प्रीति आदि हृदय की वृत्तियाँ पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के बहुत ज्यादह उन्नत, सुन्दर और कोमल होती हैं।

स्त्री-पुरुष के मस्तिष्क के वज़न की जो यह न्यूनाधिकता देखी जाती है, वह शिक्षा, संसर्ग, अभ्यास और सभ्यतासे उत्पन्न नहीं होती। कारण, असभ्य जाति और नीच प्राणियों में भी स्त्री-पुरुष के मस्तिष्क के वज़न का अन्तर देखा जाता है। सुप्रसिद्ध अध्यापक सर जेम्स क्राइटन ब्राउन महोदय ने कहा है कि-"मस्तिष्क के वज़न में सामान्य परिमाण में आधी छटाँक न्यूनाधिकता होने से भी मानसिक शक्ति में विशेष अन्तर मालूम होता है। मस्तिष्क के सम्मुख भाग का (अत्युन्नत प्रतिभा का केन्द्रस्थान) धूसर पदार्थ (Grey Matter) स्त्रियों से पुरुषों के अधिक होता है। पुरुषों के इस स्थान का अपेक्षाकृत गुरुत्व-१०३६ अथवा १०३७और स्त्रियोंके केवल १०३४ होताहै। इसके अतिरिक्त पुरुष के मस्तिष्क में रुधिर अधिक प्रवाहित होताहै, इसकारण से भी पुरुष का मस्तिष्क अधिक कार्य्य करने के लिए समर्थ है।

पुरुष के ज्ञानको उत्पन्न करने वाली वृत्तियाँ अर्थात् चिन्ताशक्ति, विचारशक्ति, ध्यान-धारणाशक्ति, स्मृतिशक्ति आदि वृत्तियों का पूर्णरूपसे विकाश होनेपर कठिन मानसिक परिश्रम करना नितान्त आवश्यक होता है। दीर्घकाल तक वा जीवन पर्य्यन्त नानाप्रकार

के विप सम्बन्धी अनेक शास्त्रों को अध्ययन करके अतिगम्भीर ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। वास्तव में ज्ञान और बुद्धिके विकाश के लिये ही प्रकृति देवीने पुरुष के मस्तिष्क की रचना वा वज़न स्त्रियों की अपेक्षा ५-६ औंस अथवा ३छटाँक अधिक एवं मस्तिष्क के सम्मुख भागके कनव्ल्यूशन(प्रतिभाके केन्द्रस्थान)को अत्यन्त अधिक उन्नत निर्म्माण किया है।

स्त्रियोंकी-यद्यपि अपत्य-स्नेह,दया,माया,क्षमा,पति-प्रेम,भक्ति, प्रीति, संयम, लज्जाशीलता आदि वृत्तियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक उन्नत रहती हैं,किन्तु उक्त कोमल मानसिक वृत्तियोंके पूर्ण विकाश के लिये पुरुषों को समान कठोर परिश्रम करने की उनको कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती। कारण, ये कोमल वृत्तियाँ प्रकृतिदत्त स्वाभाविक वृत्तियाँ हैं-अर्थात् ये स्वयं प्रकट होनेवाली वृत्तियाँ हैं। अतिसरल और सामान्य उपायसे ही उक्त कोमल वृत्तियाँ पूर्णरूप से विकसित हो जातीहैं,अतएव स्त्रियोंके पुरुषों की समान मस्तिष्क की रचना व वज़न समान परिमाणमें रहनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु स्त्रियाँ यदि पुरुषोंकी समान मस्तिष्क का सञ्चालन करें तो उनकी उक्त कोमल वृत्तियाँ और मातृत्व के यन्त्र आदि दुर्बल या ख़राब होजाते हैं। यहाँ तक कि कोई सामान्य मानसिक उत्तेजना वा विषाद उत्पन्न होनेही माताओं के स्तनों का दूध ख़राब वा विषैला होजाता है। स्त्रियों के मस्तिष्क की और शरीर के समस्त यन्त्रों की गठनप्रणाली और देह के सम्पूर्ण यन्त्रों की रचना के सम्बन्ध में ध्यानपूर्वक विचार करने से स्पष्ट मालूम होजाता है कि-सन्तान को गर्भमें धारण करना, सन्तान का पालन और संसार के समस्त प्राणियों की सेवा करनेके लिये जिन यन्त्रों और जिन वृत्तियों का उन्नत रहना नितान्त आवश्यक है, भगवान् ने स्त्रियों के उन यन्त्रों और उन वृत्तियों को उसी प्रकार उन्नत करके निर्म्माण किया है। यथार्थ में मातृत्व ही स्त्रियों का विशेषत्व और सर्वोच्च अधिकार है।

वास्तव में परमेश्वर ने क्या पुरुष, क्या स्त्री किसी को भी सम्पूर्ण वृत्तियाँ समानरूपसे प्रदान नहीं की हैं। उसनेपुरुषोंमें कुछ वृत्तियाँ (ज्ञानोत्पादिनी वृत्ति) उन्नत करदी हैं। उसी प्रकार स्त्रियों में कुछ वृत्तियाँ (हृदय की वृत्ति) उन्नत कर रक्खी हैं। स्त्री और

पुरुष का एकत्र संयोग अर्थात् विवाह होने पर ही वे एक प्रकार से पूर्ण मनुष्य होते हैं। भारत के प्राचीन महर्षिगण इन समस्त गम्भीर तत्त्वों को उत्तम प्रकार से जानते थे, इस लिए वे स्त्री-पुरुष अर्थात् पति-पत्नी के एकत्र सम्मिलन के उद्देशसे नाना प्रकार के नियमों को लिपिबद्ध करगये हैं। प्राचीनमहर्षियों की उत्तमव्यवस्था के ही कारण पुरुषों ने ज्ञानयोग में और रमणियों ने कर्मयोग में सिद्धि प्राप्त की है। आधुनिक समयमें पाश्चात्य देश के विचक्षण विद्वान् भी इन तत्त्वों को प्राप्त करने के लिए तैयार हुए हैं।

६ रक्त—Blood.।

स्त्री-पुरुष के रक्तके उपादानों की विभिन्नता इससे पूर्व लिखी जा चुकी है। गर्भावस्थामें स्त्रियों के रक्त की अवस्था का और भी परिवर्त्तन होता है। सुप्रसिद्ध डाक्टर प्लेफेयार, डाक्टर ग्लोविन, डाक्टर दास महोदयगण कहते हैं कि:—' गर्भावस्थामें रक्त के उपादानों का अच्छे प्रकार से परिवर्त्तन होता है। रक्त का जलीय अंश बढ़जाता है और शिराओं में अण्डलाल नामक पदार्थ कम हो जाता है।" डाक्टर वेकारेल और रिडआर कहते हैं कि-"गर्भ न होने पर लाल कण १२७२ रहते हैं और गर्भावस्थामें उनकी संख्या ११९८ होती है। इन परिवर्त्तनों के साथ २ रक्तमें फेब्रिन और एकस्ट्राकटिव पदार्थ बढ़जाते हैं। प्रसवके पीछे भी रक्तमें फेब्रिन का अंश अधिक रहता है। कारण उस समय माता के रक्त में अनेक प्रकार के त्याज्य पदार्थ रहते हैं।

यह बात सभी जानते हैं कि-गर्भावस्थामें भ्रूणदेह केवल माता के रक्त के द्वारा पुष्ट होता है। माता के शरीर से रक्तवहा नाडियों के द्वारा माता का रक्त प्लासेन्टा या फूलमें आता है, उससे रक्त-वहा नाडी(कार्ड) द्वारा भ्रूणके देहमें जाता है। उस मातृरक्तके द्वारा ही भ्रूण उत्तमप्रकार से जीवित रहता है और पुष्ट होता है एवं प्रतिदिन बढ़ता है। प्रसूता के रक्तके उपादानों में जो इस प्रकार अनेक परिवर्त्तन होते हैं, उसका कारण यह है कि यह गर्भस्थ अति क्षुद्रतम भ्रूण जैसे उपादानों के रक्त (तरल रक्त) से उत्तम प्रकार से परिपुष्ट होसकता है, दयालु प्रकृति माताके शरीर के रक्तमें उस समय वैसे ही उपादान प्रदान करदेती है। वास्तव में भ्रूणदेह की अच्छेप्रकार से पुष्टि होने के लिए ही माता के रक्त

में इस प्रकार के अनेक परिवर्त्तन होते हैं और पुरुष के रक्त के उपादानों का इतना तारतम्य मालूम होता है।

७ मातृदुग्ध-Mothers Milk.

मातृ रक्त और मातृ दुग्ध के विषय की एक साथ आलोचना करने से विस्मित और स्तम्भित होना पड़ता है। परमात्माने शिशुओं की पुष्टि के लिए माता के रक्त और दुग्धमें जो कितने एक परिवर्त्तन और अनेक पदार्थों का सयोग-वियोग कररक्खा है; उसको एक बार विचारने से ईश्वर की अपारलीला का पार नहीं पाया जाता। गर्भसञ्चार के कुछ महीनों के बाद माता के स्तनों में दुग्ध उत्पन्न होने को क्रिया प्रारम्भ होती है। प्रसवके पश्चात् २-३ दिन तक माता के दुग्धमें प्रकृति देवी ऐसा एक अपूर्व पदार्थ (कोलस्ट्रम) प्रदान करती है कि जिस को सेवन करने से नवजात शिशु की बाह्यशुद्धि होजाती है। गर्भावस्था में रहने के समय शिशु के उदरमें काले रंग का दूषित मल रहता है; वह माता का दुग्ध पान करने से बाहर निकलजाता है और बालकको किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होसकती। वास्तव में नवजात शिशुकी वृद्धि के साथ२ प्रायः एक वर्ष तक मातृरक्त और मातृदुग्ध प्रति दिन अनेक रूपोंमें रूपान्तरित (शिशु के स्वास्थ्य के लिए उपयोगी) होते रहते हैं।

८ मेद-Fat।

स्त्रियों के शरीर में पुरुषों से मेदधातु (चर्बी) बहुत ज्यादह रहती है। स्त्रियों के देह में इस मेद की अधिकता के कारण माता और शिशु का निम्नलिखित प्रकार से विशेष उपकार होता है। जैसेः—

(१) शरीर में सर्वत्र मेद के अधिक रहने से स्त्रियों का देह कोमल, सुडौल और सुन्दर होता है। स्त्रियों का देह कामल होने के कारण प्रसवक्रिया सहज में सम्पन्न होती है।

(२) हमारी जीवनी शक्ति की रक्षा के लिए जिन पदार्थों की आवश्यकता है, उनमें मेद एक प्रधान उपादान है। प्रसव आदि के समय स्त्रियों के शरीर को जिस प्रकार बहुत भारी हानि वा क्षय होता है, उस समय स्त्रियों के देह में मेद के अधिक परिमाण में रहने के कारण उनका देह सहज में ध्वंस नहीं होसकता और अत्यन्त अधिक मेद के रहने से ही स्त्रियों के देह की गरमी समान रूप से रहती है।

(३) प्रसव के द्वार के चारों तरफ़ मेद के सञ्चित होजाने से प्रसव के यन्त्रों का एक कोमल स्थान मिलजाता है, उस से प्रसव के समय बहुत सुविधा होती है।

(४) उदर के चारों ओर अर्थात् जरायु के चारों तरफ़ मेद धातु के अधिक रहने से स्त्रियों के शरीरके भोतर बाहर की गरमी, व सर्दी जरायु में प्रवेश नहीं करसकती और जरायुमें से भी गरमी बाहर नहीं निकल सकती। इसी कारण जरायु की गरमी सदैव समान भाव से रहती है। गर्भिणी के अकस्मात् गिर पड़ने से जरायु के मध्य में स्थित भ्रूण के देह पर चोट नहीं पहुँचती।

(५) प्रसूता स्त्रियों को अधिक पौष्टिक आहार न मिलने पर भी शरीर में अधिक मेद के रहने के कारण बहुत दिनों तक उनकी जीवनी शक्ति सुरक्षित रहती है।

९-दृष्टिशक्ति Sight।

माता सन्तान को जिस से सदैव नेत्रों के सामने रखसके, इस लिए प्रकृति ने स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रबल दृष्टि-शक्ति प्रदान की है।

१०-स्पर्शशक्ति Touch।

सन्तान माता के शरीर को जैसे ही स्पर्श करती है, माता उस को वैसे ही दुग्ध पान करादेती है, इस लिए एवं और भी अनेक कारणों से (वह भी मातृत्व के विकाश की सहायता के लिए ही) स्त्रियों की स्पर्शशक्ति पुरुषों से प्रबल होती है।

११ श्रवणशक्ति- Hearing।

स्त्रियों के बहरे होने से सन्तान के पालन करने में असुविधा होती, इसलिए मालूम होता है कि-ईश्वरने स्त्रियों को अस्वाभाविक श्रवणशक्ति दी है। सन्तान के रोने चिल्लाने को माता जिस से सहज में सुनसके, इस लिए स्त्रियों की श्रवणशक्ति पुरुषों से कुछ तीव्र होती है।

१२ कंण्ठस्वर Voice।

अपनी सन्तान और संसार के अन्य समस्त जीवों का लालन-पालन करने के लिए जैसे स्त्रियों का स्वभाव कोमल और सुन्दर होना आवश्यकीय है, उसी प्रकार स्वर भी कोमल रहना नितान्त

आवश्यक है । कर्कशशब्द बोलने वाली स्त्रियाँ, शिशु एवं अन्य किसी मनुष्य वा प्राणी को वश में नहीं रख सकतीं । मधुर और कोमल बात कहने से संसार के समस्त प्राणियों को विशेषकर बालकों को वशीभूत रक्खा जासकता है ।

१३ पीड़ासहन करने की शक्ति ।

प्रसूता स्त्रियों को प्रसव के समय और इसी प्रकार के अन्यान्य समयों में असह्य वेदना सहन करनी पड़ती है । इस लिए परमेश्वर ने स्त्रियों को पीड़ा सहन करने की शक्ति पुरुषों से अधिक प्रबल प्रदान की है ।

१४ उत्ताप (गरमी) सहनकरने की शक्ति ।

सन्तान का पालन पोषण करते समय अनेकबार स्त्रियों को गरमी सहन करना अत्यन्त आवश्यक होजाता है । इस के अतिरिक्त अपनी सन्तान को पालन करने के लिए अपने हाथ से भोजन बनाना पड़ता है । इन कारणों से ही परमेश्वर ने स्त्रियों को गरमी सहन करने की शक्ति पुरुषों से अधिक प्रदान की है ।

१५ शीतसहन करने की शक्ति ।

माताओं को, शीतनिवारणार्थ यथेच्छरूप से गरम कपड़ों को पहनने से सन्तान पालन में असुविधा होती है । इस के सिवा और भी अनेक कारणों से (सन्तान के हित के लिए) स्त्रियों के शीत (सर्दी) सहन करने की शक्ति पुरुषों से बहुत ज्यादह होती है ।

१६ सेवा ।

सन्तान की और रोगी की सेवा-शुश्रूषा करने की शक्ति वा योग्यता पुरुषों से स्त्रियों में बहुत ज्यादह होती है । ईश्वर ने इस विषयमें भी स्त्रियों को विशेष अधिकार और शक्ति दीहै । पुरुष यदि कुछ काल तक सन्तान व रोगी की सेवा-शुश्रूषा करे तो उसके स्वास्थ्य की भारी हानि होती है और शरीर क्षीण होजाता है । किन्तु स्त्रियों के दीर्घ काल तक सन्तान वा रोगी की सेवा-शुश्रूषा करने के कारण रात्रि में जागने और अनाहार करने पर भी उनके स्वास्थ्य की कुछ हानि नहीं होती, बल्कि वे स्वस्थ रहती हैं । इस लिए स्पष्ट रूपसे विदित होताहै कि जगदीश्वर ने स्त्रियोंके शरीरके समस्त गठन, सम्पूर्ण वृत्तियों और सब क्रियाओं को केवल मातृत्व

के विकाश के लिए ही निर्माण किया है। भारतके प्राचीन महर्षिगण इन गम्भीर तत्वों को बहुत काल पहले से अच्छी तरह जानते थे, इस लिए वे स्त्रियों की शिक्षा, दीक्षा, आहार-विहार, स्वाधीनता और कर्त्तव्यता के सम्बन्ध में पुरुषों से बिल्कुल भिन्न प्रकार की व्यवस्था करगये हैं। स्त्रियों को परमात्मा ने केवल मातृत्व के विकाश के लिए ही उत्पन्न किया है, इस सत्यता को आज काल के बड़े २ कुशाग्र बुद्धि विद्वान् अनुभव करने लगे हैं।

—×—

भोजन की पुकार।

कहते हैं कि राजा वीर विक्रमाजीत के राज में केवल जीव-जन्तुओं की ही नहीं, किन्तु वनस्पति इत्यादि की भी पुकार सुनी जाती थी। जिस प्रकार सुलेमान ने चींटी की पुकार सुनी थी, उसी प्रकार भारत में विक्रम के विषय में कहाजाता है कि वह निर्जीव वस्तु का भी न्याय करता था। एक समय भोजन ने आकर पुकार की "अन्याय, अन्याय, मेरे साथ बड़ा अन्याय होता है?"

राजा-किसने तुम्हारे साथ अन्याय किया, किसके ख़िलाफ़ तुम्हारी शिकायत है?

भोजन—महाराज, समस्त मनुष्य जाति मेरे साथ ज़ुल्म करती है और ख़ासकर वैद्य, हकीम।

राजा-अपना सब वृत्तान्त कह सुनाओ। मनुष्य जाति तुम्हें किसप्रकार दुःख देती है और वैद्य, हकीम तुम्हारा क्या करते हैं?

भोजन-महाराज, मैं भली भाँति अच्छा रूप बनाकर गन्ध इत्यादि धारण करके अपने उत्तम स्वभाववश उनकी सेवा में उपस्थित होता हूँ तो वे निर्दयी मुझे अपने पास तो बिठला लेते हैं, फिर जैसा बर्त्ताव करते हैं मैं ही जानता हूँ और महाराज, वैद्य, हकीम समस्त मनुष्यों को मेरी बुरी गति बनाने की सम्मति देते रहते हैं।

राजा—अरे भोजन, तनिक विस्तार पूर्वक बतलाओ, तुम्हारे साथ क्या बर्त्ताव होता है?

भोजन-महाराज, ज्यों ज्यों मैं उनकी दुष्टता से छूटने के लिये उनसे भलाई करता हूँ, वे मेरे साथ खुटचाल करते हैं।

"स्वास्थ्य-समाचार" के एक लेख के आधार पर।

राजा—अच्छा तो पूर्णरीतिसे अपनी सब कहानी कह सुनाओ, होसकेगा तो हम तुम्हारी रक्षा का प्रबन्ध करेंगे ।

भोजन—आपका बोल बाला रहे । आपने मुझे रक्षा की आशा दिलाई है तो मैं भी अपना हाल पूर्णरीति से निवेदन करता हूँ । ध्यान देकर सुनिये तो आपको मालूम होगा कि मेरे साथ क्या सलूक होता है—

सरकार, जब मैं उनके समीप उपस्थित होता हूँ, तब वे पहिले तो आसनसहित मुझे अपनी ओर खींचलेते हैं या स्वयं मेरे पास आजाते हैं । इस समागम से मेरा चित्त प्रसन्न होता है, परन्तु शीघ्र ही वह बेमुरव्वत कि वे मेरे ऊपर हाथ साफ करने लगते हैं । पहले तो मेरे टुकड़े करके अँगुलियों के बीच दबाते हैं और फिर मुँह में डालते हैं । मुँह में पहुँचते ही उनको प्रसन्न करने के लिये मैं अच्छा स्वाद देता हूँ कि इससे ही मेरा पीछा छोड़ दें, परन्तु इन निर्दयी विश्वासघातियों से मेरी आशा व्यर्थ हुई । मेरे ऊपर तो उनके दांत पहले से ही थे ! फिर स्वाद लेकर भी मेरे अङ्ग २ दाँतों से पीसकर चूर्ण कर डालते हैं भला करे, परमेश्वर वैद्य हकीमों का ! वह उनको उकसाते हैं कि भोजन को खूब चबाओ । बत्तीस २ बार दाँतों से पीसो । महाराज, मनुष्य के मुख में छोटी छोटी थैली सी दाँतों के पास बनी हैं, उनका मैंने कुछ बिगाड़ा नहीं, परन्तु फिर भी ये मुझे विष देने की कोशिश करती हैं मैं पिसा कुटा तो होताही हूँ, उनमें से निकला हुआ घुलने वाला अर्क मुझे पानी सा पतला करदेता है । इस स्थान पर एक बात तो अवश्य अच्छी होती है । मेरे में जितना कुछ (Starch) स्टार्च अर्थात् मंड है उसकी (Sugar) शर्करा बनजाती है । शायद इसी परिवर्तन के लिये दाँतों की चढ़ाई मेरे ऊपर अधिक होती है । और महाराज, जीभ भी मुझे उलट पलट कर पददलित करती है और अन्त में मुझे एक गुफा में ढकेल देती है। इस गड्ढे में गिरती बेर मेरे होश उड़जाते हैं । केवल इतना मालूम होता है कि गुफा तंग है । उसमें मुझे थोड़ा थोड़ा दब कर अन्दर जाना पड़ता है । जान पड़ता है कि गुफा की भीतों में दबाने की शक्ति है । यही बात है कि नट लोग बाँस से औंधे लटके हुए मुझे हड़प करजाते हैं । फिर मैं इस नली रूप गुफा से निकलकर एक चौड़े मैदान में पहुँचता हूँ यह मैदान भी मेरे साथ

कसर नहीं करता। कई विष की गरम गरम धारायें आकर मुझे डुबोकर दम घोटदेती हैं और मेरे प्राण निकाल लेती हैं। यहाँ मुझे कमसे कम तीन घंटे कैद रहना पड़ता है। मेरा जीव अथवा सत्त निकलकर एक नली में होकर दूसरी ओर चला जाता है और रक्त बनकर भ्रमण करने लगता है। फिर मेरी निर्जीव लाश एक गड्ढे में ढकेल दी जाती है। वह एक नली में होकर घसीटी जाती है। जिस नली में होकर मैं मैदान में आया था उसकी अपेक्षा यह नली मुलायम और कोमल तो है, परन्तु पेंचदार है। सर्प के से लपेटे लिये हुए है, कई फुट लम्बी है। इसके दो भाग हैं। ऊपर के भागमें जब तक मैं घसीटा जाता हूँ तब तक मेरा कस निकालनेमें कसर नहीं छोड़ी जाती। जितना बलवान् मनुष्य होता है वह उतनाही अधिक कस खेंचता है। इस सर्पाकार नलीके भागमें जब मेरा शव पहुँचता है तब बिलकुल बेकार होजाता है। फिर उसे निकाल फेंकने की सूझती है। कोई घरमें और कोई घर से बाहर इस शवको निकाल देते हैं। कभी २ शव रुकजाता है, बाहर नहीं निकलता। फिर मनुष्य अँडी का तेल पहुँचाकर उसको चिकना करदेता है जिससे लाश फिसल पड़ती है। ऐसा २ बर्त्ताव मेरे साथ होता है। न्याय आप के हाथ है। महाराज, मेरा न्याय हो।

राजा—इतना हाल तो सुन लिया। अब जो कुछ और कहना हो सो कहो।

भोजन—और महाराज क्या निवेदन करूँ। मनुष्य ने मेरे रूप में भी बड़े २ भयानक परिवर्तन करदिये हैं। कोई तो पशुओं की आँत ओजड़े मुझ में मिला देते हैं। कोई पशुओं के अंडे ही मुझ में डाल देते हैं। मनुष्य के सिवाय और किसी प्राणी ने मेरी ऐसी दुर्गति नहीं की। सब पशु प्राकृतिक भोजन साधारण रीति से पा लेते हैं, परन्तु मनुष्य ने कोई वस्तु ऐसी नहीं छोड़ी जो मुझमें न डाल दी हो। दाल, भात खावें तो उसमें मच्छी मांस भी डालदें। घी चीनी के लड्डू बनावें तो बंग, चांदी पारा इत्यादि की भस्म भी मिला दें! इस प्रकार मेरे रूप को बिगाड़ते हैं। सो; धर्मावतार, कृपा कर मेरा न्याय कर दीजिये।

राजा-सुनो भाई भोजन, तुम्हारी शिकायत सर्वथा यथार्थ है, इसमें सन्देह नहीं। तुम्हारे साथ मनुष्य अपने स्वार्थ के हेतु देखा

ही करता है। कष्ट देने वाले का पद ईश्वर की दृष्टि से ऊँचा है। कष्ट उठाने वाले को कोई बुरा नहीं कहता और दुःख के पीछे सदा सुख होता है सो तुमको संतुष्ट रहना चाहिये। रहा तुम्हारे स्वरूप को बिगाड़ना सो भाई सुन, ईश्वर स्वयं न्याय करदेता है। जो तेरा रूप बिगाड़ते हैं वे दुःख भोगते हैं। तेरे में मांस मिलाने वालों का हृदय कठोर होजाता है वे बारीक बातों को समझने की शक्ति खो बैठते हैं। उनके चित्त का झुकाव पशुवृत्ति की ओर अधिक होजाना है इससे बढ़कर और क्या दंड होगा! भस्म से जो तेरा रूप बिगाड़ते हैं उनका रक्त अशुद्ध होजाता है, उष्णता बढ़कर रोग उत्पन्न होजाते हैं। इन सब का ईश्वर दण्ड देता है।

भोजन--महाराज, आप का उत्तर सुन कर मुझे बड़ी शान्ति हुई, अब मैं संतुष्ट हूँ! मुझे जाने की आज्ञा दो। इतना कह प्रणाम कर भोजन महाराज अपने स्थान को सटके।

(विज्ञान)

अपराजिता।

अपराजिता दो प्रकार की होती है। एक नीले फूल की और दूसरी सफेद फूल की। सफ़ेद फूल की अपराजिता को हिन्दी में सफ़ेद कोयल। बँ०-श्वेतापराजिता म० पाण्ढरी, गोकर्णी। गु०-गर्णी धाली। क०-बिलीयगिरिकर्णिके। और नीले फूल की अपराजिताको हिन्दीमें नीली कोयल, विष्णुकान्ता, कृष्णकान्ताआदि कहतेहैं। बँ०-नीलापराजिता। म०—कालागोकर्णी,गु०-नीलोगरणी। क०-नीलगिरिकर्णिके। तै०-नीलगंटुना और लं०—क्लोटारिया टरनेटिया। अपराजिता के संस्कृत नाम-श्वेतास्फोता, श्वेतगिरिकर्णी, श्वेतापराजिता, अश्वखुरिकर्णी, दधिपुष्पिका, गर्दभी, सितपुष्पा, श्वेतस्पन्दा, श्वेता, सुपुष्पी, शुक्लपुष्पी, श्वेतवराटा इत्यादि। नील अपराजिताके सं० नाम-नीलपुष्पा, महानीला, नीला, गिरिकर्णिका, गवादिनी, व्यक्तिगन्धा, विष्णुकान्ता, हरिक्रान्ता इत्यादि।

यह प्रायः वृक्षों के ऊपर आरूढ़ होकर रहने वाली एक प्रकार की लता है। यह वनों जङ्गलों और बगीचों में प्राय सर्वत्र होती

है। अनेक शौकीन मनुष्य अपने पुष्पोद्यान में इसको लगाकर उसकी शोभा बढ़ाया करते हैं। इसके पत्ते प्रायः गुलाब के समान होते हैं। नीली अपराजितामें नीले रंग के और सफ़ेद अपराजिता में सफ़ेद रंगके फूल आते हैं। इसके फूल देखने में बड़े सुन्दर मालूम होते हैं। विशेषकर विष्णुकान्ता की नीले पुष्पों और पत्रों से युक्त लता बडी सुहावनी मालूम होती है। इस पर एक प्रकार की फली आती हैं वे सेमकी फली को समान होती हैं और उनके सूख जानेपर उनमें काले रंगके चपटे बीज निकलते हैं। औषधोपयोग में प्रायः दोनों अपराजिताओं की जड़ की छाल ही लीजाती है। परन्तु कहीं कहीं इसके पत्तों का भी व्यवहार होता है। दोनों अपराजिता गुणों में प्रायः समान ही हैं। पर सफ़ेद कोयल में विषनाशक शक्ति अधिक है। आयुर्वेद के मतसे दोनों प्रकार की कोयल-शीतल, स्निग्ध, कड़वी, कुछ चरपरी, त्रिदोषनाशक तथा नाना प्रकार के वायुके विकार, आक्षेप वात, तन्त्रक, हिस्टेरिया, अपस्मार, मूर्च्छा, उन्माद, भूतबाधा, गृहपीड़ा, दाह, भ्रम, मोह, (बेहोशी), रक्तातिसार, पुरानी खाँसी, मदसम्बन्धी रोग, श्वास, कफ, कोढ़, कृमि, शूल, सूजन, आमवात, व्रण, विशेषकर पुराने और दूषित व्रण, शिरकी अनेक प्रकारकी पीड़ा और सब प्रकारके विष विशेषकर सर्पविषको नष्ट करती हैं।

नवीनमत से दोनों प्रकार की कोयल की जड़—स्निग्ध, मूत्रकारक और कुछ रेचक हैं। यह ज्वर, विशेषकर मन्दज्वर, पुरानी खाँसी, जलोदर, शोथ और प्लीहा-यकृत् की वृद्धि में अधिक लाभदायक है। अपराजिता की जड़का काथ स्निग्ध होनेके कारण मूत्रकृच्छ्र और खाँसी में व्यवहृत होता है। अर्द्धावभेद अर्थात् आधाशीशी के दर्दमें इसकी गीली जड़के रसका नस्य दिया जाता है। अपराजिता की जड़ का एकस्ट्राक्ट अच्छा जुलाब है। इस का काला दाना, गुलाबाँसके बीज और जलापे की उत्तम प्रतिनिधि है।

१-दर्वीकर सर्पके काटनेपर श्वेत अपराजिता की जड़ की छाल और सिह्मालुकी जड़की छालको जलमें पीसकर पानकराना चाहिए।
(चरक चि०)

२-भूतोन्मादादि रोग में सफ़ेद अपराजिता की जड़ के रसको गाय के घी में मिलाकर चावलों के धोये हुए जलके साथ देने से तत्काल लाभ होता है। (चक्रदत्त)

३-परिणाम शूलमें नीली अपराजिता की जड़कीछालको मिश्री, मधु और गाय के घी के साथ सात दिन तक सेवन कराने से उक्त रोग दूर होता है ।

४—शोथ रोग में अपराजिता (श्वेत या नीली कैसी हो) की जड़ को पीसकर गरम जल के साथ पान करने से शोथ दूर होता है । (वङ्गसेन)

५ श्लीपद रोग में-अपराजिता की जड़को पीस कर लेप करने से विशेष लाभ होता है । (हारीत सं० चि०)

६ अपराजिता के पत्तों को पीस कर नस्य देने से शिरकी पीड़ा दूर होती है । विशेष कर नीली कोयल के पत्तों के रसको सूंघने से शिरको पीड़ा में तत्काल लाभ होता है ।

७ नीली अपराजिता के पञ्चाङ्ग के क्काथ और कल्क के द्वारा घृत सिद्ध करके सेवन करने से उन्माद, मृगी, हिस्टेरिया, भूतोन्माद आदि मस्तिष्क सम्बन्धी अनेक रोग शमन होते हैं । और इसकी पिचकारी लगाने से अनेक प्रकार के वातसम्बन्धी आक्षेपादि रोग दूर होते हैं ।

परीक्षित प्रयोग ।

(१) बिच्छू के काटे की दवा—"महाशय, आपके जून मास के वैद्य पत्र में बिच्छू के काटे की दवाओं के प्रयोगों को पढ़ कर प्रसन्नता हुई । मैं अपना एक बहुत बार का आज़माया हुआ बिच्छू के काटे का अनुभूत योग लिखकर आप के पास भेजता हूँ । कृपया वैद्य पत्र में प्रकाशित कर अनुगृहीत कीजिए ।"

प्रयोग—जहाँ बिच्छू का डंक लगा हो वहाँ तेज़ चाकू या उस्तरे से खुरच कर थोड़ा सा रुधिर निकाल देवे । फिर उस स्थान पर दारचीनी के तेल को रुई के फाये में भिजोकर इस प्रकार धीरे २ मले कि जिस से तेल का अंश रुधिर में अच्छे प्रकार से मिलजाय । इस प्रकार करने से थोड़ी ही देर में बिच्छू का विष नष्ट होजाता है ।

श्रीमहादेव वैद्य, भेटोड़ा ।

(३) सब प्रकारके विषमज्वरों पर — रससिन्दूर, शुद्ध वत्सनाभ, सोंठ, मिरच, पीपल, सुहागा और पीपलामूल इन सब ओषधियों को समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके बारीक वस्त्र में छानलेवे। फिर तुलसी, अदरख और धतूरे के स्वरस में क्रम से एक एक दिन तक अलग २ खरल करके एक एक रत्ती की गोलियाँ बनालेवे। फिर एक गोली अदरख के रसके साथ पीसकर एक बार में देनी चाहिए। इस प्रकार एक दिन में ३ गोलियाँ देनी चाहियें। ये गोलियाँ सब प्रकार के ज्वर विशेषकर सन्निपात ज्वर में अत्यन्त हितकारी हैं।

स्वरभेद या आवाज़ बैठजानेपर-एक छटाँक आमलों की गुठलियों को लेकर पाव भर दूधमें डालकर १०मिनट तक पकावे। फिर उस दूध को वस्त्रमें छानकर और उसमें थोड़ी मिश्री डालकर पानकरे इससे स्वर शुद्ध होता है अर्थात् आवाज़ साफ़ होजाती है।

(४,नयनानन्द सुरमा-भीमसेनी कपूर, शुद्ध मोतीकी सीप, समुद्रफेन, निर्मली के बीज, सफ़ेद मिरच, सैंधानमक, पीपल, करञ्जके बीज और पुरानी इमली के बीज इन सबको एकत्र सौंफ के अर्कमें खूब बारीक खरल करके अंजन बनालेवे। यह अञ्जन धुँध, जाला, फूला, मोतियाबिन्द आदि नेत्र सम्बन्धी समस्त विकारों को दूर करके नेत्रों की ज्योति को बढ़ाता है। यह अनुभूत प्रयोग है।

(५) कफविकार पर-शुद्धपारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ ये प्रत्येक ओषध तीन २ माशे। लोहभस्म ६ माशे, धतूरे के बीज १ तोला, सुहागे की खील ६ माशे; जावित्री, जायफल, अकर करा और वंगभस्म ये प्रत्येक ओषधि चार २ तोले लेवे। सबको एकत्र अदरख के रसमें अच्छे प्रकार से खरल करके एक २ रत्ती की गोलियाँ बनालेवे। इनमें से एक गोली अदरख के रसके साथ देते ही अत्यन्त बढ़ा हुआ कफ भी तत्काल नष्ट होने लगता है।

वैद्य लीलाधर शर्मा।

हलके पर सिद्ध प्रयोग—(१) मिश्री ६ माशे, लौंगके फूल ५ माशे, अफीम ४ माशे, भुनी हुई लाल फटकरी ६ माशे, इन सबको जस्तके कटोरेमें रखकर नीबू के रसके साथ लोहेकी मुसली से खूब बारीक खरलकरे। जबसब ओषधियाँ अच्छेप्रकारसे घुटकर

अञ्जनकी समान होजाँय और गाढ़ी पडजाँय तब एक सीपीमें भर कर रख देवे। इस अञ्जनको प्रतिदिन सुबह, शाम नेत्रों में आँजने से नेत्रों में से पानी का निकलना, कीचड़ का आना आदि विकार शीघ्र दूर होते हैं। इस औषधका व्यवहार करते समय मिरच आदि तीक्ष्ण और अम्ल पदार्थ सेवन नहीं करने चाहिये।

(२) खूनी व बादी अर्शरोग पर—मुर्देकी जली खोपड़ी १ छटाँक और मोती की सीप १ छटाँक दोनों को एक सेर कोयलों की अग्नि में फूँक कर खूब बारीक पीसलेवे और शीशी में भरकर रखदेवे। शौचको जाते समय उसमेंसे थोड़ी सी भस्म कागज़ की पुड़ियामें बाँधकर लेता जावे। शौचसे निवृत्त होनेके पश्चात् उस भस्म को अँगुलि से गुदा में मले। इससे अर्श के अँकुर सूखकर गिरजाते हैं और सब प्रकार की बवासीर पीड़ासहित एक सप्ताह में शमन होजाती है।

(३) धातुक्षीणता पर प्रत्यक्ष फलप्रद योग—कपूर १॥ माशा और शुद्ध अफ़ीम ३रत्ती दोनोंको पानीमें पीसकर ६गोलियाँ बनालेवे। उनमें से एक गोली सुबह और एक गोली शामको १ सप्ताह तक सेवन करने से आशातीत लाभ होता है।

(४) मसान गजकेसरी—चूल्हे की जली हुई मिट्टी १ छटाँक और मुश्की घोड़े का जला हुआ सुम १ छटाँक दोनों को पानीमें पीसकर मोठ की बराबर गोलियाँ बनालेवे। एक २ गोली माता के दूध में या पानी में घोलकर सेवन कराने से बालक की मसानबाधा दूर होती है और बालक पुष्ट होता है।

यदि इस औषध के सेवन से बालक के तालु और गले में छाले पड़जायँ (वे छाले लाल रंगके, चिकने, स्वयं पैदा होने वाले और स्वयं फटजाने वाले होते हैं।) तो १ तोला सफ़ेद राल को बारीक पीसकर १०१ बार पानी में धोये हुए १॥ तोले गोघृत में मिलाकर लगाने से छाले शीघ्र दूर होकर बालक आरोग्य होताहै।

(५) लोबान का सत्त्व निकालना डेढ़ पाव कौड़िया लोबान को लेकर दरदरा पीसलेवे। फिर उसको एक कोरी बड़ी हाँडीमें छेद करके उसमें बिछादेवे और उसके ऊपर एक सींकसड़ी करदेवे। एवं उस हाँडीके मुँहपर ढक्कन ढककर उसको डमरूयन्त्र

की समान बनालेवे और कपरौटी कर देवे फिर आधसेर कड़वा तेल लेकर उसमें एक कपड़े की मोटी बत्ती को भिजोकर हाँडी के छेद में लगा देवे और उसके नीचे दूसरी हाँडी और रखकर बत्ती को जलावे। परन्तु उस हाँडी की ऊँचाई बत्ती से ८ अँगुल रहे। जब इस प्रकार जलाने से सब तेल जलजाय तब उतार कर उसमेंसे सत्व निकालकर शीशीमें भरकर रखलेवे। लोबान का सत्व बुखार, खाँसी, श्वासादि रोगों की अमूल्य औषध है और चढे हुये ज्वर को शीघ्र उतार देता है। मात्रा आधी रत्ती।

पं० मुंशीराम शर्मा, वैद्यरत्न कविकुमार
मु० कुटवा, पो० शिकारपुर [मुजफ्फरनगर]

आंखों की रक्षा।

आँखें, विशेषकर लड़कपन में बहुत धीमी या तेज़ रोशनी से ख़राब होजाती हैं। माता पिता के ध्यान न देने के कारण लड़कों को कम उम्र में चश्मा लगाना पड़ता है। उनके सिरमें दर्द होने लगता है और मानसिक शक्ति कम होजाती है। बुढ़ापे में कुछ धुँधला भी दिखाई देता है।

२ चमकीली रोशनी आँखसे नहीं देखनी चाहिए।

३ काँपते हुए (Fheckering) प्रकाशसे यथासम्भव आँखों की रक्षा करनी चाहिए। पलकोंको अकारण सङ्कुचित व प्रसारण करने से पेशियाँ थकजाती हैं-और आँखों में दर्द होने लगता है।

४ अँधेरे से एकाएक प्रकाश में या प्रकाश से एकाएक अँधेरे में नहीं जाना चाहिए।

५ पढ़ने या सूक्ष्म काम करने के समय रोशनी ऊपर से या एक तरफ़ से आनी चाहिए।

६ प्रकाश को आँखके सामने यथासम्भव नहीं रखना चाहिए।

७ उजला प्रकाश रँगीन प्रकाशों से लाभदायक है।

८ हरे, लाल और नीले रँगसे पीला प्रकाश अधिकतर उपयोगी है।

९ गाढ़ा हरा या नीला रङ्ग आँखों को जल्दी थका देता है।

१० चमकीली वस्तु को पीले रङ्ग के शीशे से देखा जाय तो वह साफ़ साफ़ दिखलाई देगी और आँख पर ज़ोर भी नहीं पड़ेगा।

(माधुरी)

प्रेरित-पत्र ।

(दूसरों के मतों के लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं है ।)

डाक्टरी-चिकित्सा के अधिक प्रचार का कारण ।

वर्त्तमान काल में डाक्टरी चिकित्सा का इसलिए अधिक प्रचार बढ़ता जाता है कि उसमें कुछभी छिपाव नहीं रक्खा जाता। किन्तु हमारे बहुतसे आयुर्वेदीय चिकित्सक प्रत्येक विषयमें बहुतही गुप्तता (छिपाव) रखते हैं। यहाँतक कि वे रोगों का नाम तक भी नहीं बतलाया चाहते और औषधियों के विषय में तो कहना ही क्या है। अगर किसी रोगी ने हठ किया कि "वैद्यजी महाराज, हमें क्या रोग है ? और आपने क्या दवा दी है ?" इसके उत्तरमें, यदि रोगी ग़रीब होता है तो वैद्यजी झट कहबैठते हैं कि-"तुम्हें रोग और दवा से क्या काम, चुपचाप दवा खाते जाओ, अच्छे होजाओगे।" और जो रोगी धनवान् होता है तो वैद्यजी विना पूछे ही कहने लगते हैं- "सरकार आपने इतने दिन तक ख्याल नहीं किया, क्या कहूँ ! रोग ने तो जड़ पकड़ली है। ख़ैर, आपके लिए जहाँतक होसकेगा कुछ उठा न रक्खूँगा। तबतक आप यह स्वर्णपर्पटी या वसन्त-मालती सेवन कीजिए, पीछे देखा जायगा।" पर डाक्टर महाशय रोगी को रोग का पूर्ण परिचय करादेते हैं और दवा का नुसख़ा तत्काल लिख देते हैं। और यह कहदेते हैं कि किसी दवाख़ाने से दवा मँगा लीजिए। डाक्टरी दवाख़ानों में अमीर, ग़रीब प्रायःसभी को दवा एकभाव में मिलती है। किन्तु हमारे आयुर्वेदीय औषधालयों में यह बात नहीं है। एकही दवा कहीं =) ख़ुराक, कहीं ।) ख़ुराक और कहीं ॥) आने ख़ुराक में मिलती है। इस प्रकार से आयुर्वेद की अवनति क्यों न हो ! जब कि वैद्यों ने ही उसे पर्दानशीन बना रक्खा है। स्वार्थ और कपट का बाज़ार लगा रक्खा है। ऐसी अवस्था में आयुर्वेद का लोगों में किस प्रकार आदर हो सकताहै ? अत डाक्टरी चिकित्सा की उन्नति और आयुर्वेदीय चिकित्सा की अवनति अनिवार्य्य है। यदि कोई कहे कि नुसख़े में क्या धरा है ? तो मैं कहता हूँ कि-मान लीजिए, किसी वैद्यने किसी रोगी को

औषध दी और दैवयोग से रोगी को लाभ न हुआ तब उसने दूसरे वैद्य को बुलाया। उस समय उस वैद्य को घंटों तक इसी परीक्षा में परेशान होना पड़ता है कि कौनसी दवा होगई है? क्या उसी के विपरीत हुआ है? यदि नुसख़ा होता तो झट इसका पता लगजाता। घंटों की परेशानी से वैद्य और बीमार दोनों ही बचजाते। अगर उस नुसख़े से रोगी को कुछ लाभ हुआ और वह दूसरीबार फिर दवा लेने आया तो वैद्यजी गड़बड़ाध्याय में पड़कर यह भूल जातेहैं कि कौनसी दवा दी थी। इधर तो वैद्यजी घटों इसी विचार तरङ्ग में गोते लगातेहैं और उधर बेचारा रोगी छटपटाता रहताहै। कहिये, यदि नुसख़ा होता तो ये सब गड़बड़ी क्यों होती?

इसलिए समस्त भारतीय वैद्यमहानुभावों से हमारी विनीत प्रार्थना है कि उनको परस्पर सम्पूर्ण वैद्य बन्धुओं से ईर्षा, द्वेषादि सर्वथा त्यागकर अपने उदारभाव बनाने चाहिएँ कारण, उदार और निष्कपट व्यवहार से ही आयुर्वेद का उद्धार होसकता है। अतः, आपको चाहिए कि आयुर्वेद की उन्नति के लिए वैद्यसम्मेलन में नुसख़ा लिखने की प्रथा का प्रस्ताव पास कराकर शास्त्रीय औषधियों और आयुर्वेदीय चिकित्सा के प्रचार में सहायता करें।

विनीतप्रार्थी—

ठाकुर चूल्हनसिंह वर्म्मा

श्रीविश्वेश्वर औषधालय, नौवागढ़ी—तिनमुहानी (गया)

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय मदरास की शिथिलता।

सर्व वैद्यमहानुभावों तथा अन्य सज्जनों को यह विदित हो कि आजकल आयुर्वेदविद्यापीठ कार्य्यालय, मदरास अपने कार्य्यों में बहुत कुछ शिथिल होरहा है। शिथिलता यहाँतक बढ़गई है, मानो कार्य्यालय को त्रिदोषों ने घेर लिया है।

कार्य्यालय पत्रोत्तर देने में नितान्त उदासीन है। पत्र पर पत्र भेजे जाते हैं, परन्तु वहाँसे एक का भी उत्तर नहीं आता। आयुर्वेद-

विद्यार्थी नियमावली के लिये टिकटों के सहित रजिस्टर्ड पत्र भेजते हैं, परन्तु कार्य्यालय से न उत्तर आता है और न नियमावली ही आती है। विद्यार्थी बेचारे अन्त में चुप रहते हैं। कार्यालय की इस असावधानता के कारण महीनों तक उनको अपने उद्देश्य से वंचित रहना पड़ता है। यदि सौभाग्य से किसी वैद्य के पास नियमावली मिलगई तब तो वे शीघ्र ग्रन्थों को मँगाकर पढ़ने लग-जाते हैं, नहीं तो महीनों तक वे नियमावली की खोज में ही भट-कते रहते हैं।

विचार करने की बात है कि पत्रों का उत्तर न देना कितनी बड़ी असावधानता है। आंग्लदेशों में उत्तर न देने वाले कार्यालयों को 'निर्जीवकार्यालय' (Dead office) कहते हैं।

इन सब बातों के अतिरिक्त एक बड़ी भारी त्रुटि यह है कि, कार्यालय को आयुर्वेदविद्यार्थियों के भविष्य के लिये कुछ ध्यान ही नहीं है। छः छः मास व्यतीत हो जाते हैं, परन्तु विद्यार्थियों का परीक्षाफल प्रकाशित नहीं होता। अब आप ही बतलाइये कि इस प्रकार की कर्महीनता कहाँ तक न्यायसंगत है? यदि परीक्षा फल दो मास में प्रकाशित होजावे तो विद्यार्थी आगे की परीक्षाओं को तय्यारी करें या जो लोग आगे न पढ़ना चाहें वे वैद्यक का कार्य्य करें अथवा किसी आयुर्वेदीय चिकित्सालय आदि में नौकरी करलेवें।

अन्त में वैद्यसंसार से हमारा यही निवेदन है कि, इस समय तक आयुर्वेद के प्रचार में बहुत कुछ धक्का पहुँच चुका है; और यदि इसी प्रकार की शिथिलता भविष्य में भी बनी रही तो आयुर्वेद के प्रचार में एक भयंकर धक्का लगने की सम्भावना है। अतएव हम लोग कार्य्यालय की त्रुटियों को शीघ्र ही दूर करने का प्रयत्न करें। जिससे कि वह भविष्य में प्रत्येक कार्य्यों को ठीक समय से किया करे। और इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष कुछ न कुछ नये कार्य्यों को भी करता रहे, जिससे कि आयुर्वेद की वृद्धि हो और आयुर्वेद के प्रचार में लोगों का उत्साह दिनों दिन बढ़ता जावे।

विनीत—भगवान्दीन मिश्र वैद्य, बहराइच

⁂

प्राप्ति-स्वीकार।

कारावास की रामकहानी—ज्वालापुर महाविद्यालय के प्रधान अधिष्ठाता, भारतमाता के सच्चे सेवक, पण्डितप्रवर, वेद-तीर्थ श्रीनरदेव जी शास्त्री (जेलतीर्थ) ने इस पुस्तिका की रचना की है। आपको असहयोग के सम्बन्ध में सन् १६२१ के दमनचक्र में पड़कर १। वर्ष के लिये जेल जाना पड़ाथा। वहाँ रहकर आपने जो २ अनुभव प्राप्त किये, उनका वर्णन इसमें बड़े विशद रूप से अतिरुचिर भाषामें कियागया है। शास्त्री जी बड़े धीर, वीर, गम्भीर और दृढ़प्रतिज्ञ पुरुष हैं। अधिकारीवर्ग ने आपको जैसी स्थिति में रक्खा, उसी स्थिति को आपने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया। जेल के कष्टों से घबड़ाकर कभी भी आपने अधैर्य्य, असन्तोष एवं दैन्य भावों को अपने चित्त में स्थान नहीं दिया। इस पुस्तक में जेलकी अनेक रहस्यमयी बातों के साथ २ शास्त्री जी ने अपने उच्चविचारों को व्यक्त किया है। साथही इसमें उस समयकी प्रतिदिन की सभी मुख्य मुख्य राजनैतिक बातें डायरी के रूपमें लिखदी गई हैं। संयुक्त प्रान्त के समस्त राजनैतिक कैदियों की ज़िलेवार सूचीभी दीगईहै। अन्तमें, जेल में जाने के पूर्व के महात्मा जी के "विशेष उद्गार" नामक कुछ मनन करने योग्य उपदेश भी दिये हैं। पुस्तक बड़ा अच्छी है। पढ़ने में बड़ा आनन्द आता है।

पुस्तक के आरम्भमें महात्माजी का और मध्य में शास्त्रीजी का चित्र अङ्कित कियागया है। मूल्य ॥।) छपाई, सफ़ाई अच्छी है। मिलने का पता-चौधरी श्रीदुलार वर्मा, भारतीयप्रेस, देहरादून

मेरी जेलयात्रा और उसके रहस्य—इस पुस्तक के लेखक, मुरादाबादके प्रसिद्ध असहयोगी नेता, शर्मा मैशीन प्रिंटिंग प्रेस के अध्यक्ष पण्डित शङ्करदत्त जी शर्मा हैं। मूल्य ॥) प्राप्तिस्थान शर्मा मैशीन प्रेस, मुरादाबाद।

पण्डितजी को सन् १६२१ में असहयोग के सम्बन्ध में एक वर्ष की सादी जेल की सज़ा हुई थी। जेल में रहकर आपको वहाँ के अनेक रहस्य अवगत हुए। इस पुस्तकमें

Regd No A. 887

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिक-पत्र

सम्पादक—शङ्करलाल वैद्य

वर्ष ११ | मुरादाबाद। नवम्बर, सन् १९२३ | संख्या ११

❀ विषय सूची ❀

१—उत्तमविचारोंकाप्रभाव ३०१
२—नाड़ी-परीक्षा ३०३
३—चिकित्सा औरकायदा ३०८
४—नजला के उपाय ३१०
५—कुछ घरेलू औषधियाँ ३११
६—विद्यार्थियोंकी आवश्यकता ३१८
७—शरीर को मर्दन करना या शरीर को दबाना ३२५
८—कुछ हित की बात ३२८
९—समाचार ३३०
१०—ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, हरिद्वार ३३१

प्रकाशक—हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद।

वार्षिक मूल्य १॥)] [एक संख्या का मूल्य ≈)

Printed by— Nemi Chand Jain
at the Sharma Machine Printing Press,
MORADABAD

❁ वैद्य के नियम ❁

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिकमूल्य डाकमहसूल सहित केवल १॥) है। पेशगी मनीआर्डर भेजने से १॥) रु० और वी० पी० मँगाने से १॥।) रु० पड़ेगा।

(३) 'वैद्य' का नमूने में कोई सा एक अङ्क भेज दिया जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषयक लेख, कविता, अनुभवी प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे वे पसन्द आनेपर अवश्य प्रकाशित किये जायेंगे। परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहकनम्बर अवश्य लिखना चाहिए, जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिए कार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँचकर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी २ अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं। इसका कारण रास्ते की असावधानी ही होसकता है। जिन महाशयों को जो अङ्क न मिले; वे दूसरे अङ्क के पहुँचते ही हमें सूचना दें अन्यथा हम न भेजसकेंगे।

(७) सर्वप्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि—

वैद्य शंकरलाल हरिशंकर, वैद्य आफिस,
मुरादाबाद के पते से आने चाहिएँ।

वैद्य में विज्ञापन छपाई व बटाई की दर।

स्थान.	१ वर्ष १२ बार	६ मास ६ बार	३ मास ३ बार	१ मास १ बार
एक पृष्ठ	५०)	३०)	१७)	६)
आधापृष्ठ	३०)	१७)	१०)	३॥)
चौथाई पृष्ठ	१८)	१०)	६)	२)

विज्ञापन बटाई विज्ञापन दिखाकर तय कीजिये।

मैनेजर "वैद्य", मुरादाबाद।

श्रीधन्वन्तरये नमः।

वैद्य

मासिक-पत्र

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥

वर्ष ११ | मुरादाबाद। नवम्बर १९२३ ई०। | संख्या ११

उत्तम विचारों का प्रभाव।

सब वस्तुओं का उत्पत्ति स्थान एक है, सबों को जीवन देने की शक्ति एक है, इसलिये हम सब किसी एक ही तत्व में गुथे हुए हैं।

हरएक पुष्प में, हरएक पत्ते में, हरएक वृक्ष में, हरएक पशु में और हरएक मनुष्य में एक ही मन काम कर रहा है। जोकुछ चर्म चक्षुओं से दीख रहा है उन सबमें एक ही शक्ति सबको आरोग्य, ऐश्वर्य और आनन्द प्रदान कर रही है।

हमें यह भान होता है कि हम सब में कोई एक तत्व ऐसा है जो पूर्णता की ओर दौड़ रहाहै, वही तत्व हमारी सब प्रकारसे रक्षा और सहायता करता है। हम अज्ञान से अथवा आकस्मिक घटनाओं से, अथवा प्रकृति के नियमों के उल्लंघन करने से जिन विपत्तियों में, और क्लेशों में उलझ जाते हैं तब वही तत्व हमें सुलझाता है।

जब कभी हमारी स्थिति खराब होजाती है तो कैसी शीघ्रता से हमें तन्दुरुस्त करने और हमारे घावों को पूरने के लिए हमारे भीतर रचना होती रहती है। चाहे कैसी ही भारी दुर्घटना से हम दुखी हुए हों वह शक्ति सदैव हमें आनन्दयुक्त रहने के प्रयत्न में लगी रहती है।

तन्दुरुस्ती, दीर्घजीवन और आनन्द ये सब हमारे भीतरी स्नायु-जालोंके उत्तम दशामें रहनेपर ही होते हैं। वह स्नायु जाल मानसिक स्थिति पर निर्भर रहता है। जब कभी किसी कारणसे मानसिक भावों मे फर्क पड़ा कि जीवनकोष्ठ शारीरिक शक्ति का ह्रास करने लगजाते हैं।

मानसिक भावों की उन्नति और अवनति हमारे विचारों पर निर्भर रहती है। उत्तम विचार ही उत्तम जीवन और आरोग्य जीवन है। हम चाहे बिलकुल उत्तम भोजन करें और उत्तम प्रकारसे रहें, परन्तु हमारी मानसिक दशा गिरी हुई होगी तो हमारी उन्नति कभी नहीं हो सकती।

अब इस बात को डाक्टर लोग भी मानने लगे हैं कि आरोग्यता की अथवा रोगों की जड़ मन ही है। पहले पहल मन ही से इनकी उत्पत्ति होती है और आगे चलकर ये स्थूल शरीर से प्रकट होने लगते हैं।

डाक्टर लोग भी निदान करते समय रोगी के मानसिक भावों का पता लगाते हैं। "तुम्हें निद्रा अच्छी तरह से लगती है" तुम्हारे मन में कोई चिन्ता या घबराहट तो नहीं होती।" इत्यादि।

इसका कारण यह है कि भय, चिन्ता, शोक आदि के मन में रहने से मानसिक दशा बिगड़ जाती है और उसीसे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं। मन की प्रसन्नता से क्षुधा अच्छी लगती है, मल मूत्र साफ होता है। मन की अप्रसन्नता से मन्दाग्नि हो जाती है, उसीसे मल मूत्र साफ नहीं होते और उसीसे शरीर में अन्य अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होजाती हैं।

लंडन के किसी डाक्टर ने पता लगाया है कि गिरी हुई मानसिक दशा के कारण क्षयरोग बड़ी प्रबलता से उत्पन्न होता है। दूसरा डाक्टर कहता है कि भय या क्रोध से न्यूरेल्जिया नामक रोग होता है। निराशा और चिन्ता से पेट की आँतें बिगड़ जाती हैं।

सारांश यह है कि सपूर्ण शरीर जीवकाओं का बना हुआ है। ये जीवकोष्ठ एक दूसरे से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं कि एक के बिगड़ने का सब पर असर होता है।

जब प्राणवाहिनी शिरायें निर्बल होकर जीवन और शक्ति को यथेष्ट परिमाण में नहीं पहुँचा सकतीं तभी लकवे की बीमारी होती है। चिन्ता, घृणा या बदला लेने की इच्छा निरन्तर बनी रहने से मस्तिष्क के तंतुओं का बिगाड़ होकर असाध्य पागलपन उत्पन्न होजाता है।

शरीर के पोषण का सारा प्रबंध मस्तिष्क के तन्तुओं से है। उनमें बिगाड़ उत्पन्न होने से पाकस्थली का काम बिगड़ जाता है।

इन सब का सार यही है कि मानसिक दशा की खराबी ही सब खराबियों की जड़ है। इसलिये सर्वथा आरोग्य की इच्छा रखने वाले मनुष्यको अपना मन सदा स्वस्थ और निरोग रखना चाहिये। फिर उसके सारे रोग आप ही आप नष्ट होजायँगे। (कल्पवृक्ष)

नाडी—परीक्षा।

[गत जून १९२३ की संख्या से आगे.]

—:o:—

सान्निपातिक नाडियों में दोषों की स्थिति।

लौकिक वायु जिस तरह अपने वेग से कुछ तृणराशि को आगे उड़ाता हुआ और कुछ को पीछे से खींचता हुआ बीच में स्वयं वक्रगति से चलता रहता है, उसी तरह शरीरमध्यवर्ती वायु भी स्वयं मध्य में वक्रगति से चलता हुआ पित्तको अग्रवर्त्ती और कफ को पृष्ठवर्त्ती करके ही नाडियों में विद्यमान रहता है। अतएव नाडी देखने के समय पित्त की गति चञ्चल, कफ की गति मन्द और वायु की गति कुटिल मालूम पड़ती है। इससे सिद्ध होताहै कि सभी दोषों का परिचालक वायु ही है। अतएव शार्ङ्गधर में ठीक कहा है- "पित्तं पङ्गु कफः पङ्गु पङ्गवो मलधातवः। वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्॥" शा० सं० ५अ०) अर्थात् पित्त, कफ, मल एवं रस और धातु सभी पङ्गु (लुँज) हैं अतएव वायु के द्वारा जहाँ २ लेजाये जाते हैं, वहाँ २ ये सभी मेघ की भाँति चले जाते हैं।

त्रिदोषज नाड़ीविज्ञान तथा उसकी असाध्यता।

वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक नाड़ियों के जो भिन्न २ लक्षण लिखे गये हैं, वे सभी लक्षण क्रमपूर्वक यदि एक साथ ही हों अर्थात्- पहले साँप व जोंक की भाँति, उसके पीछे काक, लवा, और भेक की भाँति, तथा सब से पीछे राजहंस, मयूर एवं कबूतर की भाँति हों तो समझना चाहिये कि इसे सान्निपातिक रोग हुआ है, किन्तु यह सन्निपात प्रायः छुटने वाला है। यदि ये वातादि लक्षण विपरीत क्रम से उत्पन्न होते हैं अर्थात् आदि में पित्त, मध्यमें वायु तथा अन्तमें कफ, अथवा- आदि में कफ, मध्यमें वायु और अन्तमें पित्त के लक्षणों का प्रादुर्भाव नाड़ियों में होता है तो वह असाध्य नाड़ी है। साधारणतः सन्निपात की नाड़ी - लवा, तीतर और बटेर की भाँति चलती है। इस नाड़ी में शीघ्रगामिता और मन्दगामिता का कोई निश्चय नहीं रहता, अतएव कभी तो तुरन्त ही शीघ्रतायुक्त और कभी मन्दतायुक्त चलने लगती है।

जो नाड़ी मन्द चलने लगती है तो बराबर मन्द ही चलती रहती है और शीघ्र चलने लगती है तो बराबर शीघ्र ही चलती रहती है, तथा व्याकुल चलने लगती है तो व्याकुल ही चलती रहती है एवं चलने में कभी ठहर जाया करती है या अत्यन्त सूक्ष्म मालूम पड़ने लगती है, अथवा-कभी चुप बैठ जाया करती है और कभी २ अपने स्थान को छोड़कर चलती है, ऐसी नाड़ी अवश्य असाध्य सन्निपात की ज्ञापिका है। वृद्धों के अनुभव तथा शास्त्रीय प्रमाणों से यह बात सिद्ध है कि अपने स्थान से विच्युत नाड़ी असाध्य सन्निपात को सूचित करती है और प्राणघातिनी हुआ करती है। क्योंकि लिखा भी है-'हन्ति च स्थानविच्युता'' (भा० प्र० ६ प्र०) एवं " क्रमेण त्यजति स्थानं या नाड़ी सा च मृत्यवे " अर्थात्-अपने स्थान से विच्युत नाड़ी प्राणघातिनी होती है और क्रमशः जो नाड़ी अपने स्थान को छोड़ती जाती है, वह भी प्राणियों को मृत्यु देने वाली होती है।

कोई कोई कहते हैं कि जो नाड़ी स्वभावतः ऊपर की अथवा पृथक् उछल की भाँति, या चमड़े को फाड़कर बाहर निकलने की इच्छा करती हुई मालूम पड़ती है, तथा अत्यन्त निश्चल होती है- अर्थात् हाथ से दबाने पर जिस का स्पन्दन धीरे धीरे मालूम पड़ता है, या जो नाड़ी [illegible] करने के बाद की नाड़ी की

तरह चलती है, एवं सूक्ष्मता या वक्रता से जो युक्त है, उसे असाध्य नाडी समझना चाहिये।

शरीरमें अत्यन्त सन्तापके रहते हुये भी जिस की नाडीमें अधिक शीतलता, और देह में अत्यन्त शैत्य के रहते हुये भी जिसकी नाडी में अत्यन्त उष्णता प्रतीत हो एवं जिसकी नाडी की गति अनेक प्रकार की हो, वह मनुष्य अवश्य काल के गाल में पतित होता है। किन्तु इस लक्षण के ज्ञानकालमें यह अवश्य सोच लेना चाहिये कि शरीर वा नाडी में उष्णता (दाह) उत्पन्न करने वाला पित्त अपने निदान से प्रकुपित होकर दाह उत्पन्न कररहा है, या अविकृत होने पर भी अपने स्थानसे वायुके द्वारा इतर स्थानमें आकृष्ट होने के कारण दाह उत्पन्न कररहा है; क्योंकि लिखा है---

"प्रकृतिस्थं यदा पित्तं मारुतः श्लेष्मणः क्षये।
स्थानादादाय गात्रेषु यत्र यत्र विसर्पति ॥
तदा तोदश्च दाहश्च तत्र तत्रानवस्थितः।
गात्रदेशे भवेत्तस्य श्रमो दौर्बल्यमेव च ॥ (च० सू० स्था० १७ अ०)

अर्थात्- कफ के क्षीण होजाने पर वायु जब प्रकृतिस्थ पित्त को उसके स्थानसे लेकर शरीर में जहाँ २ जाता है वहाँ २ शरीरमें अनवस्थित दाह सुई चुभोने की सी वेदना, थकावट और कमजोरी मालूम पड़ती है। इस पद्यसे चरकने वायु के द्वारा इतर स्थानाकृष्ट पित्तजन्य दाह का उल्लेख करते हुये फलतः इस बात को सिद्ध कर दिखाया है कि शरीरमें इतर स्थानाकृष्ट पित्तजन्य दाह अपने स्थान से अन्यस्थान में पहुँचाये हुये पित्त से उत्पन्न लहर की अधिकता होने पर भी नाडियों का शैत्यभाव अरिष्टसूचक नहीं है। अतएव इसकी पूर्ण जाँच किये बिना केवल शरीर की शीतलता एवं नाडी की उष्णता प्रभृति लक्षणों को देखकर कदापि अनुभवशाली विज्ञ वैद्यों को साध्यासाध्य का निर्णय नहीं करना चाहिये।

जिस त्रिदोषज विकारमें नाडी की गति उत्तरोत्तर क्षीणहोती जाती है वा रोग होने के साथ ही उस की गति रुकजाती है वह नाडी अवश्य प्राणघातिनी होती है। मूर्च्छा, अपस्मार, अतिसार तथा ग्रहणी प्रभृति रोगों में रुकी हुई भी नाडी स्वेदादि बाह्य उपायों के अवलम्बन से चलने लगती है, परन्तु सन्निपात रोग की जो

क्षण नाड़ी सैकड़ों उपायों के करने पर भी पुन: प्रवर्तित नहीं होती या स्वेद आदि बाह्य उपायों के बिना भी कभी २ एक आध बार भड़क आया करती है वह निश्चयही प्राणियों को यमराज के गृह का अतिथि बना डालती है।

वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक नाड़ियों की गतियों का क्रमशः—"वाताद्वक्रगता नाड़ी, चपला पित्तवाहिनी। स्थिरा श्लेष्मवती ज्ञेया" (मा० चि० २१ श्लोक) अर्थात्—वातिक नाड़ी कुटिल, पैत्तिक नाड़ी-चञ्चल, और श्लैष्मिक नाड़ी स्थिर चलती है, इत्यादि प्रमाणों से-वर्णन किया जाचुका है, और यह भी कहा जा चुका है कि नाड़ियों में लक्षणभेद से क्रमशः वात,पित्त और कफ की नाड़ी का परिज्ञान स्वस्थ या साधारणविकारविशिष्ट नाड़ी का ज्ञापक है। किन्तु जिस नाड़ी में दोषों का क्रमिक ज्ञान न होकर विपरीत क्रम से—अर्थात् पहले पित्त, या कफ की नाड़ी का और पीछे वात की नाड़ी का ज्ञान होता है, अथवा-पहले पित्त, मध्यमें वायु और अन्त में कफ की नाड़ी का ज्ञान होना है, एवं जिसकी गति चक्र पर चढ़े हुये मनुष्य की तरह—अर्थात् जैसे चक्र पर चढ़ा हुआ मनुष्य कभी ऊपर, कभी नीचे, और कभी तिर्य्यग्भाव में विद्यमान मालूम पड़ता है-होती है। और जो नाड़ी तीव्रता, धीरता, और सूक्ष्मता से युक्त होती है वह नाड़ी निश्चय रोगियों के प्राणों को लेनेवाली होती है, अतः वह असाध्य है। यहाँ उदाहरण में तीव्रता, धीरता और सूक्ष्मता का उल्लेख इस लिये किया गया है कि विपरीत क्रम के अनुकूल पहले पित्त की ही नाड़ी चलती है, अतएव उसके वेग में तीव्रता रहती है, मध्यमें कफ की नाड़ी चलने के कारण नाड़ी में गम्भीरता तथा अन्त में वात की नाड़ी चलने के कारण नाड़ी में सूक्ष्मता रहती है। इन लक्षणों से युक्त नाड़ी को देखकर नाड़ीज्ञान में प्रवीण वैद्यों को अवश्य समझ लेना चाहिये कि यह नाड़ी साध्य रोग की द्योतक नहीं है।

अब मैं यहाँ नाड़ियों के ऐसे २ लक्षणों को लिखदेना उचित समझता हूँ, जिन्हें देखकर रोगी के मृत्युकाल का निर्णय किया जा सके, क्योंकि वैद्यों को कालज्ञान की कितनी आवश्यकता है, यह वे ही जानते हैं।

जिस रोगी का शरीर चिरकाल तक रोगग्रस्त रहने के कारण जीर्ण, शीर्ण, अथवा अतिकृश होगया हो, या रोग के स्वभाव के

कारण स्थूल रहने पर भी अति दुर्बल होगया हो उसकी नाड़ी यदि भूलता [केंचुआ] या साँप की तरह-अर्थात्— रोगकृश शरीर में भूलना की तरह, और रोग स्थूल शरीर में साँप की तरह चलती है, अथवा-कभी २ गतिहीन, और कभी २ सूक्ष्म गतिशालिनी मालूम पड़ती है, तो वह मनुष्य इन लक्षणों के उत्पन्न होने के एक मास [३० दिन] पीछे अवश्य मृत्युमुख में पतित होता है।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि; स्वस्थ नाड़ियों के लक्षण लिखते समय आचार्यों ने भूलता और साँप का दृष्टान्त दिखा करके फिर असाध्य नाड़ी के लक्षण लिखते समय भी उसी दृष्टान्त का निदर्शन क्या है यह ठीक नहीं ? इसका उत्तर यह है कि स्वस्थ नाड़ी के लक्षण लिखते समय आचार्यों ने भूलता और साँप की तरह नाड़ी की चाल बतलाते हुए "स्वस्था" विशेषण लिख कर साफ करदिया है कि इन दोनों लक्षणों के होते हुए भी यदि नाड़ी में स्वस्थता प्रतीत होती है, तो समझलेना चाहिये कि वह नाड़ी स्वास्थ्य सूचक है, अरिष्ट सूचक नहीं।

जिस रोगी की नाड़ी-३० बार एक वेगसे अर्थात् समानभाव से अपने स्थान पर ही चलती है, वह प्राणी कठिन रोग से युक्त रहने पर भी जीवित रहता है और यदि ३० के पहले ही जो विकृत या विविध वेगशालिनी होजाती है, वह नाड़ी अवश्य प्राणियों को लोकान्तर में पहुँचाने वाली होती है।

जिस विकसित मुखवाले रोगी के पैर में नाड़ी की गति मालूम होती हो और हाथ में नहीं होता ऐसा रोगी शीघ्र ही काल के कराल गाल का ग्रास होनेवाला है, ऐसा जानना चाहिये।

जिसकी नाड़ी प्रकम्प के साथ२ चलती हुई मालूम हो, कभी अंगुलियों में सटी सी मालूम पड़ती हो, वह प्राणी कतिपय दिनों का ही इस संसार का सम्बन्धी है।

जिस रोगाक्रान्त प्राणी की नाड़ी तुरन्त शीघ्रतायुक्त और तुरन्त अतिमन्दता के साथ [जिसका परिज्ञान होना कठिन है] चलती है, तो वह रोगी सात दिन के बाद अवश्य यमराज के गृह का अतिथि होनेवाला है।

[क्रमशः]

विसूचिका और कालरा।

(गत जुलाई १६२३ से आगे।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि--जब देश, काल आदि के कारण रोग प्रबल होता है, तब इस रोगके साथ अजीर्ण का क्या सम्बन्ध है ? और इन स्थानों में अजीर्ण, विसूचिका रोग का कारण किस तरह होता है ?

इसका उत्तर यह है कि--अधिकांश रोगों के साथ अजीर्ण का घनिष्ठ सम्बन्ध है। शास्त्र में कहा है:-"रोगाः सर्वे हि मन्देऽग्नौ।" अर्थात् सब रोग प्रायः अग्निके मन्द होजानेपर उत्पन्न होते हैं। इस लिए विशेषकर परिपाक द्रव्य के आश्रय से जो रोग उत्पन्न होता है, वह निस्सन्देह अजीर्णमूलक है। पहले यह कहा जाचुका है कि कालरे के जीवाणुओं के उदरस्थ होने ही रोग उत्पन्न नहीं होता, उसको और भी एक बहुत बड़ी सहायता की ज़रूरत होती है; वह सहायता और कुछ नहीं, केवल अजीर्ण है।

प्रसिद्ध होमियोपैथिक डाक्टर श्रीचन्द्रशेखर काली ने अपने "कालरा संहिता" नामक ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है कि "कालरे के कितने ही उपद्रव होते हैं; जैसे-पेशाब बन्द होकर कोमा (Coma -बेहोशी) और चावलों के धोवनकी समान दस्त होना आदि। इन विषयों का वर्णन जब आयुर्वेदमें नहीं है तब विसूचिका को कालरा नहीं कहा जासकता।" दुःख के साथ कहना पड़ता है कि-लेखक महाशय बिलकुल भ्रममें पड़े हुए हैं। उन्होंने जो लिखा है, उसका अर्थ यह है कि-"निद्रा का नाश, चित्तकी अस्थिरता, कम्प, मूत्र का बन्द होना और अज्ञान (बेहोशी) होना ये पाँच विसूचिका रोगके प्रधान उपद्रव हैं।" फिर आयुर्वेदोक्त विसूचिका और इस समय का कालरा एक रोग क्यों नहीं होंगे ?

आयुर्वेद में विसूचिका की असाध्यताके सम्बन्धमें कहा है कि-"जिस रोगी के दाँत, ओष्ठ नखादि काले हों और अल्पसंज्ञा अर्थात् बेहोशी हो तो वह रोगी नहीं बचता।' पहले जो मूर्च्छा की बात कही गई है, उसको कोमा (coma) कहने में सन्देह होने पर भी यह अल्पसंज्ञा अर्थात् कुछ ज्ञान रहना कोमा के आरम्भ होने का सूचक है; इसको न मानने का कोई उपाय ही नहीं। इसके बाद शास्त्र में

कहा है कि विसूचिका रोग में अतिसार होता है। वातज अतिसार के लक्षण इस प्रकार हैं:—

"अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः ।
शकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥"

अर्थात्—वातज अतिसार में फेनयुक्त (झागोंदार), रूक्ष और लाल रंग का मल वायुके साथ थोड़ा २ करके बार २ निकलता है। शूल की समान पीड़ा होती है, मूत्र बन्द होजाता है, पेट फूलजाता है, मलद्वार (गुदा) बाहर को निकल आता है एवं कमर, ऊरु और जंघाओं में शिथिलता होती है।

इससे यह विदित होताहै कि विसूचिकामें पेशाब बन्द होसकता है। कोई २ यह कहसकते हैं कि यहाँ अतिसार के अन्यान्य लक्षणों को न कहकर केवल वातज अतिसार के लक्षण ही क्यों कहे गये ? इसका कारण यह है कि विसूचिका रोग में वायु की प्रधानता होती है, इसलिये वातज अतिसार के लक्षण कहने असंगत नहीं हैं। विसूचिका में जो वायु का प्राधान्य है वह निम्नलिखित विसूचिका के साधारण लक्षणों से मालूम होजाता है।

"सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् सन्तिष्ठतेऽनिलः।
यस्याजीर्णेन सा वैद्यैर्विसूचीति निगद्यते ॥"

अर्थात्-जिसके अजीर्ण के द्वारा वायु अत्यन्त कुपित होकर शरीर में सुई चुभाने की समान पोड़ा करता है, वैद्यलोग उसको विसूचिका रोग कहते हैं।

इसके पश्चात् विसूचिका रोगके मलकी बातहै। विसूचिका रोग में मलके विषयमें कुछ नहीं कहा गया है केवल अतिसारके ऊपर छोड़ दियागया है। इसलिये अतिसार के मलके ऊपर निर्भर रहकर हम विसूचिका के मलके विषय को निर्दिष्ट करते हैं।

कालरे में शरीर का जल निकल जाता है। आयुर्वेदिक अतिसार का जो अन्तिम परिणाम होता है वही विसूचिका में भी होता है। यथाः—

"संशम्यापां धातुमग्निं प्रवृद्धः शकृन्मिश्रो वायुनाधःप्रसृष्टः
सरत्यतीवातिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति।"

अर्थात्-शरीर की जलीय धातुओं (कफ, पित्त, रक्त, रस, जल, मूत्र स्वेद और मेद)की वृद्धि करके और जठराग्नि को शमन करके वायु के द्वारा अधोमार्ग में प्रेरित होकर जब अधिकतर मल निकलता है तब अतिसार रोग उत्पन्न होता है। यह भीषणरोग छः प्रकार का कहागया है। इससे मालूम होता है कि इस रोगमें अर्थात् विसूचिका में शरीर के समस्त जलीय पदार्थ प्रचुरता से निकलते हैं। इसलिये रोगी का मल पहले गाढ़ा होने पर भी अन्त में जलकी समान पतला होजाता है।

इसके बाद प्रतिपक्षी लोग यह कहते हैं कि इसमें चावलों के धोये हुए जलकी समान मलका उल्लेख नहीं है, यह पहले ही कहा जाचुका है कि 'इस रोग में शरीर में जल निकलता है।" इससे जलकी समान मलका पतला होना सहज ही निश्चित किया जासकता है। किन्तु, यह शरीर के अन्यान्य पदार्थों के साथ मिश्रित होने से बिलकुल जलकी समान वर्णवाला नहीं होता; कुछ मैलासा होता है। अतिसार में जहाँ अनेक प्रकार के मलों का वर्णन है, उनमें मलिन मलका भी उल्लेख है। वह मल जल अथवा दूध की समान होता है-यह भी लिखा है। अतएव विसूचिका में चावलों के धोवन की समान मल (दस्त) होता है, इसका स्पष्टरूप से उल्लेख न होने पर भी बुद्धिमान् चिकित्सकको यह बात जानने के लिए किसी प्रकार की अड़चन नहीं होती। (अपूर्ण)

नेत्ररक्षा के उपाय।

जिस प्रकार बहुत लोग कानों को, क़लम, सींक, तिनका, आदि से कुरेद २ कर खराब करलेते हैं, उसी प्रकार नेत्रों की ओर ध्यान नहीं देनेसे सैकड़ों मनुष्य अन्धे होजाते हैं अथवा नाना प्रकार के नेत्ररोगोंसे पीड़ित रहते हैं। जिस तरह शारीरिक शक्ति से अधिक काम लेनेसे शरीर निर्बल होजाता है, उसी तरह नेत्रों से अधिक काम लेनेसे उनकी शक्ति क्षीण होजाती है। नीचे नेत्रों की शक्ति को स्थिर रखनेवाले तथा नेत्रव्यायाम सम्बन्धी कुछ नियम लिखे जाते हैं। इन नियमों का यथाविधि पालन करने से और तदनुसार नेत्रों की व्यायाम करनेसे नेत्रों का संरक्षण होसकता है

और नेत्रों की नाना प्रकारकी व्याधियाँ दूर हाककती हैं। इन नियमों का पालन करनेवाले मनुष्यों को वृद्धावस्था में भी चश्मा लगाने की आवश्यकता न पड़ेगी। और जो मनुष्य चश्मा लगातेहैं, वे यदि इन नियमों का पालन करें तो थोड़े दिनो में ही उनको भी उसके लगाने की आवश्यकता न रहेगी।

नेत्रों को आरोग्यता चाहने वाले मनुष्योंको शारीरिक स्वास्थ्य को भी उत्तम प्रकार से पालन करना चाहिये। कारण, नेत्रों का पोषण शुद्ध रुधिर के द्वारा होता है। अतएव, जब शरीर अस्वस्थ होता है तब नेत्रों को शुद्ध रुधिर न मिलसकने के कारण वे रोगाक्रान्त होजाते हैं। इसलिये नेत्ररोगी को नेत्रचिकित्सा कराने के पहले अपना शारीरिक स्वास्थ्य अवश्य सुधार लेना चाहिये।

निरन्तर घंटों तक पढ़ना या लेटकर पढ़ना, सारे दिन लिखना और तीव्र प्रकाश (बिजली, गैस, या लैंप की रोशनी) में बहुत देरतक एक टक होकर देखना-ये सब बातें नेत्रों के लिए बहुतही हानिकारक हैं; इसलिए लिखते समय पन्द्रह २ मिनटके बाद नेत्रों को विश्राम देना चाहिए। नेत्रों को बन्द करके उनके अवयवों को ४-५ मिनट के लिए शिथिल करदेना चाहिए। पढ़ते समय पुस्तक के दो तीन पृष्ठ पढ़कर नेत्रों को बन्द करना और कुछ क्षण अथवा कुछ मिनटों के लिये उनके स्नायुओं को शिथिल करदेना चाहिये। अथवा दृष्टिसम्बन्धी अन्य कोई कार्य करने पर थोड़ी २ देर में नेत्रों को उस स्थान से हटाकर निकटवर्ती वृक्ष, लता आदि पर या अन्य किसी रमणीय पदार्थ पर दृष्टि डालनी चाहिये। इन नियमों पर विशेष रूप से ध्यान देनेसे मनुष्य नेत्रों का भलीभाँति रक्षण करसकता है।

आधी आधी रात तक जागना और सुबह को देर से उठना—इससे नेत्रों को बहुत हानि होती है, इसलिए मनुष्य को प्रतिदिन रात्रिमें नियमित रूपसे ८ घंटे सोना चाहिये। दृष्टिसम्बन्धी कार्य करने से यदि नेत्र बहुत थकगये हों तो उनको पहले गरम पानी से फिर ठंडे पानी से धोना चाहिये। इसी प्रकार गर्दन पर भी पहले गरम जल, फिर ठंडा जल डालना चाहिये। ऐसा करने से जमा हुआ रुधिर गरम जल के द्वारा पिघलकर ठंडे जलसे फिर प्रवाहित होनेलगता है। मस्तक के पीछे की ग्रीवा और नेत्रों के आस पास

मुख पर विद्यमान नेत्रसम्बन्धी स्नायुओं को बलिष्ठ बनाने के लिए मुखको शीतल जलसे धोना चाहिये।

अन्धेरे में से चाँदने में आते समय नेत्रों को बन्द करके आना चाहिये। लिखते, पढ़ते समय प्रकाश नेत्रों के ऊपर नहीं पड़ना चाहिए। बल्कि पुस्तक के ऊपर पड़ना चाहिए। प्रकाशके सामने दृष्टि करके कदापि नहीं सोना चाहिए। चन्द्रमा की चाँदनी भी नेत्रों के लिए हानिकारक है, इसलिए सोते समय उसको भी नेत्रों पर नहीं पड़ने देना चाहिए।

मनुष्य को सदैव प्रसन्नचित्त रहना चाहिए। कारण, नेत्रों द्वारा मनुष्य के अन्तः करण के अच्छे या बुरे सब प्रकारके भाव प्रकट हो जाते हैं। नेत्र, हृदयगत आत्मा की खिड़कियाँ हैं, इन्हीं खिड़कियों में स्थित होकर वह समस्त जगत को निरीक्षण करता है। शास्त्रीय मत है कि-"जागृत् अवस्थामें जीव नेत्रों में निवास करताहै।"जब मन दुःखी होता है तब स्वस्थ नेत्र भी विकृत मालूम होते हैं और जब वह निर्मल तथा प्रसन्न होता है तब रोगग्रस्त और विकृत नेत्र भी स्वस्थ तथा स्वच्छ दिखाई होते हैं। इससे यह ज्ञात होताहै कि कुरूप और विकृत नेत्र होने पर मनुष्य रोगी कहलाता है और स्वस्थ तथा सुन्दर नेत्रों वाला स्वस्थ समझा जाता है, इसलिए नेत्रों के रक्षणार्थ मन की कुत्सित वासनाओं को दूरकर सद्भावों को स्थान देना चाहिए।

आलपीन या और किसी छोटी चीज़ को हाथ में लेकर उसको नाक के पास लाओ, फिर उसे वहाँ से जितनी दूर लेजासको उतनी दूर धीरे धीरे हाथ को हटाते हुए लेजाओ और उस वस्तु को एकटक दृष्टि से बराबर देखते रहो। फिर दहनी और बाँई तरफ नीचे ऊपर आलपीन को फिराओ। ऐसा करना नेत्रों के समस्त अवयवों को व्यायाम कराना है।

सीधे खड़े होकर दोनों हाथों को जितना ऊँचा ले जासको उतना ऊँचा लेजाओ। फिर कमरसे नीचे को झुककर दोनों हाथों को ज़मीन पर टेकदो। फिर दहिने हाथ को वहां टिका हुआ रखकर बायें हाथ की किसी अँगुली को एकटक देखते हुए उसको नासिका तक लाओ और वहाँ से फिर जितनी ऊँची लेजासको उतनी ऊँची अँगुली लेजाओ। यदि नेत्रों को थकावट न मालूम हो तो अँगुलीको उसी प्रकार देखते हुए ऊपर से धीरे २ नाक तक

लाओ। फिर थोड़ी देर विश्राम करके बायें हाथ को ज़मीन पर टेककर दाहिने हाथ की अँगुली के द्वारा यह क्रिया करनी चाहिये। ये सब क्रियायें पहले कुछ दिनों तक क्रम से एक एक आँख बन्द करके करनी चाहिये और जब नेत्र बलवान् होजायँ तब दोनों नेत्रों को खुला रखकर यह व्यायाम करनी चाहिये। कारण, प्रथम ही दोनों नेत्रों को खोलकर व्यायाम करनेसे स्वाभाविक ही एक आँख दुर्बल होजाती है।

लिखते पढ़ते समय कमर झुकाकर नहीं बैठना चाहिए, बल्कि सीधा बैठना चाहिए। यदि बैठे२ कमर थक जाय या दर्द होने लगे तो करवटसे बैठने की बजाय सीधे लेटकर विश्राम करना चाहिए।

जिन मनुष्यों की लेटकर पढ़ने की आदत हो अर्थात् जो बैठकर पढ़ ही नहीं सकते हों, उनको पन्द्रह २ मिनट के बाद नेत्रों को बन्द करके विश्राम लेना चाहिए। नेत्रों के प्रत्येक स्नायु को व्यायाम के द्वारा सबल बनाते रहना चाहिए। परन्तु जब स्नायु थक गये हों या उन्हें विशेष श्रम मालूम होता हो तब इस प्रकार को व्यायाम नहीं करना चाहिए। इन नियमों का यथाविधि पालन करने से नेत्रशक्ति अत्यन्त तीव्र होजाती है।

डेढ़ सेर पानी में एक चम्मच नमक डालकर उस को रात्रि के समय ओस में रखदेना चाहिए। फिर प्रतिदिन प्रातःकाल उस पानी को छानकर उससे नेत्रों को धोना चाहिए। यह जल-दुर्बल और अनेक प्रकार के नेत्ररोगग्रस्त व्यक्तियों के लिए विशेष हितकारी है।

जिन कारणों से स्वास्थ्यभंग होता है और विशेषकर ज्ञानतन्तु निर्बल होते हैं, उन को सर्वथा त्याग देना चाहिए। कारण, उन्हीं के द्वारा नेत्रों को भी हानि होती है।*

रामरतन लाल आचार्य।

कुछ घरेलू औषधियाँ।

लाल मिरच।

भारत के प्रायः सभी देशों में लाल मिरच बहुतायत से पैदा होती है। लाल मिरच यद्यपि अनेक प्रकार की होती है, किन्तु

* "गुजराती महाकाल" के एक लेख के आधार पर।

साधारण रूप से हम इसको दो भागों में विभक्त करते हैं। एक छोटी जिसको जवा या धनियाँ मिरच कहते हैं और दूसरी बड़ी लम्बी मिरच। लालमिरच में एक प्रकारका तैलिक पदार्थ होताहै, अङ्गरेज़ो में इसको कैपसिसिन (*Capsicin*) कहते हैं। बड़ी मिरच की अपेक्षा छोटी मिरचमें ही यह पदार्थ अधिकतर रहता है। कैप-सिसिन एक अत्यन्त तीक्ष्ण और दाहकारक पदार्थ है। यह शरीर की कोमल त्वचा में लगजाने पर उसमें तत्काल दाह उत्पन्न करदेताहै इस कारण त्वचामें अत्यन्त जलन एवं वेदना होतीहै और छालेभी पड़जाते हैं। इस को भक्षण करने से पाकस्थली और आँतो में अत्यन्त तीव्र दाह होती है। दाल, तरकारी, शाक आदिमें लाल मिरचका अधिक व्यवहार करने से कभी कभी मनुष्यों को पेचिश होजाती है। किन्तु अल्पमात्रा में सेवन करने से इसमें रहने वाला कैपसिसिन अजीर्ण रोगमें एक उत्कृष्ट औषधका काम करता है। यह केवल अ-जीर्ण रोग की ही औषध नहीं है, किन्तु इसके व्यवहारसे पाकस्थली की पाचक शक्ति भी बढ़जाती है। जब कि अजीर्ण रोग में उदर में वायु सञ्चित होजाता है और भोजनमें अरुचि हो जाती है तब लाल मिरच का आसव (Tinct Capsicin) विशेष गुण करता है। इसके अतिरिक्त लाल मिरच शरीर में उत्तेजना पैदा कर-ने वाली (Stimulant), लार को निकालने वाली, पाचक, क्षुधा वर्द्धक, मूत्र लानेवाली और जननेन्द्रिय में उत्तेजना पैदा करनेवाली है। आयुर्वेद में लालमिरच के गुण इस प्रकार वर्णन किये गये हैं। यथा-लाल मिरच "चरपरी, तीक्ष्णवीर्य, अग्निप्रदीपक, कफ-वात नाशक, उष्णवीर्य, पित्तकारक श्वासनिवारक, शूलरोगनाशक और कृमिरोगनाशक है"।

इनके अतिरिक्त लालमिरच में और भी एक विशेष गुण है, जिस का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में नहीं देखा जाता। लाल मिरच माद-कता-निवारक है। यह निरन्तर मद्यपान करने वाले व्यक्ति की इच्छा तक को नष्ट करदेती है। नियम पूर्वक कुछदिनों तक लाल मिरच का आसव (Tinct Capsicum) व्यवहार करने से मद्यपी मनुष्य को मद्य पीने की इच्छा बिलकुल दूर हो जाती है। निम्नलि-खित औषध इस अवस्था में विशेष उपयोगी होती है। इससे केवल मद्य पीने की इच्छा ही दूर नहीं होती किन्तु परिपाकशक्ति

भी अत्यन्त बढ़जाती है। सोडाएसिड १० ग्रेन, स्प्रिट एमोनिया एरोमेटिक आधा ड्राम, टिंचर कैपसिकम १० बूँद, टिंचर सिनको-ना आधा ड्राम, टिंचर नक्सवोमिका ५बूँद और एकुआ क्लोरोफार्म १औंस इन सब ओषधियों को एकत्र मिलाकर दिनमें ३-४बार सेवन करना चाहिए। अधिक मद्य पीने से बेहोश पड़े हुए मद्यपी मनुष्य को वमन कराकर अथवा स्वयं ही वमन हो जाने पर उसको टिंचर कैपसिकम और इमली का शर्बत पान कराना चाहिए. इस से थोडी देरमें ही उसकी मद्यपीने की इच्छाशक्ति नष्ट होजाती है।

लाल मिरच के द्वारा यूरुप में निम्नलिखित कितनी ही ओषधियाँ प्रस्तुत होती हैं।

१टिंचर कैपसिसि Tinct Capsici (लालमिरच का आसव)

२ टिंचर कैपसिसि जास्ट Tinet capsici Jost (बहु तीक्ष्ण आसव है)।

३ फ्लूइड ऐक्सट्रैक्ट Fluid Extract (पतला गोंद)

४ ऐमप्लेस्ट कैपसिसि Emplast Capsici (लाल मिरच का प्रलेप या पट्टी)

५ अँगुएन्ट कैपसिसि Unguent CaPsici (लाल मिरच का मरहम)

मरहम और प्रलेप के रूपसे अनेक प्रकार के वात रोगों में एवं पेशियों की और स्नायुसम्बन्धीपीड़ामें लालमिरच का व्यवहार होता है। लाल मिरच को सरसों के तेलमें मिलानेसे एक प्रकार की शरीर में मालिश करने की औषध भी तैयार हो सकती है। लम्बेगो (Lu mbago.) नामक कमर की पीड़ामें इससे विशेष उपकार होता है। सर्दी, गलेकी पीड़ा और स्वरभङ्ग रोग में लाल मिरच का आसव और ग्लिसेरिएड टानिक एसिड दोनों को जलमें मिलाकर कुल्ले करने से शीघ्र लाभ होता है।

भारत के जिनर स्थानों में मलेरिया ज्वर का अधिक प्रकोप रहता है, वहाँ के मनुष्य स्वाभाविक रूप से लाल मिरच को शाकी भाजी आदि में विशेषरूप से सेवन करते हैं। कहीं कहीं किसान लोग कभी अधिक सर्दी होनेपर केवल लाल मिरच का यूष और खटाई का ही आहार करतेहैं। इस देशमें ऐसा कुछ विश्वास फैला हुआ है कि लाल मिरच को खानेसे ज्वर दूर होजा-

ता है, शरीरमें बल आता है और शीत ऋतु में अधिक सर्दी नहीं लगती। लाल मिरचमें शरीरमें उत्तेजना पैदा करती, तापवर्द्धक और पाचक गुण रहता है।

——:*:——

अंडी का तेल।

अरण्ड के वृक्ष भारत के प्रत्येक देश में अधिकता से उत्पन्न होते हैं। अंडी का तेल हमारे बहुत काममें आता है। जिसको डाक्टर लोग अपने नुसखों में लिखा करते हैं। यह तेल मिचेल (Mitchel) साहब की विशेष प्रणाली के द्वारा प्रस्तुत करके इंगलैण्ड से इस देशमें भेजा जाता है और यहाँ Cold draun castor oil के नामसे बिकता है। देशीय कोलूओं के द्वारा जो अरण्डी का तेल निकाला जाता है, वह साफ़ न होनेपर भी एकदम कार्यहीन अथवा व्यवहार के अयोग्य नहीं होता और उसको शुद्ध करना भी असंभव वा कठिन नहीं है। फिर विलायती Colddraun castor oil का व्यवहार न करने से क्या हमारा काम नहीं चलसकता? अरण्डी का तेल एक अत्युत्तम विरेचक औषध है। एवं सभी मनुष्य कोष्ठबद्धता को दूर करने के लिए इसका व्यवहार करते हैं; किन्तु मात्रानुसार इसको सेवन करने से इसके अनेक गुण देखे जाते हैं। एक बूँद वा दो बूँद की मात्रा से इसको देने से पुराने ग्रहणी रोग में (Chronic) विशेषकर बालकों के ग्रहणी रोग में आश्चर्यजनक फल होता है। दस बूँद से ६० बूंद तक इसको सेवन करने से नवीन व पुरानी पेचिश में शीघ्र लाभ होता है।

बाह्य प्रयोग में भी अरण्डी का तेल विशेष उपकार करता है। बालकों के कोष्ठबद्धता होनेपर उनके पेटके ऊपर अरण्डी के तेलकी मालिश करने से कोठा साफ होजाता है। बहुतसी स्त्रियाँ पान के डंठल पर अरण्डी का तेल चुपड़कर उसको बालक की गुदा में लगा देती हैं, इससे कोष्ठबद्धता दूर होकर बालक को दस्त साफ हो जाता है। पिचकारी लगाने की अपेक्षा यह विधि सुगम है। किसी किसी वात की पीड़ा में अरण्डी का तेल गरम करके मलने से उक्त पीड़ा शान्त होती है। आँखों में जलन होने पर अथवा आँखों में बाल और कोई चीज़ पड़ जाने से आँख किरकिराती हो तो एक दो बूँद अरण्डी का तेल आँख में डालने से तत्काल उक्त व्यथा दूर हो

जाती है। अण्डी के तेल को साफ और सुगन्धित बनाकर उसके द्वारा एक प्रकार का केशमर्दन तेल तैयार किया जाता है। यह तेल बालों के लिये विशेष हितकारी है। सन्तानवती स्त्रियों के स्तनों में अण्डीका तेल मलनेसे दूध बढ़ता है। किन्तु अण्डीके तेलकी अपेक्षा अण्डी के पत्तों को पीस कर उनका प्रलेप करनेसे अधिक फल होता है। अण्ड के पत्तों को गरम करके बाँधने से नाना प्रकार की वात-व्याधि शान्त होती है। कुछ दिन हुए अमेरिका की एक मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था कि अण्ड का वृक्ष घरके दरवाजे पर या खिड़की के निकट लगानेसे घरमें मशाल नहीं आता।

अदरख।

अदरख का परिचय देना व्यर्थ सा है; क्योंकि वह हमारे देशके प्रत्येक नगर और प्रत्येक ग्राममें उत्पन्न होता है। वह गृहस्थ लोगों के प्रतिदिन के व्यवहार की वस्तु है। यह तरह२के शाक भाजी आदि व्यञ्जनों का मसाला और अनेक रोगों की औषध है। वह पाचक, कोष्ठाश्रित वायु को निकालनेवाला, अन्त्रस्थ आक्षेप और शूल को दूर करने वाला, उत्तेजक और तापवर्द्धक है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में लिखा है कि "प्रतिदिन भोजन से पहले सैंधानमकके साथ अदरख को खानेसे जठराग्नि दीपन होती है, भोजन में रुचि उत्पन्न होती है एवं जिह्वा और कंठ शुद्ध होता है।" चिरकाल से डिस्पेपसिया(अजीर्ण) से ग्रसित मनुष्य के लिए अदरख एक बहुमूल्य औषध है। इसके सिवा अदरख कफरोग, वातरोग, कण्ठ और गले की नालीके रोगों में विशेष हितकारी है। किसी कारण से जब शरीर ठंडा पड़ जाय तब सोंठ का चूर्ण मलने की बराबर शरीर के ताप को बढ़ानेवाला ऐसा सहज और तत्काल फलप्रद कोई दूसरा उपाय नहीं है। अदरख यद्यपि भारतके प्रत्येक प्रान्त में अधिकता से उत्पन्न होता है तथापि अदरखके द्वारा प्रस्तुत की हुई जो औषधें हमारे काम में आती हैं जैसे-Tincture Ginger, Essenee of Ginger, Pulv, Ginger इत्या-दि वे वेस्ट इण्डिया West India में उत्पन्न हुए अदरख से यूरप और अमेरिकामें तैयार होकर हम लोगों के व्यवहार के लिए इस देशमें आती हैं। यहाँ तक कि अदरख का शर्बत Syrup और अद्-

नींबू—नींबू का रस स्निग्ध, शीतल, पाचक और तृषा निवारक है। नींबू के रसमें खाँड मिलाकर अग्निपर पकाकर गाढ़ा अवलेह बना लेवें। यह अवलेह बदहजमी और अजीर्ण रोगमें विशेष लाभ करता है। यूनानी हकीम इसी प्रकार "नींबू का शर्बत" बनाकर अनेक प्रकार की बदहजमी में विशेषरूपसे सेवन कराते हैं। वात रोग में Acute Rheumatism और पथरी रोग में uric acid calculi नींबू का रस पिलाने से शीघ्र उपकार होता है। बहुतदिनों तक किसी प्रकार की शाक सब्जी न खाकर केवल मांसाहार करने से स्कार्वि (Scurvy) नामक एक प्रकार का भयंकर रोग हो जाता है। यह रोग यूरप के मल्लाहों में अधिकता से होता है। इस रोग की प्रधान औषध नींबू का रस है।

प्राचीन आयुर्वेदिक शास्त्रों के मतसे नींबू का रस—"वात निवारक, अग्निप्रदीपक, पाचक, लघुपाकी और कृमिनाशक है। एवं-शूल, अरुचि, सन्निपात ज्वर, मन्दाग्नि और वातरोग की प्रकृष्ट औषध है।" जंभीरी नींबू का रस—वात, पित्त, रक्तविकार, अरुचि, तृषा और वमननिवारक एवं बलकारक और पुष्टिकारक है।

कागज़ी नींबू और जंभीरी नींबू के छिलके में से एक प्रकार का तेल निकलता है, वह कुछ उत्तेजक, पाचक, पुष्टिकारक (Tonic), और पाकस्थली की वायु को शमन करता है।

विद्यार्थियों की आरोग्यता।
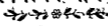
उपोद्घात।

आरोग्यता, बल और सुदशा पर ही हमारी और हमारी भावी संतान की अच्छाई और बुराई निर्भर है। अधिक क्या कहा जाय हमारे उत्तम आचरणों की नींव पर ही हमारे भविष्य सुख की इमारत खड़ी होने वाली है। हमारी सर्वस्व, हमारी संतान की आरोग्यता का प्रश्न बड़े ही महत्त्व का है। उदाहरणार्थ किसी भी व्यक्ति को ले लीजिए, चाहे वह राजमहल में रहने वाला श्रीमान् हो अथवा टूटे फूटे झोपड़े में रहने वाला कंगाल हो, आरोग्यता की सबके लिए विशेष आवश्यकता है। हम विद्यापार्जन, नौकरी चाकरी, व्यापार, वाणिज्य आदि जो कुछ कार्य करते हैं, उसका

सुख बढ़े हुए सुख-प्राप्ति ही रहता है और सुख की प्राप्ति हमारी शारीरिक अवस्था पर विशेष रूपसे अवलम्बित है। यदि हम प्रमादवश शारीरिक अवस्था पर पूरा पूरा ध्यान न दें तो सुख प्राप्त करना तो दूर रहा, हमारा सारा जीवन कष्टमय हो जायगा। अतएव अन्य बातों के साथ साथ हमें अपनी शारीरिक दशा पर भी अवश्य ध्यान देना चाहिए। यदि बचपन में जब कि बालक छात्रावस्था में रहता है तब उसके शारीरिक स्वास्थ्य पर उचित रीतिसे ध्यान दियाजाय तो उसका भावी जीवन विशेष सुखदायी हो सकता है। बालकों में अच्छी, बुरी आदतें भी इसी समय से शुरू होती हैं। कुछ रोग ऐसे होते हैं कि जिन पर बचपन ही से ध्यान देना पड़ता है। उदाहरणार्थ यदि बालक की दृष्टि मंद हो, कान बहता हो, पाचन-क्रिया ठीक ठीक न होती हो, ज्वर अथवा अन्य किसी रोग के कारण कमजोरी बढ़गई हो तब ऐसी दशा में यदि समय पर इनको दूर करने का प्रयत्न न किया जावेगा तो आगे चल कर यही मामूली विकार दुःसाध्य अथवा असाध्य होजाते हैं। अतएव बालकों को नीरोग रखने के लिए बचपन ही से उनके प्रति विशेष सावधानी रखनी चाहिए। आज कल दिन प्रतिदिन पेटपूजा का प्रश्न जटिल होता जारहा है, इससे सब लोग अपने बच्चों को शिक्षित बनाना अपना कर्त्तव्य समझने लगे हैं। इसी लिए पाठशालाओं में छात्रों की संख्या बड़ी शीघ्रताके साथ बढ़ रही है। इस प्रकार सर्वसाधारण जनों में विद्योपार्जन की अभिरुचि देखकर अत्यन्त प्रसन्नता होती है। किन्तु बालकों को हम जिन पाठशालाओं में भेजते हैं, उन पाठशालाओं के स्थान छात्रों के लिये आरोग्यप्रद नहीं होते। हम देखते हैं कि पाठशालाओं के छात्रों का शारीरिक स्वास्थ्य अनेक रोगों से ग्रसित रहता है। प्रायः शिक्षकों और बालकों के पालकों को बालकों की जिम्मेवारियों का और कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं रहता। जो थोड़ा बहुत इन बातों को समझते भी हैं वे द्रव्याभाव के कारण कुछ कर नहीं सकते। इन बातों से सिद्ध है कि हमारे बालकों का स्वास्थ्य किसी न किसी कारण से बिगड़ता जारहा है। जिस प्रकार वृक्ष का छोटा पौधा अच्छी जाती हुई ज़मीन में लगाने तथा भरपूर खाद और पानी देने से हरा भरा रहकर शीघ्रता से बढ़ता है,इसी प्रकार बालकों का हाल जानना चाहिए।

अतएव बालकों के विषय में बचपन से ही खूब सावधानी रखनी चाहिए। पाश्चात्य देशों में इन बातों की ओर विशेषरूप से ध्यान दियाजाता है, इस कारण वहाँके बालकों का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन सुधरता जाता है।

डाक्टरी-परीक्षा।

इंग्लैंड जैसे सुधरे हुए देशमें जब पाठशाला में लड़का भर्ती किया जाता है तब पहले डाक्टर द्वारा उसके स्वास्थ्य की जाँच की जाती है और पश्चात् नियमित समयों पर उसकी जाँच होती रहती है। यहाँ तक कि उसके प्रत्येक अवयव की जाँच की जाती है। यदि इस जाँच से यह सिद्ध हुआ कि लड़के का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, उस में किसी प्रकार की खराबी है अथवा उसकी दृष्टि में किसी प्रकार का दोष है तो इसकी सूचना लड़के के पालकों को दे दी जाती है। इसी प्रकार यदि लड़के के कपड़े मैले हों, अथवा उसका शरीर स्वच्छ न हो तो पालकों को कुछ अर्थदण्ड दिया जाता है। यदि लड़के को कोई छूत की बीमारी हो तो वह पाठशाला में भर्ती नहीं किया जाता। सन् १६०७ में उक्तप्रकार का कानून पास हो चुका है और सन् १६०८ से वह अमल में भी आने लगा है। इन कारणों से वहाँ के लोग अपने बालकों के सम्बन्ध में विशेष सावधानी रखने लगे हैं। बालक के पालक को उसके स्वास्थ्य बिगड़ने की सूचना दे दी जाने पर भी यदि पालक की ओर से कोई शीघ्र उपाय नहीं किया गया तो म्युनिसिपिल्टी या जनता के जमा किये हुए चन्दे से रोगप्रतिबंधक उपचारों का प्रबन्ध करदेते हैं। बालक को यदि चश्मे की ज़रूरत हो और पालक उसे नहीं दे सकता हो तो उक्त चंदे से ही उसको चश्मा ले दिया जाता है। मतलब यह है कि बालक के शारीरिक स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए वहाँ के लोगों को बहुत सावधान रहना पड़ता है। यह ठीक है कि हम लोगों की दशा प्रत्येक बात में पाश्चात्य देशवासियों के समान नहीं है, किन्तु यहाँ पर हमें यह बात भी न भूल जाना चाहिये कि हम लोग जिन बातों के करने में समर्थ हैं उन बातों में भूलकर भी असावधानी न करें।

डाक्टरी जाँच की आवश्यकता और लाभ।

कदाचित् कुछ लोग कहसकते हैं कि बालकों के स्वास्थ्य की

परीक्षा करने की क्या आवश्यकता है? आज तक हमारे बालक क्या बिना डॉक्टरी परीक्षा किये लिख पढ़ नहीं सके? ऐसा नियम होजाने से यही होगा कि बालक यदि मामूली बीमारी से भी ग्रसित होगा तो भी उसकी शिक्षा में बाधा उपस्थित होजायगी। इस प्रकार की भ्रममूलक बातें कहते हुए अनेक लोग देखे गये हैं; परन्तु यह उनकी निरी भूल है यदि वे शांतिपूर्वक तनिक भी विचार करेंगे तो हमारे कथन पर उन्हें अवश्य विश्वास होजायगा। अब हम कोई दूसरा उदाहरण न देकर घर का ही एक उदाहरण देते हैं। कल्पना कीजिए, हमारे बालक को खाज की बीमारी-जिसे हम मामूली बीमारी समझते हैं, होजावे तो क्या कोई इस बात से इन्कार करसकता है कि यह बीमारी संसर्गजन्य दोषके कारण फैलते फैलते सब घरके लोगों को न होजायगी? अर्थात् अवश्य होजायगी।

जब हम स्वयं अपनी आँखोंसे नित्यप्रति ऐसा होता हुआ देखते हैं तो फिर माता की बीमारी क्षय आदि संसर्गजन्य बीमारियों से ग्रसित यदि कोई छात्र पाठशाला में जाय तो उसके संसर्ग द्वारा के कारण वेही बीमारियाँ क्या अन्य छात्रों को नहीं होसकतीं? नहीं अवश्य होसकती हैं। यदि बात ऐसी ही है तो फिर एक रोग-ग्रसित छात्र से दूसरे छात्रों को बचाने के लिये डाक्टरी जाँच अत्यावश्यक है। जाँचसे और भी अनेक फायदे हैं। वे यह कि बच्चों के पालकों को तत्सम्बन्धी बातें जैसे कि बच्चा रोगी है या निरोगी, और अवस्थानुसार उसका वज़न बढ़रहा है अथवा घट रहा है शीघ्र मालूम होसकती हैं। अनेक विद्यार्थी, मृत्यु के निकट पहुँच जाने तक पढ़ते रहते हैं। पर उनकी इस बात की कोई चिन्ता ही नहीं करता कि विद्यार्थी जिस घोर परिश्रम में लगे हुए हैं, उनकी शारीरिक अवस्था उसके अनुकूल है या नहीं। इसका बहुतही भयंकर परिणाम होता है। बेचारा छात्र परीक्षा पास करने की धुन में मस्त होकर अपने शारीरिक स्वास्थ्य को मिट्टी में मिलाकर सर्वदाके लिये इस संसार से चल बसता है। अनेक बच्चों के पालकगण इस बात को जानते ही नहीं कि हमारा बच्चा क्या पढ़रहा है, और अनेक पालक इस बात को जानते भी हैं तो उन्हें इतना अवकाश नहीं कि वे इस ओर ध्यान दें। बड़े बड़े शहरों में ऐसे बहुत कम लोग हैं जिन्हें बच्चों की ओर ध्यान देनेका अवकाश है। इसका कारण यही है कि अनेक लोग

प्रातःकाल उठकर शौचोन्मुख मार्जनादि क्रिया और जलपान के पश्चात् ८। ६ बजे तक अवकाश पाते हैं। दस बजे दफ्तर में चले-जाते हैं। और अवशेष के एक घंटे को स्नान, संध्या, समाचारपत्र पढ़ने और आगत व्यक्ति से बातचीत करने में व्यतीत करते हैं। कहनेका मतलब यह है कि उनको प्रातःकाल बच्चों की शिक्षा की ओर ध्यान देनेके लिये बिलकुल समय नहीं मिलता। दफ्तर से घर लौटते समय ६। ७ बजजाते हैं। उस समय वे बिलकुल थकजाते हैं। उन्हें इस समय आराम के सिवा और कुछ नहीं सूझता। फिर भोजन होने तक बच्चे सोजाते हैं। यदि कोई व्यक्ति दफ्तर से आने के बाद बच्चों के लिखने पढ़ने की ओर ध्यान देवे भी तो बच्चों के द्वारा छोटी मोटी भूलों के होजाने पर काम की अधिकता के कारण उकताजाने से बच्चों के मारने के सिवा उससे और कुछ नहीं हो सकता। जब बच्चों के पढ़ने लिखने में ऐसी लापरवाही है तो उनके स्वास्थ की तो बात ही क्या है। जब तक कि बालक बीमारी के कारण बिस्तर पर न पड़जावे तब तक उनकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता। अतएव इस अवसर पर डाक्टरी जाँचकी अधिक आवश्यकता जान पड़ती है। डाक्टरी जाँच से जब बच्चों की बीमारी का पता चलजाता है तब उनके माता पिता को सावधानी से उनका इलाज करने में सुभीता होता है। इससे बच्चे भी अपनी बीमारियों से परिचित होजाते हैं और वे दूसरे बीमार बच्चों से अपनी रक्षा करना जानजाते हैं। इससे सार्वजनिक आरोग्यता की वृद्धि होती है और आरोग्यशास्त्र में सुधार होता है। अतएव छात्रों की वैद्यकीय परीक्षा की रिपोर्ट समयसमय पर अवश्य प्रकाशित होनी चाहिये। वास्तव में देखा जाय तो छात्रों की वैद्यकीय जाँच समस्त देशों में प्रचलित है केवल हमारा देशही इस महत्त्वपूर्ण कार्यमें सबसे पीछे पड़ा हुआ है। सन् १८३७में फ्रांसमें यह पद्धति प्रचलित हुई थी। पश्चात् जर्मनी और इंग्लेण्ड में भी इसका अनुकरण किया गया। अमेरिका में भी यह पद्धति प्रचलित है। उनकी इस जाँच की रिपोर्टों से छात्रों के स्वास्थ्य के सुधरने में बहुत कुछ सहायता मिली है।

डाक्टरी (वैद्यकीय) जाँच करने की पद्धति।

बच्चों के शारीरिक स्वास्थ्य के संबन्ध में निम्नलिखित बातों की ओर विशेषरूप से ध्यान देना पड़ता है:—

विद्यार्थी का नाम

अवस्था

पाठशाला का नाम

जन्मतिथि

जाति-पुरुष या स्त्री

उसका पता

पाठशाला में आने के पूर्व बच्चे को यदि कोई बीमारी हो तो उसका विवरण।

कौटुम्बिक बीमारियों का विवरण।

जाँच की तिथि

शरीर की ऊँचाई

वज़न।

आँखें कैसी हैं? आँखों की दृष्टि कैसी है उनमें कोई रोग तो नहीं है। यदि रोग है तो साधारण या कोई बड़ा रोग है।

कान—कान में से मवाद या और किसी प्रकार का कोई पदार्थ तो नहीं निकलता? सुन पड़ता है या नहीं?

स्वच्छता-शरीर भली भाँति स्वच्छ है या नहीं?

कपड़े—स्वच्छ हैं या नहीं और पूरे हैं या नहीं?

कद—उत्तम, मध्यम या निम्न। कोई अंग विकृत तो नहीं है?

पोषणक्रिया कैसी होती है-उत्तम या मध्यम? शरीर मोटा है या दुबला?

वर्ण—फीका है या तेज़?

दाँतों में किसी प्रकार का दोष तो नहीं है?

नाक और गले में-कोई रोग हो तो उसका विवरण।

भाषण—साफ है या लड़खड़ाता हुआ? (अनेक बार देखा गया है कि दाँत, तालु अथवा ओंठ दूषित होने के कारण स्पष्ट उच्चारण नहीं होसकता)

मानसिक स्थिति-कुछ कमी तो नहीं है? बहुत मंद है या साधारण है अथवा तीव्र है।

ऊँचाई वजन और छाती का माप।

इस विषय में निश्चयपूर्वक कोई नियम नहीं बताया जा सकता। प्रथम पाँच वर्ष तक लड़के लड़कियोंकी वृद्धि विशेषरूप से

होती है, किन्तु लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की वृद्धि कुछ कम परिमाण में होती है। दस से पन्द्रह तक लड़की की वृद्धि लड़के की अपेक्षा अधिक होती है। ग्यारह से चौदह वर्षों के बीच ऊँचाई में और बारह से पन्द्रह वर्षों के बीच वज़न में लड़के की अपेक्षा लड़की विशेष वृद्धि करती है। पन्द्रह से बीस वर्ष तक लड़कियों की अपेक्षा लड़कों के शरीरको वृद्धि विशेष रूपसे होती है। सामान्य नियमानुसार २५ वर्षों में वह पूर्ण हो जाती है। उसी प्रकार पन्द्रह वर्षों के पश्चात् लड़की की वृद्धि बहुत कम परिमाण में होती है और इस प्रकार सत्रह वर्षों में वह पूर्ण होजाती है। यह बात भी नहीं है कि पच्चीसवें वर्ष के उपरान्त वृद्धि बिलकुल बंद हो जाती हो। लड़के, लड़कियों की बचपन में और जवानी में गरमी के दिनों में ऊँचाई और ठंड के दिनों में वज़न की वृद्धि होती है। मनुष्य के सुख दुःख के अनुसार, काम धन्धे के अनुसार अथवा अवस्था के अनुसार वज़न और ऊँचाई में अंतर होता है। कुछ जाति के लोग नाटे क़द के होते हैं और कोई कोई ऊँचे पूरे क़दके होते हैं। गर्म और सर्द मुल्कवाले समशीतोष्ण देश में रहने वाले लोगों की अपेक्षा ऊँचाई में कम होते हैं। मनुष्य की लम्बाई रात की अपेक्षा प्रातः काल में कुछ अधिक होती है। ऊँचे पर्वतों पर रहने वाले मनुष्यों की अपेक्षा सपाट मैदान में रहने वाले लोग ऊँचे होते हैं। (अपूर्ण)

शरीर को मर्दन करना या शरीर को दबाना।

—:o:—

प्रायः सभी जाति के लोगों में शरीर को मर्दन करने या शरीर को दबाने की रीति देखी जाती है। राजा, महाराजा और धनी लोगों के यहाँ इस कामके लिए बड़े बड़े चतुर नौकर रहा करते हैं। कहते हैं कि अवध के अन्तिम बादशाह वाजिदअली शाह के यहाँ एक आदमी उनके हाथ और पैरों को दबाने के लिये १२सौ रुपये मासिक वेतन पाता था। अब भी कई नवाबों के यहाँ ऐसे आदमी देखे जाते हैं जो सिर्फ इसी काम के लिए सैकड़ों रुपये मासिक तनख्वाह पाते हैं। बहुत जगह हजामत बनाने के बाद देह को दबाना

नाई का मुख्य काम समझा जाता है। नाई इस काम में जितना अधिक चतुर होता है उतनी ही वह अधिक मज़दूरी पाता है। ग्राम में ज़मींदार और बनिये महाजनों के यहाँ जब कोई महमान आता है तब उसके पाँव दबाने के लिए नाई अवश्य बुलाया जाता है। धनी लोग आनन्द के लिए शरीर दबवाया करते हैं; किन्तु बहुत से साधारण मनुष्य दिन में अधिक काम काज करने के कारण थक जाने से रात्रि में शरीर को दबवाया करते हैं या अपने आप मर्दन किया करते हैं। बहुत लोग तेल मलने के समय शरीर को अपने आप मलते या दूसरों से मलवाया करते हैं। कहीं कहीं जिस्म को मलने वाले नाई या दूसरे लोग जगह २ आवाज़ लगाते फिरते हैं। हमाम में गरम जल से स्नान करते समय शरीर मर्दन का काम बड़ी खूबी से होता है।

शरीर को मलने या दबाने से आलस्य दूर होता है या आनन्द आता है, केवल यही बात नहीं; बल्कि शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्गों को दबाना या मर्दन करना एक बड़ी अच्छी व्यायाम है। इसके द्वारा समस्त शरीर में रुधिर का उत्तम प्रकार से सञ्चार होता है और अनेक रोग दूर होते हैं।

यूरुप, अमेरिका, चीन, जापान आदि देशोंमें भी शरीर को दबानेकी प्रथा प्रचलित है। यूरुपदेशवासी तो इस शरीरमर्दन की प्रथा को एक प्रकार की चिकित्सा में गणना करतेहैं। फ्राँस देश में इस के सम्बध में अनेकों ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं और केवल इस शरीरमर्दन के लिए ही अनेकों औषधालय खुल चुके हैं। फ़रासी भाषा में इसको (Massage) कहते हैं। चीन देश में भी यह प्रथा प्रचलित है। वहाँ इसका "लुमिपुमि" कहतेहैं। जापान में भी इस रीति का यथेष्ट आदर है। जापान में लूले, लँगड़े और कोमल हाथों वाले मनुष्य प्रायः इसी के द्वारा अपनी आजीविका करते हैं। प्राचीन रोम (इटली) देश में भी शरीर के दबवाने की रीति प्रचलित थी।

तुर्क, पारस आदि देशोंमें हमामोंमें तुर्किस्तान की बड़ी अच्छी व्यवस्था देखी जातीहै, वहाँ पेशेवर लोगोंको कुछ पैसे देनेसे वे इतनी अच्छी तरह से शरीर को मर्दन करते हैं कि उससे केवल आराम ही नहीं मालूम होता, बल्कि उससे त्वचाके नीचे रक्त का संचालन होकर स्वास्थ्य को विशेष उन्नति होती है।

आयुर्वेदशास्त्रोंमें उद्वर्त्तन व शरीरमर्दनके गुण इस प्रकार लिखे हैं:—

"व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्तितस्य च।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं दृष्ट्वा यथा मृगाः॥"

अर्थात् सिंह को देखकर जैसे मृगों का समूह दूर भाग जाता है, उसी प्रकार नित्य व्यायाम करने वाले और पैरोंमें तेल मलने वाले मनुष्यों के समीप कोई व्याधि नहीं आती है। और भी कहा है:—

"उद्वर्त्तनं कफहरं मेदोघ्नं शुक्रदं परम्।
बल्यं शोणितकृच्चापि त्वक्प्रसादमृदुत्वकृत्॥"

अर्थात् शरीर में उद्वर्त्तन (उबटन) करने से कफ और मेद दूर होती है एवं बल, वीर्य्य और रुधिर की अत्यन्त वृद्धि होती है। त्वचा निर्मल और कोमलता युक्त होती है।

आयुर्वेद के इन उपदेशों से प्रतीत होता है कि बहुत प्राचीन काल से भारतवर्ष में यह उद्वर्त्तन की प्रथा प्रचलित है। आजकल पाश्चात्य देशवासी इस प्रणाली को वैज्ञानिक भित्ती के ऊपर स्थापित करके उसकी उन्नति करने की चेष्टा कररहे हैं।

हमारे देशके वृद्ध मनुष्य शोहारोग वाले व्यक्ति से सर्दैव शोहा को दबाने के लिए कहा करते हैं। वायु की पीड़ा में और ज्वर की तीव्र अवस्थामें हाथ पाँवों में घोर पीड़ा होने पर रोगी के हाथ पाँव और देह को दबाने से उस का बड़ा आराम मालूम होता है। घर के किसी आदमी के पीड़ा होनेपर परिवार का कोई न कोई व्यक्ति उस के हाथ पावों को दबाया करता है। यकृत् (जिगर) में पीड़ा होने पर यकृत् को धीरे२ दबाना एक अमोघ औषध है। चरक के मतसे व्यायाम के पश्चात् शरीर को दबवाना या मलवाना चाहिये। आयुर्वेदीय तेल की मालिश करने से अनेकों रोग आरोग्य होते हैं। प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में भी शरीरमर्द्दन की व्यवस्था देखी जाती है।

"संवाहनं मांसरक्तत्वक्प्रसादकरं परम्।
प्रीतिनिद्राकरं वृष्यं कफवातश्रमापहम्॥"

संवाहन अर्थात् हाथ, पैर और समस्त शरीर को मर्दन करने से त्वचा, मांस और रक्त में प्रसन्नता होती है। तथा चित्त में प्रस-

न्मता, मिन्नुत्र और वीर्य की उत्पत्ति होती है। एवं कफ, वात और थकावट दूर होती है।

इस देशके मनुष्यों में अनेक दुस्साध्य रोगों के होने पर इस प्रकार की चिकित्सा करने की प्रणाली बहुत दिनों से देखीजाती हैं। इस प्रणाली के द्वारा चिकित्सा करने से गठिया, पक्षाघात (फालिज) आदि रोग जो रस और रक्त का सञ्चालन न होने के कारण उत्पन्न होते हैं; वे एवं विविध प्रकार की स्नायुसम्बन्धी पीड़ायें सहज में ही आरोग्य होजाती हैं।

हमारे देश के शिक्षित मनुष्य आजकल इस प्रथा को कोई महत्त्व नहीं देते। किंतु जब विदेशीय लोग ऐसी बातों का आविष्कार करते हैं तब वे उनको आश्चर्य्य से चकित होकर आँखें फाड़ फाड़ कर देखाकरते हैं। इसके अतिरिक्त और बहुत सी प्रथायें हमारे देश में प्रचलित हैं, जो वैज्ञानिक भित्ती के ऊपर अवलम्बित हैं। हमारे देश में भी अनेकों सुशिक्षित और वैज्ञानिक चिकित्सक हैं; किन्तु वे इन प्रथाओं को मूर्खता और कुसंस्कार पूर्ण कहकर बातों में उड़ादेतेहैं। परन्तु हमारा विश्वास है कि वैज्ञानिक ढंगसे खोज करने से इन प्रथाओं के द्वारा अनेक उत्कृष्ट चिकित्साप्रणालियों की रचना कीजासकती है।*

कुछ हित की बातें।

(१) रोग शारीरिक अपराधों का दण्ड है। जिस प्रकार चोरी, बदमाशी, हत्या आदि अपराधों के लिये कैद, जुर्माना, प्राणदण्ड आदि की सजायें भुगतनी पड़ती हैं, उसी प्रकार शारीरिक अपराधों के द्वारा रोग, वेदना, दुःख, अकालमृत्यु, डाक्टर या वैद्य की फ़ीस, औषध का मूल्य आदि नाना प्रकार के दण्ड भोगने पड़ते हैं।

(२) रोगी को जो कष्ट होता है, वह उसके शारीरिक अपराधों का प्रायश्चित्त है। अतएव उसको अत्यन्त धैर्य्य के साथ सहन करना चाहिये और इस बात का विशेषरूपसे ध्यान रखना चाहिये कि भविष्य में ऐसी कोई भूल न होजाय, जिसका फिर वैसा कटु-फल भोगना पड़े।

---

* बंगला स्वास्थ्य समाचार से अनुवादित।

(३) रोग के उत्पन्न होतेही एकदम घबड़ाना नहीं चाहिये । रोगकी मूर्त्ति यदि अत्यन्त भयङ्कर हो तो भी कुछ धैर्य्य के साथ काम करना चाहिये । प्रथम रोग के उत्पन्न करनेवाले कारण को ढूँढना चाहिए, पश्चात् रोग को शमन करने का उपाय शोचना चाहिये ।

(४) रोग उत्पन्न होने पर एकदम घबड़ाकर जिस तिसकी औषध नहीं खानी चाहिये । प्रथम जहाँतक होसके बिना औषधके ही रोग को दूर करने का यत्न करना चाहिए । क्योंकि प्रकृति माता स्वयं ही रोग को दूर किया करती है । औषध से तो रोग दबाया जाया करता है । यही कारण है कि जो लोग अधिक औषध सेवन करते हैं, वे अधिक रोगी रहते हैं ।

(५) यदि प्रकृति की सहायता से (उपवासादि द्वारा) सहज में रोग दूर न हो तो किसी उत्तम वैद्य की सहायता लेनी चाहिये। किन्तु ज़रा ज़रा सी बात में डाक्टर या वैद्य को बुलाना अथवा स्वयं तीक्ष्ण और विषैली औषधियों की भरमार करना बुद्धिमत्ता का काम नहीं है ।

(६) कोई भी रोग क्यों न हो, इसदेशवासियों के लिए इसी देशकी उत्पन्न हुई औषध अनुकूल पड़सकती है । विदेशी औषधियाँ हमारे स्वभाव के विरुद्ध होने के कारण हमारा वास्तविक उपकार नहीं करसकतीं । इस लिये जब कभी औषध सेवन करने की आवश्यकता हो तो अपने देश की उत्पन्न औषध ही सेवन करनी चाहिये । डाक्टरी या कोई दूसरी विदेशी औषध कदापि सेवन नहीं करनी चाहिए ।

(७) स्वास्थ्य के ख़राब होनेपर या रोगके उत्पन्न होनेपर औषध सेवन की अपेक्षा पथ्य पर अधिक ध्यान देना चाहिए । क्योंकि बिना औषधके, एकमात्र पथ्य पर निर्भर रहने से ही सैकड़ों रोग दूर होजाते हैं । और बिना पथ्य के सैकड़ों अनुभूत औषधियाँ भी रोग को दूर नहीं करसकतीं ।

(८) शरीर की रक्षा के लिये मन को भी उन्नत बनाना चाहिए । मनमें बुरे विचार कभी उत्पन्न नहीं होने देने चाहियें ।

Regd. No. A. 591

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकसम्बन्धी, सर्वोपयोगी

मासिक-पत्र

सम्पादक—शङ्करलाल वैद्य

वर्ष ११ | मुरादाबाद । दिसम्बर, सन् १९२३ | संख्या १२

❀ विषय-सूची ❀

१—स्वच्छता ३२३
२—मस्तिष्क के जन्तु ३३५
३—सद्व्यवहार के नियम ३३८
४—विद्यार्थियों की आरोग्यता ३४५
५—वाजीकरण योग ३४९
६—ठण्डे पाँव ३५४
७—भोजन सम्बन्धी उपयोगी बातें ३५७
८—निरामिष आहार ३५८
९—प्राप्ति-स्वीकार ३६१
१०—विविध-विषय ३६२
११—समाचार ३६४

प्रकाशक—हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद ।

वार्षिक मूल्य ३।) [एक संख्या का मूल्य ≈)

Printed by—Nemi Chand Jain,
at the Sharma Machine Printing Press,
MORADABAD.

वैद्य का १२वाँ वर्ष।

ग्राहकों से प्रार्थना।

समस्त ग्राहक महानुभावों की सेवा में सूचित किया जाता है कि इस संख्या से वैद्य का ११ वाँ वर्ष पूरा होगया, साथही आपका दिया हुआ इस वर्ष का मूल्य भी पूरा होगया, अतः आगामि वर्ष का मूल्य वी० पी० द्वारा न भेजकर मनीआर्डर द्वारा भेजने की प्रार्थना कीजाती है। क्योंकि मनीआर्डर से मूल्य भेजने में आप और हमको दोनों को अधिक सुभीता होगा। एकतो वी० पी० द्वारा भेजने में दो आने रजिस्ट्री के अधिक लगते हैं। अर्थात् १॥) में वी० पी० छुड़ैया और पेशगी मनीआर्डर भेजने में १।=) आने ही लगेंगे। दूसरे वी० पी० द्वारा मूल्य प्रायः बहुत दिनों में प्राप्त होता है। यहाँ तक कि कभी २ तो डाकखाने की गड़बड़ी के कारण कई २ महीनों में मूल्य पहुंचता है, इसलिए पत्र के आरम्भ करने में बहुत विलम्ब होजाता है। किन्तु मनीआर्डर के पहुंचते ही तत्काल पत्र भेजना आरम्भ कर दिया जाता है और दो आने व्यर्थ भी खर्च नहीं करने पड़ते। अतएव आगामि वर्ष का मूल्य आप मनीआर्डर द्वाराही भेजने की कृपा करेंगे ऐसी आशा है। जो महाशय मनीआर्डर नहीं भेजेंगे उनके पास जनवरी १९२४ का प्रथम अङ्क १॥।) के वी० पी० से भेजा जायगा, आशा है कि आप उसे अवश्य स्वीकार करेंगे।

जिनको आगामि वर्ष वैद्य का ग्राहक रहना स्वीकार न हो वे कृपया एक कार्ड द्वारा अभी से सूचना देवें, जिससे हमें वी० पी० भेजने में व्यर्थ हानि न उठानी पड़े। इसमें आपका सिर्फ एक कार्ड ही खर्च होगा और हम =)। आने की हानि से बच जायगे। गत वर्ष पहले से सूचना देने पर भी इतने वी० पी० वापिस लौट आये कि जिससे हमें बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी। आशा है कि हमारे सहृदय ग्राहक हमारी इस अन्तिम प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे।

मैनेजर—वैद्य।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

वैद्य

मासिक-पत्र

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ११ | मुरादाबाद । दिसम्बर १९२३ ई० । | संख्या १२

स्वच्छता ।

यह स्वच्छता संसार में, अनुपम मनोरम रत्न है ।
इस हेतु इसका विश्व में, होता निरन्तर यत्न है ॥
है स्वच्छता सौन्दर्य की, प्रत्यक्ष उज्ज्वलकारिणी ।
है स्वच्छता मंचारिणी, शोभा प्रभासित धारिणी ॥ १ ॥
फिर स्वच्छता-सम्पन्न रहना, मानवों का धर्म्म है ।
है प्राकृतिक गुण स्वच्छता, सब जन्तुओंका कर्म्म है ॥
निज ज्ञान के अनुसार ही, सब स्वच्छता हैं कररहे ।
जो स्वच्छता से दूर हैं, वे रोग-कवलित हर रहे ॥ २ ॥
निजदेह अङ्गोपाङ्ग की, है स्वच्छता सब से बड़ी ।
उसमें कभी भी भूल हो, हैं विघ्नबाधाएँ खड़ी ॥
जो स्वच्छ रहता है नहीं, रोगी मलिन मन दीन है ।
दारिद्र्य का वह दास है, ऐश्वर्य सुख से हीन है ॥ ३ ॥

अनुदिन नहाना स्वच्छता की, एक भारी मूल है।
आलस्य उसमें हो जहाँ, यह एक भारी भूल है॥
रोमकूपों का सकल मल, है निकल जाता अभी।
रक्त का सञ्चार होता, शीघ्रता से है तभी॥ ४॥
मन्दाग्नि भी तीव्राग्नि होती, चित्त पाता शान्ति है।
बढ़ती मनोहर देह की, कैसी निराली कान्ति है॥
शीतल हृदय मन मग्न होता, स्नान के ही योग से।
आभा द्विगुण होती प्रकट, श्रीखण्ड के संयोग से॥ ५॥
स्वस्थान, भाजन, भोज्य की भी, स्वच्छता रखते रहो।
ऋतुकाल चर्य्या का नियम, व्यवहार रस चखते रहो॥
हैं शास्त्रदर्पण देखलो, जो स्वच्छता सिखला रहे।
जितना चहो जो जो चहो, प्रत्यक्ष हैं दिखला रहे॥६॥
फिर वस्त्र की भी स्वच्छता का, ध्यान होना चाहिये।
वह सूक्ष्म अथवा स्थूल हो, जो कुछ मिले जिसके लिये॥
जो देह की रक्षा करे, अनुकूल ऋतु के हो बना।
वह वस्त्र चीनाम्बर सदृश, आनन्द देता है घना॥ ७॥
आचार की व्यवहार की, फिर स्वच्छता सन्धार्य्य है।
औदार्य आर्जव युक्त हो, करना प्रशंसित कार्य्य है॥
सहस्त्र मण्डन से विभूषित, जो कि शील विहीन है।
वह भूप-वंशज-रत्न हो, पर दीन से भी दीन है॥ ८॥
फिर चित्त की भी स्वच्छता, अन्तः करण की स्वच्छता।
वाणी विभव की स्वच्छता, निज कर्म दल की स्वच्छता॥
हो स्वच्छ जीवन विश्वमें, आदर्श औरों के लिये।
दृष्टान्त शुद्धाचार हो, संसार में जब तक जिये॥ ९॥
माया मलिनता दूर हो, मन स्वच्छ होवेगा अभी।
प्रतिबिम्ब विश्वव्याप्त है, परमेश का पड़ता तभी॥
जगदीश-पद-पंकज भजन से, चित्त होता शुद्ध है।
यह मोह निद्रा छोड़ कर, होता सचेत प्रबुद्ध है॥ १०॥

"कविकुमार" महेश्वरप्रसाद शास्त्री,
साहित्याचार्य्य।

—o—

मस्तिष्क के ज्ञानतन्तु।

किसी भी कार्य को सुचारु रूप से करने के लिये एक चतुर सञ्चालक की आवश्यकता होती है। सञ्चालक जिस प्रकार की आज्ञा देता है उसके अनुचरवर्ग उसी प्रकारका कार्य करते हैं। हम जानते हैं कि हमारा मस्तिष्क ही हमारे सम्पूर्ण शरीर का कर्त्ता है। मस्तिष्क के द्वारा ही हमारे सम्पूर्ण अङ्ग प्रत्यङ्ग नियमित रूप से परिचालित होते हैं। शरीर के भीतर सफेद सूत की समान एक प्रकार का कोमल पदार्थ होता है, उसको स्नायु कहते हैं। शरीर के सभी स्थानों में ये स्नायु न्यूनाधिक संख्या में पुरे हुये हैं। जिस प्रकार बिजली के तार द्वारा यत्र तत्र खबरें भेजी जाती हैं, उसी प्रकार स्नायुओं के द्वारा मस्तिष्क शरीर के भिन्न २ अंशों से खबर पाता है और फिर उनको यथोचित आज्ञा प्रदान करता है। वेणी भाग के स्नायु मेरुस्नायुस्तम्भ के साथ मिले हुए हैं और मेरुस्नायुस्तम्भ मस्तिष्क के निम्न भाग के साथ संयुक्त है। और कितने ही स्नायु मस्तिष्क के साथ साक्षात्रूप से मिले हुए हैं। इनका कार्य अत्यावश्यक और गुरुतर है। इस प्रकार परिचालक के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसे स्वामी को न जान कर भृत्यगण कोई भी कार्य नहीं करसकते, उसी प्रकार मस्तिष्क को न जानकर हम किसी पर आघात नहीं करसकते। जिस स्थान में हम आघात करते हैं, उस स्थान के स्नायु तत्काल मस्तिष्क को संवाद देदेते हैं। मस्तिष्क ही सुख, दुःख के जानने की शक्ति है। यदि स्नायु उसको शरीर के भिन्न २ अंशोंमें से संवाद न दें तो वह किस प्रकार जानसकता है? स्नायुओं के अभाव में हमारे शरीर में सुख में आनन्द और दुःख में कष्ट को अनुभव करने की क्षमता नहीं रहती। अतः मस्तिष्क को आवश्यकीय संवाद पहुँचाने के लिये सम्पूर्ण अङ्ग प्रत्यङ्गों में स्नायुजाल विस्तृतरूप से फैला हुआ है।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि यदि स्नायुओं के द्वारा मस्तिष्क कष्ट का अनुभव करता है तो स्नायुओं के न होने पर उस को कष्टका अनुभव होता है या नहीं? उत्तर नहीं। हमारी त्वचामें यदि स्नायु न हो तो किसी के आघात करने अथवा किसी के जलाने पर हमउस

को जान नहीं सकेंगे, किंतु कुछ विचार करने पर हम समझ सकते हैं कि यदि शरीर के किसी भी कष्ट को हम तत्काल न जानसकेंगे तो वह निःसंदेह हमको भविष्य में अधिक कष्टप्रद होगा। मानलीजिए कि मैं यदि अपनी अङ्गुली को जलती हुई अग्नि पर रखदूं तो क्या होगा? यही होगा कि तत्काल मेरी अङ्गुली के स्नायु मस्तिष्क को संवाद पहुँचायेंगे। मस्तिष्क कष्ट से व्याकुल होकर तत्क्षण स्नायुओं के द्वारा हाथ की मांसपेशियों से कहेगा कि शीघ्र अँगुली को उठाओ, नहीं तो जलजायगी। मस्तिष्क की आज्ञा के अनुसार मांसपेशियों के संकुचित होने से तत्काल अंगुली जलने से बच जायगी। अंगुली जलने की अपेक्षा कुछ कष्ट भोगकर उस की रक्षा करना हमारे लिए क्या विशेष आवश्यकीय नहीं है?

अब यहाँ यह देखना चाहिये कि शरीरके किस अंशमें क्या होता है। मस्तिष्क में जब संवाद पहुँचता है तब उसी क्षण मस्तिष्क यह विचार करता है कि अब क्या करना चाहिये। स्नायु के द्वारा अङ्गविशेष को आज्ञा देता है। जो स्नायु मस्तिष्क को संवाद पहुँचाते हैं, उनको आनुभूनिक स्नायु (Nerves of Sensation) कहते हैं। शरीर के अंशविशेष में जो स्नायु मस्तिष्क की आज्ञा पालन करते हैं, उनको कार्यकारक स्नायु (Nerves of Motion) कहते हैं एक ही स्नायुजाल के भीतर ये दो प्रकार के सूक्ष्म स्नायु मिलेहुये हैं। उन में से कुछ स्नायु मस्तिष्क को संवाद पहुँचाते हैं और कुछ मस्तिष्क की आज्ञा पालन करते हैं।

मस्तिष्क जब किसी संवाद को पाता है तब उसी समय हुक्म जारी कर देता है, यह बात नहीं; बल्कि उस संवाद को विचार कर देखने की क्षमता भी रखता है। अच्छा या बुरा विचार करके जैसी आवश्यकता समझता है वैसी उसे आज्ञा देताहै। इस बातको हम एक उदाहरण देकर समझाते हैं। जैसे देवदत्त मार्गके एक ओर जारहा है। उसने देखा कि उसी मार्ग के दूसरी ओर उसका भाई कृष्णदत्त जारहा है। उसी क्षण उस के नेत्रों के स्नायुओंने मस्तिष्क को संवाद दिया कि कृष्ण रास्ते के दूसरी ओर से आरहा है; किन्तु हमने उस को नहीं देखा। मस्तिष्क इस संवाद को पाकर विचारने लगता है। कृष्ण से कोई बात कहने पर जब उसको स्मरण होगा तब तत्काल

वह स्नायुओं के द्वारा दोनों पैरों को कृष्ण के पास जाने के लिये आज्ञा देगा अथवा कृष्ण को बुलाने के लिये अपने वक्षस्थल, कण्ठ और मुख की मांसपेशियों को आज्ञा देगा। मस्तिष्क और भी एक प्रकार का विचार करता है। मन में आता है कि-आज रहने दो, कल कृष्णदत्त के साथ बातचीत करलेंगे, इसलिए मस्तिष्क अपने भृत्योंको किसी प्रकार की आज्ञा नहींभी देता,इसकारण देवदत्त पूर्ववत् चला जाता है।' इससे यह सिद्ध होता है कि मस्तिष्क अपने विचार के अनुसार कोई काम करता है और कोई नहीं करता।

यदि मस्तिष्क बारम्बार एकही संवाद पावे और एक ही प्रकार की आज्ञा प्रदान करे तो आज्ञा देने के पहिले वह कुछ भी अच्छा या बुरा विचार नहीं करसकता। अन्त में यह होता है कि किसीप्रकार का विचार न करके वह निरन्तर आज्ञा देता रहता है। इसी को अभ्यास कहते हैं। इस प्रकार हमारे प्रतिदिन के कार्यों के बहुत से अभ्यास पड़जाते हैं। आहार, निद्रा, व्यायाम आदि सम्पूर्ण कार्यों को हम अभ्यास के अनुसार करते हैं। इसलिए जिससे अच्छा अभ्यास होजाय इसविषयमें हमको सदैव सावधान रहना चाहिये। मस्तिष्क के ज्ञानपूर्ण आदेश के अनुसार दैनिक काम करनेसे हमको जो सदभ्यास होजाता है वह हमारे स्वास्थ्य और मानसिक सुख का कारण बनजाता है। अभ्यास एक ऐसी वस्तु है कि खराब और हानिकर होने पर उसको दूर करना बहुत ही कठिन होजाता है।

कितने ही कार्य ऐसे हैं कि जिनमें मस्तिष्क को विचार करने की कुछ आवश्यकता नहीं होती। जैसे श्वास प्रश्वास प्रणाली और हृदयपिण्ड का कार्य हमारी निद्रावस्था में भी होता रहता है। ये मस्तिष्क के इच्छाधीन होकर कार्य नहीं करते। कितने ही कार्यों का भार मस्तिष्क ने मेरुस्नायुस्तम्भ [Spinalcord] के ऊपर रख दिया है। जैसे किसी निद्रित व्यक्ति के पैर में गुदगुदी कर दी जाय तो वह संवाद तत्काल मेरुस्नायु में पहुँचता है तब वह तत्काल पैर सकोड़ने की आज्ञा देता है। यदि स्नायु स्वस्थ और बलवान् न हों तो मस्तिष्क स्वस्थ और बलिष्ठ होने पर भी उत्तम प्रकार से कार्य नहीं कर सकता है। स्नायुओं को स्वस्थ रखने के लिए शुद्ध वायु और शारीरिक परिश्रम की विशेष आवश्यकता है। एवं पुष्टिकर खाद्यपदार्थों को परिमित रूप से खाना और मादक

पदार्थों का त्याग करना आवश्यक है। मादक द्रव्यों के सेवन अथवा धूम्रपान आदि निष्कारण उत्तेजना से स्नायु खराब और दुर्बल होजाते हैं। शरीर के अन्यान्य अंशों की समान स्नायुओं का भी उत्तम प्रकार से संचालन होना आवश्यक है और इसी प्रकार उनका विश्राम होगा।

—*—

सहवास के नियम।

हमारे अस्तित्व की रक्षा के लिए ईश्वर ने हमको जननेन्द्रिय और उसको यथाविधि संचालन करके उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की प्रवृत्ति प्रदान की है। उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के सिवा सहवास का और कोई उद्देश्य नहीं है। केवल इन्द्रिय सुखके लिए सहवास। करने की ईश्वरीय आज्ञा नहीं है। इन्द्रिय सेवन से उत्पन्न हुआ सुख अत्यन्त तुच्छ और क्षणस्थायी होता है। इस कारण इस प्रकार के क्षणस्थायी और सामान्य सुखके लिए अनियमित इन्द्रियसेवन के द्वारा शरीर का क्षय करना महान् अन्याय और ईश्वर की आज्ञा भङ्ग करना है। सहवास की इच्छा और तज्जनित सुख का जो अनुभव होता है, वह केवल सन्तान उत्पन्न करने का सहायक मात्र है। पशु, पक्षी और छुटे छोटे जीव, जन्तु आदि जितने भी संसार में प्राणी हैं, उन को देखने से यही मालूम होता है कि ईश्वर ने एकमात्र सन्तानोत्पत्ति के लिए ही कामेन्द्रिय और कामेच्छा प्रदान की है, केवल विषयसुख के लिए नहीं।

हाथी, घोड़ा, बैल, भैंसा, कुत्ता आदि प्राणियों की सहवास प्रणाली को देखनेसे स्पष्टरूप से समझा जासकता है कि स्त्रियों के जैसे ऋतुधर्म होता है, उसी प्रकार अन्यान्य स्त्रीजाति के प्राणियों को भी ऋतुधर्म अथवा किसी विशेष प्रकारका परिवर्त्तन होता है और उनके पुरुषजाति के साथ सहवास करने के लिए विशेष उत्सुकता होती है। इसप्रकार ऋतुकाल अथवा किसी विशेष समय के सिवा उनके और किसी समय भी सहवास करने की इच्छा प्रकट नहीं होती। यहाँ तक कि उक्त विशेषकाल के अतिरिक्त और किसी समय में यदि पुरुष जाति का प्राणी सहवास की इच्छा से स्त्रीजाति के निकट जाता है तो वह तत्काल उससे लड़ने को

तैयार होजाता है। इसीलिए उस दयालु परमात्मा ने अपनी सृष्टि की रक्षा के लिए मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े आदि समस्त संसारके प्राणियों के सहवास के सम्बन्धमें समय निर्दिष्ट करदिया है किन्तु मनुष्य जो सबसे उच्च श्रेणी का प्राणी है उसने इस अत्यन्त तुच्छ और शरीरनाशक क्षणिक सुखसे मुग्ध होकर अपने आपको पशु से भी नीच बना लिया है और फिर भी कुछ लज्जा और घृणा नहीं करता, यह कितने आश्चर्य और सन्ताप का विषय है। जो क्षुद्र जीवजन्तु पल भरमें जलकी तरंग की समान जीवनयात्रा को समाप्त करके अनन्तकाल के गर्भ में लीन होजाते हैं, वे भी सदैव नियमानुकूल चलते हैं; किन्तु १०० वर्ष की आयु प्राप्त करने वाला तथा अत्युन्नत मस्तिष्कवाला मनुष्य यदि निर्बुद्धि होकर क्षणिक और अतितुच्छ सुखकी खोज में सदैव लगा रहे तो उसका मनुष्य जन्म इतर प्राणियों के जन्मसे भी अधम समझना चाहिए। जो इन्द्रिय स्वर्गीय महान् उद्देश्य (उत्तम सन्तान की उत्पत्ति)की सिद्धि के लिए व्यवहृत होनी चाहिए, उसका दुर्व्यवहार करना कितना निन्द्यकर्म है। इस विषय पर विचार करने से मालूम होता है कि हमने ईश्वरद्रोही और महापापी बनकर अपने दोषों से ही उसकी इस स्वर्गतुल्य भूमि को नरक की समान बना दिया है।

अनियमित रूपसे इन्द्रिय-सेवन के द्वारा उत्पन्न हुआ महापाप आजकल विकट रूप धारण करके समस्त जगत् को ग्रसनेका प्रयत्न कररहा है। इस महापाप की अधिकता से ही आजकल मनुष्य समाज जीर्ण-शीर्ण, रोगी और असमय में ही वृद्धावस्था को प्राप्त होकर मृत्यु के मुखमें पतित होता जारहा है। हिन्दूजाति के वर्त्तमान अधःपतनका एकमात्र प्रधानकारण अमित और अवैध इन्द्रिय सेवन करना ही है।

यदि कोई मनुष्य अपनी सन्तानको वास्तविक सुखी, दीर्घजीवी, आरोग्य, बुद्धिमान् और धर्मवान् देखना चाहे तो उसको गर्भाधान संस्कारसे पूर्व पवित्र मन और पवित्र भावसे उपयुक्त समय(अर्थात् ऋतुस्रावके चार दिन बाद) में सहवास करना चाहिए। यदि पुत्रको

I " Sexual Congress in intended for the procreation of children," (see Dr. chavasse's Advice to a wife, P. 15.)

पवित्र, उन्नत भावापन्न बनाना हो तो सबसे पहले अपने आपको उन्नत बनालेना चाहिए, पश्चात् पुत्रोत्पादन करना चाहिए। आर्य्य महर्षियों का एकमात्र आदेशहै कि-शास्त्रोक्त विधिके अनुसार प्रथम ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करना चाहिए और फिर सन्तान उत्पन्न करनी चाहिए। विद्या, तपस्या; इन्द्रियसंयम आदि के द्वारा रेतः संयम करके प्रथम अपने में मनुष्यता प्राप्त करनी चाहिए, फिर दूसरे को मनुष्यत्व प्रदान करने का यत्न करनाचाहिए। वीर्य्यरक्षा ब्रह्मचर्य्य व्रत का एक प्रधान अङ्ग है। इस वीर्य्यरक्षा को ही आर्य्य महर्षियों ने जीवन का सबसे प्रधान कार्य्य बतलाया है। वर्त्तमान कालमें हमारा पुनरुत्थान और हिन्दूजाति की रक्षा उन आर्य्य महर्षियों के मार्ग का अवलम्बन करने से ही हासकती है, अन्यथा किसी प्रकार भी नहीं होसकती। आजकल के मनुष्य किस प्रकार उत्तम वृक्ष उत्पन्न होगा, किस तरह से घोड़ा अच्छा होगा और किस प्रकार से कुत्ता अच्छा होगा इत्यादि बाह्य पदार्थों की उन्नति का विचार किया करते हैं; किन्तु प्राचीन काल के महात्मा पुरुष पहले इस बात का विचार करतेथे कि किस प्रकारसे उत्तम सन्तान उत्पन्न होगी? और वे केवल विचार करके ही नहीं रहजाते थे; बल्कि वे सहवास सम्बन्धी सैकड़ों, हज़ारों प्रकार के कठिन नियमों का भी पालन करते थे।

सहवास के सम्बन्ध में आर्य्य महर्षिगण जिन २ नियमों की व्यवस्था करगये हैं और आजकल के बड़े बड़े पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता पण्डितों ने उन व्यवस्थाओं के विषय में जिन वैज्ञानिक तत्वों का आविष्कार किया है, हम उन्हीं को यहाँ संक्षिप्त रूपसे वर्णन करते हैं, आशा है कि वेद्य के पाठक महोदय इन समस्त तत्वों को विशेष ध्यान देकर पढ़ेंगे।

चरकसंहिता के शारीरस्थान के जातिसूत्रीय अध्याय में महर्षि आत्रेय कहते हैं:—

"स्त्रीपुरुषयोरव्यापन्नशुक्रशोणितयोनिगर्भाशययोः श्रेयसीं प्रजामिच्छतोस्तन्निवृत्तिकरं कर्म्मोपदेक्ष्यामः।"

अर्थात् जब स्त्री और पुरुष का शुक्र, शोणित(डिम्ब), योनि और गर्भाशय किसी प्रकार के दोषसे दूषित न होंतब उत्तम सन्तान

प्राप्त करने की इच्छा करने वाले उन स्त्री पुरुषों को जो कर्म करना चाहिए, उसी विषय के कुछ सदुपदेशों का नीचे वर्णन करते हैं।

"अथास्येतौ स्त्रीपुरुषौ स्नेहस्वेदाभ्यामुपपाद्य वमन विरेचनाभ्यां संशोध्य क्रमात्प्रकृतिमापादयेत्संशुद्धौ चास्थापनानुवासनाभ्यामुपाचरेदिति।"

अर्थात् प्रथम उन दोनों स्त्री पुरुषों के शरीर को स्नेहन और स्वेदन से मृदु बनाकर फिर क्रम से वमन और विरेचन के द्वारा संशोधन करके उनको उत्तम प्रकृतिवाला बनावे। इस प्रकार वामादिकों से शरीर के शुद्ध होजाने पर दोनों को मधुर द्रव्यों और घृत, दुग्धादिकोंके द्वारा आस्थापन और अनुवासन वस्ति देवे।

"ततः पुष्पात् प्रभृति त्रिरात्रमासीत् ब्रह्मचारिण्य-धःशायिनी पाणिभ्यामन्नमजर्जरपात्रे भुञ्जाना नच कांश्चिदेव मृजामापद्येत।"

अर्थात् इसके पश्चात् जिस दिन जिस समय स्त्री ऋतुमती हो उस दिन से लेकर तीन रात्रि पर्यन्त ब्रह्मचारिणी अर्थात् पति के सहवास से रहित रहे, हाथ का तकिया लगाकर भूमि में शयन करे और पुराने पीतल, लोहादि धातु के या मिट्टी के पात्र में हाथों से अन्न को लेकर भोजन करे। किसी को स्पर्श न करे। और इस समय में स्नान, शरीरमार्जन आदि किसी प्रकार का भी शुद्धाचार अथवा किसी का अहित नहीं करें।

प्राचीनकाल के समस्त ऋषि, मुनियों ने एक स्वर से ऋतुस्नान के समय (अर्थात् ऋतुकाल के तीन दिन तक) सहवास करने का विशेष रूप से निषेध किया है।

महर्षि आत्रेय कहते हैं--

"ततश्चतुर्थेऽहन्येनामुत्साद्य सशिरस्कां स्नापयित्वा शुक्लानि वासांस्याच्छादयेत्पुरुषञ्च।"

अर्थात् इसके पश्चात् चौथे दिन शरीर में उबटन और तेलादि की मालिश करके स्त्री का शिर से स्नान कराकर शुक्ल वस्त्र पहिरावे। इसी प्रकार पुरुष को भी स्नान कराकर शुक्ल वस्त्र धारण करावे।

" ततः शुक्लवाससौ च स्रग्विणौ सुमनसावन्योन्यमभिकामौ संवसेतामिति ब्रूयात् ।"

अर्थात् इसके अनंतर वैद्य उन श्वेत और शुद्ध वस्त्र धारण कियेहुए, सुगन्धित पुष्पमालादि से सुशोभित, शुद्ध मनवाले और परस्पर उत्तम सन्तान की कामना से सहवास करने की इच्छा वाले दोनों स्त्री-पुरुषों को सहवास करने का आदेश देवे ।

" स्नानात् प्रभृति युग्मेष्वहःसु संवसेतां पुत्रकामौ तौ चायुग्मेषु दुहितृकामौ ।"

अर्थात् पुत्र उत्पन्न होने की इच्छा हो तो वे दोनों स्नान करने के दिन से अर्थात् चौथे दिन से युग्म दिनों में (ऋतुकाल की १६ रात्रियों में से ४-६-८-१०-१२-१४ और १६ वीं रात्रि में) और कन्या उत्पन्न होने की इच्छा हो तो वे अयुग्म दिनों में (अर्थात् ५-७-९-११-१३ और १५ वीं रात्रि में) सहवास करें ।

" न च न्युब्जां पार्श्वगतां वा संसेवेत ।"

अर्थात् उल्टी या दाहिने, बाँयें करवट से शयन करती हुई स्त्री से सहवास नहीं करना चाहिए । स्त्री को चित्त लेट कर वीर्य्य ग्रहण करना चाहिए।

" पर्य्याप्ते चैनां शीतोदकेन परिषिञ्चेत् । "

अर्थात् गर्भ ग्रहण करने के एक प्रहर पश्चात् स्त्री को शीतल जल से अपने नेत्र, मुख और योनि आदि अङ्ग धोने चाहिएँ ।

" अत्रात्यशिता क्षुधिता पिपासिता भीता विमनाः शोकार्त्ता क्रुद्धा चान्यञ्च पुमांसमिच्छन्ती मैथुने चातिकामा वा नारी गर्भं न धत्ते, विगुणां वा प्रजां जनयति ।"

अर्थात् जिस स्त्री ने अत्यन्त भोजन किया हो या जो भूखी, प्यासी, भयभीत, मैथुन की इच्छा न करने वाली अथवा दूषित मन वाली, शोकान्वित, क्रुद्ध, अन्य पुरुष की इच्छा करने वाली अथवा अत्यंत कामातुरा हो,वह स्त्री गर्भको धारण नहीं करती । यदि कदाचित् ऐसी स्त्री के गर्भ स्थित हो भी जाय तो कुरूप और विगुण सन्तान उत्पन्न होती है ।

"अतिबालामतिवृद्धां दीर्घलोमिनीमन्येन वा विकारेणोपसृष्टां वर्जयेत् ।"

अर्थात् अत्यंत छोटी अवस्था की, अत्यंत वृद्धा और बड़े बड़े बालों वाली और अन्य किसी भयङ्कर रोगसे ग्रसित स्त्री से सहवास नहीं करना चाहिए।

" पुरुषेऽप्येत एव दोषाः। अतः सर्वदोषवर्जितौ स्त्रीपुरुषौ संसृज्येयाताम् "।

अर्थात् पुरुष के भी यदि ये समस्त दोष हों तो उसको भी स्त्री संसर्ग नहीं करना चाहिये। इसलिए सर्वप्रकार के दोषों से रहित स्त्री-पुरुषों को सहवास करना चाहिए।

" सञ्जातहर्षौ मैथुने ।"

अर्थात् स्त्री और पुरुष दोनों ही परस्पर हर्षसहित मैथुन की अभिलाषा करने पर हितकर पदार्थों का भोजन करके दोनों ही सुन्दर सुगन्धि से सुशोभित होकर उत्तम बिछौने वाली शय्या पर शयन करें। उस पर प्रथम पुरुष को दहिने पाँव से और फिर स्त्री को वाम पाँव से चढ़ना चाहिए। इसके पश्चात् उस शय्या पर बैठकर दोनों " ॐ अहिरसि आयुरसि " इत्यादि मंत्र को पढ़ कर सहवास करें।

" सा चेदेवमाशासीत ।"

अर्थात् स्त्री यदि इसप्रकार को इच्छा करे कि मेरे उन्नतिशील, श्वेतवर्णवाला, सिंहकी समान पराक्रमी, सदाचारी, तेजस्वी, पवित्र और सतोगुणी पुत्र उत्पन्न हो तो उसको ऋतुस्नान के पश्चात् शुद्ध होकर जौ के सत्तुओं का मन्थ बनाकर उसको मधु, घृत और एक वर्ण के बछड़े वाली गाय के दूध में मिलाकर चाँदी के अथवा काँसी के पात्र में करके प्रतिदिन प्रातःकाल सात दिन तक पान करना चाहिए और शालिचावलों का भात या यवान्न अथवा दही, मधु दूध और घृत इनको एकत्र मिलाकर सेवन करना चाहिए।

" तथा सायमवदातशरणशयनासनयानवसनभूषणवेषा च स्यात् । "

अर्थात् इसके अनन्तर स्त्री सायङ्काल में पवित्र और सुसज्जित गृह में उत्तम शय्या पर शयन करे, शुद्ध आसन आदि पर बैठे, पवित्र वस्त्र और उत्तम आभूषणों से अलंकृत होकर वेश-विन्यास करे।

"सायं प्रातश्च शश्वत् श्वेतं महान्तमृषभमाजानेयं हरिचन्दनाङ्कितं पश्येत्।"

अर्थात् वह स्त्री सायङ्काल और प्रातःकाल में नित्य श्वेतवर्ण वाले और बड़े भारी शरीर वाले बैलको तथा पीले चन्दन से चर्चित सफ़ेद घोड़े के दर्शन करे। उस स्त्री के मनको सान्त्वना देने वाले वचनों के द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिए। पुरुष को भी ऐसा ही आचरण करना चाहिए। एवं जिन पुरुष और स्त्रियों की सौम्य प्रकृति, सौम्य शरीर और सुन्दर उपचार और सदुद्योग हों उन के एवं इन्द्रियों को तृप्त करनेवाले अन्यान्य उत्तम पदार्थों के उसको दर्शन कराने चाहिएँ। उस स्त्री की सखी सहेलियों को चाहिए कि वे उस को प्रिय और हितकर पदार्थों के द्वारा सदैव प्रसन्न रक्खें।

"इत्यनेन विधिना सप्तरात्रं स्थित्वेति।"

अर्थात् इस प्रकार सात रात्रि व्यतीत हो जाने पर आठवें दिन स्त्री प्रातःकाल पति के साथ शिरसं स्नान करके नवीन और पवित्र वस्त्रों को धारण करे एवं सुन्दर पुष्पमाला और अलङ्कारों के द्वारा शरीर को सुशोभित करे।

इन सब क्रियाओं के पश्चात् महर्षियों ने स्त्री पुरुष को विविध प्रकार के धर्मानुष्ठान अर्थात् जप, तप, हवन, यज्ञादि करने का उपदेश दिया है। इसी प्रकार अन्य आर्य महर्षि भी स्त्री-पुरुष को सहवास करने से पहले ईश्वराराधना और परमात्मचिंतन करने का आदेश देगये हैं सहवास केपूर्व यदि शारीरिक और मानसिक अवस्था उत्तम हो और उस समय परमात्म-चिंतन किया जाय तो सम्पूर्ण विषयों में उत्कृष्ट और धार्मिक संतान उत्पन्न होगी, इस में कुछ भी सन्देह नहीं। आजकल के अनेक विज्ञानवेत्ता पाश्चात्य पण्डित भी आर्यमहर्षियों के उक्त उपदेशों का प्रत्यक्ष व परोक्षभाव से पूर्णतया अनुमोदन करते हैं।

—*—

विद्यार्थियों की आरोग्यता ।

(गतसंख्या से आगे ।)

अब बालकों की शारीरिक अवस्था पर कुछ विचार करते हैं । किसी भी पाठशाला में आकर बालकों की जाँच परताल करने से मालूम होगा कि अनेक बालकों के दाँत स्वच्छ नहीं हैं, अनेकों के दाँत पीले पड़रहे हैं, इस कारण उन के मुँह से दुर्गन्ध आती है, अनेक बालकों को खाँसी है, अनेक बालकों की नाक बहती है और बहुत से बालकों के कान बहते हैं, उन में से पीब निकलती है अथवा वे भली भाँति सुन नहीं सकते । बहुत से बालकों की आँखें बिगड़ी हुई हैं, जिस से उन्हें दिखाई नहीं देता । किसी किसीके गंड माला का रोग होगया है, किसी के खाज होगई है, किसी के शरीर पर चकत्ते पड़गये हैं, किसी किसी के शरीर ज्वर और तिल्ली के कारण दुर्बल होगये हैं । इस प्रकार के अनेक रोगों से मलिन बालक दिखाई देंगे । कितने ही बालकों के शरीर यथोचित भोजन के न मिलने से क्षीण होजाते है। इसके सिवा उनके शरीर तथा शरीर पर के कपड़े मैले कुचैले दिखाई देंगे । ये सब बातें निम्न लिखित वृत्तान्त से पाठकों को विशेषरूप से सहज ही अवगत होजायेंगी ।

कुछ दिन पूर्व बम्बई की पाठशालाओं की डाक्टरों के द्वारा जाँच कराई गईथी । उसकी विवरण-पत्रिका बंबई के हेल्थ आफिसर की बनाई हुई 'Sanitation in India' नामक पुस्तक में इस प्रकार प्रकाशित कराई गई है:—

बम्बई में प्रारम्भिक शिक्षा की पाठशालाओं की संख्या ४३९ है । इन में म्युनिसिपिल्टी की ओर ग्रांट मिलने वाली पाठशालाओं की संख्या २३९ है । उन में लगभग २५ हज़ार छात्र शिक्षा पाते हैं । शेष २०० पाठशालाओं को ग्रांट नहीं मिलती, जिनमें लगभग १३ हजार छात्र शिक्षा पाते हैं । कुल पाठशालाओं में से ४ पाठशालाओं के ३१३ लड़कों की हेडमास्टर की सहायता से डाक्टरीजाँच कराई गई । जाँच का फल इस प्रकार निकला:—

बिगड़े हुए अवयवों के नाम	बालकों की संख्या
आँखें ख़राब प्रति सैकड़ा	२१-४०
कान ,, ,,	१४-०५
दाँत ,, ,,	४३-७६
नाक और गला ,,	४१-५३
गर्दन और कहीं की गाँठोंवाले	६-७०
मस्तक और मैले शरीर वाले	३७-६६
मैले कपड़ों वाले	४७-६२

इसी प्रकार पारसी जाति के बालकों की जाँच बंबई के पास अंधेरी स्थान के मालकम नामक बगीचे में कीगई, जिसका विवरण इस प्रकार है:—

बालकों की संख्या १५०३ थी। उनकी जाँच करनेके लिए२७ पुरुष डाक्टर और ८ स्त्री डाक्टर थीं। उस परीक्षा का फल इस प्रकार है:—

शीतज्वर से पीड़ित बालकों की संख्या १६४ थी। आँखों की बीमारीवाले ३६१ बालक थे। ५० प्रतिशत बालक कान, गला और नाक की बीमारी वाले थे। दाँतों की बीमारी वाले ८६६ बालक थे। इन दोनों विवरणोंसे विज्ञ पाठकों के ध्यान में आजायगा कि बम्बई जैसे शहरों के बालकों का स्वास्थ्य कितना गिरा हुआ रहता है।

पाठशालागृह।

बालकों का स्वास्थ्य इस प्रकार नष्ट होने के अनेक कारणों में से सबसे पहिला और मुख्य कारण पाठशालाओं का स्थान आरोग्य शास्त्र के नियमों के अनुकूल न होना है। पाठशालागृह का विचार करने के लिए अन्य स्थानों की पाठशालाओं का विशेष ज्ञान न होने के कारण उदाहरणार्थ हम बम्बई की पाठशालाओं का ही विचार करते हैं। बंबई में म्युनिसिपिल्टी की तरफ से बनवाई हुई बहुत कम पाठशालायें हैं; और जो इनी गिनी हैं भी उन की दशा सर्वथा असन्तोषजनक है। बम्बई की पाठशालाएँ बहुधा किराये के स्थान में स्थापित कीगई हैं जो आरोग्यता के नियमों के बिलकुल प्रतिकूल हैं। उनके कमरे कुंद रहने के कारण उन में हवा और प्रकाश का आवागमन ठीक२ नहीं होसकता। क्योंकि उनकी रचना

किरायेदारों के रहने के लिये कीजाती है, इस लिये वे पाठशालाओं के योग्य नहीं होते। तंग जगहमें लड़के बिठलाये जातेहैं अतः एक के शरीर से दूसरे का शरीर भिड़ा रहने के कारण बालकों के बैठने में सदैव कष्ट बना रहता है। बालकों को उचित परिमाण में शुद्ध वायु नहीं मिलती ,और पूरी तौर से प्रकाश न मिलने के कारण बालकों की आँखों पर उसका भयंकर परिणाम होता है। जमीन भी ख़राब रहती है। पेशाब करनेके लिये अलग स्थान न होने के कारण बालक जहाँ तहाँ पाठशाला के पास की नालियों में पेशाब करते फिरते हैं इससे सर्वत्र दुर्गन्ध फैलती है और अनेक रोगोंके होने की सम्भावना बनी रहतीहै। इसके अतिरिक्त पाठशाला स्थान बीच बस्तीमें होतेहैं, इस कारण आने जाने वाली मोटरों और ट्रामगाड़ियों के शोर होने से बालकों को पढ़ने लिखने में बहुत कष्ट होता है और,उन गाड़ियों तथा मोटरों से उड़ीहुई विषैली धूल उन की नाक,।कान और मुँह में,भर जाती है। इस प्रकार बालकों के शारीरिक स्वास्थ्य पर,हरप्रकार से बुरा प्रभाव पड़ता है। इन्हीं बातों,से पाठक अन्य पाठशालाओं की दुःस्थिति का भी अनुमान कर सकते हैं।

पाठशालागृह किसप्रकार का होना चाहिये?

उपा शालागृह के आसपास खुली जगह होनी चाहिये। अर्थात् उस के पास,पुतलीघर, कारखाने, गन्दे जलाशय, गन्दी बस्ती और किसी प्रकार का भी शोर गुल होना ठीक नहीं है। प्रत्येक बालक के लिये १०० से १५० फुट चौरस स्थान,१०से १५ फुट ज़मीन और १२०० से १५०० घनफीट ताज़ी हवा प्रति घण्टे मिलने की व्यवस्था होनी चाहिये। इसी क्रम से पाठशाला के कमरे भी होने चाहिएँ। पाठशाला की खिड़कियाँ और दरवाजे इतने बड़े होने चाहिएँ कि जिन में से हवा और प्रकाश के आने में किसी प्रकार की रुकावट न हो। पाठशालाकी ज़मीन आसपास की ज़मीनसे४फीट ऊँचीहोनी चाहिये। पाठशाला में सूर्य्य का प्रकाश आने के लिये उचित प्रबन्ध करना चाहिये। अंधकार बिलकुल नहीं होना चाहिए। प्रकाश की कमी के कारणही बहुधा आँखों की बीमारियाँ होजाया करती हैं। पाठशाला के भीतर वायु का भली भांति सञ्चालन होने से किसी

प्रकार की बाधा उपस्थित न होगी। हवा का ठीक तौर पर आवागमन होनेसे, और थोड़े स्थानमें अधिक बालक बैठानेसे भी विशेष हानि नहीं होगी। साधारणतया ३० फीट लम्बी, २५ फीट चौड़ी, और १३ फीट ऊंची जगह में ३० बालक बैठानेसे कोई हानि नहीं। मल और मूत्र का त्याग करने के लिये स्थान तथा जलके लिये कूपादि पाठशाला के पास एक ओर होने चाहिएँ। वर्ष में दो बार पाठशाला की दीवालों को चूने से पुतवा देना चाहिए। दीवालों में यदि किसी प्रकार की रंगीन पुताई करानी हो तो उस का हरा अथवा पीला रंग होना चाहिए। जिस स्थान पर विशेष रूप से सूर्य्य का प्रकाश आता हो वहाँ हरा और जहाँ कम प्रकाश आता हो, वहाँ पीला रंग पोतना उचित है। पाठशाला की ज़मीन गोबर से न लिपवानी चाहिए; क्योंकि उससे रोग जन्तुओं के फैलने का सन्देह रहता है। बालकों का ज़मीन पर बैठाने की अपेक्षा बेंच पर बैठाना अच्छा है। बेंचों पर बैठने से उनके शरीर में ज़मीन का मैल अथवा सीलादि नहीं लगेगा। कहीं कहीं बालक खाली ज़मीन पर ही बिठलाये जाते हैं, यह अच्छी बात नहीं है। पाठशाला की इमारतमें धूल न जमने देनेके लिए उसका भाग ऊँचा नीचा अथवा उसमें कोने आदि न होने चाहिएँ। पाठशाला का जीना कम से कम ५ फीट चौड़ा हो, और उसके नीचे एक बड़े दरवाज़े की खिड़की हो। उस के दरवाज़े बाहर से खुलने वाले हों। जीने के नीचे सामान न रक्खा जावे। मेज़ पन्द्रह से लेकर २० इंच चौड़ी हो। लिखनेके लिए मेज़ का उतार १५, २० अंश का और पढ़ने के लिए ४० अंश का होना चाहिए। मेज़ के पावों की ऊँचाई घुटनों तक हो। बैठक की चौड़ाई आठ इंच से कम न हो। बैठक और टेबिल के बीच का अन्तर विद्यार्थियों की ऊँचाईसे एक बटा छः हो। अतएव ऐसी व्यवस्था करनी चाहिएकि बैठक ऊँची नीची होसके। बेंचका पृष्ठभाग एकसा हो। उसमें तीन इंच चौड़ी गद्दी लगवानी चाहिए जिससे कमरको आराम मिले। प्रत्येक विद्यार्थी के बैठने के लिए २० इंच से २४ इंच तक जगह होनी चाहिए। इस प्रकार व्यवस्था करनेसे लिखने पढ़ने में सुभीता होगा और विद्यार्थियों को बैठना भारी नहीं जान पड़ेगा। इस प्रकार बैठनेसे एक लाभ यहभी होगा कि उनकी छाती और कन्धे चुस्त रहेंगे और पीठ झुक न सकेगी। (अपूर्ण)

वाजीकरण योग।

(अगस्त २३ से आगे)

एक सेर कौंच के बीजों को लेकर प्रथम उनको कूट पीस कर उनके छिलके अलग कर लेवे। फिर उस चूर्ण को २ सेर दूध में पकावे। जब पकते २ आधा दूध रह जाय, तब उसी दूध में उसे बारीक करके पीस लेवे। बाद को उसमें एक २ छटांक तीखुर और वंशलोचनका चूर्ण डालकर उसकी गुलाबजामुन की समान गोलियां बनाकर घी में पकावे और शहदमें डुबोदेवे। फिर तीन दिनके बाद उसे खाना आरम्भ करे और ऊपरसे दूध पिये। यह बड़ा ही उत्तम वाजीकरण योग है।

हलुवा—आमले १ तोला, चीनियां गोंद १ तोला, गेहूँ का सत १ तोला, चीनी ३ तोले और घी ४ तोले लेकर पहले गेहूँ के सत को घी में भून लेवे, फिर उसमें गोंद और आमलों का चूर्ण मिलाकर और चीनीका शर्बत डालकर विधिपूर्वक हलुवा बनालेवे। इसको दो२ तोले परिमाण सेवन करना चाहिए।

गोली—अकरकरा १ तोला, बनतुलसी के बीज ३ तोले और मिश्री ४ तोले इन सब को एकत्र चूर्ण करके जल के योग से दो २ तोले की गोली बना कर प्रतिदिन एक गोली सेवन करे।

बरगद के फलों के चूर्ण को समानभाग मिश्री मिलाकर प्रतिदिन एक २ तोला परिमाण खाने से वीर्य अत्यन्त पुष्ट होता है।

स्तम्भन वटी—पोस्त के दाने, भुनी हुई इस्पंद, शुद्ध सिंगरफ़, गोखुरू और जला हुआ कुचला—इन सब को बराबर भाग लेकर प्रथम पोस्त के दानों को पानी में भिजादेवे और सब औषधियों को एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करलेवे। फिर उस चूर्ण को पोस्त के भिजोये हुए पानी के साथ पीसकर दो मटर की बराबर गोलियां बनालेवे। गर्भाधान क्रिया के ४ घंटे पहले इनमें से १ गोली खाकर ऊपर से डेढ़पाव दूध पिये तो अत्यन्त स्तम्भन होता है। यह बड़ी ही उत्तम वाजीकरण औषध है। यदि विषयभोग से अलग रहकर

इन गोलियों को नित्य ४० दिन तक सेवन कियाजाय तो क्या ही कहना है।

सिंघाड़े का हलुवा–सिंघाड़े का चूर्ण, शुद्ध चीनी और घी इन तीनों को समानभाग लेकर एकत्र मिलाकर के हलुवा बनाकर खाने से वीर्य पुष्ट होता और बढ़ता है।

अमीरी हलुवा–चिलगोजों की गिरी, बादामों की गिरी और मुनक्का इन तीनों को बराबर भाग लेकर एकत्र पीस कर घी और मिश्री के साथ उत्तम प्रकार से हलुआ बनाकर सेवन करे। यह बहुत ही वाजीकरण प्रयोग है।

अथवा असगन्ध एक छटाँक, विधारा एक छटाँक और मिश्री आधपाव इन सबका एकत्र बारीक चूर्ण करके उसको दूधके साथ एक २ तोला परिमाण खावे।

बिनौलों की गिरी के चूर्ण को २ तोला लेकर आधसेर दूध में पकाकर मिश्री के साथ खाय।

सफ़ेद घुँघुचीको पीसकर उसके छिलके अलग करे,बाद में इस की दाल को चौगुने दूध में औटावे,चौथाई रहने पर उसको निकाल कर धोडाले और सुखा कर चूर्ण बनाले। बाद मिश्री पड़े हुए दूध के साथ खाय। खुराक ३ रत्ती।

धोई उड़द की दाल के चूर्ण का हलुवा खाने से मनुष्य सैकड़ों स्त्रियों के साथ रमण करने में समर्थ होता है।

२ तोले शतावर को कूटकर १६ तोले दूध और ६४ तोले पानी में डालकर धीरे २ पकावे। जब दूधमात्र बचजाय तब उतार कर छानले, इस दूध में मिश्री डालकर पिये यह बड़ा ही वाजी करण होता है।

पुराने सेमल के वृक्षकी जड़ का रस मिश्री डालकर ७दिन पीने से वीर्य खूब बढता है। खुराक १तोलासे २ तोलेतक। मिश्री ६ माशे। सूखे आँवलों के चूर्ण को हरे आँवलों के रस में २१ या ७बार भिगो भिगोकर सुखावे। बाद को बराबर भाग मिश्री डालकर खाय और ऊपर से दूध पिये। खुराक ६ माशा। यह बड़ा ही उत्तम वाजीकरण

है। इससे पाण्डु रोग, जीर्णज्वर, प्रमेह, रक्तपित्त, श्वास, राजयक्ष्मा आदि रोग दूर हो जाते हैं।

कौंच के बीज और तालमखाने के बीज दोनों को बराबर लेकर चूर्ण करले और बराबर भाग मिश्री मिलाकर दूध के साथ खाय। खुराक १ तोला से २ तोला तक।

सेमल की मुसली और सफ़ेद मुसली इन दोनों का चूर्ण करके मिश्री मिलाकर खाय। खु० १ से २ तोला तक। अनुपान दूध। इस प्रयोग से रति की बड़ी ही शक्ति होती है।

विदारीकंद के चूर्ण को पाताल कोहड़ा के अथवा गूलर की अन्तर छाल के रस*से ७ बार भिगोवे और छायामें सुखावे। बाद चूर्ण कर घी और मिश्रीके साथ खाय। खु० १ तोला। अनुपान दूध। गोखुरू तालमखाने के बीज, उर्द की दाल, कौंच के बीज, शतावर, इन सब का चूर्ण कर मिश्री मिलाकर खाय। खु० २तोला। अनुपान दूध। उर्द का चूर्ण घी में भून लेना चाहिए।

पीपल के वृक्ष का फल, जड़, छाल, कोंपल, इन सब को सवा २ तोला लेकर और कूटकर आध सेर दूध और २ सेर पानीमें पकावे। जब केवल दूधमात्र बचजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस दूध में मिश्री डालकर पिये। यह बहुत ही उत्तम वाजीकरण है।

सफ़ेद मदहपूर्ना की जड़ का चूर्ण कर सेमल की जड़ के रसमें ७बार भिगोर कर सुखाता जाय, बाद का बराबरभाग सेमलकी मुसली का चूर्ण और मोच रस का चूर्ण मिलावे। फिर सब के बराबर शुद्ध गन्धक + का चूर्ण और मिश्री मिलाकर खाय। खुराक ४ तोले। अनुपान दूध।

---

* यह रस नामका तो १छटांक द्रव्यका आधपाव पानीमें डालकर रात दिन भिगो रक्खे, बाद छानकर काम में लावे इसी नियम से अधिक रस तैयार होसकता है।

+ लोहे की बड़ी कलछी को आगपर रखकर उसमें गन्धक और उस की बराबर घी डाल दे। जब गन्धक पिघलजाय तब उठाकर गाय के दूध में डाल दे। थोड़ी देर के बाद निकाल ले। दूध जिस बर्तन में रक्खे उस के मुँह पर एक महीन कपड़ा बाँध दे। ऐसा करनेसे गन्धक तो छनकर दूध में गिर जाती है और उसका कूड़ा

गोखुरू, तालमखाने के बीज, असगन्ध, शतावर, मुसली, कौंच के बीज, मुलैठी, बरियारी, इन सबका चूर्ण कर अठगुने दूध में पकाकर खोवा बना लेवे, बाद चूर्ण के बराबर घी में सबको भून ले और सब से दूनी चीनी मिलाकर लड्डू बनाले। खु० १ से २ तोला तक। अनुपान दूध।

खरबूजे के बीज, देशी सफ़ेद मुसली, पेठे का गूदा, घीग्वार का गूदा ये सब आध २ पाव, शीतलचीनी ६ मासा, इन में शीतल चीनी और मुसली को कूटकर कपड़े में छान ले। खरबूजे के बीजों को सिल पर महीन पीसले, पेठे और घीग्वार के गूदे को भून ले। बाद १ पाव भूना खोवा डालकर आध सेर चीनी की चाशनी में बरफी जमाले। खुराक १ तोला। यह दवा पित्तप्रकृति वालों के लिए अधिक लाभकारक है। इसे गरमी के दिनों में भी खा सकते हैं। यह पाक बड़ा उम्दा है। इस से वीर्य खूब पुष्ट होता है।

एक पाव पीपलको २ सेर गायके दूध में औटावे जब आधसेर दूध बाकी रहे तब पीपल को निकाल कर सुखाले और चूर्ण करले और उस दूधका खोवा बनाले बाद को खोवा और पीपल का चूर्ण घी में भून ले, फिर २ सेर चीनी की चाशनी में बरफी जमाले। खु० २ तोला तक। अनुपानदूध।

मोचरस, सालममिश्री, समुद्रशोष, सफ़ेद और स्याह मुसली, बादाम की गिरी, छै २ माशा, शतावर १० तोला, सोंठ कुलिंजन छै २ माशे, किशमिश आधसेर इन सबका चूर्ण बनाले। बादाम की गिरी और किशमिश को खूब पीसले, सबमें आधसेर खोवा घी में भूनकर मिलादे और १ सेर शक्कर की चाशनी में सब को मिलाकर बरफी जमाले और ऊपर चांदी का वर्क लगा दे। खुराक २ तोले तक। अनुपान गायका दूध।

मालकांगनी के बीजों का चूर्ण कर १ रातदिन भाँगरे के रसमें भिगोदे। बाद दुगुने दूधमें औटावे, जब दूध का खोवा होजाय तब

कपड़े के ऊपर ही रह जाता है। दूध गन्धक से अठगुना होना चाहिए। इस प्रकार गन्धक शुद्ध हो जाता है। यदि ३ बार इस तरह शुद्ध करे तो और अच्छा है।

घीमें भूनकर बराबर शक्कर की चाशनी में बरफी जमाले। खु० १ तोला। अनुपान दूध।

सेमलकी मुसली का चूर्ण बराबर भाग शक्कर मिलाकर खाय। अनुपान दूध।

गोखुरू २ तोला, सिंघाड़ा, साठी के चावल, कमलगट्टे के बीज एक २ तोला। तालमखाने के बीज १ तोला, मोचरस, समुद्रसोख, बीजबन्द और रूमीमस्तगी आठ२माशे। सम्पूर्ण औषधियों का चूर्ण बनाकर बराबर मिश्री मिलावे। खु० १ तोला। अनुपान दूध।

आम्रपाक–पके आमोंका रस ४ सेर, मिश्री १ सेर, घी १ पाव, सोंठकी बुकनी आधपाव, मिरच १ छटांक, पीपल २॥ तोला, पानी १ सेर, इन सब को इकट्ठा कर मिट्टी की नांद में पकावे, और आम कीलकड़ीसे चलाताजाय, जबरस गाढ़ा होजाय तब उतारकर, धनियाँ जीरा, चीता तेजपात, मोथा, दालचीनी, स्याहजीरा, पीपलामूल, नागकेशर, छोटी इलायची, लौंग, जावित्री, इन सबका चूर्णकर मिलादेवे, धनियाँ वगैरह एक २ तोला हों, बिल्कुल ठंडा होनेपर आधपाव शहद मिलावे। इसकी मात्रा१तोलेसे४तोले तकहै। इसे भोजन के पहले खाना चाहिए। यह वाजीकरण तो है ही, किन्तु इसके सेवन से संग्रहणी, तपेदिक, दमा, अरुचि, अम्लपित्त, कुष्ठ, पाण्डुरोग आदि भी दूर होते हैं।

शतावरी घृत–सवासेर शतावर को कुटकर १० सेर गायके दूध और ४० सेर पानी में डालकर पकावे। १ शतावर, २ गुलशकरी, ३ विदारीकंद, ४ गोखुरू, ५ आँवला, इनमें से एक एक का अथवा, सब का चूर्ण कर मिश्री और शहद के साथ चाटे और ऊपर से थोड़ा दूध पिये। यह परम वाजीकरण है।

मुसली १ भाग, तालमखाने के बीज २ भाग, गोखुरू ३ भाग, इनका चूर्णकर उसको १ पाव दूधमें ६ माशे अथवा१तोला डालकर पकावे, जब दूध अधऔटा होजाय तब थोड़ीसी शक्कर डालकरखाय।

रतिवृद्धिकर मोदक–गोखुरू, तालमखाने के बीज, असगंध, शतावर, सफ़ेद मुसली, कौंच के बीज, मुलैठी, गुलशकरी, वरि-

वाड़ो, इन्हें बराबर लेकर चूर्णकर अठगुने माप के दूधमें पकावे। जब खोवा होजाय तब सिर्फ़ ओषधियों के बराबर घी में खोवा और सब ओषधियां भूनकर सबको बराबर भाग चीनी की चाशनी में डालकर लड्डू बनाले। यह बड़ा ही उत्तम वाजीकरण है।

जब सब पानी जल जाय केवल दूध ही बच जाय तब छानकर उसदूधको १सेर गायके घी में डालकर पकावे। घी मात्र बचने पर उतारकर छानले और घी में आधसेर शक्कर ऽ॥ पीपर की बुकनी और १ पाव शहद डालकर रखदे। खुराक २ तोला तक। यह बड़ा ही अच्छा प्रयोग है और बुद्धिवर्धक भी है।

१ पाव असगन्धको पानीमें पीसकर चारसेर बकरी के दूध और १ सेर घी के साथ कड़ाही में डालकर पकावे। दूध जल जाने पर उतारकर छानले और मिश्री मिलाकर रखदे। खुराक २ तोला तक।

इसके अतिरिक्त चन्दनादि तैल, महासुगन्धित तैल, पञ्चबाण रस, अमृत भल्लातक, केशरपाक, रतिवल्लभ सुपारी पाक, कामाग्निसन्दीपन मोदक, चन्द्रोदय, पुष्पधन्व रस, मदन कामदेव रस, महाराज वटी, पूर्णेन्दुरस, कामेश्वर रस, वङ्गेश्वर, रसभस्म, वसन्तकुसुमाकर, चन्द्रप्रभा वटी, मदनानन्दमोदक, कामेश्वर मोदक, और रतिवल्लभ आदि अनेक औषध परम वाजीकरण हैं। इनके बनानेकी विधि मैंने नहीं लिखी; क्योंकि एक तो इनका बनाना सुलभ नहीं और दूसरे इन में अनेकरस पड़ते हैं। किसी चतुर वैद्य द्वाराही बनवाने से ये सब ठीक होसकतेहैं। सर्वसाधारण इसे नहीं बना सकते। यह लेखमाला सर्वसाधारण को आयुर्वेद के विषयों से परिचित किये जाने के उद्देश्य से लिखी जारही है।

हरिनारायण शर्मा वैद्य।

ठण्डे पाँव।

लेखक—पण्डित शिवदत्तजी शर्मा

डाक्टर पामर जी एम० डी० का कथन है कि ठंडे पाँव, अशक्तता और अनुचित रक्तसंचार का परस्पर घना सम्बन्ध है

और ये सब मिथ्या आहार से उत्पन्न होते हैं। हृदय की मन्दगति यह सूचना देती है कि अग्नि बहुत मन्द होचुकी है। ठंडे पाँव यह बतलाते हैं कि रक्तसंचालन बहुत मन्दगति से होरहा है। बिगड़ा हुआ यकृत् यह बतलाता है कि प्राणों की शक्ति क्षीण हो रही है। तीव्र रक्तसंचालन से ही आरोग्यता, बल और शक्ति की वृद्धि होती है। मन्द भोजन से रक्त की गति मन्द पड़जाती है।

चन्द रोज के लिये यदि भोजन की कोताही हो तो ऐसा कोई नुक़सान नहीं होता, परन्तु निरन्तर लगातार यदि वैसा ही भोजन का प्रचार रहे तो रोगों की जड़ जमे बिना नहीं रहती।

आरोग्य मनुष्य की उष्णता का माप ९८ डिग्री होना चाहिये यदि नियमानुसार भोजन करता रहे तो यह उष्णता स्वाभाविक बनी रहती है।

पाँवों में उष्णता की कमी से सारे स्नायुसमूह को हानि पहुँचती है। इसी से शिर दर्द और मन्दाग्नि उत्पन्न होजाती है।

इसलिये हमेशा पाँव गरम रक्खो, नहीं तो तुम्हारे स्वास्थ्यमें बिना गड़बड़ हुए नहीं रहेगी। ठंडे पाँव रहना यह अस्वाभाविक बात है जो तुम अपने पाँवों को ठंडे देखो तो समझलो कि कोई भीषणरोग आक्रमण करने वाला है।

मूत्राशय की, यकृत् की बीमारी, कब्ज़ ये सब रोग ठंडे पाँव रहने से ही उत्पन्न होते हैं।

जब शरीर युक्त भोजन से सन्तुष्ट रहता है तो उसमें सर्दी प्रवेश नहीं कर पाती। मुझे ऐसा एक भी केस याद नहीं आता जिसका भोजन उत्तम हो और फिर भी उसे कब्ज़ या ठंडे पाँव रहने की शिकायत हो। कब्ज़ भी मिथ्या आहार से ही होता है, सारांश यह है कि उचित आहार सब आरोग्यता का मूल है और मिथ्या आहार ही समस्त रोगों की जड़ है।

बहुत से मनुष्य यह नहीं समझते कि तंग जूते या मोजे पहनने से भी रक्तसंचार में बाधा पहुँचती है। और बहुत से मनुष्यों के नाखून इतने मैल से भरे रहते हैं कि बिलकुल बदसूरत नज़र आते हैं। उन्हें यह ज्ञान नहीं है कि नाखूनों में से हमेशा विद्युत् (बिजली) का प्रवाह बहता रहता है। उसका प्रभाव उन सब पदार्थों पर

पड़ता है जो हाथों से खाये पिये और स्पर्श किये जाते हैं। मलीन नाखूनों से निकला हुआ विद्युत् प्रवाह मलीन प्रकृति मिश्रित होजाने से प्रत्येक खान पान के पदार्थों में उसका बुरा प्रभाव मिश्रित होकर अशुभ परिणाम उत्पन्न करने वाला होता है। वह मनुष्य का रक्त दूषित करके अनेक रोगों को उत्पन्न कर देता है। ऐसे मनुष्यों का स्वास्थ्य कभी उत्तम नहीं रहसकता, इसलिये हाथ पाँव के नाखून हमेशा निर्मल रखना चाहिये। यह एक बड़े महत्व का विषय है, जो प्रत्येक स्त्री पुरुष को सर्वदा ध्यान में रखना चाहिये।

आरोग्य दशा में उंगली, पोरुवे और पाँव बिलकुल गरम रहने चाहियें। ठंडे पाँव के प्रभाव से रात्रि को देर तक नींद नहीं लगती और उस मनुष्य को रात्रि में बार बार लघुशंका के लिये उठना पड़ता है, जिससे स्नायु समूह पर नुकसान पहुँचता है।

केवल मिथ्या आहार ही से ठंडे पांव नहीं रहते। बहुत समय तक ठंडी जमीन पर खुले पांव रहने से भी पाँवों में ठंडक पहुचती है। लड़ाई के समय जो सिपाही खूँदों में रहते थे उनके पांव ठंडे रहते थे। उनसे चला भी नहीं जाता था, यहां तक कि वे खड़े भी नहीं हो सकते थे, अन्त में उन्हें अस्पताल पहुंचायागया, वहां उन्हें तेल की मालिश करने को कहा, जिससे सर्दी के प्रभाव से बचे रहें।

किसी भी कारण से जिनके पांव ठंडे रहते हैं उन्हें तत्काल सावधानी से उपाय करना चाहिये, क्योंकि ठँडे पाँव रहने से रक्त संचार में मन्दता आती है और निद्रा पूर्ण नहीं आती और अपूर्ण निद्रा और मन्द रक्त संचार ये शक्ति का नाश करने वाले और अनेक रोगों के उत्पन्न करने वाले हैं।

दीर्घ कालीन ज्वर में स्नायु निर्बलता में क्षयरोग में भी पाँव ठंडे रहते हैं, पर इन सब का मूल कारण वही मिथ्या आहार है।

फलाहार या शाकाहार से शरीर आरोग्य रहता है, रोगों से बचाव होता है, उत्तम रुधिर संचार होता है और कब्जी भी नहीं होती।

घोड़ा एक शाकाहारी प्राणी है, वह पूर्ण आयु तक जीता है। प्रबल शीत सहन करता है और पूर्ण बलवान् होता है। इसी प्रकार शाकाहारी मनुष्य भी सुदृढ़ बलवान् और पूर्ण आयु तक जी सकता है।

भोजन सम्बन्धी उपयोगी बातें।

१. भोजन करते समय प्रसन्न चित्त रहो। कोई भी शोक, भय, चिन्ता, क्रोध, रंज, चिडचिडापन और मन को उद्वेग करनेवाले विचारों को मन में स्थान न दो, नहीं तो अन्न ठीक तरह हज़्म न होगा।

२. भोजन के हरएक ग्रासको खूब चबाओ। मुँह की लार में ग्रास खूब सनजाना चाहिये। भोजन का ग्रास लार में मिलकर प्रवाही पदार्थ अर्थात् रस होजाना चाहिये तबतक चबाते रहो। विलायत के प्रसिद्ध महामन्त्री, जिन्हों ने दीर्घायु प्राप्त की थी और बुढ़ापे में शरीर में मज़बूत, दिमाग़ी ताकत में बुद्धिमान् थे, एक ग्रास को बत्तीस मर्तबा चबाते थे।

३ भोजन बनाने वाले के और परोसने वालेके मन के विचारों का असर भोजन पर पड़ता है, अतएव भोजन करने के पहिले एक दो मिनट आँखें बंदकर परमात्मा से या अपने इष्ट देवता से प्रार्थना करो कि हे प्रभो आपके नाम की शक्ति से यह भोजन पवित्र हो गया है। इस भोजन को ग्रहण करने से मेरे भाव शुद्ध रहेंगे। भोजन बनानेवाले और परोसने वालों के शुद्ध विचारों का, स्पर्शास्पर्श का, अस्वच्छ, बुरा विद्युत् प्रवाह, और विरोधी भावनाओंका प्रभाव इस भोजन में से परमात्मा के नाम की शक्ति से निकल गया है।

४. जिस अग्निदेव ने परिश्रम कर अन्न को पकाया है, आप के खाने योग्य कियाहै, उन्हें पके हुए हरएक पदार्थ में से थोड़ा २ सब लेकर प्रेमपूर्वक अग्नि को अर्पण करो और प्रार्थना करो कि हे देव हम आप से कभी उऋण नहीं होसकते हैं। हम प्रेमपूर्वक इस अन्न को अर्पण करते हैं, आप इसे ग्रहण कीजिये और उन देवों के सूक्ष्म शरीरों को जो सृष्टि के कार्यक्रम में सहायता देते हैं, उन्हें पुष्ट बनाइये।

५. भोजन करने के उपरांत १०० क़दम इधर उधर फिरो और उसके साथ ही दाहिने हाथ की हथेली और उंगलियों को कलेजे के पास दाहिनी तरफ से शुरू कर बाँई तरफ लेजाकर फिर दाहिनी तरफ लाओ। इस तरह कुंडलाकार गोल गोल पेट पर

२५ या तीस बार धीरे २ हाथ फेरते रहो और उस के साथ अधो लिखित भावनायें करते रहोः—

(१) मेरी पाचनशक्ति बहुत तीव्र है।

(२) पेट के अंदर भोजन अच्छी तरह पाचन होरहा है।

(३) यकृत् (Liver) पेट (Stomack) और अंतड़ियें ये आज्ञाकारी सेवक हैं, और अपना २ कार्य बहुत अच्छी तरह से करते हैं। मुझे इन पर पूर्ण विश्वास है। (कल्पवृक्ष)

निरामिष आहार।

हम प्रतिदिन जैसे पदार्थों का भोजन करते हैं, उसी के अनुसार हमारा शरीर और मन बनता है। यह विश्व ब्रह्माण्ड सत्त्व, रजः और तम इन तीन गुणों से पूर्ण है, और उसीप्रकार हमारे खाद्य पदार्थ भी सात्त्विक, राजसिक और तामसिक इन तीन भागों में विभक्त हैं। सात्त्विक भोजन करने से मन में सत्त्व गुण की वृद्धि होती है, राजसिक भोजन करने से रजोगुण की और तामसिक भोजन करने से तमोगुण की वृद्धि होती है। यथाः-

"सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ जायेते तमसोऽज्ञानमेव च ॥"

अर्थात् सत्त्वगुण की अधिकता से ज्ञान का उदय होता है, रजो गुण की अधिकता से लोभ और तमोगुण की अधिकता से प्रमाद-मोह और अज्ञान उत्पन्न होते हैं। आहार निरामिष और आमिष इन भेदों से दो प्रकार का है। निरामिष आहार सत्त्वगुण को उत्पन्न करता है और आमिष आहार रजोगुण और तमोगुण को बढ़ाता है। निरामिष भोजन करने से मन निर्मल और शुद्ध होता है। शुद्ध और निर्मल मन के द्वारा ही रजोगुण और तमोगुण से मुक्ति होकर तत्त्वज्ञान और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। अतएव मन और शरीर की शुद्धि के लिए आमिष भोजन कदापि नहीं करना चाहिये। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हमारे लिए निरामिष आहार ही आरोग्यप्रद और स्वाभाविक होसकता है। मांसाहार अस्वाभाविक और अनेक रोगों के उत्पन्न करने का कारण है। आमिष और

निरामिष भोजी दोनों में यदि देखाजाय तो निरामिष भोजी ही बलवान्, स्वस्थ और दीर्घजीवी अधिक मिलेंगे और आमिष भोजी प्रायः इसके विरुद्ध ।

दूध, घी, अन्न, फल, शाक आदि सत्वगुणविशिष्ट निरामिष-पदार्थों का भोजन करने से रजो और तमोगुण का ह्रास होकर सत्वगुण की वृद्धि होतीहै । इस कारण एक साथ आरोग्यता और संयम दोनों का लाभ होता है । पूर्वकाल में त्रिकालज्ञ महर्षिगण खाद्य पदार्थों के साथ धर्मका घनिष्ट सम्बन्ध होने से सात्विक आहार करते थे, इसीलिये वे चिरकालतक आरोग्य शरीर से कठिन तप करने में समर्थ होते थे । इस समय भी लाखों धर्म-प्राण हिन्दू सात्विक आहार करनेवाले देखे जाते हैं । निरामिष और सात्विक भोजन मनुष्यों को बलवान्, जितेन्द्रिय और दीर्घायुषी बनाता है, इस कारण ऐहिक और पारलौकिक कल्याण के लिए निरामिष भोजन करना ही उत्कृष्ट उपाय है ।

"स्वच्छन्दवनजातेन शाकेनापि प्रपूर्य्यते ।
अस्य दग्धोदरस्यार्थे कः कुर्यात्पातकं महत् ॥

अर्थात् अपने आपसे उत्पन्न हुए शाक पात से ही जब पेट भरजाता है तब इस दग्ध-उदर के लिए कौन महापाप करे । जब प्रकृति देवी के दिये हुए हमारे शरीर के लिए पोषणोपयोगी और आरोग्यप्रद अनेक प्रकार के निरमिष खाद्य पदार्थ बाहुल्यता से विद्यमान हैं तब रजो और तमोगुण को बढ़ाने वाले एवं अनेक रोगों के कारण ऐसे आमिष भोजन को क्यों ग्रहण करना ।

मत्स्य, मांसादि अपवित्र भोजन शरीर के लिए कदापि हितकर नहीं; किन्तु अत्यन्त हानिकर है । मनुष्य शरीर में जिस प्रकार नाना प्रकार की बीमारियां होतीहैं उसी प्रकार पशु, पक्षी मत्स्यादि के शरीर में भी विविधप्रकार की व्याधियाँ होती है । ऐसे पशुओं का मांस खाने से उनके शरीरगत रोग मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं । आरोग्य पशुओं का मांस भी अस्वाभाविक खाद्य होने के कारण शरीर में जाकर नाना प्रकार की शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न करता है ।

अन्य प्राणियों में भी आमिष आहार की अनिष्टता स्पष्ट देखी जाती है। श्येन (सिकरा), कौआ, चील, बाज़, शकुनि आदि मांसाहारी पक्षी मरेहुए मनुष्य के शरीर का अथवा अन्य किसी प्राणी को मारकर उसका आहार करते हैं। इनका कण्ठस्वर कर्कश और स्वभाव निष्ठुर होता है, इससे कोई भी इनका स्नेह के साथ लालन पालन करना नहीं चाहता; किन्तु फलभोजी तोता, मैना, कोयल आदि पक्षी अत्यन्त शान्तस्वभाव, शुभदर्शन, मधुर स्वरवाले और किसी का भी अनिष्ट नहीं करते। प्रातःकाल ही वृक्षों की शाखापर बैठकर भगवान् की महिमा का आनन्द से गान करते हैं, इसकारण इनको बहुत से मनुष्य अपने घरों में बड़े आदरसे सदैव पालते हैं। सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, रीछ आदि मांसाहारी पशु हिंसक पशु समझे जाते हैं। इनके नेत्र लाल, स्वभाव क्रोधी और निष्ठुर होता है और ये महादुष्ट होते हैं। इनको देखते ही भय के मारे दूरसे भागना पड़ता है। दूसरी ओर गाय, बैल, भैंस, बकरी, हाथी, घोड़ा, ऊँट, हिरन आदि तृणभोजी पशु सब सीधे, शान्तस्वभाव और प्रिय मालूम होतेहैं और ये किसी का भी अनिष्ट नहीं करते। जिनकी यह धारणा है कि निरामिष भोजन करनेसे शरीर दुर्बल और शक्तिहीन होजाता है, उन को एकबार तृणभोजी, वृहत्काय हाथी के दर्शन करने चाहिएँ। हाथी शष्पभोजी होनेपर भी उसका शरीर बलवान्, दृढ़ और कष्ट सहिष्णु होता है। हाथी की समान ऊँट भी अत्यन्त दृढ़ शरीर और बलवान् होता है। ओर कष्टसहिष्णु तो ऊँट की समान संसार का शायदही कोई प्राणी होताहो उक्त शष्पभोजी पशुओंके द्वारामनुष्य समाज का असीम उपकार होता है; किन्तु आमिषभोजी प्राणियों से मनुष्यसमाज का अधिकतर अपकार ही होता है। आहार प्राणियों के शरीर, वर्ण, गठन और चरित्र के परिवर्त्तन में एक मात्र कारण है, जो कि उक्त पशु-पक्षियों में आहार की भिन्नताके साथ साथ स्वभाव की भिन्नता देखने से सहजमें ही जानाजाता है। इसकारण यह कहना किसी प्रकार भी अनुचित नहीं है कि आहार के गुण-दोष के भेदों से मनुष्यकी आकृति और प्रकृति गठित होती है। एक विद्यार्थी।

प्राप्ति–स्वीकार ।

रसपरिज्ञान—लेखक, वैद्यराज पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल। मूल्य ॥=) पृष्ठसंख्या १०६। छपाई, सफ़ाई अत्युत्तम। प्राप्तिस्थान-सुधानिधि कार्यालय, दारागंज, प्रयाग।

इस पुस्तकमें मधुरादि रसोंका वर्णन वैज्ञानिक ढंगसे बड़े विस्तारके साथ किया गयाहै। प्रथम पदार्थोंकी उत्पत्तिसे लेकर रसों की उत्पत्ति, रसोंकी पहचान, उनकी कार्य्यशक्ति व सामर्थ्य, भेदकल्पना एवं रस, वीर्य्य, विपाकादि का विशेष वर्णन आदि कोई ३५ विषयोंमें पुस्तक पूर्ण हुई है। प्रत्येक विषय बड़ी सुन्दर, सरल और उत्तम रीतिसे खूब खोलकर समझाया गया है। वास्तव में रसों का इतना अच्छा और विस्तृत विवेचन अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आया। पुस्तक विशेष परिश्रम और छानबीन के साथ लिखी गई है और हिन्दी भाषा में अपने विषय की पहली है। इसके द्वारा आयुर्वेद के विद्यार्थियों का और विशेषकर उन लोगों का अधिक उपकार होगा जो आयुर्वेद के उक्त गहन विषय का हिन्दी भाषा के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

महामारी—लेखक-वैद्यराज पण्डित घनानन्द पन्त। मूल्य ।=)। साँची छोटी। पृष्ठसंख्या ४०। प्राप्तिस्थान-पं० जीवानन्द पन्त, चौक बाज़ार, मुरादाबाद।

इस छोटी,सी पुस्तिकामें आयुर्वेद और डाक्टरी मत से महामारी (प्लेग) का इतिहास, निदान, लक्षण, सम्प्राप्ति भेद, जीवाणुओं का वर्णन, स्थानशोधन, मृतदेहपरीक्षा, रोगसे बचने के उपाय, सामान्य चिकित्सा आदि अनेक ज्ञातव्य विषय विशेष गवेषणा के साथ सरल संस्कृत भाषामें लिखे गये हैं। कहीं कहीं उभयमतों के तुलनात्मक वर्णन में ग्रन्थकर्त्ता महाशय को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। आप का उद्योग प्रशंसनीय है। पुस्तक बड़ी उपयोगी है। संस्कृतज्ञ वैद्यों और विद्यार्थियों के बड़े काम की है। एवं आयुर्वेद विद्यापीठ के पाठ्यक्रम में स्थान पाने योग्य है।

आयुर्वेद विद्यापीठ का परीक्षाफल—निखिलभारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ का सन् १९२३ का परीक्षाफल विस्तृतविवरण सहित

छपकर प्रकाशित हुआ है। उसकी एक प्रति विद्यापीठके मंत्री महोदय ने हमारे पास भी भेजने की कृपाकी है। गतवर्ष उक्त विद्यापीठ की आचार्य्य, विशारद और भिषक् तीनों परीक्षाओं में जितने विद्यार्थी बैठे और जितने उत्तीर्ण हुए उन सब की नामावली इसमें दीगई है। साथ ही विद्यापीठ के आरम्भ कालसे लेकर सन् १६२३ तक विद्यापीठ की परीक्षाओं में प्रविष्ट होनेवाले विद्यार्थियों और उत्तीर्ण हुए समस्त स्नातकों की संख्या भी लिख दीगई है। इस विवरण पत्रको देखने से ज्ञात होता है कि विद्यापीठ क्रमसे अच्छी उन्नति कर रहा है। विशेषकर इधर कई वर्षों से उसका अधिक सन्तोषप्रद फल देखने में आरहा है। सन् १६२२ में उक्त तीनों परीक्षाओं में ३२२ में ६७ विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए थे और सन् १६२३ में ४०७ विद्यार्थियों ने परीक्षायें दीं, जिनमें १६१ छात्र उत्तीर्ण हुए। इस वर्ष परीक्षार्थियों और उत्तीर्ण हुए छात्रों की संख्या पिछले सब वर्षों से अधिक रही। इस वर्ष दो स्त्रियाँ भिषक्परीक्षा में और एक स्त्री आयुर्वेद विशारद परीक्षामें उत्तीर्ण हुई है। यह भी एक विशेष बात हुई। पहले विद्यापीठ का कार्यालय प्रयागमें था; किन्तु अब पाँच वर्षों से विद्यापीठ का कार्य्यालय मद्रास में चलागया है। और इस समय उसके प्रधान मन्त्री-आयुर्वेदभूषण पं० यम दुरैस्वामी ऐयंगर ए० के० ए० सि० महोदयहैं। यह विवरणपत्र।)आनेमें उक्त मन्त्री महोदयको या नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्य्यालय, वपेरी,(मद्रास) को लिखने से मिलसकता है।

विविध-विषय।

डाक्टर वेरोनफ की बूढ़े से जवान बनानेवाली चिकित्सा प्रणाली—विलायत में डाक्टर वेरानफने बन्दर की ग्रन्थियों को मनुष्य शरीर में लगाकर फिर से यौवन प्राप्त करने का उपाय ढूँढ निकाला है आपके इस आश्चर्य्यपूर्ण आविष्कार ने इस समय सारे संसार को चकित करदिया है। उक्त प्रणाली कितनी विज्ञानसंमत है, इस बातको तो वैज्ञानिक विद्वान् ही बता सकते हैं;किन्तु इतना तो हम भी जानते हैं कि उक्त कृत्रिम उपाय के द्वारा प्राप्त हुई जवानी

अधिक दिनों तक नहीं ठहर सकती। बिलकुल नयी बात होने अथवा यौवन प्राप्ति के प्रलोभन में पडकर भले ही कुछ लोग इसका पहले अधिक आदर करें; परन्तु पीछे अल्प समय में हो उनकी भी इस परसे श्रद्धा उठजायगी। नीचे उसकी कुछ उपयोगिता दिखाई जाती है। प्रथम तो बन्दर जिसकी ग्रन्थियाँ मनुष्य शरीर में काट कर लगाई जाती हैं, अधिक दीर्घजीवी प्राणी नहीं है; दूसरे जिन ग्रन्थियों के बलसे वह चलता फिरता है, उनकी शक्ति कितनी हो सकती है, इसका सहज ही अन्दाजा किया जासकता है। इस उपाय के द्वारा पुनर्यौवन की प्राप्ति होना असम्भव है किन्तु बेचारे बहुतेरे बन्दर अवश्य मारे जांयगे। उक्त प्रणाली के द्वारा वृद्ध मनुष्य के बन्दर की ग्रन्थियां लगादेने से कदाचित् दो चार दिन के लिए कुछ यौवन के लक्षण प्रकट हो जांय, परन्तु वह जवानी का पूर्णरूप से उपभोग नहीं करसकता। जवानी के एक बार बिदा होजाने पर फिर वह ऐसे कृत्रिम उपायों के द्वारा लौटकर वापिस नहीं आसकती और न उक्त उपाय के द्वारा आयु की कुछ वृद्धि होसकती है; किन्तु विषयी मनुष्य जो बुढ़ापेमें भोगविलास करने में असमर्थ होजाते हैं वे इस प्रणाली के द्वारा कुछ शारीरिक उत्तेजना प्राप्त करके थोड़े दिनों तक और भोग भोगसकते हैं। वास्तव में इससे यौवनसम्बंधी कोई स्थायी लाभ नहीं होसकता। कहीं कहीं इस प्रणाली के द्वारा बड़ी हानि होती देखी गई है। अभी विलायत से संवाद आया है कि उक्त प्रणाली के द्वारा कई मनुष्य बन्दर की ग्रन्थियों को लगाकर मृत्यु के मुखमें जापड़े हैं। ऐसा कौनबुद्धिमान् मनुष्य होगा जो केवल दो दिनकी विषय सुख की लालसा के लिए ऐसे भयङ्कर और पापपूर्ण उपाय के द्वारा अपने शरीर और इन्द्रियों के ऊपर जानबूझकर अत्याचार करावेगा।

जुकाम का टीका-प्लेग, कालरा, चेचक, मलेरिया, क्षय आदि रोगों की तरह अब जुकाम का भी टीका ईजाद हुआ है। कहते हैं कि इस टीके के द्वारा लन्दन में बहुत लोगों को लाभ हुआ है। टीके के आविष्कर्त्ता का कहना है कि इसके लगाने से जुकाम के सम्पूर्ण जन्तु नष्ट होजाते हैं-और इसको शीतकाल के आरम्भ में केवल एक बार प्रयोग करने से फिर साल भर तक जुकाम का भय नहीं रहता। जो हो, टीके के शौकीनों को इसकी भी परीक्षा करनी चाहिये।

Regd. No A. 587

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यक सम्बन्धी, सर्वोपयोगी

⊛ मासिक—पत्र ⊛

सम्पादक—शङ्करलाल वैद्य

वर्ष १२ } मुरादाबाद। जनवरी, सन् १९२४ ई० { संख्या १

* विषय सूची *

१ प्रार्थना	१	८ श्वेतकटेरी (लक्ष्मणा)	१७
२ आदर्शकांक्षा	२	९ परीक्षित-प्रयोग	२३
३ आयुर्वेदिक सिद्धान्तों की सच्चाई	२	१० सहयोगी-संवाद	२५
४ वैद्य और उपाधि	४	११ लायक सिविल-सर्जन	२८
५ स्वास्थ्यरक्षा	६	१२ विविध-विषय	२९
६ विहाररूप वाजीकरण	८	१३ समाचार	३०
७ शोथ रोग पर हमारा अनुभव	१३	१४ नम्र-निवेदन	३०

प्रकाशक—हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद।

वार्षिक मूल्य १॥)] [एक संख्या का मूल्य ≈)

—o—

मुद्रक—पं० जीवाराम उपाध्याय,
सरस्वती प्रेस, मुरादाबाद।
Printed by—Pt. Jiwaram Upadhyaya,
at the Saraswati Press,
MORADABAD.

❀ वैद्य के नियम ❀

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डाकमहसूल सहित केवल १॥) है पेशगी मनीआर्डर भेजने से १॥) रु० और वी०पी० मँगाने से १॥।) रु० पड़ेगा।

(३) 'वैद्य' का नमूने में कोई सा एक अङ्क भेज दिया जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषयक लेख, कविता, अनुभवी प्रयोग और समाचार आदि भेजेंगे वे पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायेंगे। परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिए, जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिये कार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँचकर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी २ अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं। इसका कारण रास्ते की असावधानी ही हो सकती है। जिन महाशयों को जो अङ्क न मिले, वे दूसरे अङ्क के पहुँचते ही हमें सूचना दें अन्यथा हम न भेजसकेंगे।

(७) सब प्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि—

वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर, वैद्य आफिस, मुरादाबाद

के पते से आने चाहिएँ।

वैद्य में विज्ञापन छपाई व बटाई की दर।

स्थान	१ वर्ष १२ बार	६ मास ६ बार	३ मास ३ बार	१ मास १ बार
एक पृष्ठ	५०)	३०)	१७)	६)
आधापृष्ठ	३०)	१७)	१०)	३॥)
चौथाई पृष्ठ	१८)	१०)	६)	२)

विज्ञापन बटाई विज्ञापन दिखाकर तय कीजिये।

मैनेजर "वैद्य" मुरादाबाद।

श्रीधन्वन्तरये नमः।

वैद्य

मासिक-पत्र

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥

वर्ष १२ | मुरादाबाद, जनवरी १९२४ ई० | संख्या १

प्रार्थना।

(लेखक—कविरत्न पं० हरिशंकर शर्म्मा, संपादक—आर्य्यमित्र, आगरा)

—o—

वैद्यवर बनजाऊँ भगवान्!

आयुर्वेद पढ़ूँ गुरुमुख से पहले यथाविधान।
क्रियाकुशल कहलाऊँ फिर मैं, कर कर अनुसंधान॥

वैद्यवर बनजाऊँ भगवान्!

हो निर्लोभ करूँ रोगी का हित से रोग निदान।
सुखद, सुलभ अनुकूल औषधें दे नित जीवन दान॥

वैद्यवर बनजाऊँ भगवान्!

निज कर्त्तव्य पालने में मैं, खूब लगाऊँ ध्यान।
रोगीके प्राणों का समझूँ अपने प्यारे प्राण॥
वैद्यवर बनजाऊँ भगवान्!

करुणा, दया, सहानुभूति का हृदय बने संस्थान।
फिर क्या मुझसे दूर रहेंगे सुख, सम्पत्ति, यश, मान॥
वैद्यवर बनजाऊँ भगवान्!

आदर्श-कांक्षा।

(लेखक—विद्याप्रेमी दीनानाथ "अशङ्क")

बनें फिर शक्तिमान हम लोग।
"न हों हानिकर या दुखदायी" बस भोगें यों भोग ॥ १ ॥
ऋषियोंको आदर्श विचारें, उनके पथमें ही पग धारें।
प्राप्त समय से लाभ उठावें, समझ दैव-संयोग ॥ २ ॥
कर व्यायाम शरीर बनावें, वीर्य निरर्थक नहीं गँवावें।
सन्तति के हित ही बस उसका, करें उचित उपयोग ॥ ३ ॥
सकल इन्द्रियाँ संयत रक्खें, उनके वश हो कुफल न चक्खें।
अन्य कार्य करने से पहले, मन का करें नियोग ॥ ४ ॥
काम, क्रोध आदिक हत्यारे—वैरी सबसे सबल हमारे।
उनका डट कर करें सामना, रहने न दें कुरोग ॥ ५ ॥
बनें फिर शक्तिमान हम लोग।

—०—

आयुर्वेदिक सिद्धान्तों की सचाई।

(लेखक—आयुर्वेदाचार्य्य पं० ब्रह्मानन्दजी विद्यालङ्कार स्नातक गुरुकुल कांगड़ी)

आर्यजातिके पास सबसे श्रेष्ठ और अत्यन्त प्राचीन रत्न आयुर्वेद शास्त्र है। जब अन्यान्य देशनिवासी अज्ञानान्धकार में पड़े हुये थे' रोगोंकी कठोर यातनाओं से और महामारियों के लोकक्षयकारी

प्रभावों से पीड़ित थे, जब मिश्र और बैबिलोन प्रभृति प्राचीन देश निवासिगण रोगों से निःसहाय और निरुपाय होकर मृत्यु का आतिथ्य स्वीकार करनेके लिये बाधित होते थे उस अत्यन्त प्राचीन काल में भी भारतभूमि में आयुर्वेद शास्त्र अपने उन्नतिके शिखर पर था। संसारके प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में आता है कि-"हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय" (ऋक् मं० १ सू० ५०)।

हृद्रोग आदि की चिकित्सा के निर्देश से काय चिकित्सा का स्पष्ट उल्लेख है। और शल्य चिकित्सा के विषय में यह वर्णन आता है कि एक क्षत्रियपत्नी विशपला की एक टाँग युद्ध भूमि में कटगई थी, उस टाँगकी जगह अश्विनीकुमारों ने दूसरी लोहेकी टांग लगादी थी और वह सब कार्य पूर्ववत् करने लगगई। यथा—"सद्यो जङ्घामायसीं विशपलायै धने हिते सर्त्तवे प्रत्यधत्तम्।"

(ऋक् मं० १ सू० ११६)

इसपर भी कितने ही विद्वान् कहते हैं कि शल्यचिकित्सा तक के इतने उन्नत होते हुए भी उस समय (वैदिक काल में) कोई नियमित शास्त्र न था। गर्भोपनिषद् और शारीरोपनिषद् में यद्यपि कुछ विस्तृत विवरण है, किन्तु इनसे पुष्टतर प्रमाण सुश्रुत के सूत्रस्थानीय प्रथम अध्यायमें मिलता है कि—

"इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्ग मथर्ववेदस्य अनुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः"।

अर्थात् एक सहस्र अध्यायों में विभक्त एक लाख श्लोकों वाला आयुर्वेद ग्रन्थ वैदिक काल में भी मौजूद था। उसके बाद जिस क्रम से आयुर्वेदका विकास और प्रसार हुआ वह स्थान स्थान पर वर्णित ही है।

इतनी भूमिका का तात्पर्य केवल यह है कि हमारे देशमें जितनी भी विद्यायें मिलती हैं, उनको ऋषियों ने समाधिस्थ होकर ही जाना है। आजकल दो तरह की विद्यायें मानी जाती हैं एक तो inductive(इण्डक्टिव) और दूसरी Deductive (डिडक्टिव)। इण्डक्टिव वह विद्या है, जिसके कि सिद्धान्त परीक्षा अर्थात् तजुर्बा करते हुये जो ठीक जँचे उसे ही सत्य समझा जावे।

आजकल यूरुपकी सब साइन्सें इएडक्टिव् ही हैं। किन्तु इसप्रकार के सिद्धान्तों और विद्याओं में यह त्रुटि होती है कि ज्यों ज्यों अनुभव बढ़ना जाता है त्यों त्यों उन सिद्धान्तों में अशुद्धि और मिथ्यात्व प्रकट होने लगता है और उनको बदलना पड़ता है। इसी लिये inductive (इएडक्टिव्) विद्याओं को भारतभूमि में प्रधानता न देकर पौरुषेय कहा जाता है। क्योंकि पुरुषनिर्मित विद्यायें निर्भ्रान्त नहीं होतीं। साथही यूरुप में (Element theory) (एलिमेंन्ट थ्यूरी) Acid theory (एसिड् थ्यूरी) आदि अनेक सिद्धान्त मिथ्या सिद्ध हुए और साइन्सको नीचा देखना पड़ा।

दूसरी Deductive (डिडक्टिव्) अर्थात् समाधिस्थ दशा में ऋषिगणों ने त्रिकालदर्शी तथा सत्यासत्य प्रेक्षक होकर जिन सत्य सिद्धान्तों की रचना की और जिन विद्याओं का विकास किया वे विद्यायें निर्भ्रान्त हैं और Deductive (डिडक्टिव्) कहलाती हैं। क्योंकि इनमें सिद्धान्त पहिले बनजाते हैं और उनका अनुभव मनुष्योंके लिये छोड़ दिया जाता है और वे सर्वथा सत्य होते हैं। यूरुप में डिडक्टिव् साइन्स् कोई हो ही नहीं सकती। अब आगे कोई ऋषि कृपा करें तो बात दूसरी है। ऐसे ग्रन्थ आर्ष अर्थात् ऋषिप्रणीत कहलाते हैं। हमारा आयुर्वेद शास्त्र आर्ष है? नहीं नहीं ब्राह्म है। इसकी औषधियाँ आदि घटाई बढ़ाई जासकती हैं, किंतु चिकित्सा के सिद्धान्तों में या अन्य सिद्धान्तों में कमी बेशी हो ही नहीं सकती। इसके सत्य सिद्धांतों में परिवर्त्तन हो ही नहीं सकता। आगे इसके सिद्धांतोंकी सचाई क्रमशः दिखाने का प्रयत्न किया जायगा।

---*---

वैद्य और उपाधि।

(लेखक—कविरत्न पं० हरिशंकर जी शर्मा संपादक—आर्य्यमित्र, आगरा)

हर्षकी बात है कि अब हमारे आयुर्वेदशास्त्र की उपयोगिताकी ओर देशके उनलोगोंका भी ध्यान आकर्षित हुआहै जो समझते थे कि चूरन—चटनी चटाने, गोली-गोले खिलाने और अरिष्ट-आसव

दिलाने वाले वैद्य व्यर्थ-विज्ञापनबाजी के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते ! और तो और कौंसिलों, डिस्ट्रिक्टबोर्डों और म्युनिसिपिल्टियों तक में आयुर्वेदचिकित्साप्रणाली के गुण गाकर उसका आदर किया जारहा है । वस्तुतः यह प्रणाली है ही ऐसी उत्तम कि इसको अपनायेबिना और सस्ते दाम पर सबको सुलभ होना पड़ता है । कुछ दिन हुए संयुक्तप्रान्त के भूतपूर्व शिक्षासचिव श्रीःसी०वाई० चिन्तामणिने देशी चिकित्साप्रणाली की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि मेरी इस शास्त्र पर बड़ी श्रद्धा है । मैंने कई बार सुवैद्यों से अपनी और अपने पारिवारिकोंकी चिकित्सा कराई जो सबको बड़ा लाभ हुआ । मिस्टर चिन्तामणि ही क्या और भी अनेक बड़े बड़े लोगों की इस प्रणाली के सम्बन्ध में ऐसी ही शुभ सम्मति है । अभिप्राय यह है कि ज्यों ज्यों लोग आयुर्वेद के महत्त्व को समझते जाते हैं, त्यों त्यों वे उसके भक्त बनते जाते हैं । एकदिन आवेगा जब सारे देश में वैद्यों का बोलबाला होगा और आयुर्वेद शास्त्र का डङ्का बजेगा । सब कुछ है और होगा, पर एक खास बात है जिसकी ओर वैद्यों को ध्यान देना चाहिए—वह है शास्त्रों के अध्ययन, क्रियाकौशल और अनुभव की आवश्यकता । आयुर्वेद शास्त्र कितना ही उत्कृष्ट हो, औषधें कितनी ही आशुफल प्रदायक हों, निदान कैसा ही उत्तम हो, परन्तु यदि उसमें ज्ञाता वैद्यों की कमी है तो सब व्यर्थ और बेकार ! हमारे यहाँ गाँव गाँव में 'वैद्य' मौजूद हैं पर उनमें वास्तविक वैद्य कितने हैं इस बात को जान लेना कुछ कठिन बात नहीं है । रोगी मरे चाहे जीवे, वैद्य जी को कुछ मतलब नहीं—मतलब है स्वार्थ से और टके बटोरने से । हमारी सम्मति में वैद्यक व्यवसाय ऐसा नहीं है जिसमें कोरा केवल धनोपार्जन की कामना से प्रवृत्त हों, इसमें रोगी को लाभ पहुँचाने का प्रयत्न ही मुख्य उद्देश्य होना चाहिये । इसी से धन भी मिलता है और यश भी प्राप्त होता है । हम कितने ही ऐसे वैद्यों को जानते हैं जो केवल तीन चार मासों की पंसारी में रहने को 'वैद्यभूषण' और वैद्यराज लिखने लगे ! जिन वैद्यों ने शारीरिक उपाधियों को दूर करने का ठेका लिया था, आज उन्हीं के नाम के साथ लम्बी चौड़ी उपाधियाँ देखकर आश्चर्य होता है । उपाधि बुरी वस्तु नहीं यदि वह सुसंघटित संस्थाओं से योग्यता पूर्वक

मास की आय। हम खेद से देखते हैं कि कितने ही वैद्य तो स्वयं ही अपने नामों के पीछे अच्छी से अच्छी उपाधि लगा लेते हैं और कुछ लोग किसी 'संस्था' को दस पाँच रुपये देकर, पुंछल्ला मोल ले लेते हैं। दुर्भाग्य वश देशके अनेक नगरों में उपाधि बेचने वाली ऐसी अनेक दूकानें खुली हुई हैं जिनका काम ही सीधे सादे लोगों को ठगकर उनके पीछे उपाधि लगा देना है। दाम के दाम गये और उपाधि पीछे पड़ी! हमारी रायमें उपाधियों का क्रय-विक्रय तुरन्त बन्द होना चाहिए। उपाधिप्रदान करने का अधिकार केवल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठको हो अथवा उन प्रतिष्ठितसंस्थाओं को जो विद्यार्थियोंको नियत अवधि तक निश्चित कोर्स पढ़ाकर उन्हें उस योग्य बनावें। सब लोग उपाधि व्याधि में फँसजाँयगे तो बड़ी गड़बड़ी होगी और फिर इसका इलाज वैद्य तो वैद्य वैद्याचार्यों की शक्ति से भी बाहर होजायगा। योग्यता झूठी उपाधिसे नहीं आती जाती, कितने ही लम्बे चौड़े पुंछल्ले लगा लीजिए अगर योग्यता नहीं तो वे किसी काम के नहीं। अगर आप में यथोचित योग्यता है तो फिर ऐसा कौन है जो आपका आदर न करेगा और आवश्यकता पड़ने पर आपको न पूछेगा। हम आशा करते हैं कि हमारे वैद्यभाई इस उपाधि—व्याधि से दूर रहकर पदवी-बेचने वालों की दुकानदारी का खातिमा करेंगे और अपने नामों के साथ मनमाने पुंछल्ले न लगावेंगे।

स्वास्थ्य-रक्षा।

(लेखक—कविकुमार पं० महेश्वरप्रसाद शास्त्री, साहित्याचार्य।)

जिसे प्रभो! मनुष्य का, अमूल्य जन्म दीजिये।
उसे दयालुभाव से, सदैव स्वस्थ कीजिये॥
न स्वस्थता समान, माननीय और तत्त्व है।
अहो! मनुष्य जन्मका, यही बड़ा महत्त्व है॥१॥
मनुष्य जन्म रम्य का विहार सार स्वस्थता।
वसन्तदेह वाटिका, विकास हार स्वस्थता॥

मनो विनोद मोद की, प्रभा प्रचार स्वस्थता।
स्वचित्त चन्द्र चन्द्रिका, सुधा सुधार स्वस्थता ॥ २ ॥
मनुष्य जन्म व्यर्थ है, मिली न स्वस्थता यदा।
कटा प्रमाण आयु का, खिखिन्न क्लेश में सदा ॥
कराल क्लेश लेश में, न चित्त का विकाश है।
न विश्व का विलास है, न मोद का निवास ॥ ३ ॥
समस्त शक्तियाँ तभी, प्रकाश पूर्ण पासकीं।
प्रसन्न चित्त वृत्तियाँ, वहीं विभूति लासकीं ॥
सदैव स्वस्थ जो रहा, प्रधान लाभ है महा।
उमङ्ग से उछाह से, किया तुरन्त जो चहा ॥ ४ ॥
समस्त कार्य सिद्धि में, समर्थ जो कि स्वस्थ है।
विचार के शरीर के, करे सुकार्य जो चहै ॥
उछाह चित्त चाह से, अथाह सत्प्रवाह में।
जमे रहैं रमे रहैं, सुसिद्धि राह राह में ॥ ५ ॥
समस्त विश्व सम्पदा, रमाभरी पड़ी रहे।
विशालराज राजरत्न राशि से जड़ी रहे ॥
परन्तु स्वस्थता बिना, कराल दुःख की कथा।
न सौख्य की कहीं कला, कराल हो जहाँ व्यथा ॥ ६ ॥
मनुष्य देह रत्न का, यही बड़ा मिहाद है।
विभूति के विचार का, प्रचार है प्रसाद है ॥
प्रयोग, योग, भोग की, सहाय साधिनी यही।
मनुष्य घोर वीरता, विकाशदायिनी यही ॥ ७ ॥
विशाल ब्रह्मचर्य की, प्रथा इसीलिए रही।
सदैव स्वस्थता रहे, विभूति की नदी बही ॥
सुधीर वीर रत्न थे, पराक्रमी विशाल थे।
स्वशक्ति को दिखा गए, अनेक जो नृपाल थे ॥ ८ ॥
सदैव स्वस्थ देह हो, यही सदा उपाय हो।
न तुच्छ रोग भी रहे, विकाश ही सहाय हो ॥
यही महाविभूति है, कि पूर्ण स्वस्थता मिले।
प्रसन्न जन्म योग हो, विकाश की कली खिले ॥ ९ ॥

स्व-वैद्य शास्त्र को पढ़ो, सदा विचार में लगो ।
मनुष्यजन्म-रत्न को, सुधार लो उठो जगो ॥
विनैव स्वस्थसाधना, न कर्म का प्रसाद है ।
विहीन स्वस्थता रहे, विषाद है ! विषाद है !! ॥१०॥

विहाररूप वाजीकरण ।

(गताङ्क से आगे)

(लेखक--पं० हरिनारायण शर्मा वैद्यशास्त्री, प्रतापगढ़)

विहाररूप वाजीकरण में 'स्त्री" की गणना पहले है। क्योंकि मनुष्य वीर्यवर्द्धक (वाजीकरण) औषध खाकर चाहे कितना ही वीर्य क्यों न बढ़ाले, परन्तु जब तक मन खूब प्रसन्न न हो तब तक उसे न सहवास में आनन्द मिलसकता है और न गर्भ ही रह सकता है।

यद्यपि मन अथवा इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाली अलग २ बहुत सी चीजें हैं, परन्तु स्त्री ही एक ऐसी वस्तु है, जिस में यदि विचार किया जाय तो दशों इन्द्रियों के अर्थ या विषय वर्तमान रहते हैं। स्त्री के द्वारा इन्द्रियों के तृप्त होने में एक विशेष प्रकार के आनन्द का अनुभव होता है। स्त्री को यदि प्रेम, सन्तान, संसार, धर्म, अर्थ, काम आदि का कारण माना जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं। स्त्री ही प्रेम करना सिखाती है, स्त्री से ही सन्तान पैदा होती है। अनुरक्त स्त्री जिस प्रकार घर में चीजों को सज्जित कर रक्षा करती हुई गृह को धन धान्य से पूर्ण करदेती है शायदही ऐसा कोई करसकता हो। हिन्दुधर्म शास्त्रों में*स्त्री के ही साथ धर्माचरण करने में विशेष महत्व बतलाया है। स्त्री से ही संसार की सृष्टि होती है।

परन्तु सब स्त्रियाँ ऐसी नहीं होतीं। किन्तु जो रूपवती, युवावस्थासम्पन्न, शुभलक्षणों से युक्त, पति की आज्ञाकारिणी और सुशिक्षित होती हैं, वेही वाजीकरण के योग्य मानी जासकती हैं।

---

* नाना मार्गो निःशक्ता नौरयात्रा । नाना = बिना।

कभी कभी "भिन्नरुचिर्हि लोकः" अर्थात् हर एककी चाह अलग र होती है। इस कहावत के अनुसार बहुत से लोग अपनी इच्छाके अनुसार अथवा पूर्वजन्म के किसी विशेष संस्कार से ऐसी स्त्रियों पर आसक्त होजाते हैं, जिनमें न कुछ रूप ही रहता है और न कुछ अच्छा ढंग ही। मनुष्य उस स्त्री की विशेष अवस्था—हाव भाव कटाक्ष किल किञ्चित् (नाज़ नख़रा) आदि से ऐसा मोहित होजाता है कि उसे अपने और स्त्रीमें इसप्रकार एकता जान पड़ती हैकि जिससे वह एकदम बँधसा जाता है। स्त्री के क्षणभर विरह से भी उसे जगत् स्त्रीशून्य और अपना शरीर भारत मालूम पड़ता है और जब उस स्त्री से सङ्गम होजाता है तो चाहे कितनी ही चिन्ता, भय, घबड़ाहट क्यों न हो उसे तिलमात्र भी दुःख नहीं होता। वह तो केवल अपनी प्रेयसी के प्रेममें मग्न रहता है। उसी को सब कुछ समझताहै, तन, मन, धन, सब कुछ उसीपर निछावर कर देता है। उसको देख खुश होता है और न देख दुःखी होताहै। इस प्रकार बराबर उसके साथ आनन्द करताहै, किन्तु फिर भी उसे यथेष्ट तृप्ति नहीं होती, जिससे तृप्त होकर उससे वह अलग होजाय। सदा अपनी प्राणप्रिया का ही मुँह जोहा करता है।

इसप्रकार रूप आदि गुणों के बिनाही कोई स्त्री किसीके लिए परम वाजीकरण का काम करजाती है।

> वाजीकरणमग्र्यञ्च क्षेत्रं स्त्री या प्रहर्षिणी ।
> इष्टा ह्येकैकशोऽप्यर्थाः परम्प्रीतिकराः स्मृताः ॥
> किं पुनः स्त्रीशरीरे ये सङ्घातेन व्यवस्थिताः ।
> स्त्र्याश्रयो हीन्द्रियार्थो यः स प्रीतिजननोऽधिकम् ॥
> स्त्रीषु प्रीतिर्विशेषेण स्त्रीष्वपत्यं प्रतिष्ठितम् ।
> धर्मार्थौ स्त्रीषु लक्ष्मीश्च स्त्रीषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥
> सुरूपा यौवनस्था या लक्षणैर्या विभूषिता ।
> सा वश्या शिक्षिता या च सा स्त्री वृष्यतमा स्मृता ॥
> नानाभक्त्या तु लोकस्य दैवयोगाच्च योषिताम् ।
> तं तं प्राप्य विवर्धन्ते नरं रूपादयो गुणाः ॥
> वयोरूपवचोहावैर्या यस्य परमाङ्गना ।
> प्रविशत्याशु हृदयं दैवाद्वा कर्मणोऽपि वा ॥

हृद्योत्सवरूपा या या समान-मनःशया ।
समानसत्त्वा या वश्या या वश्यं प्रीयते गुणैः ॥
या पाशभूता सर्वेषामिन्द्रियाणां परैर्गुणैः ।
यया वियुक्तो निःस्त्रीकमरतिर्मन्यते जगत् ॥
यस्या ऋते शरीरं ना धत्ते शून्यमिवेन्द्रियैः ।
शोकोद्वेगारतिभयैर्यां दृष्ट्वा नाभिभूयते ॥
याति यां प्राप्य विस्रम्भं दृष्ट्वा हृष्यत्यतीव याम् ।
अपूर्वामिव यां याति नरो हर्षातिवेगतः ॥
गत्वा गत्वापि बहुशो यां तृप्तिं नाधिगच्छति ।
सा स्त्री वृष्यतमा तस्य, नानाभावा हि मानवाः ॥
(च० सं० वा० अ०)

स्त्री के अतिरिक्त निम्नलिखित चीजें भी वाजीकरण होती हैं। यथा-मनको प्रसन्न करनेवाली सभी चीज़ें, सुन्दर वन, बाग, नदी का तट, प्रकृति, मनोहर लतावली से सुसज्जित पर्वत, सुन्दर आभूषण, सुगन्धित बेला चमेली आदि पुष्पों की मालायें (मनोऽनुकूल स्त्री) प्रिय मित्र, ऐसे तालाब जहाँ कमल खिले हों और उन की मधुर सुगन्ध से मदमाते भौंरे उन पर गूँज रहे हों, ऐसे ठंडे तहखाने जहाँ गुलदस्ते में रक्खे हुए सुगन्धित पुष्पों के गुच्छे महमहाते हों, खूब बढ़ी हुई नदियाँ-जिन में कहीं फेन, कहीं भौंरी और कहीं जल जन्तुओं का कल्लोल नज़र आता हो, नीले २ शिखर वाले पर्वत, आकाश में घिरी हुई नीले बादलों की घटायें, शरद् ऋतु की रात-जिस में सुहावने चन्द्रकी किरणें छिटकी हों, खिले हुए पोई के फूलों की खुशबू से महमहाता हुआ ठंडा और मन्द वायु, जाड़े की रात जिसमें अतिशय रमण और केशर, अगर आदि का व्यवहार किया जा सकता हो।

सुखकर सहायक, ऐसे वन जहाँ लतायें कोमल पल्लवों और फूलों से लहलहाती हों और कोयल कूक रही हो, सुन्दर तथा सुस्वादु भोजन, उम्दा गाना, अच्छे इत्र, उदार और निश्चिन्त चित्त, नई जवानी और नया जोश, रमणीय मतवाला समय (वसन्त) ये सब वाजीकरण हैं, इन के सम्पर्क से-स्वाभाविक-ही चित्त उमड़ आता है और कामोद्दीपन होता है।

यत्र किञ्चिन्मनसः प्रियं स्यात्।
रम्या वनान्ताः पुलिनानि शैलाः॥
इष्टाः स्त्रियश्चे मृग[illegible]।
प्रिया वयस्याश्च नवं च योग्यम्॥
मत्तद्विरेफा वनिताः सपक्षाः सलिलाशयाः।
अत्युपवनसुगन्धीनि शीतगर्भगृहाणि च॥
नद्यः फेनोत्तरीयाश्च गिरयो नीलसानवः।
उन्मनिर्मीलमेघानां रम्यचन्द्रोदया निशाः॥
वायवः सुखसंस्पर्शाः कुमुदाकरगन्धिनः।
रतिभोगक्षमा रात्रिः सङ्कोचा सुरतक्षमाः॥
सुवर्णाः सहायाः परपुष्टजुष्टाः।
फुल्ला वनान्ताः विशदाम्बुपानाः॥
गान्धर्वशब्दाश्च सुगन्धयोगाः।
सत्त्वं विशालं निरुपद्रवत्वम्॥
सिद्धार्थता चाभिनवश्च कामः।
स्त्री चायुधं सर्वमिहात्मजस्य॥
वयो नवं जातमदश्च कालो,
हर्षस्य योनिः परमा नराणाम्॥

परस्पर एक दूसरे के काम में सहायता करने वाले, आपस में निष्कपट प्रेम करने वाले, अपने २ कामों के सिद्ध करने में पूरे चतुर, कभी न घबड़ानेवाले, संसार की सब कलाओं के जानकार, एक मन और एक अवस्थावाले (हमजोली) सत्कुलीन रईस, प्रेम अथवा उदारता के भंडार, मानसिक और शारीरिक सफाई रखने वाले, नित्य नयी २ इच्छा करने वाले या रमण करने वाले, सदा प्रसन्न रहनेवाले, निश्चिन्त–बेफिक्र, तन्दुरुस्त हट्टे कट्टे, एक स्वभाव वाले, भक्त और मधुरभाषी मित्रों के साथ रहना परम वाजीकरण होता है। ऐसे मित्रों के साथ रहने से हर वक्त मनमें उमंग बनी रहती है।

एकैकसत्त्वाः सिद्धार्था ये चान्योऽन्यानुवर्तिनः।
कलासु कुशलास्तुल्याः सत्त्वेन वयसा च ये॥
कुलमाहात्म्यदाक्षिण्यशीलशौचसमन्विताः।
ये कामनित्या ये हृष्टा ये विशोका गतव्यथाः॥

ये तुल्यशीला ये भक्ता ये प्रिया ये प्रियंवदाः ।
तैर्नरैः सह विश्रब्धः सुवयस्यो वृषायते ॥

तैल, उबटन लगाना, स्नान, खुशबूदार फूलों की माला और आभूषण धारण करना, सजा हुआ मकान, सुन्दर शय्या और आसन, साफ़ और उमदा कपड़ा, रंग बिरंगी चिड़ियों की चहचहाहट, स्त्रियों के पायजेब, कड़ा छड़ा आदि गहनों की झनझनाहट, सुन्दर और प्रिय स्त्रियोंसे सब शरीर अथवा हाथ पैर दबवाना या शिरमें तेल लगवाना इन सब से शीघ्र ही क्षीणता जाती रहती है और रहवास के लिए जोश हो आता है।

अभ्यङ्गोत्सादनस्नानगन्धमाल्यविभूषणैः ।
गृहशय्यासनसुखैर्वासोभिरहितैः प्रियैः ॥
विहङ्गानां रुतैरिष्टैः स्त्रीणामाभरणस्वनैः ।
संवाहनैर्वरस्त्रीणामिष्टानाञ्च वृषायते ॥

संक्षेप में वाजीकरण चीज़ें ।

मधुर रसवाली, चिकनी, जीवन के लिए उपयोगिनी, पुष्टिकारक, देर में पचनेवाली और ऐसी चीज़ें जिनसे मन में एक विशेष प्रकार की प्रसन्नता हो, वे अत्यन्त वाजीकरण होती हैं।

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृंहणं गुरु ।
हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद्वृष्यमुच्यते ॥

पथ्यापथ्य ।

वाजीकरण सेवन में गेहूँ, यव, मूँग, अरहर, उड़द, आलू, गोभी, भिंडी, अरवी, केला, चौलाई, लौकी, ज़िमीकन्द, दूध, दही, घी, खोवा, चीनी, मिश्री वगैरह और ऊपर जिन चीज़ों का ज़िक्र आया है वे सब आहार विहार में पथ्य हैं।

बुढ़ापा, दिनमें सोना, चिन्ता, रोग होजाना, विशेष परिश्रम, उपवास, अत्यन्त स्त्रीसेवन, धातुक्षय, भय, अविश्वास, शोक, स्त्री में किसी प्रकार का दोष मालूम होना, अज्ञातयौवना स्त्री का होना, अविचार, एकदम स्त्रीसेवन न करना, अधिक खटाई, मिरच और तेल से बनी चीज़ें, गरम मसाला, अधिक बैठना आदि अपथ्य हैं। इनके कारण वाजीकरण सेवन करने पर भी शक्ति नहीं होती इसलिये इनका त्याग करनाही उचित है।

अन्यथा चिन्तया युक्तं व्याधिभिः कर्मकर्षणात् ।
एवं गच्छत्यनशनात्स्त्रीणां अतिनिषेवणात् ॥
तथा [illegible] कारस्त्रीदोषदर्शनात् ।
नारीणामसखायाश्चाविचारादसेवनात् ॥
युवत्यपि स्त्रियो गन्तुं न शक्तिरुपजायते ॥

(क्रमशः)

शोथरोग पर हमारा अनुभव ।

(लेखक—पण्डित ज्ञानानन्द जी पन्त विद्यार्थी, मुरादाबाद)

—(:०:)—

वात, पित्त और कफ इन भेदों से तीन प्रकार का शोथ रोग होता है। जैसे—

"शूयन्ते यस्य गात्राणि स्वपन्तीव रुजन्ति च ।
पीडितान्युन्नमन्ति वातशोथं तमादिशेत् ॥
यश्चाप्यरुणवर्णाभः शोथो नक्तं प्रणश्यति ।
स्नेहोष्णमर्दनाभ्यां च प्रणश्येत्स च वातिकः ॥"

(चरक सूत्रस्थान अ० १८ श्लो० २-३)

अर्थात् जिसके शरीर के सब अङ्गों में सूजन हो, सुन्नी सी हो, पीड़ा हो, दबाने से फिर ऊपर को चकत्ते उठ आवें, उस को वातज शोथ जानना चाहिये। एवं जो लालवर्ण वाला हो, रात्रि में कम होजाता हो और स्निग्ध तथा उष्ण पदार्थों के मर्दन करने से नष्ट होजाता हो वह भी वातज शोथ होता है। इस के आगे पित्तशोथ का वर्णन करते हैं:—

"यः पिपासाज्वरार्तस्य दूयतेऽथ विदह्यते ।
स्विद्यते क्लिद्यते गन्धी स पित्तश्वयथुः स्मृतः ॥
यः पीतनेत्रवक्त्रत्वक् पूर्वमध्यात्प्रशूयते ।
तनुत्वक् चातिसारी च पित्तशोथः स उच्यते ॥"

(चरक सू० अ० १८ श्लो० ४-५)

अर्थात् जिस रोगी के तृषा, ज्वर, दाह, पीड़ा, स्वेदस्राव, और क्लिन्नता हो, गन्ध आती हो एवं जिस के नेत्र, मुख और त्वचा पीले वर्णवाले हों, जो सूजन पहले शरीर के मध्यभाग (अर्थात् उदर और कटिभाग) से शुरू हो, त्वचा पतली हो और अतिसार

(अर्थात् दस्त होते) हों तो उसको पित्तजनित शोथ जानना चाहिए। कफ के शोथ का वर्णन इसप्रकार किया गया है।

"यः शीतलः सक्तगतिः कण्डूमान्पाण्डुरेव च।
निपीडितो नोन्नमति श्वयथुः स कफात्मकः॥
यस्य शस्त्रकुशच्छेदाच्छोणितं न प्रवर्तते।
कृच्छ्रेण पिच्छां स्रवति स चापि कफसम्भवः॥"
(चरक सू० अ० १८ श्लो० ६-७)

अर्थात् जिस में शीतलता हो, हाथ पाँवादि अङ्गों की क्रिया शिथिल पड़जाय, खुजली और पांडुता हो तथा दबाने से जो ऊपर को नहीं उभरे वह कफजन्य शोथ होता है एवं जिसको शस्त्र के द्वारा काटने से रुधिर न निकले और बड़ी कठिनता से पिच्छिलतायुक्त स्राव होता हो, उसको भी कफजनित शोथ जानना चाहिए। ये संक्षेप से शोथ के लक्षण हुये। इन उपर्युक्त लक्षणों में से जहाँ दो दो दोषों के लक्षण मिलें उसको द्विदोषजशोथ- और जहाँ तीनों दोषों के लक्षण मिलें उसका त्रिदोषज शोथ जानना चाहिए।

" छर्दिः श्वासोऽरुचिस्तृष्णा ज्वरोऽतीसार एव च।
सप्तकोऽयं स दौर्बल्यः शोथोपद्रवसंग्रहः॥ "
(चरक सू० अ० १८)

अर्थात् वमन, श्वास, अन्नमें अरुचि, तृषा, ज्वर, अतीसार, और दुर्बलता ये सात शोथ के उपद्रव होते हैं।

चिकित्सा—जिस शोथ रोगीके ये उपद्रव तथा अन्यान्य उपद्रव बहुत बढ़ेहुए न हों तथा अन्यप्रकार से भी साध्यासाध्य का विचार कर और जिस के हृदय में कोई विकार न हो तो वैद्यको ऐसे रोगी की चिकित्सा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त असाध्य लक्षणों वाले रोगी की चिकित्सा करने से वैद्य को सिवाय अपयश के और कुछ प्राप्त नहीं होता है।

स्थान—शोथरोगी को जहां सील न हो, ऊँची, शुष्क और साफ़ जगह हो तथा जहाँ शुद्धवायु का आवागमन हो, ऐसे स्थान में रखना चाहिये। कमरे में एक तरफ अग्नि कोयले जलते रहें तो और भी अच्छा हो।

पथ्य—साधारणतः हलके, रुचिकारक, स्वेदजनक तथा मल-मूत्र का अवरोध न करने वाले पदार्थों का शोथ रोगी को पथ्य देना चाहिये ! जैसे कुलथी, मूँग, पुनर्नवा परवल, सूखी मूली आदि । इसमें मानकंद का मंड विशेष हितकारी होता है ।

औषधि—वातजनित शोथ रोग में प्रथम अण्डी का तेल पान कराकर विरेचन (जुल्लाब) देवे । फिर दशमूलके क्वाथ के साथ त्र्यूषणादि लोह तीन २ रत्ती परिमाण प्रतिदिन प्रातः सायंकाल सेवन करावे । यदि मल कठिनता से उतरता हो और शुष्क हो तो त्रिफला, पुनर्नवा और गोखुरू इनके क्वाथ के साथ त्र्यूषणादिलोह को उक्तमात्रा से सेवन करावे । १०—या १५—दिन तक इस औषध को इसी प्रकार निरन्तर सेवन कराने से शोथ रोग में लाभ होता है । मलबद्धता होनेपर चौथे, पाँचवें दिन गोमूत्र और दशमूल के मिश्रित क्वाथ की वस्ति देने से विशेष लाभ होता है ।

पित्तशोथ में—पुनर्नवा, नीम, पटोलपात, सोंठ कुटकी, गिलोय, दारुहल्दी और हरड़ इनका बनाया हुआ क्वाथ प्रातःकाल पान कराने से पित्तशोथ में विशेष उपकार होताहै और दस्त खुल कर आता है । इसके अतिरिक्त मध्यान्ह और सायंकाल में सुदर्शनचूर्ण को उष्ण जलके साथ सेवन करावे ।।शोथ के रोगी को जहाँतक हो, जल कम पिलाना चाहिए।

बालकों के पित्त के विकार (अर्थात् जिगर की विकृति) से जो एक प्रकार का शोथ होता है उस में ज्वर रहता है और बालक पीला पड़जाता है। इस शोथ को भी असाध्य ही समझना चाहिए। तथापि प्रारम्भ में जब कि इस शोथ के अधिक उपद्रव न बढ़े हों तब बछिया के मूत्र के साथ पटुकादिलोह को १ रत्ती मात्रा से दिन में तीनबार देने से लाभ होते देखा गया है। इसमें बालक को केवल दूधका ही पथ्य देना चाहिए।

कफ के शोथ में—रोगी की अवस्था का विचार कर इस में पहले वमन कराया जाय तो बहुत अच्छा है। फिर त्र्योषादि मण्डूर को [illegible] मासे की मात्रा से प्रातः सायंकाल अडूसे को जड़, गिलोय और कटेरी के २ तोले क्वाथ के साथ सेवन करावे । इसमें मासिक

करने के लिए शुष्कमूलक तेल का व्यवहार करना बहुत अच्छा है। शोथ रोग की चिकित्सामें इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि शोथ स्वयं उत्पन्न हुआ है या किसी अन्य रोग से उत्पन्न हुआ है। यदि किसी रोग विशेष से शोथ हुआ हो तो उसरोग की प्रथम चिकित्सा करनी चाहिए। बहुधा शोथ रोग दूसरे रोगों का फलस्वरूप ही हुआ करता है। जो स्वतन्त्र शोथ होता है, वह पहले पैरों से प्रारम्भ होता है और उस में हृदय की विकृति पायी जाती है। उसमें हृदय को बल प्रदान करने वाली ओषधिका उपयोग करना चाहिए। जैसे-कस्तूरी,कुङ्कुमासव, और कुचले का आसव २-३ बूँद की मात्रा से सेवन कराने से यदि किवाड़ों की खराबी नहुई हो तो हृदय का विशेष शक्ति सम्पन्न करता है। यदि रोगी को दस्त होते हों और दिल कमज़ोर हो तो दुग्धवटी का सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है।

शिलाजीत, कंसहरीतकी, मानकन्द का मंड, चन्द्रप्रभावटी, आरोग्यवर्द्धिनरस और गोक्षुरादि गुग्गुलु ये सब प्रयोग शोथरोगकी अवस्थाविशेष में अत्यन्त हितकारी हैं।

अब हम यहाँ एक शोथ रोगी का वर्णन करतेहैं,जो कि एक उच्च कुल का मनुष्य था। उसको पहले एक ज्वर (डेङ्गू फीवर) हुआ था, फिर शोथ होगया। ऐसी अवस्था में उसने एक पुराने अ० सर्जन की चिकित्सा प्रारम्भ की। इस चिकित्सा में केवल दूधका पथ्य दियागया और अच्छे प्रकार से चिकित्सा कीगई, परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। उस के पश्चात् उस रोगी ने एक सुप्रसिद्ध यूनानी चिकित्सक से चिकित्सा कराना प्रारम्भ किया। इन इलाज में दाल, रोटी और मांसरस का पथ्य दियागया। परन्तु बहुत दिन तक लाभ न होनेपर उन चिकित्सक महोदयने साफ़ साफ़ कह दियाकि अब हम इसमें कुछ नहीं करसकते, जो करना था सो कर चुके। इसके पश्चात् आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ में मूत्रकी परीक्षा करने से उसमें ओजधातु पायी गई। गुर्दों की खराबी होनेसे उसके सार्वाङ्ग शोथ मालूम हुआ। उसके हृदय यन्त्र की क्रिया का भी कुछ विकार प्रतीत हुआ तब रोगीको अन्न और लवण का त्याग कराकर केवल बकरी-गायके दूधका पथ्य देकर चिकित्सा

प्रारम्भ की गई। पहिले दिन रोगी ने २४ घंटे में कोई आधसेर दूध पिया था। उसके पेटमें मलकी गाँठें पड़जाने से दस्त नहीं होता था और मूत्र भी दिन रातमें कोई १छटाँक होता था। ऐसी अवस्थामें हमने उसको प्रतिदिन प्रातः सायङ्काल दो रत्ती ड्यूषणादि लोह त्रिफलेके कषायके साथ सेवन कराना शुरू किया। इससे कुछ दिन में ही रोगी २४घंटेमें २॥सेर से ३सेर तक दूध पीने लगा और दिनमें २-३ बार गेहूँ का रस भी पीलेता था। शीत ऋतु थी, परन्तु फिर भी लाभ हुआ। १५ दिनके बाद दोपहर को तीन ३ रत्ती पारमाण शिलाजीत भी दिया जाने लगा। बीचमें कभी रोगी को कब्ज़ पड़जाता था, इसलिए उस समय हम उसके बस्ति प्रदान कर पेट साफ़ कर दिया करते थे। इस प्रकार चिकित्सा करने से २५ दिनके बाद हृदयमें कुछ दुर्बलता बनी रहने से दिनमें एक बार दो तीन बूँद की मात्रासे कुचले का आसव भी देना शुरू किया। इससे रोगी का मूत्र खुलकर आने लगा और उसके जोड़ों का दर्द दूर होगया। इसप्रकार चिकित्सा करनेसे बिल्कुल शोथ के दूर होजानेपर ४४ वें दिन हमने रोगी को कुलथी की दाल के यूष का पथ्य दिया। फिर क्रमसे रोगी आरोग्य लाभ करता गया।

—:०:—

श्वेत-कटेरी।

(लक्ष्मणा)

संस्कृत नाम—श्वेता, क्षुद्रा, चन्द्रहासा, लक्ष्मणा, क्षेत्रदूतिका, गर्भदा, चन्द्रभा, चान्द्री, चन्द्रपुष्पा, प्रियंकरी, कण्टकारिका, कण्टकिनी, श्वेतकण्टकारी, धावनी, श्वेतक्षुद्रा इत्यादि। हिन्दी-सफ़ेद कटेरी, सफ़ेद फूल की कटैय्या, श्वेत कण्टकारी।

विवरण—श्वेतकटेरी कटेरी का ही भेद है। श्वेत कटेरी भी सामान्य कटेरी की समान छोटी बड़ी दो प्रकार की होती है। किसी किसी के मतसे तीन प्रकार की होती है। क्षुद्रा और बृहती दोनों ही प्रकार की श्वेत कटेरी भी होती है। सामान्य कटेरी

की समान श्वेतकण्टकारी का क्षुप, पृथ्वी पर फैला होता है । बड़ी श्वेत कटेरी का क्षुप बड़ी कटेरी की समान होता है। दोनों के शाखा, पत्ते और फल दोनों कटेरियों के समान होते हैं। केवल श्वेतकण्टकारी में फूल सफ़ेद आते हैं। साधारणतः छोटी श्वेतकण्टकारी ही यहाँ अधिक देखने में आतीहै। इसपर चमेलीकीसमान लगेहुए श्वेतपुष्प बड़ेही सुन्दर मालूम होते हैं। साधारणतः छोटी सफ़ेद कटेरी को ही बहुत लोग लक्ष्मणा कहते हैं। पर कितने ही प्राचीन और आजकलके वनस्पतितत्त्व विशारदों के मतसे लक्ष्मणा एक प्रकार का कन्द निर्धारित हुआ है। यद्यपि श्वेतकंटकारी का भी एक संस्कृत नाम लक्ष्मणा है, पर इससे वह प्रधान लक्ष्मणा ओषधि का आसन ग्रहण नहीं करसकती। तथापि श्वेतकण्टकारी लक्ष्मणाकी अपेक्षा गुणोंमें किसी प्रकार कम नहींहै। लक्ष्मणा की ही समान इसमें गर्भ संजननी तीव्र शक्ति है। यह गर्भाशय सम्बन्धी विकारोंको दूर करती है और गर्भाशय को शुद्ध करती है एवं गर्भोत्पादिका शक्ति को जागृत् करती है। परन्तु श्वेतकटेरी बहुत कम पैदा होती है, ढूँढ़ने से कहीं कहीं मिलजाती है। प्रायः यह रेतली भूमिमें अधिक होती है। इसकी शाखा प्रशाखायें खूब फैलती हैं और फूल-फल अधिक आते हैं एवं जड़ भी कुछ मोटी होती है। जहाँ जहाँ यह मिलती है वहाँ इसके बड़े बड़े छत्ते होते हैं।

गुणदोष ।

"कण्टकारी सरा तिक्ता कटुका दीपनी लघुः ।
रूक्षोष्णा पाचनी कासश्वासज्वरकफानिलान् ॥
निहन्ति पीनसं पार्श्वपीडाकृमिहृदामयान् ।
लक्ष्मोक्ता सिता क्षुद्रा विशेषाद्गर्भकारिणी ॥"

अर्थात् सफ़ेद कटेरी-कड़वी, चरपरी, दस्तावर, अग्निको दीपन करने वाली, हलकी, रूखा, गरम, पाचक, खाँसी, श्वास, ज्वर, कफ-वातके रोग, पीनस एवं पार्श्वरोग, कृमिरोग और हृदय रोग को नष्ट करती है और विशेषकर गर्भ को उत्पन्न करने वाली है। तथा नेत्रों को हितकारी, रुचिकारक और पारे को बाँधने वाली है।

"तयोः फलं कटु रसे पाके च कटुकं भवेत्।
शुक्रस्य रेचनं भेदि तिक्तं पित्ताग्निकृल्लघु॥'
हन्यात्कफमरुत्कण्डूकासमेदः कृमिज्वरान्॥
(भाव प्र०)

अर्थात् श्वेत तथा सामान्य दोनों प्रकार की कटेरियों के फल रस में और पाक में कटु (चरपरे), शुक्रनाशक, भेदक (दस्तावर), कड़वे, हलके, पित्त और अग्नि को दीपन करने वाले हैं। तथा कफ और वायु के विकार, खुजली, खाँसी, मेद, कृमि और ज्वर इन सब रोगों को विनाश करते हैं। इसके सिवा इस कटेरी का सर्वाङ्ग ओषधि के काम में आता है।

प्रयोग—वातजनित नेत्ररोग में श्वेतकटेरी की जड़को बकरी के दूध में पीसकर उसको गरम करके सुहाता २ नेत्रों पर लेपन करने से लाभ होता है। एवं अन्य प्रकार के नेत्ररोगों में श्वेत कटेरी को अंजन में मिलाकर नेत्रों में आँजने से लाभ होता है। खाँसी में श्वेत कटेरी का स्वरस निकाल कर उसमें दो काली मिरचें और एकरत्ती सहालु का चूर्ण डालकर सब प्रकार की खाँसी में प्रयोग करना चाहिये। मूत्रदोष को दूर करने के लिए श्वेतकटेरी के स्वरस अथवा कल्क को शहद में मिलाकर सेवन करना चाहिये। मूत्राघात में श्वेतकटेरी के स्वरस को (अभावमें क्वाथ को) वस्त्र में छानकर पान करना चाहिये। मूत्रकृच्छ्र में श्वेत कटेरी के रसको शहद में मिलाकर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है। बालकों की पुरानी खाँसी में श्वेतकटेरी के फूल को केसर का चूर्ण करके शहद में मिलाकर चटाने से बहुत दिनों की उत्पन्न हुई बालकों की खाँसी शीघ्र दूर होती है। पीनस रोग में इस का क्वाथ पान करना हितकर है। मदात्यय रोगकी पिपासा में षडङ्ग यूष की विधि से प्रस्तुत किये हुए श्वेतकण्टकारी के जल को पान करना चाहिये। वातज अर्शरोग में वायु को शमन करने के लिए और कोठे को शुद्ध रखने के लिये श्वेतकण्टकारी के क्वाथ के अनुपान से अर्शनाशक औषध सेवन करनी चाहिए। अश्मरी रोग में—बड़ी श्वेतकटेरी की जड़की छाल को मीठे दही के साथ पीसकर सात दिन तक पान करने से अश्मरी (पथरी) चूर्ण २ होकर निकल

आती है। षड्ङ्गयूष की विधि से श्वेतकटेरी का जल बनाकर उसमें मूँग का यूष सिद्ध करे। फिर उस में हल्दी और जिस से कि बहुत खट्टे न हो सके इतना आमलों का रस मिलाकर सेवन करना खाँसी में विशेष उपयोगी है। श्वेतकटेरी का वहक १ तोला और उससे आधी हींग दोनों को शहद में मिलाकर सेवन करने से प्रबल श्वासरोग तीन दिन में शमन होता है। श्वेतकटेरी के चौगुने रस में पकायेहुए रसों के तेल को सेवन करने से अलस रोग दूर होता है। शकुनीग्रह को शमन करने के लिए बालकों के गले में या बाँह में श्वेतकटेरी की जड़ बाँधनेनी चाहिये।

गर्भस्थिति के लिए पुष्यनक्षत्र में रविवार के दिन श्वेत कटेरी की जड़ को लाकर उसको कन्या के हाथ से घिसवा कर और गो दुग्ध में मिलाकर ऋतुस्नान के पश्चात् चौथे दिन से लेकर १६ दिन तक स्त्री को पान करानी चाहिये। फिर पुत्र की कामना करने वाले दम्पति को युग्म रात्रियों (४-६-८-१०-१२-१४ और १६) में और कन्या की अभिलाषा करने वाले दम्पति को अयुग्म रात्रियों (५-७-९-११-१३ और १५) में सहवास करना चाहिये। इसप्रकार करने से बन्ध्या स्त्री के भी गर्भ उत्पन्न होता है। ध्वजभंग रोग में श्वेत कटेरी के बीजोंको पीसकर शिश्नेन्द्रिय पर लेप करके अरण्ड के पत्ते बाँध देने चाहियें। इस प्रकार तीन पट्टी बाँधने से ही ध्वजभंग रोग दूर हो जाता है। सर्पके काटने पर श्वेतकटेरी की जड़को पीसकर बार बार रोगीको पिलाना चाहिये और उसे सोने नहीं देना चाहिये इससे सर्पका विष बहुत शीघ्र दूर हो जाता है। ज्वरमें श्वेतकटेरी के पञ्चाङ्गका क्वाथ पान कराना चाहिये। दन्तपीड़ा में इसकेफलों को पीसकर धूनी देने से उक्त पीड़ा शीघ्र शान्त हो जाती है। यदि इस ओषधि को इस प्रकार सेवन करने पर भी स्त्री के गर्भ स्थिर न हो तो पुरुष को इसका सेवन करना चाहिये। ऋतुस्नान के पश्चात् चौथे दिन से लेकर १६ रात्रि पर्यन्त दोनों स्त्री पुरुषों को श्वेतकटेरीका सेवन करना लिखा भी है। अथवा पुष्य या हस्त नक्षत्र और उत्तम चन्द्रमा में ऋतुमती स्त्री को उपवास कराकर रात्रिके समय श्वेतकटेरी की जड़ को जलमें पीसकर उसकी नासिका के दहिने नथनेमें सिञ्चन करना चाहिये। इस विधि से इसका प्रयोग

करने पर भी अवश्य सन्तान उत्पन्न होती है। इस विधिका प्रयोग करते समय निम्नलिखित मंत्रसे उसको प्रोक्षण करे।

मन्त्रः-"इयमोषधिः त्रायमाणा सहमाना सरस्वती अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नामकरो भव।"

(सँ० या०)

प्रसवकाल की पीड़ा में शीघ्र सन्तान उत्पन्न होने के लिए जल स्राव होने के पश्चात् २॥ तोले श्वेतकटेरी को अठगुने जल में पका कर अष्टमांश जल शेष रहने पर उतार कर छानलेवे। फिर उस क्वाथ को थोड़ा २ करके पिलावे तो प्रसव की वेदना दूर होकर शीघ्र सन्तान उत्पन्न होती है।

श्वेत कटेरी के पञ्चाङ्ग को छाया में सुखाकर चूर्ण करलेवे। फिर ३ माशे से लेकर ५ माशे तक इस चूर्णको और एक रत्ती रस सिन्दूर को शहद में मिलाकर सेवन करे। इस पर घृत सेवन नहीं करे और पथ्य से रहे तो सब प्रकारका श्वास, कास रोग दूर होता है। इसके क्वाथ को ६ माशे शहदके साथ सेवन करने से भी पूर्ण लाभ होता है। श्वेतकटेरीकारस ६ माशे, गिलोयका रस १॥ तोले और शहद ६ माशे तीनों ओषधियों को एकत्र मिलाकर ११ दिन तक प्रातः सायंकाल सेवन करने से श्वास, खाँसी, शोथ और प्रमेह रोग में विशेष उपकार होता है। श्वेत कटेरी के पञ्चाङ्गका चूर्ण १॥ तोला और बबूलकी अन्तर्छालका चूर्ण १॥ तोला दोनों को २॥ तोले मिश्री में मिलाकर नित्य प्रातःकाल तीन२ माशे परिमाण सेवन करने से प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर और स्वप्नदोष दूर होता है। जिस स्त्री के प्रबल प्रदर रोग हो और किसी भी औषध से लाभ न होता हो तो श्वेतकटेरी का स्वरस ६माशे, कीड़ाकी पत्ती का चूर्ण ३माशे और काली मिर्चों का चूर्ण १माशा लेकर तीनों को एकत्र मिलाकर सेवन करे और खटाई, मिरच, गुड़, तेल तथा गरम चीजों का त्याग करे तो इससे सब प्रकार का प्रदररोग नाश होता है। श्वेत कटेरी, हींग और गुलाबके पञ्चाङ्ग को तेलमें पीसकर मुखमें धारण करके यदि सहवास करे तो अवश्य गर्भोत्पत्ति होती है। श्वेत कटेरी ६ तोले, सोंठ १३ तोले और मिसोत १३ तोले इनको चूर्ण कर ६ एकवर्णा गौ के दूधके साथ यदि ऋतुमती स्त्री ऋतुस्नान के

पश्चात् १२ दिन सेवन करे तो इसके पुत्र उत्पन्न होता है। एवं श्वेतकटेरी १ तोला बड़की शाखा १ तोला और असगन्ध १ तोला इनका एकत्र चूर्ण करके बछड़े वाली गौ के दूधके साथ ऋतुस्नानके ५वें दिन से स्त्री को सेवन करावे। कोई कोई इसको मासिकधर्मके शुरू होते ही सेवन कराते हैं, परन्तु हमारी राय में इसको ऋतुस्नान के ५ वें दिन से ही सेवन कराना ठीक है। इस पर यदि बछड़े की बजाय बछिया वाली गौ का दूध दिया जावगा तो पुत्रकी अपेक्षा कन्या उत्पन्न होगी। इससे बछड़े वाली गायका ही दूध देना चाहिये। यह प्रयोग पुत्रोत्पत्ति के लिये अत्युत्तम है। अथवा बड़की जटा २॥ तोला, पीपलकी शाखा २ तोले, शतावर ३ तोले और श्वेत कटेरी ४ तोले इन सबको एकत्र कूट पीसकर ऋतुमती स्त्री को स्नानके पश्चात् २१ दिन पर्यन्त सवत्सा गौ के दूधके साथ सेवन कराने से अवश्य सन्तान होती है। इसको सेवन करने पर स्त्री को ब्रह्मचर्य्य से रहना चाहिए, और तेल, मिरच, खटाई आदि तीक्ष्ण तथा गरमपदार्थ नहीं खाने चाहिए। श्वेतकटेरी और हाथीदांतके चूर्ण को समान-भाग लेकर खांडके साथ मिलाकर ऋतुस्नान के बाद सेवन करने से भी सन्तान उत्पन्न होती है।

छोटी इलायची, जामुन, जावित्री, कायफल, मजू, झड़बेरी की जड़ की छाल, काबुली हरड़, अनार की छाल, विजया (भाँग), शुलावर, केशर, श्वेतकटेरी के पुष्प, और पीपल की जटा इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपड़छन करलेवे। फिर उस चूर्ण में सबसे दुगुनी मिश्री मिला लेवे। इस चूर्ण को प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक तोला परिमाण लेकर २ तोले शहद और १ तोला घी में मिलाकर सेवन करे और ऊपर से आध सेर गायका दूध पिवे। इस औषध के सेवन करने से स्त्रियों का आठप्रकार का बन्ध्यत्वदोष दूर होकर उत्तम सन्तान उत्पन्न होती है। एवं मृतवत्सा स्त्री तथा गर्भपात, बालग्रह, बालशूलना आदिकेलिए भी यह उत्कृष्ट औषध है।

हाथ-पाँव में जलन अथवा किसी प्रकार का भी जखम हो तो श्वेत कटेरी को पीसकर लेप करनेसे जलन तथा व्रण शीघ्र दूर होजाते हैं।

प्राचीनोंके मतसे श्वेत कटेरी को सेवन करने से कण्ठस्वर की वृद्धि होती है, इसलिये स्वरभङ्ग रोगमें इसका प्रयोग करना चाहिये। श्वेत कटेरी शीतको शमन करने वाली है इसलिये इसको सन्नि

वात ज्वर में प्रयोग करना चाहिये। श्वेत कटेरी अङ्गोंकी पीड़ा को शमन करती है इस कारण इसको वातविकार और ज्वर में व्यवहार करना चाहिये। एवं यह हिचकी, कास, श्वास और शोथ नाशक है। (च० सू० ४ अ०)

सुश्रुतने भी बृहत्यादिगण में श्वेतकटेरी का इसी प्रकार उल्लेख किया है।

भावप्रकाशके मत से श्वेतकटेरी गर्भकारिणी है; इसलिये वन्ध्यत्व दोषको निवारण करनेके लिये इसको सेवन कराना चाहिये।

आजकल के नव्य चिकित्सकों के मतसे श्वेतकटेरी मृदु रेचक, आध्मान, वात और कफनाशक एवं मूत्रल है। श्वेत कटेरीका अव लेह श्वास, कफरोग, फुफ्फुसके कारण उत्पन्न हुआ कफदोष, ज्वर, अफारा एवं वक्षःस्थल की पीड़ा और पार्श्वशूल में सेवन करना चाहिये। श्वेतकटेरी का क्वाथ मूत्रकारक होनेके कारण मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और शोथ रोगमें हितकारी है। मृदुरेचक होनेसे कोष्ठबद्धता में उपयोगी है। अपक्व (बिना पके) फोड़े या व्रण (घाव) आदि के ऊपर श्वेतकटेरी के बीजों को पीसकर लेप करने से फोड़ा पक जाता है। श्वेतकटेरी के बीजोंका धूम [illegible] और दाढ़ में कीड़ा लगजाने के कारण उत्पन्न हुए शूलको शमन करता है।

इसके स्वरस को १ तोला से २ तोले तक, क्वाथ को ५ से १० तोले तक और कल्कको ४ से ८ माशे तक सेवन कराना चाहिये।

आ० भू० पं० करमचन्द शर्मा वैद्यशास्त्री

देसी (बीकानेर)।

परीक्षित-प्रयोग।

प्राचीनव्रण, नाड़ीव्रण, दुष्ट व्रण आदि व्रणों पर रामबाण प्रयोग।

नीमकी छाल अथवा नीमके पत्ते १ छटाँक, सहिंजने की छाल १ छटाँक, लाल कनेर के पत्ते १ छटाँक चूना, १ छटाँक, लहसन एक

जिनको श्वेतकटेरी (लक्ष्मणा) की आवश्यकता हो वे लेखक महोदय अथवा वैद्य कार्यालय, मुरादाबाद से मँगा सकते हैं।

मुद्रांक, हरताल ६ माशे, मैनसिल ६ माशे और गाँजा ३ माशे लेवे। प्रथम उपर्युक्त पत्तों वा छालको पीसकर अथवा छेचकर सब को एकत्र करलेवे। पश्चात् आधसेर सरसोंकेतेलमेंमिलाकर मिट्टी के पात्र में मन्द मन्द अग्नि से पकावे। जब ये सब चीजें उत्तम प्रकार से भुन जांय तब नीचे उतारकर रखदेवे। बसश्री यह तैयार हो गई समझिये। यह तेल खुश्क या तर किसी प्रकार की भी खुजली पर लगाने से एक दिन में ही खुजलीको दूर करदेता है। इस तेलको तीन चार दिन तक व्यवहार करने से खुजली समूल नष्ट हो जाती है। बालकों को यह औषध जितनी जल्दी आरोग्य करती है, उतनी जल्दी यद्यपि वृद्ध मनुष्यों का लाभ नहीं पहुँचाती तथापि यह औषध निरन्तर सेवन करते रहने से उनके रोगका शमन अवश्य करती है। इसका कारण यह है कि बालकों का रुधिर नवीन होता है, इसलिये उनके शरीर में इस औषध का असर शीघ्रता से हो जाता है। बस इसीसे कुछ विभिन्नता हो जाती है।

एक दिन एक नासूर वाला आदमी हमारे पास आया, हमने उसको यही औषध व्यवहार करने के लिये दी। नासूर में कपड़े की बत्ती बना कर उसके द्वारा औषध लगाई गई। वही बत्ती इस तेलके द्वारा बार बार तर करदी जाती थी। इससे दो दिन में ही नासूर में आश्चर्यजनक फल हुआ, नासूर भरने लगा और वह चार पांच दिनमें बिलकुल आराम हो गया। एक आदमीके अत्यन्त दूषित और बहुत बड़ा घाव होगया था, उसके भी परीक्षा के लिये यह तेल लगाया गया, उसे भी तुरन्त लाभ हुआ। इसके पश्चात् जब और दो चार घाव वाले रोगियों को यह औषध व्यवहार कराने से उत्तम फल प्राप्त हुआ तब यह समझा गया कि यह केवल घावकी एक साधारण औषध है। और मनुष्यके ही नहीं, पशुओं तक के घाव इससे आराम होते देखे गये हैं। इससे कभी कुछ हानि नहीं होती; प्रायः सभी अवस्थाओं में लाभ होते देखा है। एक दिन में ही घाव लाल होकर सूखना शुरू हो जाता है। इस तेल में एक प्रकारकी दुर्गन्ध आती है, किन्तु वह किसी सुगन्धि के अथवा कपूरके मिला देने से दूर हो सकती है- और औषध का भी कुछ गुण नष्ट नहीं होता। खुजली वाले रोगी को प्रतिदिन उत्तम सरसों के तेलकी मालिश करके स्नान कराना

कच्ची हल्दी, सरसों और नीम के पत्ते इन तीनों को समान भाग लेकर एकत्र पीस करके स्नान करने से पहले शरीर पर अच्छेप्रकार मर्दन करने से विशेष उपकार होता है। और यह तो मोटी सी बात है कि घावों को सदैव शुद्ध रखना चाहिए। साबुन का व्यवहार करना भी अच्छा है। किन्तु साबुन मलने से पहले यह तेल नहीं लगाना चाहिए; बल्कि स्नान करने के बाद लगाना चाहिए। उपर्युक्त औषध सुभीते के अनुसार दो तीन बार लगानी चाहिए। मृत्तिका इस रोग के लिए एक परमोपयोगी वस्तु है। मिट्टी को प्रातःकाल शरीर में मलकर धूप में बैठे। जब शरीर चटकने लगे तब साबुन मलकर और जलसे धोकर शरीर को साफ़ कर डालें। सब प्रकार को मृत्तिकाओंमें गङ्गा की मृत्तिका विशेष महत्वपूर्ण होती है। गङ्गा को मिट्टी से कुछ उपकार भी अधिक होता है। ऊपर जो औषध कही गई है, उसमें यदि सरसों के तेल की जगह चालमोगरे का तेल डालकर औषध तैयार की जासके तो और भी अच्छा हो। कोई कोई वैद्य इस औषध को पकाने से पहले इसमें ६ माशे तूतिया मिलाने की भी सम्मति देते हैं। —ः—

सहयोगी--संवाद।

चित्रमयजगत् (विशेषांक)—उक्त मासिकपत्र विविध प्रकार के अनेकों चित्रों और छोटे छोटे उपयोगी लेखों से विभूषित होकर १३ वर्ष से पूना के प्रसिद्ध चित्रशाला प्रेस से बड़े साइज में प्रकाशित होता है। वार्षिक मूल्य ४॥)

प्रस्तुत अङ्क इसके चौदहवें वर्ष का प्रथमाङ्क या विशेषाङ्क है। इसमें तीन रङ्गीन और १०० से अधिक सादे चित्र हैं। एवं १३ लेख और २ कवितायें हैं। चित्र सब उत्तम हैं। रङ्गीन चित्र अधिक चित्ताकर्षक हैं। लेख भी अच्छे हैं। 'गणिका के आवास में महात्मा का निवास' नामक लेख अधिक महत्त्व का है।

—०—

दिगम्बर जैन (विशेषाङ्क)—यह एक जैनधर्म सम्बन्धी मासिक पत्र है। कोई १६ वर्ष से सूरत से निकलता है। श्रीमूलचन्द किशनदास कापड़िया इसके सम्पादक और प्रकाशक हैं। वार्षिक मूल्य २)

नये वर्ष के उपलक्ष्य में इसका कार्तिक और अगहन मास का संयुक्त अङ्क या विशेषाङ्क बड़ी सजधज के साथ निकाला गया है। इसमें ४१ लेख और कवितायें हैं, तथा २१ चित्र हैं। लेख सब अच्छे

हैं। कई लेख अधिक सारवान् हैं। एक अंग्रेज़ी, एक संस्कृत, एक मराठी, ५ गुजराती और शेष हिन्दीभाषा के लेख हैं। धार्मिक सामाजिक, नैतिक, ऐतिहासिक, स्वास्थ्यरक्षा आदि सभी विषयों के लेखों का इसमें समावेश कियागया है। वैद्य के भी तीन लेख उद्धृत किये गये हैं। कवितायें सब साधारण हैं। चित्र सब बढ़िया और मनोहारि हैं। दो रङ्गीन चित्र हैं। एक राष्ट्रिय झण्डे का और दूसरा स्व० लाला जम्बूप्रसाद जी का। दोनों रङ्गीन चित्र बहुत ही सुन्दर हैं। टाइटिल पृष्ठ पर रा० ब० सेठ टीकमचन्द्र जी का चित्र दिया गया है। पिछले वर्षों की अपेक्षा इसबार का विशेषाङ्क अधिक महत्व का है। इसके लिए कापड़िया जी को बधाई देते हैं।

—०—

वीर—दिगम्बर जैनसमाज में अभी थोड़े दिनों से दो दल हो गये हैं। एक पण्डित दल और दूसरा बाबू दल। महासभा में प० दल को ही अधिक चलती देखकर गत देहली के मेले में बाबू दल के सभ्यों ने "भारतवर्षीय दिगम्बर जैनपरिषद्" नाम की अपनी एक नवीन सभा स्थापित की है। यह वीर पत्र उक्त परिषद् का पाक्षिक पत्र है। अभी बिजनौरसे निकलना आरम्भ हुआ है, इसके सम्पादक जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी और उपसम्पादक बाबू कामताप्रसाद जी जैन हैं। ब्रह्मचारी जी के एक लेख से ज्ञात होता है कि वे नाममात्र के सम्पादक हैं। सम्पादकीय समस्त भार उपसम्पादक बाबू कामताप्रसाद जी पर ही है। ब्रह्मचारी जी का नाम तो केवल पत्र की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए यों ही देदिया गया है। हमारी राय में तो इस प्रकार की कार्यवाही से पत्र की प्रतिष्ठा कभी नहीं बढ़सकती।

इसकी प्रथम वर्ष की छठी संख्या हमारे सामने है। इसमें सब मिलाकर ११ लेख और कवितायें हैं। लेखों का चुनाव अच्छा होने परभी भाषा क्लिष्ट और बेमुहाविरे है कविताएँ बहुतही साधारण हैं। (पत्र में उन्नति की बहुत गुंजायश है। हम इसकी हृदय से उन्नति चाहते हैं। इसका वार्षिक मूल्य २॥) और उक्त परिषद् के सदस्यों से केवल २) वार्षिक लिया जाता है। प्राप्तिस्थान-श्रीराजेन्द्रकुमार जैन, बिजनौर। यू० पी०।

—०—

धन्वन्तरि (महोत्सवाङ्क)—यह वैद्यक सम्बन्धी मासिक पत्र विजयगढ़, (जिला अलीगढ़) से कोई ६महीने से निकलने लगा है।

इसके सम्पादक और प्रकाशक वैद्य बाँकेलाल जी गुप्त हैं। वार्षिक मूल्य २) और इस अङ्क का मूल्य ॥=) है।

इस महोत्सवाङ्क या विशेषाङ्क में कई चित्र और वैद्यक के विविध विषयों पर ११ लेख हैं। आदि में भगवान् धन्वन्तरि का रङ्गीन चित्र बड़ा ही मनोरम है। दूसरे शारीरिक व सूर्य्यरश्मिचिकित्सा सम्बन्धी चित्र भी अच्छे हैं। लेखों का संग्रह अच्छा हुआ है। पत्र उपयोगी है। हम सहयोगी का हार्दिक स्वागत करते हैं।

—o—

अनुभूत योगमाला—यह वैद्यक सम्बन्धी मासिक पत्रिका एक वर्ष से प० विश्वेश्वरदयालु जी वैद्य के सम्पादकत्व में बरालोकपुर, इटावा से निकलने लगी है। छपाई, कागज़ बहुत मामूली। वार्षिक मूल्य १)।

इसमें अनुभूत योग खोज खोज कर प्रकाशित किये जाते हैं। साथ ही रोग सम्बन्धी प्रश्नोत्तरों को भी स्थान दियाजाता है। इसके द्वारा ग्रामीण वैद्य और सर्वसाधारणजन अधिक लाभ उठासकते हैं।

—o—

मित्रम्—यह संस्कृतभाषा का पाक्षिक पत्र है। गत आषाढ़ मास से मुज़फ्फरपुर से निकलता है। इसके सम्पादक गो० भैरवगिरिजी और प्रकाशक श्रीनर्मदेश्वर ओझा हैं। वार्षिक मूल्य २) किन्तु विद्यार्थियों को अर्द्धमूल्य में मिलता है।

इसमें प्रायः छोटे छोटे सामाजिक लेख प्रकाशित कियेजाते हैं। सम्पादकीय टिप्पणियाँ मजेदार होती हैं। समाचारादि का भी अच्छा संग्रह रहता है। संस्कृत सरल होती है। पत्र संस्कृतप्रेमियों को अपनाना चाहिए। —o—

प्राणरक्षा—यह गोरक्षा विषयक साप्ताहिक पत्र मथुरा से निकलता है। इसके सम्पादक और प्रकाशक श्रीयुत नटवरलाल जी चतुर्वेदी हैं। वार्षिक मूल्य २)।

इसमें गोरक्षा सम्बन्धी अच्छे२ लेख प्रकाशित होते हैं। सम्पादन उत्तम ढङ्ग से होता है। प्रत्येक भारतीय को यह पत्र मँगाकर पढ़ना चाहिए।

भारतगोहितैषी—यह भी गोरक्षा सम्बन्धी साप्ताहिक पत्र है। इसका विषय नाम से ही विदित होता है। वैद्यभूषण प० लक्ष्मीनारायण जी फरलिया, श्रीवैद्यप्रकाश शर्मा आदि के सम्पादकत्व में देहली से निकलता है। वार्षिकमूल्य ४)

लायक़ सिविल-सर्जन।

आजकल हिन्दुस्तान में मौतों की तादाद क्यों बढ़ रही है, इसके और और सबबों में से एक ख़ास सबब लायक़ हकीम और डाक्टरों का न होना भी है। जो लायक़ कहे जासकते हैं, उनमें आलस्य, लोभ और घमण्ड घुस बैठता है। वे बीमार की जैसी अच्छी तरह से चाहिये, वैसी देखभाल नहीं करते। ग़रीब और अमीर के प्रति उनका व्यवहार भी ग़रीब और अमीर हो होता है। फिर सरकारी अस्पतालों के डाक्टरों की आदत तो प्रायः और हो ढङ्ग की होती है; इससे वहाँ के रोगी, अगर गहरी नज़र से देखाजाय तो आराम पाने में बहुत कुछ नाकामयाब होते हैं।

आज यह ख़बर सुनाते हमें बड़ी खुशी होती है, कि मुरादाबाद के सरकारी अस्पताल में इस वक्त जो सिविलसर्जन महोदय हैं, वे निहायत लायक़, अपने काम में एकता और बड़े रहमदिल हैं। आप का पूरा नाम है मि० J. F. Boyd Esgr, Major I M. S. Civil Seregeon, Moradabad. आप की सिफ़ात और व्यवहारों ने सब के दिलों पर अच्छी तरह जगह कर ली है। उस दिन हमें अपनी स्त्री के पैर में आपरेशन कराने के लिये उक्त अस्पताल में जाना पड़ा। उस वक्त आपका सब से एकसा व्यवहार, मिलनसारी और रोगियों का इलाज करने का तरीक़ा देख, हम तो अचरज में आगये। हमारे ऊपर तो आपकी अपार कृपा रही हो, हमने वहाँ रहकर और और बीमारों के साथ भी आपका व्यवहार निहायत बेहतर पाया। यही सबब है, जो आपके हाथों द्वारा कोई ही बदनसीब फ़ायदा न पाता होगा, वर्ना जितने भी बीमार आते हैं, उन में से प्रायः सभी रोगी नीरोग होकर जाते हैं। सर्जरी का काम तो आप क़ाबिल तारीफ़ करते हैं। समय का कुछ ख़याल न कर आप बड़ी तवज्जह के साथ आपरेशन करते हैं। रोगी को किसी क़िस्म की तकलीफ़ होने पर भी आप बड़ा ख़याल रखते हैं। आपके सबब से अमले में अधिकारीवर्ग का बर्ताव भी अच्छा है। पढ़े लिखों की बनिस्बत आप ग्रामीणों और ग़रीब निःसहायों की ओर भी अधिक बातचीत और रोग की पूछताँछ करते हैं। आशा है मुरादाबाद और ज़िले की जनता आपकी चिकित्सा से अवश्य लाभ उठायेगी। आप ग़रीबों के आश्रय, असहायों के सहायक और

दोनों के परम बन्धु हैं। हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं, कि सभी ज़िला अस्पतालों को आप ही जैसा योग्य सर्जन नसीब हो।

—o—

विविध-विषय ।

आयुर्वेद का अपमान—वैद्यराज प० घनानन्द जी पन्त लिखते हैं—अभी थोड़े दिनों की बात है कि यहां के नई बस्ती मुहल्ले में एक वैश्य का लड़का बीमार हुआ था। उसकी चिकित्सा यहाँ के एक प्रसिद्ध अ० सर्जन द्वारा कराई गई। २६, २७ दिन तक बराबर चिकित्सा होती रही, परन्तु कुछ भी लाभ न हुआ; रोग और बढ़ता ही गया। अन्त में आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रारम्भ कीगई, उससे लड़का आरोग्य होगया। जिसदिन लड़के को पथ्य दिया गया था उसदिन उसका सिटी मजिस्ट्रेट की अदालत में फौजदारी में मुकद्दमा था। मजिस्ट्रेट साहब ने लड़के के अनुपस्थित होने पर सार्टिफिकेट मांगा। जिन वैद्य महोदय की लड़के को चिकित्सा हो रही थी, उनका सार्टिफिकेट लाकर देदिया गया। उसको देखकर मजिस्ट्रेट साहब ने कहा कि "सार्टिफिकेट सिविलसर्जन या अ० सर्जन का होना चाहिए। यह ठीक नहीं है"। आश्चर्य्य है कि सरकार जिनके सार्टिफिकेट को ठीक मानती है; उनकी चिकित्सा से कुछ लाभ न होने पर भी और आयुर्वेदिक चिकित्सा से पूर्ण आरोग्य होने पर भी वह आयुर्वेदीय चिकित्सा का कुछ आदर करना नहीं चाहती। इसी का नाम तो परतन्त्रता है ?

—o—

विलायत में क्षयरोग का ह्रास—विलायत के स्वास्थ्यरक्षा-विभाग की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि वहाँ अब क्षयरोगियों की मृत्यु-संख्या बहुत कम होती जारही है। पहले यहां १० लाख मनुष्यों में १९८६ मनुष्य इस रोग से मरते थे; किन्तु अब केवल ८२२ मनुष्य मरते हैं। जिन उपायों से विलायत में क्षय की वृद्धि कम हुई है, क्या भारत में भी उनके प्रचार होने की आशा की जासकती है ?

—o—

कुष्ठरोगियों को स्वतन्त्र रखने में लाभ—कुष्ठरोगियों को अन्य मनुष्यों से पृथक् रखने से आश्चर्य्यजनक फल देखने में आया है। पहले नारवे में इस रोग से बहुत अधिक मनुष्य ग्रसित होते थे; किन्तु अब उक्त उपाय से १०० में ५ मनुष्य ग्रसित होते हैं। इसी

प्रकार जेमैको, ब्रिटिश, गायना, साइप्रस आदि द्वीपों में भी इस उपाय के द्वारा कुष्ठरोगियों की संख्या बहुत कम होरही है।

—o—

प्लेग की वृद्धि—इस समय भारत के अनेक नगरों में प्लेग का प्रकोप बढ़ता जारहा है। कितने ही स्थानों को तो प्लेग ने अपना सदा के लिए अड्डा बना लिया है। वहां प्रतिवर्ष प्लेग की फसल होती है। अबतक प्लेग से बचने के लिए अनेक उपाय उद्भूत हुए हैं। प्लेग के दिनों में निम्नलिखित अगद के सेवन करने से प्लेग के जीवाणु शरीर में अपना कुछ असर नहीं करते।

मोती, मूंगा, जहरमोरा, निर्विषी, केशर, हल्दी, पपीता और सोने के वर्क इन सब औषधियों को समानभाग लेकर गुलाब के अर्क में ३ दिनतक खरल करके एक एक रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिए। प्लेग के दिनों में नित्य प्रातःकाल एक २ गोली सेवन करनी चाहिए। 'वैद्यराज'

—o—

समाचार।

कटक में आयुर्वेदिक स्कूल के लिए बिहार सरकार ने २०००) रु० इस शर्त पर देना स्वीकार किया है कि १०००) रु० पब्लिक भी दे। इसपर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन ने १०००) रु० अपने पास से दिया है।

—o—

नम्र निवेदन।

आज—इस संख्या से, वैद्यों का कृपाभाजन, आयुर्वेदप्रेमियों का अनुग्रहपात्र, और उन निरवलम्बों का—जो कुटीरवासी, साधारण स्थिति और अपनी चन्द कौड़ियाँ खर्च कर भी विपत्तियों से छुटकारा पाना चाहते हैं—अवलम्ब "वैद्य" अपनी आयु के ग्यारह वर्ष बिताकर बारहवें वर्ष में पदार्पण कर रहा है। उसकी आयु के यह ग्यारह वर्ष कैसे बीते, उससे हिन्दी पठित जनता का क्या उपकार साधन हुआ, साहित्य में उसने किस बात की नवीन वृद्धि की, इत्यादि बातों का ढिंढोरा पीटना इस समय हमारा काम नहीं। उक्त बातों की यत्किञ्चित् चर्चा, हम वैद्य की प्रत्येक वर्ष समाप्ति में करते आये हैं। इस समय हमें गतवर्ष का हाल सुनाना है—और कहनी है अपनी विनीत कथा।

वैद्य, जिस समय कार्यक्षेत्र में उतरा था, उस समय उसका एक भी साथी न था, बीच में सुधानिधि, कल्पतरु, आरोग्यसिन्धु और

चिकित्सक आदि कई सहयोगी, उसका सहयोग करने आये; पर वे कुछ ही दिनों बाद, साथ छोड़कर कालकवलित होगये। इसका उसे दुःख अवश्य हुआ, किन्तु विधि का विधान; उसके आगे सभी का सिर नीचा है; यह सोचकर वह, बराबर—आजदिन तक—जितनी उससे हो सकती है आयुर्वेद और हिन्दी की सेवा कर रहा है। जन्म के समय वह अकेला था, तो वह आज भी अकेला है और यही उसके लिये गौरव की बात है।

उसके सञ्चालक एक तो आरम्भ से ही निर्बल,निःसहाय और निःस्वत्व हैं, अवस्था में रहे हैं, तिसपर गत वर्ष उनपर जैसी जैसी विपत्तियाँ आती रहीं उनको देखते, यदि वैद्यभी अपने अन्यान्य साथियों का अनुगमन करजाता, तो कुछ आश्चर्य और गिल्ले शिकवे की बात न थी। पर निरवलम्बों का तो अवलम्ब परमात्मा होता है, बस उसकी कृपासे वह गिरता पड़ता हुआ भी अपना ग्यारहवें वर्ष का जीवन सानन्द समाप्त कर आया और आज बारहवें वर्ष का कार्य्य भार अपने कमज़ोर कन्धोंपर रखकर पाठकों की परिचर्य्या करने के लिये अग्रसर हो रहा है।

वैद्य का काम है, प्रत्येक मास के आरम्भ में नवीन सन्देश,नवीन ज्ञान और नये अनुभवों को लेकर अपने पाठकों के पास पहुँचना और उनकी सेवा करना। पर गतवर्ष वह आरम्भ में ही अपनी इस Dutyको यथासमय न निबाह सका। उसके सञ्चालक तथा सम्पादक श्रीमान् बाबू शङ्करलाल जी वैद्य की धर्मपत्नी एक भयङ्कर रोग में ग्रस्त होगयीं। वैद्यजी घर के अकेले, पास में बच्चे भी थे और फिर आयुर्वेदोद्धारक औषधालय का सञ्चालन, रोगियों की चिकित्सा तथा अन्यान्य कई आवश्यक कार्य्यों का भार। ऐसी अवस्था में उन को धर्मपत्नी का एक भीषण रोग से ग्रस्त होजाना, कितना व्यतिक्रम डाल सकता है, यह सहज ही अनुमान किया जासकता है। वे प्रायः ग्यारह मास उस रोगिणी की चिकित्सा करने के लिये देश-विदेश घूमते रहे। फिर परिवार का पोषण, गृहप्रबन्ध आदि कार्य भी उन्हीं के पीछे थे। इससे उनका स्वास्थ्य भी बिगड़ गया। पर इतनी विपत्तियों के चक्र में घूमते रहने पर भी वे अपने प्यारे वैद्य को न भूले और असमय का कुछ ख़याल न कर उसका सम्पादन करते रहे। यह उन के लिये बहुत था। यद्यपि इस गड़बड़ी में वैद्य समय पर पाठकों के पास न पहुंच सका, पर उसके सेवाभाव में तनिक भी फ़र्क न पड़ा। देखने वाले देखते रहे होंगे, कि उसमें गत वर्ष एक भी लेख न निकला होगा—रद्दी-खद्दी मैटर भर कर चला

नहीं डालते थवो, बस यही वैद्य की विशेषता है और यही कारण है, जो वैद्य अपने प्रेमियों का दिन २ प्यारा बनता जाता है।

वैद्य जी की गृहिणी का स्वास्थ्य यद्यपि सोलहो आने अभी नहीं सुधार है, तथापि लक्षण अच्छे हैं। वे अब आरोग्य लाभ कर रही हैं। वैद्य जी भी आश्वस्त हुए हैं। अतः वैद्य का भविष्य भी उजला समझना चाहिए उसके इस अङ्क के प्रकाशन में यद्यपि आशा से अधिक और अत्यधिक विलम्ब होगया है, वह एक दम चार मास पिछड़ गया है, तथापि अब यह ध्रुव सत्य है, कि जून मास तक वह समय पर आजायगा और बराबर अपने प्रेमियों की पूर्व की नाईं सेवा करता रहेगा।

सदा की भाँति वर्ष के प्रारम्भ में वैद्य का यह प्रथमाङ्क वी. पी. द्वारा जाना चाहिए। पर इस अङ्क को हम उनकी सेवा में यों ही भेज रहे हैं। कारण यह कि उपरि उक्त आशातीत विलम्ब से ऊब-कर कितने ही पाठकों ने उसके जीवन में आशङ्का की है, कितने ही सज्जन हमें गालियाँ तक लिख बैठे हैं; इस अंक को पाकर और हमारे इस नम्र निवेदन को पढ़कर वे जान सकेंगे कि वैद्य कैसी नाजुक हालत में था और उसके सञ्चालकों पर कैसी गुजर रही थी पाठक और प्रेमी इस बात पर पक्का विश्वास रक्खें कि "वैद्य" बन्द होजाने वाला पत्र नहीं है वैसे तो संसार की कोई भी वस्तु नित्य नहीं है। पर हमारी यह प्रतिज्ञा है, जबतक दम में दम है, हाथों में बल है और प्रेमियों की कृपा है, तब तक हम हजार आपत्तियों का सामना करते रहने पर भी वैद्य का जीवन सङ्कट में न आने देंगे। देर हो सकती है, पर अंधेर न होगा। पर पाठकों को भी हमारी तरह यह प्रतिज्ञा करनी आवश्यक है, कि वे इसका साथ न छोड़ें, साथ ही इसको उन्नत अवस्था में देखने के लिये ग्राहक बढ़ा-बढ़ाकर, इसके सञ्चालकों का उत्साह बढ़ाते रहें।

दूसरा अङ्क भी तय्यार है। आज से ठीक १५ दिन बाद वह भी पाठकों के पास पहुँच जायेगा। इस बीच में समस्त ग्राहकों का कर्त्तव्य है, कि वे अपना रुपया मनीआर्डर द्वारा भेज दें। अन्यथा फर्वरी का अङ्क उनको सेवा में वी०पी० द्वारा जायेगा। जो सज्जन हमारी इस करुण कथा को सुनकर भी द्रवित न हुए हों, या जो वैद्य के ग्राहक न रहना चाहते हों, वे कृपाकर इतना उपकार अवश्य करें कि हमें एक पत्र द्वारा अपने ग्राहक न रहने की सूचना अवश्य देदें अन्यथा वी०पी० लौटनेसे आयुर्वेद और हिन्दी सेवा, फलतः देश सेवा करने वाले इस पत्र को बड़ा गहरा धक्का लगेगा। मैनेजर।

Regd. No. A. 587

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यक सम्बन्धी, सर्वोपयोगी

● मासिक-पत्र ●

सम्पादक—शङ्करलाल वैद्य

वर्ष १२ } मुरादाबाद । फरवरी, सन् १९२४ ई० { संख्या २

* विषय सूची *

१ स्वास्थ्यरक्षा ३३
२ आयुर्वेद की विशेषता ..३४
३ भोज्य पदार्थ और भोजनसम्बन्धी नियम...४२
४ नेत्ररोग ५०
५ कुछ साधारण ओषधियाँ५३
६ प्रलय की विचित्रता ...५६
७ परीक्षित प्रयोग ५९
८ विविध-संग्रह ६२
९ श्रीमान् वेयरमैनसाहब बहादुर डिस्ट्रिक्टबोर्ड और म्यू०बोर्ड ६४

प्रकाशक—हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद ।

वार्षिक मूल्य १।)] [एक संख्या का मूल्य ≈)

मुद्रक—पं० जीवाराम उपाध्याय,
सरस्वती प्रेस, मुरादाबाद ।
Printed by—Pt Jiwaram Upadhyaya,
at the Saraswati Press,
MORADABAD.

❁ वैद्य के नियम ❁

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डाकमहसूल सहित केवल १॥) है। पेशगी मनीआर्डर भेजने से १॥) रु० और वी०पी० मँगाने से १॥।) रु० पड़ेगा।

(३) 'वैद्य' का नमूने में कोई सा एक अङ्क भेज दिया जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक विषयक लेख, कविता, अनुभवी प्रयोग और समाचार आदि भेजेंगे वे पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायँगे। परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने आदि का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिए, जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिए कार्ड या टिकट भेजना चाहिए।

(६) वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँचकर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी २ अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं। इसका कारण रास्ते की असावधानी ही हो सकती है। जिन महाशयों को जो अङ्क न मिले, वे दूसरे अङ्क के पहुँचते ही हमें सूचना दें अन्यथा हम न भेजसकेंगे।

(७) सब प्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि—

वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर, वैद्य आफिस, मुरादाबाद

के पते से आने चाहिएँ।

वैद्य में विज्ञापन छपाई व बटाई की दर।

स्थान	१ वर्ष १२ बार	६ मास ६ बार	३ मास ३ बार	१ मास १ बार
एक पृष्ठ	५०)	३०)	१७)	६)
आधापृष्ठ	३०)	१७)	१०)	३॥)
चौथाई पृष्ठ	१=)	१०)	६)	२)

विज्ञापन बटाई विज्ञापन दिखाकर तय कीजिये।

मैनेजर "वैद्य" मुरादाबाद।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष १२ | मुरादाबाद । फरवरी १९२४ ई० । | संख्या २

स्वास्थ्य-रक्षा ।

(ले०—विद्या-प्रेमी दीनानाथ 'अशङ्क')

प्रियपाठकगण ! जब शरीर को करदेता कुरोग लाचार,
तब मन भी अशान्त रहता है, शान्ति न पाता किसी प्रकार ।
जिस का घर जर्जर होता है, वह अवश्य होता हैरान,
यह निर्धारित कर अन्तर में, रक्खो सदा स्वास्थ्य का ध्यान॥१॥

किसी महत्वाकांक्षी को यदि लगजाता है कोई रोग,
तो निज इष्ट-सिद्धिके हित वह करसकता न उचित उद्योग ।
गाड़ी निर्बल हो तो कबतक चल सकता है गाड़ीवान ?
यह निर्धारित कर अन्तर में, रक्खो सदा स्वास्थ्य का ध्यान॥२॥

जो प्रवीण सुलझा सकते हैं, उलझी हुई गूढ़ से गूढ़,
वे भी बहुधा रुग्ण-दशा में बनजाते कर्त्तव्य-विमूढ़ !
उनकी सुमति-छुरी पर विस्मृति चढ़जाती है जङ्ग समान,
यह निर्धारित कर अन्तर में, रक्खो सदा स्वास्थ्य का ध्यान॥३॥

जिसकी मंजु मूर्त्ति दर्शक को देती है अतीव आनन्द,
उसको ही रोगिष्ठ देखकर दृग करलेने पड़ते बन्द !
जानें कहाँ चलाजाता है, उसका वह माधुर्य्य महान ?
यह निर्धारित कर अन्तर में, रक्खो सदा स्वास्थ्य का ध्यान॥४॥
स्वस्थ, सबल मानव के बैरी, रहते उससे दबे सदैव,
शशकादिक वन-जन्तु सिंह से रहते हैं भयभीत यथैव।
स्वास्थ्य-विशेष समान जगत् में नहीं दूसरी वस्तु प्रधान,
यह निर्धारित कर अन्तर में, रक्खो सदा स्वास्थ्य का ध्यान॥५॥

—औ—

आयुर्वेद की विशेषता।

जिस आयुर्वेदीय चिकित्सा के द्वारा किसी समय समस्त मानव जाति आरोग्य और स्वस्थ शरीर से दीर्घजीवन प्राप्त कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इसचतुर्वर्ग सम्पत्ति को प्राप्त करती थी, आज उसी आयुर्वेदीयचिकित्सा पर देशवासियों का अनुराग कितना कमहोगया है, इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। जिसप्रकार स्वस्थावस्था में कोई भी देवी, देवताओं को पूजना या मनाना नहीं चाहता उसी प्रकार आयुर्वेदीय चिकित्सा को अपनाने में भी प्रायः अधिकांश मनुष्यों की ऐसी ही प्रवृत्ति देखी जाती है।

जब नवीन ज्वर में तीक्ष्ण औषधियों का सेवन करने से ज्वर रुक जाने के बाद "दोषोऽल्पहितसम्भृतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः। धातूनामन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥" एवं "नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनकस्तेन सीदति। स्तब्धाङ्गश्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी॥" इस प्रकार की अवस्था होजाती है। अथवा—" प्रलिम्पन्निव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च। मन्दज्वरविलेपी च स शीतः स्यात्प्रलेपकः ॥" इस प्रकार की अवस्था होजाती है, तब लोग देवताओं को मनाने की समान आयुर्वेदीय चिकित्सकों की खुशामद करते हैं। उसीप्रकार उदररोग, प्लीहा, वक्षःस्थल की पीड़ा, पार्श्वशूल, यकृत्रोग, बार बार ज्वर का घटना बढ़ना, सारे शरीर में शोथ और पाण्डुता इत्यादि भयङ्कर रोगों से आक्रान्त होने पर आजकल आयुर्वेदीय चिकित्सकों की शरण लीजाती है। उसी प्रकार संग्रहणी, प्रमेह, बहुमूत्र, अम्लपित्त, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ, पक्षाघात आदि रोगों को पाश्चात्य चिकित्सक सर्वथा निर्मूल नहीं करसकते तब आयुर्वेदीय चिकित्सा के द्वारा ही ये रोग समूल नष्ट कियेजाते हैं। देश के मन्दभाग्य से अनेक मनुष्यों

के मनमें यह धारणा होगई है कि—"नवीन ज्वर में आयुर्वेदीय चिकित्सा कराना किसी तरह भी ठीक नहीं है। क्योंकि एलोपैथिक चिकित्सा के द्वारा नीदस औषधियों का सेवन करने से जितनी जल्दी लाभ होता है, उतनी जल्दी आयुर्वेदीय चिकित्सा के द्वारा कदापि नहीं होसकता।" किन्तु उनकी इस प्रकार की धारणा बिल्कुल भ्रम और प्रमादपूर्ण है।

समस्त चिकित्सा शास्त्रों में आयुर्वेदीय चिकित्सा मौलिक चिकित्सा है। इसी चिकित्सा के विज्ञान-बल से आज अन्य चिकित्सायें समुन्नति के उच्च शिखरपर आरूढ़ होकर अपनी जनयित्री इस आयुर्वेदीयचिकित्साकी शत्रु बनगईहैं!किन्तु उनके इसशत्रु भावसे मौलिक चिकित्सा का प्राकृतिक भाव कदापि कम नहीं होसकता। इस बात को नव्यशिक्षितसमुदाय चाहे प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार न करे, परन्तु हृदय से वह भी इसको स्वीकार करता और मौलिक चिकित्सा का आदर करता है। उसमें भी बहुत से ऐसे स्पष्टवादी मनुष्य हैं कि जो सत्य को कभी नहीं छिपाते। उनके मनमें जो कुछ आता है, उस को वे साफ़ साफ़ कह डालते हैं। इस विषय के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

अमेरिका के कालिफ़ोर्निया सान फ्रान्सिस्को नामक शहर से डाक्टर कार्पेण्टरास्स एम० डी० महोदय लिखते हैं कि—"अग्निवेश, चरक, सुश्रुत एवं अन्यान्य भारत के प्राचीन महर्षियों की आविष्कृत चिकित्सा प्रणाली को अवलोकन करने से हमको भी आज उनकी दिव्य स्मृति का स्मरण होआता है। कारण, अनेक शताब्दी पूर्व उक्त महर्षि प्रणीत आयुर्वेदिक ग्रन्थों का अरबी, लैटिन और ग्रीक आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद होकर यूरप और अमेरिका में उनका प्रचार होचुका है, इससे हमारे ग्रन्थोंमें भी उनकी विभूति विद्यमान है। जो कि एलोपैथिक और होमियोपैथिक चिकित्साओं की मूलसूत्र है और जिसकी हम निरन्तर आलोचना करते रहते हैं, वह आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली सर्वोत्तम है, यह हमारा पक्का विश्वास है। क्योंकि आयुर्वेद ही प्रकृत अवस्था और वैज्ञानिक चिकित्सा का अनुसरण करता है।

अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर जार्ज क्लार्क एम० ए० एम० डी० महोदय लिखते हैं कि "अङ्गरेज़ी में चरक को पढ़कर मैंने जो सिद्धान्त निर्धारित किया है, वह यह है कि वर्त्तमान काल के समस्त

चिकित्सकगण यदि अपनी कल्पित प्रणाली को छोड़कर केवल चरक के मत से चिकित्सा करें तो मनुष्यों की मृत्युसंख्या बहुत कुछ कम होसकती है और मनुष्य चिरकाल तक रोगों के पंजे में फँसे नहीं रह सकते।

भागलपुर के भूतपूर्व कमिश्नर श्रीयुत स्कादन महोदय कहते हैं "बड़े आश्चर्य की बात है कि अब से हज़ारों वर्ष पूर्व भारतीय महर्षि जिन विषयों का आविष्कार करगये हैं, हम लोग (पाश्चात्य देशवासी) उन विषयों का अपने को आविष्कर्त्ता कहकर बड़ा गर्व करते हैं।"

कलकत्ते के विख्यात डाकृर चार्ल्स महोदय ने मेडिकल कालेज में धात्री विद्या के सम्बन्ध में एक समय व्याख्यान देते हुए छात्रों के सामने कहा था—"हे छात्रो ! तुम्हारे आर्य महर्षि जिस विद्या को पूर्णरूप से जानते थे, उसी विद्या को हम साधारण रूप से जानकर आज तुमको शिक्षा देने के लिए यहाँ आते हैं।

सुप्रसिद्ध सर्जन डाकृर मेकलाउड ने एक बार कहा था कि—"हमारी वर्त्तमान अस्त्रचिकित्सा प्रणाली से सुश्रुत की कोई २ अस्त्र-चिकित्सा प्रणाली अत्यन्त समुन्नत है।

भारत के भूतपूर्व इन्स्पेकृर जनरल सुप्रसिद्ध सर्जन डाकृर लिकुइस महोदय ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि—"आज कल हम लोग अपने आपको जिस चिकित्सा प्रणाली का प्रणेता कह कर बड़ा अहङ्कार करते हैं, हम देखते हैं कि भारतीय महर्षिगण हमारे आविर्भाव से हज़ारों वर्ष पूर्व उस चिकित्सा प्रणाली को विशदरूप से लिखकर रख गये हैं।

आजकल जर्मन के दो डाकृर शोथरोग में रोगी से नमक और जल का त्याग कराकर उक्त रोग की चिकित्सा करते हैं। उन को समस्त चिकित्सक इसलिए धन्यवाद देते हैं कि-आर्य्यमहर्षि जिन तत्त्वों का वर्णन करगये हैं, वे उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करते हैं।

डाकृर गार्वि, डाकृर जेकोवि, डा० वार्थ, डा० सेएटहेलियर, वेइन, एडम्रिन, सवन्सेन, जेकसन, पाल, वार्थलम आदि अमेरिका, जर्मन, फ्रान्स, स्वीडेन, डेनमार्क, इङ्गलेएड प्रभृति देशों के बड़े बड़े विद्वान् प्रायः यूरुपियन और अमेरिकन चिकित्सापत्रों में अपने अपने मत प्रकाशित किया करते हैं। इन्हीं में से कोई महाशय लिखते हैं कि—"भारत की चरकसंहिता में कोई छःसौ प्रकार की केवल

विरेचक ओषधियों का वर्णन है। हम नहीं समझते कि उस चिकित्साशास्त्र का विज्ञान कितने ऊँचे स्तम्भ पर अवस्थित है।

एक पाश्चात्य विद्वान् कहता है कि—"हम अपनी उन्नतशील पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली को लेकर चाहे कितना ही आडम्बर क्यों न रचें, किन्तु आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली के अधिकांश विषयों के सम्मुख हमको अवश्य शिर झुकाना पड़ता है।"

एक वैज्ञानिक पण्डित कहता है कि—"अनेक शताब्दी पूर्व भारतीय महर्षि जिन ओषधियों का प्रचार कर गये हैं, हम अपने आपको उनका आविष्कर्त्ता कहते हुए गर्व से फूले नहीं समाते, यह कितने आश्चर्य की बात है।"

इस प्रकार की परिस्थिति के होते हुए भी भारतवासी नवीन ज्वर में आयुर्वेदिक चिकित्सा कराते हुए डरते हैं और उन के मन में उक्त चिकित्सा के द्वारा ज्वर शमन न होकर और अधिक बढ़ने की भावना रहती है,—इसका कारण यह है कि वे पाश्चात्य सभ्यता के तीक्ष्ण प्रकाश की चकाचौंध से अन्धे होरहे हैं और उनके ज्ञानचक्षु शुभाशुभ कर्म को निरीक्षण करने में असमर्थ होगये हैं।

वास्तव में नवीन ज्वर में आयुर्वेदिक चिकित्सा जितना कार्य्य करती है उतना और कोई भी चिकित्सा प्रणाली नहीं करसकती। पाश्चात्य चिकित्सक जिस प्रणाली से नवीन ज्वर की चिकित्सा करते हैं, वह प्रणाली सर्वथा रोगोत्पत्ति का मूल कारण है। वात, पित्त और कफ इन दोषों के विकृतिवैषम्य को न विचार कर केवल थर्मामीटर के द्वारा ज्वर के वेग को देखकर ज्वर की गति को रोकना ही पाश्चात्य वैज्ञानिकों की चिकित्सा प्रणाली है। किन्तु आयुर्वेद इस प्रकार का उपदेश नहीं देता। वह चिकित्सा के प्रत्येक अध्याय में क्रमशः वात, पित्त और कफ का विचार करता हुआ कहता है कि :—

"वातः पचति सप्ताहात्पित्तश्च दशभिर्दिनैः।
श्लेष्मा द्वादशभिर्घस्रैः पच्यते बद्धतीवर॥"

अर्थात् वायु सात दिन में, पित्त दस दिन में और कफ १२ दिन में परिपक होता है, इसलिए असमय में ज्वर को न छेड़कर ज्वर की आदि में लङ्घन, मध्य में पाचन और अन्त में ज्वरघ्न ओषधियों का प्रयोग करना चाहिए। एवं ज्वर के शमन होने पर विरेचन कराना चाहिए। क्योंकि शास्त्र में कहा है कि :—

"आरोग्यौ लङ्घनं प्रोक्तं ज्वरमध्ये तु पाचनम्।
ज्वरमध्ये भेषजं दद्याज्ज्वरमुक्ते विरेचनम्॥"

इसके विपरीत चिकित्सा करने से रोगी नाना प्रकार की भयङ्कर पीड़ाओं से आक्रान्त होकर शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होजाता है। यथा:—

"दुर्हृतेषु च दोषेषु यस्य वा विनिवर्त्तते।
स्वल्पेनाप्यपचारेण तस्य व्यावर्त्तते पुनः॥
चिरकालपरिक्लिष्टं दुर्बलं हीनचेतसम्।
अचिरेणैव कालेन स हन्ति पुनरागतः॥
अथवा परिपाकस्य धातुष्वेव क्रमान्मलाः।
याति ज्वरमकुर्वन्ते ते तथाप्यपकुर्वते॥
दीनतां श्वयथुं ग्लानिं पाण्डुतां नान्नकामताम्।
कण्डूरुत्कोठपिडिकाः कुर्वन्त्यग्निञ्च ते मृदुम्॥"
(च० चि० ३ अ० १७१—१७३)

अर्थात् जिस रोगी के दोषों के पचने की अवधि से पहले कुविधि से दोषों को शमन कर किसी प्रकार ज्वर को दूर किया जाता है तो उसका ज्वर दूर तो हो जाता है, किन्तु दोषों के अपक्व रहजाने के कारण थोड़ीसी भी बदपरहेज़ी होजाने से वह ज्वर फिर लौट पड़ता है—और चिरकाल से पीड़ा के कारण व्यथित होने से दुर्बल शरीर तथा दुःखी चित्तवाले रोगी के शरीर में व्याप्त होकर उसको शीघ्र नष्ट करदेता है। अथवा दोष ज्वर को उत्पन्न न करके क्रम से रस, रक्तादि धातुओं का क्षय करते हुए परिपक्व होजाते हैं और रोगी के पीड़ा, सूजन, ग्लानि, पाण्डुता, अरुचि, खुजली, उत्कोठ, पिडिका, मन्दाग्नि इत्यादि विकारों को उत्पन्न कर देते हैं।

इसीप्रकार अन्यान्य रोग भी पूर्णतया दोषों के शमन न होने से थोड़ा सा अहित होने से ही फिर प्रकट होकर रोगी को दबा लेते हैं और शीघ्र ही काल का ग्रास बना देते हैं। यथा—

"एवमन्येऽपि च गदा व्यावर्त्तन्ते पुनर्गताः।
अनिर्घातेन दोषाणामल्पैरप्यहितैर्नृणाम्॥"
(चरक चि० अ० २७७)

आयुर्वेदिक और पाश्चात्यचिकित्सकों की चिकित्सा प्रणाली।

पाश्चात्य चिकित्सक तो यह चाहते हैं कि रोग उत्पन्न होते ही उसे रोगनाशक औषधियों के द्वारा शीघ्र दबा दिया जाय; किन्तु

आयुर्वेद कहता है कि रोग होतेही उसकी यन्त्रणाओंसे रोगीकी रक्षा करनी चाहिए, परन्तु चिकित्सा के उद्देश्य को कभी नहीं भूलना चाहिए। इसमें भी स्वास्थ्यलाभ के साथ २ मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर का प्रसन्न रहना ही स्वास्थ्य का प्रधान लक्षण है—और स्वास्थ्य के साथ दीर्घायु तथा प्राणोंका घनिष्ठ सम्बन्ध होना आयुका लक्षण है। इसलिए रोग के आरोग्य होने की व्यवस्था करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि—रोगी किस देश में जन्मा है और वह किस प्रकार से रोगग्रस्त हुआ है तथा वह किस प्रकार का आहार, विहार करता है, और उसका बल, प्रकृति, दोष, रोग और हिताहित किसप्रकार होताहै। इनसब बातों का विचारकर ओषधि देने से रोगी को शीघ्र लाभ होता है। फिर रोग शमन होने पर भी बल और दोषों का विचार कर तदनुसार चिकित्सा करनी चाहिए। कारण, दुर्बल रोगी के बलाबल का विचार न कर उसको अत्यन्त वृष्य, तीक्ष्ण और गुरुपाकी ओषधियां सेवन करानेसे अथवा क्षार, अग्नि और शस्त्रक्रिया के प्रयोग करने से रोगी की मृत्यु हो जाती है। क्योंकि दुर्बल रोगी ऐसी ओषधियों तथा क्षारादि क्रियाओं को सहन नहीं कर सकता है।

पाश्चात्य चिकित्साशास्त्रों की अपेक्षा आयुर्वेद में यह विशेषता है कि पाश्चात्य चिकित्सक तो दोषों (वात. पित्त और कफ) का—चिकित्सा करते समय कुछ ध्यान नहीं रखते; क्योंकि उनके चिकित्सा शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार इनको जानने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। और आयुर्वेद सम्पूर्ण आधि-व्याधियों में प्रथम दोषों की अवस्था का विचार कर फिर चिकित्सा करने का आदेश देता है। इसीलिए पाश्चात्य चिकित्सक जिसप्रकार से चिकित्सा करते हैं, उससे रोग समूल नष्ट नहीं होता, बल्कि रोग के ऊपरी उपद्रव दब जाते हैं किन्तु आयुर्वेदिक चिकित्सक रोग का प्रकार भेद जान लेने पर भी बिलकुल आयुर्वेदिक मत से दोषों की अवस्था का भलीभाँति विचार कर चिकित्सा करते हैं, अतएव उनकी चिकित्सा से रोग समूल निर्मूल होजाता है और वे यश के भागी होते हैं।

ज्वर उत्पन्न होने के कारण—

"आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधापयन्।
विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लङ्घनमाचरेत्॥"

आयुर्वेद कहता है कि- साम दोष (अपक्वरसयुक्त दूषित वात, पित्त. कफ) आमाशयमें आकर जठराग्नि को मन्द करके शारीरिक

रसोंको बहाने वाले और पसीना निकालने वाले स्रोतों को बन्दकर ज्वर उत्पन्न करदेते हैं, इस लिए नवीन ज्वर में लङ्घन कराने चाहिएँ। किन्तु पाश्चात्य चिकित्सक इन दोषों के प्रकोप पर बिलकुल ध्यान नहीं देते। उनके लिए तो टेम्परेचर का ही ज्वर चिकित्सा का सीधा सादा रास्ता है। यदि वे आयुर्वेद के मत से ज्वरको चिकित्सा करें तो यह बात अवश्य कही जासकती है कि- दोषों को बिना समय कुविधि से दबाने के कारण जो सैंकड़ों नर नारी नानाप्रकार की भयंकर व्याधियों से पीड़ित देखे जाते हैं, उनकी संख्या अवश्य घट जायगी।

महर्षि सुश्रुतने भी कहा है कि- यदि ज्वर की चिकित्सा करते समय अवधि से पहले दोषों को दबाने की चेष्टा की जायगी तो इस प्रकार की अवस्था होजायगी। यथा-

" भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम्।
शोधनं शमनीयं तु करोति विषमज्वरम्॥"

अर्थात् दोषों की अपक्व अवस्था में ओषधि देने से वह शमन-हुए ज्वर को फिर प्रज्वलित करदेती है। उस समय शोधन और संशमन ओषधि देनेसे विषम ज्वर को करती है।

किसी २ वैज्ञानिक डाक्टर का मत है कि आजकल के मलेरिया और काले ज्वरको ही विषम ज्वर कहते हैं। इस ज्वर के रोगियों की संख्या जो दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है, उसका मुख्य कारण दोषों को अपक्व अवस्था में ओषधि सेवन कराना ही नहीं, बल्कि प्रकृति और देश की विपरीतता भी होसकती है। एवं नवीन ज्वर में पाश्चात्य चिकित्सक वात, पित्त, कफ का विचार न करने के सिवा किसप्रकार के ज्वरमें कितने दिन तक ज्वर रहता है, रोगी की प्रकृति कैसी है और उसको किस वस्तुसे हानि अथवा लाभ होता है, इन बातों का विचार न कर केवल ज्वरनाशक कोनैन आदि ओषधियों के द्वारा ज्वर को रोकने की ही चेष्टा किया करते हैं। रोगी को चाहे किसी कारण से ज्वर हो और वह चाहे किसी देशका रहने वाला हो, पर उन्हें उक्त बातों से कुछ मतलब नहीं। उनकी बस यही एक सामान्य ज्वर चिकित्सा प्रणाली है। आयुर्वेदीय चिकित्सक भी यदि उन्हीं के अनुसार कार्य करें तो उनकी चिकित्सा से भी ज्वरको थोड़ा शीघ्र दूर होसकती है, किन्तु वे अपने दिव्य मस्तिष्कशाली महर्षियों के सिद्धान्तसे कदापि च्युत होना नहीं चाहते। कारण, इसप्रकार से

यदि एक रोगको किसी तरह शमन कर भी दिया जाय तो उसको अन्यान्य रोग आकर घेर लेंगे।

किन्तु खेद है कि भारतवासी इन बातों पर विश्वास नहीं करते! इसी लिए वे नाना प्रकार की यन्त्रणायें भोगते हैं।

आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य पाश्चात्य चिकित्सकों की समान रोग को चिकित्सा करनाही नहीं है, बल्कि रोगी को आरोग्यता प्रदानकर उसको फिर रोगाक्रान्त न होने देनेका विधान करना है। आयु ही हित-अहित और आयु ही सुख,दुःख है, इस बातको समझकर आयु का जिसमें विवेचन कियागयाहो उसको आयुर्वेद कहतेहैं-और शरीर, मन,इन्द्रिय तथा आत्मा का जिसमें घनिष्ठ सम्बन्ध हो, उसको आयु कहते हैं। आयु के सम्बन्धी शरीर और मन के विकृत होने का नाम रोग है। और समय,बुद्धि तथा इन्द्रिय विषय इनके मिथ्या योग, अयोग और अतियोग ये तीनों शारीरिक और मानसिक रोगोत्पत्ति के कारणभूत हैं। शीतकाल में अच्छे प्रकार से शीतका न होना अयोग, शीतकाल में अत्यन्त शीतका होना अतियोग और शीतकाल में बिलकुल शीत का न होना यह मिथ्यायोग कहलाता है। एवं वात पित्त और कफ इन दोषों का विकृतिवैषम्य शारीरिक रोगोत्पत्ति का कारण है और सत्त्व,रज, तम इनका विकृति वैषम्य मानसिक रोगका कारण है। शारीरिक दोष देवाराधना और औषधप्रयोग के द्वारा तथा मानसिक दोष ज्ञान,वैराग्य,शान्ति और योगादि के द्वारा शान्त होते हैं। आयुर्वेद की रचना इन्हीं भावों को लेकर की गई है, इसलिये यह देवी चिकित्सा कही जाती है। आयुर्वेद के अतिरिक्त और किसी चिकित्सा शास्त्र में भी इस प्रकार का वर्णन नहीं है।

इनके अतिरिक्त वात,पित्त और कफ इन तीनों दोषों का यथावत् निर्णय करना आयुर्वेद की सर्वोत्कृष्ट विशेषता है।जिसके द्वारा इन्द्रियों और शारीरिक यन्त्रों का सञ्चालन होता है, उसको "वायु"कहते हैं। किन्तु डाक्टर लोग यह बात नहीं मानते। वे कहते हैं कि इन्द्रियों और शारीरिक यन्त्रों का सञ्चालन "नर्व"नामक शिराओं के द्वारा होता है पर वे "नर्व" शिरायें किसप्रकार की क्रिया करती हैं, इसका उन्हें कुछ पता नहीं! और आयुर्वेदमें इसका विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। "पित्त" शब्द से शरीर को गरमी समझनी चाहिये। डाक्टर इसको "एनिमेल हिट" कहते हैं। और शरीर के जलीय अंश का नाम कफ है। वस्तिस्थान (मूत्राशय), पक्वाशय,कमर, दोनों नितम्ब,

दोनों पाँव, और सम्पूर्ण अस्थियाँ ये सब वायु के स्थान हैं। इनमें भी पक्वाशय और मलाशय प्रधान स्थान हैं। स्वेद, रस,लार,रुधिर आदि पित्त के स्थान हैं। शरीरमें गरमी बनाये रखना पित्तका मुख्य धर्म्म है। और वक्षस्थल, मस्तक, ग्रीवा, सम्पूर्ण सन्धियाँ, आमाशय तथा मेद ये कफ के स्थान हैं। इस प्रकार शरीर के सम्पूर्ण अङ्गों में वात, पित्त और कफ विचरते रहते हैं। ये जब समान अवस्था में रहते हैं तब सुख और जब विषम अवस्था में रहते हैं तब दुःख करते हैं। इन तीनों दोषों की समता और विषमता को भलीभाँति विचार कर एवं औषधियों के गुण, दोष और स्वरूप को जानकर उनका प्रयोग करने से मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है। आयुर्वेदिकग्रन्थों में इसी प्रकार के उपदेश दिये गये हैं। अन्य चिकित्सा शास्त्रों की अपेक्षा आयुर्वेदशास्त्र में यह भी विशेषता है कि रोग का जिससे आक्रमण न होसके और आरोग्य तथा स्वस्थ शरीर से मनुष्य दीर्घायु प्राप्तकर आत्मचिन्तन करता हुआ संसार सागर से मुक्ति लाभ कर सके।

भोज्य पदार्थ और भोजन सम्बन्धी नियम।

(लेखक—डाक्टर गिरिवरसहाय जी)

बहुत से डाक्टरों का मत है कि दिन में दो बार भोजन करना स्वास्थ्य के लिये पर्याप्त है। दिन में भोजनों के बीच का अन्तर रात की अपेक्षा कुछ कम रहता है। सुबह को ९ से ११ बजे तक और सायंकाल ६ से ७ बजे तक भोजन करलेना चाहिए। सायंकाल का भोजन सोने से कम से कम तीन घण्टे पूर्व करलेना चाहिये। तन्दुरुस्त कामकाजी आदमियों को कभी कभी इन दो भोजनों के अलावा प्रातःकाल एक बार जलपान करने की और आवश्यकता होती है। जाड़े के दिनों में भी भूख कुछ अधिक लगती है। बच्चों, रोगियों या रोग से उठने पर और गर्भिणी स्त्रियों को भी थोड़ा थोड़ा करके दिनमें कई बार भोजन देने की आवश्यकता पड़ती है। यह याद रखना चाहिये कि भूख से कुछ कम खाना ही स्वास्थ्य के लिये लाभदायक होता है, अति भोजन ही आज कल सभ्य समाज में बहुत से

(बंगला आयुर्वेद के एक लेख के आधार पर)

रोगों को जड़ है । भोजन उस समय करना चाहिये जब भूख मालूम हो । बिना भूख के भोजन करने से उसका पाचन ठीक ठीक नहीं होता । संक्षेप में हमें याद रखना चाहिए कि हम जीने के लिये खाते हैं, न कि खाने के लिये जीते हैं ।

वैद्यक ग्रन्थों में प्रातःकाल उठने पर आठ चुल्लू पानी पीने का विधान (उषः पान) है । इसके बाद कुछ टहल कर दिशा मैदान जाना चाहिए । ऐसा करने से दस्त साफ आता है, पाचन ठीक रहता है और पित्त के विकार शान्त रहते हैं । पाश्चात्य देश के रहने वालों में उषःपान की तरह सबेरे चाय पीने का रिवाज है । वह बिस्तर से उठने के पूर्व ही यानी, बिस्तर पर लेटे लेटे ही सबेरे की चाय पीते हैं । फिर कुछ देर बाद हाजत लगने पर शौच के लिये जाते हैं । इसी तरह बहुत से लोग सुबह को हुक्का या सिगरेट पी कर पाखाना जाते हैं । चाय या हुक्के की अपेक्षा उषःपान यानी केवल ठंडे पानी का सेवन अधिक स्वाभाविक है । जिन लोगों को सबेरे की चाय की आदत पड़गयी हो वे उसकी जगह गुनगुने पानी का सेवन करसकते हैं । चाय या हुक्के का इस्तेमाल बिलकुल अस्वाभाविक है । आजकल हमारे देश में भी चाय पीने का रिवाज दिन दिन बढ़ता जाता है । हमें यथाशक्ति उसे रोकने या कम करने की कोशिश करनी चाहिये । जैसा हम ऊपर कह आये हैं, प्रातःकाल उठने पर शौच से पहले एक गिलास ठंडा (यदि ठंडे से काम न चले तो गुनगुना) पानी पी लेने से शौच की क्रिया ठीक होती है और यह अभ्यास उन लोगों के लिये विशेष रूप से उपयोगी है जिन्हें बद्धकोष्ठ (कब्ज) की शिकायत रहती है । कब्ज के कारण जो और अन्य रोग पैदा होजाते हैं जैसे बवासीर आदि, उनमें भी उषःपान का सेवन उपयोगी है । यदि कब्ज पुराना हो और उषःपान से काम न चले तो जल की जगह आधा गिलास 'फलों का रस' जिसके बनाने की विधि नीचे बताई जाती है, पीना चाहिए—

एक शीशे या पत्थर का प्याला जिसमें दो ढाई छटांक पानी आ सके लो । उसमें एक कागजी नीबू का रस निचोड़कर उसके छिलके के छोटे २ टुकड़े करो और उसके बीजों को भी रस में भिगो दो । इसके साथ अंजीर, मुनक्के, किशमिश और छुहारों से (टुकड़े टुकड़े करके) आधा प्याला भरदो । फिर इसमें इतना ठंडा पानी डालो कि प्याला तीन चौथाई भर जाय । यह काम रात को सोने से पहले

करना चाहिए और सुबह उठने पर इसका रस छानकर पीना चाहिये। उपर्युक्त परिमाण एक व्यक्ति के लिये है। कुल परिवार के लिये बनाना हो तो इसी हिसाब से सब चीज़े ज्यादा कर देनी चाहियें। भिगोते समय इस रस में दिन के खाने से बचे हुए नारङ्गी और सेव के बीज और छिलके भी मिलाये जासकते हैं। छिलके और बीजों में जो तेल होता है उसका पुष्टिकारक प्रभाव आँतों के लिए लाभदायक होता है। इसरसके सेवन से आँतों का मल ढीला होकर शीघ्र ही हाजत मालूम होने लगती है और साफ पाखाना होता है। जिस घर में यह 'फलो का रस' नियम पूर्वक सेवन किया जाता है वहाँ कब्ज़ फटकने नहीं पाता और उसका तय्यारी में जो थोड़ा श्रम होता है वह ठिकाने लगजाता है। दुधमुँहे बच्चों को ४ माशे (एक छोटे शम्मच भर) और बड़े बच्चों को उनकी उम्र के मुताबिक १ तोले से ३ तोले तक यह रस देना चाहिए।

इसके पश्चात् शौच इत्यादि से निबट कर जलपान का समय आता है। उपर्युक्त 'रस' निकालने के पीछे जो फलों का फुजला बच जाता है वह और आधे या एक दर्जन बादाम या उनकी जगह कोई दूसरी मींगीदार मेवा खासकते हैं। बादाम की मींगी यदि रात को थोड़े पानी में भिगोदी जाय तो अधिक उत्तम है। यदि इतने से तृप्ति न हो तो उसके साथ जलपान में ताजा फलों का या रात भर भीगे हुए कच्चे चनों का सेवन भी करसकते हैं। जिन फलों का छिलका मुलायम होता है उन्हें बिना छीले ही खाना चाहिए। बाजे फलों का छिलका बहुत कड़ा होता है. जैसे आम, केला, नीबू, खरबूजा, तरबूज, नारङ्गी, शरीफा इत्यादि। इसलिये इन्हें छीलकर ही खाना उचित है। खाने से पहले फलों को ठंडे पानी से धो लेना चाहिये। छोटे बच्चे चबाना नहीं जानते, इसलिये उन्हें मेवा इत्यादि कुचलकर या छोटे छोटे टुकड़े करके देना चाहिये।

स्वाभाविक भोजन सादा होना चाहिये। अधिक चटपटी या मसालेदार चीज़ों का इस्तेमाल अच्छा नहीं। हिन्दुओं में ऐसा भोजन तामसिक कहलाता है। भोजन के पदार्थों को अधिक छौंकने बघारने, तलने या देर तक भूनने से उनका पौष्टिक सत्त्व निकल जाता है। यही हाल बहुत बारीक पिसे हुए आटे का होता है। इस लिये इन चीज़ोंसे परहेज़ करना चाहिये। तरकारियों (आलू इत्यादि) को बक्कल सहित उबालने से उनके छिलकों में जो स्वाभाविक लवण

रहते हैं उनको हानि नहीं होती, इसलिये इन चीज़ों को थोड़े पानी में छिलके सहित उबालना या भाप में पकाना ही उत्तम है। पकाने से पहले दाल चावल इत्यादि को धोने से उनके नमक निकल जाते हैं और उनका स्वाभाविक स्वाद और गुण कम हो जाता है। आटा बे छना (चोकरदार) इस्तेमाल करना चाहिये; क्योंकि चोकर में गेहूँ का पौष्टिक अंश (सत्त) रहता है और चोकरदार आटा खाने से कब्ज़ की शिकायत नहीं होती। हमारे देश में साधारणतया निम्न लिखित पदार्थों का स्वाभाविक भोजन में समावेश होसकता है।

बे छने आटे की रोटी, उबाली दाल या शाक, घी या मक्खन, उबाली हुई सादी तरकारियाँ और शाक, हरे शाक (मूली, गाजर इत्यादि), दही (ताज़ा), शहद, भात, खिचड़ी, दलिया, फल और मेवा, रसदार फल (भोजन के अन्त में), ताज़ा मठा, (भोजन के कुछ देर पहले या बाद)।

कोई कोई विद्वान् अण्डे को भी स्वाभाविक भोजन में शामिल करते हैं पर हमारी समझ में नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि अण्डा एक पुष्टिकारक पदार्थ है, पर भोजन के विचार से हमारी समझ में अण्डे की गणना तामसिक गुण वाले पदार्थों में हो सकती है। सात्विक आहार की व्याख्या गीता में को गई है—

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः॥ १७।८

अर्थ—आयु, सात्विक वृत्ति, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को वृद्धि करने वाले रसीले, चिकने, शरीर में मिलकर चिरकाल तक रहने वाले और मन को आनन्ददायक आहार सात्विक लोगों को प्रिय होते हैं।

हमारी समझ में सत्त्वगुण प्रधान भोजन के पदार्थों की एक मोटी सी पहचान यह है कि स्वाभाविक अवस्था में (बिना धोये पकाये अथवा नमक, मिरच मसाला लगाये,) उन्हें खाने की रुचि हो और उन्हें देखने, सूंघने या छूने से किसी प्रकार की घृणा उत्पन्न न हो। अण्डे में यह बात नहीं है। कच्चा अण्डा खानेमें रुचिकर नहीं होता।

तरकारियों में केवल मंडमय कन्दमूल जैसे आलू, अरबी, शकरकंद इत्यादि का सेवन या उनका अधिक सेवन अच्छा नहीं। इन की अपेक्षा हरे शाक और तरकारियाँ अधिक उपयोगी होती हैं। जैसा कि पहले जिक्र आ चुका है। तरकारियों को उबालने की अपेक्षा उन्हें

भाप में पकाना (स्टीमिंग) जैसे 'कुकर' में, अधिक अच्छा है, क्योंकि उबालने के लिये जो पानी इस्तेमाल किया जाता है उसके साथ तरकारी के विविध 'नमक' घुलकर निकल जाते हैं। इसको आग या राख में गाड़कर भूनने से लगभग भाप में पकाने के अनुसार ही प्रक्रिया होती है और तरकारी के अन्दर का जल भाप बन कर उसे पका देता है।

शाकों में गाजर भी अच्छी चीज़ है। उसके इस्तेमाल से भूख बढ़ती है और खून भी साफ़ होता है। उसे कच्चा ही खाना अच्छा है। उबालने से उसके गुण कम होजाते हैं।

इसीप्रकार बहुत से लोग मूली, टमाटर, चुकंदर, शलजम, गोभी, लौकी, कद्दू, तोरई, भिंडी, सेम, करेला, परवल, शकरकंद और अन्य मुलायम हरे शाकों को भी कच्चा ही खाते हैं। कहते हैं कि ऐसा करने से जठराग्नि प्रबल होकर मनुष्य का पाचन ठीक रहता है और दस्त खुलासा होकर कब्ज नहीं रहता। कच्चे शाकों के साथ थोड़ा सा नमक मिलाकर और उन पर नीबू का रस निचोड़ कर खाने से वह अधिक सुस्वादु और रुचिकर हो जाते हैं।

मांस मनुष्य का स्वाभाविक भोजन नहीं है, इसलिये इसका सेवन ठीक नहीं है। इस के इस्तेमाल से प्रायः 'यूरिक एसिड' सम्बन्धी शिकायतें (गठिया, पथरी इत्यादि) पैदा हो जाती हैं (विशेषकर उन लोगों को जिनकी उम्र चालीस साल से ऊपर है)। यूरोप में जहाँ मांस का इस्तेमाल ज़्यादा होता है बहुत से ऐसे रोग प्रचलित हैं जिनका कारण केवल मांस भोजन का प्रचार है। उनमें से गठिया, केन्सर (जहरबाद) न्यूरेलजिया (नाड़ी मार्ग में तीव्र वेदना), कृमि और मसूढ़ों से मवाद जाना मुख्य रोग हैं। हर जीवित प्राणी के शरीर में निर्माण और क्षय का काम होता रहता है। प्रत्येक क्षण नये रगोरेशे बनते और पुराने बिगड़ते रहते हैं। यही बिगड़े हुए विषैले कण (वेस्ट मेटर) जिनका मुख्य भाग यूरिया और यूरिक अम्ल होता है। शरीर के प्रत्येक भाग में निकासी के लिये उपस्थित रहते हैं और धीरे धीरे शिराओं के द्वारा रक्तप्रवाह में पड़कर शरीर से (मूत्र और स्राव) मलों के साथ निकलते रहते हैं। जब कोई जानवर मारा जाता है तो उसकी मांसपेशियों में यह क्षीण मल थोड़े बहुत परिमाण में अवश्य ही मौजूद रहता है। यह मांस के रगों रेशों में इतने घनिष्ठ रूप से मिला रहता है कि धोने या पकाने

से उससे पृथक् नहीं होता। उसी तरह से मांस भोजन में यह क्षीण पदार्थ भी सम्मिलित रहते हैं और मांसभोजी के पाचन पर अधिक भार डालते हैं, पर जब मांसाहारी का शरीर उन्हें यथोचित रूप से निकालने में असमर्थ होता है तो यह उसके शरीर में इकट्ठा होकर भिन्न भिन्न रोगों के कारण बन जाते हैं। यह यूरिया या यूरिक अम्ल जो मांस के हानिकारक पदार्थों का मुख्य अंश है मेवों और फलों में नहीं होता जैसा कि ऊपर लिखा गया है। चाय की गिनती मादक द्रव्यों में है। इस का इस्तेमाल शरीर के लिए आवश्यक नहीं। इस के विपरीत इसके अधिक सेवन से पाचनशक्ति और नाड़ी मंडल (नरवस सिस्टम) निर्बल और शिथिल हो जाता है। सच बात तो यह है कि शराब की तरह चाय का अभ्यास भी देश के लिये एक बड़ी विपत्ति और उसके दुर्भाग्य का लक्षण है।

यदि कब्ज रहता हो तो जैसा ऊपर लिखा गया है 'फलों का रस' आधा प्याला सोने से पहले पी सकते हैं। हमारे देश में सोने से पूर्व प्रायः कुछ दूध पीने की चाल है पर दूध का सेवन सोने से कम से कम एक घण्टा पूर्व हो कर लेना चाहिये। दूध कुछ गुनगुना ही हो तो अच्छा है। वैद्यक के सिद्धान्तानुसार ऐसा करने से दिन में किये हुए भोजनों के विकार शांत हो जाते हैं और दस्त साफ़ होता है।

फलों के विषय में कुछ ज्ञातव्य बातें।

जैसा हम पहले कह चुके हैं ताज़े फलों का सेवन मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त लाभदायक है। अंगूर, अनार, सन्तरा, सेब, केला, गन्ना इत्यादि के विचार मात्र से मुँह में पानी भर आता है। उस परमात्मा की दी हुई इन स्वाभाविक न्यामतों के सामने हलवाई की बढ़िया से बढ़िया मिठाई भी मात है।

अंगूर अत्यन्त पौष्टिक मेवा है। इसमें वह सब उपादान मौजूद हैं, जिनको आवश्यकता शरीर की पुष्टिके लिये होती है। और जिन के ऊपर मनुष्य जबतक चाहे निर्वाह कर सकता है। बहुतसे डाक्टर अंगूर को दूध से अच्छा समझते हैं, विशेषतः उस मनुष्य के लिये जो किसी रोग से उठरहा हो और निर्बल हो। अंगूर सर्द, बलकारक और हृदयकी पुष्टि करने वाला है। इसके सेवनसे थूक बढ़ता और चित्त में प्रसन्नता आती है। दूध से कभी कभी कब्ज हो जाता है, अंगूर से ऐसा नहीं होता। अंगूर में प्रोटीड होता है। यह पदार्थ

(प्रोटीड) शरीर शक्ति की पूर्ति करता और नये रगो पुट्ठे बनाता है। माता के दूध के प्रोटीड से अंगूर की प्रोटीड की मात्रा मिलाने से जान पड़ता है कि अंगूर में सौ में १०३ भाग प्रोटीड होता है और दूध में १५३ भाग अर्थात् दूध का प्रोटीड अंगूर के प्रोटीड से लगभग ड्योढ़ी मात्रा में होता है। प्रोटीड के अतिरिक्त अंगूर के रासायनिक संगठनमें कुछ तेल, खटाई, और विविध नमक भी पाये जाते हैं। खटाईके रूप में अंगूर के रसमें मैलिक (अम्ल, टाटरिक अम्ल और साइट्रिक अम्ल पाया जाता है। शरीर के अन्दर यह अम्ल कार्बो नेटके रूपमें बदल जाते हैं और खूनको खारी रखने में मदद देते हैं। उनकी कमीसे स्कर्वी प्रभृति रोग होजाते हैं। अंगूर में अधिकतर पोटाशियम के नमक होते हैं और थोड़ी मात्रा में साधारण खानेका नमक सोडियम हरिद् (सोडियम क्लोराइड) हरित, सोडियम प्रस्फुरेत (सोडियम फास्फेट). मेगनेशियम स्फुरेत (मेगनीशियम फास्फेट) और खटक स्फुरेत (कैलशियम फास्फेट) होते हैं यह सब पदार्थ स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हैं और यह शरीर में गोलकोनको खूनमें घुला मिला रखते हैं और पाचक रस बनाते और नाड़ी मंडलका पोषण करते हैं। अंगूर में पोटाश द्विकर्बनेत भी होता है इसी से अंगूरका सेवन ज्वर की अवस्था में और बच्चोंके दाँत निकलने में बहुत लाभदायक होता है। अंगूर में जो शकर (दाख शकर) होती है वह बहुत जल्द पच जाती है। और शरीर को गर्म और पुष्ट करती है। मीठे अँगूरों के सेवन से बिगड़ा हुआ और मन्द पाचन सुधर जाता है और रक्तस्राव अथवा अधिक परिश्रम या चिन्ता से जो रक्त दौर्बल्य (अनीमिया) होजाता है उसमें भी अंगूर के इस्तेमालसे बड़ा फायदा होता है।

सेव भी स्वास्थ्य के लिये उपयोगी है। इसमें आंगारक (कारबन) और लघु पाक रूप में स्फुर (फास्फरस) पाया जाता है और आंगारक स्फुर मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये अति आवश्यक है। सेव में मैलिक अम्ल होता है। यह मनुष्य के पाचक रसका एक आवश्यक अंश है। सेव कच्चे ही खाने चाहिये। उन्हें सूर्य भगवान् एक बार अपने स्वाभाविक ताप (धूप) में पका चुके हैं। मनुष्य को कृत्रिम उपायों से फिर उन्हें पकाने की आवश्यकता नहीं है। बढ़िया से बढ़िया बनी हुई शकर की अपेक्षा फलों की स्वाभाविक शकर अधिक

स्वादिष्ट और गुणकारी होती है। इसीसे बच्चों को फलों से स्वाभाविक रुचि होती है।

नीबू पित्त के विकारों के लिये बड़ा गुणकारी है और पाचन-शक्ति को उत्तेजित करता है। यूरिक अम्ल और दूसरे विषों को घुलाकर रक्तप्रवाहके द्वारा मल मूत्र रूपमें बाहर निकाल फेंकता है और इस तरह प्रकारान्तर से रक्त शोधनका काम करता है, अतः इसका सेवन स्कर्वी (रक्तदोष) गठिया इत्यादि रोगों में जो रक्त के विकारों से उत्पन्न होते हैं—बड़ा लाभदायक है। नीबूके गुण अपार हैं। सेवनसे पूर्व उसमें पानी या शक्कर मिलानेकी आवश्यकता नहीं है। नीबूकी बहुत किस्में हैं, किन्तु हमारे यहाँ काग़ज़ी नीबूकी अधिक प्रशंसा की जाती है।

मुनक्का, किशमिश, अंजीर, छुहारा, खजूर, केला और गन्ना प्रभृति फलोंमें और मींगदार मेवों में यथेष्ट रूपमें पौष्टिक अंश होता है, अतः उनकी गिनती सर्वोत्तम भोजनके पदार्थोंमें करनीचाहिये। केवल उन्हीं के ऊपर निर्वाह करके मनुष्य भले प्रकार स्वस्थ और हृष्टपुष्ट रह सकता है। मेलट महाशय लिखते हैं कि मैं अधिकतर फलोंके ऊपर ही गुजर करता हूँ, जिसका परिणाम यह है कि ५७ वर्ष की उम्र में मैं २० वर्ष पूर्व की अपेक्षा अधिक स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट जान पड़ता हूँ। मींगोदार मेवों में अखरोट, काजू, मूँगफली, चिलगोजा, पिस्ते, चिरौंजी, बादाम, गरी (खोपरा), खरबूजे के बीज इत्यादि शामिल हैं। मींगदार मेवों को दूसरे भोजन के साथ खाना ठीक नहीं है। यह समझना कि मींगोदार मेवे गुरुपाकी होते हैं—भूलहै हाँ जब मांस शाक भाजी या दूसरे मंडमय भोजन (रोटी,चावल इत्यादि) के साथ उनका सेवन किया जाता है तबउन मेवों के पचने में कठिनाई होती है। अतः ऐसे मेवों को अलहदा खाना ही अच्छा है।

हमारे यहाँ अमरूद, ककड़ी, खीरा इत्यादि बहुधा नमक के साथ खाये जाते हैं। नमकके संयोग से उन चीज़ोंके पचनेमें सुविधा होती है। हमारे देशमें उन चीज़ों की 'ठण्डी' तासीर कही जाती है और यह प्रायः देखा जाता है कि जब बच्चे या अन्य कोमल स्वास्थ्य वाले मनुष्य इन चीज़ों का सेवन अधिक संख्या में, खाली पेट या बिना नमक के करते हैं तो उनके पेट में दर्द होने लगता है और कभी कभी दस्त भी होने लगजाते हैं।

इसी तरह हमारे देश में खरबूजे के साथ शकर, फूट के साथ गुड़, आम और केले के साथ दूध का सेवन करने को चाल है। इन चीज़ों के संयोग से उनके साथ खाये हुए फलों के विकार शान्त होकर उनका पाचन भलीभाँति होता है।

'विज्ञान'

—x—

नेत्र-रोग।

प्राणिमात्र के शरीर में नेत्र एक परमोपयोगी अवयव हैं और मनुष्यों को बाह्यपदार्थों का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कराने के लिये नेत्र ही प्रधान साधन हैं। किन्तु ये नेत्र थोड़ी सी असावधानी करने से ही बिगड़ जाते हैं। उस समय नेत्रों को अच्छे प्रकार से चिकित्सा न कर लापरवाही करने से मनुष्य भयङ्कर नेत्ररोगों से ग्रस्त होकर अन्धे होजाते हैं-और नेत्रहीन मनुष्य का जीवन व्यर्थ होजाता है, इसलिये नेत्रों की बहुत ही सावधानी से रक्षा करनी चाहिए।

नेत्रों के बिगड़ने के अनेक कारण हैं, जिनका वर्णन आगे किया जायगा। परन्तु उन कारणों का वर्णन करने से पहले नेत्र रचना का विषय जानलेना आवश्यक है, इसलिये प्रथम इसी विषय का वर्णन किया जाता है।

साधारणता से देखने पर नेत्र कौड़ी की समान उठे हुए और दो छोर वाले मालूम होते हैं परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। ये गेंद की समान गोल आकार वाले हैं। नाक, जावड़ा और खोपड़ी की हड्डियों से बने हुए गोलक में ये स्थित हैं। नेत्रों की रक्षा के लिए उनके ऊपर दो पलक हैं और पलकों के किनारों पर बाल जमे हुए हैं। ये पलक झिल्लियों से वेष्टित हैं। नेत्रों की सीमा के बाहर कपोलों के नीचे दोनों पार्श्वों में ग्रन्थियाँ हैं, जिनसे पानी के समान रक्तसार निकल कर नेत्रों में जाता रहता है। यह रक्तसार नेत्रों को चमकीला बनाये रखता है—और धूल आदि के कणों को एक छोटी सी नली के द्वारा अपने साथ बराबर नाकके भीतर लेजाता है। इसप्रकार वहाँ दूषित पदार्थों के इकट्ठे होते होते जब नासिका मैली होजाती है तब प्रकृति छींक के द्वारा उनको बाहर निकाल डालती है। नेत्रों के गोले का

ऊपरी पर्दा श्वेत और कड़ा है। इसपर्देके उस पार प्रकाश नहीं जाता है। इसके बीचमें एक गोल और साफ़ प्रकाश को ग्रहण करने वाला भाग है। यह भाग काँच के समान पारदर्शक है। यह मुख्य गोलेसे कुछ उभरा हुआ है। इस श्वेत पर्दे के नीचे दूसरा एक और पतला तथा काला पर्दा है। यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म रक्तशिराओं से वेष्टित है। ये ही शिरायें इस अवयव को पुष्ट करती हैं। काले रङ्ग के द्वारा प्रकाश की किरणें वितरित होकर इधर उधर फैलती नहीं हैं। यह पर्दा प्रकाशग्राही भाग के पीछे भी रहता है, इसी कारण पुतली का रङ्ग बाहर से काला दीखता है। किसी किसी के यह पर्दा भूरा, नीला या पीले रङ्ग का होता है। इस रङ्गीन पर्दे के बीच में एक छोटा सा छेद है, जो कनीनिका या तारा कहलाता है। छोटी २ मांसपेशियों के द्वारा वह प्रकाश के प्रमाणानुसार फैलता और सिकुड़ता है। अर्थात् कम प्रकाश में फैलता और अधिक प्रकाश में सिकुड़ता है। यह बात बिल्ली या तोते की आँखों को देखने से सहज ही समझ मे आसकती है। रङ्गीन पर्दे और प्रकाश भाग के बीच में पानी के समान पतला पदार्थ भरा रहता है, जिनसे प्रकाश की किरणें छनकर भीतर जाती है। पुतली के पीछे मटर को बराबर, कोमल, चिकनी और उन्नतोदर वाली काँचकी समान एक वस्तु है। यह पेशियों के द्वारा कभी अधिक गोल और कभी अधिक लम्बी होजाती है। इसके पीछे का भाग एक गाढ़ी वस्तु से भरा हुआ है। मस्तिष्क के ज्ञानतन्तु आकर उक्त पदार्थों को छेदते हुए अपने शाखाजाल को भीतरी तीसरे पर्दे पर फैला देते हैं। इनपर उक्त वस्तु का प्रतिबिम्ब पड़ने से हमें उस वस्तु का आकार, रङ्ग आदि का ज्ञान होजाता है। नेत्रों का गोला पेशियों के द्वारा दहिनी और बाँई ओर नीचे, ऊपर घूमता रहता है।

नेत्ररोगों के साधारण होने पर उनकी भी उपेक्षा करनेसे वे कभी २ भयङ्कर रूप धारण करलेते हैं और उनसे बढ़ते बढ़ते अन्त में ७८ प्रकारके नेत्ररोग उत्पन्न होजातेहैं,इसलिये नेत्ररोग चाहे साधारणहो अथवा भयङ्कर हो, उसकी किसी सुयोग्य चिकित्सक से तुरन्त चिकित्सा करानी आवश्यक है। मनुष्यों की अपेक्षा बालकों की आँखें अत्यन्त कोमल होती हैं, इसलिए उनकी विशेष सावधानी से रक्षा करनी चाहिए, अन्यथा वे नेत्रहीन अथवा विकृत नेत्रवाले होजाते हैं। नेत्रों का दुखना अथवा नेत्रों में कोये पड़जाना, इसको बहुत लोग

एक साधारण बात समझते हैं; किन्तु ऐसा नहीं करना चाहिए। नेत्रों के दुखने या रोये पड़जाने पर उनकी चिकित्सा करने से पहले जबतक उक्त रोगों के कारणों को दूर न करा जावेगा तब तक स्थायी लाभ नहीं होसकता। नेत्ररोग में पलकों के किनारे, रोमकूप और भीतरी झिल्ली फूलजाती है। बारीक रक्तशिराओं के फटजाने से पुतली के चारों ओर लाली छाजाती है और कीचड़ निकला करते हैं। इसके सिवा जब रोये पड़जाते है तब नेत्र बन्द होजाते हैं, उनको खोलने पर बहुत कष्ट होता है और वे ऊपर से सूजजाते है। इसी से बालक आँख खोल नहीं सकते और शूल के मारे सदैव रोते रहते हैं। यदि इसी प्रकार कुछ दिनों तक आँखें बन्द रहें और कीचड़ न निकाले जावें तो बालकों के नेत्र बिगड़ जाने का भय रहता है। कारण, कीचड़ों में एक प्रकार का खार रहता है, जो अत्यन्त मृदु रक्तशिराओं को खाजाता है और धीरे धीरे कठिन होजाता है, इस लिये नेत्रोंको स्वच्छ जल से धोकर प्रतिदिन साफ करदेना चाहिए। उक्त कारणों के सिवा शारीरिक अस्वच्छता और प्रकाश की कमी भी नेत्ररोग का कारण है। इस प्रकार के नेत्ररोग बहुधा दरिद्र मनुष्यों के बालकों को हुआ करते है। क्योंकि एक तो उनको यथेष्ट भोजन नहीं मिलता, जिससे कि उनके नेत्रों का भलीभाँति पोषण होसके, दूसरे वे सदैव धूल, मिट्टी आदि में खेला करते हैं। इससे दूषित कण वायु द्वारा उनकी आँखों में प्रविष्ट होजाते हैं। कभी २ शीतला (माता) के निकलने से बालकों की आँखो में अत्यन्त पीड़ा होती है, आँखें रक्त की समान लाल, दानेदार और सूजी हुई होती हैं। ऐसी अवस्थामें थोड़ीसी असावधानी करने से भी नेत्रशक्ति सदा के लिए नष्ट होजाती है। इसलिए माता निकलने पर बहुत ही सावधान रहनेकी आवश्यकता है। नेत्ररोगी के कमरे में सदैव स्वच्छ वायु और कम प्रकाश आना चाहिए। एवं उस स्थान में गोबर,लीद, राख, धूल आदि कूड़ा कचरा और धुआँ नहीं होना चाहिए। उस स्थान को तथा रोगी के वस्त्रों को हमेशा साफ़ सुथरा रखना चाहिए। बालकों के सिर में कभी कभी जुयें अधिक पड़जाती हैं, इससे बालक बारम्बार सिर को खुजलाते रहते हैं; अतएव उनके नाखूनों के विष से सिर में और मुँह पर फोड़े होजाते हैं। कदाचित् उन फोड़ों का रस नेत्रों में चले जाने से भी नेत्र विकृत होजाते हैं। किसी किसी बालक के नेत्र जन्म से ही कमज़ोर होते हैं। वे जब पढ़ने

लिखने का काम कम या तीव्र प्रकाश में अथवा धुयें में बैठकर करते हैं तब उनकी पेशियों पर अधिक ज़ोर पड़नेसे नेत्र शीघ्र रोगाक्रान्त हो जाते हैं।

नेत्रों के दुखने या रोगे पड़ जाने पर सब से पहले उनको प्रतिदिन गुनगुने पानी से धोना चाहिए। बालकों के रोने पर ध्यान नहीं देना चाहिए। फिर अफीम को पोटली से सेंकना चाहिए और फटकरी को गुलाब जल में पीसकर नेत्रों में टपकाना चाहिए। यदि परिस्थिति ठीक न हो तो तत्काल किसी सुयोग्य चिकित्सक से चिकित्सा करावे। मक्खियों को आँखों पर न बैठने देवे। इसमें जब बालकों के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान रक्खा जाय तब नेत्रचिकित्सा के उपाय शीघ्र सफल होते हैं।

कुछ साधारण औषधियां।

जैतून का तेल।

(ओलिव आयल)

जैतून के वृक्ष यूरप के दक्षिण प्रान्त में, हिमालय और नीलपर्वत पर अधिक उत्पन्न होते हैं। इसके सिवा भारत में भी जैतून प्रचुरता से उत्पन्न होता है। कहीं कहीं यह खटाई या अचार के काम में आता है, इसके अतिरिक्त हम इसका विशेष परिचय नहीं देसकते। किन्तु अङ्गरेज़ी वनस्पति विज्ञान से जैतून का विशेष परिचय प्राप्त होता है। इसके बीजों में से जो तेल निकलता है एवं जो बाज़ारों में ऑलिव ऑयल (Olive Oil) नाम से बिकता है, वह काडलिवर-ऑयल (Codliver Oil) की समान गुणकारी कहा जाता है। यक्ष्मा आदि शरीर का क्षय करनेवाले रोगों में और सब प्रकार की दुर्बलता में—जहाँ कि काडलिवर ऑयल का व्यवहार होता है, वहाँ जैतून का तेल भी व्यवहृत हो सकता है। जैतून के तेल में मल्टिन (Maltine) मिलाकर मल्टिन और काडलिवर आयल की समान मल्टोलिवाइन (Maltolivine) नामक एक अत्यन्त पौष्टिक औषध तैयार की जाती है। लिपानिन Lipanin नामक और भी एक औषध जैतून के तेल के द्वारा तैयार होती है, वह भी काडलिवर आयल के

बड़्से व्यवहार कराई जा सकती है। इसके अतिरिक्त Mismraolei Oliva और Emulsio Olio Oliva co नामक और भी दो औषधें अङ्गरेज़ी फारमाकोपिया में लिखी मिलती हैं। खाली जैतून का तेल विरेचक, अर्श को दाह और गुदा के पीड़ाकारक व्रण में विशेष उपयोगी है। पेचिश के रोग में गुदा में अत्यन्त कष्टप्रद शूल और वेदना होने पर जैतून के तेल में कभी अफीम के अर्क की कुछ बूंदें मिला कर उसको कुछ गरम करके पिचकारी लगाने से उक्त कष्ट शीघ्र दूर होता है। कठिन और बँधे मल को बाहर निकालने के लिए जैतून के तेल की पिचकारी ग्लेसरीन की पिचकारी की समान तत्कालगुण करती है। Gall Stone के कारण पित्तशूलरोग में जैतून के तेल को पान करने से कभी २ आश्चर्य्यजनक फल होता है। कोई २ कहते हैं कि जैतून का तेल पित्तस्थान में स्थित पत्थर को समान कठिन पदार्थ को भी गला देता है।

बाह्य प्रयोग में—जैतून का तेल बादाम के तेल की समान शरीर को त्वचा को चिकना और कोमल बनाता है। एकज़िमा जाति के किसी २ चर्म रोग में इसके द्वारा विशेष उपकार होता है। किसी विद्वान् डाक्टर ने लिखा है—"यक्ष्मा रोग की अन्तिम अवस्था में रात्रि में अधिक पसीना आता हो तो जैतून के तेल की मालिश करने से वह दूर होजाता है।" इसके सिवा जैतून का तेल चूने के पानी में मिलाकर अग्नि से जले हुए स्थान पर लगाया जाता है और कार्बोलिक एसिड में मिलाकर मसूरिका आदि रोगों में दुर्गन्ध को निवारण करने के लिए Disinfectant रूप से व्यवहार कराया जाता है।

अधिक क्या कहें! यद्यपि जैतून हमारे देश में प्रचुरता से उत्पन्न होती है, फिर भी जैतून का तेल यूरप से यहाँ आता है।

—o—

पोदीना।

पोदीना प्रायः शाक, व्यञ्जन और चटनी के काम में आता है, यह एक अतिशय पाचक, शूल नाशक और आमवात रोगनिवारक है। यह गुणों में अङ्गरेज़ी पीपरमेन्ट Peppermint के समान है।

आयल पीपरमेन्ट की समान इससे भी एक तेल तैयार होता है। इस तेल को यूनानी हकीम 'रोगन पोदीना" और इस तेल के द्वारा तैयार किये हुए पोदीने के जल को "अर्क पोदीना" के नाम से अधिकतर व्यवहार करते हैं। अङ्गरेज़ी औषधियों में भी पोदीना काम आता है। अङ्गरेज़ी में इसको पोदीने का तेल (Oil of Spearmint) कहते हैं। पाश्चात्य देशों में "पीपरमेन्ट आयल मेन्थल" नामक थाइमल की समान जो एक पदार्थ तैयार होता है, उसको अङ्गरेज़ी में Peppermint camphor कहते हैं। मेन्थल—पवन (सड़न) को निवारण करने वाला, स्नायुशूलनाशक, कीटाणु और कृमिनाशक है। एवं शरीर में शिथिलता करने वाला है अर्थात् इसको त्वचा के ऊपर मलने से कुछ देर के लिए उसमें सुन्नी पैदा होजाती है। मेन्थल—वात की पीड़ा, कमर की पीड़ा, स्नायुशूल, दन्तशूल, शिरःशूल, दाद, फोड़ा, पीठ का व्रण, नासाक्षत, डिफथेरिया और छोटे २ सूत की समान कृमियों के पड़जाने पर व्यवहार किया जाता है। पोदीने के साथ मेन्थल का वर्णन करने का अभिप्राय यह है कि-हमारा विश्वास है पीपरमेन्ट के समान पोदीने से भी मेन्थल प्रस्तुत हो सकता है। हम आशा करते हैं कि हमारे रासायनिक लोग भी इस ओर दृष्टिपात करेंगे।

तिल।

काले, और सफेद इन भेदों से तिल दो प्रकार के होते हैं। किन्तु सब प्रकार के तिलों में काले तिल ही श्रेष्ठ होते हैं, इस लिए औषधोपयोग में काले तिल ही लिये जाते हैं। तिल शरीर की श्लेष्मल त्वचा में मृदुता और स्निग्धता उत्पन्न करने के कारण कुछ दस्तावर हैं। इनका उपयोग मलावरोध और अर्शरोग में विशेष रूप से किया जाता है। तिलों में खांड, घी आदि मिलाकर तिलकुट, लड्डू या पाकादि पौष्टिक पदार्थ बनाये जाते हैं। तिल—अत्यन्त बलकारक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक और कामोत्तेजक हैं। तिलों में रज को प्रवर्त्तन करने का विशेष गुण है, इसलिए तिलों के अधिक

सेवन से गर्भपात की आशङ्का रहती है। मासिकधर्म के समय पेट में या वस्ति स्थान में पीड़ा होने पर १५-२० रत्ती तिलों को कूटकर उनकी ३-४ पुड़ियाँ बनाकर गरम जल के साथ सेवन कराने से और थोड़े कुटे हुए तिलों को गरम पानी में डालकर उससे कटिपर्यन्त स्नान कराने से अथवा तिलों का क्वाथ बनाकर उसके द्वारा स्वेद देने से अत्यन्त लाभ होता है। रुधिर की बवासीर में या अन्य किसी कारण से गुदा या मुख से रुधिर स्राव होने पर काले तिलों को मिश्री और मक्खन में मिलाकर खाने से शीघ्र लाभ होता है। तिलों की पुल्टिस बनाकर बाँधने से पुराना व्रण, हड्डी का टेढ़ा तिरछा हो जाना या सन्धि का सिकुड़ जाना ये सब विकार दूर होते हैं। तिलों को और हल्दी को एकत्र पीसकर लगाने से सब प्रकार की पीड़ा और सूजन दूर होती है। तिल के तेल का उपयोग खाने और शरीर पर लगाने के काम में विशेष रूप से होता है। अङ्गरेज़ी ओलिव ऑयल के बदले में तिल का तेल बराबर काम में लिया जासकता है। शिर में या शरीर के अन्य किसी स्थान में चोट लगजाने या अभिघात द्वारा व्रण होजाने पर तत्काल तिल के तेल में फटकरी मिलाकर उस में रुई का फाया भिजोकर २-४ बार उस व्रण पर रखने से बहुत शीघ्र व्रण भर जाता है।

—o—

प्रसव की विचित्रता।

कुछ दिन हुए यूरुप के एक प्रसिद्ध डाक्टर जे० एस० डुर्से ने "प्रैक्टिकल मेडिसिन नामक एक अङ्गरेज़ी समाचारपत्र में लिखा था कि एक यूरुपियन स्त्री के २४ वर्ष की अवस्था से लेकर ८ वर्ष के अन्दर १८ सन्तानें उत्पन्न हुईं। उनका विवरण इसप्रकार है:—

पहले वर्ष में १, दूसरे में २, तीसरे में ३, चौथे में २, पाँचवें में ३, छठे में २, सातवें में ३ और आठवें वर्ष में २ सन्तानें हुईं।

एक स्त्री एक बार में कितनी सन्तानें उत्पन्न कर सकती है, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। तथापि ५ से अधिक सन्तानें एक साथ उत्पन्न होते कभी नहीं सुनी गईं। डाक्टर चर्चिल कहते हैं

होते देखी गई हैं।

कप्तान क्लार्क ने एक बार १०३०७ प्रसूताओं के सन्तानोत्पत्ति का विवरण प्रकाशित किया था। उसमें १८४ स्त्रियों के यमज (अर्थात् जिस स्त्री के एक साथ दो सन्तानें होती हैं, उनको यमज कहते हैं) सन्तानें हुईं और शेष स्त्रियों में से तीन स्त्रियों के तीन २ और एक स्त्री के एक साथ ४ सन्तानें हुईं।

डबलिन अस्पताल की रिपोर्ट को देखने से मालूम हुआ है कि गतवर्ष १,२६,१७२ प्रसूता स्त्रियों में से २०६२ स्त्रियों के यमज सन्तानें उत्पन्न हुईं। शेष स्त्रियों में से २६ स्त्रियों के एक साथ तीन तीन और एक स्त्री के एक साथ ४ सन्तानें उत्पन्न हुई थीं। इस विषय की जर्मन, ब्रिटेन और फ्रान्स की एक रिपोर्ट नीचे प्रकाशित की जाती है।

ब्रिटेन की प्रसूताओं की संख्या	जर्मन की प्रसूतायें	फ्रान्स की प्रसूतायें
२८५२१६	४१४२६२	३६४०६
यमज सन्तानें ३७१८	५०८५	३३६
एक साथ तीन सन्तानें ४३	४६	६

इनके अतिरिक्त अन्य साधारण ८१स्त्रियोंमें से केवल एकस्त्री के यमज सन्तान उत्पन्न हुई। ऊपर की रिपोर्ट को देखने से मालूम होता है कि जर्मनी में ८२, ब्रिटेन में ७७ और फ्रान्स में १०८ स्त्रियों में केवल एक स्त्री के यमज सन्तान हुई।

यमज सन्तानें साधारण सन्तानों की अपेक्षा क्षुद्र शरीर वाली होती हैं। और वे माता के उदर में अलग अलग गेंद की समान रहती हैं। किसी किसी के यमज सन्तानों में एक लड़का और दूसरी लड़की होती है और किसी के दोनों लड़की अथवा दोनों लड़के होते हैं। परन्तु लड़कियों की अपेक्षा लड़के ही अधिक उत्पन्न होते देखे जाते हैं।

इस सम्बन्धमें यूरुप के ३डाक्टरों की लिखी रिपोर्ट इसप्रकारहैः—

यमज सन्तानें	दोनों लड़के	दोनों लड़कियाँ	एक लड़का और एक लड़की
५३६	१७१	१८३	१८२
९५	३८	२२	३५
२३३	७८	५८	६६

गर्भ में यमज सन्तान के होने पर प्रसव के समय पहली सन्तान उत्पन्न होने में बहुत देर लगती है; किन्तु दूसरी सन्तान शीघ्र ही उत्पन्न होजाती है।

यमज सन्तानों में साधारणतः पहली सन्तान उत्पन्न होने के ५ मिनट से लेकर ३० मिनट तक दूसरी सन्तान उत्पन्न होती है। कहीं किसी किसी स्त्री के द्वितीय सन्तान के प्रसव में कई कई दिन लग जाते हैं। यहाँ तक कि कई कई सप्ताह के बाद भी द्वितीय सन्तान उत्पन्न होते देखी गई है। डाक्टर कोलिन्स ने लिखा है कि २७२ प्रसूता स्त्रियों में से ३८ स्त्रियों को यमज सन्तानों में दूसरी सन्तान पाँच मिनट में, २८ के १० मिनट में, ४५ के १५ मिनट में, २३ के २० मिनट में, ३० के ३० मिनट में, ५ के ४५ मिनट में, १६ के १ घण्टे में, ८ के २ घण्टे में, ३ के ३ घंटे में, ५ के ४ घंटे में, १ के ४॥ घंटे में, ३ के ५ घंटे में, २ के ६ घंटे में, १ के ७ घंटे में, १ के ८ घंटे में, १ के १० घंटे में और १ स्त्री के २० घंटे के बाद उत्पन्न हुई थी।

डाक्टर मेग्गिस ने तीन प्रसूताओं की अत्यन्त आश्चर्यजनक कथा लिखी है। इन तीनों प्रसूताओं के यमज सन्तानें हुई थीं। इनमें से दो स्त्रियों के पहली सन्तान उत्पन्न होने के १४ दिन और डेढ़ महीने के बाद क्रम से दूसरी सन्तान उत्पन्न हुई तीसरी स्त्री के पहले दिन यमज सन्तान और उसके अगले दिन फिर दो सन्तानें उत्पन्न हुईं।

एक सन्तान की अपेक्षा यमजसन्तानें मरी हुई बहुत ज्यादह होती हैं। इसका कारण यह है कि एक तो वे प्रायः असमय में उत्पन्न होती हैं और दूसरे गर्भस्थान में यथेष्ट वृद्धि न होसकने के कारण कृश और दुर्बल होजाती हैं। एक गर्भ में दो से अधिक सन्तानों के होने पर प्रसव के बाद उनमें से एक भी जीवित नहीं रहती।

किसी किसी स्त्री के एक गर्भ में दो सन्तानें आपस में जुड़ी हुई होती हैं। डाक्टर वार्नेस ने इस प्रकार की एक घटना का उल्लेख किया है। उन्होंने एक जगह इसी प्रकार के दो बालकों को उत्पन्न होते देखा था। उनके उदर का निम्न भाग परस्पर जुड़ा हुआ था। उनमें एक लड़का और दूसरी लड़की थी। वे सन्तानें उपयुक्त समय में उत्पन्न हुई और १२ दिन तक जीवित रहीं।

और एक जगह परस्पर मिल व जुड़ी हुई दो सन्तानें उत्पन्न हुई थीं। वे भी नौ दिन जीती रहीं।

आयर्लेण्ड के "रायल कालेज के सर्जन" नामक विद्यालय में भी इस प्रकार के जुड़े हुये बालकों का अस्थिपंजर रक्खा हुआ है। कहा जाता है कि ये जुड़े हुए दोनों बालक जीवित उत्पन्न हुए थे।

किसी किसी स्त्री के गजलों की सी आकृति वालीं सन्तान उत्पन्न होती है। उसको देखने से भय मालूम होता है। किसी २ के दो सिर और ४ भुजायें होती हैं, इत्यादि नानाप्रकार की प्रसव की विचित्रतायें देखी जाती हैं।

—※—

परीक्षित-प्रयोग।

गर्भस्राव तथा गर्भपात पर—मुझे इस रोग की चिकित्सा करने का सबसे प्रथम अपने ही घर में अवसर मिला। फिर अपने नगर और देहातों में १७ जगह इस रोग की चिकित्सा की। प्रथम जिस दिन मैंने इस ओषधि का प्रयोग किया, उस दिन रक्तस्राव होते हुये ३ रात दिन हो चुका था। अर्थात् उस दिन रक्तस्राव होते होते दो दिन और रात्रियें बीत चुकी थीं और तीसरा दिन शुरू होगया था। इस समय तक न तो रक्त ही बन्द हुआ और न पीड़ा ही शान्त हुई। ऐसी अवस्था में मैंने निम्नलिखित ओषधियों का प्रयोग किया तब जाकर २-३ दिन में शान्ति हुई। ओषधि इस प्रकार है:—

(१) नागकेसर, पठानीलोध, अनार के फूल, गेरू, खस, गोखुरू, पठानीलोध, कसेरू, सिंघाड़े की गिरी, लाल और सफेद चन्दन का बुरादा, कमल के फूल, (यदि नीले फूल हों तो बहुत अच्छा है), कमल के फूलों के अभाव में कमलगट्टे की गिरी और नागरमोथा इन सब ओषधियों को समान भाग लेकर एकत्र कूटपीसकर कपड़छन करलेवे। फिर उसमें समस्त चूर्ण की बराबर भाग मिश्री मिलालेवे।

(२) अथवा गौ का सूखा हुआ गोबर (अङ्गलो आरने उपले) लेकर उसको भस्म करलेवे। फिर कीकड़ के कोमल पत्ते, मुलतानी मिट्टी, साठी के चावल ये प्रत्येक २-२ तोले लेकर १२ तोले पानी में भिगो देवे। जब १॥ घंटा होजावे तब उन भीगी हुई औषधियों को मसलकर उस जल के साथ पूर्वोक्त अङ्गलो उपलों की भस्म को ६ माशे परिमाण सेवन करावे। फिर २घंटे बाद उक्त चूर्ण की फंकी ताजे दूध के साथ देवे। फिर उक्त भीगे हुए साठी के चावल आदि को बारीक पीसकर स्त्री के पेडू पर लेपकर देवे। इसके पश्चात् शाम को ताजे दूध के साथ उक्त चूर्ण की फंकी देवे। इस प्रयोग को ३-४ दिनतक इस प्रकार व्यवहार करने से रक्तस्राव अथवा गर्भपात होना एक दम बन्द होजाता है।

हिङ्गुल रसायन--रूमी हिङ्गुल १ तोला, शुद्ध जमालगोटा १तोला, शुद्ध धतूरे के बीज १ तोला सबको बारीक पीसकर जामुन की छाल के रस में ४ प्रहर तक खरल करके टिकिया बनालेवे। फिर उस टिकिया को सुखाकर जामुन के हरे वक्कल की लुगदी में रखकर और शरावसम्पुट में बन्द करके १ मन उपलों की अग्नि में भस्म करे। शीतल होने पर उसको निकालकर पीस लेवे और शीशी में भरकर रख देवे। इस भस्म का सेवन करने से अत्यन्त प्रबल कफ, खाँसी श्वास और शीतज्वर बहुत शीघ्र शमन होते हैं। मैंने इस प्रयोग को अभी इन्हीं रोगों पर अनुभव किया है।

कासश्वास रोग पर—पुरानी मिट्टी का दीपक (३० वर्ष से कम का न हो) लेकर उसको भट्टी में या वैसे ही अग्नि में तपाकर साफ कर लेवे। जब उस की चिकनाहट दूर होजावे तब बारीक पीस लेवे। फिर १० तोले गेहूँ के आटे में उसको सान कर १ रोटी बनावे और उसको चूल्हे में फिराता रहे। जब फिराते २ वह जल कर कोयला हो जावे तब उसे बारीक पीसकर बिना काँटे की चौलाई (यह वर्षाकाल में बहुत पैदा होती है) के स्वरस में ७ दिन तक खरल करे। फिर टिकिया बनाकर उसी चौलाई की लुगदी में रखकर और शराव सम्पुट में बन्द कर भस्म करे। स्वाङ्ग शीतल होने पर उसको निकाल कर बारीक पीस लेवे। इसकी मात्रा दो रत्ती से ४ रत्ती तक। अनुपान शहद। यह औषध खाँसी, श्वासादि रोगों को अत्यन्त शीघ्र नष्ट करती है।

सीसानाशक योग—शङ्ख, झाँवा (चिरचिटा), और काला बाँसा इन तीनों को समान भाग लेकर एकत्र भस्म कर लेवे। फिर

उस भस्म को १ मिट्टी की नाँद में डालकर उसमें भस्म से १६ गुना जल भर देवे। और उसको प्रतिदिन दिन में ४-५ बार लकड़ी से चलाया किया करे। इसके बाद निथरा जल को लेवे (जिसका कि हलवाई दूध या शक्कर पकाते समय छिकनियों पर रखकर टोकरी रखकर घास का पक्का बर्तन छोड़ते हैं, उस) से कड़ाई में भरकर चूल्हे पर रखकर मन्द मन्द अग्नि से पकावे और कौंच से दूध के माये की तरह चलाता रहे। जब सब पानी जल कर उसका खार बन जावे तब कड़ाई को नीचे उतार लेवे। फिर उसमें चीते की छाल, कुड़े की छाल देशी अजवायन, खुरासानी अजवायन, अजमोद, कूट, काला जीरा, अधभुनी सौंफ, हरड़ की बकली, बहेड़ा की बकली, जवाखार नौसादर और सज्जी इन सब ओषधियों का बारीक कूट पीस कर मिला देवे और सब चूर्ण की बराबर देशी खाँड़ मिला देवे। इसकी मात्रा ६ माशे से १ तोला तक। अनुपान—ताजा जल।

यदि भाऊ आदि का खार ८ तोला हो तो और सब ओषधियाँ दो दो तोला होना चाहिएँ।

कविराज पं० शम्भुदत्त शर्मा कौशिक, मिश्र।

—०—

कोष्ठबद्धता पर पाचक चूर्ण—सनाय ६ माशे, सोंफ ६ माशे सेंधा नमक ४ माशे कालामिरच ३ माशे बड़ी हरड़ का बक्कल ६ माशे आमला १॥ तोला नौसादर ४माशे सुहागा भुना हुआ ४माशे हींग भुनी हुई २ माशे नीबू का सत्व २माशे और पीपरमेन्ट २ रत्ती इनसबको बारीक कूट पीसकर एकत्र करलेवें। फिर रात्रि को भोजन के पश्चात् ४ माशे गरम जल के साथ सेवन करना चाहिए। इसके सेवन करने से कोष्ठबद्धता अवश्य जाती रहती है।

आम, पेंठा तथा मरोड़पर—मोचरस २ माशे, पुराने आम की गुठली की मींग ३ माशे, सौंफ २ माशे, राल २ माशे, सुपारी भुनी २माशे, बेलगिरी २ माशे, पोस्त २ माशे, धाय के फूल २ माशे, लोध २ माशे सबको कूट छान कर सबकी ६ पुड़ियाँ बनालेंय। रोगी को आम में दही के साथ तथा पानी के साथ प्रतिदिन ३ बार सेवन करना चाहिए इससे अवश्य लाभ होगा, कई बार का अनुभूत है।

कुक्षी मर्दन—दाना छोटी इलायची ४ माशे, कालीमिरच ४माशे, शीतलचीनी ४ माशे पतङ्ग ४माशे अकरकरा ४ माशे, मस्तगी ४माशे, सेंधव ६ माशे पीपल ४ माशे बजदन्ती ४ माशे सोंठ ४ माशे,

तूतिया २ माशे, आमला ४ माशे, धनियाँ ४ माशे, बहेड़ा ८ माशे, माजूफल ४ माशे, हल्द ४ माशे, फिटकरी ६ माशे, चकड़ा लाख ६ माशे, भखोड़ १ माशे, कूठ १ माशे, कटेरी के फल १ तोला, बबूल का फल २ तोले कबाब चीनी ६ माशे, बादाम के छिलकों की राख १० तोले, सबको बारीक कूट पीसकर कपड़छान कर प्रातः सायं मञ्जन करना चाहिये। दन्त का हिलना, पानी लगना, मसूड़ा फूलना, रक्तस्राव, दन्तपाक, श्यामदन्त, दन्तकृमि आदि अनेक दन्त रोगों में इसका सेवन करना उपयोगी है। गुरुदयाल "वैद्य" तन्वोली पाड़ा, अलीगढ़

बाल बढ़ाने का उपाय—तिल के फूल, शहद घी और गोदुग्ध इन सब को समान भाग लेकर एकत्र मिलाकर बालों पर लेप करने से बाल बहुत जल्द बढ़ते हैं।

पिशाच नाशिनी धूप—कपूर १ तोला, केशर ६ माशे, चन्दन ६ माशे, अगर १ तोला, शिलाजीत ६ माशे, नख १ तोला, नागरमोथा १ तोला, नेत्रबाला १ तोला और कूठ १ तोला इन सब को एकत्र कूट पीस कर रख लेवे। इस धूप की धूनी देने से सर्व प्रकार की पिशाचबाधा और अनेक रोगों के जन्तु नष्ट होते हैं।

गोपीनाथ पुरोहित, फतहपुर (जयपुर)

विविध संग्रह।

वैद्यसम्मेलन के सभापति—अब की बार अखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन का १४ वां वार्षिकोत्सव श्री लङ्का-कोलम्बो में आगामी मास में होने वाला है उसके सभापति श्रीयुक्त कविराज योगीन्द्रनाथ सेन महोदय निर्वाचित हुए हैं।

बालक प्रदर्शिनी—सरकार ने अपने आरोग्य-विभाग की ओर से अभी हाल में एक सप्ताह बालकों के पालन-पोषण की रीतियों को दिखाने में लगाया था। इस विषय में देश के बहुत से शहरों में प्रदर्शिनियाँ हुई थीं। बम्बई आदि बड़े बड़े नगरों में बच्चों के जन्म से लेकर बड़े होने तक के सब उपाय पुस्तिकाओं, चित्रों तथा सिनेमा द्वारा दिखलाये गये थे। दाई का काम, बच्चों की बीमारियां, जैसे—शीतला आदि भी चित्र रूप में औषध के साथ दिखलायी गयी थीं। बहुत से स्त्री, पुरुष इस उपकारी कार्य में सहायतार्थ

सम्मिलित हुए थे। देखनेके लिए फ़ीस कुछ नहीं थी। हमें विश्वास है कि गृहस्थियों को इसके देखने से लाभ होगा।

—o—

देशी दवाइयों का प्रचार।

रोगों के अधिक उत्पन्न होने से प्रान्तिक सरकारों के सम्मुख इस समय यह प्रश्न उपस्थित है कि ग्रामीण जनता को मैडीकल रिलीफ देने का किस प्रकार प्रबन्ध किया जावे। पञ्जाब और मद्रास गवर्नमेन्ट्स ने इस सम्बन्ध में यह निश्चित किया है कि देशी इलाज को उत्तेजना देने से यह समस्या सुगमता से हल हो सकती है। यदि विचार पूर्वक देखा जावे तो सारे देश में देशी इलाज का ही प्रचार है और स्वाभाविक तौर पर भी यहां के निवासियों को देशी इलाज ही लाभकारी हो सकता है। इसके अतिरिक्त विलायती दवाएँ देशी औषधियों की अपेक्षा तेज़ ही नहीं आतो बल्कि किसी २ समय तो उनका मिलना ही कठिन होजाता है जिसका अनुभव युद्ध के समय होचुका है। इस कठिनाई को देखते हुए देशी चिकित्सा का प्रचार बड़ा आवश्यक है। इससे केवल देशी औषधियों का प्रचार ही न होगा, बल्कि बहुत सी औषधियों की खोज भी हो जावेगी, जो लुप्त प्रायःसी होरही हैं और धीरे धीरे आयुर्वेदिक व यूनानी चिकित्सा की पद्धति भी डाक्टरी के ढङ्ग पर सङ्गठित होनेसे देश में बहुतसे देशी चिकित्सा के कालेज खोले जावेंगे। यह प्रश्न देशी राज्यों के लिये भी बड़े महत्व का है। (अ० प्र०)

—o—

श्रीमान् चेयरमैन साहब बहादुर डि० बोर्ड और म्यूनिसिपिल बोर्ड।

प्रिय महोदय,

सेवा में नम्रता पूर्वक निवेदन है कि इस प्रान्त (सूबे) के हरदोई, फैजाबाद, और उरई आदि डिस्ट्रिक्ट्बोर्डों और कानपुर, फतेहपुर, उरई, बुलन्दशहर और फ़ैजाबाद आदि म्यूनिसिपिल बोर्डों में इस

माता का कर्त्तव्य ।

अर्थात्

(सन्तान पालन)

यह बड़ी अच्छी पुस्तक है । इसमें सन्तान-पालन के उपाय वैज्ञानिक ढङ्गसे बड़े विस्तारके साथ वर्णन किये गये हैं। गर्भ, जन्म, शैशव, बाल्य आदि सभी अवस्थाओं में सन्तानका किसप्रकार पालन पोषण करनाचाहिए और किसप्रकार उसकेशरीर और मन को उन्नत बनाना चाहिए—इसी का उपदेश दिया गया है । बालकोंके आहार-विहार, स्नान, शयन एवं उनकी परिचर्य्या आदि पर स्वास्थ्यरक्षा के नियमों का बहुत ही अच्छे ढङ्ग से विवेचन किया गया है ।

यह एक अङ्गरेजी पुस्तक का भाषान्तर है । इसकी उपयोगिता इसीसे प्रमाणित होती है कि इसकी दसवीं आवृत्तिकी भूमिका लन्दनके सुप्रसिद्ध डाक्टर और स्व० महाराणी विक्टोरिया के चिकित्सक सर टामस क्लार्क ने लिखी है, और वहपुस्तक महाराणी को समर्पित कीगई है । साइज़—डेमी अठपेजी, पृष्ठसंख्या ६०, छपाई उत्तम । इतने पर भी सर्वसाधारण के सुभीते के लिए मूल्य केवल ।=) आना है । वी०पी० से ॥=) में ।

पता—मैनेजर "वैद्य" आफ़िस, मुरादाबाद।

अखिल भारतवर्षीय २० वें वैद्य सम्मेलन करांचीके सभापति
राजवैद्य पण्डित रामप्रसादजी शर्मा-पटियाला।

श्री धन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष १७ } मुरादाबाद, जनवरी, फ़रवरी सन् १९३० सम्मेलनाङ्क { संख्या १-२

'वैद्य' का स्वागत ।

(लेखक-श्री० वैद्यराज पं० गिरिजादत्त जी पाठक काव्यतीर्थ आयुर्वेदाचार्य ।)

भाव विभूषित-मानस आसन, प्रेम-प्रसून—पराग प्रपूर्ण है ।
चारु चरित्र पवित्र सुचामर, सौम्य स्वभाव सुसौरभ चूर्ण है ॥
शील सुशीत-समीर प्रकाशक, ज्ञान का दीपक स्निग्धता पूर्ण है ।
'वैद्य' के स्वागत हेतु यहाँ पर, 'दत्त' समाज समुत्सुक तूर्ण है ।

(२)

मन्दिर-मन्दिर मध्य हमें, अवलोकन 'वैद्य' का आज अभीष्ट है ।
सुन्दर भाव भरा उपदेश, प्रसून का सौरभ सत्य-विशिष्ट है ॥
मानस मान सरोवर में, सुमनोज्ञ मराल 'सुवैद्य' ही शिष्ट है ।
पूर्ण वयस्क गुणाकर द्विज का, स्वागत-स्वागत-स्वागत इष्ट है ।

—※—

'वैद्य, का नव वर्ष।'

(ले० श्री० पं० रमाशंकर जी जैतली 'विश्व'। *)

कुंकुम रञ्जित नव प्रभात मिस,
मोहन, भेजो वह संदेश।
उन्नति-पथ पर चलने का,
हो मूल मन्त्र जिसका आदेश॥

ओप भरा मध्यान काल,
निर्मम स्वर में गावें संगीत।
सदा सफलता चरणों पर,
आ आ कर लोटे आशातीत॥

सन्ध्या के फैले अञ्चल में,
भरा प्रेम का हो विन्यास।
रजनी दर्शाए नित हमको,
शान्ति सौख्य का दीर्घ विलास॥

नये वर्ष का पल पल लावे,
उन्नति का सुख मय संदेश।
पहुँचा करे "वैद्य" के हाथों,
श्री धन्वन्तरि का उपदेश॥

वह प्राचीन प्रणाली फिर से,
चकित करे जग को नित नाथ।
भारत की संसृति चमकादो,
एक बार फिर दीनानाथ॥

माधव भारत फिर पाजावे,
वह ही प्रभुता औ सम्मान।
कौन कर सकेगा फिर इसका,
'विश्व' बताओ यों अपमान?

* आपको यूनिवर्सिटी कवि सम्मेलन लखनऊ की ओर से 'वसन्त' शीर्षक कविता लिखने के उपलक्ष्य में प्रथम श्रेणी का सर्वोत्कृष्ट पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

जीवनाधार वैद्य ।

(लेखक—श्री प० मूलचन्दजी जैन "वत्सल" सं० "आदर्शजैन")

वैद्य ! हां वैद्य ! जीवनाधार ।
विकृत-प्रकृति के कालचक्र से रक्षक, दक्ष विचार ।
सदुऔषधि जीवन रस देकर,
शक्ति, शौर्य सत्साहस भरकर,
बरसाता रहता है संतत, शुभ्र-सुधा-रसधार ।
वैद्य ! हां वैद्य ! जीवनाधार ।
निर्बलता, रुजका कर भक्षण,
ओज, तेज करता संरक्षण,
बनता है संजीवन, मानव-जीवन का आधार ।
वैद्य ! हां वैद्य ! जीवनाधार ।
क्षिति पर यदि सद्वैद्य न होता,
स्वास्थ्य शक्ति से जग मुँह धोता,
होता हाँ ! कैसे ? निर्बाधित जीवन का संचार ।
वैद्य ! हाँ वैद्य ! जीवनाधार ।
वैद्य हमारा सर्व श्रेष्ठ हो,
जन सेवाव्रत रत यथेष्ठ हो,
चिर जीवित रह करे विश्व में पूर्णोन्नति, उपकार ।
वैद्य ! हां वैद्य ! जीवनाधार ।

'वैद्य' गुणगान ।

वैद्यक विद्या का तू उत्तम सार है ।
धर्म्म अर्थ अरु काम मोक्ष का द्वार है ।
रुज नाशक उपदेश सदा कर्तार है ।
स्वास्थ्य-सौख्य का 'वैद्य' तुही आधार है॥
'श्रीहरि'

नवीन वर्ष की प्रार्थना।

मंगलमय भगवान् की असीम अनुकम्पा और वैद्यके समस्त ग्राहक, अनुग्राहक, पाठक तथा लेखक महानुभावों के अपूर्व वात्सल्य और अनुग्रह से वैद्य अब अपनी सोलह वर्ष की अवस्था को पूर्णकर सत्रहवें वर्ष में पदार्पण करता है।

वैद्य ने गत सोलह वर्षों में अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए भी जो निश्चल भाव से वैद्यक जगत्, सर्व साधारण जनता और हिन्दी-साहित्य की सेवा की है, उसको बताने का हमें अधिकार नहीं है। अतः इस विचार को हम अपने प्रिय पाठकों के ऊपर ही छोड़ते हैं। तथापि हम यहाँ यह कहना उचित समझते हैं कि वैद्यको उन्नत बनाने में हमने भरसक प्रयत्न किया है। यही कारण है कि अनेक सङ्कटों के उपस्थित होने पर भी अभीतक वैद्य आप लोगों का विशेष कृपा-भाजन बना हुआ है।

गतवर्ष वैद्य के प्रकाशन के सम्बन्ध में हमारे अनेक ग्राहक और पाठक महानुभावों ने विविध प्रकार की सहायता देने का वचन देकर हमको अत्यन्त उत्साहित किया था, परन्तु अन्त में वे सब आशाएँ निष्फल होगयीं।

गतवर्ष भी हमने जहाँ तक हो सका वैद्य में कई सुधार किये, पर ग्राहकों की संख्या यथेष्ट न हो सकी। यहाँतक कि सैकड़ों ग्राहक महानुभावों ने अकारण ही वी० पी० वापिस करके हमारा उत्साह भंगकर हमारे कार्यक्षेत्र को और भी संकीर्ण कर दिया। इन्हीं कई कारण वश गत वर्ष भी वैद्य नियत समय पर नहीं निकल सका। कई संख्यायें हमें संयुक्त निकालनी पड़ीं, इसका हमें बड़ा दुःख है। परन्तु फिर भी भगवान् धन्वन्तरि की विशेष कृपा और अनेक सहृदय ग्राहक, पाठक तथा इष्ट मित्रों के साहाय्य से आज हम नवीन वर्ष के उपलक्ष में नवीन उत्साह के साथ इस विशेषांक (सम्मेलनांक) को लेकर कार्यक्षेत्र में प्रवृत्त होते हैं। गतवर्ष जिन विद्वान् लेखक और सुरुचियों के लेख वैद्य में प्रकाशित हुए हैं, उनमें निम्नलिखित महानुभाव विशेष धन्यवाद के पात्र हैं :—

श्रीयुत प्रोफेसर रामकृष्ण जी वर्मा बी० ए० बी० एस० सी० एल० एम० एस० आयुर्वेदाचार्य, श्री० वैद्यराज प० कृष्णप्रसाद जी

त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य, वैद्यराज प० हरिनारायणजी शर्मा काव्यतीर्थ आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद महामहोपाध्याय रसायनशास्त्री भागीरथस्वामीजी आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेदभूषण श्रीनिवास रामरत्न जी त्रिपाठी वैद्यशास्त्री,वैद्यराज हीरामणिजी जंगले,वैद्यराज प० महावीर प्रसादजी मालवीय 'वीर', कविकुमार श्री महेश्वरप्रसाद जी शास्त्री, कविवर श्री० दीनानाथ जी 'अशंक', कविवर श्री० प० मूलचन्द्र जी जैन 'वत्सल', श्री० भण्डारीलालजी वैद्य।

इनके सिवाय और भी जिन महानुभावों ने परीक्षित प्रयोग तथा वैद्यक समाचार आदि भेजकर'वैद्य'की सहायता की है,उनके लिये भी हम विशेष धन्यवाद देते हैं।

आप महानुभावों के सुलेखों के द्वारा ही वैद्य ने यह गौरव प्राप्त किया है। आशा करते हैं कि आप भविष्य में भी इसी प्रकार अपने अमूल्य लेखों द्वारा वैद्य की सहायता कर आयुर्वेद की उन्नति में अग्रसर होंगे।

जिन सहयोगियों ने अपने बहुमूल्य पत्रों में वैद्य के विषय में अपनी उदार सम्मति प्रकट कर हमारे उत्साह की वृद्धि की है, उनके हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं। साथ हो जिन इष्टमित्र, सहायक और पृष्ठ-पोषक महाशयों ने अपने उत्साह वर्द्धक वाक्यों द्वारा हमें विशेषरूप से प्रोत्साहित किया है, उनके भी हम विशेष आभारी हैं।

हम अपने उदार ग्राहक महानुभावों से भी फिर एक बार यह प्रार्थना करते हैं कि यदि आप दो २ या एक २ नवीन ग्राहक बना कर कुछभी वैद्य की सहायता करेंगे तो भविष्य में वैद्य को आप इससे भी उन्नत अवस्था में देखेंगे।

गतवर्ष जिन सज्जनों ने वैद्य के नवीन ग्राहक बनाकर वैद्य की सहायता की है, उनको हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं; और साथ ही हम आशा करते हैं कि भविष्य में भी आप इसी प्रकार वैद्य पर कृपा दृष्टि रक्खेंगे। सम्पादक।

मुरादाबाद-प्रान्तीय प्रथम वैद्य सम्मेलन
के
सभापति वैद्यराज प० भवानीशंकरजी शर्मा जैतली (लखनऊ) का

भाषण ।

माननीय भिषग्वरों तथा आयुर्वेदाभिमानी सज्जनों !

आप महानुभावों ने अनेक बड़े बड़े विद्वान् वयोवृद्ध और सुयोग्य वैद्यों के होते हुए भी मुझ जैसे अल्पज्ञ व्यक्ति को इस सम्मेलन का अध्यक्ष बनाकर जो प्रेम और औदार्य भाव प्रकट किया है, उसके लिये मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। मैं इस पद के योग्य कदापि नहीं हूँ, यह मैं खूब जानता हूँ । पर आप लोगों की आज्ञा का पालन न करना भी मेरी सामर्थ्य के बाहर था ।

यह स्थान वही है, जहाँ बड़े बड़े चिकित्सक चूड़ामणि वैद्यराजों ने अपनी चमत्कारिणी चिकित्सा के द्वारा जगत् में अपूर्व ख्याति प्राप्त की थी। यह वही पवित्र भूमि है,जहां पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय वैद्यराज लीलाधरजी, वैद्यराज रामप्रसादजी, वैद्यराज स्नेहीलालजी वैद्यराज बैजनाथजी, वैद्यराज कालिकाप्रसादजी आदि वैद्यगण अपनी सिद्ध चिकित्सा के द्वारा धवल कीर्ति प्रसारित कर गये हैं। बृहद् भावप्रकाशादि वैद्यक के अनेक ग्रन्थों के रचयिता सिद्धवैद्य प० छेदालालजी का जन्म भी यहीं हुआ था। वैद्यराज भिषक् केसरी पं० लक्ष्मणदासजी, ऋषिकल्प वैद्यराज पं० भोलानाथजी और वीर शिरोमणि वैद्यराज प० दामोदरदासजी आदि भी इसी भूमि के रत्न थे। वैद्यक के अनेक ग्रन्थों के रचयिता और टीकाकार, आयुर्वेद के उद्धारकर्त्ता लाला शालिग्रामजी का भी यही जन्म स्थान है। आपके ग्रन्थों के द्वारा मुरादाबाद का नाम वैद्यक जगत् में सर्वत्र प्रसिद्ध हो रहा है। वैद्यक का सबसे प्राचीन और सर्वोपयोगी 'वैद्य'-मासिक-पत्र १६ वर्ष से यहीं से प्रकाशित होकर वैद्यक जगत् की सेवा कर रहा है।

ऐसे पवित्र और आयुर्वेद के सर्वथा उपयोगी इस स्थान में यहाँ की आयुर्वेद-प्रचारिणी सभा के विशेष उद्योग से हम सब लोग

आज एकत्रित हुए हैं। मैं आयुर्वेद-प्रचारिणी सभा मुरादाबाद को धन्यवाद दिये बिना कदापि नहीं रह सकता कि जिसने १७ वर्ष से हमारे उत्थान के लिये जी तोड़ कर प्रयत्न किया है। इस सभा के मुख्य संस्थापक वैद्यराज प० दुर्गादत्तजी पन्त (लखनऊ) और वैद्य-मासिक पत्र के सम्पादक श्री शंकरलालजी वैद्यराज हैं। इसलिये उक्त दोनों महानुभाव विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। आज जो हम लोगों को यहाँ एकत्रित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, इसका श्रेय आयुर्वेद-प्रचारिणी सभा को ही है। जिसके द्वारा आज हम आयुर्वेद की उन्नति और वैद्य समुदाय को संगठित करने के लिये यहाँ सम्मिलित हुए हैं।

किसी राष्ट्र अथवा देश को किसी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुंचने के लिये संगठन शक्ति की बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि कहा है, 'संघे शक्तिः कलौयुगे' जब तक हम लोग संगठित नहीं है, हमारी शक्ति क्षीण और निरपेक्ष है, तब तक हम कोई कार्य नहीं कर सकते। इस लिये अब समय आगया है कि वैद्यों को परस्पर ज़िले २ में अपनी सभाएँ स्थापित कर वैद्यकशास्त्र की चर्चा करनी चाहिये। परस्पर के सम्मेलन से ज्ञान की वृद्धि और चतुरता आती है और बोलने की शक्ति बढ़ती है तथा एक दूसरे के विचारों से हम एक नये विचार का आविष्कार कर उन समूह को लाभ पहुँचाने में अग्रसर हो सकते हैं। यह मेरा कोई नया विचार नहीं--प्रत्युत भगवान् चरकाचार्यजी का कथन है—

'भिषक् भिषजासह संभाषेन तद्विद्य संभाषाहि ज्ञानाभियोगसंहर्षकरी भवति वैशारद्यमपि चाभिनिवर्तयति, वचनशक्तिमपि चाधत्ते, यशश्चापि दीपयति; पूर्वश्रुते च संदेहवतः पुनः श्रवणात् श्रुतसंशयमपकर्षति, श्रुतेचासंदेहवतो भूयोऽध्यवसायमभिनिवर्तयति, अश्रुतमपि च कश्चिदर्थं श्रोत्रविषयमापादयति, यच्चाऽऽचार्यः शिष्याय शुश्रूषवे प्रसन्नः क्रमेणोपदिशति गुह्याभिमतमर्थजातम् तत्परस्परेण सह जल्पन् पिण्डेन विजिगीषुराहुःसंहर्षाद्। तस्मात्तद्विद्यसंभाषामभिप्रशंसन्ति कुशलाः।

सज्जनों! आज ऐसे समय में जबकि समस्त संसार उन्नति के मार्ग में अग्रसर हो रहा है। यौरप के वैज्ञानिक अपने नये २ आविष्कारों से संसार को चकित कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में अपने देश

और अपने आयुर्वेद की उन्नति के लिये हमारा क्या कर्तव्य है? आज भारत हमारी ओर करुणा भरी टकटकी निगाह से देख रहा है। भारत का एक वह समय था, जबकि प्रत्येक भारतीय के मुख की चिन्ता रेखा भी यहाँ से कूच कर सात समुद्र पार जा छिपी थी। इसके स्वास्थ्य के अग्रगण्य नेता महर्षि चरक सुश्रुत आदि थे। यही कारण था कि भीष्म पितामह, अर्जुन, भीम और कर्ण आदि बड़े २ वीरवरों ने इसी भारतमाता की कुक्षि से जन्म लिया था। आज इनकी आरोग्यता और इनके स्वास्थ्य का डंका ऐसी अवनति की अवस्था में भी सर्वत्र बज रहा है। वह समय था, जबकि दूर दूर देशों के शिक्षार्थी भारतवर्ष में आकर आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन करते थे-और यहीं की जड़ी-बूटियों का परिज्ञान कर अपने अपने देशों में जाकर वहाँ की जनता को लाभ पहुँचाते थे। उस समय यह हमारा भारतवर्ष ही समस्त संसार का औषधालय अर्थात् औषधि-भंडार माना जाता था। जबकि भारत अपने महर्षियों के बनाये हुए आदर्श पर चलता था, तब आबाल वृद्ध समस्त रोगों से मुक्त और हृष्ट-पुष्ट तथा पूर्ण स्वास्थ्यवान् होकर दीर्घायु प्राप्त करते थे।

आज वे सब विषय हमारे लिये स्मृति मात्र होगये हैं। आज तमाम संसार के रोगों ने आकर भारत पर ही अपना धावा बोल दिया है। कोई व्यक्ति ऐसा न होगा कि जो वास्तविक आरोग्य कहा जा सके। आज भारत में विदेशी चिकित्साओं का डंका बजा हुआ है और हम अपनी करोड़ो रुपये की सम्पत्ति को उन कौड़ियों की वस्तुओं के लिये बाहर भेज रहे हैं। इतना ही नहीं, हमारे देश की कितनी ही जड़ी बूँटियों को लेजाकर उनमें न मालूम क्या क्या अभक्ष्य और अस्वाभाविक पदार्थ मिलाकर और उनको विलायती ढंग में ढालकर देश का धर्म और धन शोषण किया जारहा है। इतने पर भी हमारे स्वास्थ्य की जो हीन दशा है, वह किसी से छिपी नहीं है। इसका कारण यही है कि हमारे नवीन सभ्यता के पुजारी जब तक विदेशी दवाओं के बेचने वाले एजेन्टों के दर्शन न करलें, तब तक उनको चैन नहीं पड़ता। यदि हम वास्तव में अपने प्राचीन समय के स्वास्थ्य का सच्चा सुख देखना चाहते हैं, तो हमें महर्षि आत्रेय के इस वचन पर ध्यान रखना चाहिये। 'यस्य देशस्य योजन्तुस्तज्जं-

आयुर्वेदके उच्चकोटिके विद्वान् और प्रख्यात चिकित्सक
श्री वैद्यराज पं० दुर्गादत्तजी पंत—भिषग्रत्न, लखनऊ।
आपने सुश्रुतका संस्कृत भाष्य और कई आयुर्वेदके उत्तम ग्रन्थ लिखे हैं।

तद्देशीयौषधं हितम्' अर्थात् जो मनुष्य जिस देश में पैदा हुआ है, उसको उसी देश की औषधि हितकर हो सकती है। आज हमारे महर्षि के इस अकाट्य वचन की तमाम यौरप सराहना एवं पुष्टि कर रहा है। यौरप के बड़े बड़े वैज्ञानिकों का भी यही मत है, जोकि हमारे महर्षि लाखों वर्ष पहले लिख गये हैं।

प्यारे सज्जनो, हमारी दशा आज यह होरही है कि 'प्रायः समापन्न विपत्तिकालेधियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति' अर्थात् जब मनुष्य पर कोई विपत्ति आती है तो उसकी बुद्धि मलिन होजाती है।

ठीक उसी दशा में हम परिणत होरहे हैं। हम इसको मानते हुए कि विदेशी औषधियाँ हमारे लिये हितकर नहीं हैं और कालान्तर में वे हमारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालने वाली हैं, तब भी हम अबोध बालकोंकी भाँति उन्हींकी तरफ सहसा दौड़ लगाते हैं। ऐसे समय में हमारा क्या कर्तव्य है, इसका अधिकांश उत्तरदायित्व वैद्यसमाज पर ही है। इस समय हमारा कर्तव्य है कि हम कुम्भकर्णी निद्रा तथा आलस्य का परित्याग कर कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण हो जायँ; और तरह तरह के उपायों से जनता को प्रबोधित कर उसे वास्तविक स्वास्थ्य-हितकर मार्ग का अवलम्बन करने के लिये आयुर्वेद के महत्व का बोध करावें। हर्ष की बात है कि आज हमारे आयुर्वेद की उन्नति के सूर्य का प्रकाश होता जा रहा है। आज हमारे विद्वान् वैद्य कार्यक्षेत्र में उतर कर नयी नयी आवश्यक पुस्तकों और समाचार-पत्रों के द्वारा आयुर्वेद-साहित्य का जीर्णोद्धार कर रहे हैं। अखिल भारतवर्षीय वैद्य-सम्मेलन तथा उसके अन्तर्गत प्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन और स्थानापन्न वैद्य-सभाओं के द्वारा आयुर्वेद की उन्नति के लिये एक जागृति पैदा होचुकी है। उसीके परिणाम स्वरूप आज प्रान्त प्रान्त में गवर्नमेण्ट इण्डियन मेडिकल बोर्ड स्थापित होगये हैं, जिनके अन्तर्गत विश्वविद्यालय आयुर्वेदिक कालिज काशी आदि संस्थाओं से शिक्षित वैद्य निकलकर आयुर्वेद संसार का उद्धार करेंगे। सबसे बड़ी आवश्यकता ध्यान देने योग्य इस बात की है कि हम लोग उस अपने परम प्रसिद्ध रसतन्त्रको, जिसके द्वारा अश्विनीकुमारों ने वे चमत्कारिक कार्य दिखलाये थे, जो आज अपने को उन्नति के शिखर पर बतलाने वाला यौरप भी उनके सम्मुख सिर झुकाता है। किन्तु हम उस अपने परमावश्यक आयुर्वेद के अङ्ग को

बिल्कुल भूले हुए बैठे हैं। हमें अपनी इस उदासीनता के कारण दूसरों का मुख ताकना पड़ता है। यदि हम अपने इस अङ्ग को भली प्रकार अपनालें और इस तत्व पर कार्य करना आरम्भ करदें तो हमारी एक बड़ी कमी पूरी होजायगी। हाँ, इतना अवश्य है कि इस कार्य के सञ्चालन में एक बहुत बड़ी बाधा आ उपस्थित होती है। हमारे पास दुर्भाग्यवश ऐसे साधन नहीं हैं कि जिनके द्वारा हम राजकीय पूर्ण सहायता प्राप्त कर इसमें अपनी उन्नति कर सकें। इन अधिकारों के प्राप्त करने के लिये हमें एक बड़े प्रयत्न की आवश्यकता है, जिससे कि हम अपने को इस योग्य बना सकें।

हमारे देश में आज गरीबों के निमित्त धर्मार्थ-औषधालय तथा आतुरालयों की बड़ी आवश्यकता है। देशमें जो कुछ भी औषधालय हैं, वे इतने बड़े कङ्गाल देशके लिये पर्याप्त नहीं हैं। हमें इसका प्रयत्न करना चाहिये और धनी लोगों में वे भाव पैदा करने चाहियें कि वे इस पुण्य कार्य्य में सहयोग देकर दीन दुखियों के इस कष्टका निवारण कर 'नहि जीवितदानाद्धिदानमन्यद्विशिष्यते' अर्थात् जीवनदान से बढ़कर संसार में और कोई बड़ा दान नहीं है। इस पुण्य के भागी बन, अपने देश और जाति का कल्याण करें। हर्ष की बात है कि मुरादाबाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने गरीबों को धर्मार्थ देशी औषधि वितरण करनेके लिये वैद्य और हकीमों को नियुक्त कर अपने कर्तव्य का पालन किया है।

हमें एक सब से बड़ी कमी को और भी पूरा करना है, वह धात्रीविद्या है। आज हम इस धात्रीविद्या की कमी के कारण अपनी माता और बहिनों की पूर्णतया सेवा से वंचित रहते हैं, और उनकी चिकित्सा के लिये हमारे पास पूर्ण साधन नहीं हैं, जिनके द्वारा हम उनके रोगों की चिकित्सा में पूर्णतया सफल होसकें। यही कारण है कि आज हमारी महिलाएं विदेशी दवाखानों की शरण लेती हैं। इनके लिये हमें महिलाओं को आयुर्वेदीय शिक्षा का प्रबन्ध कर उनको योग्य बना, इस कमी को पूरा करना चाहिये। सन्तोष का विषय है कि इस समय मुरादाबाद में श्रीमती किरण-देवीजी वैद्या ने अपना आयुर्वेदीय चिकित्सालय स्थापित किया है, साथ ही दूसरा स्त्री चिकित्सालय बरेली निवासी वैद्यराज प० बाबूराम जी मिश्र आयुर्वेदाचार्य तथा श्रीमती कृष्णाकुमारी आयुर्वेद

विशारद मन्त्राणी महिला-सेवा संघ के प्रयत्न तथा उत्साह से खोला जारहा है, जो बरेली स्त्री-चिकित्सालय की एक शाखा है। सुना है, इस चिकित्सालय के साथ एक महिलाआयुर्वेद-विद्यालय भी होगा, जिसमें स्त्रियें आयुर्वेदीय शिक्षा प्राप्तकर स्त्री-जाति का कल्याण करेंगी।

हमें केवल गवर्नमेण्ट के कालिजों के ऊपर ही निर्भर न रहकर अपनी आयुर्वेदीय पाठशालाओं द्वारा योग्य वैद्यों को तैयार करना नितान्त आवश्यक है।

आज हमारे चिकित्सा-कार्य में सब से बड़ी बाधा यह उपस्थित होती है कि हम अधिकतर उन काष्ठादि औषधियों के लिये निरक्षर पंसारियों के आश्रित रहते हैं, जो ब्राह्मी के स्थान में तालीसपत्र और सुगन्धवाला की जगह सूखा हुआ नाड़ी का शाक देते हैं और हमने उन्हीं पर इस विषय में निर्भर रहकर चिकित्सा कार्य को निर्बलता बना लिया है। इस लिये हमें इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि वैद्य समुदाय की ओर से स्थान स्थान पर ऐसे औषध-भण्डार या औषधालय खोले जायँ, जिन से रोगियों को उत्तम औषध प्राप्त हो सकें। हमको इस समय अपनी चिकित्सा तथा निदान पद्धति में आधुनिक साधनों की भी सहायता लेनी चाहिये। यदि स्टेथस्कोप, माईक्रास्कोप आदि यन्त्र हमारी निदान पद्धति में सुविधा-जनक प्रतीत हों तो हमें अवश्य उनका उपयोग करना चाहिये।

सज्जनो! मेरा आपसे अन्तिम निवेदन है कि पारस्परिक प्रेम पैदाकर हमें अपने वैद्य-सम्मेलनों के प्रस्तावों को कार्य में परिणत करना चाहिए और अपने इस आयुर्वेद के गौरव को बढ़ाकर संसार के सामने अपना जीता जागता उदाहरण रखना चाहिये।

इति शम्। ता० १०-१-३०।

मुरादाबाद प्रान्तीय-वैद्य सम्मेलन
का
प्रथम अधिवेशन ।

धन्वन्तरि-वन्दना ।*

(लेखकः—पं० ईश्वरचन्द्र पाण्डेयः ।)

उत्पत्तयेतु जगतः प्रथमूचवेधाः,
संरक्षणाय च तथा पुरुषोत्तमो वै ।
रोगाकुलाखिलजगत्परिपालनाय,
धन्वन्तरिर्विजयते धृतविष्णुरूपः ॥१॥

× × × ×

ग्रीष्मातपाकुलशिखानलतापशान्त्यै,
सञ्जायते नवरि नालरयोद्गराजः ।
रोगातपाकुलमनुष्यविनोदहेतु-
धन्वन्तरिर्विजयते नवनीरदाभः ॥२॥

× × × ×

यत्पीतवर्णचपलान्विहितः पयोदः,
दुर्भिक्षदुःखदलने नितरां समर्थः ।
एतन्मनस्यखिलमेव विमृश्य नूनम्,
धन्वन्तरिर्विजयते धृतपीतवासः ॥३॥

× × × ×

शंखध्वनेर्भयमुपेतमपास्य धैर्यं
चक्रेण चापि विनिहत्य कुरोगसैन्यम् ।
ध्मायन्पुनर्विजयशंखमतीवहृष्टः
धन्वन्तरिर्विजयते धृतशंखचक्रः ॥४॥

× × × ×

गोपायते जगदपुन्तु करद्वयेन
रोगाग्निनाशयति शेषभुजद्वयेन ।
सत्यर्थयन्भुजचतुष्टयमेवमीशो
धन्वन्तरिर्विजयते तु चतुर्भुजोऽसौ ॥५॥

---

* मुरादाबाद प्रांतीय वैद्य सम्मेलन में पठित ।

सम्मेलन का विवरण।

स्थानीय वैद्य-सभा की ओर से मुरादाबाद प्रदर्शिनी (नुमाइश) के दरबार कैम्प में १० जनवरी सन् १९३० को श्रीमान् वैद्यराज पं० भवानीशंकरजी शर्मा जैनली (लखनऊ) के सभापतित्व में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में स्थानीय वैद्यों के सिवाय मुरादाबाद प्रान्त के अमरोहा, सम्भल, हसनपुर, ठाकुरद्वारा, चन्दौसी, कांठ, रामपुर स्टेट, सर-कड़ा, बिलारी, बुलन्दशहर, नगीना, रतनपुर, कैराना, मलकपुर, चित्र-पुरी आदि स्थानों के भी अनेक बड़े २ नामी वैद्य और आयुर्वेद-प्रेमी सज्जन पधारे थे। इस सम्मेलन के साथ एक आयुर्वेदीय प्रदर्शिनी का भी आयोजन किया गया था।। प्रदर्शिनी के उद्घाटन का कार्य सवेरे ९ बजे वैद्यराज पं० हरिहरनाथ जी शंखधाराचार्य ने किया था। आपने प्रदर्शिनी को खोलते हुए वनस्पतियों के ऊपर एक सुन्दर भाषण दिया।

इसके बाद मध्याह्न के दो बजे से सम्मेलन का कार्य आरम्भ हुआ। सम्मेलन का पण्डाल रंग बिरंगी ध्वजा-पताका आदि से सजाया गया था, और उसके भीतर चारों ओर 'धर्मार्थकाम-मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।' 'आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः।' आदि आदर्शवाक्य सुन्दर स्वर्णाक्षरों में लिखकर लगाये गये थे। सभा-पति एक सुसज्जित मोटर द्वारा पण्डाल में पधारे। उपस्थित जनता ने 'धन्वन्तरि महाराज की जय!' 'आयुर्वेद की जय!' आदि शब्दों से सभापति का स्वागत किया। प्रथम वैद्यराज पं० घनानन्दजी पन्त ने मंगलाचरण किया और वैद्यराज पं० कृष्णदत्त जी शंखधार ने स्वागत-कविता पढ़ी। इसके पश्चात् स्थानीय ऋषिकुल कठघर के ब्रह्मचारियों ने वेद-मन्त्रों का उच्चारण किया। सभापति के आसन ग्रहण करने पर सम्मेलन के मन्त्री वैद्य शंकरलाल जी ने सम्मेलन करने का प्रयोजन अपनी संक्षिप्त वक्तृता द्वारा वर्णन किया। पश्चात् सभापति ने अपना छपा हुआ प्रभावशाली भाषण पढ़ा। आपका भाषण बड़ा महत्वपूर्ण था। आपने अपने व्याख्यान में मुरादाबाद के प्राचीन वैद्यों का इतिहास, वैद्यों को संगठन करने

की आवश्यकता, संघशक्ति की प्रशंसा, आयुर्वेद का महत्व, भारत-वासियों के लिये देशी चिकित्साकी उपयोगिता, आयुर्वेदकी वर्तमान अवस्था और वैद्योंका कर्तव्य, आयुर्वेद विद्यालय, धर्मार्थ औषधालय तथा स्त्री-चिकित्सालय आदि खोलने की आवश्यकता आदि विषयों का बड़े उत्तम ढंग से विवेचन किया। इसके उपरान्त वैद्यराज प० रामधनजी शर्मा, वैद्यराज प० भोलादत्तजी पन्त मेम्बर डिस्ट्रिक्टबोर्ड ठाकुरद्वारा, वैद्यराज प० हरिहरनाथजी सांख्याचार्य, महामहोपदेशक प० कन्हैयालालजी तन्त्रवैद्य, वैद्यराज प० बाबूरामजी मिश्र आयुर्वेदाचार्य, वैद्यराज प० रामचन्द्र जी शर्मा कांठ, वैद्यवर प० बनवारी-लालजी दीक्षित तथा वनस्पतिशास्त्र के प्रेमी प० हरिदत्त जी शर्मा सेक्रेटरी पुनलीघर मुरादाबाद आदि विद्वानों के वैद्यक के भिन्न २ विषयों पर बड़े सारगर्भित भाषण हुए। जिनका जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। बीच २ में प० पुरुषोत्तम जी व्यास, घनश्यामजी शर्मा, प्रोफेसर बाबू शिवनाथसिंह जी 'रमश' तथा प० रामसवक जी शर्मा आदि के वैद्यक सम्बन्धी सुन्दर गायन भी होते जाते थे। सम्मेलन में निम्न-लिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

१—यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि एक ज़िला वैद्य सभा बनाई जाय और इस प्रान्त के प्रत्येक स्थान में रहने वाले वैद्य उसके सभासद् निर्वाचित किये जायँ। प्रस्तावक-वैद्यराज प० घनानन्द जी पन्त, अनुमोदक—वैद्यराज प० हरिहरनाथ जी सांख्याचार्य तथा समर्थक—वैद्यराज प० रामधन जी शर्मा।

२—यह सम्मेलन प्रस्ताव करताहै कि मुरादाबाद में एक वैद्यक का सार्वजनिक पुस्तकालय खोला जाय, जिसमें सब प्रकार की वैद्यक की पुस्तकें और वैद्यक के समाचार-पत्र संग्रह किये जायँ। प्रस्तावक वैद्यराज प० रामधन जी शर्मा, अनुमोदक—प० रामकृपाल जी वैद्य, तथा समर्थक—वैद्य रघुवरदयाल जी रामपुर स्टेट।

३—यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि इण्डियन मेडीशन बोर्ड को चाहिये कि वह वैद्यों के रजिस्ट्रेशन के लिये किसी योग्यता की सीमा निश्चित करे और इस सीमा में जितने वैद्य आसकें, उन सबका रजिस्ट्रेशन किया जाय। प्रस्तावक—वैद्यराज प० बाबूरामजी आयुर्वेदाचार्य, अनुमोदक-वैद्यराज प० भो० लादत्तजी पन्त तथा समर्थक-वैद्य प० रामकुमार जी आयुर्वेदाचार्य बिलारी।

४—यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि प्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन की ओर से वैद्यों का एक प्रतिनिधि व्यवस्थापिका सभामें भेजा जावे। प्रस्तावक— प० बाबूराम जी मिश्र आयुर्वेदाचार्य, अनुमोदक—वैद्यराज प० भोलादत्त जी पन्त तथा समर्थक—वैद्यराज प० रामचन्द्र जी शर्मा काँठ।

अन्त में सभापति को धन्यवाद देकर सम्मेलन का कार्य समाप्त किया गया।

आयुर्वैदिक प्रदर्शिनी।

आयुर्वैदिक प्रदर्शिनी प्रातःकाल ६ बजे से रात्रि के ८ बजे तक बराबर खुली रही। प्रदर्शिनी में सैकड़ों दुष्प्राप्य, अलभ्य और उपयोगी हरी, सूखी वनौषधियाँ, सिद्ध औषधियाँ, रस-उपरस, धातु-उपधातु, विष-उपविष, प्राचीन हस्तलिखित तथा मुद्रित ग्रंथ, यंत्र, शारीरिक चित्र आदि वस्तुएँ बड़े अच्छे ढंग से सजायी गयी थीं। बाबू हरिशंकर जी वैद्य व्यवस्थापक आयुर्वैदिक प्रदर्शिनी, वैद्यराज प० भोलादत्त जी पन्त, वैद्यराज प० घनानन्द जी पन्त, वैद्य प० बुधसेन जी शर्मा, प० सत्यानन्द जी वैद्य, वैद्य प० कुञ्जबिहारीलाल जी शर्मा आदि वैद्यगण प्रत्येक औषधि के गुण, दोष और परिचय दर्शकों को बतलाते जाते थे। जिसको जानकर साधारण जनता बड़ी प्रसन्नता प्रकट कर रही थी; और कह रही थी कि ऐसी प्रदर्शिनी से ही वास्तव में सर्व साधारण का उपकार हो सकता है। केवल मनोरञ्जन की चीज़ें प्रदर्शिनी में रखने से किसी का कल्याण नहीं होसकता। यदि ऐसी प्रदर्शिनी प्रति वर्ष होती रहे तो संसार का बहुत कुछ उपकार होसकता है।

प० बुधसेन जी वैद्य, प० कुञ्जविहारीलाल जी शर्मा वैद्य, लाला टेकचन्द जी वैद्य आदि की संग्रह की हुई और गमलों में सजायी हुईं जीवनीयगण, दशमूल, बला चतुष्टय, लक्ष्मणा (सफेद कटेरी) शिवलिंगी, रुद्रवन्ती, मूषाकर्णी, बहुफली आदि वनौषधियें तथा वैद्यराज प० भोलादत्त जी पन्त की भेजी हुई दर्शनीय वस्तुओं में २० सेर का सुविशालकाय विदारीकन्द, विधारे की बेल, शतावर की हरी मूलियें, असली नागकेशर, खर्पर-रसायन, सुवर्णमाक्षिक, वज्राभ्रक, मृगमद और कई प्राणिज औषधियाँ तथा शिरपीड़ा नाशक यंत्र, प० सकलपाण्डेजी नैपाली वैद्य के भेजे हुए अनेक

प्रकार के विष-उपविष प्रदर्शिनी की शोभा बढ़ा रहे थे। वैद्यराज प० रूपनारायण जी अवस्थी म्युनिसिपल चिकित्सक के भेजे हुए स्वर्गीय वैद्यराज प० छेदालाल जी के हस्तलिखित ग्रन्थ तथा 'वैद्य' कार्यालय के सुनहरी जिल्द बंधे हुए मुद्रित ग्रन्थों की शोभा देखने योग्य थी। श्रीमती किरणदेवी जी वैद्या ने कई प्राचीन हस्तलिखित और चरक, सुश्रुत वाग्भटादि मुद्रित ग्रन्थ तथा कई आसव-अरिष्ट आदि सिद्धौषधियाँ प्रदर्शिनी में भेजी थीं। इसके सिवाय रामपुर स्टेट के सुप्रसिद्ध वैद्यराज प० बांकेमल जी तथा उनके प्रधान शिष्य लाला रघुवरदयाल जी वैद्य ने कितनी ही बहुमूल्य सिद्धौषधियें, अनेक औषधियों के रंगीन चित्र तथा आयुर्वेद-भूषण आदि हस्तलिखित कई पुस्तकें भेजकर प्रदर्शिनी के उत्कर्ष को बढ़ाया था। कटघर मुरादाबाद के स्टेशन मास्टर वैद्य एम० एल० हिन्दे एण्डसन्स ने अपनी कितनी ही पेटेन्ट औषधियें भेजने की कृपा की थी। वैद्यराज प० रामकुमार जी त्रिगुणायत आयुर्वेदाचार्य ने बहुमूल्य सिद्धौषधियों का बक्स और स्थानीय वैद्यराज प० घनानन्द जी पन्त तथा वैद्यराज प० हरिहरनाथ जी शास्त्राचार्य एवं वैद्यराज प० बाबूराम जी मिश्र आयुर्वेदाचार्य भी कितनी ही सिद्धौषधियाँ अपने साथ प्रदर्शिनी में रखने के लिये लाये थे। कन्दुन-औषधालय के स्वामी वैद्यवर प० लक्ष्मीनारायणजी ने मच्छर विनाशक कन्दुन-यंत्र प्रदर्शिनी में भेजा था। महामहोपदेशक वैद्यराज प० कन्हैयालाल जी तन्त्र-शास्त्री ने प्राचीन हस्तलिखित योगरत्नाकर और वैद्य मनोत्सव तथा वैद्यराज प० ललिताप्रसाद जी उपाध्याय ने बहुत सुन्दर प्राचीन लिपि का शार्ङ्गधर भेजने की कृपा की थी।

प्रदर्शिनी की हरी या सूखी जड़ी-बूटियों के संग्रह करने तथा प्रदर्शिनी को उत्तमरीति से सजाने में प० सुदर्शन जी वैद्य को जितना धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा है। साथ ही लाला टेकचन्द जी वैद्य तथा प० कुञ्जविहारीलाल जी वैद्य का परिश्रम भी प्रशंसनीय था। इनके सिवाय श्री० कल्याणानन्द जी वैद्य तथा नैपाली वैद्य सकल पाण्डे भी इस विषय में हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

शंकरलाल वैद्य,
मंत्री—मुरादाबाद प्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन।

चिकित्सक चूडामणि, आयुर्वेदकेशरी, भिषग्रत्न
श्री पं० रामेश्वरजी मिश्र, वैद्यशास्त्री, कानपुर।
यु० प्रां० सप्तम वैद्यसम्मेलन आगराके सभापति।

ज्योतिर्वैद्यक और मन्त्रशास्त्र ।

(ले०—श्री० प० कृष्णप्रसादजी त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य ।)

अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रम् ,
प्राप्तेषु कालेषु न तैश्च कश्चित् ।
चिकित्सितं ज्योतिषमन्त्रवादाः ,
पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति ॥

वैद्यक, ज्योतिषशास्त्र तथा मन्त्रशास्त्र को छोड़कर अन्य व्याकरणादि जितने शास्त्र हैं वे केवल वाद-विवाद या विनोद के लिये ही उपयोगी हैं । हम यह मानते हैं कि हमारे स्वास्थ्य के लिये विनोद या हास्य की बड़ी आवश्यकता है, किंतु इसके लिये स्वास्थ्योपयोगी सात्विक विनोद चाहिये, जो कि आधुनिक काल में प्रायः दुष्प्राप्य ही है । वैद्यक, ज्योतिष तथा मन्त्र-शास्त्र की बात वैसी नहीं है । इनका प्रत्यक्ष प्रभाव व्यवहार करने से हमें क्षण २ में प्रतीत होता है । ये आपत्तिकाल में सन्मार्गदर्शक एवं प्राण-संकट समय में हमारे संरक्षक होते हैं ।

यद्यपि उपरोक्त सुभाषित श्लोक में कुछ अतिशयोक्ति की मात्रा अवश्य है । किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उसमें सत्यांश यथेष्ट प्रमाण में दिखाई देता है । आजकल पाश्चात्य पण्डितों ने प्रकृतिवादात्मक अनेक प्रकार के शास्त्रों की प्रगति के द्वारा बहुत कुछ भौतिक उन्नति की है और कर रहे हैं । किंतु सर्व सुखों के उपभोक्ता मानव देह के वास्तविक आरोग्य और दीर्घायुष्य के लिये उनके नाना प्रकार के नवीन आविष्कारों का कुछ भी उपयोग नहीं है । सुना है, आजकल यूरोप के एक डाक्टर महोदय बूढ़ों को जवान बनाने के लिये हिन्दु-स्थान में आये हुये हैं, वे मनुष्य शरीर में बन्दरों की गिल्टी प्रविष्ट कर बूढ़ों को युवावस्था का आनन्दानुभव कराते हैं । हमारे ख्याल से यह उधार ली हुई जवानी निष्फल है । यह प्रयोग हमारी नस्ल को बिगाड़ने वाला और हमें मनुष्य से विवेकहीन पशु बनाने वाला है । कारण स्पष्ट है, जिस प्राणी की गिल्टी हमारे शरीर में प्रविष्ट की जायेगी, उस प्राणी का स्वभाव कुछ न कुछ अंश में हम में अवश्य ही

आजावेगा । कहाँ सात्विक सदाचरण से प्राप्त हुई आरोग्यता और कहाँ मनुष्येतर प्राणियों के अङ्ग से प्राप्त आरोग्यता का आभास ! जमीन आसमान का अन्तर है। पाठक स्वयं विचार कर लें और अच्छी तरह समझलें कि पाश्चात्यों की आधिभौतिक संपूर्ण प्रगति केवल विनाश की ओर है । विनाश केवल शरीर या मन का ही नहीं प्रत्युत हमारे अत्यन्त प्रिय आत्मिक भावों का है, जो कि हमें घोर अधोगति प्राप्त कराने वाला है ।

हमारे लिखने का तात्पर्य यह है कि ऋषि प्रणीत आयुर्वेद, ज्योतिष, तथा मन्त्रशास्त्र के द्वारा जितनी हम अपनी सार्वत्रिक प्रगति कर सकते हैं, उसके शतांश भी हम पाश्चात्यों के अन्धानुकरण से नहीं कर सकते । किन्तु आज हमारी ऐसी शोचनीय दशा होगई है कि हम प्रत्येक विषयमें पाश्चात्यानुकरण तथा पाश्चात्य संस्कृति युक्त शिक्षण के कारण हमारी श्रद्धा स्वधर्म एवं ऋषिप्रणीत शास्त्रों पर से कम होगई है। हम उसके या उनके महत्वसे सर्वथा वञ्चित होगये हैं । व्यवहार में अत्युपयोगी वैद्यक, ज्योतिष और सुन्दर मंत्रों से लाभ उठाना भूल गये उसका परिणाम ऐहिक तथा पारलौकिक अपकपाय ही होगा । इस अनिष्टकारक स्थिति को टालने के लिये हमें मन को शुद्ध करके अपने सच्छास्त्रों पर विश्वास और श्रद्धा करनी होगी, कारण कोई भी शास्त्र, विशेषतः वैद्यक, मंत्र एवं ज्योतिषशास्त्र तो श्रद्धा से ही फलद्रूप होते हैं। जिनकी उन पर श्रद्धा नहीं है, वे उनसे वास्तविक लाभ नहीं उठा सकते । कहा भी है—

"मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ । यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥"

इनमें से वैद्यकशास्त्र का लोहा अधिकांश में सब को मान्य है, तथा किसी न किसी प्रकार से व्यवहार में, अपने विश्वास के अनुसार उससे लाभ भी उठाते हैं। किंतु ज्योतिषशास्त्र पर आजकल बड़े २ विद्वान् भी शंका करने लगते हैं, उसमें भी फलित ज्योतिष तो बड़ी हिकारत की नज़र से देखा जाता है । और इसे अशास्त्रीय ठहराया जाता है, और केवल पाखण्डी, ढोंगी लोगों का रचा हुआ निःसार पचड़ा बताया जाता है । किन्तु मन्त्र शास्त्र की ओर तो कानी आंख से भी नहीं देखा जाता है, उस पर बिल्कुल ही विश्वास नहीं रहा । आज बहुत ही कम ऐसे भारतीय मिलेंगे जो मन्त्रों पर कुछ विश्वास या ईमान लाते हों । उनका कथन है कि यदि मन्त्र-

शास्त्र तथा फलित ज्योतिष सत्य है तो उनके अनुरूप फल प्राप्ति क्यों नहीं होती ? हम इसके उत्तर में उन से पूछते हैं कि इस समय आपकी ऐसी दुर्दशा क्यों होगई ? आज हम कुत्तों से भी गये बीते क्यों समझे जाते हैं ? हमारे लिये अन्य देशों की सार्वजनिक संस्थाओं में "Dogs and Indians are not allowed here" कुत्ते और काले हिन्दुस्थानियों का यहां आने की मुमानियत है, इस आशय के साईनबोर्ड्स क्यों लटकाये जाते हैं ? ऐसी निकृष्ट स्थिति आर्य सन्तानों की क्यों होगई ? ध्यान रहे और खूब सोच लीजिये यह स्थिति हमारी ही रची हुई है। हम ही इस के लिये जवाबदेह हैं। हमने ही मूर्खता से अपने हाथों अपनी जड़ को काटा है, तथा जो कुछ जड़ अभी शेष है, उसे भी काट कर नष्ट करने कर रहे हैं। यदि शान्तचित्त से सूक्ष्मविचार पूर्वक देखें तो मालूम होगा कि हज़ारों वर्षों के आक्रमणों को सहते हुये अभी भी जो हमारी सूक्ष्म जड़ क़ायम है, इसका मूल कारण सत्य ही है। सत्य के ही आधार पर वह स्थित होने से अमिट है, ऐसी हमारी दृढ़ भावना है। आधुनिक अत्यन्त प्रतिकूल स्थिति में भी वैद्यक, ज्योतिष तथा मंत्रों की धाक क़ायम है, इसका मुख्य कारण उनकी सत्यता ही है। वे "पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति" कई बार अपने अचूक प्रभाव द्वारा हमारे छिपे हुये विश्वास को अपनी ओर आकर्षित किया करते हैं। कई बार उनका आभास या उनकी ज्वलंत सत्यता की चिनगारियाँ उठती हैं, तथा हमें चकाचौंध युक्त कर देती हैं। यदि उनमें सत्यता न होती, वे सत्य के अटल आधार पर स्थित न होते तो उनकी हस्तियाँ सैकड़ों वर्ष पहले ही होजाती, आज उनका नामों निशान भी नहीं रहता।

बड़े हर्ष की बात है कि अपने सत्य के बल पर ही आज आर्य वैद्यक तथा ज्योतिषशास्त्र फिर से उन्नति की दिशा में अग्रसर हो रहा है। किन्तु मन्त्र शास्त्र की स्थिति बहुत ही शोचनीय है। इसका एक मात्र कारण उसकी पूर्व परम्परा का नाश होते जाना है। अब भी सदाचरणयुक्त गुरु शिष्य परम्परा जहाँ २ क़ायम है, वहां २ इसका प्रखर प्रभाव अबाधित रूप से स्थित है। अब भी केवल मन्त्र सामर्थ्य से बड़े २ उग्रनाग सर्पों का विष उतार देने वाले मौजूद हैं। तथा हमने स्वयं अपनी आँखों से उनके मंत्र सामर्थ्य का अनुभव किया है। बिच्छू के दंश को क्षणभर में दूर करना तो एक मामूली

सी बात है । किंतु मंत्र सामर्थ्यसे बढ़ी हुई प्लीहा को काटना, तिजारी आदि विषमज्वरों को दूर करना, पथरी गला देना, मस्तक शूल को शान्त करना, बच्चों के महा दुर्धर डब्बा नामक रोग को दबा देना इत्यादि आश्चर्योत्पादक प्रयोगों को देख तथा सुनकर दङ्ग रह जाना पड़ता है।

मंत्रों के सामर्थ्य के विषय में यहाँ बहुत कुछ लिखा जा सकता है, किंतु लेख का कलेवर बहुत बढ़ाना हमें इष्ट नहीं। हम इसी विषय को (यदि हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहा तो)* अपने किसी स्वतन्त्र लेख में प्रतिपादन करेंगे। आज हम सुनते हैं कि अमेरिका देशमें इच्छा-शक्ति से (Will power) रोग दूर किये जाते हैं। यह क्या है? यह भी हमारे मन्त्र शास्त्र का ही एक अङ्ग है, बिना योग या चित्त वृत्ति निरोध के अक्षर या मन्त्रों में शक्ति आ ही नहीं सकती तथा इच्छा शक्ति एवं चित्तवृत्ति निरोध में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह विषय स्वतन्त्र लेख में आवेगा।

मन्त्रों के विषय में हमारे वैद्यक तथा ज्योतिष में भी पूर्व महर्षि गण बहुत कुछ लिख गये हैं। किन्तु खेद है कि इस विषय पर कोई स्वतन्त्र प्रामाणिक ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं है।

एक ग्रंथ तोमरवंशीय वीरसिंह जी का रचा हुआ 'वीरसिंहावलोकन' नामक प्रसिद्ध है, किंतु वह भी स्वतन्त्र नहीं है। उसमें माधवनिदान का अनुसरण किया गया है तथा ज्योतिष शास्त्र के अनुसार रोगोत्पत्ति के कारण अनिष्टग्रह,योग, पूर्व कर्म विपाकादि का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है। साथ हो में रोग परिहारार्थ मंत्र शास्त्रके आधार पर जप, होम, दानादि कतिपय उपाय इसमें ग्रथित कियेगये हैं। इस पुस्तकमें ज्योतिष, वैद्यक तथा मंत्रशास्त्र का सुन्दर त्रिवेणी संगम दिखलाई देता है। शोक है इस पुस्तक के पश्चात् कोई अन्य पुस्तक इस विषय को पूर्णतया प्रतिपादन करने वाली अभी तक प्रकाशित नहीं हुई।

पाश्चात्य विद्वानो की प्रवृत्ति अब कुछ इस ओर हुई है। हम देखते हैं कि उनके यहाँ ज्योतिर्वैद्यक (Medical Astrology) विषयक कई पुस्तकें निकली हैं। हमको भी अपने ज्योतिर्वैद्यक की उन्नति मंत्र-शास्त्र के साथ करने के लिये प्रवृत्त होजाना चाहिये। आशा है विद्वान् वैद्य इस ओर अवश्य ध्यान देवेंगे।

---

* आजकल त्रिवेदी जी का स्वास्थ्य बहुत खराब होगया है. हम भगवान् धन्वन्तरि से शीघ्र ही आरोग्य लाभ प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं। सम्पादक।

भूत-विद्या।

(लेखक—पं० हरिनारायणजी शर्मा वैद्य, काव्यतीर्थ आयुर्वेदाचार्य प्रतापगढ़ (अवध))

गरुड़ पुराण आदि तथा तन्त्रशास्त्रों में भूत विद्या का प्रतिपादन विस्तार से मिलता है, परन्तु इस विषय पर स्वतन्त्र ग्रन्थ बहुत दिनों से उपलब्ध नहीं हैं। यदि होते तो आयुर्वेदिक ग्रन्थों में जहां भूत विद्या की चर्चा चलाई गई है, उस जगह टीकाकार लोग प्रमाण के लिये उन ग्रन्थों से वचन अवश्य उद्धृत करते।

शास्त्र व्यापक होता है। उसमें। मूर्ख, पण्डित, गरीब, अमीर, सभ्य, असभ्य, सभी के मतलब की बातें रहती हैं, ऐसा नहीं तो वह शास्त्र ही नहीं।

जान पड़ता है कि पूर्वकाल में मनुष्यों को कुछ ऐसी श्रेणियां थीं, जो ऐसे रोग देखकर जिनमें अन्य-ज्वर आदि रोगों से विलक्षण लक्षण होते हैं और रोगी ऐसा काम करता है, जिसे साधारण मनुष्य नहीं कर सकता और जिससे * प्राणनाश की सम्भावना रहती है, उसे भूत का लगना मानते थे। किसी पदार्थ को देख कर उसका कुछ नामकरण तो अवश्य ही किया जाता है, बिना नाम रखे उसका वर्णन और प्रतिकार करने में असुविधा होती है। विचारणीय बात यह है कि रोग की विलक्षणता देखकर "भूत का लगना" क्यों माना गया। इस लिये कि माता पिता के आहार विहार तथा गर्भाधान के समय उनके मानसिक भाव, और भविष्यत् गर्भ के प्राक्तन कर्म के कारण मनुष्य की ब्रह्म, पिशाच, गन्धर्व, सर्प आदि से (× जिनको शास्त्रों में भूत संज्ञा मानी गई है) मिलती जुलती प्रकृति का होना

---

* हिंसा विहारा ये केचिद्देवभावमुपाश्रिताः।
भूतानीति कृतासंज्ञा तेषां संज्ञा प्रवक्तृभिः ॥ सु० उ० स्था० अ० ६०।

× भूतं क्ष्मादौ पिशाचादौ जन्तौ क्लीवं त्रिषूचिते।
प्राप्ते वृत्ते समे सत्ये देवयोन्यन्तरे तु ना ॥ मेदिनीकोषः।

* शास्त्रों में वर्णित है। कोई भी ऐसा मानव नहीं, जो इन प्रकृतियों में किसी न किसी प्रकृति का न हो। किसी की एक प्रकृति होती है किसी की मिश्रित। जिन कर्मों से मनुष्य की तत्तद् भूतों की प्रकृति होती है। एक समय ऐसा आता है जब मनुष्य इस जन्म में भी उसी तरह का कार्य करने लगता है और पुराने कर्मों का पाक समय भी आ पहुँचता है तो पुराने नये कर्म, दोनों मिलकर उग्ररूप धारण कर लेते हैं और उन गन्धर्व, पिशाच, देव, राक्षस आदि भूतों के स्वभाव को शरीर में तेजी के साथ प्रकट कर देते हैं-जो कि भूतोन्माद कहा जाता है।

इस विवेचन से यह बात साफ़ प्रकट होती है कि बिना उस प्रकार के काम किये शरीर में किसी भूत का लक्षण प्रकट नहीं होता। मनुष्य का घृणा जनक कार्य—असत् आचरण ही भूत है। कर्म फल अवश्य मिलता है। अच्छे का अच्छा और बुरे का बुरा। अपना बुरा कर्म जब अपना स्वरूप दिखलाता है तो उसे लोग भूत लगना कहते हैं। किंतु वस्तुतः वे भूत नहीं। भूतों को क्या पड़ी है, जो वे मनुष्यों को व्यर्थ ही सतावें।

न ते मनुष्यैः सह संविशन्ति न वा मनुष्यान् क्वचिदाविशन्ति।
ये त्वावशन्तीति वदन्ति मोहात्ते भूतविद्या विषयादपोह्याः॥ सु०

अर्थात्—देवादिक भूत न कभी मनुष्यों के साथ रहते हैं और न उनमें प्रवेश करते हैं। जो लोग मोहवश-अज्ञानता से मनुष्यों में उनका आवेश होना बतलाते हैं, उन्हें भूतविद्या का जानकार नहीं समझना चाहिए।

नैव देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः।
न चान्ये स्वयमक्लिष्टमुपक्लिश्यन्ति मानवम्॥
ये त्वेनमनुवर्तन्ते क्लिश्यमानं स्वकर्मणा।
न स तद्धेतुकः क्लेशो नह्यस्ति कृतकृत्यता॥
प्रज्ञापराधात्सम्भूते व्याधौ कर्मज आत्मनः।
नाभिशंसेद्बुधो देवान्न पितॄन्नापि राक्षसान्॥
आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत नो त्रसेत्॥ चरक निदान।

मतलब यह है कि देव गन्धर्व, पिशाच राक्षस, इनमें कोई भी

* सुश्रुत शारीर अ० ४ देखो।

ऐसे मनुष्य को कष्ट नहीं पहुँचाते जो स्वयं क्लेश भोगने का काम नहीं करते। मनुष्य खुद अपने कुकर्मों के कारण दुःख भोगता रहता है। ऐसे समय पामरजन भूत का उपद्रव बतलाते हैं, परन्तु वस्तुतः यह भूत का उपद्रव नहीं। मुख्य कारण अपना कुकर्म ही है। बिना छिद्र पाये पिशाचादि दुःख नहीं दे सकते।

बुद्धि के दोष से मनुष्य बुरा काम करता है, वही कर्म व्याधि के रूप में प्रकट होकर तकलीफ देता है। इसलिए देवता या राक्षस अथवा पितर लोगों को दोष देना विद्वान् आदमी का काम नहीं। अपने को ही दुःख-सुख का कारण समझे और ऐसा कार्य करे जिस से अपना कल्याण हो। सदाचार से रहने पर देवादि से भय करने की ज़रूरत नहीं।

इस विषय में सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भूतकीर्ति प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर श्रीयुत शिवकुमारजी शास्त्री एक क़िस्सा कहा करते थे। वह यों है—

एक महन्त का चेला बुरे कामों में मठका रुपया फूंक रहा था। महन्त के मना करने पर उसे बुरा लगा, और अपने काम में महन्त को विघ्न समझ कर उन्हें दूर करने का उपाय सोचने लगा। इसी बीच में महन्त जी उस चेले को साथ लेकर के तीर्थ यात्रा के लिए निकलपड़े। किसी जङ्गली रास्ते में जब महन्त जी पानी पीने के लिए कुये पर विश्राम कर रहे थे मौका पाकर चेला महन्त को कुये में ढकेल कर चलता बना। बाद उसने मठ में आकर यह घोषणा करदी कि मेरे गुरुमहाराज मरगये, फिर लोगों ने उसे महन्ती दे दी। कुछ दिनों के बाद उसका वह असत्कर्म पका और उसके सर पर सवार होकर बोलने लगा कि इसने हमको कुये में अपने सुख के लिये ढकेल दिया है। हम इसे सुख न भोगने देंगे। मार डालेंगे। रह २ कर महीने में दो तीन बार चेला को महन्त जी भूत होकर लगने लगे। कितनी ही झाड़ फूंक हुई। ओझा-देवी ने अपना २ हाथ साफ किया मगर महन्त भूत डटे ही रहे। इधर तो यह हो रहा था और उधर महन्त सौभाग्य वश मरे नहीं। कुयें के भीतर से "निकालो कोई निकालो" चिल्लाते रहे। किसी बटोही ने आवाज़ सुनकर किसी प्रकार उन्हें कुये से बाहर किया। बाद महन्तजी पुनः तीर्थाटन में प्रवृत्त होगये। कुछ दिनों के बाद महन्त के मन में यह आया कि ज़रा अपने मठको

भूत का देखना ।

यह बात बहुत दिनों से सुनने में आती है कि भूत देख पड़ता है। बहुत से लोग भूत के साथ लड़ना तक बतलाते हैं। भूत के विषय में बहुत लम्बी चौड़ी आश्चर्यजनक वारदातें कहते हैं। परन्तु वह सब मिथ्या है। समझदार और विद्वान् लोगों से कभी नहीं सुना जाता है कि उन्होंने भूत को देखा है। न्यायदर्शन में भूत का शरीर वायवीय लिखा है। वायु रूप रहित पदार्थ है, इसलिए भूत का ऐसा शरीर नहीं हो सकता कि चर्म-चक्षु से देख पड़े।

असल में, जो भूत का देखना बतलाते हैं, वह उनका भ्रम, भय, और दिल की कमज़ोरी है। सदियों से भारतीयों के हृदय में जो भूत होने का संस्कार पड़ा है, उसी से अँधेरी रात में किसी चीज़ के दूर से दिखाई पड़ने पर वे भूत मान लेते हैं और उसी भय से उन्हें विकार प्रकट होजाते हैं।

एक आदमी लगभग १--२ बजे रात को किसी गाँव से अपने मकान को आरहा था। दूर से उसने एक कूंवे के पौदर में देखा कि कोई बैठा है। उसने कई बार आवाज़ दी कि कौन बैठा है, बोलते क्यों नहीं? मगर उसे जवाब न मिला। बस फिर क्या था, उसे भूत होने की शङ्का हुई। घर आने पर उसे दस्त होने लगे। गांव के किसी आदमी के यह पूछने पर कि—आते समय रात को डर तो नहीं गये? उसने बतलाया कि हां! फलां कूंआ के पौदर में एक आदमी को बैठा देखा। बुलाने पर उसने जवाब नहीं दिया। वह भूत था, मैं डर गया हूँ। तब लोगों ने उसे बतलाया कि वह भूत नहीं था। वहां एक सरसा का पेड़ जम गया है। रात में देखने पर वह आदमी सा मालूम पड़ता है। चलो तुम्हें दिखावें। बाद उस पेड़ के देखने पर उस डरे हुए के मन में तसल्ली हुई और उसके दस्त वगैरह बंद होगये। जिसका मन दृढ़ होता है और जो सदाचारी होते हैं, उन्हें भूत की शङ्का कभी नहीं होती। चोर डाकू ऐसी जगह छिपे रहते हैं, जहां (जङ्गल, नाला वग़ैरह) लोग अक्सर भूत का होना बतलाते हैं और रात भर फिरा करते हैं। सिपाही लोग रात भर घूम २ कर पहरा देते हैं। साधु लोग जङ्गलों में अकेले ही रहते हैं। इन लोगों को भूत कभी नहीं देख पड़ता।

वैद्य मासिकपत्र—

श्री पं० [illegible] — [illegible]वाले।
मुरादाबाद के सुविख्यात चिकित्सक और मुरादाबाद प्रांतीय वैद्यसम्मेलनके सभापति।

राजवैद्य श्री पं० किशोरीदत्तजी शास्त्री, सं० 'चिकित्सक' कानपुर।
सं० प्रां० पञ्चम वैद्यसम्मेलन (हरिद्वार) के सभापति।

"इस जगह भूत रहता है, ऐसा बड़े लोग कहते आये हैं" यह किम्वदन्ती अक्सर सुनने में आती है। बड़ों का यह कहना ऐतिह्य प्रमाण है। इस प्रमाण को सार्वदर्शन बिल्कुल ग़लत मानता है। भूतों का जितना ही अधिक ख़याल किया जाता है, उतनी ही ज़्यादा उससे तकलीफ़ होती है। नीच क़ौम में यह बात बहुत पाई जाती है। इससे उन लोगों को एक न एक भूत लगा ही रहता है और उनमें ख़ून ख़राबी की नौबत आ जाती है।

आयुर्वेद में भूत की चर्चा।

प्रश्न यह उठ सकता है कि आयुर्वेद में भौतिक रोग और उनकी चिकित्सा लिखी गई है। यदि भूत न होता या न लगता तो ऋषि लोग उनका संग्रह ग्रन्थों में क्यों करते? बात सच है, परन्तु ज़रा सा सोचने से यह प्रश्न हल हो जाता है। मतलब यह है कि आयुर्वेद सभी श्रेणियों के प्राणियों के लिये है। जिनका मोहवश या किसी अन्य कारणवश यह विश्वास है कि भूत लगता है, आख़िर उनकी तसल्ली के लिए भौतिक रोग और उसकी चिकित्सा लिखना तो ज़रूरी है। परन्तु आयुर्वेदाचार्य स्वतः सिद्धान्त रूपसे भूत लगना नहीं मानते। यह बात पीछे लिखे अवतरणों से मालूम हो जाती है। और जहां उन्होंने भूत शब्द का प्रयोग किया है, वहां स्पष्टतः दूसरों का ही मत ज़ाहिर किया है, अपना नहीं। जैसे—केचिद् भूताभिषङ्गोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम्। डाक्टरी में विषम ज्वर कीड़ों से माना जाता है। इस बात को उन लोगों ने विविध साधनों के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव किया है, इसलिए भूताभिषङ्गोत्थ का कीड़ोंका संक्रमण होना अर्थ माना जाय तो क्या क्षति है? प्रत्यक्ष बात त्रिकालाबाधित है। भूतों का लगना तो प्रत्यक्ष नहीं। संततादि विषमज्वर में प्रायः प्रलापादि ऐसे लक्षण भी होते हैं। जैसे एक श्रेणी के लोगों ने भूत का लगना मान रखा है। भूत माने सूक्ष्म जन्तु अर्थात् कीड़े। बहुत सम्भव है कि आचार्यों का अभिप्राय "केचिद् भूताभिषङ्गोत्थम्" से कीड़ों के मानने वालों ही से हो। जिसको कि "केचिद्" पद से उन्होंने भी स्वीकार कर लिया।

काम क्रोधादिको भी भूत कहते हैं। इनका आवेश भी पिशाच आदि भूतों के स्वभाव से भिन्न नहीं। अस्तु। इस विषय पर एक बड़ी पुस्तक लिखी जा सकती है; और अंग्रेज़ी में ऐसी पुस्तकें हैं भी।

सारांश यह है कि भूत भय मात्र अथवा मानसविकार मात्र है। इसलिये अपने मन से भूत का भय एक दम अलग कर देना चाहिए और सत्य, दया, क्षमा, शान्ति, धैर्य, अहिंसा अस्तेय, सफ़ाई, समझदारी आदि सद्गुणों को अपने में लाने का प्रयत्न करना चाहिए। सदाचार का परित्याग कभी भूल कर भी करना ओछा समझना चाहिये। आयुर्वेद में भी भूतों की यही दवा लिखी है।

"या देवी सर्वभूतेषु बुद्धि, शक्ति, श्रद्धा, कान्ति, शान्ति, दया, मातृ, तुष्टि, लक्ष्मी, रूपेण संस्थिता" का यही अभिप्राय है। इन्हीं के अभ्यास से मनुष्य के हृदय में दुर्गा-दुर्ग कार्य करने की शक्ति का आविर्भाव होता है। फिर "भूतगाः खेचराश्चैव पिशाचाः राक्षसास्तथा" की क्या मजाल जो पास फटकें।

प्रकृत-प्रयोग।

ले० श्रीयुत—दीनानाथजी 'अशोक'

चिन्ता मन से दूर कर रहो सदा मुदमान।
बढ़ जावेगा आयु का निश्चय ही परिमाण॥

(२)

यदि चाहो, चिरकाल तक बना रहे तारुण्य।
तो दिखलाओ वीर्य के रक्षण में नैपुण्य॥

(३)

करना हो आहार या वाणी का विस्तार।
भाई! रक्खो उस समय जिह्वा पर अधिकार॥

(४)

कहता आयुर्वेद यह बारम्बार पुकार—
"सदा-सर्वदा त्याज्य है अमिताहार-विहार!"॥

(५)

पचे नहीं या पेट में पैदा करे अनर्थ।
वह पदार्थ मत खाइए केवल रुचि के अर्थ॥

(६)

स्वास्थ्य और सौन्दर्य का वैरी है आलस्य।
निरालस्य बन जाइए आप अवश्य अवश्य!॥

(७)

नियमित भोजन, विमल जल और विशुद्ध समीर।
रुक-रोग नाशक यही रखते स्वस्थ—शरीर॥

अन्ननाली और आमाशय के रोग।

(ले०—श्रीयुत प्रोफेसर रामकृष्ण वर्मा बी० ए० बी एस० सी० एल० एम० एस० आयुर्वेदाचार्य)

पाचक यन्त्रों में digestive apparatus सब से प्रधान भाग परिपाक नाली digestivetubes का है। यह मुंह, से लेकर मलद्वार (गुदद्वार) तक विस्तृत है। इसको एलीमेएटरी केनाल alimentary Canal भी कहा जाता है। यह पेशियों के द्वारा निर्मित हुई है। इसके भीतर एक प्रकार की लसदार झिल्ली Mucous Lining अर्थात् म्यूकस लाइनिंग का अस्तर है। इसके कई भाग हैं; और उनके अलग २ नाम भी हैं। उनमें पहिले भाग को मुख कहते हैं। इसके द्वारा आहार को चबाने का काम होता है। इसके बाद फिर कण्ठनाली, जिसको हलक़ (तालू) अंग्रेज़ी में फेरिंगस Pharinx कहते हैं। इस नली के नीचे के भाग को अन्न नली या इसोफेगस Esophagus या ग्लेट Gullet कहा जाता है। ये दोनों केवल मुख के आहार को चबाकर आमाशय (मेदा) में पहुंचाती हैं। आमाशय (मेदा) में पाक प्रणाली की प्रथम अवस्था सम्पादित होती है। आमाशय के बाद फिर छोटी अन्त्र (आंत) Small Mteslive प्रारम्भ होती है। इसमें भोजन के पचने का कार्य बिल्कुल पूर्ण होजाता है; और यहीं से आहार का सारभाग (रस) रुधिर में परिणत होता है। इस छोटी आँत के बाद बड़ी आँत Large Intestin प्रारम्भ होती है, जो गुदद्वार तक विस्तृत है। बड़ी आँत के द्वारा भोजन का असार अंश मलके रूप में बाहर निकल जाता है।

इस लेख में हम सब यंत्रों के वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ केवल अन्न नली और आमाशय इन दो यंत्रों का विस्तृत रूप से वर्णन किया जाता है।

अन्ननली—यह कण्ठनली के नीचे के सिरे से आमाशय तक विस्तृत है और श्वासनली trachea के पीछे से आकर, यकृत और हृदय के पीछे होकर के डायफ्राम पेशी को भेदकर आमाशय के ऊपर वाले सिरे में आकर मिल गई है। इसी के द्वारा खाया हुआ भोजन आमाशय में प्राप्त होता है। यह नली अनैच्छिक पेशी Inuoluntary muscle इनवोलंटरी मसल से निर्मित है।

आमाशय—को अंग्रेज़ी में स्टमक Stomach कहते हैं। यह परिपाक यंत्र का सब से विस्तृत (फैला हुआ) भाग है और यह भी अनैच्छिक पेशी के द्वारा निर्मित है। यह देखने में मिश्की की मशक के समान मालूम होता है। यह पेट के सब से उपर के भाग में ठीक डायेफ्राम मसल के नीचे रहता है। इसका अधिक बड़ा भाग बायीं ओर रहता है। इसके दो छोर (सिरे) हैं। जिसमें वाम और ऊपर वाला भाग अन्ननली से मिला हुआ है। यह भाग हृदय के अधिक समीप है। इसी कारण इन को कार्डियाक छोर Cardioc End भी कहते हैं। और दाहिने छोर को पाइलोरस pylorus कहते हैं। यह छोटी अंतड़ी से मिला हुआ है। इसमें एक कपाट है। इस कपाट के द्वारा छोटी आँत (अंत्र) से कोई वस्तु आमाशय में नहीं आने पाती। परन्तु वह आमाशय स्थित पदार्थ को आँत में जाने से रोक भी नहीं सकता। आमाशय के भीतरी अस्तर में झिल्ली के नीचे अनेक अत्यन्त छोटी २ गिल्टियाँ हैं। इन गिल्टियों से एक प्रकार का रस निकलता है, जिसको आमाशयिक रस या गैस्ट्रिक जूस Gastric juice कहते हैं। यह रस निकल कर आमाशयस्थ आहार को कुछ पतला कर देता है। फिर आमाशय इस अर्ध तरल आहार को छोटी आँत में पहुँचा देता है।

आमाशय की नियमित क्रिया से peristoltic motion या उससे निकले आमाशयिक रस के मिलने से आहार आंशिक रूप से पचता है। जिससे कि उसमें तरलता (पतलापन) आजाती है। इस प्रकार इन दोनों नलियों को यह कार्य शरीर रक्षा और उसको सुरक्षित रूप से संचालन करने के लिए करना पड़ता है।

जब आहार आमाशय में प्राप्त होता है तो उस में एक प्रकार की आकुंचनगति पैदा होजाती है। आहार के द्रव्यों में खांड और नमक जैसी वस्तुएँ आमाशय में प्राप्त होकर केशिकाओं में आमाशय की

दीवार से निकलजाती हैं और उनमें पाचक रस की क्रिया की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु प्रोटिनिक वस्तुएँ जब तक पचकर तरल स्वरूप नहीं हो जाती, तब तक केशिकाओं में नहीं जा सकतीं। नमक, खांड, पानी आदि आमाशय का श्लैष्मिक कला से केशिकाओं के द्वारा यकृत् और वृक्कों तक पहुँच जाते हैं। और आहार का शेष भाग जिसमें वसा (चर्बी) का भाग, पानी, श्वेतसार, प्रोटीन आदि होते हैं, ये धीरे २ पचकर आंत में आते हैं। आमाशय आहार को कितनी देर में जीर्ण कर देता है, इसका वर्णन निश्चितरूप से ठीक नहीं किया जा सकता। क्योंकि इसका कारण भिन्न २ प्रकार के आहार और भिन्न २ प्रकार के स्वभावों पर निर्भर है। परन्तु साधारणतः आहार करने के बाद सामान्य अवस्था में लगभग ६ घंटे के पश्चात् आमाशय आहार से खाली होजाता है।

जब आमाशय में कोई व्याधि उत्पन्न होजाती है, तब रोगी को चित्त लिटाकर और उसके पेट के ऊपर महीन कपड़ा ढककर देखते हैं कि किस स्थान पर आमाशय फूला हुआ दिखायी देता है या उसके किसी स्थान पर शोथ तथा अर्बुद तो नहीं दिखायी देता। इसके बाद दोनों हाथों को कुछ गरम करके फिर आमाशय के ऊपर रखते हैं और देखते हैं कि दबाने से उसमें पीड़ा होती है या नहीं। आमाशय को दबाते वक्त रोगी के मुखमण्डल को देखना चाहिये कि उसको दबाने से उसके मुख पर पीड़ा का लक्षण दिखायी देता है या नहीं। केवल रोगी के कहने के ऊपर निर्भर नहीं रहना चाहिये। कभी २ किसी रोग में आमाशय की दीवार में संकोच भी जान पड़ता है। आमाशय को हाथ से ठोकने से उसमें विशेष प्रकार का शब्द उत्पन्न होता है, जो खूब स्पष्ट सुना जाता है, और यह शब्द उस शब्द की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होता है, जो आंत को ठोकने से जाना जाता है। जिस अवस्था में यकृत् और प्लीहा बढ़जाते हैं—या पेट में तरल पदार्थों के संचित होने के कारण आमाशय फूल जाता है। अथवा वक्ष में जल भर आने से उक्त प्रकार की ऊँचाई होजाती है तो उस स्पष्ट शब्द में कुछ परिवर्तन होजाता है। यदि यह शब्द नाभि तक सुनायी देवे तो समझना चाहिये कि आमाशय सामान्य अवस्था से अधिक फूल गया है। इस परीक्षा के सिवाय भूँख, प्यास, वमन आदि से भी आमाशय के रोगों की परीक्षा करने में

सहायता मिलती है। पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के अनुसार आमाशय में प्रायः ६ रोग होते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं।

१—आमाशयिक रक्त संचाप, २—आमाशयिक शोथ, ३—आमाशयिक परिवर्तन शीलशोथ, ४—आमाशयिक व्रण, ५—आमाशयिक प्रसार, ६—आमाशयिक अर्बुद आदि।

(१) आमाशयिक रक्त संचाप—यह चाय, काफी, मद्य आदि वस्तुओं के सेवन करने और अजीर्ण रोग, ज्वर, यकृत् हृदय तथा वक्षस्थल सम्बन्धी अनेक रोगों के द्वारा रक्त के संचालन में अवरोध होजाता है तब उससे आमाशय में भी रक्त का संचाप बढ़ जाता है।

(२) आमाशयिक शोथ—यह अधिक और विरुद्ध आहार करने तथा मद्यपान, विषभक्षण, संखिया, सुर्मा, हरताल आदि के विषों के प्रयोग से होता है।

(३) आमाशयिक परिवर्तन शीलशोथ—अधिक देरमें पचने वाले आहार के सेवन करने से तथा हृदय-रक्तस्राव, यक्ष्मा, शुक-रम, मधु मेह, वृक्क रोग के कारण और आमाशय के अन्य रोगोंसे जैसे अर्बुद (व्रण फैलाव) में देखा जाता है। और वक्षस्थल तथा यकृत् के ये रोग जिन से रक्तसंचार की क्रिया में अवरोध होता है, उन रोगों के द्वारा आमाशय में यह रोग उत्पन्न होता है।

(४) आमाशय का व्रण—साधारण और कठिन इन भेदों से दो प्रकार का होता है। जिस समय व्रण साधारण होता है, तब उसके किनारे साफ तथा धरातल समान होते हैं और जब व्रण छोटा होता है तो व्रण कठिन और उसके किनारे कड़े और बेढंगे होजाते हैं। व्रण बड़ा होता है, व्रण की गहराई या तो झिल्ली से बनी होती है या पेशियों के पर्दों से बनती है। यदि आमाशय में छेद होजाय तो किसी समीप के अङ्ग से अंकुर उत्पन्न होकर व्रण अच्छा होजाता है। परन्तु जब व्रण अधिक गहरा न हो। यदि व्रण अधिक गहरा हो तो उसमें एक प्रकार के तन्तु उत्पन्न होकर आमाशय का मुख-स्थान सिकुड़ जाता है। जिससे कि उसका मार्ग संकीर्ण होजाता है और भोजन के निकलने में कष्ट होता है। आमाशय फैल जाता है। इस व्रण का परिणाम यह होता है कि

और ध्यान की आवश्यकता है । इसके विस्तृत रूप से वर्णन करने में एक बहुत लम्बी, चौड़ी स्वतन्त्र पोथी बन सकती है। इस लिये पाठकों के लाभार्थ यहां अति संक्षिप्त रूप में सरल रीति से वर्णन किया जाता है। जिससे सर्व साधारण लोग लाभ उठा सकते हैं ।

जब आमाशय का रोगी चिकित्सक के पास आवे और अपना रोग प्रकट करे, तो वैद्य का कर्तव्य है कि उसके रोग की अच्छे प्रकार से परीक्षा करें। यदि आमाशय को दबाने से उस में शूल हो, बाँयीं पसलियों के पास दर्द हो, रक्त की वमन या केवल वमन, जिह्वा पर मैल का संचय होना आदि लक्षण देखे जायँ तथा रोगी कंठ से लेकर आमाशय तक दाह बतलावे तो समझ लेना चाहिये कि रोगी आमाशय सम्बन्धी किसी रोग से ग्रसित है।

चिकित्सक को यह ध्यान रखना चाहिये कि जो रोग आमाशय की रचना से सम्बन्ध रखते हैं, वे दो प्रकार के हैं। एक को प्रसरण शील और दूसरे को परिवर्तन शील कहते हैं। यदि रोगी के कहने से रोग स्पष्ट समझ में आजाय तो प्रथम परिवर्तन शील की तरफ़ ध्यान देना चाहिये। यदि कहने और दबाने से रोग समझ में नहीं आवे तो प्रसरणशील की ओर बुद्धि दौड़ानी चाहिये । कभी २ परिवर्तन शील ही बदल कर प्रसरणशील होजाता है।

प्रसरणशील आमाशयिक रोग—आमाशय का प्रसरण शील रोग आमाशयिक शोथ है । इसमें आमाशय के ऊपरी स्थान पर शूल और दाह तथा बेचैनी पायी जाती है । आमाशय के स्थान में पीड़ा होती है, प्यास बढ़ जाती है। प्रतान (तनाव) कम होजाता है, वमन प्रारंभ हो जाती है, जिससे अधिक कष्ट प्रतीत होता है । वमन में लसदार और उसके साथ कभी २ रक्त निकलता है या पित्त मिला हुआ निकलता है। रोगी प्यास की अधिकता से बार २ पानी पीता है, पर तत्काल ही पानी वमन के द्वारा बाहर निकल आता है। जिह्वा लाल, कभी २ पीली, मल त्याग की इच्छा, और होठों पर मसूरिका जैसी फुन्सियाँ देखी जाती हैं। साथ ही तीव्र ज्वर भी होता है। जिस समय कोई मौसमी ज्वर फैला हो, उस समय यदि ऐसी अवस्था प्रारम्भ हो जाय तो अधिक सावधानी से काम लेना चाहिये।

आ॰ म॰ म॰ रसायनशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य
श्री पं॰ भागीरथजी स्वामी,
कलकत्ता।

आयुर्वेदके प्रसिद्ध विद्वान, वक्ता और नामी लेखक।

प्रो॰ डा॰ रामकृष्णजी वर्मा
आयुर्वेदाचार्य B. A. B. Sc.
L. M. S. नगरांवा।

आपकी विद्वत्ता नामसे ही प्रकट है। आप आयुर्वेदके सुविख्यात लेखक, व्याख्याता और देशभक्त हैं। आपके लेख वैद्यकके सभी पत्रोंमें अधिकतासे प्रकाशित होते हैं।
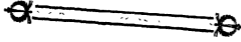
वैद्यराज श्री पं॰ हरिनारायणजी शर्मा
काव्यतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य, प्रतापगढ़ (अवध)
B. H मेहता सं॰ विद्यालयके प्रधानाध्यापक और आयुर्वेदसाहित्यके प्रसिद्ध लेखक।

परिवर्तनशील आमाशयिक रोग—यदि रोगी आमाशय के स्थानपर शूल की पीड़ा बतावे और आमाशय को बार २ हाथ से दबाने तथा आहार करने के बाद उसके अधिक दर्द पाया जावे तो चिकित्सक को परिवर्तन शील आमाशयिक शोथ वा आमाशयिक व्रण अथवा आमाशयिक अर्बुद या आमाशयिक प्रताप में से कोई एक रोग पैदा हुआ समझना चाहिये । इन उपरोक्त रोगों के लक्षण निम्न-लिखित रोगों से मिलाने चाहिये ।

आमाशयिक परिवर्तनशील शोथ—इस रोग में आमाशय में थोड़ा थोड़ा दर्द होता है, जो भोजन करने के बाद अधिक बढ़ जाता है, पेट तन जाता है, बाईं पसली के स्थान में दर्द अधिक होता है और हाथ से दबाने से आमाशय में पीड़ा होती है । जिह्वा बीच में से फटी हुई, उसके किनारे लाल तथा उस पर दाने पड़ जाते हैं । खट्टी डकारें आती हैं । कभी २ उबकाई आती है और कभी २ एक साथ वमन भी होजाती है प्यास का अधिक लगना, हाथ की हथेली और पैरों के तलुओं में तथा आमाशय में अधिक दाह का होना, साथ ही बद्ध कोष्ठ भी पाया जाता है, ये लक्षण किसी में अधिक और किसी में कम देखे जाते हैं । इस रोग की परीक्षा में अच्छे सुबोध्य चिकित्सक भी धोखा खा जाते हैं । और वह इस रोग को परिपाक विकृति समझते हैं । परन्तु इन दोनों में बहुत भेद हैं । यद्यपि दोनों की चिकित्सा-क्रिया एक समान है, पर यह भेद कभी समानता नहीं रखता है । तथापि इनका विभाग कर लेना उत्तम है । परिपाक विकृति में भी ये लक्षण पाये जाते हैं ।

आमाशय को हाथ से दबाने से पीड़ा नहीं मालूम होती नाड़ी सूक्ष्म और शीघ्र चलती है । जिह्वा फैली हुई और अधिक मैली नहीं होती । अंगों में शीतलता होती है । आमाशयिक शोथ में हाथ से दबाने से आमाशय दुखता है । और रोगी को ज्वर होजाता है, नाड़ी तेज़ चलती है, जिह्वा अधिक फैली रहती है, अधिक मसालेदार चटपटे भोजन खाने से अधिक पीड़ा होती है । इस कारण उक्त दोनों रोग एक कभी नहीं हो सकते ।

आमाशयिक व्रण—इस रोग में आमाशय में दाह और पीड़ा मालूम होती है । और ऐसी ही पीड़ा और दाह बाईं पसली के समीप भी होती है । दबाने से वह अधिक होजाती है । भोजन करने

के बाद एक घंटे तक दर्द अधिक मालूम होता है। रोगी बेहोश हो जाता है। खाया हुआ भोजन सब वमन के द्वारा निकल जाता है। साथ ही वमन के कभी २ रक्त और कफ भी आता है और आमाशय की किसी रक्त नली के फट आने से रक्त की वमन होती है, जिससे रोगी कमज़ोर होता जाता है। वमन होने से दर्द कुछ कम होजाता है। यद्यपि आमाशयिक शूल में भी दर्द होता है पर उसमें आहार करने से प्रथम अधिक दर्द होता है और आहार करने पर दर्द कम हो जाता है। वमन आहार करने के दो घंटे बाद होती है। जब यह रोग बढ़ जाता है तब मल के साथ रक्त गिरने लगता है। जिससे मल का रङ्ग काला होजाता है और व्रण के फट आने के कारण आमाशय में छिद्र होजाता है। उसमें आहार नीचे आकर शोथ उत्पन्न करता है। इसमें रोगी को अत्यन्त कष्ट होने के कारण वह मृतक की समान होजाता है। इस रोग में प्रायः बद्ध-कोष्ठता (कब्ज़) होती है और आहार के परिपाक न होने से रोगी दिन २ क्षीण होता जाता है। जिस समय आमाशय में छिद्र होजाता है। तब इसमें भयंकर पीड़ा होती है और वह धीरे २ सारे पेट में फैल जाती है। रोगी अत्यन्त उदास और उसका मुख मण्डल पीला होता जाता है। नाड़ी तीव्र और क्षीण चलती है, बार २ वमन होती है। इस अवस्था में जब मुख से रुधिर गिरने लगता है, तब वैद्य लोग इसको असाध्य मानकर उसकी चिकित्सा करते हैं, जिससे स्वप्न में भी लाभ की आशा नहीं की जासकती।

यह रोग पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के अधिक पाया जाता है। इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में रोगी भोजन के न पचने की शिकायत करता है। और उसके आमाशय में पीड़ा और जलन होती है। धीरे २ वह दर्द कम होजाता है और कार्डियाक कोर में दर्द होने लगता है। उसका असर पसलियों तक होजाता है। यद्यपि आमाशय में व्रण के सिवाय अन्य कारणों से भी दर्द होता है। किन्तु इस रोग की यथार्थ परीक्षा नीचे लिखे उपायों द्वारा की जासकती है।

१—व्रण के कारण जो आमाशय में दर्द होता है, वह भोजन करने के बाद अधिक बढ़ जाता है। और पेट में भोजन न रहने पर कम होजाता है।

२—व्रण के दर्द में अजीर्ण हमेशा बना रहता है। पर आमाशयिक शूलमें केवल रोगके दौरे के समय अजीर्ण और कब्ज़ होता है।

३—आमाशयके व्रण में सिर्फ आमाशय का बायाँ सिरा दबानेसे दुखता है परन्तु दूसरे शूलों में आमाशय के दबाने से शान्ति मालूम होती है और व्रण का रोगी दिन २ कमज़ोर होता जाता है। उसके वमन के साथ रुधिर गिरता है और आमाशयिक रस (प्रेशिकग्रुन) पहिले की अपेक्षा अधिक खट्टा हो जाता है। रोगी अन्य शूलों में इतना अधिक दुर्बल और कमज़ोर नहीं होता है और उसके रुधिर की वमन भी नहीं होती है। आमाशयिक रसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं होती।

आमाशयिक अर्बुद—इस रोगमें आमाशय में भाले के चुभने के समान पीड़ा होती है। भोजन करने से और उसके दबाने से अधिक पीड़ा हो जाती है। भोजन करनेके कुछ समय बाद रोगीको वमन होती है। इसमें अर्बुद के टुकड़ें और काले रक्त का रुधिर निकलता है तथा बांए सिरे में शोथ दिखायी देता है, अजीर्ण के लक्षण पाये जाते हैं, बद्धकोष्ठता रहती है, रोगी का मुख मण्डल पीला पड़ जाता है। रोगी दिन प्रति दिन दुर्बल होता जाता है। यह रोग चालीस वर्ष की अवस्था के बाद होता है। प्रारम्भिक अवस्था में रोगी अशक्त होजाता है। कभी नाभि स्थान पर और कभी बाईं पसली की तरफ दर्द होता है, भोजन करने पर दर्द अधिक बढ़ जाता है। जिस समय अर्बुद आमाशय के दाहिने सिरे के पास होता है। तब भोजन करने के प्रायः १॥ घण्टे के बाद वमन होती है और जब बायें सिरे के पास होता है तब वमन शीघ्र होती है। इसमें आहार के पदार्थ, कफ, और कभी २ रुधिर भी आया करता है। वमन के बाद भी दर्द शांत नहीं होता। आमाशय को चीर कर देखने से उसमें शोथ भी पाया जाता है। आमाशयिक व्रण और आमाशयिक अर्बुद में परीक्षा करने पर बहुत कुछ विभिन्नता पायी जाती है। यथा—

१—आमाशयिक व्रण से प्रसित २०-३० वर्ष तक की अवस्था वाले ही व्यक्ति देखे जाते हैं। पर आमाशयिक अर्बुद रोग से पीड़ित प्रायः ४० वर्ष से अधिक अवस्था के मनुष्य होते हैं। और इससे कम अवस्था के व्यक्ति नहीं होसकते।

२—आमाशयिक व्रण धीरे २ बढ़ता है, किन्तु अर्बुद जल्दी बढ़ जाता है।

३—व्रण का दर्द अर्बुद की अपेक्षा कम होता है। और वमन होने से और भी कम हो जाता है। पर अर्बुद का दर्द ज्यों का त्यों बना रहता है।

४—व्रण के रोगियों के अर्बुद की अपेक्षा वमन के साथ अधिक रक्त स्राव होता है।

५—अर्बुद में आमाशय में शोथ होता है और रोगी के आमाशयिक रस की परीक्षा की जावे तो उसमें लवणाम्ल बिलकुल नहीं पाया जाता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि अर्बुद में आमाशय पर किसी प्रकार का शोथ आदि नहीं होता है। पर रोगी कमज़ोर और दुबला होता जाता है, भूख नष्ट हो जाती है। इस प्रकार के अर्बुद के लक्षण परिवर्तन शील आमाशयिक शोथ से बहुत मिलते हैं, पर इन दोनों में यह अन्तर बताया जाता है कि परिवर्तन शील आमाशयिक शोथ में रोगी अधिक समय से प्रसित रहता है और इसमें रोग के कारण कमज़ोरी, क्षीणता आदि अर्बुद रोगी की अपेक्षा कम होती है।

आमाशयिक प्रतान—इस रोग में रोगी आमाशय में दर्द, बेचैनी और भारीपन बतलाया करता है। और प्रायः उसके अपच की अवस्था मालूम होती है। किन्तु इस रोग का सब से उत्तम लक्षण यह है कि रोगी को दो-तीन दिन के बाद वमन होती है। जब कि आमाशय में आहार अधिक संचित होजाता है। वमन इस आहार की मात्रा से बहुत अधिक होती है। वमन में खाये हुए पदार्थों के सिवाय कफ, पित्त भी निकला करते हैं और वमन दुर्गन्धित और मैली होती है। रोगी को दुर्गन्धियुक्त डकारें भी आया करती हैं। और उसके साथ खट्टा पानी भी आता है। आमाशय को मलने या रोगी को एक करवट से बदल कर दूसरी करवट से शयन कराने में पानी की लहर सी ज्ञात होती है। आमाशय को हाथ से ठोकने से ढोल की सी आवाज़ मालूम होती है। और आमाशय का नाभि की ओर वाला भाग उभरा हुआ होता है। किसी २ रोगी के इस उभार का ऐसा अपूर्व स्वरूप देखा जाता है कि वह दूर से ही देखने से ज्ञात होजाता है कि आमाशय फैल गया है। यदि रोगी को खड़ा करके उसका पेट ठोका जावे तो नाभि के ऊपर शुं-आम-माम शब्द और पेट के नीचे भद्दा शब्द मालूम होगा। फिर, यदि

रोगी को चित्त लिटा कर उसका पेट ठोका जावे तो भद्दी आवाज़ कुछ बदल जायगी। यदि भद्दी और गाढ़ी आवाज़ नाभि से नीचे सुनाई देवे अवश्य आमाशयिक प्रतान समझना चाहिये। क्योंकि इस शब्द में वे रोग भी आमाशयजन्य समझे जाते हैं जो इसके कारण हैं। (अपूर्ण)

अपस्मार (मृगी) रोग

और उसकी चिकित्सा।

लेखक—श्री० प्रोफेसर रामकृष्ण वर्मा बी० ए० बी० एस० सी० एल० एम० एस० आयुर्वेदाचार्य।

मृगी यह मस्तिष्क सम्बन्धी रोग है। इसके आक्रमण के समय प्रायः निम्नलिखित लक्षण होते हैं।

इस रोग के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं। आक्रमण होने के प्रथम रोगी के हाथ-पैर की अंगुलियों में या पेट में सनसनाहट मालूम होने लगती है और वह फिर उन अङ्गों में ऊपर को चढ़ कर मस्तिष्क में जाती हुई जान पड़ती है। उस समय रोगी बेहोश होकर गिर पड़ता है, जिससे इस रोग का दौरा प्रारंभ होजाता है तथा शिर में पीड़ा और नाक में एक मुख्य प्रकार की दुर्गन्धि आती है। जो प्रत्यक्ष में मालूम नहीं होती। आँखों के सामने चिनगारियाँ सी उड़ने लगती हैं या रंग बिरंगे स्वरूप दृष्टिगोचर होने लगते हैं। ये चित्र इतने भयानक होते हैं कि रोगी इनसे भयभीत होजाता है। कानों में बाजे की सी आवाज़ आती है। किसी समय बुद्धि में भी भ्रम होजाता है। हृदय और आमाशय में धकधकाहट होने लगती है तथा वमन होती है। कभी २ ज्वर भी होजाता है। शिर में आघात सा लगता मालूम होता है जो इस रोग का मुख्य लक्षण है। कभी २ इन लक्षणों में एक भी लक्षण नहीं देखा जाता।

इस रोग का आक्रमण प्रायः बारम्बार हुआ करता है। कभी २ देखा जाता है कि पहले शिर में पीड़ा, बेहोशी आदि लक्षण होकर इसका आक्रमण प्रारम्भ होता है। उस समय रोगी यदि खड़ा होतो

चीख मार कर गिर पड़ता है । उसका मुखमण्डल विकृत होजाता है । आँखों की पुतलियां ऊपर को चढ़ जाती हैं । मुख के ऊपर नीलापन होजाता है और गर्दन एक तरफ़ को झुक जाती है । दांतों की बत्तीसी बन्द होजाती है । मुख से झाग निकलते हैं, आँखें फैल जाती हैं । और वे अधिक प्रकाश से भी बन्द नहीं होतीं । मल-मूत्र अपने आप बेहोशी में निकल जाते हैं । जिह्वा दांतों के नीचे आकर कट जाती है । सम्पूर्ण शरीर में ऐंठन होती है और दिल धड़कने लगता है । कुछ समय के बाद रोगी बेहोश होकर निश्चेष्ट होजाता है । ऐसी अवस्था में भी कोई २ रोगी पागलों के समान बातें करता है । और कोई दूसरों को मार भी बैठता है । किसी २ रोगी की मस्तिष्क शक्ति में अवरोध होजाता है । पेशाब अधिक मात्रा में आता है, पेशाब में अलब्यूमन (Albumen) पाया जाता है । किसी को अर्द्धाङ्गवात और किसी की वाक्शक्ति में भेद पड़ जाता है ।

किसी २ के इस रोग का दौरा एक ही दिन में कई बार आरंभ होकर शान्त होता है । परन्तु किसी २ रोगी के मृगी रोग का आक्रमण कई दिन या कई मास के बाद होता है । स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों पर इस रोग का अधिक आक्रमण होता है । यह रोग इतना भयानक है कि प्राण लेकर ही छूटता है । बच्चों के, दाँतों का निकलना, पेट में कीड़ों का यकायक अधिक होजाना, आदि इसके कारण होते हैं । और युवा पुरुषों के स्त्री प्रसंग की अधिकता, वीर्य-स्राव, मस्तिष्क में वायु का संचय, शोक की अधिकता, मस्तिष्क सम्बन्धी परिश्रम की अधिकता, मद्यपान, उपदंश, सन्धि की पीड़ा, गठिया, रक्तकणों का ह्रास या अधिकता, नासिका, तालु, आँतें, कण्ठनली और अण्डकोषों में अनेक दुस्तर रोगों का प्रकट होजाना और फिर उनका यकायक अदृश्य होजाना । स्त्रियों के मासिक धर्म की विकृति, श्वांस आदि के होने से यह रोग उत्पन्न होता है ।

इस रोग का एक मुख्य भेद है, जिसको साधारण मृगी कहते हैं । इस रोग का रोगी यद्यपि बिल्कुल बेहोश होजाता है, परन्तु बेहोशी एक या दो सकेंड ही तक रहती है । इस के शरीर में ऐंठन नहीं होती । सिर में आक्रमण होता है, मुख-मण्डल पीला होजाता है, आँखें पथरा जाती हैं और रोगी के हाथ में कोई वस्तु होतो वह पृथ्वी पर गिर पड़ती है ।

यद्यपि इस प्रकार की मृगी का दौरा केवल इस तरह होता है कि रोगी बातें करना २ रुक जाता है और फिर बहुत देर के बाद बातें करने लगता है। किसी २ रोगी की ऐसी अवस्था होजाती है कि वह बैठे २ अपने कपड़े उतारने लगता है या फ़र्श आदि पर थूकने लगता है या और कोई ऐसे ही ऊनपटांग कार्य्य करने लगता है। होश में आने पर उसके ऐसे लक्षण प्रकट होजाते हैं कि जो किसी प्रकार रोके नहीं जा सकते।

मृगी रोग का एक दूसरा प्रकार भी है। जिसमें रोगी बेहोश नहीं होता किन्तु उसके केवल मुख-मण्डल तथा हाथ पैर के अंगूठों में ऐंठन प्रारम्भ होजाती है। जोकि उसी स्थान पर स्थिर रहती है या धीरे-धीरे ऊपर की तरफ़ बढ़ने लगती है। ऐंठन के प्रथम रोगी के उक्त अंगों में शून्यता मालूम होती है परन्तु किसी के यह शून्यता होती है और किसी के सुई चुभाने जैसी पीड़ा होती है। फिर साधारण मृगी के लक्षण प्रारम्भ होजाते हैं। इस प्रकार की मृगी के कारण यह हैं। जैसे, मस्तिष्क का अर्बुद, मस्तिष्क की शिथिलता, मस्तिष्क की श्लेष्मल त्वचा का शोथ, अस्थिशोथ इत्यादि। इस मृगी के लक्षण योषापस्मार से अधिक मिलते जुलते पाये जाते हैं। पर दोनों में कुछ भेद अवश्य है। जैसे—१-मृगी का दौरा समान होता है। २—मृगी में बेहोश होने के समय रोगी चीख मारता है। ३—मृगी के रोगी की जीभ दब या कट जाती है। ४—मृगी के लक्षण अर्द्धाङ्ग में प्रकट होते हैं। ५—मृगी रोगी का मलमूत्र बिना इच्छा बेहोशी में निकल जाता है। ६—आक्रमण के समय रोगी बोल नहीं सकता। ७—अधिक से अधिक इसका दौरा दस मिनट तक रहता है। ८—और वह स्वयं शान्त भी होजाता है। परन्तु योषापस्मार इससे भिन्न है।

१—योषापस्मार का दौरा विषम भाव से होता है। २—बेहोशी के समय भी इसका रोगी चिल्लाता है। ३—यह रोगी अपने पास बैठे हुए मनुष्यों में से किसी का हाथ या शरीर काटने लगता है। ४—योषापस्मार के लक्षण शरीर में दोनों ओर भी पाये जाते हैं। ५—इसमें मल-मूत्र नहीं निकलता है। ६—रोगी आक्रमण के समय भी बातचीत कर सकता है। ७—इस का दौरा भी दस मिनट से अधिक रहता है। ८—इसमें शीतल जल के छींटे देने से या अन्य

श्री पं० कृष्णप्रसादजी त्रिवेदी B. A.

आयुर्वेदाचार्य—हिंमत घाट।

आप आयुर्वेद और पाश्चात्य विद्याके एक प्रसिद्ध विद्वान् तथा नामी लेखक हैं।

कोई साधारण उपचार के द्वारा दौरा शान्त होजाता है और रोगी के आक्रमण के समय हृत्कम्प, वामपार्श्वशूल, मलावरोध, मालूम होता है। इसके सिवाय इस रोग के अन्य लक्षण भी होते हैं।

इस रोग में उक्त बाह्य निदान के अतिरिक्त जो शल्य निदान पाया जाता है, वह इस प्रकार है। सम्पूर्ण रोगियों में कभी समानता नहीं देखी जाती। सब में विभिन्नता देखी जाती है। ये सब लक्षण उपरोक्त लक्षणों के ही अन्तर्गत होते हैं, जोकि विचार करने से समझ में आ जाते हैं। शल्य प्रयोग के द्वारा यदि प्रथम झिल्ली को देखा जाय तो उसमें इन लक्षणों की उत्पत्ति पायी जाती है।

शारीरिक शास्त्र के ज्ञाता यह अच्छे प्रकार से जानते हैं कि मस्तिष्क तीन आवरण (झिल्लियों) के द्वारा वेष्टित हैं। जिनको क्रम से बाह्य, मध्य और अन्तर आवरण कहते हैं। उन तीनों झिल्लियों में से किसी एक झिल्ली में लाली दौड़कर उसका स्वाभाविक रंग फीका होजाता है। रक्त-नालियाँ रक्त से पूर्ण होजाती हैं, झिल्ली मोटी होने लगती है, स्थान २ पर धब्बे पड़ जाते हैं, उसको काटकर देखने से उसमें अधिक कड़ापन पाया जाता है। साधारण मृगी में जो धरातल मस्तिष्क से मिलता है, उसमें ये उपरोक्त लक्षण होते हैं और दूसरे प्रकार की मृगी में वे सर्वाङ्ग में फैल जाते हैं। ये लक्षण बृहत् मस्तिष्क की झिल्ली में मिलते हैं और लघु मस्तिष्क की झिल्ली में नहीं पाये जाते। उसमें मस्तिष्क के मिलने के स्थान पर कुछ ऊपर को उभार सा होजाता है। जो इस रोग के अनुसार छोटा या बड़ा होता है। इससे रक्तकी नाड़ियाँ दब जाती हैं, जिससे ऊपर मस्तिष्क में रक्त का संचय होजाता है। शिराओं में से रक्त शीघ्र नहीं लौटने पाता। जब रक्त में वायु का प्रभाव बढ़ कर किसी प्रकार मस्तिष्क में चला जाता है तो उस समय वायु के संचय से मस्तिष्क का उभार नाड़ियों को अधिक दबाता है और रोग का दौरा प्रारम्भ होजाता है।

इसी प्रकार सुषुम्ना की झिल्ली में भी वायु का प्रभाव बढ़ जाता है, जिससे कड़ापन और रुकना आजाती है। इसके सिवाय और कोई लक्षण नहीं पाये जाते। इसके अतिरिक्त किसी २ रोगी के निम्न लिखित लक्षण मस्तिष्क में होते हैं और किसी के नहीं होते।

मस्तिष्क के अंदर रक्त का प्रभाव और अभाव भी होजाता है, नाड़ियों में रक्त भरा रहता है, मस्तिष्क साधारण तथा लाल हो जाता है या उसमें कभी २ दाग पड़ जाते हैं। भूरे हिस्से का रंग फीका पड़ जाता है उसको काटने पर इस कदर लाली या दाग दिखायी देते हैं कि जैसे स्वस्थावस्था में होते हैं। पर उनसे इनका रंग गहरा होता है। रचना नरम पड़ जाती है। यदि इस रोगी को आतशी शीशे के प्रकाश को चित्र-विचित्र वस्तुओं पर डाल कर दिखाया जाय तो तत्काल दौरा प्रारम्भ होजाता है।

कभी मस्तिष्क में शिराएँ रक्त से पूर्ण हो जाती हैं, लाली कम होजाती है, किसी में बिन्दु-आकार के कीटाणु भी पाये जाते हैं। जो बराबर अपना कार्य्य करते रहते हैं। उसमें कीड़े उत्पन्न होजाते हैं। मस्तिष्क में कुछ हरा जैसा रंग दिखाई देता है। परन्तु ऐसे रोगी विशेष नहीं होते हैं। कभी मस्तिष्क की नाड़ियां पतली पड़ जाती हैं। और उसकी दीवारों में कठिनता आजाती है। रक्त के श्वेत कण कम होजाते हैं। हियाग्लोबीन किसी में कम, किसी में विशेष होजाती है। रक्त में कभी २ उपदंश, प्रमेह आदि के कीटाणु भी पाये जाते हैं। वातनाड़ियों में रूक्षता, रङ्गत फीकी और काटने से उनमें कड़ापन देखा जाता है। मस्तिष्क के स्रोतों की गहराई किसी में बहुत कम और किसी में अधिक होजाती है और उनमें एक श्वेत वर्ण की तथा अधिक पतली तह पड़ जाती है, जो उसमक एसिड (Osmic oced) द्वारा रंगने से मालूम देती है, अन्यथा दृष्टिगोचर नहीं होती है। कंठ और पेट में झाग अधिक होते हैं, मस्तिष्क में तरल कफ की अधिकता पायी जाती है। शरीर के जिस अङ्ग में पहले शून्यता, संकोच, ऐंठन मालूम हो और उस अँग का जिस वात नाड़ी से सम्बन्ध हो तो उसी नाड़ी के केन्द्र स्थान में मुख्य रोग का कारण समझना चाहिये।

मैं जब अपनी शिक्षा समाप्त करके नौकरी पर विदेश से वापिस आया, तब उस समय मैंने कई चिकित्सालयों का निरीक्षण किया। उनमें मृगी रोगियों को अत्यन्त दयनीय दशा में देखा। स्वयं मैं नित्य नये २ उपाय मृगी रोग के विषय में सोचता रहा। किन्तु जब मैंने उनसे उचित लाभ न होता देखा, तब कई सुयोग्य चिकित्सकों को उनकी चिकित्सा के लिये अनुरोध करके मैं भी इसके कारण तत्वों

को ढूंढने में लग गया । सन् १८२२ ईस्वी में मुझे पता लगा कि इस रोग के मुख्य कारण तत्व एक प्रकार के कृमि हैं जो मस्तिष्क में पाये जाते हैं । जिनकी लम्बाई एक इंच और मोटाई $\frac{1}{100}$ इंच होती है । ये कृमि मस्तिष्क या सुषुम्ना में अथवा नाड़ियों के केन्द्र में रहते हैं । प्रकृति भेदसे ये कई प्रकारके होते हैं । जिनके द्वारा यह रोग पैदा होता है । रोगी के कफ-थूक आदि की परीक्षा करने से उनमें इनका विष पाया जाता है । जब शरीर में इनको उचित आहार विहार नहीं मिलता, तब ये अकेले ही पड़े रहते हैं । और जब इनको कोई कारण मिल जाता है, तब इनकी अति वृद्धि होने लगती है । फिर यह बढ़ कर और विभक्त होकर रोग का दौरा आरम्भ कर देते हैं । इनका जल्दी या देर में दौरा होना वृद्धि और विभाग पर निर्भर है । शरीर के एक ही ओर इनका निवासस्थान है । चाहें वह दाहिनी हो या बायीं ओर । किन्तु ये दोनों तरफ़ नहीं जाते । जब तक यह घूमते रहते हैं, तब तक मृगी के लक्षण नहीं मालूम होते पर ज्यों ही ये अधिकता से आकर नाड़ियों में रक्त और वायु का अवरोध करते हैं । तब तत्काल इसका दौरा होने लगता है । अब धक्का लगकर ये अलग होजाते हैं । तभी दौरा बन्द होजाता है ।

इसके अतिरिक्त इस रोग का और कोई कारण तत्व नहीं देखा जाता । पर इस रोग की अभी तक कोई उचित औषधि निर्धारित नहीं हो सकी है । यद्यपि वैदिक काल से लेकर आज तक इस रोग की अनेक औषधिएँ आविष्कृत हो चुकी हैं । परन्तु उनसे सब रोगी लाभ नहीं उठा सकते । किसी को लाभ होता है और किसी को नहीं होता । अब इस रोग की कुछ परीक्षित औषधियाँ नीचे लिखी जाती हैं, जिनसे रोगियों को विशेष लाभ होने की संभावना है । यदि प्रयत्न किया जाय तो अवश्य इस रोग की अनुभूत औषधियाँ प्राप्त हो सकती हैं, किन्तु समयाभाव, द्रव्याभाव और श्रमाभाव के कारण वे प्राप्त नहीं हो सकतीं ।

मृगी वाले रोगी को अधिक रूखे पदार्थों का भोजन, मीठी और चिकनी वस्तुएँ, अधिक शाक तरकारी, मांस, अमरूद, (सफरी) चटपटी तथा उष्णता कारक खाने को नहीं देने चाहिये । नहीं तो रोग के शीघ्र बढ़ने की आशंका रहती है । ज़ोर से बोलना या क्रोध करना, भय, अत्यन्त शीतल जल से स्नान, और अधिक परिश्रम ये

सब विषय छोड़ देने चाहिएँ। इसमें फस्त खुलवाना, दाग़ देना आदि लाभदायक है। इस रोग का जिस अंग पर प्रभाव पड़ता मालूम हो तो तुरन्त उस पर उपयोगी तेलों की मालिश करनी चाहिए। और जब समस्त वस्तुएँ घूमती मालूम हों तो कान के पीछे जो नाड़ी है, उसका शिरावेध करे। इससे वस्तुओं के घूमने का वहम दूर होजाता है। जोकि रक्त में गरमी होने से उत्पन्न होजाता है। यदि आमाशय में भारीपन, मलबद्धता आदि होकर इस रोग की उत्पत्ति होतो प्रथम विरेचन और वमन कराके कोठे को साफ़ कर देवे तो फिर इससे दौरा रुक जायगा। अगर अंगों में शीत मालूम हो तो उष्ण औषधियों के द्वारा मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ावे तथा शिरावेध और वस्तिकर्म करावें। यदि कफ जनक कारण मालूम हो तो पंच कर्मों द्वारा उनका शोधन करे तो यह रोग शांत होजाता है। कफजनित व्याधियों में तेल की मालिश न करे किन्तु अन्य लेपों से काम लेना चाहिए। अगर किसी व्यक्ति को रोग से पीड़ित हुए २५ वर्ष होगये हों तो उसको रोग रुक कर असाध्य सा होजाता है। तथापि उसकी चिकित्सा करते रहना चाहिए। किन्तु २५ वर्ष से कम का रोग आराम होजाता है।

१—अकरकरा, कलौंजी, कूठ, पीपल, वच प्रत्येक तीन २ तोले, पाषाणभेद, जरावंद, जंद बदस्तर, (गंध मार्जारी वीर्य) हींग, चित्रक, राई प्रत्येक १॥-१॥ तोला, मिलावा १४ माशे सब औषधियों को अच्छे प्रकार कूट छान करके अखरोट के तेल से चिकना करें और सब औषधियों से तिगुना शहद मिलाकर खरल करें। फिर ६ मास के बाद ४ माशे की मात्रा से सेवन करे तो यह प्रयोग कफ जनित मृगी को दूर करने में अत्युत्तम है। इससे हाज़मे की शक्ति बढ़ती है। कफव्याधि नष्ट होती है।

२—पीली हरड़, काबुली हरड़, काली हरड़, बहेड़ा, आमला, सनाय, श्वेत निसोत, बिस्फायज, मस्तगीरूमी, उस्तखद्दूस, अफीम, किशमिश, मुनक्का सब को समान भाग लेकर कूट-पीस कर और बादाम के तेल से चिकना करके रखे। इसमें बादाम का तेल ६ तोले ४॥ माशे और प्रत्येक औषधि १-१ तोले साढ़े दस माशे मिलानी चाहिये। सब दवाइयों से तिगुना शहद मिलावे। चालीस दिन

रखे रहने के बाद इसका सेवन करे। इससे मृगी रोग नष्ट होता है। इसको प्रतिदिन ६ माशे की मात्रा से खाना चाहिये।

३—४ तोले अकरकरे को बारीक पीसकर उसको ४ वर्ष के पुराने ४ तोले सिरके में मिलाकर खरल करे और उसमें सब के समान शहद मिलाकर १५ दिन बाद काम में लावे। मात्रा ६ माशे एक छटांक गरम जल के साथ दिन में दो बार सेवन करने से मृगी रोग नष्ट होता है।

४—सोंठ, कालीमिर्च, अकरकरा, वच, कूट, प्रत्येक १-१ तोला लेकर और उसमें सबके समान शंख पुष्पी मिलाकर सबका एकत्र चूर्ण करे। इस चूर्ण को नित्य प्रति १ तोला खाकर ऊपर से शीतल जल पीने से मृगी रोग दूर होता है।

५—इन्द्रायन के बीज, करेला, नौसादर, कलौंजी, कुंदरु, काली-मिर्च, और हुस्तखुदूम सबको समान भाग लेकर और सबका बारीक चूर्ण बनाकर नाक में फूंके तो इससे नाक से पानी बहने लगता है और मृगी का रोग दूर हो जाता है।

६—हींग के १ रत्ती चूर्ण को सिरके या नीबू की सिकंजबीन के साथ नित्य प्रति खाने से मृगी रोग दूर होता है।

७—गधे का सुम (नाखून) लेकर और उसकी अंगूठी बनाकर अंगुली में पहरने से मृगी रोग दूर होता है।

८—शंख के सूखे हुए कृमि को १ माशा प्रमाण पान के साथ खाने से मृगी रोग दूर होता है।

९—मनुष्य की अस्थि की भस्म को नित्य प्रति सेवन करने से भी मृगी रोग नष्ट होता है।

१०—बच्चों के मृगी रोग में २ रत्ती प्रमाण निर्विषी को उसकी माता के दूध में मिलाकर देने से मृगी रोग दूर होता है।

११— दोनों ओठों के बीच में बकरी की मेंगनी या कपड़े के द्वारा दाग देने से मृगी रोग नष्ट होता है। बच्चों पर प्रयोग करने से यह योग विशेष उपयोगी साबित हुआ है। किन्तु अधिक उम्र के लोगों पर इसका प्रयोग करके नहीं देखा गया है। आशा है वैद्य लोग करके देखेंगे।

१२—लहसुन का पाक मृगी रोग में अत्यन्त उपकारी है। वह इस प्रकार बनाया जाता है। १॥ छटाँक उत्तम लहसुन लेकर ६॥

छटाँक दूध में पकाकर फिर उसको पीसकर २ सेर गाय के घृत में डालकर भूने। और उसको खूब चलाता जाय। फिर नीचे उतार कर उसमें लौंग, जायफल, जावित्री, कालीमिर्च, मस्तगी, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, छोटी हरड़, दालचीनी, सोंठ प्रत्येक ३-३ तोले, अगर, केशर प्रत्येक १॥-१॥ तोले खूब खरल करके मिला देवे। मात्रा ६ माशे से २ तोले तक नित्य सेवन करे तो मृगी रोग शीघ्र नष्ट होता है।

मृगी रोग में यदि कफ को शान्त करने वाले उपाय किये जायँ तो जल्द लाभ होता है। परन्तु ध्यान रहे कि रुधिर में गर्मी और वायु का ज़ोर न बढ़ने पावे। नहीं तो रोग अच्छा होने की सम्भावना नहीं होती। कफजनित पदार्थ अधिक खाने से यह रोग अधिकता से होता है। जितना शरीर में कफ का भाग अधिक होता है उतना ही इस रोग का दौरा जल्द होता है। और कफ के उत्पन्न न होने से दौरा कभी नहीं होता।

१३—महुआ, केशर और मिश्री सबको समान भाग लेकर और पानी में पीसकर मृगी आने के समय इसका नस्य देने से मृगी का दौरा रुक जाता है।

१४—जंगली प्याज़ को लकड़ी के चाकू से छीलकर उसको एक कपड़े की थैली में भरकर ४० दिन तक छाया में लटका देवे। फिर १५ छटाँक प्याज़ में साढ़े सात सेर सिरका डालकर उसको सूर्य की धूप में एक सप्ताह तक रक्खा रहने देवे। फिर छानकर काममें लावे इसके सेवन करने से मृगी रोग नष्ट होता है। इसको नस्य लेने, कुल्ला करने, शरीर पर लगाने और खाने आदि में व्यवहार करना चाहिये। इस प्याज़ के साथ जो सिरका मिलाया जाता है, वह इस प्रकार तैयार करना चाहिये।

सवा नौ सेर पानी में ३० छटाँक अंगूरी सिरका मिलाकर सूरज के प्रकाशमें रक्खे। तैयार होने पर इसमें प्याज़को मिलाना चाहिये।

१५—कुन्दरु, एलुआ, जेन्दबेदस्तर, प्रत्येक १—१ माशे लेकर और खूब खरल करके सरसों प्रमाण गोली बनावे। इन गोलियोंका सेवन करने से मृगी रोग नष्ट होता है।

१६—शंख की भस्म नित्य पीपल के चूर्ण के साथ खाने से मृगी रोग दूर होता है।

१७—टिंचर हाई ओसायमस एक बूंद पानी में मिलाकर दोनों वक्त सेवन करने से मृगी रोग आराम होता है ।

१८—कंदूरी के फलों का नस्य लेने तथा उसकी जड़ का क्वाथ पीने से मृगी रोग दूर होता है ।

१९—शुद्ध संखिया १ छटांक, शुद्ध हरताल १ छटांक दोनों को आक के पत्तोंके रसमें ५ दिन तक खरल करके उसका सत्व निकाले फिर उस सत्व को लेकर उसमें सत्व से चौगुनी लोहभस्म मिला कर खरल करे फिर उसे घीकुआर के रसमें ३ दिन तक खरल करे । पश्चात् उसकी टिकिया बनाकर और अच्छे प्रकार सुखाकर शराब सम्पुट में रख १० सेर आरने उपलों की आँच देवे । इसके बाद स्वांग शीतल होने पर उसको निकाल ¼ रत्ती से ½ रत्ती तक नित्य पान के साथ खाने से मृगी रोग दूर होता है ।

२०—पिप्पली के २० अंश क्वाथको बना कर और उसे फिल्टर करके उसमें थोड़ा शुद्ध मद्य मिलाकर हाइपोडरमिक सिरिंज द्वारा बाहु की नस में इंजक्शन करने तथा पीपल का चूर्ण सेवन करने से भी मृगी रोग दूर होता है । इसका प्रयोग करने पर १५ दिन के बाद विरेचन देकर कोठा साफ कर लेना चाहिये ।

२१—मृगी रोगी को घृणा कारक तथा ग्लानि उत्पन्न करने वाले पदार्थों से अधिक लाभ होता है । यदि दौरा होने वाला हो, तो रोगी को किसी प्रकार ग्लानि उत्पन्न करादो जाय तो तुरंत वेग रुक जाता है ।

२२—फाँसी पाये हुए मुर्दे के गले की रस्सी लेकर उसका अच्छे प्रकार ग्लानिकारक शब्दों में रोगी के सामने वर्णन करे और फिर उसी रस्सी को रोगी के सामने जलाकर खिलाना आरम्भ करे तो उसी दिन से दौरा रुक जायगा । परन्तु इस प्रयोग को कुछ समय पर्यन्त करते रहना चाहिये ।

२३—जब मृगी का दौरा होने वाला हो तो तूतिया द्वारा कुल्ले कराने से दौरा बंद होजाता है । तूतियाकी भस्म अत्यल्प मात्रा में नित्यप्रति खाने से मृगी का वेग नष्ट होजाता है ।

२४—भोजन त्याग कर केवल शंखपुष्पी का शाक जितना खाया जाय, खावे और जल पीवे किन्तु आहार बिल्कुल न करे और यथेच्छ रूप से जंगल में भ्रमण करे तो मृगी रोग दूर होता है ।

निखिल भारतवर्षीय २० वें वैद्यसम्मेलन करांची के स्वीकृत प्रस्ताव।

१—प्रस्ताव।

यह सम्मेलन गतवर्ष में परलोक वासी निम्नलिखित आयुर्वेदज्ञ एवं आयुर्वेद-प्रेमियों की असामयिक मृत्यु पर शोक प्रदर्शित करता है और उनके कुटुम्बजनों के प्रति समवेदना प्रकट करता है।

१—स्व० आनरेबिल जस्टिस श्रीयुत प० गोकर्णनाथजी मिश्र चेयरमैन इण्डियन मेडिसन बोर्ड लखनऊ।
२—,, श्रीयुत प० रमापतिजी वाजपेयी आयुर्वेद भूषण लखनऊ।
३—,, वैद्य प० परशुरामजी शास्त्री विद्यासागर बलियाला। (अम्बाला।)
४—,, केप्टन श्री विनालाचार्य मद्रास।
५—,, वैद्य प० जयकृष्णइन्द्रजी कच्छभुज।
६—,, वैद्य प० विश्वभानु शास्त्री B. A. लाहौर।
७—,, वैद्य प० जयनारायणजी देहली।
८—,, वैद्य प० मयाराम सुंदरजी जेतपुर।
९—,, वैद्य प० रामदत्त जी आगरा।
१०—,, वैद्य प० सत्येन्द्रदत्त (पुत्र ठाकुरदत्त मुलतानी) लाहौर।

प्रस्ताव-समापति।

२—प्रस्ताव।

यह सम्मेलन विद्यापीठको निर्देश करता है कि निम्न लिखित विषयों की अलग २ योजना करके आगामी वैद्य सम्मेलन में उन्हें उपस्थित करे।

वैद्यराज, वैद्यरत्न, आयुर्वेदभूषण
कन्हैयालाल जैन, कानपुर ।

१—आयुर्वेद विद्यापीठ के पाठ्यक्रम का पुनरावलोकन कर उस में उचित संशोधन करना ।
२—उपवैद्य (कम्पाउंडर) परीक्षा की संयोजना और उनका पाठ्यक्रम तैयार करना ।
३—धात्री शिक्षा और परीक्षा की संयोजना और पाठ्यक्रम निर्मित करना ।
४—प्रचारक वैद्य श्रेणी के निर्माण पर विचार तथा उसके लिये पाठ्यक्रम और परीक्षा की संयोजना करना ।

३—प्रस्ताव ।

यह सम्मेलन म्युनिसिपल और लोकलबोर्ड के अधिकारियों से अनुरोध करता है कि वे अपने नियमानुसार (By laus) स्थानीय वैद्यों की एक समिति बनाकर अधिकार दें कि वह औषधियों के उपयोगी द्रव्यों की जाँच करे। एवं उसकी सम्मति के अनुसार मिश्रित तथा मिथ्या द्रव्यों के बिकने में रुकावट डाले ।

४—प्रस्ताव ।

यह सम्मेलन स्थायी समिति को आदेश करता है कि वह भारतवर्ष की उन आयुर्वेदीय शिक्षा संस्थाओं की सूची तय्यार करे, जिनका अध्ययनाध्यापन शास्त्रीय नियमानुकूल चलता हो । तथा निम्न लिखित संस्थाओं के विषय में प्रान्तीय मंत्रियों तथा शिक्षा-संस्थाओं की मैनेजिंग कमेटी से पत्र द्वारा जांच करावे ।

१ जयपुर राजकीय आयुर्वेदीय विद्यालय-जयपुर ।
२ डी० ए० वी० कालेज आयुर्वेदीय पाठशाला—लाहौर ।
३ आयुर्वेदीय एण्ड यूनानी तिब्बी कालेज—देहली ।
४ आयुर्वेदीय विद्यालय गुरुकुल—कांगड़ी ।
५ बाबा काली कमली वाले का आयुर्वेदीय विद्यालय-हृषिकेश।
६ आयुर्वेद विद्यालय ऋषिकुल—हरिद्वार ।
७ ललित हरि आयुर्वेदीय कौलेज—पीलीभीत ।
८ अष्टांगायुर्वेदीय विद्यालय—कलकत्ता ।
९ ग्वालियर राजकीयायुर्वेदीय विद्यालय—ग्वालियर ।
१० गवर्नमेंट आयुर्वेदीय कौलेज—मैसूर ।
११ त्रिवेन्द्रम आयुर्वेदीय कौलेज—त्रिवेन्द्रम् ।

१२ पटियाला आयुर्वेद विभाग—पटियाला।
१३ हिन्दू विश्वविद्यालय-आयुर्वेद विद्यालय—बनारस।
१४ विहार उत्कल संस्कृत समिति—पटना।
१५ बड़ोदा संस्कृत पाठशाला आयुर्वेदीय विभाग—बड़ोदा।
१६ प्रभुराम आयुर्वेदीय कालेज—बम्बई।
१७ आयुर्वेद विद्याप्रबोधिनी पाठशाला—काशी।
१८ बनवारीलाल आयुर्वेदीय विद्यालय—देहली।
१९ वेदशास्त्रोत्तेजक सभा—पूना।
२० वैद्यशास्त्र पीठ—कलकत्ता।
२१ उजमसी पीताम्बर आयुर्वेदीय विद्यालय पाटण (गुजरात)
२२ बड़ोदाराज्य श्रावण मास दक्षिणा परीक्षा आयुर्वेद विभाग—बड़ोदा।
२३ तिलक महाविद्यालय—पूना।
२४ आर्यांग्ल वैद्यक विद्यालय—सतारा।
२५ आयुर्वेद विद्यालय—अहमदनगर।
२६ गवर्नमेंट स्कूल आफ़ इंडियन मेडिसिन—मद्रास।
२७ गवर्नमेंट आयुर्वेद स्कूल—पटना।
२८ गोविंदसुंदरी आयुर्वेद विद्यालय—कलकत्ता।
२९ आयुर्वेद विद्यालय—कानपुर।
३० मुम्बई आयुर्वेदीय पाठशाला—मुम्बई।

५—प्रस्ताव।

इस सम्मेलन की अनुमति में आयुर्वेद की उन्नति केलिये रिसर्च (अन्वेषण) की आवश्यकता है। इसलिये यह सम्मेलन विशेष माननीय आयुर्वेदीय संस्थाओं के संचालकों से अनुरोध करता है कि वे अपनी संस्थाओं में किसी भी आयुर्वेदीय विषय पर एक रिसर्च चेयर स्थापित करें और प्रत्येक वर्ष के अनुसंधान की रिपोर्ट सम्मेलन के अवसर पर भेजा करें।

६—प्रस्ताव।

इस सम्मेलन को बड़े दुःख के साथ विदित हुआ है कि कोई कोई व्यक्ति और संस्थायें केवल द्रव्य लेकर आयुर्वेदीय पदवियाँ बेचती हैं और आयुर्वेद को बदनाम करती हैं। ऐसे मनुष्यों

तथा ऐसी संस्थाओं को यह सम्मेलन घृणा की दृष्टि से देखता है और पदवी लेने वालों को सूचित करता है कि इन उपाधियों से वास्तव में मान के स्थान पर अपमान होता है। इसलिये इस प्रकार के उपाधि प्रदान करने की उपेक्षा कर उन्हें बन्द करें।

७-प्रस्ताव।

यह सम्मेलन भारतीय सरकार से प्रार्थना करता है कि वह निकट भविष्य में स्थापित होने वाली केन्द्रीय चिकित्सान्वेषणसंस्था में आयुर्वेद सम्बन्धी अन्वेषण को स्थान दे तथा इस कार्य को सुवैद्यों के तत्वावधान में प्राच्य एवं प्रतीच्य वैज्ञानिक सरणिका अनुसरण करते हुए संचालित करे।

८-प्रस्ताव।

यह सम्मेलन देश के लोकलबोर्ड और म्युनिसिपैलिटियों को अनुरोध करता है कि वे अपने अधिकार में सुयोग्य वैद्यों के तत्वावधान में आयुर्वेदीय औषधालयों की स्थापना करे, जिससे प्रजा का अधिकाधिक सुख साधन होवे। और आज तक जिन लोकलबोर्ड और म्युनिसिपैलिटियों ने आयुर्वेदीय औषधालय स्थापन किये हैं, उनका और सहायता देने वाले मेम्बरों का अभिनन्दन करता है और अधिक संख्या में इस कार्य के विस्तृत होने की आशा करता है।

९-प्रस्ताव।

यह सम्मेलन कालेजों और स्कूलों के सञ्चालकों से प्रार्थना करता है कि वे अपने २ स्कूलों और कालेजों में सुयोग्य वैद्यों द्वारा स्वास्थ्य-रक्षा पर भाषण का प्रबन्ध करें।

१०-प्रस्ताव।

यह सम्मेलन रेलवे बोर्ड का ध्यान आकर्षित करता है कि स्टेशनों पर पानी पिलाने के प्रबन्ध में ऐसा सुधार करें कि जिस से पानी पिलाने वाले का हस्तस्पर्श जल को न होने पावे, क्योंकि उससे अनेक बीमारियों के उत्पन्न होने का भय होता है। ऐसे ही स्टेशनों पर मिठाई बेचने वाले छपे या लिखे कागज़ का व्यवहार न करें।

११—प्रस्ताव।

यह सम्मेलन वैद्य समाज से अनुरोध करता है कि वह कौन्सिल बोर्ड और म्युनिसिपल चुनावों में ऐसे उम्मेदवारों का ही निर्वाचन किया करें, जो वहां जाकर आयुर्वेदोन्नति में सहायक होसकें।

१२—प्रस्ताव।

यह सम्मेलन राष्ट्रीय महासभा से अनुरोध करता है कि वह स्वदेशी औषधियों को उत्तेजना देवे तथा विदेशी औषधियों के कारण जो करोड़ों रुपये विदेशों में जारहे हैं, उनमें रुकावट डालने के लिए कोई ऐसी योजना करे और महामण्डल की सहायता दे जिससे देश में स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार बढ़े और विदेशी औषधियों की आमदनी में रुकावट डाली जासके।

१३—प्रस्ताव।

इस सम्मेलन को यह जानकर दुःख हुआ है कि पंजाब कौंसिल में राय बहादुर लाला मोहनलाल जी ने जो प्रस्ताव आयुर्वेद के सहायतार्थ ६०००) रु० से २००००) करने का पेश किया था, उसको पंजाब गवर्नमेंट ने अस्वीकार कर दिया। यह सम्मेलन पंजाब गवर्नमेंट के इस कार्य पर असन्तोष प्रकट करता है और आशा करता है कि शीघ्र ही पंजाब गवर्नमेंट दूसरे प्रांतों की भांति आयुर्वेद संस्थाओं को पर्याप्त सहायता देगी।

१४—प्रस्ताव।

यह सम्मेलन देश के वैद्यों से अनुरोध करता है कि वे समय समय पर स्वास्थ्यरक्षा पर छोटे छोटे ट्रैक्ट और हैन्डबिल वितरण कियाकरें; और स्वास्थ्यरक्षा पर व्याख्यानों का प्रबन्ध करें।

१५—प्रस्ताव।

सर्वेषां विषद्रव्याणां मदोत्पादकद्रव्याणां च वैद्येभ्यः आयुर्वेदीयौषधि निर्माणे अप्रतिबन्धेन प्राप्तिविषये तदुक्तौषधिनिर्माणविषये च व्यापिसमित्या तत्तत्प्रान्तीयसमितिद्वारा यत्नो विधेय इति।

१६—प्रस्ताव।

यह सम्मेलन प्रांतीय सरकारी और तत्तत्प्रान्तीयधारा संस्थाओं के सदस्यों से अनुरोध करता है कि मुल्कप्रान्त की तरह अपने २ प्रान्त में "बोर्ड आफ़ इन्डियन मेडिसन" की स्थापना करें।

१७—प्रस्ताव ।

यह सम्मेलन बम्बई गवर्नमेंट तथा कौंन्सिल के मेम्बरों से प्रार्थना करता है कि सिन्धु प्रान्त में तथा गुजरात प्रान्त में एक एक बृहदायुर्वेदीय विद्यालय स्थापन की आयोजना करे, जिससे वर्तमान समयोपयोगी सुयोग्य वैद्य तैयार होसकें ।

१८—प्रस्ताव ।

गत छः वर्षों में आयुर्वेद-प्रचार और उनकी वृद्धि के लिये इम्पीरियल गवर्नमेंट और प्रोविन्शियल गवर्नमेंट देशी राज्यों तथा स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं के विषय में जो प्रस्ताव नि० भा० वैद्य सम्मेलन ने पास किये हैं, उनको संगृहीत कर उन पर तब तक लिखा पढ़ी कीजाय, जब तक अपनी यथेष्ट सिद्धि न होजाय, एवं तब तक इस विषय में की गई प्रवृत्ति का समाचार समय समय पर बारम्बार सदस्यों को सम्मेलन पत्रिका द्वारा एवं अधिवेशन कमेटी प्रति वर्ष रिपोर्ट द्वारा सम्मेलन में समीक्षा और अवलोकनार्थ उपस्थित किया करे ।

१९—प्रस्ताव ।

यह सम्मेलन निश्चित करता है कि आयुर्वेद विद्यापीठ की परीक्षा के उत्तर पुस्तकों का पुनः संशोधन शुल्क प्रति विषय ४) रु० के बदले २) कर दिया जाय ।

२०—प्रस्ताव ।

१—यह सम्मेलन निश्चित करता है कि आयुर्वेद विद्यापीठ को परीक्षा में अनुत्तीर्ण छात्रों को आठ आना फ़ीस देने से कार्यालय से गुणाङ्क भेजदिये जाया करें ।

२—आयुर्वेद विशारद परीक्षा में सांख्यकारिका का जो विषय निश्चित हुआ है, वह १९३१ में परीक्षा में बैठने वाले विद्यार्थियों के लिए लागू हो ।

२१—प्रस्ताव ।

यह सम्मेलन देशी इन्श्योरेन्स (बीमा) कम्पनियों से अनुरोध करता है कि वे अपने सदस्यों की शारीरिक परीक्षा देशी वैद्यों से कराया करें ।

२२—प्रस्ताव ।

इदं सम्मेलनं हिन्दूविश्वविद्यालयस्याधिकारिणो निवेदयति यत्ते स्वीयायुर्वेदविद्यालये एकस्या एतादृशायाः कक्षायाः निर्माणङ्कुर्वन्तु यस्यां स्वल्पेनैव कालेनायुर्वेदविद्यापीठोपाधिधारिणश्छात्राः पाश्चात्य-विज्ञानशिक्षास्वप्यनुप्रभवेयुः ।

२३—प्रस्ताव ।

गवर्नमेंट से सम्बन्ध रखने वाले जिन २ प्रस्तावों में वैद्य या आयुर्वेद का नाम आया है, वहां देशी चिकित्सक या देशी चिकित्सा शब्द कर दिया जाय ।

२४—प्रस्ताव ।

महामंडल के पदाधिकारियों में जो कोषाध्यक्ष का पद है, उसे हटा कर उसके स्थान में अर्थमंत्री का पद नियत किया जाय ।

२५—प्रस्ताव ।

महामंडलान्तर्गत जो उपसमितियाँ स्थापित की गई हैं, उनको अपने कार्य को सुचारुरूपेण चलाने के लिये यह अधिकार दिया जाता है कि आवश्यकता पड़ने पर वे वर्तमान सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सदस्यों को भी प्रविष्ट कर सकती हैं।

२६—प्रस्ताव ।

तद्विद्य सम्भाषा परिषद् के नियम जो वै० सं० पत्रिका के नौवम्बर सन् २६ के अङ्क में प्रकाशित हो चुके हैं, पढ़े गये और स्वीकृत हुए ।

२७—प्रस्ताव ।

इस सम्मेलन के सामने आगामी वर्ष के लिये दो निमंत्रण आये हुए हैं। एक ग्वालियर राज्य की ओर से दूसरा कर्नाटक प्रान्त की ओर से। सम्मेलन की राय में वार्षिक सम्मेलन की प्रतिज्ञानुसार मैसोर का निमंत्रण स्वीकृत किया जाता है। सम्मेलन का विश्वास है कि मैसोर के पश्चात् ग्वालियर में सम्मेलन सफलता पूर्वक होगा।

२८-प्रस्ताव ।

महामण्डल के पदाधिकारियों का निर्वाचन ।

सभापति—वैद्यरत्न प० रामप्रसादजी राजवैद्य पटियाला ।
उपसभापति—श्री प० यादवजी त्रिविक्रमजी आचार्य मुम्बई ।
,, श्री डा० प्रसादीलाल झा एल० एम० एस० सि० कानपुर ।
प्रधान मंत्री—श्री प० शिवनारायणजी मिश्र भिषग्रत्न कानपुर ।
संयुक्तमंत्री—श्री प० युगलकिशोरजी शास्त्री कानपुर ।
,, ,, ,, शिवकण्ठ मिश्र आयुर्वेदाचार्य कानपुर ।
उपमंत्री—श्री प० रामप्रिय त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य कानपुर ।
अर्थमंत्री—श्री प० किशोरीदत्त जी शास्त्री राजवैद्य कानपुर ।

पत्रिका सम्पादक ।

(१) श्री प० शिवशर्मा जी आयुर्वेदाचार्य लाहौर (२) प० जगन्नाथ प्रसाद वाजपेयी बनारस (३) श्री कविराज प० नारायणप्रसाद द्विवेदी कानपुर (४) वैद्य भूषण वामन शास्त्री दातार नासिक (५) श्री कविराज प्रतापसिंह जी बनारस ।

आयव्यय निरीक्षक—डा० रामनारायण वर्मा आयुर्वेद विशारद कानपुर ।

खर्पर और उसका उपयोग ।

(लेखक—प० श्रीनिवास रामरत्न, वैद्यशास्त्री, आ० आ० बेथर ज़िला उन्नाव)

खर्पर (खपरिया) के विषय में अनेक बार विद्वानों के वाद-विवादात्मक लेख तथा निबन्ध निकल चुके हैं । किन्तु अभी तक इस विषय में कोई निश्चित या निर्भ्रान्त निर्णय नहीं हो सका है कि वास्तव में खर्पर क्या वस्तु है; और खर्पर से किस वस्तु का ग्रहण होना चाहिए ?

इधर कई वर्षों से निखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन द्वारा निर्मित "सन्दिग्धनिर्णय समिति" भी इस पर विचार कर रही है।

हर्ष का विषय है कि इस वर्ष भी "नि० भा० आ० वैद्यसम्मेलन करांची में "रसायन सम्भाषापरिषद्" द्वारा खर्पर के विषय में विचार होना निश्चित हुआ है, आशा है कि अब की बार इसका अवश्य निर्णय होजायगा।

हम अपने विचार खर्पर के विषय में सद्वैद्यों के सम्मुख उपस्थित करते हैं।

खर्पर का उपयोग ।

सब से पहिले यहाँ यह विचार करना आवश्यक है कि खर्पर का उपयोग किस समय से आरम्भ हुआ; और खर्पर का नाम कौन २ प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में है और पहिले इसका किस नाम से उपयोग होता था। इत्यादि।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि संहिताग्रन्थों में "अमृतासंग" नाम से इसका व्यवहार देखा जाता है। कहीं २ तुत्थ (कर्परिका तुत्थ) आदि नाम से भी इसका वर्णन मिलता है। यथा—

१—कुष्ठामृतासंगकटंकटेरीकासीसकम्पिल्लकमुस्तलोध्राः ।

चरकसूत्र अ० ४ । २६ ।

उपर्युक्त श्लोक की टीका में श्री चक्रदत्त जी लिखते हैं, "अमृतासंगः तुत्थकम्" देखो श्लोक ८।

२—मुस्तामृतासंगकटंकटेरीकासीसकम्पिल्लककुष्ठरोध्राः ।

वाग्भट चि० अ० १६ । ६०५

वाग्भट ने भी चरकोक्त पद्य को उलट फेर करके उद्धृत किया है। "अमृतासंग" शब्द का उपयोग वाग्भट और चरक संहिता में ज्यों का त्यों है।

३—श्यामकाश्वत्थनिचुलमूलं लाक्षामगैरिकम् ।
सहेमक्षामृतासंग कासीसं चेति वर्णकृत् ।

चरक चि० अ० २५ । ५७२ ।

इस पद्य में भी "अमृतासंग,, शब्द का महर्षि चरक ने उपयोग किया है।

४—तिक्तेक्ष्वाकुबीजं "द्वे तुत्थे" रोचनाहरिद्रे द्वे ।

चरक चिकित्सा अ० ७ । ४३६ ।

ॐ

धन्वन्तरयेनमः

॥ रागादिरोगान्सततानुषक्तानशेषकायप्रसृतान शेषान् ।
॥ औत्सुक्य मोहारतिदाञ्जघान योऽपूर्व वैद्याय नमोऽस्तुतस्मै ॥

वैद्यराज हिरामणिजी जंगले–वनस्पति संशोधक
वाघळी. पूर्व खानदेश.

श्रीकृष्ण प्रेस अळगांव.

उपर्युक्त पद्य में "द्वे तुत्थे" दो प्रकार के तूतिये का वर्णन है । इनकी टीका में श्री चक्रदत्तजी लिखते हैं । तुत्थेति कर्परिका तुत्थम् इति ।

५—ऊषकस्तुत्थकं हिंगुकासीसद्वयसैन्धवम् ।
स शिलाजतुकृच्छ्राश्मगुल्ममेदः कफापहम् ॥
वाग्भट सूत्र अ० १५ । २२६

अरुणदत्त जी ने इस पद्य की टीका में "तुत्थ शब्द" का अर्थ तुत्थकं कार्परं किट्टिहापरसंज्ञम् किया है ।

अब विचार करना है कि "अमृतासंग" और कर्परिकातुत्थ या कार्पर के पर्य्याय क्या क्या हैं । निघण्टु में "अमृतासंग" शब्द से किस वस्तु का ग्रहण होता है ?

६—ऊषकस्तं अश्शिलाजतुकासीसद्वयहिंगूनितुत्थकश्चेति ।
सुश्रुत सूत्र अ० ३८ । १२६

इनकी टीका में श्री डल्हणाचार्य जी लिखते हैं—

"तुत्थं कर्परिका तुत्थं (खपरिया इति लोके) अन्ये मयूरग्रीव-माहुः । देखो श्लोक ३८ ।

यहां श्री डल्हणाचार्य जी की स्पष्ट सम्मति है कि मैं ऊषकादि-गण में तुत्थ शब्द से खपरिया लेना मानता हूँ, किन्तु कोई नीला-थोथा (मयूरग्रीव) का ग्रहण करते हैं । यह किसी का मत है, मेरा नहीं ।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि ' तुत्थकं द्विविधं प्रोक्तं मायूरं खार्परं तथा ।' दो प्रकार के तूतिया में यहां खर्परीतुत्थ का ग्रहण करना चाहिये ।

७—तुत्थं खर्परिकातुत्थममृतासंगमेव च ।
धन्वन्तरि २७ । ५ मदनपाल नि० ६६ ।

तुत्थ खर्परिकातुत्थ और अमृतासंग यह खर्पर (खपरिया या थोथा) के पर्य्याय हैं ।

इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि आज से लगभग २००० दो हज़ार वर्ष पूर्व खर्पर का अमृतासंग और तुत्थकार्पर (कर्परि-का तुत्थ) आदि नामों से उपयोग होता रहा है । उस समय खर्पर को तुत्थ भेद मानते थे ।

यह तो हुई तुत्थखर्पर के विषय की बात । अब रस ग्रन्थों के (नागार्जुन) निर्माण काल से इधर की ओर खर्पर के विषय में विचार किया जाता है ।

खर्पर दो प्रकार का होता है, १ यशद खर्पर २ तुत्थ खर्पर। इसी से वैद्यक संसार में इतना अंधकार होगया है। अच्छा अब रसरत्न-समुच्चय और धातुरत्नमाला आदि रस शास्त्र के ग्रन्थों के प्रमाणों के युक्ति संगत अर्थों का विचार कर देखिये।

८—खर्परं द्विविधं प्रोक्तं यशदं सस्यकं तथा।

६--रसको द्विविधः प्रोक्तो दर्दुरः कारवेल्लकः।

धातुरत्नमाला रसरत्न १३।

अर्थात्—खर्पर दो प्रकार का होता है, १-यशदखर्पर, २-तुत्थ-खर्पर (खपरिया थोथा)।

प्रकारान्तर से = उसी को दर्दुर और कारवेल्लक नाम से उल्लिखित किया गया है।

इन सब प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि खर्पर दो प्रकार का होता है। १-यशद खर्पर (दर्दुर) २-तुत्थखर्पर (कारवेल्लक)

दर्दुर कारवेल्लक शब्द पर विचार।

दर्दुर=मण्डूक (मेंढक) के समान पीत वर्ण होने से इसका दर्दुर नाम है।

कारवेल्लक=करेला जैसा हरित और, किञ्चित् पीतवर्ण होने से इसके कारवेल्लक नाम है।

प्रकारान्तर से=पीतवर्ण होने से यशद खर्पर का (दर्दुर) और तुत्थ विशिष्ट होने से हरित पीतवर्ण युक्त "तुत्थखर्पर" का कारवेल्लक नाम है।

उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध होगया कि दो प्रकार का खर्पर होता है। बसन्तमालती आदि में किस खर्पर का उपयोग करना चाहिये?

शास्त्र में खर्पर का व्यवहार।

१०—रसको द्विविधः प्रोक्तो दर्दुरः कारवेल्लकः। सदलोदर्दुरः प्रोक्तो निर्दलः कारवेल्लकः।

सत्वपाते शुभः पूर्वो द्वितीयश्चौषधादिषु॥

नं०१ नोट—सस्यकं के स्थान में शुल्वकं और शवकं भी पाठ है। शुल्वक से ताम्र का ग्रहण होता है। कैवीय

(रसरत्न समुच्चय २३ रसकामधेनु रसार्णवः)

अर्थात् दो प्रकार के खर्पर में ददुर (यशद खर्पर) परतदार होता है और कारवेल्लक (तुत्थ खर्पर) बिना परत (दल) का होता है, और सत्व पातन (रसशास्त्र) में यशद खर्पर को तथा औषध प्रयोग (औषधवाद) में कारवेल्लक (तुत्थ खर्पर) का उपयोग करना चाहिए।

चरक आदि संहिताओं में इसीलिए तुत्थ खर्पर का वर्णन किया गया है। रसशास्त्र (रसवाद) में सत्वपातन के लिए और वसन्तमालती आदि में उपयोग करने के लिए यशद खर्पर का वर्णन आया है।

जैसा कि रस वाग्भट में भी लिखा है" सत्वपाते शुभः पूर्वो द्वितीयश्चौषधादिषु । इति ।

अब यह सिद्ध होगया कि यशद खर्पर का ही रसादिकों में व्यवहार करना चाहिए, तब यह प्रश्न उठता है कि यशद खर्पर क्या चीज़ है, और इसके अभाव में किस वस्तु का ग्रहण करना शास्त्र संगत है!

यशद खर्पर के पर्याय।

११—रसकं यशदं चौरं क्षोलकाकारसस्यकम्।

(रस कामधेनुः)

खर्परोनेत्ररोगारिः रीतिकृत्ताम्ररंजकः॥

(रसार्णव ५६)

रसको रसकं चैव मतं यशदकारणम्।

रसतरंगिणी।

यशद, चौर, क्षोलकाकार, सस्यक, खर्पर, नेत्ररोगारि, रीतिकृत, ताम्ररंजक, रंजक, यशदकारण इत्यादि खर्पर के पर्याय हैं।

यहाँ यशद को खर्पर का पर्याय माना है और रीतिकृत् (पीतल बनाने वाला) तथा यशद कारण (यशद उत्पादक) और ताम्ररंजक आदि पर्यायों से वर्णन किया है।

इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि खर्पर यशद या यशदोप-धातु या यशद जिस से बना है, उस वस्तु को कहते हैं । शास्त्र में कहीं २ यशद जिससे निकलता है, उस मिट्टी को खर्पर कहा गया है । यथा—

मृदाखर्परसंभवा (रसरत्न २१८) ।
मृत्तिकामिश्र पीताभः (रसतरंगिणी) ।
मृत्तिकारसकोवरः (रसार्णव)
किनिकिट्टो रसोद्भवम् (रसार्णव)

अब खर्पर के गुण धर्म और स्वरूप का विचार किया जाता है । रसशास्त्र के अनेक ग्रन्थों में खर्पर को पीत वर्ण (दर्दुर) लिखा है । कई आचार्य संशोधन के पश्चात् उसका पीत वर्ण मानते हैं । यथा—

१३—पारदद्रुक एकः श्यामपिलं पीतखर्परम् ।
(आयुर्वेद प्रकाश)
शुद्धो दोष विनिर्मुक्तः पीतवर्णस्तु जायते ॥
(रसरत्न समुच्चय २३ रसार्णव)
मृत्तिकामिश्र पीताभः (रस तरंगिणी)
पीतस्तु मृत्तिकाकारः (रसदर्पण)
पीतस्तु मृत्तिकाकारो मृत्तिकारसकोवरः । (रसार्णव)

यह पीत वर्ण खर्पर का स्वरूप लिखा गया है । यह ताम्र पारद आदि को पीतवर्ण बना देता है । इसी से खर्पर का ताम्र नाम भी है ।

क्या खर्पर का सत्व यश है ?

रसशास्त्र के मत से खर्पर का सत्व वंग के समान होता है । यथा—

१४—वंगाभंरनितं सत्व समादाय नियोजयेत् ।
रसरत्न समुच्चय २३ ।
सत्वं वंगाकृति ग्राह्यं रसकस्य मनोहरम् ।
(रसरत्न स० २४ रसरत्नाकर)
तद्वासीसोपमं सत्वं पतत्येव न संशयः ।
(रसप्रकाश सुधाकर)

इन प्रमाणों से खर्पर का सत्व वङ्ग सदृश (यशद) सिद्ध होता है । शास्त्र में यशद शब्द के पर्याय नीचे लिखे आते हैं ।

१५—यशदं वंगसदृशं रीतिहेतुश्च तं मतम् ।
(भावप्रकाश रसराज सुन्दर)

'वंग सदृश' शब्दकोष में यशद के लिए ही आता है और वह यशद का वाचक है । देखो, वैद्य शब्दसिन्धु ८२७ ।

सीसकाकार (सीसोपम) शब्द भी खर्पर के ही पर्याय हैं ।

(अपूर्ण)

स्वास्थ्य-महिमा ।

(लेखक—श्री० प० चण्डिका प्रसाद जी मिश्र ।)

(१)

स्वास्थ्यहि स्वर्ग कपाट उघाटक, स्वास्थ्य सुकर्म को द्वार खुलैया ।
स्वास्थ्य हि वर्ग चतुष्टय मूल है, स्वास्थ्यहि दैहिक तापक छैया ॥
स्वास्थ्य सुरक्षित स्वामिसखा, सब स्वास्थ्य गये तनु चाम छुड़ैया ।
चण्डिकमिश्र प्रशासत याहि ते स्वास्थ बिना जग कौन पुछैया ॥१॥

× × (२) × ×

धाम धरा धनधान्य महान्, धनेश समा न धनाढ्य कहैया ।
हय गज द्वार मनुष्य हजार, प्रपूर्ण भँडार अपार रुपैया ॥
मातु पिता सुत स्वामी सखाजन, और कुटुम्ब सहोदर भैया ॥
जीवत हि सब व्यर्थ भये निज, स्वास्थ्य बिना जग कौन पुछैया ॥२॥

× × (३) × ×

ब्रह्मसुचर्य कि यज्ञ प्रथा, अरु योग कथा तो यथा बिसराई ।
भाँति अनेक ते रेत अपस्कृत, मानव की गणना बहु भाई ॥
शुक्र घटे बल बुद्धि हटी, झट व्याधि डटी तनु में कृषताई ॥१॥
क्षीण मनुष्य भए अति हीं, "यहि कारण रोग की है अधिकाई"

× × (४) × ×

मग्न अहर्निशि गेह के काज में, देहरु स्वास्थ्य में खेह मिलाई ।
वैद्यक शास्त्र विरुद्ध अहार, विहार करैं मति की लघुताई ॥
आतप शीत कि भीति नहीं, रुज ग्रस्तभये कृत मूर्ख उपाई ।
"चण्डिक मिश्र" अनेकन के यहि कारण रोग की है अधिकाई ॥२॥

———*———

नोट—वी० एन० मेहता संस्कृत विद्यालय प्रतापगढ़ के धन्वन्तरि उत्सव के कविसम्मेलन में पठित ।

गर्भाधान और विवाह ।

(ले०—श्री हरि)

हमारे प्राचीन महर्षियों ने गर्भाधान और विवाह की अवस्था का विस्तृत रूप से विवेचन किया है। हम यहाँ उसका कुछ संक्षेप से वर्णन करते हैं।

आजकल हमारे देश की बालिकाएँ १२-१३ वर्ष की अवस्था में ही रजस्वला होती हैं। किन्तु प्राचीन काल में इतनी अवस्था में रजस्वला नहीं होती थीं। शहरों में रहने वाली धनवान् लोगों की कन्याएँ विलासिता और उत्तेजक पदार्थों के आहार, शहर का निवास इत्यादि अनेक कारणों से और भी शीघ्र ऋतुमती होजाती हैं। यह अप्राकृतिक घटना है। अष्टाङ्ग हृदयसंहिता में लिखा है—

> "पूर्णषोडशवर्षास्त्रीपूर्णविंशतिसङ्गता।
> शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि॥
> वीर्य्यवन्तं सुतं सूते ततो न्यूनाब्दयोः पुनः।
> रोगाल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा॥"
>
> (शारीरस्थान, गर्भावक्रान्तिः)

अर्थात् गर्भाशय, मल-मूत्रादि के मार्गों का शोणित (डिम्ब) शुक्र, वायु और हृदय के शुद्ध रहने पर, पूरे सोलह वर्ष की स्त्री के पूरे बीस वर्ष के पुरुष के द्वारा ऋतुकाल के समय नियमानुसार गर्भाधान होने से वीर्य्यवान् सन्तान उत्पन्न होती है। उक्त अवस्था-क्रम के न्यून होने पर दोनों का संयोग होने से चिररोगी, अल्पायु और हीन सन्तान उत्पन्न होती है अथवा गर्भोत्पत्ति ही नहीं होती।

आर्य्य महर्षियों ने इन वैज्ञानिक तत्त्वों को उत्तम प्रकार से जान कर भी स्त्रियों के ऋतुकाल के पूर्व विवाह के लिए ऐसे कठोर नियम क्यों बनाये हैं, इसी बात की हम यहाँ आलोचना करेंगे। विशेष-कर हमारे देश के शिक्षित लोग एक श्लोक का उल्लेख करके ही स्त्रियों का अधिक अवस्था में विवाह करने का निषेध करते हैं।

इस लेखके लेखक ने आज ३० वर्ष से देश देशान्तरों की हज़ारों प्राचीन, निरोगिणी और दीर्घजीविनी स्त्रियों की अवस्था का विशेष-रूप से अनुसन्धान किया है । इस विषय में लेखक ने प्राचीन हिन्दू स्त्रियों के विचार भी संक्षेप में वर्णन किये हैं । वे कहती हैं कि:— "विवाह का और गर्भाधान का उद्देश्य एक नहीं है । लड़कियों का मासिक धर्म से पहले विवाह होना ठीक है । किन्तु १६ वर्ष से पहले जिससे गर्भाधान न होसके, इसलिए प्रत्येक माता पिता को विशेष रूप से उन पर दृष्टि रखनी चाहिये । प्राचीन आर्य्यमहिलायें इस ओर विशेष ध्यान रखती थीं । आजकल यहाँ जितनी निरोगिणी और दीर्घजीविनी वृद्धा स्त्रियाँ हैं, उन सभी का प्रायः ऋतुकाल से पूर्व विवाह हुआ है और उनमें से किसी के भी १६ वर्ष के पहले सन्तान प्रसव नहीं हुई । कारण, उनके माता-पिता और सास-ससुर उपर्युक्त अवस्था के न होने—अर्थात् १६ वर्ष के पहिले जिससे लड़-कियों या वधुओं के गर्भस्थित न होजाय, इस विषय में बड़ी तीक्ष्ण दृष्टी रखते थे । यहाँ तक कि अनेक हिन्दू घरानों में ऐसा नियम था कि उपर्युक्त अवस्था के पहले पुत्र और वधू आपस में साक्षात्कार भी नहीं कर सकते थे ।"

आजकल कहा जाता है कि—"वर्तमानकाल में स्त्रियों की थोड़ी अवस्था में (१६ से २० वर्ष के बीच में) सन्तान उत्पन्न होने से ही प्रसूतायें चिररोगिणी रहतीं और सन्तान सन्तति दुर्बल मूर्ख तथा अल्पायुषी होती है ।" यह कहना ठीक नहीं । पूर्वकाल में इस देश का कोई पुरुष प्रायः २० वर्ष से पहले विवाह नहीं करता था । किन्तु स्त्रियों का ऋतुमती होने से पहले ही विवाह होजाता था और १६ से २० वर्ष के बीच में प्रायः सभी के प्रथम सन्तान उत्पन्न होजाती थी । पूर्वकाल के सभी स्त्री-पुरुष बड़े संयमी होते थे, इसलिये वे स्वस्थ बलवान और चिरंजीवी होते थे । उनमें से कोई व्यक्ति अब भी ऐसे देखे जाते हैं । यहां तक कि उनके कोई भयंकर रोग कभी नहीं देखने में आता और उन्होंने अपने जीवन में कभी कोई औषधि नहीं खाई । ऐसी स्त्रियाँ भी प्राचीनकाल में एक, दो नहीं, बल्कि अनेक थीं । आज कल पुरुषों का थोड़ी अवस्था में विवाह होने और स्त्री-पुरुषों को संयम की शिक्षा न मिलने से ही प्रसूतायें चिररो-गिणी रहती हैं और उनकी सन्तान-सन्तति मूर्ख, रुग्ण और अल्पायु होती है ।

इसी सम्बन्ध में बँगाल केसुप्रसिद्ध प्रतिभाशाली विद्वान् श्रीयुत भूदेव मुखोपाध्याय जी ने अपनी "पारिवारिक प्रबन्ध" नामक पुस्तक में लिखा है :—

एक बार एक सुयोग्य और विद्वान् अँग्रेज़ के साथ बाल्यविवाह के सम्बन्ध में हमारी बातचीत हुई थी। कुछ देर सोचकर उन्होंने हमसे कहा था। "बाल्यविवाह से जातिगत शान्ति और व्यक्तिगत सुखकी तथा बड़ी अवस्था के विवाह से जातिगत उद्यम और व्यक्तिगत ओजस्विताकी वृद्धि होती है।" उन्हों ने यह भी कहा कि-"दोनों प्रणालियों के सामञ्जस्य का कोई मार्ग दिखाई नहीं पड़ता।" हमनें कहा कि-"हमारे प्राचीन धर्मव्यवस्थापकों से मालूम होता है इसी सामञ्जस्य के उद्देश्य से स्त्री की अवस्था कम और पुरुष की अवस्था अधिक रखकर विवाह के नियम निर्धारित किये हैं। उनके मत में २० वर्ष के पुरुष और १२ वर्ष की कन्या का विवाह होना चाहिए।" साहब बोले-"यह ठीक नहीं है; कारण, माता के अपरिपक्व शरीर से उत्पन्न हुई सन्तान स्वस्थ और बलवान नहीं होती।" हमने कहा-" अंगरेज़ीभाषा में पशुपालन सम्बन्धी जितने ग्रन्थ विद्यमान हैं, उनमें से किसी नवीन और मान्य ग्रन्थ में भी ऐसी कोई बात नहीं लिखी है। पिता का शरीर खूब हृष्टपुष्ट और परिपक्व होने से सर्वाङ्ग पूर्ण और बलिष्ठ सन्तान उत्पन्न होसकती है। पशुओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी यही माना जाता है।" साहब कुछ सोचकर बोले— "पुरुष की अपेक्षा स्त्री की बुद्धि थोड़ी अवस्थामें ही विकसित होजाती है, इसलिए पुरुष की अवस्था अधिक और स्त्री की अवस्था कम रखकर विवाह का विधान किया गया है। इससे सब ठीक होसकता है, अर्थात् प्रेम, शान्ति और सुख अधिक होगा, उद्यम और ओजस्विता के उत्पन्न होने का भी अवसर मिलजायगा और सन्तान भी निर्बल न होगी।" हमने कहा—अब भी यदि हिन्दू माता पिता कुछ विचारशीलता से काम लें और स्वयं कुछ तपश्चर्या करें तो फिर पूर्वकाल के समान शुभफल प्राप्त होसकता है।"

इसीविषय में सुप्रसिद्ध लेखक और देशहितैषी श्रीयुत सखाराम गणेश देवस्कर महोदय अपनी "हिन्दूजाति क्या नाश के लिये तत्पर है?" नामक पुस्तक में लिखते हैं:—

हिन्दू शास्त्रकारों में कन्या के विवाह की अवस्था के सम्बन्ध में कुछ मतभेद होनेपर भी वे इस विषयमें सब एक मत हैं।

वैद्यराज श्री पं० महावीरप्रसादजी मालवीय "वीर" ज्ञानपुर (बनारस) भू० पू० सं० 'मनोरमा'। आप वैद्यक और हिन्दीभाषाके अच्छे लेखक और कवि हैं।

श्री पं० नरोत्तमजी व्यास, सं० 'नारायण' कलकत्ता। आप अनेक ग्रन्थोंके रचयिता और हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक तथा "वैद्य" के परम हितैषी हैं।

अर्थात् सभी का यह सिद्धान्त है कि ऋतुमती होने से पहले कन्या-दान करना चाहिये। इस सिद्धान्त के विपरीत कोई भी हिन्दू अपनी कन्या का विवाह नहीं कर सकता और करना भी नहीं चाहिये। कारण, युवावस्था होने के बाद विवाह होनेसे उसका कितना भयंकर परिणाम होता है, यह बात पाश्चात्य देशवासियों की ओर दृष्टिपात करने से भली भाँति जानी जासकती है। पाश्चात्य देशों में थोड़ी अवस्था में स्त्रियों का विवाह होने की व्यवस्था न होने से विवाह विच्छेद (Divorce) और व्यभिचार की मात्रा दिन दिन बढ़ती जाती है। इस बात को अब पाश्चात्य विद्वान् भी समझने लगे हैं। सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक लेकिने अपनी पुस्तक (History of European Morals) के पहले खण्ड में लिखा है कि—आयर्लैंण्ड की स्त्रियों का थोड़ी अवस्था में विवाह होता है, इसलिये यूरप के अन्यान्य देशों की अपेक्षा उस देश की स्त्रियों में सतीत्व का महत्व अधिक और व्यभिचार की मात्रा बहुत कम देखी जाती है। अभी थोड़े दिन हुए खेरेण्ड चालीस वायली नामके सुप्रसिद्ध धर्मोपदेशक पाश्चात्य देशों से व्यभिचार का मूलोच्छेद करने के लिए स्वदेश-वासियों को थोड़ी अवस्था में स्त्रियों का विवाह करने का उपदेश देगये हैं।"

प्रसिद्ध समालोचक और सूक्ष्मतत्वदर्शी श्रीचन्द्रनाथ वसुने इस विषय में अपने "हिन्दुत्व" नामक ग्रन्थ में लिखा है—

"जिसप्रकार अवस्था की बात कही गई है (अर्थात् पुरुष का २५ वर्ष में और कन्या का ऋतुकाल से पूर्व यानी १० से १२ वर्ष के बीच में) उसी अवस्था में पुत्र और कन्या का विवाह करके माता पिता आदि गुरुजनों को चाहिए कि नवविवाहित वरवधू को कुछ दिनों तक उचित और कठिन शासनमें रखकर उपदेश, दृष्टान्त और कार्यों के द्वारा जीवन यात्रा सम्बन्धी सभी गूढ़ और गुप्त बातें सिखला देवें। आजकल हमारे देश में इस प्रकार की शिक्षा का सर्वथा अभाव है। हमारी सन्तान जिस प्रकार की शिक्षा से शिक्षित हो हमको सब प्रकार से वे ही उपाय करने चाहियें। अन्यथा हमारा कल्याण नहीं होसकता। सुशिक्षा और संयम के द्वारा वर-वधू को धर्ममार्ग पर भली भाँति आरूढ़ करके सांसारिक धर्म में प्रवृत्त करना चाहिए। संयमी होकर सांसारिक धर्म में प्रवृत्त

होने से उनको रोग, शोक और दुर्बलता आदि कुछ भी नहीं होते। आजकल रोग, शोक और दुर्बलता के होने का मुख्य कारण अनियम, दुराचार और अत्याचार हैं; न कि अल्पावस्था का विवाह। अवस्था थोड़ी होने पर भी यदि गृहस्थ धर्मका पालन करते हुए, संयम सदाचार और यथानियम काम लिया जाय तो भोगों को भोगते हुए भी रोग, शोक और शारीरिक दुर्बलता उत्पन्न नहीं होसकती।"

अतएव कन्याओं का ऋतुमती होने के पूर्व विवाह होने से जब मानवसमाज में नाना प्रकार के पाप व दुराचार होना दूर होजाँय तब भी ३-४ वर्ष के लिए प्रत्येक माता पिता का कर्तव्य है कि वे इस विषय में अधिक सावधान रहें तो फिर किसी विषय में व्यतिक्रम अथवा दुर्बल सन्तान आदि होने का कोई कारण उपस्थित न होगा। यद्यपि वैज्ञानिक विद्वान् यह कहते हैं कि पहली बार ऋतुमती होने से ही स्त्रियाँ गर्भ धारण करने योग्य होजाती हैं तथापि स्त्रियों के शरीर का और भी अच्छे प्रकार से गठन होने के लिए ३-४ वर्ष तक रुके रहने की और आवश्यकता है। आज लड़कों का थोड़ी अवस्था में विवाह होजाने से और युवक, युवतियों के ब्रह्मचर्य्य वा संयम का बिलकुल अभाव होने से दुर्बल सन्तान उत्पन्न होती है और किसी २ स्त्री के तो १६ वर्ष की अवस्था से पहले ही सन्तान उत्पन्न होजाती है। अतएव जबतक ब्रह्मचर्य्य की शिक्षा का कोई सुप्रबन्ध न होगा तब तक मनुष्य समाज का कोई उपकार नहीं होसकता। स्त्रियों का युवावस्था में विवाह होने पर भी यदि उनमें कुछ संयमशीलता न होगी तो भी उनके दुर्बल और रुग्ण सन्तान उत्पन्न होगी। बाल्यावस्था में कन्याओंका विवाह होने से समाजका कोई अपकार नहीं होता। हमारी जातीय अवनति का प्रधान कारण लड़कों का थोड़ी अवस्था में विवाह होना और युवक युवतियों को ब्रह्मचर्य्य की शिक्षा न देना ही है।

विवाह और गर्भाधान के सम्बन्ध में शिक्षित हिन्दू जनता के प्रति निवेदन—

आजकल अधिकाँश शिक्षित व्यक्ति यह कहते हैं कि प्राचीन महर्षियों ने जो २० या २४ वर्ष के पुरुष के साथ १२ या ८ वर्ष की कन्या का विवाह करना लिखा है, वह बिल्कुल नीति विरुद्ध और

अस्वाभाविक है साधारण दृष्टि से (पाश्चात्य विवाह प्रणाली को देख ने से) तो यह व्यवस्था वास्तव में असंगत मालूम होती है; किन्तु कुछ विचार करने से यह स्पष्ट प्रतीत होजायगा कि उक्त अवस्थाओं में स्त्री-पुरुषों का विवाह होना ही धर्म नीति और विज्ञान सम्मत है। ऋषियों ने जैसे ८ वर्ष के बालक को गुरुकुल में भेज कर विद्याध्ययन करने की व्यवस्था की है, उसी प्रकार ८ वर्ष की कन्या को भी पतिगृह में भेजकर गृहस्थ धर्म की शिक्षा प्राप्त करनेकी व्यवस्था की है। वास्तव में आर्यमहर्षिगण मानव समाज के कल्याण के लिए और भावी सन्तान के हित के उद्देश्य से यह सुन्दर व्यवस्था कर गये हैं।

युक्तप्रान्तीय सप्तम

वैद्य-सम्मेलन आगरा ।

युक्त प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन का सप्तम वार्षिक अधिवेशन गत २६ जनवरी सन् १९३० को कानपुर निवासी चिकित्सक चूडामणि वैद्यराज पं० रामेश्वरप्रसादजी मिश्र के सभापतित्व में आगरा नगर में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ।

२५ जनवरी को प्रातःकाल की गाड़ी से सभापति महोदय कितने ही कानपुर निवासी वैद्यों के साथ आगरा पधारे। सभापति की सवारी का जुलूस दिन के ११ बजे स्थानीय वैद्यराज क्षानसिंहजी की कोठी से चलकर आगरा नगर के मुख्य २ भागों में घूमता हुआ लगभग तीन बजे सम्मेलन के पण्डाल में पहुँचा।

सम्मेलन में भिन्न २ स्थानों से कितने ही प्रतिनिधि पधारे थे। उनमें कानपुर के वैद्यों की ही संख्या सबसे अधिक दिखाई देती थी।

प्रथम पं० ब्रह्मानन्दजी विद्यालंकार मन्त्री-स्वागत समिति तथा वैद्यराज रघुवरदयालजी भट्ट मंत्री प्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन ने स्वागत समिति, आगरे के समस्त वैद्यों तथा प्रतिनिधियों का परस्पर परिचय कराया। इसके उपरान्त स्वागत समिति के अध्यक्ष महोदय के मंगलाचरण के बाद पं० रामेश्वरप्रसादजी मिश्र को सभापति

का आसन ग्रहण करने का प्रस्ताव किया। बरेली निवासी वैद्यराज पं० बाबूराम जी मिश्र आयुर्वेदाचार्य के अनुमोदन तथा वैद्यराज पं० रघुवरदयालजी भट्ट एवं पं० अयोध्याप्रसाद जी वकील के समर्थन करने पर विशेष हर्षध्वनि के साथ मिश्रजी सभापति के आसन पर विराजे। पश्चात् स्वागताध्यक्ष महोदय का भाषण पं० ब्रह्मानन्दजी विद्यालंकार ने पढ़ा। आपने अपने ज़ोरदार भाषण में कहाकि यदि हमलोगों को आयुर्वेद की जीती जागती उपमा संसार के सम्मुख उपस्थित करनी है तो इसकेलिये शिक्षित वैद्य पैदा करने चाहिए। पश्चात्य चिकित्सा प्रणाली का वर्णन करते हुए कहाकि अभी तक पाश्चात्य विद्वानों ने कोई ऐसा आविष्कार नहीं किया जो आयुर्वेद के अन्तर्गत नहो पश्चात् सभापति महोदय ने अपना मुद्रित भाषण पढ़ा। आपने अपनेओजस्वीभाषण में युक्तप्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन के कार्यों का वर्णन, आयुर्वेदीय शिक्षा की आवश्यकता, अन्य चिकित्साओं की अपेक्षा आयुर्वेद की महत्ता, आयुर्वेद के प्रचार के लिये समस्त युक्तप्रान्त के वैद्यों का संगठन प्रत्येक जिला तथा स्थान में वैद्य सम्मेलन और वैद्य सभाओं के स्थापित करने की आवश्यकता आदि विषय बड़े उत्तम ढंगसे वर्णन किए।

इस प्रकार २५ तारीख की कार्यवाही समाप्त होकर रात्रि में श्री वैद्यराज पं० रघुवरदयाल जी भट्ट के सभापतित्व में एक कवि-सम्मेलन हुआ। जिसमें आगरा प्रान्त के तथा बाहर के आये हुए कवियों ने अपनी २ सुन्दर और भावपूर्ण कवितायें पढ़ीं। प० ब्रजेन्द्र-चन्द्रजी शास्त्रीको उनकी संस्कृत कविता और चिकित्साकुमुदनामक पुस्तक लिखने के उपलक्ष में प० रामेश्वरजीमिश्र तथा पं० बाबूराम जी मिश्र ने पृथक् पृथक् दो रजतपदक देने का वचन दिया गत वर्ष स्वागतसमिति की ओर से जो स्वर्णपदक देने की घोषणा की गई थी वह मोतीज्वर चिकित्सा नामक पुस्तक लिखने के उपलक्ष में आगरा निवासी वैद्यराज पं० जगन्नाथप्रसादजी को दिया गया।

इसके पश्चात् रात्रि को ६ बजे वैद्यराज पं० ज्ञानसिंह जी की कोठी पर विषयनिर्वाचिनी की बैठक हुई। और उसमें निम्न लिखित प्रस्ताव उपस्थित किये गये।

१—इण्डियन मेडीशन बोर्ड में जो वैद्यों के रजिष्ट्रेशन होने का वादविवाद उपस्थित है, उसके लिये बोर्ड को चाहिये कि वह वैद्यों

के रजिस्ट्रेशन होने योग्य योग्यता की सीमा निर्धारित करे और उस सीमा में जितने वैद्य आवें उन सब का रजिस्ट्रेशन होना चाहिये।

प्रस्तावक-वैद्यराज प० बाबूरामजी मिश्र आयुर्वेदाचार्य।

उक्त प्रस्ताव इस संशोधन के साथ पास हुआ कि बोर्ड ने जितनी सँख्या रजिस्ट्रेशन की निश्चित की है, उतनी सँख्या का रजिस्ट्रेशन बहुत जल्द कर दिया जाव।

२—यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि वैद्यसम्मेलन की कार्यकारिणी की बैठक ज़िला वैद्यसभाओं के द्वारा निमन्त्रित होने पर उक्त आमन्त्रित स्थान पर हुआ करें।

प्रस्तावक—वैद्यराज प० बाबूरामजी मिश्र आयुर्वेदाचार्य।

अनुमोदक—आयुर्वेद पञ्चानन पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल

अधिक वाद-विवाद के पश्चात् प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत।

३—यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि प्रान्तीय वैद्यों के सङ्गठन और सम्मेलन को शक्ति शाली बनाने के लिये युक्तप्रान्त के जिन २ जिलों में वैद्य सभाएँ स्थापित नहीं हुई हैं। वहाँ वैद्य-सभाएँ स्थापित की जाएँ और इस कार्य को पूरा करने के लिये एक उपसमिति बनाई जाय।

प्रस्तावक—वैद्यराज प० बाबूरामजी मिश्र आयुर्वेदाचार्य।

उक्त प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ और निम्न लिखित सज्जनों की एक उपसमिति बनायी गयी।

१—वैद्यराज प० बाबूरामजी मिश्र आयुर्वेदाचार्य।
२—वैद्यराज प० जगन्नाथप्रसादजी।
३—वैद्यराज प० गयाप्रसादजी शास्त्री।
४—वैद्यराज रामप्रियजी शास्त्री अध्यापक-आयुर्वेद विद्यालय आदि।

४—यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि युक्तप्रान्तीय वैद्यसम्मेलन द्वारा संशोधित और पाठ्य पुस्तकों का एक डिपो खोला जाय, और इस कार्य को संचालन करने के लिये तीन आदमियों की एक कमेटी बनायी जावे।

प्रस्तावक-आयुर्वेद पञ्चानन वैद्यराज प० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल

उक्त प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ और आयुर्वेद पञ्चा-

गण पं० जगन्नाथजी शुक्ल तथा वैद्यराज पं० शिवनारायणजी मिश्र आदि तीन सज्जनों की एक उपसमिति बनायी गयी ।

५—यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन की ओर से योग्य वैद्यों को लोकलबोर्ड के कर्मचारियों के अवकाश (छुट्टी) प्राप्त करने केलिये सार्टिफिकेट देने का अधिकार दियाजाय।

प्रस्तावक—वैद्यराज प० रामप्रियजी शास्त्री ।

उक्त प्रस्ताव बहुमत से पास हुआ।

६—यह सम्मेलन निखिलभारतवर्षीय आयुर्वेद महामण्डल विद्यापीठ से शिफारिस करता है कि वह युक्तप्रान्त में एक परीक्षाकेन्द्र और स्थापित करे। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ।

प्रस्तावक-पं० ब्रह्मानन्दजी विद्यालङ्कार मन्त्री-स्वा० स० वै०स०

७—सभापति की ओर से प्रस्ताव हुआ कि यह सम्मेलन लाहौर कांग्रेस के पूर्ण स्वतन्त्रता के प्रस्ताव पर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करता है। उक्त प्रस्ताव वन्देमारम् के जयघोष के साथ सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

पश्चात् २६ तारीख को साधारण अधिवेशन में उक्त प्रस्तावों के स्वीकृत होने पर नीचे लिखे अनुसार पदाधिकारियों का निर्वाचन हुआ।

सभापति—चिकित्सक चूडामणि प० रामेश्वरप्रसादजी मिश्र।

उपसभापति-(१) आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल (२) वैद्यराज प० ज्ञानसिंह जी, आगरा। (३) विद्यालंकार पं० ब्रह्मानन्द जी, (४) वैद्यराज प० सोहनलाल जी। (५) वैद्यराज पं० शिवनारायण जी मिश्र।

प्रधान मन्त्री—वैद्यराज प० रघुवरदयाल जी भट्ट कानपुर।

उपमन्त्री—(१) डाक्टर रामनारायणजी वर्मा, (२) वैद्यराज पं० बाबूरामजी मिश्र आयुर्वेदाचार्य, (३) वैद्यराज मोहनचन्द्र जी, (४) वैद्यराज पं० गयाप्रसादजी शास्त्री (५) वैद्यराज श्री सत्यदेवजी आयुर्वेदाचार्य (६) वैद्य युगलकिशोर जी शास्त्री।

कोषाध्यक्ष—वैद्यराज बनारसीदास जी। कार्य-कारिणी के सदस्यों के निर्वाचन के लिये ४०० वैद्यों के नाम उपस्थित किये गये किन्तु पदाधिकारियों को इनमें से १०० सदस्यों को निर्वाचित करने का अधिकार दिया गया।

अन्तमें सभापति महोदय तथा सम्मेलन को धन्यवाद देकर कार्यवाही समाप्त की गयी।

एकदर्शक

मुखशुद्धि का महत्व ।

मुखशुद्धि और दन्तधावन पर हिन्दुओं के पूर्व पुरुषों ने बहुत ज़ोर दिया है। यही कारण है कि सभी वर्णों के हिन्दुओं में इसका प्रचार है। इस विषय में जितना ध्यान हिन्दुओं में रखा जाता है उतना अन्यत्र नहीं देखा जाता। आजकल जातियों में कुछ लोग कुसंस्कार वश कहने लगे हैं कि यह एक फाल्तू और व्यर्थ की बात है। पर वास्तव में यह बात नहीं है।

अब कुछ दिनों से डाक्टरों का इस ओर ध्यान आकृष्ट हुआ है और इधर विशेषरूप से ध्यान देने लगे हैं। अब उनकी समझ में यह आने लगा है कि इस विषय में हिन्दुओं ने जो व्यवस्था की है वह वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर स्थिर है और अतिशय उपयोगी है।

दाँतों की शुद्धि केवल इसी लिये आवश्यक नहीं है कि इससे दाँतों की रक्षा होती है। वास्तव में दांतों की शुद्धि पर ही हमारा स्वास्थ्य एक बड़ी हद तक अवलम्बित है। इस विषय पर भाषण करते हुए हाल में ही एक डाक्टर ने कहा है—The mouth is the gateway of the body, and guards it as a wise general guards the gate of the fort. अर्थात् मुख शरीररूपी दुर्ग का मुख्य द्वार है। जिस प्रकार एक सुदक्ष सेनापति किले के द्वार की रक्षा करता है उसी प्रकार सबको मुख की रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि ६० प्रतिशत रोग कीटाणु मुख के मार्ग से ही शरीर में प्रवेश पाते हैं। जो लोग दांतो को साफ रखने का उचित ध्यान नहीं रखते उन्हें पायोरिया-दन्तपाक नामक रोग होजाता है। इसमें एक विशेष प्रकार का मवाद दांतों की जड़ों से निकलने लगता है, जो दांतों को कमज़ोर करता है, साथ ही आमाशय को भी ख़राब कर देता है। इससे बचने के लिये आवश्यक है कि दांतों को सायं प्रातः भली भांति शुद्ध कर लिया करें। भोजनोपरान्त अवश्य दांत साफ कर लेने चाहियें। भोजन भी हलका करना उचित है। पर थोड़े परिमाण में कुछ देसी चीज़ें भी ली जायँ जिन्हें तोड़ने में दांतों पर थोड़ा ज़ोर पड़े। फल, साग सब्ज़ी भी अच्छी मात्रा में लेना चाहिये। दिन भर में कम से कम ६ ग्लास पानी भी पीना ज़रूरी है। जो व्यक्ति इन

नियमों का पालन करते हैं उन्हें इस प्रकार के मूंजी मर्ज़ से कोई भय नहीं।

दाँतों पर मलने के लिये आजकल अनेक प्रकार के मञ्जन और पेस्ट आते हैं। नये ढङ्ग के आदमी इन्हीं विलायती चीज़ों के शौकीन होगये हैं। पर सच बात यह है कि इन सब से देशी रीति कहीं अच्छी है। डाक्टरों का मत है कि दाँतों पर जो मैल जमता है उस में एक प्रकार के सूक्ष्म कीटाणु होते हैं जो सारे फ़िसाद का मूल कारण हैं इसी लिये Anticeptic कीटाणु विनाशक वस्तुओं से ये पेस्ट और मञ्जन तैयार किये जाते हैं। इन्हें ब्रुश की सहायता से इस्तेमाल किया जाता है। पर इसमें दो ख़राबियाँ हैं, पहली ख़राबी तो यह है कि इन प्रकार की कीटाणु विनाशक औषधियाँ मसूढ़ों को जीवन देते रहने वाले जन्तुओं को भी नष्ट कर देते हैं। दूसरी ख़राबी यह है कि ब्रुश भी दांतों की जड़ों को बुरी तरह छीलता और कमज़ोर करता है, क्योंकि वह सूखी चीज़ से बनता है। दतौन में यह विशेषता है कि वह हरी वनस्पति की होने के कारण एक प्रकार का रस भी साथ ही छोड़ती रहती है जो दाँतों की जड़ों को मज़बूत बनाता है, छिले हुए मसूढ़ों की जलन को स्वयम् ही शान्त करता है और हलक़ तथा फेफड़े में पहुँचने पर नुकसान नहीं पहुँचाता—लाभ ही पहुँचाता है। बबूल और मौलसिरी की दतौन में यही विशेषता है। यदि इनके साथ ही अच्छा स्वदेशी मञ्जन भी काम में लाया जाय तो बहुत अच्छा है। अंगरेज़ी ढंग में एक ख़राबी यह है कि उससे जिह्वा साफ़ नहीं होती और जिह्वा पर जमा हुआ मैल दांतों की शुद्धि को भी व्यर्थ कर देता है।

दांतो की दृढ़ता के लिये सेंधा नमक मिले हुए पानी से कुल्ले करना बहुत अच्छा है। फिटकिरी भी दांतों की जड़ों को दृढ़ बनाती है। यदि कभी कभी कड़वे तेल में थोड़ा सेंधानमक मिलाकर दांतो पर मल लिया जाया करे तो हलते हुये दांत भी जम जाते हैं।

पान और तम्बाकू दांतो के दो बड़े शत्रु हैं, जहांतक हो इनसे सदा बचाना चाहिये। पान और तम्बाकू मुख और आमाशय में रहने वाले उन रसका अत्यन्त भारी दुरुपयोग करते हैं जो भोजनको पचाने के लिये अत्यावश्यक हैं।

स्वर्गीय आयुर्वेदोद्धारक कविराज लाला शालिग्रामजी-मुरादाबाद।

स्त्री रोगों की सरल चिकित्सा ।

स्त्रियों के अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होने हैं । उनमें कुछ मुख्य २ रोगों की सरल चिकित्सा नीचे लिखी जाती है । हम आशा करते हैं, हमारी महिलाएँ इनसे लाभ उठायेंगी ।

रक्तप्रदर—आजकल यह रोग इस देश की स्त्रियों में अधिकता से देखा जाता है । इनके द्वारा पीड़ित स्त्रियें शीघ्र ही स्वास्थ्यहीन होकर अनेक रोगों के चंगुल में फँस जाती हैं । इस रोग में स्त्रियों के निरंतर रुधिर का स्राव होता है और सर्वांग में पीड़ा होती है ।

१—अशोक वृक्ष की छाल का गाय के दूध में क्वाथ बना कर उसमें मिश्री डालकर पान करने से रक्तप्रदर दूर होता है ।

२—आम का मौल और आम के नवीन पल्लव (कौंपल) दोनों को छाया में सुखाकर और कूट पीसकर चूर्ण बनालेवे । पश्चात् उसमें थोड़ी मिश्री मिलाकर चावलों के जल के साथ या भात के माँड के साथ सेवन करने से रक्तप्रदर रोग दूर होता है । अथवा आम्रवृक्ष की अन्तर छाल का बारीक चूर्ण बनाकर और उसको वस्त्र में छानकर उसमें मिश्री मिलाकर दो-दो माशे की मात्रा से चावलों के पानी या शीतल जल के साथ दिन में २ बार सेवन करने से अथवा आम की छाल, आम के कोमल पत्ते और आम का मौल इनका क्वाथ बनाकर उसमें मिश्री डालकर पीने से रक्तप्रदर दूर होता है ।

३—आँवले के और पीपल के कोमल पत्तों को छाया में सुखाकर उनका बारीक चूर्ण करके उसमें थोड़ी मिश्री मिलाकर चावलों के पानी के साथ अथवा आँवले की छाल का क्वाथ बनाकर उसमें मिश्री डालकर पीने से रक्तप्रदर दूर होता है । इसी प्रकार आँवले के स्वरस को निकाल कर पान करने से अथवा आँवले का स्वरस और बिजौरे का स्वरस दोनों को समान भाग लेकर उसमें मिश्री मिलाकर १-१ तोले की मात्रा से पान करने से रक्तप्रदर दूर होता है । अथवा सूखे आँवलों को जल में भिगोकर उसमें मिश्री डालकर पीने से रक्तप्रदर दूर होता है ।

४—गूलर की अन्तर् छाल या उसके कोमल पत्ते और फलों को छाया में सुखा कर उसका बारीक चूर्ण करके और उसमें मिश्री मिलाकर २-२ माशे की मात्रा से शीतल जल अथवा गाय के दूध के साथ सेवन करने से रक्तप्रदर दूर होता है।

५—कमलगट्टे की मींग, जहरमोरा, सफेद इलायची, वंशलोचन और पीपल वृक्ष की लाल ये सब समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बना कर शरबत अनार या आंवले के शरबत में मिलाकर सेवन करने से रक्तप्रदर रोग दूर होता है।

६—बबूर वृक्ष का गोंद, मस्तगी, राल, छोटीइलायची सबको समान भाग लेकर और सबका अलग २ बारीक चूर्ण करके एकत्र मिलालेवे। फिर इसमें सब चूर्ण के बराबर मिश्री मिलाकर १—१ माशे की मात्रा से दिन में २—३ बार सेवन करने से रक्तप्रदर दूर होता है।

७—त्रिफला, रसौत, नीमकी गुठली, सबको समान भागलेकर चावलों के जल के साथ २—२ रत्ती की गोली बनाकर सुबह शाम दो बार सेवन करने से रक्तप्रदर रोग में लाभ होता है।

८—सेलखड़ी, गेरू, अरमन देश की मट्टी (गिले अरमनी) तीनों को समान भाग लेकर बारीक पीस कर १-१ माशे की पुड़ियें बनालेवे। १-१ पुड़िया दिनमें तीन बार शीतल जल या चावलों के पानी के साथ सेवन करने से रक्तप्रदर दूर होता है।

९—फटकरी, कत्था, शीतलचीनी तीनों का एकत्र चूर्ण बनाकर शीतल जल के साथ सेवन करने से रक्तप्रदर और रक्तस्राव दूर होता है।

१०—उत्तम प्रकार से जलके द्वारा धोई हुई भाँग को सफेद इलायची, सौंफ, कासनी आदि के साथ खूब बारीक पीस कर और मिश्री मिलाकर पान करने से रक्तप्रदर और रक्तस्राव दूर होता है।

११—माजूफल के क्वाथ में रसौत, और किंचित् फटकरी डाल कर उसकी पिचकारी लगाने से रक्तप्रदर रोग दूर होता है।

श्वेतप्रदर—यह रोग आजकल घर २ स्त्रियोंमें देखा जाता है। सौ में से पचास महिलाएँ भी ऐसी नहीं निकलेंगी। जिनको इस रोग की शिकायत न हो। जैसे अनेक पुरुषों को धातुस्राव या प्रमेह की शिकायत देखी जाती है, उसी प्रकार स्त्रियों में यह रोग अधिकता से देखा जाता है। इसमें स्त्रियों के योनि मार्ग से चावल के धोवन के

समान या चूने के पानी अथवा भात के माँड के समान श्वेतस्राव होता है। इससे कमर में पीड़ा, शिर में दर्द, शरीर में पीलापन, मन्दज्वर आदि लक्षण होते हैं।

१—प्रथम उत्तम छुहारे १ पाव लेकर १ सेर दूध में पकावे। जब छुहारे अच्छे प्रकार पककर फूल जावें तब उनकी गुठली निकाल कर गरम पानी से धोकर सुखा लेवे। फिर उनको घी में अच्छे प्रकार भूनकर बारीक कूट लेवे। और उनमें आधा भाग असगन्ध का चूर्ण मिलादे। उसमें से ६ माशे प्रातःकाल और ६ माशे सायंकाल दोनों समय गाय के दूध के साथ सेवन करे तो नवीन श्वेतप्रदर नष्ट होता है।

२—कौंच के बीज १ पाव, उड़द की धोकर सुखाई हुई दाल का चूर्ण आधसेर-दोनों को गाय के घी में अच्छे प्रकार भूनकर और उसमें समान भाग शुद्ध खाँड मिलाकर २-२ तोले के मोदक तैयार कर लेवे। प्रतिदिन एक मोदक सवेरे और एक मोदक सामको गाय के दूध के साथ सेवन करने से श्वेतप्रदर और शरीर की दुर्बलता शीघ्र दूर होती है।

३—एक पाव चिकनी सुपारी लेकर गाय के दूध में भिगो देवे। पश्चात् दूसरे दिन उनको दूध में से निकाल कर छाया में सुखाकर उनका बारीक चूर्ण कर लेवे। फिर उसमें सफेद मूसली, शतावर असगन्ध, विधारा, बीजबन्द प्रत्येक १-१ तोला तथा दारचीनी, तेजपात, वंशलोचन, छोटी इलायची, जावित्री, कपूर, लौंग प्रत्येक ४-४ माशे, सब का पृथक् २ बारीक चूर्ण कर लेवे। प्रथम सुपारी से लेकर बीजबन्द तक समस्त औषधियों के चूर्ण को लेकर घी में अच्छे प्रकार भूनकर फिर आध सेर खाँड की चासनी बनाकर उसमें घी में भुनी हुई समस्त औषधियों को डाल देवे। पीछे अवलेह तैयार होजाने पर नीचे उतार कर दारचीनी से लौंग पर्यन्त समस्त औषधियों के चूर्ण को डालकर खूब मिला देवे। और १—१ तोले के लड्डू तैयार कर लेवे। इनमें से एक लड्डू सुबह और १ शाम दूध के साथ सेवन करने से श्वेतप्रदर शीघ्र आराम होता है।

४—इमली के बीज (चोइया) १ पाव लेकर १ सेर गरम दूध में भिगो देवे। फिर दूसरे दिन उनको दूध में से निकाल कर उनके छिलके छुड़ा देवे। और उसको मींग को सुखाकर उसका चूर्ण करलेवे। इस चूर्ण से दूना भाग भुने हुए चनों को छील कर उनका

चूर्ण करके मिलादेवे । और घी तथा खाँड के योग से २-२-तोले के लड्डू तैयार करलेवे । प्रति दिन सुबह और शाम दोनों समय १-१ लड्डू दूध के साथ सेवन करने से श्वेतप्रदर शीघ्र दूर होता है ।

५—शुद्ध शिलाजीत १ तोला, प्रवालभस्म ६ माशे, सफेद मूसली का चूर्ण २ तोले-सबको एकत्र मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियें बनालेवे । प्रति दिन सुबह, दोपहर और शाम को १-१ गोली गायके दूध या चावलोंके पानी के साथ सेवन करने से श्वेत-प्रदर रोग नष्ट होता है ।

क्रमशः ।

विविध-विषय ।

निखिलभारतवर्षीय २० वाँ वैद्य-सम्मेलन ।

अखिलभारतवर्षीय वैद्य-सम्मेलन का २० वाँ वार्षिकोत्सव करांची नगर में ता० १, २, ३, ४ जनवरी को बड़ा धूम-धाम के साथ सम्पन्न हुआ । सभापति का आसन पटियाला राज्य के राज-वैद्य पं० रामप्रसाद जी शर्म्मा वैद्यरत्न ने सुशोभित किया था । भारत के अनेक नगरों से यथेष्ट संख्या में प्रतिनिधि पधारे थे । सभापति का भाषण बड़ा प्रभावशाली हुआ । पृथक् २ संभाषा परिषदों में कई विषयों पर विचार किया गया । रसायन संभाषा परिषद् में सर्व सम्मति से खर्पर का इस प्रकार निश्चय हुआ । रसार्णव में मृत्तिका गुड़, पाषाण आदि जो खर्पर के भेद कहे हैं, उन सब में कारवेल्लक खर्पर ही ज्वर को नष्ट करने में विशेष उपयोगी है । और मालती वसन्त में भी इसी का उपयोग करना चाहिये । इस कारवेल्लक में जिन धातुओं का समावेश होना बताया गया है, वे सब उसमें पाये जाते हैं । यह हिन्दूविश्वविद्यालय बनारस अथवा अमेरिका से 'बिलेमाइट' नाम से मिल सकता है । और उसके न मिलने पर वंगसेन में जो खर्परक रसायन कही गयी है, वही ग्रहण करनी चाहिये । वनौषधि सम्भाषा परिषद् में शालपर्णी, पृश्निपर्णी, रास्ना और पोहकरमूल आदि औषधियों के विषय में बहुत कुछ तर्क-

चि० विष्णुकान्त जैन
(सम्पादक महोदयके सुपुत्र)।
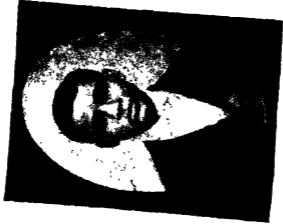
वेदांत और हिन्दू फिलासफीके प्रख्यात व्याख्याता
श्री पं० हरिप्रसादजी शास्त्री (मि० हरि)
आप बहुतकालसे चीन, जापान आदि देशोंमें भ्रमणकर आजकल लंदनमें निवास कर रहे हैं। आपका वैद्यपर बड़ा प्रेम है।

वितर्क होने पर भी अबकी बार भी कुछ ठीक २ निर्णय नहीं होसका। इसी प्रकार निदान सम्भाषा परिषद् में भी मलेरिया, सिपलिस इन रोगों के विषय में कोई निर्णय नहीं हुआ। इतने दिनों में अबकी बार वैद्य-सम्मेलन में बड़ी कठिनता से जो खर्पर के विषयमें निश्चय हुआ है, वह भी बड़े महत्व की बात है। यदि इसी प्रकार सन्दिग्ध निर्णय कमेटी का कार्य होता रहा तो आशा है, कि सौ दो सौ वर्षों में दस-बीस औषधियों का अवश्य निर्णय होजायगा।

इस बार के सम्मेलन में और भी कई बातें विशेष महत्व की हुई हैं—जैसे भगवान् धन्वन्तरिजी का पूजन, धन्वन्तरि ध्वजारोपण, सभापति का विशेष रूप से स्वागत, प्रस्तावों की लम्बी-चौड़ी सूची, आदि। प्रदर्शिनी की शोभा इस वर्ष भी वर्णनातीत थी। सिद्ध औषधियों की ठीक २ परीक्षा न कर मेडिल, प्रशंसापत्र देने आदि की कार्यवाही नियम विरुद्ध थी। इसके सिवाय इस महा सम्मेलन में भी वैद्यों में परस्पर खूब धड़ाबन्दी देखी जाती थी। स्वागतकारिणी-समिति का स्वागत आदि के कार्य का प्रबन्ध अतीव प्रशंसनीय था।

युक्तप्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन।

युक्त प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का रूसम अधिवेशन आगरा नगर में चिकित्सक चूड़ामणि वैद्यराज प० रामेश्वर प्रसाद जी मिश्र के सभापतित्व में गत २५, २६ जनवरी को विशेष समारोह के साथ समाप्त होगया। बाहर से आने वाले प्रतिनिधियों की संख्या यथेष्ट नहीं बतायी जाती। उसमें भी कानपुरी वैद्य—मण्डली का ही दौर दौरा अधिक दिखायी देता था। दो दिन तक सम्मेलन में खासी चहल-पहल रही। कितने ही जोशीले व्याख्यान और महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। लाहौर कांग्रेस का पूर्ण स्वतन्त्रता वाला प्रस्ताव वन्दे मातरम् के जयघोषके साथ पास हुआ। परन्तु वैद्योंमें परस्पर दलबन्दी का तमाशा यहां सबसे अधिक देखने में आया। स्वागत-कारिणी का प्रबन्ध साधारणतः अच्छा था। सम्मेलन के साथ जो प्रदर्शिनी लगायी गयी थी, वह सब प्रकार से ठीक होने पर भी युक्त प्रान्तीय वैद्य—सम्मेलन के योग्य नहीं कही जासकती।

मुरादाबाद प्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन।

मुरादाबाद के वैद्यों ने केवल आठ दिन की तैयारी में जो अपना

लम्बा-चौड़ा ज़िला वैद्य सम्मेलन और आयुर्वेदिक प्रदर्शन कर दिखाया, इनके लिये उनकी श्लाघा नहीं की जासकती। कारण कि उनमें अन्य बड़े २ सम्मेलनों की तरह अधिक मतभेद या दलबन्दी नहीं देखी जाती थी।

बधाई।

अबकी बार इंडियन मेडिसन बोर्ड यू० पी के नवीन निर्वाचन में कानपुर के वैद्यराज पं० कन्हैयालाल जी जैन वैद्यरत्न बिना किसी विरोध के चुनेगये हैं। इनके लिये आपको विशेष बधाई हैं।

बूढ़े से जवान हुए।

बन्दर की नलियाँ लगाकर बूढ़े मनुष्यों को जवान बनाने वाले पेरिस के जिन डाक्टर वॉरनॉफ महोदय का नाम बहुत दिनों से सुना जाता था। वे ही डाक्टर महोदय बुढ़ापे में जवानी का आनन्द लूटने की इच्छा करने वाले धनिक लोगों के सौभाग्य से आजकल भारत में पधारे हैं। उन्होंने बम्बई, राजपूताना, मालवा आदि स्थानों में कई बड़े २ लोगों पर अपना यह प्रयोग कर सर्वसाधारण को आश्चर्य में डाल दिया है।

उस दिन इन्दौर के सुविख्यात सर सेठ हुकुमचन्दजी ने अपनी धर्मपत्नी सहित डाक्टर वॉरनॉफ से बन्दर की ग्रन्थियों अथवा नलियों को अपने शरीर में लगवाया था और उसके उपलक्ष में डाक्टर महोदय को १४ सहस्र पौण्ड अर्थात् २ लाख १० हज़ार रुपये प्रदान किये।

सेठ जी परम अहिंसा धर्म के पालक और एक सच्चे जैनी हैं। सेठ जी के इस अभूत पूर्व कार्य से जैन जाति में एक प्रकार की बड़ी सनसनी पैदा होगयी है। और इसके सम्बन्ध में कितने ही सामयिक पत्रों में चर्चा चल रही है। श्रीमान् सेठ जी ने इस विषय में अपना जो वक्तव्य प्रकाशित कराया, वह इस प्रकार है।

'मैंने और मेरी स्त्री ने शरीर को चिरकाल तक आरोग्य रखने तथा बड़े२ रोगों के आक्रमण से शरीर की रक्षा करने और शरीर की स्थूलता कम होजाने के लिये यह आपरेशन कराया है। बन्दरों की ग्रन्थियाँ निकालते समय उन पर पहिले क्लोरोफार्म का प्रयोग किया

गया था । इससे उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ और वे दस मिनट में पहले के समान स्वस्थ होगये ।'

इसमें संदेह नहीं कि सेठ जी का यह मन्तव्य बड़े ही सरल और सच्चे हृदय से लिखा गया है । सम्भव है, इस प्रयोग के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में रुधिर का संचार होकर कुछ दिनों तक युवावस्था का आनन्दानुभव होने लगे । किन्तु वह अवस्था अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रह सकती । दूसरे मनुष्य शरीर में बन्दर की ग्रन्थियें के लगाने से बन्दर के स्वभाव का भी प्रभाव पड़ सकता है । कारण कि मनुष्य शरीर में लेपादिक के द्वारा भी जो वस्तु ऊपर से प्रयोग की जाती है, उसका भी शरीर पर विशेष प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता । फिर जो बन्दर की ग्रन्थियें शरीर के रुधिर में मिलायी गयी हैं । उनका प्रभाव तो अवश्य शरीर और मन पर पड़ना सम्भव है ।

आवश्यक निवेदन ।

अब तक 'वैद्य' का वर्ष आश्विन मास से आरम्भ होता था, किन्तु कितनी ही असुविधाओं के कारण हमने "वैद्य" का वर्ष फिर जनवरी माससे आरम्भ किया है । अतः अब ग्राहक महाशय जनवरी माससे ही "वैद्य" के १७ वें वर्ष का आरम्भ समझें ।

विशेष सूचना ।

नि०भा० आयुर्वेद महासम्मेलन करांची तथा युक्त प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन आगरा के सभापतियों का भाषण ठीक समय पर प्राप्त न होसकने के कारण हम इस सम्मेलनांक में प्रकाशित न कर सके । इसके लिये हम क्षमा चाहते हैं । तथा इस अंक के लिये कई महानुभावों के महत्वपूर्ण लेख विलम्ब से प्राप्त होने के कारण इस अंक में नहीं प्रकाशित किये जासके । वे आगामी अंकों में प्रकाशित किये जावेंगे ।

सम्पादक—

धन्यवाद ।

वैद्य के इस 'सम्मेलनांङ्क' के शीघ्र प्रस्तुत करने और ब्लाक आदि भेजने में निम्न लिखित सज्जनों के द्वारा हमें विशेष सहायता मिली है । इसलिये हम उन महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं—

श्री पं० बनवारीलालजी दीक्षित, मुरादाबाद ।

„ पं० नरोत्तम जी व्यास 'नारायण-सम्पादक' कलकत्ता ।

श्री० वैद्य बांकेलाल जी 'धन्वन्तरि कार्यालय' विजयगढ़ ।
„ पं० वैद्यराज रूपेन्द्रनाथजी द्विवेदी शास्त्री सम्पादक 'राकेश' बरालोकपुर ।
„ पं० श्रीधाराम जी उपाध्याय-'सरस्वती-प्रेस' मुरादाबाद ।
„ प्रोप्राइटर "अनुभूतयोगमाला—बरालोकपुर (इटावा)

निवेदक—शंकरलाल, हरिशंकर ।

यू० पी० इण्डियन मेडिसनबोर्ड की बैठक !

तारीख २३ । २ । ३० को दिनके २ बजे लखनऊ में वज़ीर मंज़िल कोठी पर श्रीमान् चीफ़जस्टिस वज़ीरहसन साहब के सभापतित्व में इंडियन मेडिसन बोर्ड की मीटिंग हुई ।

सर्व प्रथम श्रीमान् चेयरमैन सा० को उनके चीफ़ जस्टिस होने पर बधाई दीगई तथा गवर्नमेंट को धन्यवाद दिया गया तत्पश्चात् सर्व कमेटियों द्वारा स्वीकृत हुए प्रस्ताव सर्व समिति से पास हुए जिनमें निम्न लिखित मुख्य हैं ।

२८३७५) रुपये वैद्यक संस्थाओं के लिए तथा २१८७१) रुपया यूनानी संस्थाओं के लिये स्वीकृत हुआ जिसमें ५००) रुपया श्री आयुर्वेद विद्यालय कानपुर को, २००) ऋषिकुल कालेज हरिद्वार को तथा २००) निर्विद्या स्कूल इलाहबाद आदि के लिये थे, म्यूनिसिपल बोर्ड तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सर्विस के लिए जयपुर अ० भा० व० विद्यापीठ, पीलीभीत वैद्यक कालेज, ऋषिकुल हरिद्वार कालेज, गुरुकुल कांगड़ी, यूनानी तिब्बी कालेज, से उत्तीर्ण वैद्य तथा हकीम लेना स्वीकृत हुआ ।

डाक्टर वट सा० ने बोर्ड द्वारा ली जाने वाली परीक्षाओं की स्कीम पढ़कर सुनाई । स्कूल की परीक्षा शुल्क ५) तथा कालेजों की परीक्षा शुल्क ७॥) रु० रखे गये । इसी प्रकार परीक्षाओं की फीस और परीक्षाओं के समयादि का विवरण भी सुनाया गया जो सर्व सम्मति से पास हुआ ।

चन्द्रावत् ट्रस्ट वैद्यक विद्यालय जगदीशपुर जिला गोरखपुर तथा वैद्यक विद्यालय कानपुर भी बोर्ड से संबंधित संस्था स्वीकृत हुई । इत्यादि प्रस्ताव स्वीकृत होने के पश्चात् मीटिंग ३ बजे समाप्त होगई जिसका विशेष विवरण फिर प्रकाशित किया जायगा ।

कन्हैयालाल जैन वैद्य-कानपुर ।

❋ "वैद्य" के नियम ❋

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डॉ० म० सहित केवल १।॥) है। पेशगी मनीआर्डर भेजने से १॥।=) और वी० पी० मँगाने से २) पड़ेगा।

इस सम्मेलनाङ्क का मूल्य ॥) आने है।

परंतु स्थायी ग्राहकों से इसका मूल्य नहीं लिया जायगा।

(३) 'वैद्य' का नमूना ≡) के टिकट भेजने से भेजा जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषय के लेख, कविता, अनुभूत प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे, वे पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायँगे, परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये, जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या एक आने का टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँच कर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी २ अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं। इसका कारण रास्ते की असावधानी ही होसकती है। जिन महाशयों को जो अङ्क न मिले, वे दूसरे अङ्क के पहुँचते ही हमें सूचना दें, अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर, वैद्य आफ़िस मुरादाबाद।

वैद्य में विज्ञापन छपाई व बटाई की दर—

स्थान	१ वर्ष १२ बार	६ मास ६ बार	३ मास ३ बार	१ मास १ बार
एक पृष्ठ	४८)	२४)	१३॥)	६।)
आधा पृष्ठ	३०)	१५)	८)	४)
चौथाई पृष्ठ	१७)	८॥)	४॥)	२।)

विज्ञापन बटाई विज्ञापन दिखाकर तय कीजिये।

मैनेजर "वैद्य" मुरादाबाद।

मुद्रक—प० जीवाराम गौरीशंकर, सरस्वती-प्रेस, मुरादाबाद।

❀ "वैद्य" के नियम ❀

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डाँ० म० सहित केवल १॥) है। पेशगी मनीआर्डर भेजने से १॥=) और वी० पी० मँगाने से २) पड़ेगा।

इस सम्मेलनाङ्क का मूल्य ॥) आने है।

परंतु स्थायी ग्राहकों से इस का मूल्य नहीं लिया जायगा।

(३) 'वैद्य' का नमूना =) के टिकट भेजने से भेजा जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषय के लेख, कविता अनुभूत प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे, वे पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायँगे, परन्तु लेख का घटाना बढ़ाना का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये, जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या एक आने का टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँच कर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी २ अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं। इसका कारण रास्ते की असावधानी ही होसकती है। जिन महाशयों को जो अङ्क न मिले, वे दूसरे अङ्क के पहुँचते ही हमें सूचना दें, अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर, वैद्य आफ़िस मुरादाबाद।

वैद्य में विज्ञापन छपाई व बटाई की दर—

स्थान	१ वर्ष १२ बार	६ मास ६ बार	३ मास ३ बार	१ मास १ बार
एक पृष्ठ	४०)	२५)	१३॥)	६॥)
आधा पृष्ठ	३०)	१५)	८)	४)
चौथाई पृष्ठ	१७)	८॥)	४॥)	२।)

विज्ञापन बटाई विज्ञापन दिखाकर तय कीजिये।

मैनेजर "वैद्य" मुरादाबाद।

मुद्रक—पं० [illegible], सरस्वती प्रेस, मुरादाबाद।

वर्ष १७] मार्च सन् १९३० [अङ्क

सम्पादक :—
श्रीशङ्करलाल वैद्य ।

वार्षिक मूल्य १॥)] प्रकाशक :— [एक प्रति =)
श्रीहरिशङ्कर वैद्य ।

❀ विषय-सूची ❀

१ वैद्यनीति	८१	७ अन्वेषण	१०२
२ वैद्य-प्रशस्ति	८२	८ स्त्री रोगों की सरल चिकित्सा	१०[illegible]
३ नवीन वर्ष	८३	९ परीक्षित-प्रयोग	१०८
४ आयुर्वेद का महत्व	८४	१० प्राप्ति-स्वीकार	११०
५ अस्थि क्षय	९०	११ विविध-विषय	१११
६ अश्वगंधा (असगंध)	९४	१२ सूचना	११२

❀ "वैद्य" के नियम ❀

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डाँ० म० सहित केवल १।॥) है मनीआर्डर भेजने से १।॥) और वी० पी० मँगाने से २) में प०

(३) 'वैद्य' का नमूना ३) के टिकट भेजने से भेजा जाता।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषय के लेख, कविता, अनुभूत-प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे, वे पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायेंगे, परन्तु लेख का घटाने बढ़ाने का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये, जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या एक आने का टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँच कर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी २ अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं। इसका कारण रास्ते की असावधानी ही होता है। जिन महाशयों को जो अङ्क न मिले, वे दूसरे अङ्क के पहुँचते ही हमें सूचना दें, अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सब प्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि भेजने का पता,

वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर, वैद्य आफ़िस मुरादाबाद।

किन्तु प्रसिद्ध-पदवीमधिकृत्य सेते;
नाशस्य-तीव्रमसुना किमु संभवन्ते ॥ ३ ॥

येकेचिदत्र निज-यत्नशतैः समन्तात् ;
वैद्यागमं नवपदैः परिबृंहयन्ति ॥

ते नाम सन्ति पटुवन्नहि शाक-सूपे,
मानापमान-रहिते भिषजि प्रभूये ॥ ४ ॥

वैद्योऽद्भयं ह्यनुभवत्रय-सप्त-वर्षान् ;
सञ्चारमत्र कुरुते दश-सप्त-वर्षे ॥

आयान्तु ते सुकृतिनः सुधियः समेत्य,
पश्यन्तु नाम रुचिर नव-रूपमद्य ॥ ५ ॥

कर्तव्यमत्र भवताकृतिनां मनोज्ञम्,
सस्मारयस्यतितरां नितरां सवैद्यः ॥

तस्मै गुण-ग्रहणिनामपरिदर्शयन्तु,
मा ! मा ! भवन्तु कृपणाश्च कृतघ्न-रूपा. ॥ ६ ॥

एषा दशा समुचिता न विचारयन्तु;
साहाय्य-दानमुचितं सुधियो ददन्तु ॥

सम्वत्सरं मान-विभवान्वितमत्र नित्यम्;
द्रष्टुं समुत्सुकमहं खलु वैद्यमीहे ॥७॥

वैद्य-प्रशस्ति ।

विद्या पूर्ण प्रचारक ज्ञान का आयुर्वेद समुन्नति वैद्य ।
नेम निबाहक भी उपकारक द्रव्य प्रचारक है पुनि वैद्य ॥
स्वास्थ्य सुधारक है सबका अरु स्वच्छ सुओषधि कारक वैद्य ।
काव्य कला भरु अनुभव युक्ति का चारु चिकित्सक है प्रिय वैद्य ॥

रामकृष्ण शुक्ल " रामकवि " लखनवी

❀ नवीन-वर्ष ❀

(ले० श्री० "कविकुमार" महेश्वरप्रसाद शर्मा, साहित्याचार्य)

आओ विषाद-परिहारक नव्यवर्ष ! । देवो समस्त जन के मन को महर्ष ।
थी है अनेक-दिन से कितनी प्रतीक्षा । है आपके शुभ सुआगम की परीक्षा ॥१॥
लाये स्वराज्य-सुख के तुम हो विधाता । आनन्द-मंगल-महोत्सव के प्रदाता ।
हो नम्र शीश कवि है तुमको झुकाता । उत्कर्ष युक्त तुम हो यह है मनाता ॥२॥
है देश में जिस प्रकार वसन्त छाया । फैली निसर्ग-पति की कमनीय माया ।
छूटे पुराण-दल पल्लव नील आये । सारे महीरुह नवीन यथा बनाये ॥३॥
हे नूतनाब्द ! तव स्वागत सृष्टि सारी । आनन्द से कर रही सुषमा पसारी ।
फूले अचेतन नहीं सुख में समाते । सारे सुसज्जित हुए वन को बनाते ॥४॥
हैं स्थाणु भी अब हरे फल-फूल वाले । शोभा प्रकाश करते सब के निराले ।
फूलीं प्रफुल्लित अहो कितनी लतायें । आभा विचित्र किस भाँति भला बतायें ॥५॥
है दृश्य नूतन सभी नव वर्ष हर्षे । देखो प्रकाश करती वसुधा प्रकर्ष ।
पाते विकाश जिससे सब सृष्टि तत्त्व । है वर्णनीय कितना उसका महत्त्व ॥६॥
सानन्द गान करते अलि-वृन्द मन्द । पीते प्रमोद युत कानन में मरन्द ।
कैसी पिकावलि मनोहर तान गाती । आराम को सुखद है पल में बनाती ॥७॥
तेरे शुभागमन से सब मग्न होते । उत्साह-पूर्ण-मन से फिर लग्न होते ।
तू ही नवीन-पथ है सबको दिखाता । आता सदैव कुछ तत्त्व नवीन लाता ॥८॥
ऐसे सजे सकल वृक्ष वसन्त पाके । मानो सुसज्जित किये सब है सुधा के ।
जैसे मनुष्य, रस सुन्दर भस्म खाके । हैं शक्ति पाकर निरोग दशा दिखाते ॥९॥
हे नव्य-वर्ष ! गुण गौरव को बढ़ावो । आयुष्य वेद शुभ उन्नति पै चढ़ावो ।
फैले प्रकाश जगती तल में महत्त्व । आविष्क्रिया कुछ नवीन प्रधान-तत्त्व ॥१०॥
विश्वास आदर समेत लखो यथार्थ । है प्राप्य दिव्य जिस से परमार्थ स्वार्थ ।
जो जीवनावधि सुरक्षित है बनाती । विज्ञान-बोध-विधि कालकला जनाती ॥११॥
आरोग्य साधन करी वह वेद विद्या । सिद्धान्त-सागर भरी सब भाँति हृद्या ।
कल्याण हेतु उसके सब ध्यान देवें । देखें पढ़ें कुछ अलौकिक ज्ञान लेवें ॥१२॥
जो ख्यात दैहिक-दशा-हितहेतु होवे । आपत्ति व्याधि पथ में सब जीव खोवे ।
प्राकाशिक प्रिय उसी सब लोग जानें । तत्त्वार्थ निश्चित करें शुभसार मानें ॥१३॥
आरोग्य-कारण महोत्सव का विधाता । संसार के सुख समस्त समोद दाता ।
आयुष्य-शास्त्र सब भाँति प्रसिद्धि पावे । संसार में सुखित हो गुण-गान गावें ॥१४॥
है आत्मवश्य जितना अपना न भूलो । मिथ्या प्रकाश लख के मत आप फूलो।
होता जहाँ रवि प्रकाशित कान्तिकारी । खद्योत-पुञ्ज कभी करते विचारी ॥१५॥

आयुर्वेद का महत्व । *

(ले० श्रीयुत वैद्यराज प० हरिहरनाथ जी शास्त्राचार्य ।)

ईश्वरीय प्राकृतिक नियम है कि उत्पत्ति शील प्रत्येक वस्तु उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय अर्थात प्रभात मध्याह्न और सन्ध्या इन तीन स्वरूपों को धारण करती है। इसी प्रकार हमारी आयुर्वेदीय चिकित्सा ने भी प्रभात, मध्याह्न, और सन्ध्या इन तीन स्वरूपों को धारण किया है। जब ब्रह्मा से प्रजापति ने तथा प्रजापति से अश्विनीकुमारों ने और उनसे इस परम उपयोगी आयुर्वेद की देवराज इन्द्र ने शिक्षा प्राप्त की थी, तब इसका प्रभात काल था। तदनन्तर भारद्वाज से अग्निवेश आदि ऋषियों ने और भगवान् धन्वन्तरि जी से सुश्रुत आदि शिष्यों ने आयुर्वेदीय विद्या का अध्ययन कर शरीर-विज्ञान और चिकित्सा द्वारा इसका प्रकाश आर्यावर्त में फैलाया। उस समय हमारे आयुर्वेद का मध्याह्न-काल था। इसलिये उस समय इसका पूर्ण विकास था।

फिर पश्चिम के अरब, मिश्र, रूम और यूनान देश वालियों ने आयुर्वेद को यहाँ से सीखकर उसका अपने देशों में खूब प्रचार किया। उस समय इसी प्रकार जापान और चीन ने तथा दक्षिण की ओर यवद्वीप आदि में भी आयुर्वेद का झण्डा राष्ट्रपताका की भाँति फहराया था।

आजकल अनेक यूरोप के विद्वान् ग्रीस को ही सब देशों का गुरु मानते हैं, पर उनका यह विचार अप्रामाणिक होने के कारण युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता। क्योंकि ग्रीस के ही 'योकक' नाम के एक विद्वान् ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि हमारे यहाँ के नगर, देवता आदि के नाम भारतवासियों के नामों के अनुरूप हैं। देखने से यह प्रतीत भी होता है कि उनके पुराने यन्त्र-शस्त्रों की आकृति इसी देश के यंत्र-शस्त्रों की आकृति से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं।

ग्रीस देश के भिषगाचार्य 'पिथागोरस' और 'हिपोक्रेटिस' भारत के ही विशाल अनुभव से अनुभवी हुए थे। उनके यहाँ ज्ञान,

* मुरादाबाद प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन में लेखक द्वारा पठित ।

पित्त, कफ और शोणित इन चार दोषों का जो सिद्धान्त देखा जाता है, वह हमारे पूज्य धन्वन्तरि भगवान का ही 'सुश्रुतोक्त' मत है। इनके अतिरिक्त आर्य और बर्बर इन दो जातियों का निवास-स्थल होने से जो मिश्र देश कहाता है, उसमें भी हमारे भारत से ही आयुर्वैदिक विज्ञान पहुँचा। मिश्रदेश वासियों ने इस आयुर्वेद-विद्या का अधिक आदर किया। इसलिये इन आयुर्वेद-चिकित्सा का नाम मिश्राभी पड़ा। हमारी आयुर्वैदिक चिकित्सा बड़ी महत्व-पूर्ण है।

सन् ३२७ ईसी में ग्रीस के सम्राट् 'अलेक्जेंडर सिकन्दर' ने भारत में आकर सर्पदंश (सांप के काटे मनुष्य) की चिकित्सा के लिये यहां के वैद्यों को बुलाया था और उनकी सर्पाक्षी, नागदमन और निर्विषी आदि अमोघ जड़ी-बूटियों के द्वारा सर्पदष्ट मनुष्यों को विष रहित और जीवित होता हुआ देख कर तथा उनकी आशुफल-प्रद, चमत्कारिणी चिकित्सा पर मुग्ध होकर वे अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए। तब उन्होंने अपने यहां के टिसियस और मैगास्थनिस नामक चिकित्सकों को आयुर्वेदीय चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये भारत में रहने की आज्ञा दी।

हम आयुर्वैदिक चिकित्सा की महत्ता के विषय में यह भी प्रमाण देते हैं कि 'अलयाकबी' (प्राचीन अरब इतिहास लेखक) ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि 'हारुनरशीद' के समय अर्थात् ८००ई० में शाक [चरक] सस्रद (सुश्रुत) नामक ग्रन्थों का भाषा में अनुवाद हुआ है। यही चिकित्सा अरब से यूनान में गयी और फिर मुसल-मान बादशाह उस यूनानी चिकित्सा को भारत में अपने साथ लाये। इसीलिये इसमें वात, पित्त, कफ और शोणितवाद, शिरावेध-प्रक्षालो, अरिष्ट,मधु और गुग्गुल आदि अनेक आयुर्वैदिक औषधियाँ और वाजीकरण योगों का उल्लेख पाया जाता है।

चीनमें भी यहीं से वात,पित्त,कफ और शोणितवाद तथा आयु-र्वेदीय अनेक औषधियों का प्रचलन भारत से ही हुआ था। यह बात 'हुएनसिंह' नाम के चीनी सन्यासीने अपनी पुस्तकमें बतलाई है। फिर सन्३२७में आयुर्वेद के गौरवको हानि पहुंचाने वाले ग्रीसका भारत पर आक्रमण हुआ। तथा मध्यपंथ का ध्वंस अशोकहन प्रभाध्वंस और दार्शि नामक यवनों का भारत पर आक्रमण हुआ। उस समय राजा पुष्यमित्र ने इस आक्रमण को रोककर भारतमें शान्ति स्थापित की थी।

उसी समय जिसको कि अब लगभग २००० वर्ष होते हैं, भारत में 'चरकाचार्य' का प्रादुर्भाव हुआ था। तदनन्तर शक देश के राजा 'कनिष्क' ने भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। ये वेही शक नृपति हैं, जिनके नाम के तिथिपत्रों में शाके लिखे जाते हैं। इनको अब १८५१ वर्ष हुए। इसके उपरान्त काश्मीर में 'दृढबलाचार्य' हुए। इन्होंने अग्निवेशकृत चरकसंहिता में सिद्धस्थान के स्थान सत्रह अध्यायों से संयोजना करके उसकी पूर्ति की तथा और भी कई ग्रन्थों की रचना की। तत्पश्चात् हूँड़ जाति ने आयुर्वेदीय चिकित्सा को आघात पहुँचाया। इसके बाद राजा शक को महाराज विक्रमादित्य ने परास्त कर इस देश को स्वाधीन किया। इसी समय कवि शिरोमणि 'कालिदास,' वाग्भटाचार्य, डल्लनाचार्य तथा चक्रपाणि आदि विद्वान् हुए। इसके बाद मोहम्मद ग़ज़नवी ने भारत पर आक्रमण करके अनेक प्रकार से इसकी कीर्ति और विद्याओं को ध्वंस किया। इसके पीछे मोहम्मदग़ोरी का भारत पर आक्रमण हुआ, जिससे भारत की अत्यन्त दुर्दशा होगई। इसी ने महाराज पृथ्वीराज को पराजित करके भारतवर्ष को अपने आधीन किया था। उक्त मोहम्मद ग़ोरी ने १० वर्ष के भीतर मालव और दक्षिण को छोड़, समस्त आर्यावर्त को अपने वश में कर लिया। उस समय दक्षिण और मालव में इसके सामन्त ख़ुनी अलाउद्दीन ने सन् १३०० ईस्वी में बड़ा भारी आक्रमण किया और उसके पिता अलतमासने 'महाकाल मन्दिर' के खण्डहर कर दिये। इसके बाद बंग देश में 'इन्दुकर' के पुत्र 'माधवकर। (माधवाचार्य) हुए, जिनको अब ८०० वर्ष होते हैं। इन दोनों महापुरुषों के बाद 'विजय रक्षित, और 'श्रीकण्ठ' जी हुए, जिन्होंने प्रचलित माधवनिदान पर अपनी विस्तृत संस्कृत-व्याख्या लिख कर भारत का महान् उपकार किया था।

तदनन्तर हमारे आयुर्वेद को छिन्न-भिन्न करने वाले महादस्यु 'मुग़ल चंगेज़ख़ान' और 'तैमूरलंग' ने आक्रमण किया। इन्होंने असंख्य प्रजा को नष्ट करके और उनके घरों को जला और लूटकर उनकी समृद्धियों का अपहरण किया। उस समय आर्यावर्त में बड़ा ही हाहाकार मचा हुआ था। इसी कारण हमारे आयुर्वेद का पूर्व संचित विज्ञान-भण्डार छिन्न-भिन्न होगया।

सन् १४२० में भारत के सौभाग्य से दक्षिण में महाराज 'बीरबुक्क' ने भारत की रक्षा की। इसी धर्मात्मा राजा के समय में सायणाचार्य

और माधवाचार्यने वेदोंका उद्धार किया। इसी समय शार्ङ्गधरसंहिता के निर्माणकर्ता शार्ङ्गधराचार्य भी हुए। तत्पश्चात् मुग़ल और पठानों में ऐसा संघर्ष हुआ, जिनसे लाखों मनुष्य ध्वंस हो गये और भारत में फिर पूर्ण अशान्ति व्याप्त होगयी। उसके बाद इस देश में अकबर बादशाह का शासन हुआ। इसके शासन में भारत की अनेक विद्या-कलाओंकी उन्नति हुई। इतना ही नहीं, इन्होंने यवन होते हुए भी गो-रक्षा और संस्कृत साहित्यका बहुत कुछ उद्धार किया। इन्हीके शासन काल में आयुर्वेद के संग्रहकर्ता महाराज 'भावमिश्र जी' हुए। जिन्होंने 'भाव प्रकाश' नामक ग्रंथ का संग्रह कर आयुर्वेद के भिन्न-भिन्न विज्ञान को एकत्रित किया। अकबर बादशाह के बाद उनके पुत्र शाहजहां ने भारत के सिंहासन पर अपना अधिकार किया और देहली में लालक़िला और आगरे का ताजमहल बनवाया। इन्हीं के समय 'सिद्धान्तकौमुदी' के निर्माता 'भट्टोजी दीक्षित' और गंगालहरी के रचयिता 'जगन्नाथ त्रिशूली' तथा परिभाषेन्दु शेखर के कर्ता नागेश-भट्ट हुए। शाहजहां का छोटा पुत्र औरंगज़ेब था। इसने अपने शासन काल में भारत के अनेक मंदिर, तीर्थस्थान, पुस्तकालय और विद्यालयों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इसने संस्कृत और हिन्दी-साहित्य की असंख्य पुस्तकों को जलाकर ६-६ महीने तक हम्माम गरम कर-वाये थे। इस महाविपत्तिकाल में भी अनेक विद्वान् ब्राह्मणों ने यथा-शक्ति कतिपय ग्रन्थों की रक्षा की। क्षत्रियकुल-भूषण महाराज शिवाजी और महाराज रणजीत सिंह के समय उन ग्रन्थों का उद्धार हुआ था कि उसी समय अनेक विदेशियों ने फिर भारत पर आक्रमण किया, जिससे फिर विशेष गोल माल और परिवर्तन होने के कारण आयुर्वेद की बड़ी क्षति हुई। जिन बातों का चमत्कार वर्तमान में देख रहे हैं, यह सब हमारे भारतीय विज्ञान का ही विदेशियों द्वारा किया गया रूपान्तर है। यह आयुर्वेद का संक्षप्त इतिहास है।

वैद्यक शास्त्र शारीरिक और चिकित्सा इन दो भागों में विभक्त है। इनमें शारीरिक को ही प्रधानता दी गई है। चरक सूत्रस्थान अध्याय १३ में लिखा है कि—

'आतुरस्यान्तरात्मानं यो नाविशति रोगवित्।
ज्ञानबुद्धि प्रदीपेन न स रोगान् चिकित्सति।'

जो वैद्य रोगी के शरीर का हाल ज्ञान-बुद्धि के प्रकाश से नहीं जानता, वह चिकित्सा नहीं कर सकता। 'शारीरस्य प्रत्यक्षपरता-

स्यामाख्यं प्रत्यक्षानुमानोपमानागमैः अविरुद्धं उच्यमानमुपधारय इत्यादि'। शास्त्र-प्रमाण द्वारा शारीरिक को प्रत्यक्ष में प्रधानता दीगयी है। तथा सुश्रुत शारीर स्थान अध्याय ६ में लिखा है कि—

'शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद्विशारदः ।
दृष्टश्रुताभ्यां सन्देहमवापोह्याचरेत्क्रियाः ॥
प्रत्यक्षतश्च यद्दृष्टं शास्त्रदृष्टं च यद्भवेत् ।
समासतस्तदुभयं भूयोज्ञानविवर्धनम् ॥'

वैद्य को शारीरिक शास्त्र में चतुर होना चाहिये। प्रत्यक्ष और अनुमान आदि से संदेह को दूर कर चिकित्सा करनी चाहिये। प्रत्यक्ष से अनुभव किया हुआ और शास्त्र द्वारा निश्चय किया हुआ यह दोनों विषय सोने में सुगन्ध की समान हैं। वर्तमान समय के बहुत से अल्पज्ञ वैद्य परस्पर यह कहने लगे हैं कि शारीरिक उनको ही जानना चाहिये कि जिनको शल्य-चिकित्सा की आवश्यकता हो। यह उनका विचार सर्वथा बालक की समान हास्यास्पद है। चिकित्सा के अंगभूत रोगों के निदान में निम्न लिखित वाक्यों का वर्णन किया जाता है।

'मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥
अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेः रहिताशिनः ।
भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥
दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ।
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥' इत्यादि।

अनेक रोगों के निदान में आशय, अग्नि, हृदय आदि के जानने की वैद्य को परम आवश्यकता है। जिनके बिना जाने चिकित्सा-ज्ञान अपूर्ण ही रहता है। इसी आशय से चरक ने शारीरिकस्थान में लिखा है।

'शरीरं सर्वथा सर्वं सर्वदा वेद यो भिषक् ।
आयुर्वेदं स कार्त्स्न्येन वेद लोकसुखप्रदम् ॥'

जो वैद्य सब प्रमाणों द्वारा शरीर को अच्छे प्रकार जान गया है, उसी ने लोकों में सुखदायक आयुर्वेद को जाना है। आजकल बहुत से वैद्य लोग कहते हैं कि प्राचीन वैद्य केवल नाड़ी देखकर ही रोग

का पूर्ण निश्चय करलेते थे। उनको शारीरिक जानने की आवश्यकता ही न थी। यह उनका कहना प्रमाणमात्र है। क्योंकि प्राचीन आचार्य शारीरिक को चिकित्सा का प्रधान अंग मानते हुए उसका आदर करते थे। हम उनके भ्रम-निवारणार्थ वेद, शास्त्र, पुराण, और तंत्र आदि के कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं। यथा—

शतपथ ब्राह्मणे—शिर एवास्य त्रिवृत् तस्मात्त्रिविधं भवति। त्वगस्थि मस्तिष्काः ग्रीवापंचदशचतुर्दश वा एतेषां काष्ठकरणि। इत्यादिर्महान् प्रसंगः।

मनुष्य का शिर त्रिवृत् है। क्योंकि इसमें त्वक्, अस्थि और मस्तिष्क ये तीन प्रकार की वस्तुएँ होती हैं। ग्रीवा में १५ या १४ पेशियाँ होती हैं।

निरुक्तपरिशिष्टे १४ अ०—अष्टोत्तरं सन्धिशतमष्टाकपालं शिरः सम्पद्यते, षोडशावसाबहनानि, नवस्नायुशतानि, सप्तशतं पुरुषस्य मर्म्माणि इत्यादि।

निरुक्त परिशिष्ट के १४ अध्याय में कहा है कि मनुष्य के शरीर में १०८ सन्धि होती हैं। शिर में ८ कपाल नाम की अस्थियां, १६ वसा को बहाने वाली नसें होती हैं और ९०० स्नायु तथा ७०० मर्म्म होते हैं।

अग्निपुराणे—'श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वे त्यादिना, समग्राध्यायेन संक्षेपतः प्रायः सर्वेऽपि शरीरावयवा वर्णिता इत्यादि।' अग्नि पुराण के सम्पूर्ण अध्यायों में कान, त्वचा, नेत्र और जीभ आदि शरीर के सभी अवयव संक्षेप से वर्णन किये हैं।

पातञ्जलिः—नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानं तदिदं विस्तारयाञ्चक्रु. र्योगिवर्य्या हठयोगप्रदीपिकादिषु ग्रन्थेषु। अर्थात्—श्रेष्ठ योगियों ने हठयोग प्रदीपिकादि ग्रन्थों में लिखा है कि नाभिचक्र में संयम करने से शरीर की रचना का ज्ञान होता है।

इत्यादि प्रमाणों से अच्छे प्रकार जाना जा सकता है कि प्राचीन काल में आचार्यगण शारीर विज्ञान को आयुर्वेद का परम उपयोगी और सर्वोत्कृष्ट अङ्ग समझ कर अपने ग्रन्थों में उसका उल्लेख कर गये हैं। इसलिये अब हमारा यह आवश्यक कर्तव्य है कि शारीर विज्ञान को यथाविधि आदर के साथ जानकर और आयुर्वेदीय चिकित्सा की उन्नति कर संसार के उपकार द्वारा ऋषि-महर्षियों के परिश्रम को सफल करें।

अस्थिक्षय

हड्डी का क्षयरोग या हड्डी की दिक्।

TATSES MESENTRICA.

यह बड़ा ही भयङ्कर और असाध्य रोग है। पहले इस देश में इस रोग का कहीं नाम भी नहीं सुन पड़ता था, परन्तु आजकल यह सर्वत्र अधिकता से देखा जाता है। ग्रामों की अपेक्षा शहरों में, छोटे शहरों की अपेक्षा बड़े २ शहरों में यह अधिक होता है। यह प्रायः जवान स्त्री-पुरुष और बालकों के ही अधिकता से देखा जाता है। पर वृद्ध मनुष्यों के कदाचित् ही उत्पन्न होता होगा। यद्यपि इस रोग के उत्पन्न होने के अनेक कारण बताये जाते हैं,परन्तु दूषित अन्न, दूषित जल, दूषित वायु, मिथ्या आचरण आदि इसके उत्पन्न होनेके मुख्य कारण हैं। यह भी एक प्रकारका क्षय रोग है, इसलिये इसमें भी क्षयरोग के बहुत से लक्षण देखे जाते हैं। जैसे शरीर का सूखना, क्रम २ से धातुओं का क्षय होना, ज्वर की मन्दता आदि।

पाश्चात्य विद्वान् चिकित्सक इसमें क्षयरोग के अंश होना सिद्ध करते हैं। पूर्व लक्षण—इस रोग के पूर्व में जिस स्थान की अस्थि में क्षय होता है, उसी अस्थि के बाहरी भाग की त्वचा में कुछ पीड़ा और शोथ मालूम होता है। फिर धीरे २ चिरकाल में यह शोथ बढ़कर एक प्रकार की ग्रन्थियें सी होजाती हैं। वे ग्रन्थियें क्रमशः बढ़कर पकने योग्य होजाती हैं, परन्तु उनके पकने में बहुत समय लगता है। उन गांठों का वर्ण स्निग्ध, पाण्डुवर्ण और भद्दा सा होता है। पीछे यह गांठें अपने आप बहुत दिनों में पकती हैं। पकने के बाद उनमें से गाढ़ी-पीली और सफेद रंग की पीब निकलती है। उनमें पीड़ा और दाह अन्य व्रणों की अपेक्षा कम होती है। सब प्रकार के व्रणों को शोधन करने वाली और कृमिनाशक औषधियों का बराबर व्यवहार करने पर भी व्रण आराम नहीं होते। कभी २ किसी व्रणरोपक औषधि से व्रण ऊपर से भरकर सूख जाता है, पर

उसके भीतर पीप होती है । इसलिये फिर वह वैसे ही होजाता है । इस रोग में साधारण रूप से व्रण का ऑपरेशन करने से कोई लाभ नहीं होता, बल्कि ऑपरेशन से पीड़ा अत्यन्त बढ़ कर रोगी अधिक कमज़ोर होजाता है । इसलिये इसमें साधारण व्रण के समान ऑपरेशन करना उचित नहीं।

शरीर के जिस अंग की अस्थि में यह रोग उत्पन्न होता है, उस के समस्त दूषित भाग को अस्त्र से काट कर निकाल देना ही इसका सबसे अच्छा उपाय समझा जाता है । प्रायः ऑपरेशन करने पर उक्त हड्डी घुनी या गली सी निकलती है । यदि अस्थि का समस्त दूषित अंश ऑपरेशन के द्वारा काट कर नहीं निकाला जाता, कुछ बाकी रह जाता है तो भी ऑपरेशन से कोई लाभ नहीं होता । किन्तु रोगी को महान् कष्ट होजाता है। प्रायः देखा जाता है कि अनेक बड़े २ अस्त्र विद्या-विशारद नामी सर्जन इसके ऑपरेशन में भ्रम में पड़ जाते हैं । उनसे इसके ऑपरेशन में प्रायः भूलें होजाया करती हैं, जिससे कि क्षय वाली अस्थि का समस्त दूषित अंश नहीं निकाला जाता । और उसको बारम्बार उस अस्थि का ऑपरेशन करना पड़ता है, जिससे रोगी को महान कष्ट और निर्बलता बढ़ती जाती है । इसका किञ्चित् दूषित अंश भी अस्थि में शेष रहजाने से यह रोग किसी प्रकार आराम नहीं होता । इसलिये इसके सम्बन्ध में बड़े २ अनुभवी और विद्वान् डाक्टरों का मत है कि पहले दूषित अस्थि को थोड़ा ही काटना चाहिये । यदि उसमें उसका बहुत थोड़ा भाग ख़राब होगया हो तो उसको खुरच कर या रेत कर साफ़ करदेना चाहिये । क्योंकि अधिक हड्डी का भाग कट जाने से आरोग्य हड्डी के कटजाने का भय रहता है । इसी धारणा के अनुसार एक बार ऑपरेशन से ठीक न होने पर दूसरी बार ऑपरेशन किया जाता है; और दूसरी बार ठीक न होने पर तीसरी बार ऑपरेशन करना पड़ता है । इस प्रकार सात २ आठ २ बार उस हड्डी का ऑपरेशन करना पड़ता है । परन्तु हमने बीसों जगह देखा है कि बड़े २ सर्जनों के द्वारा बारम्बार ऑपरेशन करने पर भी कोई लाभ नहीं होता। किन्तु रोगी की यन्त्रणा की सीमा नहीं रहती । साथ २ क्षय रोग के लक्षण भी शीघ्रता से बढ़ने लगते हैं, और फिर रोग सर्वथा असाध्य होकर रोगी बड़े ही कष्ट के साथ इस जीवन-लीला को समाप्त कर देता है ।

किन्तु एक या दोवार में ही उक्त अस्थि का दूषित अंश काटकर निकाल देने से कितने ही रोगी आरोग्य हो जाते हैं। इसलिये इसका समस्त दूषित अंश निकाल देना ही इस की उत्कृष्ट चिकित्सा समझी जाती है। पर उस अस्थि का कितना अंश दूषित हुआ है, इसका निर्णय करना बड़ा कठिन है। इसके निर्णय करने में बड़े२ नामधारी डाक्टर चक्कर में पड़ जाया करते हैं, जिससे कि रोगी को बहुत काल तक भयंकर कष्ट भोगना पड़ता है। अनेक डाक्टरों का मत है कि यदि व्रण में पीव न पड़ी हो तो क्षय-ग्रसित हड्डी को एकेलिशिश क्रिया द्वारा अर्थात् उस हड्डी को इस प्रकार तख्ती आदि से बांधकर निश्चेष्ट कर देना चाहिये, जिससे उसमें किञ्चित् भी हलन-चलन न हो। रोगी को बड़ी सावधानी से पलंगपर रखकर उसके मलमूत्र की व्यवस्था भी वहीं कर देनी चाहिए—तथा उसको बढ़िया, पौष्टिक, शीघ्र पचने वाले भोजन की व्यवस्था करनी चाहिये। इस प्रकार की सुव्यवस्था से, बिना पके ही व्रण सूखकर रोग कुछ काल में आराम होजाता है।

कहीं कहीं औषध चिकित्सा के द्वारा इस रोग में विशेष लाभ होता देखा गया है। सुवर्ण-भस्म, मुक्ता-भस्म, पारद-भस्म, वसंत-कुसुमाकर, सुवर्णमालिनी-वसंत, मकरध्वज, स्वर्णसिन्दूर, अभ्रक-भस्म, रससिन्दूर आदि रसायन औषधियों का इस रोग में अच्छा उपयोग होता है। यदि रोगी अधिक कृश होगया हो तो वसंत कुसुमाकर, मृगाङ्क, सुवर्ण-पर्पटी आदि औषधियों में से कोई एक औषधि एक २ रत्ती की मात्रा से प्रातः-सायंकाल शहद के साथ सेवन करानी चाहिये। सुवर्णभस्म, के अभाव में लोह-भस्म के साथ समान भाग सोने के वर्क मिलाकर देने चाहिये। अथवा उत्तम लोहभस्म का ही कुछ दिनों तक नियमित रूप से सेवन कराने से अस्थिक्षय रोग में बहुत लाभ होता है।

यदि रोगी को ज्वर रहता हो तो बढ़िया अभ्रक-भस्म अथवा सुवर्णमालिनी-वसंत आदि औषधियें वंशलोचन, दारचीनी, इलायची, सत्वगिलोय आदि अनुपानों के साथ यथोचित मात्रा में सेवन करानी चाहिये। यदि रोगी को खांसी और कफ की शिकायत हो तो च्यवनप्राशावलेह, वासावलेह, द्राक्षावलेह, चासक-शर्बत, मधुयष्ट्यादि चूर्ण आदि औषधियें सेवन करानी चाहिये।

क्षुधा की मन्दता में द्राक्षासव दो २ तोले की मात्रा से दिन में दो बार देना चाहिये, तथा अन्य क्षुधावर्द्धक औषधियें भी दीजासकती हैं। यदि कोष्ठबद्धता (कब्ज़) मालूम हो तो १० या १२ द्राक्षाओं को गाय के दूध में पकाकर थोड़ी मिश्री व चीनी मिलाकर दिनमें एक या दो बार देना चाहिये। अधिक कोष्ठबद्धता होने पर दो तोले काष्ठायल एक कूर्टांक गाय के गरम दूध में मिलाकर देना चाहिये। अथवा हरड़ निसोत, सनाय, गुलाब के फूल और सोंफ-इन सब औषधियों का चूर्ण बनाकर और मिश्री मिलाकर एक तोले की मात्रा से गरम जल के साथ सेवन कराना चाहिये। यदि रोगी के शरीर में कुछ वात की अधिकता हो तो योगराज गुग्गुल गोदुग्ध में सिद्ध किया हुआ दशमूल का क्वाथ, शतावरी या अश्वगंधाका क्वाथ बनाकर देना चाहिये। इसमें जहां तक हो पौष्टिक और रुचिकारक भोजन देना चाहिये। गाय का दूध या बकरी का दूध अधिक सेवन कराना चाहिये। मीठे और स्वादु फलों को भी अधिक सेवन कराना चाहिये, तथा हरे और ताज़े शाक, गेहूं, उड़द, मूंग, पुराने चावल आदि खाद्यपदार्थ इसमें सब हितकर हैं।

अस्थिक्षय के व्रण की चिकित्सा—यद्यपि यह बात हम पहले कह चुके हैं कि इस रोग में व्रण हो जाने पर किसी भी जन्तुनाशक और रोपण औषधि से व्रण आराम नहीं होता। तथापि इसमें प्रति दिन नीम आदि के क्वाथ तथा अन्य संशोधक और जन्तुनाशक औषधियों के द्वारा नित्य प्रति व्रणों को स्वच्छ करना चाहिये; और संशोधक औषधियाँ लगानी चाहिये। पीब के बिलकुल साफ़ होजाने पर संशोधक और रोपक दोनों प्रकार की औषधियाँ मिलाकर लगाई जा सकती हैं। कभी २ ऐसा करने से विशेष लाभ होता है।

अस्थि पर लगाने के कुछ लेप और मरहम।

(१) व्रण और शोथ की अवस्था में नीम की पुल्टिस बनाकर बाँधनी चाहिये। अधिक दाह और पीड़ा होने पर गूलर, पाकर, पीपल, बड़ और आम इन पांचों वृक्षों की अन्तर्छाल का बारीक चूर्ण करके उसको जल के साथ मिला कर लेप करना चाहिये।

(२) नीम के स्वरस और गाय के घृत के द्वारा नीम का मरहम बनाकर लगाने से व्रणों की पीड़ा और दाह आदि कम होजाती है।

सम्पादक।

अश्वगंधा (असगन्ध)

ले०—श्री० प्रो० डा० रामकृष्णजी वर्मा बी०ए० बी० एस सी एल० एम० एस०
आयुर्वेदाचार्य्य।

अश्वगंध आयुर्वेद की एक प्रसिद्ध औषधि है। आजकल पाश्चात्य डाक्टर लोग इसके गुणों पर मुग्ध होकर इस का अनेक प्रकार से व्यवहार करने लगे हैं। किन्तु उन्होंने इसको नये रंग ढंग में ढाल कर ऐसा बना लिया है कि इसको देखकर भी हम नहीं पहचान सकते। वे इस पर एक मात्र अपना ही अधिकार कर बैठे हैं। यह वही मसल है कि 'हमारे ही यहां से आग लाई और नाम रखा वसुन्धर।' हमारे ही घर की वस्तु चुरावें और उसको ही काट छांट कर हमारे ही पास बेचने आवें, कैसा अंधेर है? पर भाई, समय का चक्र है। परिवर्त्तन होता ही रहता है। उक्त डाक्टरों की कृपा से हमारा अश्वगंधारिष्ट भी कितने ही नाम बदल चुका है। जिसका एक नमूना इस समय मेरे पास उपस्थित है। इसका यह काया-पलट बंगाल केमिकल वर्क में हुआ है, जो युग के मद में एक मात्र मतवाला होगया है। यह कोई खराबी की बात नहीं। सबको नये समाज में आने से कुछ न कुछ परिवर्तन करना ही पड़ता है।

अश्वगंधा के आश्चर्य-पूर्ण गुणों की प्रशंसा आयुर्वेद महर्षियों ने मुक्तकंठ से की है। इसके सेवन करने से सब प्रकार की दुर्बलता, धातुक्षीणता, शिर तथा हाथ पैरों की पीड़ा, मूर्च्छा, वीर्यपात, श्वास, खाँसी, क्षय, वातजनित रोग, बहुमूत्र, अजीर्ण, अम्लपित्त, अनिद्रा आदि रोगों में विशेष लाभ होता है। इसके द्वारा शरीर में नये रुधिर का संचार होकर शीघ्र बल की वृद्धि होती है। यह विद्यार्थियों के लिये परमोत्तम औषधि है। इस औषधि के सेवन करने से मलेरिया, प्लेग, चेचक और विशूचिका आदि संक्रामक रोगों के आक्रमण का भय नहीं रहता। इसके द्वारा शराब, काफी और चाय से भी अधिक शरीर में स्फूर्ति पैदा होती है। यह सबसे उत्तम वाजीकरण और रसायन है। इसके विषय में यह कहावत

प्रसिद्ध है कि जहाँ पर अश्वगंधा उत्पन्न होती है वहाँ के निवासियों के प्रमेह, धातुपात आदि की शिकायत नहीं होती। किन्तु इसके विरुद्ध भारत में इसकी बहुतायत से उत्पत्ति होते हुए भी भारतवासी प्रमेह, धातुपात आदि रोगों से अन्य देशों की अपेक्षा अधिक प्रसित देखे आते हैं। इसका केवल यही कारण है कि भारतवासी इस के गुणों को जान कर भी पेटेण्ट औषधियों के पीछे लगे हुए हैं। इसी कारण वे आजन्म रोगों से आक्रान्त रहते हैं।

आयुर्वेद शास्त्र में अश्वगंधा का उपयोग अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। किन्तु हम भी यथामति इसके कुछ प्रयोगों का यहाँ वर्णन करते हैं।

(१) अश्वगंधा सत्व—हरी असगंध को लेकर उसको खूब कूट पीसकर एक मोटे कपड़े में डालकर छान लेवे और उसमें पानी डालकर किसी चीनी या मिट्टी के बरतन में करके रखदेवे। थोड़ी देर में सफेद रंग का सत्व नीचे बैठ आयगा। फिर उस बरतन को धीरे से तिरछा करके उसका पानी निकाल देवे और सत्व को सुखा कर काम में लावे। मात्रा ४ रत्ती से १ माशा तक। इसको सेवन करने से प्रमेह, धातुक्षीणता आदि रोग दूर होते हैं।

(२) वाजीकरण के लिये—१ माशा असगंध के सत्व को १ तोले मिश्री के साथ मक्खन में मिलाकर खाने से सम्पूर्ण वीर्य-विकार दूर होते हैं।

(३) अश्वगंध-टिंचर—हरी असगंध को कुचल कर उसका रस निकाल लेवे या चक्रिंगबोर्ड में दबाकर उसका रस निकाल ले। पश्चात् इसको फिलटरपेपर द्वारा छानकर उसमें १०% रैक्टीफाइड स्प्रिट मिलाकर एक उत्तम कांच की शीशी में भरकर मजबूत डाट लगाकर रख देवे। इसको २ सप्ताह बाद काम में लावे। मात्रा ५ बूंद से २० बूँद तक उचित अनुपान के साथ सेवन करने से सब रोग दूर होते हैं।

(४) असगंध का हाईपो डरमिक (Hypo dermic Injection) भी किया जाता है। जिससे इसकी शक्ति अधिक बढ़ जाती है। कम्पावस्था में चिकित्सा करते समय अन्य औषधि न मिलाकर केवल इसी का इंजक्शन कर दिया जाय तो सोना और सुगंध का काम होता है। इसके द्वारा रोगी शीघ्र ही स्वस्थ होजाता है। रोग नष्ट

होकर तत्काल शरीर में नवीन रक्त का संचार होता है-और शक्ति अधिक बढ़ जाती है। इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—

असगंध का रस निकाल कर उसको मीना किये हुए पात्र में (In amiled tube) सेण्टीग्रेड के १०५ डिग्री तक गरम करे तो यह उबाल आ जायगा। तब उतार कर नीचे रख देवे और ६ घंटे के बाद फिल्टर द्वारा छानकर।५% रैक्टी फाइड स्प्रिट (Rectifid Spirit) मिलाकर एक काले रङ्ग की शीशी में बंद करके रख देवे। आवश्यकता के समय पिचकारी द्वारा १ से ४ C. C. तक इंजेक्ट करे। इससे शरीर में गर्मी मालूम होगी और किसी प्रकार का भय न होगा।

(५) चूर्ण—असगन्ध को सुखाकर पत्थर के खरल में डालकर छोटे २ टुकड़े करके कूटे। जब उसका चूर्ण मैदा के समान बारीक होजाय, तब उसको कपड़े में छान लेवे। इस चूर्ण से ६ वां भाग घृत मिलाकर खरल करके डिब्बे में भरकर रख दे। इसको १॥ माशे से ३ माशे तक सेवन करने से सब प्रकार का दर्द और वायु के विकार नष्ट होते हैं। बलवीर्य की अधिक वृद्धि होती है। इसे गरम पानी या गरम दूध के साथ सेवन करना चाहिये। यह चूर्ण वातज्वर, प्रसूति, वीर्यविकार, गठिया, पार्श्वशूल, शिरपीड़ा और उदर सम्बन्धी रोगों की अव्यर्थ औषधि है।

(६) बालपुष्ट सीरप—हरी असगंध का रस निकालकर उसमें दूनी शुद्ध खांड मिलाकर पकावे। जब वह पक जाय। तब उतारकर एक कपड़े में छानकर उत्तम शीशीमें भरकर रख देवे। मात्रा १ तोला से २॥ तोले तक दूध में डालकर देवे। इसको पीने से खांसी, श्वास, वायु-विकार, अशक्ति, प्रमेह, वीर्यदोष, प्रसूति, अम्लपित्त, वीर्यपात, अनिद्रा, अरुचि, हृत्कंप, हाथ पैरों का दर्द आदि रोग दूर होते हैं।

(७) अश्वगंधावलेह—असगंध १ पाव, कटेरी १ पाव, अडूसे की जड़ १ पाव-तीनों को १२ सेर जलमें डालकर पकावे। जब ३ सेर जल बाकी रहजाय, तब उतार कर और हाथों से खूब मलकर छान लेवे। फिर इसको आग पर चढ़ा देवे और एक तोला पिप्पली चूर्ण और १ पाव मिश्री मिला देवे। जब पक कर गाढ़ा होने लगे, तब उसमें २ तोले बादाम का तेल डाल देवे और खूब मिलाकर

बाद में नोचे उतार कर शंखलोचन, काकड़ासिंगी, इलायची के दाने, नस्त गिलोय, और मुलैठी प्रत्येक का चूर्ण ६-६ माशे डालकर खूब खरल करे। मात्रा १ माशे से २ माशे तक उचित अनुपान अथवा दूध के साथ सेवन करने से क्षय, खाँसी, श्वाँस कफविकार निमो-नया, ब्राङ्कइटिस, पीनस, जुकाम, छर्दि, कफज्वर आदि रोग नष्ट होते हैं। जिनको सैकड़ों औषधियें सेवन करने पर भी कोई लाभ न हुआ हो, वे महर्षियों द्वारा वर्णन की हुई इस औषधि के प्रभाव को देखें कितना गुण करती है। इसके सम्मुख काड लिवरआयल, ग्रांमाहट सीरप और पेटन्ट आदि सब रखे ही रहजाते हैं।

(८) असगंध के १० सेर पत्तों को लेकर उनको अच्छे प्रकार पानी से धोकर १ मन पानी में उबाले। जब १० सेर के लगभग जल शेष रहजावे। तब उतार कर पत्तों को खूब हाथों से मल कर और निचोड़ कर फेंक देवे। आध घंटे के पश्चात् उसमें से पानी को ऊपर से नितार कर छान लेवे। फिर उसको एक कलई की हुई कड़ाई में डालकर पकावे। पककर जब अफीम के समान गाढ़ा होजाय तब उतार लेवे। फिर इसको तोल कर इसका आधा भस्म बहेड़े का चूर्ण और इससे आधा भाग कत्थे का चूर्ण, कत्थे से आधा भाग काली मिर्च का चूर्ण और कालीमिर्च से आधा भाग सेंधा नमक उसमें मिलाकर अदरख के रस के साथ खरल करे। जब खूब खरल होजाय, तब उसकी ४-४ रत्ती की गोलियां या टिकियां बना लेवे। इन गोलियों को मुंह में डालकर रस चूसने से सब प्रकार की खाँसी दूर होती है और कफ निकल जाता है। क्षय-कास में भी ये गोलियें विशेष लाभ करती हैं।

(९) असगंध का मलहम—२ सेर असगंध के पत्तों को २० सेर पानी में डालकर पकावे। जब ५ सेर पानी शेष रहजाय—तब उतार कर पत्तों को निचोड़ कर फेंक देवे। फिर उस पानी को छान कर उसमें १० तोले तेल और १ तोला मुर्दासंख (Lethorgi) मिला कर आग पर पकावे। जब वह पककर गाढ़ा होने लगे तब उतार कर उसमें सिंदूर (Red Lead) ६ माशे; काली मिर्च, २ माशे, और तूतिया १ माशा कूट छान कर मिला देवे और खूब खरल करे। फिर उसको एक उत्तम डिब्बी में भरकर रख छोड़े इस मरहम को

लगाने से फोड़ा, फुन्सी, सब प्रकार के व्रण, चर्म रोग, उपदंश का व्रण, खुजली, मस्तिष्क का फोड़ा आदि असाध्य व्रण भी नष्ट होते हैं।

(१०) असगंध के पञ्चाङ्ग—को लेकर उसको अधकुटा कर दस गुने जल में डालकर पकावे। जब १ जौ पानी असगंध के ऊपर रह आवे, तब उतारकर खूब बारीक पीसकर एक मोटे वस्त्र में छान लेवे। फिर इसको अग्नि पर चढ़ाकर उसमें छिलके रहित काली मिर्च १ तो० और मुलैठी १ तो० मिलाकर पकावे। जब कुछ गाढ़ा होजाये-तब उसमें २ तोले जैतून का तेल मिला देवे। लपसी के समान गाढ़ा होने पर एक डिब्बे में भरकर रखदेवे। इसको गला-रोग, मुखरोग तथा जिह्वा रोग में लगाने से अथवा इसका रस चूसने से विशेष लाभ होता है मात्रा ४ रत्ती से एक माशा तक।

(११) अश्वगंधका तैल—असगंध का कल्क बनाकर उसको चौगुने तेल में डालकर पकावे। जब तेल मात्र शेष रहजाय तब छानकर काम में लावे। इस तैल को शरीर पर मालिश करने से बल, वीर्य की वृद्धि और वाजीकरण की शक्ति बढ़ती है। इसके सिवाय चोट का दर्द, वातरोग, पार्श्वशूल आदि में भी विशेष लाभ होता है। वातरोग अथवा चोट आदि में इस तेल में रुई भिगोकर गरम करके सेक करना या उसी को बांधना चाहिये।

(१२) अश्वगंधघृत—असगंध का कल्क तैयार करके चौगुने घी में डालकर पकावे। घृतमात्र शेष रहने पर छानकर रख छोड़े। इसको १ तोले से २ तोले तक मिश्री मिलाकर गरम दूध के साथ सेवन करने से बल वीर्य की वृद्धि और वातरोग नष्ट होते हैं।

(१३) अश्वगंध के पत्तों को लेकर उनका पुटपाक की रीति से रस निकाल लेवे। इस रस में चौगुना शहद मिलाकर आग पर पकावे। जब एक उबाल आजाय तब उसको उतार लेवे। पश्चात् इसमें पकाकर आधा किया हुआ अँगूर का रस जो उपरोक्त औषधि से तिगुना हो, मिलाकर एक बोतल में भर लेवे और उसमें २% रैक्टीफाइड स्पिट मिला देवे और उसका मुख बंद कर

१ मास तक रखा रहने दे। मात्रा आधे तोले से १॥ तोले तक पानी में मिलाकर सेवन करे और ऊपर से पौष्टिक पदार्थों का भोजन करे जो एक मास में अत्यन्त कठिन प्रमेह रोग दूर होता है-तथा शारीरिक शक्ति की वृद्धि होती है। इस प्रयोग का सेवन करते समय दूध का सेवन नहीं करना चाहिए।

(१४) अश्वगन्ध १ पाव, ब्राह्मी १ पाव, शङ्खपुष्पी १ पाव, तीनों को १२ सेर जल में डालकर पकावे। जब पककर ३ सेर जल शेष रह जाय-तब उतार कर और हाथों से मलकर छान लेवे फिर इसमें ३ सेर अँगूर का रस और २ सेर मिश्री मिलाकर पकावे। जब पककर ६॥ सेर शेष रह जाय तब उतार कर बोतलों में बन्द करके रख देवे। यदि उसमें ३% रैक्टीफाइड स्प्रिट मिलादे तो और भी अच्छा है। इसे एक सप्ताह के बाद १ औंस औषधि को थोड़े पानी में मिलाकर सेवन करने से नष्ट हुई स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है। यद्यपि आयुर्वेद शास्त्र में सैकड़ों औषधियाँ स्मरण शक्ति को बढ़ाने वाली है, परन्तु इसका शतांश भी वे लाभदायक नहीं होतीं। यदि इसको सेवन करते समय छोटी इलायची १०, बादाम की मींग २ तोला तथा सौंफ १ तोला सब को एकत्र पीस छानकर और उसमें शुद्ध खांड डालकर ½ पाव जल में ठढाई बनाकर संध्या के समय पीवे और यथेष्ट आहार करे तो बलवीर्य और स्मरणशक्ति की अत्यन्त वृद्धि होती है।

(१५) असगंध की हरी जड़ को लेकर भभके के द्वारा उसका अर्क निकाल लेवे। इसको २ बूंद से १५ बूंद तक मिश्री में मिलाकर सेवन करने से श्वास, खाँसी, प्रमेह, वीर्य के दोष, वात रोग, दर्द, शोथ और दुर्बलता आदि रोग दूर होते हैं। इसको १ तोला लेकर ३ माशे घी के साथ पकाकर और घृतमात्र शेष रहजाने पर छानले फिर तिल के समान व्यवहार करने से नसों का जल दोष इन्द्रियों की निर्बलता आदि दूर होजाती है।

(१६) असगंध के पञ्चाङ्ग को जला कर क्षार की विधि से उसका क्षार तैयार करे। इस क्षार को खाने से वायु के विकार, कंठ रोग, कफ रोग, श्वास, खाँसी उदर सम्बन्धी रोग दूर होते हैं और अन्न का परिपाक भली भाँति होता है।

(१७) एक पाव असगंध और ½ पाव सौंठ दोनों को अलग २ कूट कर एकत्र मिलावे। फिर उसको १ सेर गुड़ में मिलाकर पाक तैयार करे। मात्रा २ तोले से ४ तोले तक दूध या गरम जल के साथ सेवन करने से स्त्रियों के समस्त प्रसूत के रोग वायुदोष, कफदोष आदि नष्ट होते हैं। जो स्त्रियां सौभाग्य शुंठी का व्यवहार करती हैं, यदि वे इस औषधि का सेवन करें तो इससे विशेष लाभ होगा।

(१८) १ सेर अश्वगंध को लेकर २० सेर पानी में डालकर पकावे, जब २ सेर जल शेष रह जाय-तब उतार कर ठंडा करके छान लेवे। फिर उसमें २ सेर शुद्ध खांड डालकर उसके शक्कर पारे तैयार करे उनको बच्चे बड़ी प्रसन्नता से खाते हैं। इससे उनका बल बढ़ता है और वे शीघ्र हृष्ट पुष्ट होते हैं। कमज़ोरी से होने वाले रोगों के आक्रमण का भय नहीं रहता।

(१९) दो सेर असगंध को १६ सेर पानी में डाल कर पकावे। जब ६ सेर जल शेष रह जाय, तब उतार कर छान लेवे। फिर इस कशाय में ५ सेर गेहूँ भिगो देवे। जब गेहूँ भीगकर खूब फूल जावें- तब उनको धूप में सुखा देवे। पश्चात् गेहुँओं का बारीक आटा पीस कर उसको एक कपड़े में छान लेवे और उसको कुछ भूनकर उसमें समान भाग मिश्री और १० वाँ भाग घी मिलाकर चिकने बरतन में रखलेवे। आवश्यकता के समय यथोचित मात्रासे इसको हलुआ बनाकर खाने से बलवीर्य की वृद्धि होती है। इसको खाने से बालकों के शरीर में भी बल की वृद्धि होने लगती है।

(२०) असगंध १ पाव, नीम की छाल एक पाव, सौंठ, मिर्च, पीपल और चिरायता प्रत्येक २॥—२॥ तोले, गिलोय ५ तो०, भटकटैया की जड़ ५ तो०, चिसौंटा ५ तोले सबको एकत्र कर १६ सेर पानी में डालकर पकावे। जब ३ सेर जल शेष रह जाय, तब उतार कर अच्छे प्रकार मलकर छान लेवे। फिर एक कलई की हुई, कड़ाई में डालकर और उसमें ½ सेर शहद मिलाकर पकावे। जब पककर २ सेर प्रमाण शेष रह जाय, तब उतार कर छान लेवे और इसमें १०% रैक्टीफाइड स्प्रिट मिलाकर बोतलों में भरकर एक मास तक रखा रहने देवे। फिर १० बूंद से आधे तोला तक पानी में मिलाकर सेवन करने से कैसा ही प्लेग क्यों न हो इससे दूर होजाता है। इसको प्लेग के समय १०-१५ बूँद नित्य सेवन करते रहने से उसके आक्रमण का भय नहीं रहता। इसके द्वारा मलेरिया ज्वर

तथा अन्य सब प्रकार के ज्वर शीतज्वर, सन्निपात आदि भी दूर होते हैं।

(२१) असगंध का अर्क—४ सेर असगंध को कूट कर एक मन पानी में भिगा देवे और उसमें १ सेर मुनक्का और २ छटांक गुड़ डालकर ४ दिन तक भीगा रहने देवे। फिर सब का कर्णयीक-यंत्र में डालकर अर्क खींच लेवे। जिस बर्तन में अर्क लिया जावे, उसमें १ सेर असगंध का चूर्ण डालकर अर्क की भाप आने देवे। जब सब अर्क खिचकर उसमें आजाय तब फिर उस यंत्र को साफ कर दुबारा अर्क खींचे। फिर इस अर्क में आधा भाग अंगूर का रस मिलाकर उसको आग पर गरम करे और उसमें केशर ३ माशे, कस्तूरी १ माशे, बालछड़ ३ मा०, काली मिर्च ३ माशे, सोंठ ६ माशे सब का चूर्ण करके मिला देवे। पश्चात् पककर जब १/४ भाग जल बाकी रह जाय तब उसमें आध सेर शहद मिलाकर उबाल आने पर छानकर बोतलों में भरकर रख छोड़े। पश्चात् २ सप्ताह रखे रहने के बाद इसको ३ माशे से १॥ तोले तक पानी में मिलाकर सेवन करने से समस्त वीर्य-विकार तथा उसके उपसर्ग, वातरोग, जीर्णज्वर, प्रसूति, दुर्बलता आदि रोग दूर होते हैं। यह अत्यन्त वाजीकरण है। यह एक प्रकार को मद्य है, बहुत ही उत्तम फलदायक तथा वृद्धों को युवा बनाने वाली है।

(२२) एक पाव असगंध के छोटे २ टुकड़े करके आध पाव तिल के तेल में खूब पकावे जब पक जाय अर्थात् तैल कुछ सूख जाय तब निकाल कर फिर दूसरी बार और एक पाव असगंध डालकर तैल में भून ले फिर उसे भी निकाल लेवे। इस प्रकार जितनी असगंध उस तैल में भून सके भून ले। फिर असगंध से चौथाई अर्क नमक मिलाकर आतशी शीशी में भर दे और और शीशी को बालुका-यन्त्र में अधोमुख रखकर तेल निकाल लेवे। कैसा ही कठिन वात-रोग क्यों नहो इसकी मालिश करके सेकने से [illegible] होजाता है, इस तैल को उदररोग हैज़ा आदि में ५ से २० बूंद तक खाने से विशेष लाभ होता है। हैज़े में जिस समय समस्त शरीर में ऐंठन तथा खींच होने लगे तब इसको शरीर पर लगाने से वह [illegible] तत्काल दूर होजाते हैं।

(क्रमशः)

अन्वेषण ।

(लेखक—श्री वैद्यराज पं० भागीरथ स्वामी आयुर्वेद महामहोपाध्याय)

आजकल समस्त चिकित्साओं में एलोपेथिक चिकित्सा का ही सर्वत्र प्रचार बढ़ रहा है। बृटिशगवर्नमेण्ट इस चिकित्सा की वृद्धि के लिये प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया व्यय कर इसमें नये २ आविष्कार करा रही है। ऐसे कितने ही डाक्टर हैं, जिनको गवर्नमेण्ट से हज़ारों रुपया प्रतिमास वेतन के रूप में प्राप्त होता है। इन डाक्टरों ने मसूरिका (चेचक) रोग को दूर करने केलिये विशेष अनुसन्धान करके शीतला के टीके का आविष्कार किया है उसका इस समय समस्त बृटिश साम्राज्य में प्रचार हो रहा है। क्या गाँव क्या शहर कहीं भी कोई ऐसा बालक न होगा जो इस चेचक के टीके से बचा हो। किन्तु इस समय अनेक एलो-पैथिक चिकित्सा के विद्वान् डाक्टर इस चेचक के टीके को व्यर्थ समझने लगे हैं। इस विषय में उनका यह कहना है कि जिन बच्चों के टीका लगाया जाता है, उनके भी चेचक निकलती है। और जिन के टीका नहीं लगाया जाता उनके भी निकलती है। फिर इस टीके से क्या लाभ है? बहुत से ऐसे भी व्यक्ति हैं, जिनके न कभी टीका ही लगा और न चेचक ही निकली। इसी विचार को लेकर पालघाट नामक मद्रास प्रान्त में चेचक के टीके का एक विरोधी दल भी स्थापित हुआ था। उस दल के सेक्रेटरी ने संघ के नियमानुसार अपने बच्चे के टीका लगवाने से इनकार कर दिया था इस अपराध के कारण उस पर मुक़दमा चलाया गया और तीन रुपये जुर्माना हुए। किन्तु उसने जुर्माना नहीं दिया। जिससे उसको जेल में जाना पड़ा।

अब पाश्चात्य चिकित्सा के विशारद डाक्टर महोदय बतावें कि इसका क्या कारण है? क्या अनुसन्धान ठीक है? यदि ठीक है, तो उस-टीके द्वारा उनका यह पूरा काम क्यों नहीं होता। कुछ डाक्टरों का यह भी मत है कि टीके का फल एक वर्ष तक ही रहता है। इसके उपरान्त फल नष्ट होजाता है। इसी प्रकार प्लेग, आत्रक, न्युमोनिया

आदि के इंजक्शनों का भी यही हाल है । इसीलिये कहना पड़ता है कि सिफलिस मलेरिया आदि रोगों ने संसार में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया है । यूरोप में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो । जिसके कभी ये रोग न हुए हों । पाश्चात्य देशवासियों को प्रति वर्ष मलेरिया, सिफलिस, प्लेग, हैज़ा आदि सम्पूर्ण रोगों के इंजेक्शन कराने पड़ते हैं । जब जिस रोग का दौरा होता है, तब उसी के इंजेक्शन किये जाते हैं । सारांश, वर्ष के ३६० दिनों में प्रायः ५०० या ६०० बार पश्चिमी जनता को आत्मरक्षा के लिये इंजक्शन कराने पड़ते हैं ।

प्रायः ऐलोपेथिक चिकित्सा की समस्त सामग्रियें पाश्चात्य लोगों के अधिकार में हैं । यदि आज इंजेक्शन आदि की औषधियां विलायत से न आवें, तो यहां के डाक्टर किसी प्रकार भी चिकित्सा नहीं कर सकते । इसका यही अभिप्राय है कि भारतीय डाक्टर चिकित्सा विषय में सर्वथा हमारे आधीन रहें । और जो विलायत वाली औषधि आदि तैयार करें । उनका कम्पोण्डर अथवा एजेण्ट के रूप से भारत में प्रचार करते रहें । इससे यह निश्चय है कि यदि भारतीय डाक्टर प्रत्येक चिकित्सा कार्य में विलायत वालों के आधीन रहेंगे तो उनके रिसर्च कार्य का फल कदापि स्थायी नहीं होसकता ।

इस समय लण्डन में मसूरिका रोग का प्रकोप बढ़ रहा है, वहां के केवल मेट्रोपालिटन एसाइलम बोर्ड के अस्पताल में २६५ रोगियों की नित्य चिकित्सा होती है । गत मई मास में ३३८ मसूरिका रोगियों की दैनिक चिकित्सा होती थी ।

इसी प्रकार ऐसे बहुतेरे रोग हैं, जो सदैव विलायत में दौरा करते रहते हैं । हाँ यह स्पष्ट है कि पाश्चात्य डाक्टरों का अवेषण अथवा अहर्निश उनको अपनी धुन में लगे रहना भारतीयों से सर्वथा उत्तम और दृढ़ है ।

भारतवर्ष के विद्वानों का इस विषय में यह मत है कि, भारत में दरिद्रदेव का चिरन्तन से निवास है । निरीह भारतवासी इस दरिद्र देव के अनुग्रह से आधे पेट भूखे रहते हैं, ऐसी अवस्था में भारत का निरीह समाज क्या रिसर्च (अन्वेषण) कर सकता है । परन्तु फिर भी भारतवासियों के और महत्व पूर्ण अन्वेषण कभी कभी होते ही रहते हैं ।

× × × ×

संसार में सम्पत्ति-संतान सर्व प्रिय है । ऐसा कोई स्त्री-पुरुष न होगा, जो अपने वंश की वृद्धि न चाहता हो किन्तु भारतवर्ष में दुर्भिक्ष के कारण व्यापार सर्वथा नष्ट होगया है । हमारी गवर्नमेण्ट ही सम्पूर्ण व्यापारों की मालिक बनी हुई है । वह अपने सामने किसी को लाभ पहुंचाने की इच्छा नहीं रखती । इसलिये भारत के समस्त प्राणियों का जीवन संकटमय रहता है । ऐसी स्थिति में भावी सन्तान किस प्रकार अपना पोषण कर सकती है । इसी का विचार कर देश के पूज्यनेता श्रीमान् महात्मा गांधी आदि अनेक महानुभावों ने देश को सलाह दी है कि यदि स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है तो गुलाम सन्तान पैदा मत करो । इसी उद्देश्य को लेकर हिन्दुस्थान में सन्तति निग्रह नाम की एक संस्था की स्थापना की गयी है । यह महाराष्ट्र के प्रधान नगर पूना में स्थापित हुई है । इसके अध्यक्ष श्री० आर गैटगिल बनाये गये हैं । इसकी अन्तरंग समिति के अनेक ऐसे डाक्टर सदस्य हैं । जो इसकी उन्नति के लिये अनेक प्रकार के उपायों द्वारा सन्तान निग्रह का प्रत्येक नगर तथा ग्राम में प्रचार कर रहे हैं । इसी प्रान्त के कोराद् ग्राम में इसकी एक शाखा सभा भी खोली गई है ।

× × × ×

न्यूयार्क के गत ९ फरवरी के एक समाचार-पत्र से मालूम हुआ है कि यूरोप में तोतों के द्वारा एक विचित्र रोग उत्पन्न हुआ है । जिसके कारण अनेक मनुष्य मृत्यु के ग्रास हो रहे हैं । संयुक्त राज्य अमेरिका के आरोग्यरक्षा विभाग की प्रयोगशाला के एक कर्मचारी को वाशिंगटन में आकर उक्त रोग के अन्वेषण का कार्य भार सौंपा गया । किन्तु वह तोतों के स्पर्श से वहां आकर शीघ्र ही मर गया । प्रयोगशाला की विज्ञप्ति से पता चला है कि अब तक २०० से अधिक तोतों की परीक्षा की गयी है । किन्तु तोतों के किस अंग अथवा किन परमाणुओं से इस रोग का प्रादुर्भाव हुआ । यह ठीक नहीं जान पड़ा । जर्मनी के हालैंड डेन्मार्क ने अपने स्थानों में तोतों का आना बन्द कर दिया है । पाठकों को यह पढ़कर पता चल गया होगा कि एक क्षुद्र रोग के निर्णय करने में कितने ही यूरोपियन डाक्टरों की महीनों की रोटी चल गई । इन डाक्टरों का बैठे २ खाना और मौज उड़ाना यही एक कर्तव्य है । बीमारी के तोतों के

अनेक स्थान से अमुक कृमि उत्पन्न होकर रोग फैलता है। इस रोग के दूर करने के लिये इंजैक्शन बनाया जायगा, लिबोटरी खोल कर पैसे पैदा किये जायेंगे। फिर भी यदि इस रोग की समाप्ति न हुई तो फिर अन्वेषण के बहाने असंख्य रुपया व्यय किया जायगा। यदि हिन्दुस्तान में यह रोग हुआ होता तो किसी विशेष अन्वेषण की आवश्यकता नहीं पड़ती। आयुर्वेद में लिखा है कि जङ्गम विष की उत्पत्ति स्थावर विष के द्वारा होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार तोतों के द्वारा उत्पन्न हुए रोग पर केवल आर्सनिक (संखिया) के व्यवहार से रोग की निवृत्ति होसकती थी। अथवा चरकोक्त अनपद्गोध्वंसनीय अध्यायानुसार यह अनपदोध्वंसक रोग भी होसकता है।

इसीप्रकार आजकल यूरोप में विक्षिप्त (पागलपन) रोग का विशेष प्रकोप देखा जाता है। इस विषय में मद्यपान कर वाराङ्गनाओं के साथ विहार करने वाले मनुष्यों का यह मत है कि जब से अमेरिका में मद्य विक्रय तथा मद्यपान विरोधक क़ानून की रचना हुई है, तभी से इस रोग का आविर्भाव हुआ है। इसी प्रकार एक डाक्टर ने भी कहा है कि जब से मद्यपान क्रय निषेधक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है। तब से पागलखानों में तिल धरने को स्थान खाली नहीं है। केवल शराब न मिलने के कारण पागलपन बढ़ रहा है। सम्भव है, उक्त डाक्टर महोदय मिलों की ओर से वकील बनकर उनका पक्ष समर्थन करते हों। मदात्यय रोग विशेषतः मादक द्रव्यों के सेवन करने से बढ़ता है। किन्तु यूरोप निवासी इसके विरुद्ध अर्थात् शराब न मिलने से इस रोग का होना बतलाते हैं यह कैसी आश्चर्य की बात है! दूसरे दल के डाक्टरों का कहना है कि यूरोपनिवासियों को बिल्कुल शराब न मिलने से उत्तरोत्तर मृत्यु संख्या में उन्नति होरही है। थोड़ी शराब पीने से शरीर के अवयव ठीक रहते हैं।' यही दशा अफीम खाने वालों की होती है विशेष अफीम खाने वाले को यदि अफीम छुटादी जाय तो वह मरण प्राय होजाता है। अफीम सेवन की लत को छुटाने के लिये क्रम से धीरे २ कम कर छोड़ने से छुट सकती है। किन्तु एक दम नहीं छूट सकती। हमको यहाँ के रिसर्च करने वाले डाक्टरों से कहना है कि वह पागलपन रोग का निवारण करने, तथा मद्यपान न करने से होती हुई मृत्यु संख्या को रोकने के लिये कोई उचित सम्मति क्यों नहीं देते?

हमारी सम्मति में पागलखानों में रहने वाले मद्यात्यय रोगियों को प्रथम उनकी इच्छानुसार शराब पिलाकर उनके मस्तिष्क को ठीक करके यदि क्रम से उनकी शराब पीने की आदत कम की जाय तो उनकी शराब पीने की आदत और शराब न मिलने से होने वाला पागलपन रोग मिट सकता है। और मृत्यु संख्या भी घट सकती है।

× × × ×

आजकल रेडियम नाम की धातु का व्यवहार व्यापार जगत् में अधिकता से देखा जाता है। यह धातु सुवर्ण से भी अधिक मूल्यवान् है। इसका कितनी ही चीज़ों में रात्रि में चमक आदि कार्यों के लिये उपयोग किया जाता है। किन्तु शरीर के लिये यह धातु अत्यन्त भयंकर साबित हुई है। यद्यपि धारण करने वालों को यह इतनी हानि नहीं पहुँचाती, किन्तु असावधानी से कारखानों में काम करने वाले श्रमजीवियों के लिये यह बड़ी ही खतरनाक है। कुछ दिन हुए, रेडियम धातु के कारखाने में काम करने वाले कुछ स्त्री-पुरुषों के सन्धि स्थानों पर शूल उत्पन्न होकर उपदंश के लक्षण दिखाई देने लगे थे, और उनके मुख से रक्तपात होता था। इसको देख कर प्रथम सन्धिवात का सन्देह हुआ। फिर सिफलिस उरस्तत आदि रोगों का सन्देह हुआ। परन्तु रोग का ठीक २ निर्णय न होसका।

थोड़े ही दिन पूर्व न्यूइंगलैंड अमेरिका के कारखाने में कुछ जवान स्त्रियाँ घड़ी के डायलों पर रेडियम चढ़ाने का कार्य करती थीं। उनमें से एक इटालियन लड़की को ब्रुश की डंडी को दाँतों में दबाकर काम करना पड़ता था। कुछ दिनों बाद उसके सन्धि स्थानों में पीड़ा उत्पन्न होगयी। जिसको डाक्टरों ने गठिया रोग बतलाया। पीछे रोग बिगड़ कर उसके एक लज्जा जनक रोग पैदा होगया। उस लड़की की अनेक प्रकार की चिकित्सा की गई परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। अन्त में मुख से रक्त की वमन हुई जिसके द्वारा उसकी मृत्यु होगयी। इसी प्रकार जब अनेक मनुष्यों की मृत्यु हुई। तब विशेष अनुसन्धान किया गया। और ५ वर्ष के बाद क़ब्र से उस इटालियन लड़की का शव निकाल कर शस्त्र क्रिया द्वारा परीक्षण किया गया। तब मालूम हुआ कि रेडियम के परमाणु जीवित अवस्था में उसके शरीर में प्रवेश कर गये थे। वे परमाणु उसके प्रत्येक अंग में पाये गये। तब से लोगों को पता चला है कि रेडियम

अत्यन्त भयंकर है। किन्तु अभी तक पाश्चात्य डाक्टरों ने ऐसी किसी युक्ति का आविष्कार नहीं किया। जिसके द्वारा जीवित अवस्था में रेडियम के परमाणु शरीर से पृथक् अथवा नष्ट किये जासकें।

× × × ×

अनुसन्धान करने से पता चलता है कि आजकल मनुष्य के उदर सम्बन्धी अनेक रोग देखे जाते हैं। और कितने ही मनुष्यों की इस रोग के द्वारा मृत्यु भी हो जाती है। आजकल के व्यापारी समय पर व्यापार सम्बन्धी भावों की उलझन में पड़कर भूख प्यास को भूल जाते हैं। इसी प्रकार कितने ही मनुष्य व्यसन तथा नाँच-तमाशों में फँस कर भूख प्यास की बिल्कुल उपेक्षा कर देते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप आँतों में भयंकर शोषण उत्पन्न होता है। उस काम से निवृत्त होकर भी वे लोग मनमें पूर्वोक्त भावों को लेकर ही भोजन करते हैं। जिससे आँतों की आर्द्रता नष्ट होजाती है। और धीरे २ मंदाग्नि रोग होजाता है। अन्न का परिपाक अच्छे प्रकार नहीं होता और पीछे आमातिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी आदि रोग पैदा होजाते हैं। किसी २ के क्षय रोग भी होजाता है। जिस प्रकार क्रोध आने पर मनुष्य की भूख प्यास शान्त होजाती है। उस अवस्था में पक्वाशय निर्बल पड़ जाता है। भारतवर्ष में व्यापारी, निर्धन, किसान आदि सभी अपने २ कार्य में व्यस्त होकर अनेक रोगों के शिकार बन जाते हैं। इस लिये प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह जब कार्य से निवृत्त हो, तब बड़े धैर्य से चित्त को सावधान कर कुछ मनोरञ्जन के पश्चात् भोजन करे। हँसने और दिल्लगी करने से पक्वाशय में क्लेद उत्पन्न होकर किसी प्रकार के रोग होने की आशंका नहीं रहती। अपूर्ण

स्त्री रोगों की सरल चिकित्सा।

नष्टार्तव की चिकित्सा—जिन स्त्रियों के किसी कारण से आर्तव नष्ट होकर ऋतु धर्म होना बन्द होजाता है, उसको नष्टार्तव कहते हैं। अब इसकी चिकित्सा रजोदर्शन को प्रकट करने वाले सरल योगों द्वारा नीचे लिखी जाती है।

१—रीठे के बक्कल को पीस कर उसकी टिकिया बनाकर योनि में धारण करने से नष्ट हुआ ऋतु धर्म फिर शीघ्र ही होने लगता है।

२—इन्द्रायण की जड़ की योनि में धूनी देने से बहुत दिनों का रुका हुआ ऋतु धर्म शीघ्र खुल जाता है।

३—मजीठ की जड़ को पानी में पका कर पीने से शीघ्र ही ऋतु-धर्म नियत रूप से होने लगता है।

४—हींग, कालानमक, सौंठ, मिर्च, पीपल और भारंगी, इनका चूर्ण गरम जल के साथ फाँकने से बहुत दिनों का बन्द हुआ रजोधर्म भी खुल जाता है।

५—ऋतुधर्म बिल्कुल बन्द होगया हो, अथवा कम होता हो तो एलुआ २ से ४ रत्ती तक नित्य शीतल जल के साथ सेवन कराने से ऋतुधर्म खुल कर नियमित रूप से होने लगता है।

६—गाजर के बीजों को पानी के साथ ५ या ७ दिन पीने से रजोदर्शन खुल कर होता है।

७—जङ्गली कपास के पञ्चांग के क्वाथ में किंचित् एलुआ डाल-कर सेवन करने से रजोधर्म खुलकर होता है और तत्सम्बन्धी सब विकार दूर होजाते हैं।

(१) स्त्रियों के शुक्र के नष्ट होने पर—१ तोला तिल लेकर आध सेर पानी में पकावे। जब पककर १ छटांक जल बाकी रह जाय-तब उसमें गुड़ ६ माशे, घी ६ माशे, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल और भारंगी की जड़ का चूर्ण प्रत्येक १-१ माशे, मिलाकर पीना चाहिये। इससे स्त्रियों का नष्ट हुआ शुक्र फिर उत्पन्न होता है।

२—उक्त प्रकार से १ तोला तिलों का अष्टमांश काढ़ा करके उसमें शतावर, करंज की छाल, दारु हल्दी, भारंगी और पीपलामूल इन सब औषधियों का चूर्ण १-१ माशा डालकर पीने से स्त्रियों का नष्ट हुआ शुक्र फिर उत्पन्न होता है।

परीक्षित-प्रयोग।

(१) नेत्रों के दुखने पर—एक छटांक इमली के कोमल पत्ते लेकर उनको पत्थर पर अच्छे प्रकार कुचल कर वस्त्र में छानकर उनका रस निकाल लेवे फिर उस रस में रसौत २ माशे बड़ी हरड़ का वक्कल २ माशे पठानीलोध २ माशे, फिटकरी १ माशे और अफीम २ रत्ती इन सब को अच्छे प्रकार मिलाकर आंखों के भीतर बूंद २ डालने और

आंखों के ऊपर इसका लेप करने से आंख दुखने की भयंकर पीड़ा, आंख की सूजन, लाली और पानी का गिरना शीघ्र दूर होजाता है।

(२) उत्तम गुलाब के एक छटांक अर्क में ६ माशे मेंहदी के सूखे हुए पत्तों को भिगो देवे फिर दूसरे दिन पत्तों को मलकर उस अर्क को एक शीशी में भरकर रख देवे उसमें से २—२ बूंद नेत्रों में डालने से आंख की भयंकर पीड़ा गरमी दाह और लाली दूर होती है।

अथवा गुलाब के जल में किञ्चित् सेंधा नमक या फिटकरी डालकर इसका लोशन तयार कर ले, उसको दुखती आंखों में डालने से नेत्रों की लाली, पीड़ा और सूजन तत्काल शान्त होती है।

(३) नेत्रों में रोहे होजाने पर—एक छटांक बढ़िया गुलाबजल में २ रत्ती तूतिया मिलकर और उस जल को नितार कर २—२ बूंद नेत्रों में डालने से नेत्रों के रोहे और उसकी समस्त पीड़ा दूर होती है। "वैद्यराज"

नेत्र रोगों पर।

आक का पत्ता, तम्बाकू, हरड़, फिटकरी, गेरू और अफीम इन सबको एकत्र पीसकर कुछ गरम करके आंख के ऊपर लेप करने से आंख की सूजन, पानी का गिरना, और आंख की पीड़ा दूर होती है।

रामकृष्ण शुक्ल "रामकवि" समथनवां

(१) गरमी से उत्पन्न हुए सिर के दर्द पर—कपूर, पीपरमेण्ट, चंदन और धनियां इन सबको एकत्र जल के साथ पीस कर लेप करने से गरमी से उत्पन्न हुआ सब तरह का सिर का दर्द दूर होता है।

(२) सर्दी और जुकाम से उत्पन्न हुए सिर के दर्द पर—लाल कनेर के फूल और किञ्चित् अफीम इन दोनों को एकत्र जल के साथ पीस कर कुछ गरम करके माथे के ऊपर लेप करने से सिर की भयंकर पीड़ा सर्दी जुकाम आदि दूर होते हैं।

(३) वायु से उत्पन्न हुए सिर के दर्द पर—केसर और कपूर दोनों को एकत्र पीस कर गाय के घी में मिला कर लेप करने से वायु से उत्पन्न हुआ सिर का दर्द दूर होता है।

(४) बच्चों के दांत निकलने की पीड़ा पर—बच्चों के दांत निकलते समय उनको बड़ा कष्ट होता है जिनी को हरे पीले दस्त

होने लगते हैं और किसी को घोर तृषा, दाह और ज्वरादि उपद्रव पैदा होजाते हैं। ऐसी अवस्था में वंशलोचन, सत्तगिलोय, छोटी इलायची, जहरमोरा, नागरमोथा, कत्था और धनियां ये सब औषधियाँ समान भाग लेकर और बारीक पीसकर गुलाब तथा सौंफ के अर्क़ में खरल करके १—१ रत्ती की गोलियाँ बनाले, इन गोलियों को बालक की अवस्थानुसार दिन में २—३ बार उसकी माता के दूध में या सौंफ के अर्क़ में घिस कर देने से बालक की उक्त सब पीड़ा दूर होती है। "वैद्य"

प्राप्ति-स्वीकार।

(१) सिद्ध प्रयोग पारिजात—प्रथम भाग-ले० श्री पं० मुरारीलाल जी शर्मा वैद्य-प्रकाशक—प्राणसंजीवन औषधालय मु० पो० हवेली खड़गपुर (मुंगेर) साइज़ क्रूकी पृष्ठ संख्या १३८ मूल्य १।) रु०।

इस पुस्तक में उक्त वैद्य जी ने अपने ३० वर्ष के अनुभव किये हुए लगभग सवासौ उत्तमोत्तम सिद्ध प्रयोगों का संग्रह किया है, पुस्तक बड़ी उपयोगी है, वैद्यों के सिवाय साधारण गृहस्थ भी इसके द्वारा बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं।

(२) अनुभूत बाल-चिकित्सा—इस पुस्तकके लेखक भी उक्त वैद्यजी ही महोदय हैं, प्रकाशक वही प्राणसंजीवन औषधालय हवेली खड़गपुर (मुंगेर) साइज क्रूकी पृष्ठ संख्या लगभग १०० मू० ।=) आने इस पुस्तक में लेखक महोदय ने अपने आजमाये हुए अनेक बालकोपयोगी उत्तम और सरल प्रयोगों का संग्रह किया है पुस्तक अच्छी है इसके द्वारा वैद्यों के सिवाय साधारण मनुष्य भी बालकों के कितने ही रोगों की चिकित्सा सहज में ही कर सकते हैं, इन दोनों पुस्तकों के प्रकाशित करनेके लिये उक्त वैद्य जी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

(३) प्रश्न-पत्र संग्रह—सम्पादक पं० मुरलीधर जी शास्त्री वैद्य वाचस्पति अध्यापक दयानन्दायुर्वेदिक कालेज प्रकाशक सूरी ब्रादर्स मोरीगेट लाहौर साइज क्रूकी पृष्ठ संख्या ८७ मू० ॥) आने अधिक हैं।

इस पुस्तक में वही प्रश्न लिखे गये हैं जो उक्त कालेज को गत परीक्षाओं में दिये जाचुके हैं, आयुर्वेद की परीक्षा देने वाले विद्यार्थी इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं।

(४) भाषा भगवद्गीता—लेखक और प्रकाशक श्री पं० रामधनी जी शर्मा ऽयास मु० पो० सदीसोपुर (पटना) साइज़ रायल अठपेजी पृष्ठ संख्या १२८ मूल्य ॥) इस पुस्तक में श्रीमद् भगवतगीता का दोहा चौपाई आदि छंदों में सरल और सुंदर भाषानुवाद किया गया है। पुस्तक भगवत भक्तों के बड़े काम की है।

(५) चारु-चिन्तन—लेखक विद्याप्रेमी श्री०दीनानाथजी "अशंक" पहाड़गाँव आसीन प्रकाशक सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद। श्रीयुत दीनानाथ जी "अशंक" हिन्दी के प्रसिद्ध कवि हैं, आपकी सुन्दर कविताएँ कितने ही मासिकपत्रों में प्रकाशित हुआ करती हैं वैद्य के पाठक भी आपकी स्वास्थ्य सम्बन्धी सरल और भाव पूर्ण कविताओं का कभी २ रसास्वादन करते रहते हैं। इस पुस्तक में आपकी विविध विषयक और उपदेश पूर्ण कितनी ही कविताओं का उत्तम संग्रह है।

विविध विषय।

चेचक के टीके पर महात्मा गांधी का मत।

हमारी गवर्नमेण्ट ने चेचक का टीका लगाने का क़ानून बना दिया है चेचक का टीका गाय के बछड़े को निर्दयता पूर्वक बाँधकर उसके पेट में सौ सवासौ जगह नश्तर लगाकर और उसमें चेचक का ज़हर डालकर आठ दिन के बाद फिर बछड़े के नश्तर लगाये हुए स्थान से निर्दयता पूर्वक निचोड़ कर और पीब निकालकर तयार किया जाता है, इस विषय में डाक्टर वाल्टर हेडवेन कहते हैं कि—एक डाक्टर की हैसियत से मैं कहता हूँ कि चेचक का टीका लगाना सामान्य बुद्धि के विपरीत है। ऐसी गंदी चीज़ को लेकर उसका ज़हर मनुष्य के शरीर में पहुंचाने के पहले लोगों को यह विश्वास दिलाना चाहिए, कि उससे जो लाभ होना बताया जाता है वह होगा और कोई हानि नहीं होगी, मैं बृटिश राज्य के किसी भी डाक्टर को चुनौती देता हूँ कि अगर उसमें साहस हो तो वे इस प्रकार विश्वास पैदा करें। अगर ऐसी गारंटी नहीं की जासकती तो किसी को क़ानूनन टीका लगवाना अनिवार्य करने का अधिकार नहीं होना चाहिए, उलटे यह देखा गया है, कि चेचक

टीका लगाये हुए ही मनुष्यों से अधिक निकलती है; इसलिये कानूनन टीका लगाये हुए मनुष्यों से बचना चाहिये जब से टीके का नियम अनिवार्य हुआ है, तब से नवयुवकों में गुप्तेन्द्रिय सम्बन्धी रोग चौगुने बढ़ गये हैं। इस देश में लोगों को बचपन से ही चेचक के सम्बन्ध में बहुत कुछ डरा दिया जाता है इससे वे चेचक को बहुत भयानक समझते हैं, पर ऐसी डर की कोई बात नहीं है, यह भी एक साधारण रोग है और शरीर की गन्दगी के फूट निकलने पर पैदा होजाता है। और यह प्राकृतिक उपायों से सहज में ही आराम किया जासकता है।

विलायती औषधियों का बहिष्कार।

उसदिन देहली के डाक्टरों ने अपनी एक सभा में यह प्रस्ताव पास किया है कि-विलायत से किसी प्रकार की औषधियें न मंगाई जायँ, और जो विलायत को औषधियें मंगाने के लिये पहले आर्डर दिये जा चुके हैं वह सब कैंसिल करा दिये जायँ, अब वे लोग भारत में उत्पन्न होने वाली देशी औषधियों को ही चिकित्सा के काम में लाने का विचार कर रहे हैं।

❋ सूचना ❋

वैद्यों, आयुर्वेद-प्रेमियों तथा आयुर्वेदिक संस्थाओं को यह सादर सूचित किया जाता है कि नि० भा० आयुर्वेद महामण्डल विद्यापीठ द्वारा दी जाने वाली आयुर्वेद भिषक, आयुर्वेद विशारद और आयुर्वेदाचार्य ये उपाधियां रजिस्टर्ड एवं पेटेन्ट करा ली गई हैं। अब किसी को सिवा आयुर्वेद विद्यापीठ के इन उपाधियों के देने तथा अपने नाम के आगे लिखने का बिना विद्यापीठ से प्राप्त किये अधिकार नहीं है। कोई भी संस्था या व्यक्ति जो इसके विरुद्ध करेंगे वे नियमानुसार दण्ड के भागी होंगे।

रघुवरदयालु भट्ट वैद्य-मन्त्री,
नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ, कानपुर।

Regd. A. 587.

वैद्य

प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यक सम्बन्धी, सर्वोपयोगी

❋ मासिक-पत्र ❋

सम्पादक—शङ्करलाल वैद्य

वर्ष १७ } मुरादाबाद, अप्रैल सन् १९३० { संख्या ४

* विषय-सूची *

१ सत्कामना ११३

२ हृद्रोग ११४

३ आमाशय और अन्ननालि के रोग १२६

४ अन्वेषण १३०

५ पुनर्नवा १३६

६ आरोग्यशिक्षा १३९

७ चूने की उपयोगिता ... १४०

८ सामान्य अनुभूत-योग १४३

९ प्राप्ति-स्वीकार १४४

प्रकाशक—हरिशङ्कर वैद्य, मुरादाबाद।

वार्षिक मूल्य १॥] [एक संख्या का मूल्य =)

मुद्रक—पं० ओंकारनाथ उपाध्याय, सरस्वती-प्रेस, मुरादाबाद।

❋ सूचना ❋

वैद्य के रंगीन टाइटिल का ब्लाक अचानक खराब हो जाने के कारण इस बार सादा टाईटिल लगाना पड़ा है। आशा है आगामी अंक तक वह ब्लाक ठीक होजायगा और पहले के ही समान रंगीन टाइटिल छपने लगेगा।

भवदीय–मैनेजर "वैद्य"

❋ "वैद्य" के नियम ❋

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डाँ० म० सहित केवल १॥) है। पेशगी मनीआर्डर भेजने से १॥) और वी० पी० मँगाने से २) में पड़ेगा।

(३) 'वैद्य' का नमूना ≡) के टिकट भेजने से भेजा जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषय के लेख, कविता, अनुभूत-प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे, वे पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायेंगे, परन्तु लेख का घटाने बढ़ाने का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये, जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या एक आने का टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँचकर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी २ अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं। इसका कारण डाकखाने की असावधानी ही होसकती है। जिन महाशयों को जो अङ्क न मिले, वे दूसरे अङ्क के पहुँचते ही हमें सूचना दें, अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सब प्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि भेजने का पता,

वैद्य–शङ्करलाल हरिशङ्कर, वैद्य आफ़िस मुरादाबाद।

स्त्री रोग।

स्त्रीजननेन्द्रिय की रचना।

कामाद्रि, भग, भगद्वार, भगाङ्कुर, भगोष्ठ, योनि, योनिमुख, मूत्र-नली, जरायु और डिम्बाशय इन कई एक के मिलने से स्त्री के जननेन्द्रिय के अवयवों का सङ्गठन होता है। जननेन्द्रिय की स्थिति आकृति और क्रिया आदि को जानने के लिये उसको दो भागों में विभक्त किया जाता है। जैसे बहिर्भाग अर्थात् बाह्य जननेन्द्रिय और अन्तर्भाग अर्थात् अन्तर्जननेन्द्रिय।

बाह्यजननेन्द्रिय—कामाद्रि, भग, भगाङ्कुर, वृहत्ओष्ठ द्वय, मूत्र-नली, सतीच्छद और योनि इनको बाह्य जननेन्द्रिय कहते हैं।

अन्तर्जननेन्द्रिय—डिम्बाशय, जरायु और जरायु के ऊपरी अंश में स्थित दोनों नालियों को अन्तर्जननेन्द्रिय कहते हैं।

कामाद्रि—भगद्वार के ऊपर के उन्नत भाग को कामाद्रि कहते हैं। इसके चारों ओर यौवन के आरम्भ काल से ही रोम उत्पन्न हो जाते हैं।

योनि—बाह्य स्त्री-चिह्न अथवा भग से लेकर जरायु तक क्रम से फैले हुए छिद्र का नाम योनि है। इस छिद्र के बाहर के भाग को भगद्वार अथवा योनिद्वार कहते हैं।

वृहत् ओष्ठद्वय—ये भगद्वार के दोनों ओर स्थित हैं। भग के दोनों पार्श्व जो चर्म के दो भागों में विभक्त हैं, उनको वृहत् ओष्ठद्वय कहते हैं। इन पर थोड़े रोम उत्पन्न होते हैं। स्वस्थ शरीर वाली युवतियों के वृहत् ओष्ठद्वय दृढ़ और पुष्ट होते हैं किन्तु वृद्धा और क्षीण स्त्रियों के ये शिथिल होते हैं।

क्षुद्र ओष्ठद्वय—क्षुद्र ओष्ठद्वय श्लैष्मिक झिल्ली से बने हैं और वृहत् ओष्ठद्वय के भीतरी भाग में स्थित हैं। ये दोनों ओर के क्षुद्र ओष्ठद्वय योनि-लिंग अर्थात् भगाङ्कुर सामने मिले हुए हैं। बाल्यावस्था में ये क्षुद्र ओष्ठद्वय वृहत् ओष्ठद्वय को उल्लङ्घन करके बाहर आ जाते हैं।

भगाङ्कुर—सम्मुख वृहत् ओष्ठद्वय जिस स्थान पर मिले हैं, उसके पास ही भगाङ्कुर या योनि-लिंग स्थित है। यह देखने पर कितने ही अंशों में पुरुष-जननेन्द्रिय के समान है।

मूत्र-नली—योनि मुख के कुछ ऊपर एक रज्जु (रस्सी) के समान एक मूत्र-नाली अवस्थित है। मूत्र-नाली के नीचे योनिद्वार या योनिमुख है।

योनिपटह या सतीच्छद—स्त्रियों की बाल्यावस्था में योनि का मुख एक पतली झिल्ली के द्वारा ढका रहता है। उसी को योनिपटह या सतीच्छद कहते हैं। सर्वत्र देखा जाता है कि यह पुरुष-संसर्ग के द्वारा छिन्न-भिन्न होजाती है और प्रसव (बच्चा होने के बाद) के पश्चात् नष्ट होजाती है। परन्तु किसी २ स्त्री के यह झिल्ली काटनी पड़ती है। नहीं तो पुरुष सहवास नहीं कर सकता।

जरायु—इसी को गर्भाशय कहते हैं। यह अंजीर अथवा सेब के समान आकृति वाला होता है और बस्तिदेश में मूत्राशय अर्थात् ब्लाडर और बड़ी आँत के मध्य देश में स्थित है। पुरुष के शुक्र और स्त्री के आर्तव के संयोग से इस यन्त्र में भ्रूण की उत्पत्ति और वृद्धि होती है।

डिम्बाशय या अण्डाशय—जरायु के दोनों ओर दो अण्डाशय हैं, ये दोनों देखने में डिम्ब (अण्डा) के समान हैं। ऋतुकाल में इनका आकार बढ़जाता है, परन्तु गर्भावस्था में प्रायः ये बढ़कर दुगने होजाते हैं।

योनि और भग—योनीपटह अथवा सतीच्छद जिस स्थान में स्थित है, वहीं योनि का मुख और उसका ऊपरी भाग योनिद्वार अथवा भगद्वार कहा जाता है। योनि पटह या सतीच्छद के छिन्न-भिन्न होजाने पर योनिमुख और भगद्वार अथवा योनिद्वार मिल जाते हैं।

स्त्री-जननेन्द्रिय के रोग।

उदावर्ता के लक्षण—जिस स्त्री की योनि में से झागों सहित रुधिर अत्यन्त कष्ट के साथ बाहर निकलता है, उसको उदावर्ता कहते हैं।

वन्ध्या के लक्षण—जिस स्त्री के आर्तव (मासिक धर्म) के नष्ट होने से सन्तान उत्पन्न नहीं होती, उसको वन्ध्या कहते हैं।

विप्लुता के लक्षण—जिस योनि में सर्वदा पीड़ा होती रहती है, उसको विप्लुता योनि कहते हैं।

परिप्लुता के लक्षण—मैथुन काल में जिस योनि में पीड़ा होती है, उसको परिप्लुता कहते हैं।

वातला के लक्षण—इस रोग में योनि कर्कश, स्तब्ध और योनि में शूल एवं सुई के बेधने के समान पीड़ा होती है, यद्यपि उक्त चारों प्रकार के योनि रोगों में योनि पीड़ा होती है किन्तु इस रोग में अत्यन्त पीड़ा होती है।

लोहित क्षया के लक्षण—इस रोग में योनि से दाह (जलन) के साथ रक्त बाहर निकलता है

प्रस्रंसिनी के लक्षण—इस रोग वाली स्त्री के गर्भ का संचार तो होता है, किन्तु रक्तस्राव होकर वह पतित होजाता है।

पित्तला योनि के लक्षण—इसमें योनि में अत्यन्त दाह होती है और योनि पक जाती है। रोगिणी को अत्यन्त ज्वर होजाता है। उक्त लोहितक्षयादि चार प्रकार के योनि रोगों में पित्त के लक्षण होते हैं।

अत्यानन्दा के लक्षण—इस रोग वाली स्त्री की मैथुन में तृप्ति नहीं होती।

कर्णिनी के लक्षण—श्लेष्मा के प्रकोप और रक्त दोष के कारण योनि में मांस की जो एक गाँठ सी होजाती है, उसको कर्णिनी कहते है।

अचरणा के लक्षण—मैथुन के समय पुरुष के शुक्र गिरने से पहिले जिस स्त्री का रज बाहर निकल आता है, उसको अचरणा योनि कहते हैं। यह योनि वीर्य वा शुक्र को ग्रहण करने में असमर्थ होती है।

अतिचरणा के लक्षण—इस रोग में, योनि में श्लेष्म जनित खुजली उत्पन्न होने से स्त्री को अत्यन्त मैथुन की इच्छा होती है।

श्लेष्मला के लक्षण—इस रोग में योनि पिच्छिल, खुजलीयुक्त और शीतल होती है। अत्यानन्दा से अतिचरणा तक चारों प्रकार के योनि रोगों में श्लेष्मा के लक्षण होते हैं।

षण्ढिनी के लक्षण—इस रोग वाली स्त्री को ऋतु धर्म नहीं होता, स्तन थोड़े उभरते हैं और मैथुन के समय योनि कर्कश मालूम होती है।

अण्डिनी के लक्षण—बालिका के सूक्ष्म छिद्र वाली योनि में अधिक स्थूल शिश्न के प्रविष्ट होने से इस रोग की उत्पत्ति होती है। इस रोग में योनि अण्डे के समान लटकने लगती है, इसी लिये इस को अण्डिनी कहा जाता है।

विवृता के लक्षण—बड़े छिद्र वाली योनि को विवृता कहते हैं।

सूचिवक्त्रा के लक्षण—सूक्ष्म छिद्र वाली योनि को सूचिवक्त्रा कहते हैं।

सान्निपातिक योनि रोग के लक्षण—सान्निपातिक योनि रोग वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होता है और इसमें तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं।

षण्ढिनी से लेकर सूचिवक्त्रा तक चारों प्रकार के योनि रोगों में तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं।

असाध्य योनि रोग के लक्षण—षण्ढिनी से लेकर सान्निपातिक पर्यन्त पांचों प्रकार के योनि रोग असाध्य हैं।

योनिकन्द ।

वातजयोनिकन्द के लक्षण—वातजन्य योनिकन्द रूक्ष, विवर्ण और ऊपर से फटा हुआ सा दिखाई देता है।

पित्तज योनिकन्द के लक्षण—पैत्तिक योनिकन्द लालवर्ण और और दाहयुक्त होता है और इसमें रोगिणी को ज्वर होजाता है।

श्लैष्मिक योनिकन्द के लक्षण—श्लैष्मिक योनिकन्द तिल या अलसी के फूल के समान आकृति वाला होता है और उसमें एक प्रकार की खुजली उत्पन्न होती है।

सान्निपातिक योनिकन्द के लक्षण—तीनों दोषों से उत्पन्न हुए योनिकन्द में त्रिदोष के लक्षण मिले हुए दिखाई देते हैं।

प्रदर ।

प्रदर के सामान्य लक्षण—सब प्रकारके प्रदर रोग में शरीरमें पीड़ा होती है और कष्टके साथ योनिसे रक्त का स्राव होता रहता है।

वातिक प्रदर के लक्षण—वातजनित प्रदर में सुई के चुभोने जैसी पीड़ा सहित रूक्ष, लाल और मांस के धोवन के पानी के समान और थोड़ा झाग युक्त रक्त का स्राव होता है।

पैत्तिक प्रदर के लक्षण—पैत्तिक प्रदर में पीले, नीले और काले रंग का गर्म रक्त दाहादि और पित्तजनित पीड़ा के साथ बार-म्बार स्राव होता है।

श्लैष्मिक प्रदर के लक्षण—श्लैष्मिक प्रदर में पिच्छिल, कुछ पीले रंग और चावलों के धोवन के समान, अपक्व रस युक्त रक्त का स्राव होता है।

सान्निपातिक प्रदर के लक्षण—सान्निपातिक प्रदर में शहद, घी, हरताल अथवा मज्जा (चर्बी) के समान रंग वाला अर्थात् अनेक वर्ण का तथा मुर्दे की समान गन्धयुक्त एवं स्नेहयुक्त रक्त का स्राव होता है। यह प्रदर रोग असाध्य है।

प्रदर के असाध्य लक्षण—प्रदर रोग से पीड़ित स्त्री के निरन्तर रक्त का स्राव होने से, उसके साथ प्यास, दाह, मूर्च्छा, ज्वर, दुर्बलता एवं रक्त की हीनता आदि लक्षण हों तो उसको असाध्य जानना।

श्वेतप्रदर या लिउकोरिया ।

श्वेतप्रदर स्वतन्त्र रोग नहीं है। किन्तु चिरकाल तक रक्तप्रदर के स्थायी रहने से स्त्री की जननेन्द्रिय के सम्पूर्ण पथ श्लैष्मिक झिल्ली अथवा आवरण के किसी अंश से श्लेष्मा युक्त अथवा पीव से मिला हुआ, जो श्वेत रंग का क्लेद योनिद्वार से बाहर निकलता है उसी को श्वेतप्रदर कहते हैं। इसकी भी योनि रोगों में गणना की जा सकती है। इसमें जंघा, योनि, जरायु और डिम्बाशय की पीड़ा जैसे लक्षण पाये जाते हैं। इस रोग में योनि के यंत्रों की श्लैष्मिक

झिल्ली या उसके आवरण के क्षत होजाने से यह रोग उत्पन्न होता है। और भी अनेक कारणों से इस रोग की उत्पत्ति होसकती है। रज के दूषित होने से जिस प्रकार रक्तप्रदर होता है, उसी प्रकार रज के दूषित होने से यह रोग भी उत्पन्न होसकता है। इसके अतिरिक्त गर्भपात, जननेन्द्रिय को न धोने से या स्वच्छ न रखने से अथवा ऋतुकाल में संगम करने से या अत्यन्त संगम करने से, रक्तदोष, गनोरिया (सूजाक) विरुद्ध आहार—विहार, स्वास्थ्य भंग आदि अनेक कारणों से यह रोग पैदा होता है। किसी २ स्त्री के पहिले रक्तप्रदर होकर उक्त समस्त यन्त्रों में क्षत (घाव) होजाता है और उससे पीप की समान स्राव होता है। किसी किसी स्त्री के उसके स्वास्थ्य के अधिक खराब होने से भी इस रोग के लक्षण पाये जाते हैं। किन्तु यह रोग अनेक कारणों से उत्पन्न होने पर भी चिकित्सक को इन दो विषयों पर लक्ष्य रखकर चिकित्सा करनी चाहिये। स्थानिक अर्थात् क्षतस्थान की चिकित्सा और दूषित रज (आर्तव) की चिकित्सा। रज के दूषित होनेसे क्षत होने पर इस रोग के लक्षण दिखाई दें तो रज को शुद्ध करने वाली औषधियों के प्रयोग करने और योनि रन्ध्र में पिचकारी लगानेसे यह रोग शान्त होता है। स्वास्थ्य भंग होनेके कारण या माता पिताके गनोरिया(सूजाक) आदि रोगों के बीज सन्तान में संक्रमित होनेसे बालिकाओं के भी यह रोग कहीं कहीं देखने में आता है। श्लैष्मिक प्रदर भी श्वेत प्रदर के नाम से कहा जाता है, क्योंकि श्वेतवर्ण का स्राव श्लैष्मिक प्रदर में भी होता है।

बाधक।

रक्तयुक्त बाधक के लक्षण—इस रोग वाली स्त्री की कमर और नाभि के नीचे और दोनों स्तनों में पीड़ा होती है एवं ऋतु धर्म एक या दो महीने अन्तर से होता है। परन्तु ऐसी अवस्था में उसके गर्भोत्पत्ति नहीं होती।

षष्ठी बाधक के लक्षण—इस रोग वाली स्त्री के नेत्र, हाथ, पैर और विशेषकर योनि में दाह होती है—और महीने में दो बार ऋतु धर्म होता है, किन्तु वह आवश्यकतानुसार मिश्रित और थोड़ा सा दिखाई देता है।

अंकुर बाधक के लक्षण—इस रोग वाली स्त्री के शरीर में भारीपन मालूम होता है, रक्तस्राव अधिक होता है और उससे ग्लानि होती है। नाभि के नीचे पीड़ा और हाथ पैरों में दाह एवं शरीर दुर्बल होजाता है। परन्तु ऋतुधर्म तीन २ चार २ मास तक बन्द रहता है।

जलकुमारक बाधक के लक्षण—इस रोगसे ग्रसित स्त्रीके यद्यपि गर्भ का संचार होता है, किन्तु गर्भावस्था में पेट में पीड़ा शरीर शिथिल और रक्तहीन हो जाता है। तथा गर्भपात भी होजाता है। परन्तु रोगिणी का शरीर दुर्बल और दोनों स्तन स्थूल-बोझल से होते हैं। और उसको ऋतुधर्म बहुत काल में होता है—और थोड़ा थोड़ा स्राव होता है।

बाधक रोग के कारण और सामान्य लक्षण—गर्भपात एवं धातु-क्षय आदि अनेक कारणों से इस रोग की उत्पत्ति होती है। इस रोग वाली स्त्री के गर्भ नहीं रहता। यदि किसी के गर्भ रह भी जाय तो उसका पात हो जाता है। बाधक रोग के ये ही प्रधान लक्षण हैं।

स्त्री रोग की चिकित्सा विधि।

स्त्री-पुरुष दोनों के आकार में बहुत कुछ समानता होने पर भी कितने ही विषयों में विशेष भेद देखा जाता है। इस कारण कितने ही रोग ऐसे होते हैं,जो पुरुषों के ही देखे जाते हैं। स्त्रियों के वे नहीं होते, और इसी प्रकार कितने ही रोग केवल स्त्रियों के उत्पन्न होते हैं, पुरुषों के नहीं होते। स्त्री जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग स्त्रियों के ही होते हैं, पुरुषों के नहीं होते। यद्यपि स्त्री-पुरुष दोनों के ही स्तन होते हैं, किन्तु पुरुषोंके स्तन रोग नहीं होते। स्त्रियों के प्रत्येक महीने में रक्तस्राव होता है किन्तु प्रमेह नहीं होता। किन्तु उसका समान धर्मी श्वेतप्रदर होता है। त्रिदोषकमेह (सूजाक) स्त्री-पुरुष दोनों के होता है। स्त्री और पुरुषों के इस प्रकार भेदसे स्त्री रोग और उनकी चिकित्सा स्वतन्त्र ही की गई है।

आर्तव—शुक्र पुरुष जाति का बीज और आर्तव स्त्री जाति का बीज है। इन दोनों बीजों के मिलने से ही सन्तान की उत्पत्ति होती है। पुरुष के शुक्र में जिस प्रकार जीवाणु पाये जाते हैं, स्त्री के आर्तव में भी उसी प्रकार जीवाणु होते हैं। शुक्र और आर्तव के

दूषित न होने पर उनके जीवाणु स्वाभाविक और बलिष्ठ होते हैं। इसलिये उनके द्वारा उत्पन्न हुई सन्तान बलवान् और स्वस्थ होती है। किन्तु स्त्री पुरुष दोनों में किसी एक के अस्वस्थ, पीड़ित या शिथिल होने से, उनसे उत्पन्न हुई सन्तान भी रोगी या शिथिल होती है। इसी लिये माता-पिता के बीज दोष से कुष्ठ, फिरंग और सूजाक आदि कितने ही रोग सन्तान में आते हैं। जिस प्रकार उत्तम बीज से उत्पन्न हुए धान्य आदि उत्तम होते हैं। और बीज के अच्छे न होने से फसल अच्छी नहीं होती उसी प्रकार गर्भाधान के लिये भी उत्कृष्ट वीर्य की आवश्यकता है। वीर्य के उत्कृष्ट और बलवान् न होने से स्वस्थ और बलवान् सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती। किन्तु पुरुष के वीर्य और स्त्री के आर्तव इन दोनों के एक समय में जीवनी शक्ति से हीन होने पर उससे गर्भधारण भी नहीं होसकता। इसलिये शुक्र और रज के दूषित होने पर उनको शुद्ध करना और उनमें जो क्षीण और मृतप्राय जीवाणु हैं उनको स्वस्थ-सबल और पुनरुज्जीवित करना आवश्यक है। बन्ध्या आदि बीस प्रकार के योनि रोग रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, रज का अटकना, कष्ट से रजोधर्म होना और रज का अधिक स्राव होना एवं बाधक आदि स्त्री-जननेन्द्रिय के समस्त रोग केवल आर्तव के दूषित होनेसे ही उत्पन्न होते हैं। स्त्री की जननेन्द्रिय के जो रोग जिन २ कारणों से होते हैं उन सब कारणों से आर्तव भी दूषित होता है। प्रथम आर्तव दूषित होकर फिर ये सब रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिये आर्तव दोष की एक मात्र चिकित्सा से ही ये सब रोग आरोग्य किये जासकते हैं। आर्तव के दूषित होने से ही योनि रोग, प्रदर अथवा बाधक रोग के लक्षण दिखाई देते हैं, इसलिये आर्तव दोष की चिकित्सा न करके यदि इन समस्त रोगों की चिकित्सा की जावे तो कभी काम नहीं चल सकता। अनियमित आहार-विहार के द्वारा स्वास्थ्य भंग होने से भी दोष कुपित होकर आर्तव को दूषित कर देते हैं। अथवा पिता माता के बीज दोष से अर्थात् सिफाकमेह (सूजाक) और फिरङ्ग आदि अनेक प्रकार के रक्त दोष से उत्पन्न हुए रोगों के होने से भी आर्तव दूषित होता है। पहिले प्रकार के आर्तव दोष में आहार-विहार की उत्तम व्यवस्था करने से अनायास ही वह सहज में आराम होसकता है। किन्तु रक्त दोष आदि कारणों से आर्तव के दूषित होने पर सहज में आराम नहीं होता। आर्तव, पुष्प, रज और ऋतु ये सब आर्तव के

संस्कृत नाम हैं। जिस प्रकार वात, पित्त और कफ कुपित होकर नाना प्रकार के अनेक रोगों को उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार वे कुपित होकर आर्तव को दूषित कर देते हैं।

दूषित रज के लक्षण—वायु के प्रकोप से आर्तव के दूषित होने पर वह पकी हुई जामुन के समान नीला या काला होता है। और स्राव होते समय योनि और कमर में पीड़ा होती है। पित्त से पुष्प के दूषित होने पर वह जवा के फूल या कसूम के फूल के समान लाल रंग का होता है और रज के निकलते समय जननेन्द्रिय में दाह और बार-बार पेशाब का होना ये सब लक्षण पाये जाते हैं। कफ के कोप से आर्तव के दूषित होने पर गाढ़ा और पिच्छल स्राव अधिक परिमाण में होता है और रोगिणी स्त्री की देह में जड़ता, मूत्रावरोध, आलस्य, तन्द्रा और अधिक निद्रा का आना आदि लक्षण होते हैं।

शुद्ध रज अथवा आर्तव के लक्षण—प्रत्येक मास के अन्त में एक बार ऋतु धर्म अथवा रक्तस्राव जो क्रम से पाँच दिन तक होता रहता है, और जिस रक्तस्राव में जलन और पीड़ा नहीं होती एवं रक्त बहुत अधिक अथवा बहुत कम नहीं निकलता और जो रक्त पिच्छिल व विवर्ण न होकर अपिच्छिल और खरगोश के रक्त की समान अथवा लाख के रंग की समान दिखाई देता है वह शुद्ध रक्त, आर्तव या रज कहा जाता है। पाँच रात्रि तक ऋतु स्राव होना एक साधारण नियम है, किन्तु किसी २ के इससे भी अधिक दिनों तक थोड़ा २ रक्तस्राव होता रहता है। जो आर्तव उक्त लक्षणों से युक्त हो और जिसका कपड़े पर दाग लगने से जल से धोने पर सहज में ही छूट जाता है और जल निर्मल लाल रंग का हो जाता है, उसको शुद्ध आर्तव कहते हैं। वैद्य को दूषित हुए आर्तव की चिकित्सा करते समय वात, पित्त, और कफ इन तीनों दोषों में कौन से दोष के कुपित होने से आर्तव दूषित हुआ है, इसका प्रथम निश्चय कर लेना चाहिये। आर्तव परीक्षा का विधान शास्त्र में होने पर भी उसकी परीक्षा करने का नियम आजकल प्रचलित नहीं है। इसलिये अधिकांश स्थानों में अन्य उपायों से वातादि दोषों का निर्णय करके चिकित्सा की जाती है। वायु के कुपित होने पर वेदना होती है और पित्त के कुपित होने

पर भी होती है, किन्तु लक्षण दोनों के अलग २ होते हैं। वायु के प्रकोप में शूल, तोड़ने-फोड़ने सरीखी पीड़ा, अंग-संकोच, झन-झनी, दाह, कम्प आदि पीड़ा होती हैं। आर्तव के दूषित होने की प्रथमावस्था में योनि अथवा कटि में इसी प्रकार की पीड़ा होती है। किन्तु रोग जितना पुराना होता जाता है। उतनी ही यह पीड़ा भी समस्त अंगों में फैलती जाती है। किन्तु रोग के अत्यन्त पुराने हो जाने पर वातजनित नाना प्रकार की व्याधियें अर्थात् वात व्याधि उत्पन्न हो जाती है। अतः वातजनित आर्तव के दूषित होने पर इस प्रकार की पीड़ा, स्राव का काला या नीला और थोड़ा २ होना ये सब लक्षण होते हैं। इसमें वातजनित दूषित आर्तव की अपेक्षा स्राव कुछ अधिक होता है, किन्तु उसका रंग जपा के फूलों की समान लाल होता है। प्रथम अवस्था में प्रायः योनि में दाह होती है, किन्तु फिर वह दाह क्रम से सम्पूर्ण शरीर में फैल जाती है। श्लेष्म जनित दुष्ट आर्तव में वात-पित्त की अपेक्षा स्राव अधिक होता है और यह स्राव गाढ़ा एवं पिच्छिल होता है। किन्तु रोगिणी के तन्द्रा, शरीर में गुरुता, एवं निद्रा अधिकता से होती है। इस नियम से वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषों में से किसी एक के कुपित होने पर आर्तव दूषित होजाता है। इसका निर्णय करके योनि रोगों में प्रदर रोग और बाधक रोग की चिकित्सा करनी चाहिये।

दूषित हुए आर्तव में कोई स्वतन्त्र औषधि प्रयोग न करने पर भी काम चल सकता है। क्योंकि आर्तव के दूषित होने पर योनि और प्रदरादि रोग उत्पन्न होते हैं। इस कारण आर्तव के दूषित होने पर योनि और प्रदर रोग में कही हुई औषधियें अवस्था भेद से प्रयोग करनी चाहियें। वात, पित्त और कफ जनित आर्तव के दूषित होने पर 'नष्ट पुष्पान्तक रस' एवं 'बृहत्-शतावरीघृत' अथवा 'फल कल्याण घृत' का प्रयोग करना चाहिये। यदि अतीसार रोग न हो तो 'फल कल्याणघृत, 'अशोक घृत' अथवा 'कुमारकल्पद्रुमघृत' इन तीनों में से किसी एक औषधि का वात, पित्त और कफ इन किसी दोष से आर्तव के दूषित होने पर प्रयोग करना चाहिए। इस के सिवा प्रदर और योनि रोग में कहे हुए अनेक प्रकार के योगों की भी व्यवस्था की जासकती है। प्रदर रोग में जिन सम्पूर्ण योगों की व्यवस्था की जाती है, वे सब योग दूषित आर्तव रोग में भी प्रयोग

किये जाते हैं। अधिक रक्तस्राव के होने पर उसको बन्द करने केलिये रक्तातिसार, रक्त प्रवाहिका, रक्तार्श और अधोगत रक्त-पित्त में कही हुई औषधियें प्रयोग की जा सकती हैं। ये समस्त औषधियें केवल रक्तस्राव को ही नहीं रोकती, किन्तु रक्त को शुद्ध भी करती हैं।

योनिरोग—स्त्री की जननेन्द्रिय के रोग बीस प्रकार के हैं-जैसे, उदावर्त, वन्ध्या, विप्लुता, परिप्लुता, वातला, लोहितक्षया, प्रस्रंसिनी, वामिनी, पुत्रघ्नि, पित्तला, अत्यानन्दा, कर्णिनी, अचरणा, अतिचरणा, श्लेष्मला, षण्ढिनी, अण्डिनी, महती, सूचिवक्त्रा और त्रिदोषिनी।

इनमें उदावर्ता से वातला तक पांच, वात से, लोहितक्षया से पित्तला तक पांच पित्त से, अत्यानन्दा से श्लेष्मला तक पांच कफसे और षण्ढिनी से लेकर त्रिदोषिनी तक पांच त्रिदोष से उत्पन्न होते हैं। इन समस्त रोगों की चिकित्सा वातादि दोषों के अनुसार करनी चाहिए।

आहार—विहार आदि के नियम विरुद्ध होनेपर वात, पित्त और कफ कुपित होकर आर्तव को दूषित करके अथवा पिता-माता के वीर्य दोष या रक्त दोष से आर्तव के दूषित होनेपर योनि रोगों की उत्पत्ति होती है। अतः कारण कोई भी हो, आर्तव के दूषित होने से योनि रोग उत्पन्न होते हैं। किन्तु आहार-विहार की अनियमितता से जो योनि रोग उत्पन्न होते हैं, वे उतने कठिन नहीं होते। इसलिये आहार-विहारादि की नियमित रूप से उत्तम व्यवस्था करने पर वे रोग सहज में ही दूर हो जाते हैं। नियम विरुद्ध आहारादि.. उत्पन्न हुवे योनि रोगों में कहीं २ दूषित आर्तव के लक्षण अच्छे प्रकार नहीं दिखाई देते। किन्तु पिता-माता के बीज दोष या रक्त दोष के कारण अथवा विषाकमेह (सूजाक) और फिरंगादि रोग के होने पर जो योनि रोगहोते हैं, वे सब अत्यन्त कष्ट साध्य होते हैं। इन रोगों में जब तक रुधिर की विकृति दूर न हो और आर्तव शुद्ध न हो, तब तक वे शमन नहीं होते। किन्तु बार २ आक्रमण किया करते हैं। इस कारण योनि रोगों में साथासाथ: उत्तम पथ्य और रक्त शोधक औषधियों की व्यवस्था करनी चाहिए। आहार की नियम विरुद्धता से उत्पन्न हुए रोग में पौष्टिक और बल कारक आहार की व्यवस्था करनी चाहिए। विषाकमेह (सूजाक) और फिरंग रोग के कारण इन रोगों के उत्पन्न होने

एवं उनमें अच्छे प्रकार लक्षणों के प्रकाशित होनेपर उनमें उन्हीं २ रोगनाशक औषधियों की व्यवस्था करनी चाहिए। किन्तु जहां उक्त रोगों के लक्षण अच्छे प्रकार प्रकाशित न होवें और परीक्षा द्वारा आर्तव-दोष प्रमाणित होनेपर योनिरोगों की औषधियां प्रयोग करनी चाहिएँ। प्रायः सब प्रकारके योनि रोगों में साधारणतः वात की प्रधानता हुआ करती है, इस कारण वायुनाशक औषधियें प्रयोग करनी उचित हैं। वायु को शान्त करने वाली औषधियें अर्थात् घृत, क्वाथ और वटिकाओं का सेवन एवं योनि में औषधियों का लेप, औषधियों के क्वाथ से सेचन, औषधियों के बने हुए तेल में भीगी हुई रुई का फाया रखना आदि प्रयोग नहीं किये जाने-प्रत्युत केवल खाने की कुछ औषधियें और बस्ति प्रयोग (पिचकारी लगाना) की व्यवस्था की जाती है। प्रमेह रोग में कही हुई बस्ति योग की विधि से त्रिफले के क्वाथ की पिचकारी लगानी चाहिए। वातव्याधि रोग में कहे हुए अश्वगंधाघृत और शतावरीघृत तथा 'अमृत प्राशघृत' एवं वातनाशक नाना प्रकार की औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। इसके सिवा 'नष्ट पुष्पान्तक रस', 'फल घृत', 'फल कल्याण घृत' अथवा 'कुमार कल्प-द्रुम घृत' का व्यवहार कराना चाहिए। आवश्यकता होने पर योनि शूल को दूर करने के लिये वात, कफ नाशक 'दशमूल क्वाथ' और योनि अग्नि दाहको दूर करने के लिये दाह रोग कहे हुए किसी भी क्वाथ द्वारा योनि के धोने की व्यवस्था और सेवन करने के लिये प्रदर रोगोक्त 'शीत कल्याण घृत' वा 'बृहत् शतावरी घृत' और वटिका आदि औषधियें अवस्था भेदसे प्रयोग करनी चाहिएँ। योनि के स्थान च्युत होने अथवा बाहर निकल आने पर करेले की जड़के, पीस कर योनि में प्रलेप करे अथवा घी, चर्बी वा चूहे की चर्बी को, मलकर धीरे २ उसको यथास्थान में प्रवेश करा देवे।

वन्ध्या—गर्भ को धारण करने में असमर्थ स्त्री को वन्ध्या स्त्री कहते हैं। स्त्रियें अनेक कारणों से वन्ध्या हो जाती हैं। पुरुष के वीर्य और स्त्री के आर्तव इन दोनों के मिलने पर गर्भ का संचार होता है। यदि उसमें किसी कारण से व्याघात होजाय तो गर्भ का संचार नहीं होता। पुरुष के वीर्य में जीवित जीवाणुओं के न रहने पर अथवा पुंजननेन्द्रिय के योनि में अच्छे प्रकार प्रविष्ट न होने पर या अनेक प्रकार की पीड़ा होनेके कारण आर्तव के दूषित होने से गर्भ-संचार

नहीं होता । आजकल विषय वासना अधिक बढ़जाने से कोई २ पुरुष योनि में रुई का फाया या रबड़ की थैली रखकर मैथुन करते हैं-इस कारण उनके भी गर्भ-संचार नहीं होता ।

आमाशय और अन्ननालि के रोग ।

(ले० श्री० प्रोफेसर रामकृष्णजी वर्मा बी ए बी एस सी एल एम एस)

(गतमेलनाङ्क से आगे)

उबकाई, वमन, मतली—मतली यह वह अवस्था है जोकि वमन और उबकाई से पहिले होती है । यह यथार्थ में कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है । पर अन्य रोगों का एक लक्षण है । उबकाई, वमन, मतली इनमें कोई भी स्वतन्त्र व्याधि नहीं मानी जाती । पर आमाशय, अंत्र, यकृत, वृक्क, मस्तिष्क, सुषुम्ना, गर्भाशय आदि रोगों में और किसी २ ज्वर में उनकी सहायक बन जाती हैं ।

वमन या तो उन कारणों से होती है कि जिनका प्रभाव आमाशय पर पड़ता है । जैसे,—दुष्ट आहार, गर्म पानी, आमाशयिक रक्त-संचार, आमाशयिक श्लैष्मिक कला प्रदाह, आमाशयिक व्रण, आमाशयिक अर्बुद, आमाशयिक प्रतान इत्यादि ।

इनके सिवाय वमन के कारण अन्य अंगों के यंत्र भी होते हैं । जैसे—अंत्र शोथ, पेट दर्द, वृक्कशूल, गर्भाशय शोथ इत्यादि । तथा वमन कभी २ उन द्रव्यों के खाने से भी होती है, जिनका प्रभाव सीधा मस्तिष्क पर पड़ता है । जै , मस्तिष्क कला शोथ, मस्तिष्कार्बुद शोथ या संन्यास, योषापस्मार आदि । दुष्ट रक्त संचार से भी वमन होती है । जैसे, मधुमेह विशूचिका सम्मोहिनी द्रव्यों से होता है । तथा खनिज पारद, संखिया, सुरमा आदि के रक्त में प्रवेश कर जाने पर भी वमन होती है । वमन के विषय में जिन बातों के जानने की आवश्यकता है, वह इस प्रकार है । वमन किस समय होती है, आहार के साथ वमन का कैसा सम्बन्ध है, वमन के बाद रोगी को आराम मिलता है या कष्ट अधिक बढ़ आता है, वमन को

मात्रा कितनी होती है, वमन से प्रथम मतली होती है या नहीं, वमन के द्वारा निकले हुए पदार्थ की विशेषता क्या है ?

वमन को देखने से उसका रंग और परीक्षा करने से उसका स्वाद और गंध मालूम की जाती है। जब आँत में कोई आटी अवरोध होता है, तब अंतिम अवस्था में ऐसा द्रव्य निकलता है कि जिसमें विष्ठा के समान गंध आती है और उस वृक्क रोग में जिसमें मूत्र विकार पाया जाता है, मूत्र की गंध आती है। और वृक्क, यकृत के किसी २ रोग में वमन के साथ पित्त का खट्टापन पाया जाता है। पीला ज्वर और शीतला ज्वर आदिमें जब अधिक विकार होता है तब वमन के साथ रक्त भी पाया जाता है। जब अर्बुद मेदे में फूट जाता है तब वमन के द्वारा पीब निकलती है। मस्तिष्क में चोट लगने पर या किसी मस्तिष्क सम्बन्धी रोगके होनेपर उसमें वमन हो तब रोगी को चित्त मिटाने से लाभ होता है। और वमन से पहिले मतली नहीं होती है तथा दूषित पदार्थ वमन के द्वारा आसानी से निकल जाते हैं एवं वमन के होने से शरीर में शिथिलता तथा अस्वस्थता भी नहीं मालूम होती। पर इसके प्रतिकूल आमाशय के रोगों में जो वमन होती हैं-उसमें प्रथम मतली होकर फिर वमन होती हैं। वमन होने पर शरीर में अवसन्नता, कमजोरी और क्षीणता होजाती है।

रक्तवमन—यह भी वमन के समान उक्त रोगों का सामान्य लक्षण है। इसके सिवाय रक्त की वमन निम्नलिखित कारणों से भी होती हैं।

१—आमाशय रोग जैसे अर्बुद, व्रण, रक्त-संचाप, श्लैष्मिक कला प्रदाह, और यकृत रोग के कारण रक्त की वमन होती है।

२—भिन्न २ प्रकार के विष जैसे संखिया, हरताल और अम्लादि Acides के शरीर में प्रवेश होजाने तथा रासायनिक ज्वर Chemical Tuver जैसे शीतला, मसूरिका, पीलाज्वर के विषों के शरीर में प्रवेश होजाने पर रक्त की वमन होती है।

३—हृदय-रोग जैसे हृदय रक्तस्राव-इत्यादि।

४—गोपाणस्मार, मृगी में भी रक्त की वमन होती है। इस रक्त वमन की परीक्षा करते समय इस बात पर ध्यान देना चाहिए। कभी २ ऐसा भी होजाता है कि मुख नासिका तालू और

अन्ननाली से आमाशय में रक्त गिरकर वमनके द्वारा बाहर निकल जाता है। अगर इस पर अच्छी तरह से ध्यान नहीं दिया जाय तो यह भ्रमवश आमाशय का ही रक्त समझा जाता है। इसके सिवाय कभी शिशु स्तन से रक्त खींचकर उसको वमन कर देता है। तथा लाल रंग की शराब या चाय पीने या अन्य रंगदार द्रव्यों के खाने-पीने से यदि वमन हो जावे तो उसको मूर्ख चिकित्सक रक्त की वमन समझ लेते हैं। इस कारण ऐसी बातों पर विशेष ध्यान करना चाहिये।

रक्त की वमन और रक्त मिले थूक में जो भेद देखा जाता है, वह इस प्रकार मालूम हो सकता है।

१—रक्त—वमन में वमन के द्वारा रक्त निकलता है-और रक्त थूक में खाँसी के साथ रुधिर आता है।

२—रक्त वमन में लाल या कालापन लिये रक्त निकलता है-और वह रक्त नीले कागज अर्थात् लिटमस पेपर (Litmus Paper) को लाल कर देता है। परन्तु रक्तथूक में खांसी के साथ जो रक्त निकलता है, वह झागेदार और लाल रंग का होता है। उस पर यदि लाल कागज लगाया जाय तो वह नीला हो जाता है।

३—रक्त वमन के बाद रोगी के काला मल निकलता है और पेट के भीतरी भाग से कोई अंग नष्ट होता है तो थूक में खाँसी के साथ कुछ दिनों तक रक्त आता है। जिस समय वक्ष परीक्षा करने से यदि वक्ष का कोई रोग मालूम होता है तो वक्ष में दर्द और भारीपन पाया जाता है।

४—रक्त वमन में सुई के चुभाने के समान दर्द होता है और कभी दर्द न होकर सिर्फ जलन ही होती है। कभी वमन के साथ अधिक रुधिर आता है, कभी नाम मात्र की ललाई देखी जाती है। कभी रक्त पतला, कभी गाढ़ा, कभी मैला, कभी झागदार, आहार के पदार्थों के साथ मिला हुआ द्रव्य युक्त कभी स्वच्छ होता है। और कभी २ वमन के साथ रुधिर कम मात्रा में निकलता है, कभी रक्त की मात्रा इतनी अधिक होती है कि रोगी को शीघ्र मृत्यु का भय प्राप्त होजाता है। इस प्रकार दोनों में कभी समान भाव नहीं देखा जाता।

इन रोगों के अन्तर्गत और भी सैकड़ों रोग पाये जाते हैं, जिनका वर्णन यहां नहीं किया जाता। केवल इतने से ही पाठक अपना मतलब निकाल सकते हैं और इन्हीं रोगों की चिकित्सा करने से वे सब रोग भी स्वयं आराम होजाते हैं अब नीचे उक्त रोगों से ग्रसित कुछ रोगियों का इतिहास दिया जाता है।

सन् १९२६ ई० में एक रोगिणी स्त्री मेरे पास आयी। वह स्त्री शरीर में हृष्ट पुष्ट थी। देखने से उसके कोई रोग नहीं मालूम होता था किन्तु उससे पूछने से ज्ञात हुआ कि उसको २-३ मास के बाद एकाएक रक्त की वमन होती है। हजारों सुयोग्य डाक्टर तथा वैद्यों ने उसकी चिकित्सा की परन्तु किसी से आराम नहीं हुआ। मैंने एक मेडीकल कालेज के प्रोफेसर के पास जो घर पर चिकित्सा भी करते थे उस स्त्री को भेज दिया। उन्होंने तीन मास तक उसकी चिकित्सा की परन्तु फल कुछ भी नहीं निकला। तब विवश होकर उन्होंने मुझ से यह भेद न बताकर उसको मेडीकल कालेज में भर्ती कर दिया। वहां भी उसकी एक साल तक चिकित्सा होती रही। किन्तु दशा वैसी ही रही। कितने ही योग्य से योग्य वैद्य, हकीम और डाक्टरों ने अम्ल पित्त के सिवाय उसको दूसरा रोग नहीं बतलाया। उसके रोग में किसी प्रकार का दर्द नहीं मालूम होता था। सिर्फ कब्ज और खट्टी डकारें आती थीं, भोजन पच जाता था। मैं कालेज में एनाटोमी प्रोफेसर था इससे द्रव्य के लिये चिकित्सा नहीं करता था। चिकित्सा का कार्य मैं परोपकार के लिये ही करना अच्छा समझता हूं। साथ ही मैं दवा भी नहीं बेचना चाहता और बिना दवा अपने पास रखे चिकित्सा नहीं होती तथा दवा मुफ्त देने से द्रव्य लगता है इसलिये उस रोगिणी स्त्री पर मैंने कुछ ध्यान नहीं दिया। दूसरे प्रोफेसरों ने देखकर उसके वही रोग निश्चित रखा और सब प्रकार की बहुमूल्य औषधियों का प्रयोग भी किया। प्रथम बहुमूल्य और उत्तम औषधियों के द्वारा आयुर्वेदीय चिकित्सा हो चुकी थी। कलकत्ते के कविराजों ने जवाब दे ही दिया था। इसके उपरान्त रोगिणी का पति एक दिन फिर मुझ से मिला और उसने सब व्यवस्था मुझ से कही और साथ ही यह भी कहा कि यदि अब आप कहैं तो मैं उसको काशी ले जाऊँ। किसी औषधि से कुछ लाभ होता दिखायी नहीं देता। कुछ दिन में मर ही जायगी। यह कहकर वह रोने लगा।

उसकी यह अवस्था देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। इससे अधिक दुःख और लज्जा की बात क्या होसकती है। उन महाशय को सम्बोधित करके मैंने कहा, भाई, तुम्हारी स्त्री तो अवश्य असाध्य है। पर मेरे कहने के अनुसार चलो तो मैं उसको अच्छा कर दूँगा। अभी रोग के निर्णय में मुझे संदेह है। इसी लिये यहाँ कालेज में मैं कुछ सम्मति नहीं दे सकता। इससे वह सहमत होगया। दूसरे दिन शल्य का प्रबन्ध करके मैंने उस स्त्री का पेट चीर डाला देखा तो मालूम हुआ कि मेदे में आंत के पास कुछ हट कर व्रण होगया है। जिसकी क्रिया नाड़ी व्रण की समान होगयी है। जब उसमें रुधिर भर आता है तब वह व्रण फटकर वमन होजाती है। उस व्रण का हिस्सा यकृत से जुड़ गया है। यह बात सब लोग देखकर अपनी भूल पर पछताने लगे। अंत में उसका शल्य द्वारा टीक करके उसका उचित उपचार किया गया। रोगिणी अच्छी होगयी। इससे वैद्यों को इस विषय में खूब ध्यान रखकर चिकित्सा करनी चाहिये।

इसके सिवाय और भी तीन पुरुष इसी रोग के मेरे पास आये। जो लगभग १०-१२ वर्ष के रोगी थे। वैद्य लोग उसके उरःक्षत और डाक्टर लोग हृदय-रक्तस्राव कहते थे। जब मेडीकल कालेज में गये थे, उस समय वे केवल दो चार दिन के महमान थे। इससे उपचार नहीं किया गया। तीसरे चौथे दिन वे मर गये। सूचनार्थ यह विषय लिख दिया गया है। जो प्रथम लक्षण वर्णन कर दिये गये हैं, वे सब नहीं पाये जाते। सिर्फ रक्त-वमन ही देखी जाती है, पर रक्त परीक्षा करने से आमाशयिक व्रण रोग पाया जाता है। इसी प्रकार अन्य रोगों में भी होता है। जब रोग पुराना होजाता है, तब उसके सब लक्षण नष्ट होकर प्रधान लक्षण रह जाते हैं, जो रोगी को बहुत दिनों तक दुःख देते रहते हैं। चिकित्सालयों में नित्य सैकड़ों रोगी आया करते हैं। अगर एक ही रोग हुआ तो प्रधान लक्षण स्पष्ट रहता है और अन्य लक्षणों में भी भिन्नता हो जाती है। पर परीक्षा करने से चिकित्सक उसका निश्चय करलेते हैं।

अन्य चिकित्साओं की अपेक्षा आयुर्वेद में अधिक सुभीता है। इस चिकित्सा प्रणाली के द्वारा रोग भी बड़ी आसानी से जाना जा सकता है। और उचित प्रतीकार भी हो सकता है। परन्तु जब स्वच्छ-न्दता पूर्वक ऋषियों का ध्येय हृदय में रख कर कार्य्य किया जावे।

और उत्तम विद्या पास हो। अन्यथा कार्य करने वाले तो बहुत हैं, ऐसे रोगों के लिये माधवाचार्यजी ने प्रथम से ही उपदेश दिया है- 'उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणाविनिश्चिते। लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद् व्याधीनां तद्यथायथम् ॥ तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते। संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः। =आमाशय रोग के सम्बन्ध में- 'मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषाह्यामाशयाश्रयाः—इत्यादि लिखकर समाप्त किया है। अर्थात् दोष आमाशय के आश्रित रहकर तथा शरीर में फैलकर सम्पूर्ण रोगों को पैदा करते हैं। इसके सिवाय फिर अलग २ रोगों में भी आमाशयस्थ दोषों की प्रधानता दिखाई है। जैसे अतिसार रोग आहार-विहार से १ से लगाकर ३ तक श्लोक में वर्णन किया है-जिसका सम्बन्ध आमाशय से है। फिर पंचम श्लोक में अग्निपाक शब्द लिखकर आमाशय को स्पष्ट कर दिया है। ग्रहणी रोग में प्रथम वर्णन करके आमाशय को दिखाया है। फिर 'विदाही ऽभस्य पाकस्य विरात्।' पूर्ण सूचना दी है। अजीर्ण रोग, विशूचिका रोग, विलम्बिका, अलसक आदि प्रधान आमाशय के रोग हैं। ऊपर जो ६ भेद वर्णन किये गये हैं, वे आमाशय के बड़े २ रोग हैं। इन रोगों की चिकित्सा में चिकित्सक प्रायः भ्रम में पड़ जाते हैं। इन रोगों के जानने में शहय प्रधान है। अन्यथा जितने रोग शरीर में प्रकट होते हैं-उनका प्रथम कारण तत्व आमाशय में प्राप्त हो सकता है। और दूसरे रोगों का निदान ग्रन्थों में वर्णित है-इस कारण उनको यहां पर लिखेंगे। वैद्य लोग माधव, हमराज, निदानदीपिका आदि ग्रन्थों को देखकर उक्त रोगों का निर्णय कर सकते हैं। आमाशय एक ऐसा उपयोगी अंग है कि जिसकी उत्तम गति से शरीर का पालन-पोषण अच्छी तरह से होता है। जब इसमें कोई दोष आजाता है तब रुग्णावस्था प्राप्त होजाती है। इससे इसकी प्रथम परीक्षा करके इसके रोगों का निर्णय कर लेना चाहिये। इसके मुख्य रोग-मंदाग्नि हिक्का, अजीर्ण, तृष्णा, शूल के भेद, अम्लद्रव शूल, विशूचिका, विलम्बिका, अलसक, अम्लपित्त, ग्रहणी की प्रथमावस्था, और वमन आदि हैं।

*

क्रमशः

अन्वेषण ।

(ले० पं० भागीरथजी स्वामी आयुर्वेदमहामहोपाध्याय कलकत्ता)

गताङ्क से आगे

पहिले हिन्दुस्तान में नेत्रों के रोग बहुत कम होते थे, किन्तु आजकल उसके विपरीत दशा है। जब से यहां मट्टी के तेल अथवा पेट्रोल के द्वारा रोशनी करने की कुप्रथा प्रचलित हुई है। तब से अनेक प्रकार के विकार तथा श्वास-कास आदि रोग अधिकता से देखे जाते हैं। कितने ही मनुष्य रात्रि को मट्टी के तेल का लेम्प जला कर कमरे में रख कर सो जाते हैं। सवेरे देखने से मालूम होता है, कि उनके गले, फेंफड़े आदि में कालिख जम गई है। थूकने से उनके काले रंग का कफ निकलता है। इधर बिजली की रोशनी के प्रभाव से नेत्रों का प्रकाश अत्यन्त क्षीण होता जाता है। इसकी परीक्षा यही है कि इस समय छोटे २ बालक तक चश्मे धारण करने लगे हैं। भारतीय वैद्यों का मत इस विषय में सदा से प्रतिकूल रहा है। वे बराबर उपदेश देते रहे हैं कि बिजली और गैसों के हण्डों से नेत्रों का प्रकाश मन्द हो जाता है। इस विषय में इंग्लैण्ड के एक डाक्टर ने लिखा है कि सिनेमा की फिल्मों को देखने से आँखों पर बहुत बुरा असर पड़ता है। इसके अतिरिक्त और भी डाक्टरों ने इस विषय में अनुसन्धान करके अपना मत प्रकट किया है, कि पत्र-पत्रिकाओं को पौन घंटे पढ़ने से जितना दृष्टि का ह्रास होता है, उतना ही डेढ़ घंटे सिनेमा देखने से होता है। आजकल सिनेमा देखना बहुत से स्त्री-पुरुषों को अनिवार्य सा होगया है, इसलिये वह रात भर जाग कर सिनेमा देखा करते हैं। जिसके द्वारा दृष्टि की क्षीणता अर्श आदि अनेक रोग होजाते हैं।

× × × × × ×

फ्रान्स में मेडवेली नाम की एक स्त्री के पुरुषों के समान बहुत बड़ी डाढ़ी और मूँछें हैं। इस स्त्री को देखने के लिये बराबर भीड़ लगी रहती है। बहुतेरे चित्रकारों ने इस स्त्री का फोटो भी लिया है। आजकल इस स्त्री के दर्शन के लिये मूल्य देकर टिकट खरीदना पड़ता है।

भारतवर्ष में ऐसी स्त्री से बोलना, हँसना, देखना अथवा दिल्लगी करना बहुत बुरा समझा जाता है । बात भी ठीक है, इस प्रकार की दाढ़ी-मूँछ वाली कुलक्षणा स्त्री को देखने को भी किसी की इच्छा नहीं होगी, किन्तु फ्रान्स सरीखे खूबसूरत देश में ऐसी बदसूरत स्त्री को भी फ्रांस का एक० प्रसिद्ध भावुक बनकर पास रखना चाहता है ।

× × × × ×

सन् १९२६ ई० की मनुष्य गणना से पता चला है कि फ्रांस देश में ४०७२८६३८ मनुष्य हैं । किन्तु स्त्रियों की गणना पुरुषों की अपेक्षा ३ लाख ३ हजार अधिक है । इस स्त्री वृद्धि के हिसाब से मालूम होता है कि एक दिन फ्रांस में मनुष्यों का केवल नाम मात्र ही शेष रह जायगा । चारों ओर स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ दिखाई देंगी । फ्रांस देश की खूबसूरती के कारण सुन्दरी स्त्रियों का पुरुषों पर जादू का सा प्रभाव पड़ता है । तो ये जादू अन्य यूरोप देशों में होता हुआ भारत पर अपना संमोहन अस्त्र डाले बिना न रहेगा ।

भारतीय आयुर्वेद शास्त्र में ऐसे प्रयोग भी हैं, जिनको यथाविधि प्रयोग करने से लड़की का गर्भ लड़के के रूप में परिवर्तित होजाता है । आयुर्वेद शास्त्र में इस क्रिया को पुंसवन कर्म कहते हैं । यदि फ्रान्स निवासी भारतीय वैद्यों को धन देकर चिकित्सा करायें तो उनके अवश्य पुत्रियों के स्थान में पुत्र उत्पन्न हो सकते हैं । और आयुर्वेद के महत्व की परीक्षा भी होसकती है ।

× + × × ×

भारतीय विद्वानों की रसायन विद्या (सोना बनाने वाली विद्या) को देख कर यूरोप में भी कितने ही रसायन शास्त्र की खोज करने वाले वर्षों से सोना बनाने की युक्तियाँ ढूंढ रहे हैं । इंग्लैण्ड के रसायनाचार्यों ने मिलकर बिलकुल सोने की समान [illegible] के नाम से एक प्रकार का नकली सोना बनाया है उसको लन्दन के बढ़िया सिगरट के व्यापारी कैरेरास लिमिटेड कम्पनी ने खरीद लिया है । अर्थात् सोना बनाने वाला अपना बनाया हुआ सोना उक्त कम्पनी को ही दे सकता है अन्य को नहीं । इस कम्पनी ने उस नकली सोने के सिगरट रखने के केस तथा बक्स बनवाये हैं । जो 'वाविनसो' सिगरट पीने वालों को सिगरट के टीन के डब्बों के

कूपन तथा कूपर लौटाने पर बिना मूल्य दिये जाते हैं। इस नकली सोने की भिन्न २ वस्तुएँ हाथ से बनाई जासकती हैं किन्तु इसके आभूषण नहीं बनते। यही इसमें कमी है।

आजकल चाँदी का बाज़ार दिन पर दिन उतरता चला आरहा है। देखने से मालूम होता है कि यह चाँदी पहिली ईंट की चांदी को अपेक्षा कुछ खराब है। पहिली चांदी जल्दी गल जाती थी और फूंकने से शीघ्र ही फुंक जाती थी। किन्तु आजकल की ईंट की नई चाँदी देर से गलती तथा फुंकती है।

\+ + + + +

अब तक संसार में सूर्य के उदय-अस्त से ही दिन रात्रि का बोध होता था। रात्रि में सूर्य अस्त होने पर काम करने वालों को अन्धकार के कारण काम करने में बड़ी असुविधा होती थी। इस कमी को पूरा करने के लिये लन्दन में लापडजोक के कारखाने में रात्रि को कर्मचारियों को सुविधा के लिये वैज्ञानिकों ने कृत्रिम सूर्य की रचना की है। इस कृत्रिम सूर्य की किरणों के द्वारा ग्रीष्म ऋतु के समान उष्णता फैल जाती है और दूर तक प्रकाश भी हो जाता है। इसकी सहायता से दूर लेखन यंत्र भी लगाया गया है। जिससे दूर के अक्षर पढ़े और लिखे जा सकते हैं।

× × × ×

आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा में मैथुन शक्ति को बढ़ाने के लिये बन्दर की बिष्ठा के द्वारा सिद्ध किये तिले का उल्लेख है। इसी बात को लेकर फ्रांस के डाक्टर वारनाफ ने बानरों के अंडकोशों की ग्रन्थियों को मनुष्यों के लगाकर उनको बुड्ढे से जवान बनाने का नवीन आविष्कार किया है। इस प्रकार के आपरेशन मुम्बई, इन्दौर आदि नगरों में कई मनुष्यों के होचुके हैं। उसदिन मारसेठ हुकमचन्द जी ने भी ५ लाख १० हज़ार रुपया देकर उक्त आपरेशन कराया है। सर सेठ जी ने पूछने पर, ३० वर्ष पहिले जैसी शक्ति थी—वैसी ही शक्ति पैदा होने की आशा प्रकट की है।

× × × × ×

रासायनिक ढंगसे परीक्षा करने पर अमेरिका के डाक्टरों को पता चला है कि किसी व्यक्ति का एक बार चुम्बन करने से जीवन के तीन मिनट कम होजाते हैं। इसी प्रकार मुलगों को चुम्बन करने

हुए देखने से तथा बायस्कोप में चुम्बन क्रिया का निरीक्षण करनेसे भी जीवन का अवश्य कुछ न कुछ अंश कम हो जाता है। एक बार चुम्बन करने से जबकि १८० सेकण्ड अर्थात् ३ मिनट में जीवन का ह्रास होता है तो ४८० बार चुम्बन करने से पूरे दिन के जीवन का तथा ३३६० बारके चुम्बन से जीवन के १ सप्ताह की कमी होती है। चुम्बन से जिसका चुम्बन किया जाता है उसकी आयु का ह्रास होता है, चुम्बन करने वालों का नहीं।

एक बार अमेरिका में २ काले रंग की तथा २ गोरे रंग की लड़कियों के स्वास्थ्य की पहले परीक्षा कीगयी। फिर क्लर्क से लेकर चोर तक भिन्न २ प्रकृति वाले २० पुरुषों का उन दोनों लड़कियों का चुम्बन करने को कहा। इसके बाद परीक्षा करने से मालूम हुआ कि साँवले रंग की लड़की के चुम्बन करने से हृदय की गति ६६ और गोरी लड़की की ४० बढ़ गयी।

× × × × ×

यूरोप में कई ऐसी संस्थाएँ है जो सुन्दर स्त्रियों को नौकर रख कर उनके चुम्बन कराकर लोगों से रुपया वसूल करते हैं। और प्राप्त हुए धन में से वेतन का निश्चित धन उन सुन्दरी स्त्रियों को देकर शेष धन से संस्थाओं का कार्य चलाते हैं।

आयुर्वेद के मतसे पती पत्नी के चुम्बन के अतिरिक्त और दूसरों के परस्पर चुम्बन को अत्यन्त पाप बतलाया है। चुम्बन करने से मन के भावों में परिवर्तन होकर मैथुनाचार बढ़ जाता है। अथवा मानसिक मैथुन के भाव उत्पन्न होकर वीर्य और रज पानी के समान पतले हो जाते है। जिससे अनेक रोग उत्पन्न होकर स्वास्थ्य क्षीण तथा मृत्यु तक हो जाती है।

× × × × ×

सुना है, सम्राट् जार्ज पञ्चम के प्रधान डाक्टर ने एक ऐसा इंजैक्शन तैयार किया है, जिससे जल में डूबे हुए तथा ऊपर से गिरे हुए आदमियों को फिर जीवित किया जासकता है।

× × × × ×

पुनर्नवा ।

(लेखक—श्रीयुत वैद्य हीरामणजी भंगले बापजी (पूर्व खानदेश)

नाम—संस्कृत-पुनर्नवा, हिन्दी-साँठ, विषखपरा, बंगला-पुनर्नवा, गुजराती—साटोडी, मराठी—घेटुलोखापरा, कर्णाटकी—मनाहिका, तु०—नेलबसले, मलायरी—तमिकाम, तामिल—मूक्किरटे, तेलगू—अटकमामिडा, इंग्लिश—हॉगवीड, फ्रांस—पेटगाल, पोर्टुगीज—बेजूकोडोपर्गोमियाँ।

विवरण—यह लता जाति की वनस्पति भारत में सर्वत्र पायी जाती है। विशेषकर यह कंकरीली या रेतीली भूमि में अधिक होती है। यह लता गुलाबाँस (merabilis galba) मिरेबिलिस जालप यानी 'नाइक्टा जिनेशिया' उद्भिज्जवर्ग की है। इसकी तीन जातियाँ हैं। सफेद, लाल और नीली। इनमें से नीली और सफेद बहुत कम मिलती है। ये तीनों प्रकार की वनस्पति पुष्प और पत्तों के भेद से पहचानी जाती है। रक्त पुनर्नवा के भी चार भेद हैं। बृहत्, मध्यम, लघु और क्षुद्र। इन चारों में से केवल बृहत् पुनर्नवा के पत्ते साधारणतः गुलाबाँस के पत्तों के समान मालूम होते हैं। पत्तों के किनारे लाल होते हैं। वर्षा ऋतु में पुनर्नवा बड़ी प्रचुरता से सर्वत्र उत्पन्न होजाता है। इसी कारण शास्त्रकारों ने इसके वर्षाभू, वर्षाभव, प्रावृषायिणी आदि सार्थक नाम लिखे हैं। शोथघ्नी, शारिवी ये नाम उसके शरीरस्थ अन्तर्बाह्य शोथ दूर करने के तथा सारक गुण के द्योतक हैं। रसायन शास्त्रज्ञों के मत से पुनर्नवा की जड़ ही औषधोपयोग में लेना चाहिये। क्योंकि उसमें औषधिधर्म अधिक होता है।

गुणधर्म—पुनर्नवा दीपन, विरेचन, मूत्रल, स्वेदजनक, कफनाशक, वमनकारक, विष, खाँसी, हृद्रोग, शूल, रक्तविकार, पाण्डुरोग, अर्श और सूजन को दूर करता है। पुनर्नवा में मूत्रल गुण अधिकता से पाया जाता है। क्योंकि इसके द्वारा मूत्रपिण्ड (गुर्दे)

में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता । और मूत्र का परिमाण दुगुना होजाता है । मूत्रपिण्ड (गुर्दे) में रक्त का संचार होता है । रक्तसंचार की वृद्धि होने से उनमें से जलस्राव अधिक होने लगता है । और इनके छोड़े हुए मूत्रपिण्ड (गुर्दे) के मूत्रल परमाणुओं पर उत्तेजक क्रिया होकर पेशाब में क्षार की वृद्धि होती है । इन दोनों कारणों से मूत्र का परिमाण बढ़ जाता है । यह मूत्रलधर्म, अनुलोमकक्रिया में देने में दीख पड़ता है । पुनर्नवा में अनुलोमक धर्म अल्प प्रमाण में है और इसका कफनाशक गुण प्रत्येक बार में अल्प मात्रा में प्रयोग करने से बोध पड़ता है ।

प्रयोग—

(१) आंख की फूली पर—पुनर्नवा की जड़ को शहद या घी में घीसकर आँखों में अञ्जन करना चाहिए ।

(२) आँखों की खुजली और अश्रुस्राव पर—पुनर्नवा की जड़ को गाय के दूध या भृङ्गराज के स्वरस में घीसकर नेत्रों में अंजन करना चाहिये ।

(३) पुनर्नवादि क्वाथ—पुनर्नवे की जड़, हरड़, नीम की छाल, दारुहल्दी, कुटकी, पटोलपत्र, गिलोय और सोंठ, इनका क्वाथ गोमूत्र में मिलाकर पीने से पाण्डुरोग खाँसी, उदररोग, श्वास, शूल और सर्वांग शोथ आदि रोग नष्ट होते हैं ।

(४) पुनर्नवादि मंडूर—पुनर्नवा, निसोत, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, वायविडङ्ग, देवदारु, चित्रक, पुष्करमूल, हरड़, बहेड़ा, आमलाहल्दी, दारुहल्दी, चव्य, दन्ती की जड़, कुटकी, इन्द्रजौ, पीपलामूल और नागरमोथा प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबका एकत्र चूर्ण कर उसमें ४० तोले मण्डूरभस्म और १२॥ सेर गोमूत्र डालकर मन्द २ अग्नि से पकावे फिर इस पाक को एक उत्तम पत्थर के खरल में डाल कर तब तक घोटे, जब तक कि गोली सी न बनने लगे । जब पाक गोली बनाने योग्य होजाय, तब इसकी १-१ माशे की गोलियें बनालेवे । इन गोलियों में से सुबह शाम एक एक गोली दूध या शहद के साथ सेवन करने से पाण्डु रोग, शोथ, अफरा, उदर रोग, शूल, कृमी, गुल्म, अम्लपित्त आदि रोग दूर होते हैं ।

(५) पुनर्नवारिष्ट—पुनर्नवा, पाठा, दंती की जड़, गिलोय, चीते की जड़, छोटी कटेरी, हरड़, बहेड़ा, आमला, प्रत्येक ४-४

तोले लेकर २००० तोले पानी में डालकर क्वाथ की रीति से पकावे, जब पक कर ५०० तोले जल शेष रह जाय, तब उतार कर छान लेवे। फिर इस क्वाथ में २५० तोले गुड़ तथा ६० तोले शहद मिलावे। और उसमें खोखमूल, इलायची, काली मिर्च, नीलकमल, उशीर (खस) प्रत्येक २-२ तोले लेकर और उनको अध कुट कर उपरोक्त छने हुए क्वाथ में डाल कर एक मट्टी की उत्तम मटकी या पीपे में भर कर उसका मुख बंद करके एक मास तक रखा रहने देवे। इसके बाद उसको कपड़े में छान कर बोतलों में भर कर रक्खे। मात्रा १। तोले से २॥ तोले तक सुबह शाम दोनों समय जल के साथ सेवन करने से पाण्डु रोग, हृदय रोग, शोथ, अरुचि, गुल्म, प्रमेह, भगंदर, खाँसी, श्वाँस, संग्रहणी, कामला आदि रोग नष्ट होते हैं।

(६) पुनर्नवा हरीतक्यवलेह—पुनर्नवा ६४ तोले, चित्रक ६४ तोले, कृष्ण पाठा ४०तोले, सोंठ ४०तोले, दंती की जड़ ४० तोले,दशमूल २०० तोले, सबको.एकत्र कर साधारण कूट कर ५० सेर पानी में डाल कर क्वाथ बनावे। फिर इस क्वाथ में १०० साबित हरड़ डाल कर पकावे जब पक कर चौथाई क्वाथ शेष रह जाय, तब हरड़ों को निकाल लेवे और उस क्वाथ को कपड़े में छान लेवे। फिर उस क्वाथ में ४०० तोले गुड़ डाल कर पाक बनावे। और क्वाथ में से निकाली हुई हरड़ों को छील कर कलई किये हुए पात्र के ऊपर एक वस्त्र को दृढ़ बाँध कर और उसके ऊपर हरड़ों को रख कर कड़े हाथ से अत्यन्त मर्दन करे। फिर इस मर्दन किये हुये मगज को पाक बनाते समय उसमें छोड़ देवे और मन्द २ अग्नि देकर अवलेह की रीति पर पाक तैयार करे। इसके बाद इस अवलेह में नाग केशर, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, तालीसपत्र, तमालपत्र इलायची प्रत्येक २-२ तोले लेकर और उनका कपड़छन चूर्ण तैयार करके उसमें मिला देवे और १६ तोले शहद मिलाकर उस अवलेह को एक मट्टी के उत्तम पात्र में भर कर रख छोड़े। मात्रा १ तोला से २ तोला तक सुबह शाम दोनों समय दूध के साथ सेवन करने से शोथ रोग, अर्श, गुल्म, आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं।

आरोग्य शिक्षा ।

(श्रीयुत दीनानाथ जी "अशंक")

(१)

अकर्मण्य बन जायँगे अखिल आपके अंग ।
यदि अयोग्य आलस्य का किया आपने संग ॥

(२)

मनस्तुष्टि क्षय रोग का करती है संहार ।
नवजीवन देती तथा हरती रक्त-विकार ॥

(३)

भली नींद आती नहीं, करते स्वप्न सभीत ।
भारी भोजन रात में करना है विपरीत ॥

(४)

करना है आहार जो ऋतुओं के अनुसार ।
पीड़ा दे सकता नहीं उसको उदर-विकार ॥

(५)

विषय-भोग में लिप्त हो खोना वीर्य असार ।
करना है निज देह पर भारी अत्याचार ॥

(६)

जाड़े में भी खिड़कियाँ करो कदापि न बन्द ।
घर में आने दो पवन शुद्ध और स्वच्छन्द ॥

(७)

रुज-मूला, बल-हारिणी, बुद्धि-नाशिनी जान ।
त्यागो मादक वस्तुएँ, इसमें ही कल्याण ॥

(८)

भूख लगी हो जिस समय खुल कर भले प्रकार ।
उसी समय पर कीजिये बँधा हुआ आहार ॥

(९)

रक्खो भोजन के समय मन चिन्ता से मुक्त ।
हो जावेगी अन्यथा भुक्त-वस्तु विष-युक्त ॥

चूने की उपयोगिता।

(कविराज के० एम० भावे विषगाचार्य्य)

कितना सीधा सा नाम, कितनी उपयोगी वस्तु, परन्तु कितने ऐसे मनुष्य हैं जो इसका उपयोग भली भाँति जानते हैं ? अधिकांश तो इसका उपयोग पान तमाखू तथा घर की सफेदी के लिये ही है।

आज पाठकों के सामने इसी साधारण चूने के सम्बन्ध में मैंने कुछ लिखने का निश्चय किया है। इसे संस्कृत में चर्ण, सुधा हिन्दी में चूना, कलई, मराठी में चुना, बङ्गाली में च्यून कहते हैं। पानी पड़तेही यह चूरा बन जाता है। यह तेज और क्षार द्रव्य है। शरीर की बनावट में जो द्रव्य भाग लेते है उनमें चूने का भी एक मुख्य स्थान है। इस मात्रा में कमी वेशी होने से शरीर में भी उसका परिणाम होता है। जब इसकी कमी होजाती है तो अस्थिभग्न, अम्लपित्त इत्यादि नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। अब हम इस के उपयोग पर विचार करें। सब से अधिक इसका उपयोग घर की सफाई में किया जाता है। जब आप किसी जगह रहना चाहते हैं तब सबसे प्रथम आप उस घर में सफेदी करवाते हैं। यह किस लिये ? क्या केवल झकमक देखने के लिये ही ? नहीं। परन्तु इस सफेदी के करवाने से उस जगह से कीड़ों का नाश होता है। उनकी वृद्धि रुकती है। इसीलिये रहना आरम्भ करने के पहिले आप मकान में सफेदी इत्यादि करवाते हैं। इसी प्रकार जिस मकान में क्षय के रोगी ने निवास किया हो उसमें भी सफेदी की जाती है। इससे भी कीट नाश करने का ही अभिप्राय है। हैजे से आक्रान्त रोगी के मल को भी चूने से ही ढका जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि सफाई तथा कीटनाश करने में भी इस चूने का स्थान बहुत ऊँचा है पान में जो यह प्रयोग किया जाता है उसे तो सभी जानते हैं। इस चूने का मानव शरीर में दो प्रकार से उपयोग किया जा सकता है।

एक अन्तः दूसरा बाह्य प्रलेप से। उपयोग करने के पहले इसे निम्नलिखित प्रकार से तैयार कर लेना चाहिये। साधारण तरीके से

आप एक पाव चूने के डले को लगभग तीन सेर पानी में भिगोदें, चूना घुल जायगा। कुछ समय पश्चात् जो पानी ऊपर रहेगा उसे शनैः शनैः दूसरे पात्र में डाल लें और फिर एक बार उसे निथार कर एक हरे रङ्ग के काँच की कुप्पिका में भर कर रख ले। यही चूर्णोदक या लाइम वाटर (Lime water) है। इसका प्रयोग निम्न प्रकार से भिन्न २ रोगों में करना चाहिये :—

प्रायः देखने में आता है कि कभी कभी बालक माता का दूध दूषित होने से उसे पचाने में असमर्थ होते हैं। बाहरी अर्थात् गाय इत्यादि का दूध भी नहीं पचा सकते। फल यह होता है कि बालक को जो दूध पिलाया जाता है, वह वमन कर देता है और दिन-दिन बलहीन होता जाता है। अस्थियों की वृद्धि होना भी बन्द हो जाती है, टट्टी फटी हुई, पतली, दूषित गन्धवाली आने लगती है। ऐसी अवस्था में बालक मुरझाने लगते हैं, बदन पर भी झुर्रियां सी पड़ जाती हैं। ऐसी अवस्था में बालक को यह चूर्णोदक उम्र के हिसाब से यानि साधारण तौर से जितने महीने का बालक हो उतने ही बूंद दूध में डाल कर दिन में दो समय देना चाहिये। बालक की अवस्थानुसार इसकी मात्रा में कमीबेशी की जा सकती है। इसके सात दिनके प्रयोग से ही आप देखेंगे कि बालक को अब दूध पचने लगा है। उसकी काया में भी परिवर्तन होना आरम्भ हो गया है। इस प्रकार यह प्रयोग कुछ समय तक जारी रखने से बालक संपूर्ण रूप से स्वास्थ्य लाभ कर सकेगा।

अम्लता के आधिक्य से जब कै आना आरम्भ होजाता है तब इस चूर्णोदक को सेवन कराना चाहिये, इससे वमन बन्द होकर पेट में स्थित अपक्व अन्न पच जाता है तथा उसकी अम्लता भी दूर हो जाती है। इसी प्रकार अजीर्ण से जुलाब होने लगते हैं उसमें भी यह चूर्णोदक फलप्रद है। पेट की खराबी से जब मुख में छाले पड़ जाते हैं उस समय इसको मुख में धारण करना चाहिये। इससे छाले दूर होजाते हैं। जब कोई अंग जल जाय उस अवस्था के लिये इस चूर्णोदकमें बराबर की मात्रामें अलसी का तेल मिला कर रखलें और उसे अग्निदग्ध स्थान पर लगावे या उस पर इसमें भिगोयी हुई कपड़े की गद्दी रखे। परन्तु स्मरण रहे यह अग्निदग्ध की प्रथम अवस्था में ही उपयोगी है।

मल में चुनचुने पड़ने पर विधान पूर्वक इसकी बस्ती करने से कृमियों का शीघ्र ही नाश होता है । बिच्छू के काटने पर दंशित स्थान पर चूर्णोदक में नौसादर मिलाकर लेप कर या कपड़े की गद्दी इसमें भिगोकर रखें।

अब इसका बाह्य प्रयोग भी देखिये

चूर्णोदक बनने के बाद जो बुझा हुआ चूना रह गया है उसे सुखा कर, पीस कर कपड़छन करके रख लीजिये । शरीर में जहां कहीं भी फुंसी फोड़ा, स्थानिक सूजन, बद का निकलना बाह्य ग्रन्थियों की सूजन, गलगंड इत्यादि पर इस चूर्ण को पानी या घी के साथ मिलाकर गरम करके लेप करे । इस प्रकार दिन में दो-तीन समय लेप करना चाहिये । इस से उक्त फोड़ा फुन्सी दब जाती है या पक कर फूट जाती है । मैं कह सकता हूँ कि जो कार्य Anti Phlogistin (एन्टीफ्लाजिस्टीन) से लिया जाता है वह सब कार्य इस मामूली चूने से भली प्रकार पूर्ण होता है । परन्तु सर्वसाधारण इसकी उपयोगिता से भिज्ञ नहीं है । मधुमेह में जो पीड़िका (कारबंकल) होती है उसमें भी इसका उपयोग बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुआ है ।

जब फुन्सी आरम्भ होती है तभी से इसका लेप करना आरम्भ करे । जब फूट कर वह जख्म बन जावे तब ज़ख़्म में आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि "दशांगलेप" का प्रयोग तथा ऊपर पास चूने के चूर्ण का लेप करे ।

अन्त में निवेदन है कि पाठक इसे मामूली चीज न समझें, अपितु इसके यथार्थ गुण से उठावें । इस सम्बन्ध में किसी सज्जन को कुछ और भी पूछताछ करनी हो तो वह पत्र द्वारा या समक्ष मिलकर कर सकते हैं । इस सम्बन्ध में जो अन्य उत्साही सज्जन अनुभव प्राप्त करें वह कृपा कर अपने अनुभव मुझे अवश्य लिखें, कारण इसी प्रकार कुछ ऐसी ही अन्य वस्तुओं के बाबत लिखने का विचार है जिन पर मैं अपने अगले लेखों में प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगा ।

साधारण अनुभूत-योग ।

(१) यकृत वृद्धि और प्लीहा रोग पर—झाऊ वृक्ष के पञ्चाङ्ग को जला कर और उसकी भस्म बनाकर यथाविधि से क्षार (खार) तयार कर लेवे, इस क्षार को शहद में मिलाकर सेवन करने से यकृत का बढ़ना और तिल्ली रोग दूर होता है ।

(२) सर्वाङ्ग शोथ पर—पुनर्नवा, नीम की छाल, पटोलपात, सोंठ, कुटकी, हर्ड़, गिलोय और दारुहल्दी इनको समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर किञ्चित् शहद डालकर पीने से यकृत प्लीहा अथवा अन्यान्य उदर रोगों से उत्पन्न हुआ और समस्त शरीर में फैला हुआ शोथ भी दूर होजाता है । यह शास्त्रीय योग हमारा अनेक बार का अनुभव किया हुआ है ।

(३) मूत्र के विबन्ध पर—किसी कारण से भी मूत्र के बन्द होजाने पर गैंदे के पत्ते और मूषाकर्णी दोनों को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर छानकर पीने से मूत्र उतर आता है ।

(४) लकवा-फालिज—गुड़ में दश गुना पानी मिलाकर औटा ले जब तीसरा भाग जल शेष रह जावे तब उसको ठण्डा करके पिलावे और पानी बिल्कुल न दे । यदि गुड़ औटाकर उसमें शहद मिला दिया जाय तो और भी अच्छा है । पांच दिन तक खाने को कुछ न देना चाहिए । इसके बाद जो रोटी दे वह इसी में भिगोकर दे, इस पर अरहड़ की दाल खाने को देनी चाहिए ।

(५) उन्माद (पागलपन या जनून) रोग पर—एक जंगली बकरी को मंगाकर उसे काहू और कासनी के पत्ते खिलाना आरम्भ करे, तथा चने का दाना दे और उस बकरी का दूध लेकर खूब औटावे और एक अंजीर की लकड़ी को आगे से छेद कर उससे दूध चलाता रहे, फिर इस दूध में नमक या फिटकरी डालकर फाड़ देवे, उसमें से जो पानी अलग निकले, उसको फिर पकावे, जब झाग उठें तब उसे दूर करके उसमें एक तोला मिश्री मिलाकर ठंडा कर पीने को दे । दूध क्रमशः बढ़ाना आरम्भ आठवे दिन अमलतास

का अर्क १ छटांक पिला दिया करे इसको चालीस दिन पर्य्यन्त सेवन करने से उन्माद रोग शर्तिया दूर होता है । यह अनेकों बार का अनुभूत है ।

(६) मोतिया बिन्द पर —निर्मली के बीज, समुद्रफल, सिरस के बीज, सैंजने के बीज, समुद्रफेन, अकरकरा और सेंधानमक इनको गुलाब और मुंडी के अर्क में अलग २ घोट कर अंजन तयार कर लेवे, इसका दिनमें दोबार सलाका से लगाने से तथा मोतिया बिन्द धुन्ध जाला आदि दूर होते हैं । नेत्रों की दृष्टि उज्वल होती और बढ़ती है ।

प्राप्ति–स्वीकार ।

राकेश का क्लीवताङ्क—बरालोकपुर (इटावा) से निकलने वाले सहयोगी "राकेश" ने अपना विशेषांक क्लीवताङ्क के नाम से विशेष सजधज के साथ निकाला है। राकेश का वार्षिक मूल्य २) रु० इस अङ्क का मूल्य ज्ञात नहीं। सम्पादक और प्रकाशक वैद्यराज पं० रूपेन्द्रनाथजी शास्त्री। इस समय इस देश में क्लीबता, (नपुंसकता) धातुक्षीणता आदि रोगों की बाढ़ सी आगई है, जिधर देखिये उधर ही ऐसे रोगों का नाम सुन पड़ता है, प्रायः सभी समाचारपत्रों के मुख्य स्तम्भ ऐसे ही रोगों की दवाओं के चटकीले विज्ञापनों से घिरे रहते हैं। जिनको देखने से यही प्रतीत होता है कि मानों सारा भारत आज पुरुषत्वहीन होगया है। जो हो इस प्रकार के रोगों की वृद्धि का होना बड़े ही लज्जा का विषय है। क्लीवता के सम्बन्ध में अब तक कई स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। और वैद्यक पत्रों में कितने ही निबन्ध भी प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु प्रस्तुत अंक में उक्त रोग और उसकी औषधियों का बड़े अच्छे ढङ्ग से विवेचन किया गया है, उक्त रोग के उत्पन्न होने के विस्तृत कारण लक्षण और उसकी उत्तम योगों के द्वारा चिकित्सा लिखी गई है, इस रोग के कारणों में आजकल की शिक्षा प्रणाली का अच्छा खाका खींचा गया है। अंक उपयोगी हुआ है। जो लोग ऐसे रोगों की विज्ञापनी औषधियों के लिये सैंकड़ों रुपये बरबाद करते हैं, उनको यह अंक मंगाकर अवश्य पढ़ना चाहिए।

वर्ष १७] मई जून सन १९३० [अङ्क ५-६

सम्पादक :—

श्रीशङ्करलाल वैद्य ।

वार्षिक मूल्य १॥)] प्रकाशक :— [एक प्रति ≡)

श्रीहरिशङ्कर वैद्य ।

❋ विषय-सूची ❋

	पृष्ठांक		पृष्ठांक
१ आदर्श वैद्य	१४५	११ स्त्री रोगों की सरल चिकित्सा	१८०
२ रोगी की प्रकृति और अनुभूत योगों की बाढ़	१४६	१२ वैद्य गुणगान	१८२
३ आमाशय और अन्न नाली के रोग	१४९	१३ परीक्षित प्रयोग	१८३
४ पित्त का विवेचन	१५७	१४ सोडे के गुण	१८४
५ खर्पर और उसका उपयोग	१६०	१५ बर्फ की सदावनी चिकित्सा	१८६
६ कागड़ा बूटी	१६६	१६ शालिग्राम निघण्टु भूषण और पं० गणेश शर्मा का बृहन्निघण्टु रत्नाकर सप्तम अष्टम भाग	१८७
७ आमला	१६९	१७ वैद्य के लेख की चोरी	१९१
८ आम के गुण	१७३	१८ खादी पहनने से लाभ	१९८
९ निद्रा देवी	१७५		
१० समस्यापूर्ति	१७६		

❋ "वैद्य" के नियम ❋

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डॉ० म० सहित केवल १॥) है। पेशगी मनीआर्डर भेजने से १॥) और वी० पी० मँगाने से २) में पड़ेगा।

(३) 'वैद्य' का नमूना ≡) के टिकट भेजने से भेजा जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषय के लेख, कविता, अनुभूत-प्रयोग और समाचार आदि भेजेंगे, वे पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायेंगे, परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये, जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या एक आने का टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँचकर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी २ अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं। इसका कारण रास्ते की असावधानी ही होसकती है। जिन महाशयों को जो अङ्क न मिले, वे दूसरे अङ्क के पहुँचते ही हमें सूचना दें, अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सब प्रकार के पत्र मनीआर्डर आदि भेजने का पता,

वैद्य-शङ्करलाल हरिशङ्कर. वैद्य आफिस—

श्री धन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष १७ | मुरादाबाद, मई, जून, सन् १९३० | संख्या ५-६

आदर्श वैद्य ।

(ले० पं० रमाशंकर जी जैतली 'विश्व')

वैद्य तुम जन जीवन आधार ।
देख दशा नित दुखी जनों की
भरते अश्रु, उदार । वैद्य तुम—
पा न सका इस दया सिन्धु का
कोई पारा वार । वैद्य तुम—
तुम अपने पीयूष पाणि से
करते अभय, उदार । वैद्य तुम—
मान रहा है इसी लिये
तुमको सारा संसार । वैद्य तुम—
सभी भाँति दे 'विश्व' सान्त्वना
हरते रोग अपार । वैद्य तुम—

—*—

रोगी की प्रकृति और अनुभूत योगों की बाढ़।

चिकित्सा का कार्य्य करने वालों के लिये प्रकृति सम्बन्धी ज्ञान रखना अत्यावश्यक है। प्रकृति के बिना ज्ञान प्राप्त किये किसी अवस्था में भी चिकित्सक विद्वान् होने पर भी सिद्ध हस्त नहीं हो सकता। क्योंकि जबतक औषधि प्रकृति के अनुकूल न होगी, तब तक रोगी को कभी लाभ नहीं पहुँचा सकती। प्राचीन महर्षियों और वैद्यों को इसका विशेष ज्ञान था। जिसकी वजह से आजतक उनका नाम चला जाता है। उनके प्रयोग किसी भी रोगी पर निष्फल नहीं होते थे, बल्कि वे रामबाण की तरह अपना लक्ष्य वेधते थे। परन्तु आजकल इसका ज्ञान चिकित्सक समुदाय को बहुत कम है। जिसकी वजह से एक २ रोगी पर सैकड़ों दवाइयां उलट फेर करनी पड़ती हैं। तो भी रोगी वास्तविक स्वास्थ्य लाभ नहीं करता। ऐसी अवस्था में रोगी चिकित्सक को दोष दिया करते हैं कि "इतने दिनों तक अमुक वैद्य की और इतने दिनों तक अमुक वैद्य की चिकित्सा कराई। पर किसी से कुछ भी लाभ न हुआ" इसको सुनकर बहुत से चिकित्सक महाशय तो झट यह कह देते हैं कि तुमने कुछ कुपथ्य (बदपरेजी) अवश्य कर लिया होगा। हमारी चिकित्सा कभी निष्फल नहीं होती। और कितने ही चिकित्सक महाशय कह देते हैं कि अब औषधियों में वे गुण नहीं रहे, जो पहले देखे जाते थे। और न वैसी औषधियाँ ही प्राप्त हो सकती हैं। कई महाशय यह भी कह बैठते हैं कि आरोग्य लाभ करना तुम्हारे भाग्य में ही नहीं है, हमने तो विशेष परिश्रम के साथ तुम्हारी चिकित्सा की इत्यादि, "पर ऐसा कहने वाले वैद्यक का यत्किञ्चित् ज्ञान रखने वाले ही होते हैं। परन्तु जिन्होंने आयुर्वेद का उत्तम प्रकार से पठन या मनन किया है वे ऐसी बातें कभी नहीं कहा करते। आजकल अनेक वैद्यराजों ने आयुर्वेद शास्त्र की शास्त्रोक्त प्राचीन चिकित्सा प्रणाली को छोड़कर नाना प्रकार के अनुभूत या परीक्षित प्रयोगों के द्वारा चिकित्सा करना ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझ लिया है।

इसी कारण आजकल वैद्यक साहित्य में अनुभूत योगों की बाढ़ सी आगई है। वैद्यक के अनेक पत्रों में अनुभूत योगों की भरमार देखी जाती है, इसके सिवाय अनुभूत योगों की कितनी ही पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं और होती भी आरही हैं। यदि इसीप्रकार अनुभूत योगों का बाहुल्य रहा तो एक दिन चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, भाव-प्रकाश, चक्रसेन, शार्ङ्गधर, भैषज्यरत्नावली आदि प्रमाणिक ग्रन्थों का अस्तित्व रहेगा या नहीं इसमें सन्देह है। ऐसा ज्ञात पड़ता है कि चिकित्सा ज्ञान अनुभूत योगों ही तक परिमित रह जायगा। अनुभूत योगों के अधिकतासे प्रकाशित होने से सर्वसाधारण जनता का कुछ उपकार होता है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु आजकल वैद्यक पत्रों में जिस प्रकार के अनुभूत योग अधिकता से प्रकाशित किये जाते हैं। उनमें कितने ही ऐसे देख पड़ते हैं जिनसे अल्पलाभ और अधिक हानि होने की संभावना होती है। बहुतसे तत्काल फल दिखाने वाले चमत्कारिक योग—रोग को उस समय कुछ अवश्य दबा देते हैं, परन्तु कुछ समय के बाद ही उनका प्रभाव कम होजाने से रोग फिर उभर आता है। ऐसे योगों में प्रायः अधिकता से तीक्ष्ण और विषैली एवं योग विरुद्ध औषधियों का मिश्रण होता है। कितने ही योगों में देशी औषधियों के साथ अँग्रेजी औषधियां मिलाई जाती हैं। इस प्रकार के अनुभूत योगों को सेवन करने से कुछ समय में ही उलटा परिणाम हुए बिना नहीं रहता। अनुभूत योगों के भक्तों की धारणा है कि वैद्यक ग्रन्थों में जो सहस्रों प्रयोग लिखे हुए हैं वे परीक्षित नहीं हैं। इस लिये वैद्यक-ग्रन्थों के उपस्थित होने पर भी बिना अनुभूत योगों के वे अपनी चिकित्सा का कुछ भी चमत्कार नहीं दिखा सकते, हमारी राय में प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों का कोई भी योग निष्फल या अपरीक्षित नहीं हैं। सभी योग गुणकारक और परीक्षित हैं। मनुष्यों की भिन्न २ प्रकृतियाँ होने के कारण महर्षियों ने एक ही रोग पर सैकड़ों प्रयोग लिखे हैं। जो कि रोगों की प्रकृति देश काल और उसकी अवस्था पर यथाविधि से प्रयोग किये जाने पर कदापि व्यर्थ सिद्ध नहीं होते। हमारा विश्वास है कि यथाविधि से प्रयोग किये हुए प्राचीन ग्रन्थों के आर्ष प्रयोगों के द्वारा जैसा फल देखने में आता है, वैसा आजकल के अनुभूत योगों के द्वारा कदापि नहीं देखा जाता। जो लोग आर्ष प्रयोगों को उक्त अनुभूत योगों की

अपेक्षा हीन गुण वाले या निष्फल समझते हैं। उनके विषय में यही कहा जा सकता है कि उन्होंने यथाविधि रोगी की प्रकृति, अवस्था, देश, काल, आदि पर पूर्ण विचार कर उक्त प्रयोगों का ठीक उपयोग नहीं किया होगा। रोग की यथावस्थामें यथाविधिके प्रयोग करनेकी बातको कहने को कभी तयार नहीं होते। कई वैद्यक के पत्रों में आर्ष प्रयोगों के गुणागुण तक प्रकट किये जाते हैं। इन चिकित्सा के ठेकेदारों की अनुभव की कसौटी में जो योग फलप्रद सिद्ध नहीं होता, वह व्यर्थ या निष्फल ठहराया जाता है यदि विचार कर देखा जाय तो जिन योगों को निष्फल या गुण रहित बताया जाता है, वे वास्तवमें गुण रहित कभी नहीं हैं। अपनी प्रयोग प्रणाली की भूलसे ऐसे लोग बड़े बड़े अच्छे और चमत्कारिक आर्ष योगों को भी गुण हीन ठहरा देते हैं। उदाहरण के लिए सब से सुलभ और अत्यन्त सामान्य त्रिफले के प्रयोग को ही ले लीजिए। आयुर्वेद शास्त्र में लिखा है। त्रिफला-प्रमेह, अथवा वीर्य्य सम्बन्धी समस्त विकारों में अत्यन्त हितप्रद, रुधिरशोधक, रसायन, बुढ़ापे को दूरकरने वाला, सर्व प्रकार के कुष्टों को दूर करनेवाला, नेत्रों को अत्यन्त हितकारी, सर्व प्रकार के उदर सम्बन्धी विकार और सूजन को दूर करने वाला है इत्यादि। वास्तव में त्रिफले के उक्त गुण प्राचीन महर्षियों ने विशेष रूप से उपयोग करके अपने असाधारण ज्ञान और अनुभव के द्वारा लिखे हैं। उक्तगुणों में कोई गुण भी मिथ्या या व्यर्थ नहीं कहा जासकता। प्रत्येक मनुष्य उक्त समस्त गुणों का अनुभव कर सकता है। आयुर्वेद में ऐसे अनेक चमत्कारिक योग भरे पड़े हैं। पर आश्चर्य का विषय है कि आजकल के अनुभूत योगों के परीक्षक ऐसे निर्दोष और अनंत गुण शास्त्री दिव्य औषधियों के परीक्षित प्रयोगों को ज़रा भी निगाह में नहीं लाते, वे तो तत्काल गुणकारक रामबाण योगों को चाहे वे कितने ही हानिकारक क्यों न हों सदा ही ढूंढ़ते रहते हैं। यदि मनुष्यों की वात पित्तादि भेदों से भिन्न भिन्न प्रकृति को अच्छे प्रकार समझ कर आयुर्वेद शास्त्रोक्त योगों के द्वारा चिकित्सा करें तो आयुर्वेद के साधारण योग भी चमत्कारिक और अवश्य तत्काल फलप्रद सिद्ध हो सकते हैं। मनुष्यों की भिन्न २ प्रकृति और उनके विस्तृत भेदों का वर्णन वैद्य के आगामी किसी अंक में लिखेंगे।

आमाशय और अन्ननाली के रोग ।

गताङ्क से आगे ।

लेखक प्रोफेसर डाक्टर रामकृष्ण वर्मा बी० ए० बी० एस० सी० एल० एम० एस० आयुर्वेदाचार्य ।

अब नीचे उक्तरोगों से ग्रसित कुछ रोगियों का वृत्तान्त वर्णन किया जाता है ।

सन् १९२६ में एक रोगिणी स्त्री मेरे पास आई । वह स्त्री शरीर में हृष्ट-पुष्ट थी । देखने से उसके कोई रोग नहीं मालूम होता था । किन्तु उससे पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसको दूसरे या तीसरे महीने में एकाएक रक्त की वमन होती है । हज़ारों सुयोग्य डाक्टर और वैद्यों ने उसकी चिकित्सा की पर किसी से आराम नहीं हुआ । मैंने एक मेडिकल कालेज के प्रोफेसर के पास जो घर पर चिकित्सा का कार्य भी करते थे, उस स्त्री को भेज दिया । उन्होंने तीन मास तक उसकी चिकित्सा की । किन्तु उसको रक्त वमन बराबर होती रही । तब लाचार होकर उक्त प्रोफेसर महोदय ने यह भेद मुझ से न बता कर उसको मेडिकल कालेज में भरती करा दिया । वहाँ भी उसकी एक साल तक चिकित्सा होती रही । परन्तु हालत पूर्ववत् ही रही । कितने ही योग्य डाक्टर हकीम और वैद्यों ने अम्ल पित्त के सिवाय उसको दूसरा रोग नहीं बतलाया । उसके रोग में किसी प्रकार का दर्द नहीं होता था । सिर्फ कब्ज और खट्टी डकारें आती थीं । भोजन पच जाता था । मैं कालेज में एनाटोमी प्रोफेसर था । इस कारण द्रव्य के लिये चिकित्सा का कार्य नहीं करता था । चिकित्सा का कार्य मैं केवल परोपकार के लिये ही करना अच्छा समझता हूँ । साथ ही मूल्य लेकर दवा भी नहीं बेचना चाहता और बिना औषधि अपने पास रखे चिकित्सा होती नहीं । तथा दवा मुफ्त देने से एक तो रोगी को उस पर विश्वास कम होता है दूसरे द्रव्य भी खर्च होता है । इन सब कारणों

से उस रोगिणी स्त्री पर मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया। दूसरे प्रोफे-सरों ने देखकर वही रोग निश्चित रखा और सब प्रकार की दवाएँ कीं, बहुमूल्य औषधियों का प्रयोग भी किया गया। बहुमूल्य औष-धियों के द्वारा आयुर्वेदीय उत्तम से उत्तम चिकित्सा पहिले ही हो चुकी थी, कलकत्ते के कविराजों ने जवाब देही दिया था। इसके उपरान्त रोगिणी का पति एक दिन फिर मुझसे मिला। और उसने सब व्यवस्था कही। और साथ ही यह भी कहा कि यदि आपकी सम्मति होतो मैं उसको काशी ले जाऊं। किसी दवा से कुछ फायदा होता दिखायी नहीं देता। कुछ दिन में मर हो जायगी। यह कहकर वह रोने लगा। उसकी यह दयनीय दशा देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। इससे अधिक लज्जा और दुःख की बात और हो भी क्या सकती है। मैंने उन महाशय को सम्बोधित करके कहा। भाई, तुम्हारी स्त्री असाध्य तो अवश्य है। परन्तु यदि तुम मेरे कहने के अनुसार कार्य करो तो मैं उसको यथासम्भव आराम कर दूँगा। अभी उसके रोग के निर्णय में मुझे सन्देह है। इस लिये यहां कालेज में तुमको कोई ठीक सलाह नहीं दे सकता जब तक मुझको रोग का ठीक निश्चय न होजाय। तब तक मेरी कोई सम्मति नहीं है। इस बात से वह सहमत होगया। दूसरे दिन शस्त्र का प्रबन्ध करके उस स्त्री का मैंने पेट चीर डाला। देखने से मालूम हुआ कि मेदे में आँत के पास कुछ हटकर व्रण होगया है। जिसकी क्रिया नाड़ीव्रण के समान होगयी है। जब उसमें रुधिर भर जाता है, तब वह व्रण फट-कर वमन हो जाती है। और उस व्रण का भाग यकृत् से जुड़ गया है। सब लोग यह बात देखकर अपनी भूलपर पछताने लगे। अन्त में उसको शस्त्र द्वारा ठीक करके उसका उचित उपचार किया गया। रोगिणी अच्छी होगयी। इसलिये वैद्यों को इस विषय में खूब ध्यान रखकर चिकित्सा करनी चाहिये।

इसके सिवाय तीन पुरुष इसी रोग के और भी मेरे पास आये। जो लगभग १०-१२ वर्ष के रोगी थे। वैद्य लोग उनके उपलक्षन और डाक्टर हृदयाकभाव कहते थे। जब मेडिकल कालेज में वे लोग गये थे, उस समय वे केवल दो चार दिन के मेहमान थे इस कारण उनकी चिकित्सा नहीं की गयी और अन्त में वे तीसरे या चौथे दिन मर गये। केवल वैद्यों की जानकारी के लिये यह विषय लिखा गया है।

जो लक्षण पहिले वर्णन किये हैं, वे सब नहीं पाये जाते। सिर्फ एक वमन ही पायी जाती है। परन्तु रुधिर की परीक्षा करने से आमाशयिक व्रण रोग मिलता है। इसी प्रकार अन्य रोगों में भी होता है। जब रोग पुराना हो जाता है तब उसके सब लक्षण नष्ट होकर प्रधान लक्षण स्पष्ट होजाते हैं, और अन्य लक्षणों में भी भिन्नता हो जाती है किन्तु परीक्षा करने से चिकित्सक उसे निश्चय कर लेते हैं। अन्य चिकित्साओं की अपेक्षा आयुर्वेद में विशेष सुभीता है। इस चिकित्सा प्रणाली के द्वारा रोग भी सहज ही में जाना जा सकता है। उचित प्रतीकार भी हो सकता है। परन्तु जब स्वच्छन्दता पूर्वक ऋषियों के ध्येय को हृदयङ्गम करके कार्य किया जाय और उत्तम विद्या पास में हो। वैसे तो चिकित्सा कार्य करने वाले बहुत हैं, किन्तु उनसे क्या लाभ?

इस प्रकार के रोगों को जानने के लिये माधवाचार्य ने अपने माधवनिदान में क्या ही अच्छा उपदेश दिया है:—

'उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः। लिंगमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम्। तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते। संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः॥

आमाशय रोग के सम्बन्ध में—मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषाह्या-माशयाश्रयाः—आदि लिख कर इस विषय को समाप्त किया है। अर्थात् दोष आमाशय के आश्रित रह कर शरीर में फैलकर सम्पूर्ण रोगों को पैदा करते हैं। इसके उपरांत फिर पृथक् २ रोगों में भी आमाशयस्थ दोषों की प्रधानता दिखायी है। जैसे अतिसार रोग आहार-विहार १ से ३ श्लोक तक वर्णन किया है। जिसका सम्बन्ध आमाशय से है फिर पंचम श्लोक में अविपाक शब्द लिखकर आमाशय को स्पष्ट कर दिया है। ग्रहणी रोग में भी प्रथम ग्रहणी रोग का वर्णन करके आमाशय का वर्णन किया है। फिर विदाहेऽन्नस्य पाकश्च चिरात्। इस के द्वारा पूर्ण सूचना दी है। अजीर्ण, विसूचिका, विलम्बिका, अलसक आदि रोग तो प्रधान आमाशय के रोग हैं। और ऊपर जो ६ भेद वर्णन किये गये हैं। वे आमाशय के बड़े २ रोग हैं। इन रोगों की चिकित्सा में चिकित्सक प्रायः भ्रम में पड़ जाते हैं। इन रोगों के सम्यक् ज्ञान के लिये शल्य क्रिया प्रधान है। अन्यथा जितने रोग शरीर में प्रकट होते हैं

उनका प्रथम कारण तत्व आमाशय में प्राप्त हो सकता है। और अन्य रोगों का निदान ग्रन्थों में वर्णन किया है। इस कारण उनको यहाँ पर लिखना आवश्यक नहीं है। माधव हंसराज, निदान दीपिका आदि ग्रन्थों का अच्छी प्रकार अवलोकन करके यदि निर्णय किया जाय तो चिकित्सा कार्य्य में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं हो सकती। शरीर में आमाशय एक ऐसा उपयोगी अंग है कि जिस को उत्तम गति से शरीर का पालन पोषण अच्छे प्रकार होता है। अब आमाशय में किसी प्रकार का दोष उत्पन्न होजाता है, तो शरीर रोगी होजाता है। इस से इसकी प्रथम परीक्षा करके इसके रोगों का निर्णय कर लेना चाहिये। इसके मुख्य रोग—मंदाग्नि, अजीर्ण, तृष्णा, कुछ शूल के भेद, अपद्रव शूल, विशूचिका, विलम्बिका, अलसक, अम्लपित्त, ग्रहणी की प्रथमावस्था और वमन आदि हैं।

आमाशय को यूनानी वैद्य मेदा कहते हैं और अन्ननाली को मरी। जिस प्रकार आमाशय रोगों से ग्रसित होता है, उसी प्रकार अन्ननाली भी रोगों से ग्रसित होती है, और इसमें होने वाले रोग इतने भयंकर होते हैं कि रोगी अचानक कष्ट पाकर अन्त में मृत्यु को प्राप्त होजाता है। ग्रामीण लोग इस बात को जानते हैं। अब कभी वे किसी पर अत्यन्त क्रुद्ध होते हैं, तब उसके लिये यह कहा करते हैं कि तुझ को मरी आवे। यह बात ऊपर लिख चुके हैं कि जो २ रोग आमाशय में होते हैं, वे ही अन्न नाली में भी होजाते हैं। इस के अतिरिक्त और रोग भी पाये जाते हैं जो रोगी के प्राणनाशक हैं। देखो माधव निदान ६० अध्याय श्लोक ४० से ५७ तक।

जिस प्रकार आहार-विहार का प्रभाव आमाशय पर पड़ता है, वैसा ही अन्ननाली पर भी होता है। परन्तु कुछ द्रव्य ऐसे भी हैं, जिनका प्रभाव अन्ननाली में ही होता है आमाशय में नहीं। जैसे—कौंचरोम। यदि कौंचरोम अन्ननाली में लग जायँ-तो उसमें खुजली होने लगती है, पर इनका असर मेदे में नहीं होता। आमाशय की मिल्ली जो अन्दर की तरफ अस्तर करती है, उसमें प्रदाह, रक्त-संचार, सकुन, संकोच, व्रण और प्रतान आदि रोग होते हैं। और इसके अतिरिक्त आमाशय की दीवार में अर्बुद, व्रण आदि रोग देखे जाते हैं। कभी २ ऐसी अवस्था भी प्राप्त होजाती है। जिसमें अन्न-

नाली सकुड़ने लगती है। उस समय शस्त्र क्रिया के द्वारा कृत्रिम उपायोंके अवलम्बन से शरीर को पुष्ट और रोग रहित किया जाता है।

अन्ननाली और आमाशय में होने वाले रोगों का आरोग्य करने के लिये चिकित्सा का वर्णन किया जाता है। यद्यपि इन रोगों का कुछ निदान भी इस लेख में वर्णन किया गया है, किन्तु किसी कारणवश निदान न भी किया जाय तो वात, पित्त, कफ, इन तीनो दोषों को शरण लेकर ही चिकित्सा करने से अवश्य फल होगा।

अन्ननाली के रोगों में जिन औषधियों का व्यवहार होता है, उनमें कुछ औषधियाँ लगाने की और कुछ पीने को होती हैं। इन औषधियों में इस बात का ध्यान अवश्य रखा जावे कि जो औषधियाँ व्यवहार में लायी जावें उनमें सुगन्धि का असर अवश्य होना चाहिये। जिससे उन औषधियों की गन्ध अन्ननाली में आती रहे तो अवश्य लाभ होने की आशा है। नहीं तो केवल सीधी सादी दवा पी लेने से वह सीधे आमाशय में पहुँच जाती है, और उससे आंतों की वृद्धि के सिवाय अन्ननाली को कोई लाभ नहीं होता। सुगन्धित द्रव्य मिले होने से उसकी गन्ध अन्ननाली में अवश्य लगेगी ही। उक्त गन्ध आँतों तक कहीं भी हो। गन्ध में वायुगुण भूयिष्ठ होता है, इससे वह सर्वत्र समान भाव से फैलती है। इसी प्रकार आमाशय के ऊपर लेप करने की औषधियें भी सुगन्धित ही होनी चाहियें। जिससे उनकी गंध मुख और नासिका से होकर आमाशय तक जाती रहे। पीने वाली दवाइयां पतली, पीने में सुविधाजनक और चाटने योग्य होनी चाहियें। अन्ननाली में यदि फैलाव और शोथ हो, तो उसके यह लक्षण होते हैं। शोथ होने पर भोजन के बड़े ग्रास निकलने से अधिक कष्ट होता है, परन्तु जिस आहार में चरपरा, नमकीन और खट्टापन हो तो इससे केवल फैलने का दर्द होता है। आमाशयिक व्रण में बड़ा ग्रास खाने से कम दर्द और छोटा ग्रास खाने से अधिक दर्द होता है। क्योंकि छोटा ग्रास वहां पर रुकता है और बड़ा ग्रास भार से दब कर नीचे चला जाता है। इन बातों को जान कर फैलने की अवस्था में चाटने योग्य और शोथ की अवस्था में पीने योग्य औषधि अधिक हितकर होती है। लगाने की औषधि पतली और लम्बे ब्रुश से भीतर भी लगायी जाती है। यदि समय पर ब्रुश न मिल सके तो बांस की एक लचक-

तार तीली बनाकर और उसके सिरे पर स्वच्छ कीटाणु रहित रुई लपेट कर और उस रुई को एक डोरे से बांध कर उसको दवा में भिगोवे। फिर रोगी का मुख फैलाकर वह दवा उसके भीतर लगानी चाहिये और उस बांस को नीली के भीतर चारों तरफ घुमा देना चाहिये, इस प्रकार करने से दवा अन्ननाली में चारों ओर लग जावेगी।

आमाशय के रोगों की चिकित्सा में लेप, तिला, औषधियों के नर्म और मरहम आदि का भी व्यवहार किया जाता है। जिस समय मेदे में आमाशयिक रस विकृत हो रहा हो, इनके अतिरिक्त अन्य कोई उपद्रव न पाया जाय, तब दूषित मल को निकालने का उपाय करना चाहिये। जिस समय आमाशय की सफ़ाई की जाय और उससे दूषित मल गिरने की आशंका हो तो आमाशय की शक्ति वर्द्धक द्रव्यों से रक्षा करनी चाहिये। जिससे आमाशय दूषित द्रव्यों को ग्रहण न कर सके। यदि दूषित मल शीत गुण विशिष्ट हो तो गरम औषधि, और गरम हो तो शीतल औषधियों का प्रयोग करना चाहिये। यदि यह बात नहीं जान पड़े तो शक्तिवर्द्धक और निःसारक उपाय करने चाहियें, किन्तु वे उपाय न अधिक गरम और न अधिक ठण्डे हों। हकीम बूअलीसीना साहब ने अपने कानन में यह वर्णन किया है कि यदि आमाशय में शीत मल हो तो गुलाब के फूलों के योग से बनी हुई औषधि तथा उष्ण मल होने पर खसखास के द्वारा निर्मित औषधियों का व्यवहार करना चाहिये, जिससे आमाशय में शक्ति की वृद्धि और रोगों की निवृत्ति होती है।

जिस अवस्था में आमाशय और यकृत् के बीच के भाग में कठिनता देखी जाय उस समय और आमाशयिक शोथ में चाहे वह किसी कारण से हुआ हो, तो मारला (जौ का दलिया) और यवागू आदि पतले आहारों के साथ औषधि देनी चाहिये। और क्रम से आहार की मात्रा बढ़ानी चाहिये। प्रारम्भ में आहार की मात्रा थोड़ी देनी चाहिये। इसमें विरेचन और शिरावेध भूल कर भी नहीं कराना चाहिये, क्योंकि रक्त निकल जाने से उस स्थान में वायु भर जाता है। जिससे आमाशय की झिल्ली में रेशे पड़ जाते हैं और उसकी दीवार कड़ी हो जाती है। शिरावेध करने से रोग में अवश्य कुछ शान्ति मालूम होने लगती है, किन्तु अन्त में उसका परिणाम

बड़ा ही भयानक होता है। और विरेचन से अधिक क्षीणता और कमजोरी होजाती है। जिससे कुछ अशक्ति होने पर रोग प्रथम तो कुछ शांत सा मालूम होता है, किन्तु अन्त में वह एक दम उभर आता है और फिर उसको संभालना चिकित्सक को कठिन ही नहीं दुःसाध्य होजाता है। यदि रोगी अधिक हृष्ट पुष्ट हो तो आवश्यकतानुसार विरेचन या शिरावेध किया जाय तो उससे विशेष हानि नहीं होती। पर इसमें विशेष सावधानी से काम करना चाहिये।

आमाशय के रोगों में जो औषधियां व्यवहार की जाती हैं, उन को अधिक बारीक नहीं पीसना चाहिये, बल्कि दरदरा कर लेना चाहिये। अधिक पिसे हुये द्रव्य शीघ्र द्रावण होजाते हैं। किन्तु औषधि दर दरी रखने से वह आमाशय में अधिक देर तक रहती है। और मेदे की गति भी देर तक होती है। द्रव्यों का प्रभाव भी आमाशय के रोगों में अधिक होता है। बहुत से उत्तम चिकित्सक इस विषय पर कम ध्यान देते हैं। किन्तु यह बहुत ही साधारण बात है कि मोटा आहार स्वास्थ्यवर्द्धक होता है और आंतों में लिपटता भी नहीं इसी लिये चूर्ण आदि मोटे ही पिस वाये जाते हैं और पाक वाले द्रव्य खूब बारीक पिस वाये जाते हैं, जिससे उनमें मीठे द्रव्यों का अंश रहने से अग्नि के द्वारा रासायनिक क्रिया से कण बन जाते हैं।

जिस समय आमाशय के दाहिने सिरे में रोग पाया जाय, तब आहार से प्रथम औषधि खानी चाहिये, जिससे भोजन के दवाव पड़ने से औषधि का अंश उसी सिरे के पास रह कर रोग पर अपनी क्रिया करता रहेगा। और जब आमाशय के बायें सिरे में रोग हो, तब आहार करने के बाद औषधि सेवन करानी चाहियें जिस से कि मेदांश भर जाने पर उसके ऊपर औषधि रहे। इससे वह औषधि रोग को नष्ट कर देगी। किंतु औषधि सुगंधित और उत्तम होनी चाहिये। इससे औषधि की गंध चारों ओर फैल जावेगी। यदि औषधि स्वादिष्ट आहार के साथ दी जाय, तो यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि वह आहार पाचक और हलका हो। हलके और पाचक आहार के साथ औषधि देने से रोग के शीघ्र शान्त होने की सम्भावना है। यदि आमाशयिक रोग में आहार से किसी प्रकार का अवगुण होता जान पड़े तो रोगी को तुरंत वमन करानी चाहिये जैसे धनियां सुगन्धित द्रव्य है, और बुकरात के मतानुसार आमाशय

प्रदाह में आहार के साथ धनियें का स्वरस सेवन कराना उत्तम समझा जाता है। इसके व्यवहार से आमाशय प्रदाह में अवश्य आराम होता है, किन्तु आमाशय में अधिक मल संचित होकर कुछ समय के बाद कभी २ ऐसा तीव्र दर्द होता है, कि फिर रोकना कठिन होजाता है। इसलिये यदि ऐसा द्रव्य अभिज्ञ चिकित्सक द्वारा दिया जाय तो रोगी को वमन करा देनी चाहिये। इसके बाद शक्ति वर्द्धक औषधि देनी चाहिये यदि रोगी को सच्ची भूख प्रकट होजावे, तो औषधि कम और आहार की मात्रा अधिक देना चाहिये यदि हानिकारक आहार मेदे में पहुँच जावे और वह अधिक कष्ट-दायक न हो तो जब तक उस आहार का अच्छे प्रकार परिपाक न होजाय और फिर भूख न लगने लगे, तब तक आहार नहीं देना चाहिये। यदि औषधि देने के लिये भी आहार की आवश्यकता हो तो उस आहार से बचना चाहिये। रोगी को विशेष पथ्य से रहना चाहिये। प्रोटिनज द्रव्य और स्नेहयुक्त द्रव्य मांस आदि जो आमा-शयिक रोगों में विशेष हानिकारक हैं, यदि इन द्रव्यों की औषधि में भी आवश्यकता जान पड़े तो भी रोगी के लिये इनका व्यवहार नहीं कराना चाहिये। आमाशयिक रोगों में रक्त का निकालना अत्यन्त ही हानिकारक है।

अन्ननाली के रोगों में शीघ्र पचने वाले और हलके द्रव्य जो अहितकर न हों, रोगी को इतनी मात्रा में आहार के लिये देने चाहियें, जिससे उसका आमाशय भर जावे और आमाशय का ऊपरी भाग औषधि से पूर्ण किया जावे, जिससे औषधि नली में रहकर अपना पूरा प्रभाव कर सके। इसमें आहार के बाद ही दवा देनी चाहिये। इन दोनों रोगों में निम्नलिखित औषधि व्यवहार करनी चाहिये।

अपूर्ण।

——*——

पित्त का विषैलापन।

आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञाता ऋषि महर्षियों ने पित्त की शक्ति, पित्त का कार्य्य, पित्त का प्रभाव और पित्त की स्थिति आदि का विचार करके उसके स्वरूप का जिस उत्तम प्रकार से निर्णय किया है वैसा हम और किसी भी चिकित्साशास्त्र में नहीं देखते। पाठकगण, यदि आप आयुर्वेदोक्त पाँच प्रकार के पित्तों की वैज्ञानिक ढङ्ग से व्याख्या करके एक बार उत्तम प्रकार से विचार कर देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि भारतीय ऋषियों के अतिरिक्त पित्त के तत्त्वों की मीमांसा करना दूसरों के लिए कितना कठिन काम है। आयुर्वेद में प्रतिपादित पित्त के रहस्य को जो भली भाँति जानते हैं वे ही इस जगत् के जीव-विज्ञान को अच्छे प्रकार से समझ सकते हैं। पित्त का रहस्य ऐसा विषय नहीं है जो कि सहज में ही समझ में आजाय इस लिए हम इस विषय को अधिक न बढ़ाकर केवल नवीन विज्ञान के सिद्धान्तों द्वारा पित्त की विषाक्तता को समझाने की चेष्टा करेंगे।

पित्त में नाना प्रकार के पदार्थों के अस्तित्व रहते हैं। वे सब पित्त के उपादान हैं। इन सब उपादानों में से कौन कितने परिमाण में रहता है और उनकी विषाक्त क्रिया किस प्रकार होती है, इस विषय की जानकारी आजकल के वैज्ञानिकों को बहुत कम है। किन्तु चिकित्सक समुदाय को इसका जानना परमावश्यक है। पित्त में जो विषैलापन रहता है उसको अँग्रेज़ी में कोलिमिया कहते हैं। और पित्त के विषाक्त पदार्थ के साथ में जो ख़ास चीज़ रहती है उसका नाम है बिलिरुबिन (Bilirubin) इस बिलिरुबिन के ही कारण पित्त की विषाक्तता के अधिकांश लक्षण जीवों के शरीर में प्रकट होते हैं।

बिलिरुबिन के रासायनिक उपादानों का परिमाण इस प्रकार है:-
$C_{32} H_{30} N_{4} O_{6}$।

यह बिलिरुबिन खटाई के समान, पोटासियम जैसे धातु पदार्थों के साथ मिलकर अनेक प्रकार के भिन्न भिन्न पदार्थों को उत्पन्न करता

है। यह पित्तनाली के भीतर पित्त के बोच में सौ में पाँचवाँ भाग रहता है, किन्तु शोथ या घाव होने से पित्त के निकलने पर उसमें केवल १०० में १ भाग ही बिलिरुबिन रहता है। रात दिन के २४ घण्टों के भीतर यह कितनी तादाद में पैदा होता है, इस बात को आजतक कोई भी ठीक २ निश्चित नहीं कर सका। अबतक केवल इतना ही मालूम हुआ है कि स्वस्थ मनुष्य के शरीर में ५·३ ग्राम से अधिक बिलिरुबिन पैदा नहीं होता। ऐसा अनुमान किया जाता है कि रुधिर के वर्ण से उत्पन्न होने वाले पदार्थ किसी २ अवस्था में अलग होकर बिलिरुबिन को उत्पन्न करते हैं। किन्तु रासायनिक परिवर्त्तन होने पर इसकी उत्पत्ति किस तरह होती है इस बात का भी अभी तक कोई निर्णय नहीं हुआ है।

आँतों के भीतर रोग के बीजाणुओं के द्वारा हाइड्रोजन से हाइड्रो-बिलिरुबिन पैदा होता है और वही स्टारकोबिलिन के रूप में परि-वर्त्तित होकर मल के साथ बाहर निकलजाता है और इसी हाइड्रो बिलिरुबिन का कुछ अंश आँतों के भीतर शोषित और परिवर्त्तित होकर उरुबिलिन के रूप में मूत्र के साथ निकलता है। बिलिरुबिन के द्वारा उरुबिलिन की उत्पत्ति होती है यही आजकल के वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है।

प्रत्येक प्राणी के देह का जितना वज़न हो उसी वज़न के हिसाब से उसमें ६ प्रति सैकड़ा पित्त का पिचकारी द्वारा प्रयोग करने से यह दोष उत्पन्न होता है कि जिससे उसकी मृत्यु होजाती है किन्तु उसी पित्त को यदि जीवों के शरीरों के भीतर पहुँचाकर और सञ्चालित करके उसके वर्णसम्बन्धी पदार्थ को दूर कर दिया जाय तो इस पित्त की विषैली क्रिया दो तिहाई कम होजाती है।

विष से आक्रान्त बिलिरुबिन यदि शरीर के भीतर अधिकतर संचय होता है और वह मल-मूत्रादि के साथ भी नहीं निकल सकता तो सारा शरीर विषैला होजाता है और पेशियों में अत्यन्त उत्तेजना होती है। इसी अवस्था को अंग्रेज़ी में (Nervousness) नरवसनीस अर्थात् स्नायुओं की दुर्बलता कहते हैं।

यकृत् के दोष—बिलिरुबिन पित्त के साथ बाहर निकल कर आँतों में न आकर वहीं शोषित होजाता है। पित्तवहा सूक्ष्म नाड़ियों का अकड़ जाना, यकृत् का रोग (यानी बढ़ना घटना) और कोष

के दोष से ऐसा होता है । त्वचा का वर्ण पित्त के वर्ण की समान पीला दिखाई दे तो इस प्रकार की अवस्था सहज में मालूम होजाती है; क्योंकि पित्त के विपैलेपन को जानने का सीधा सादा उपाय रोगी के रक्त की परीक्षा करना है । किन्तु हमारे प्राचीन महर्षि लोग इस बात की भी कोई आवश्यकता नहीं समझते थे, वे रोगी के अन्यान्य लक्षणों को देख कर ही उस रोग का पूरा निश्चय कर लेते थे । नीचे उन्हीं लक्षणों का साधारण रूप से वर्णन किया जाता है ।

स्नायुओं की दुर्बलता, शिथिलता, पुरुषार्थ हीनता अर्थात् किसी काम के करने में भी मन का न लगना, स्नायुओं में उत्तेजना का होना, स्वभाव का क्रूर होना, मन का विकृत होना, अजीर्ण अर्थात् भोजन का परिपाक न होना, भोजन के बाद पेट में भारीपन मालूम होना, और १ या २ घंटे के बाद प्यास का लगना, खट्टी डकारों का आना, भोजन के बाद तुरन्त ही पाकस्थली में पीड़ा होना । यह पीड़ा कुछ देर के बाद कम होजाती है और २-३ घंटे के बाद फिर होने लगती है और ऐसा मालूम होता है कि खाया हुआ भोजन आमाशय से उछल कर मुँह में को आरहा है, जो मिचलाता या कभी २ कै का होना, कब्जियत या कभी कभी दस्तों का होना, काँजी के समान मलका निकलना, मलस्राव होते समय गुदा में जलन होना मल में अधिकतर पित्त का रहना, कभी कफ और रक्त भी मिश्रित रहता है । कभी कै और दस्तों का एक साथ होना, नाड़ी का कभी स्वाभाविक और कभी मन्दगति से चलना एवं कभी दुर्बल, कभी उत्तेजित, कभी मृदु और कभी विषम गति से चलना, मुँह से लार टपकना, स्वाद का तीखा होना, श्वासोच्छ्वास में दुर्गन्ध आना, शरीर की गर्मी का घटना बढ़ना आदि, अर्थात् प्रातःकाल में कोई ७-८ बजे के वक्त सब से अधिक उत्ताप बढ़ता है और शाम को बिल्कुल कम होजाता है उस समय रोगी यह समझता है कि मुझे ज्वर होगया है कभी कभी उसको नाक से या मुंह से रक्तस्राव होता है । वृद्ध होनो कभी २ उसको आँखों से रक्तस्राव होता है और स्त्रियों के रजःस्राव अधिकतर होता है । इन लक्षणों से पित्त का विपैलापन भली भाँति जाना जा सकता है । इसके अतिरिक्त त्वचा का वर्ण पीला पड़जाता है, कुछ हलकी हल्दी के रंग के समान मालूम होता है, यह बात हाथ पैरों में अधिकतर दिखाई देती है ।

हाथ पैरों की सन्धियों के बीच में यह पीलापन औरों की अपेक्षा साफ़ देख पड़ता है, हाथों पैरों के तलुवे, और मुँह के ऊपर किसी किसी जगह एवं शरीर के अन्यान्य अङ्गों में भी पीले पीले दाग़ से दिखलाई पड़ते हैं।

इस रोग की पहली अवस्था में सारे शरीर की त्वचा का वर्ण विकृत् होजाता है और कहीं कहीं गहरे रंग के दाग़ होजाते हैं।

मानसिक विकारों के अनेक लक्षण प्रकट होते हैं। इन लक्षणों की ओर चिकित्सकों के विशेष ध्यान देना चाहिये। क्योंकि कभी कभी मेलाङ्कोलिया के लक्षण भी उत्पन्न होजाते हैं। रोगी कभी क्रोध में भरा बैठा रहता है, कभी सोता ही रहता है, ज़रा ज़रा सी बात पर बहुत ही अफ़सोस करता है, अनिश्चित बातों की आशंका करता है, कभी मरने की इच्छा करता है, किन्तु आत्मघात नहीं करता। दूसरे लोग जो कुछ भी कहते हैं सब सुनता रहता है। एवं बुरे विचारों में फँसे रहना, नींद का न आना, शरीर का क्षीण होना, सिर का पीड़ा आदि लक्षण भी देखे जाते हैं और किसी किसी को उन्माद भी होजाता है।

शरीर की परीक्षा करने से मालूम होता है कि यकृत् कुछ घट जाता है और प्लीहा कुछ बढ़ जाती है। किन्तु सब रोगियों के ऐसा नहीं होता।

एक रोगी के पित्त में विषैलापन होगया था उससे प्रश्न करने पर यह पता चला कि उसको पहले अजीर्ण (डिसपेपसिया) रहता था और उसका कोठा साफ़ नहीं रहता था। इस कोष्ठबद्धता की वजह से उस रोगी ने बहुत दिन तक कष्ट भोगा, और इसको दूर करने के लिए निरन्तर पाचक या विरेचन औषधियों का सेवन करते रहने से उसका सारा शरीर विषैला होगया।

पाकस्थली के भीतर प्रदाह उत्पन्न होती है,इसलिये यकृत की क्रिया में विषमता होजाती है और उससे सूक्ष्म पित्तवाहिनी नाड़ी दब जाती है, अतः पित्त काफ़ी तौर से बाहर नहीं निकल सकता, नलिका के भीतर ही रह जाता है। पाकस्थली की उत्तेजनक्रिया के कारण यकृत् विशेष रूप से संकुचित होता है और इससे पित्त-नाली में दाह उत्पन्न होती है।

चिकित्सा ।

इस रोग में डाक्टरी इलाज करना तो किसी प्रकार भी ठीक नहीं है क्योंकि डाक्टर लोग इसमें पारा मिली हुई औषधियाँ और ग्लाई कोकोनेट सोडियम का प्रयोग करते हैं और कोई कोई आदि क्रिमालसिरम की सिर में पिचकारी लगाते हैं और कोई क्षार पदार्थ मिश्रित औषधियों तथा सोडियमसलिसिलेट को व्यवहार करने की राय देते हैं, जिन से हानि के सिवा और कोई लाभ नहीं होता।

किन्तु वैद्यों के द्वारा हमने इस रोग के अनेक रोगियों को आराम होते देखा है। गिलोय इस रोग के लिये सब से उत्तम औषधि है। हमको गिलोय के क्वाथ का प्रयोग करने से इस रोग में विशेष सफलता प्राप्त हुई है। दो तोले गिलोय को आध सेर जल में पकावे आध पाव जल शेष रहने पर उतार कर छान लेवे और ४ ओंस की शीशी में भरकर ४ निशान लगाकर रखलेवे। उसमें से तीन २ घंटे के बाद एक २ खुराक रोगी को पिलावे। इससे रोगी को बहुत लाभ होता है। रोगकी प्रथम अवस्था में गिलोय का सेवन करने से रोग निस्सन्देह दूर हो जाता है। गिलोय को प्रायः सभी लोग जानते हैं, और यह सर्वत्र सहज में मिल जाती है। यह बहुत ही गुणदायक औषधि है। त्रिफलादि क्वाथ भी पित्त के विषैलेपन को दूर करने के लिये एक उत्कृष्ट औषधि है। हरड़ बहेड़ा, आमला, गिलोय, अडूसे की छाल, कुटकी, चिरायता और नीम की छाल इन आठों औषधियों को चार ७ माशे लेकर आध सेर जल में पकाकर चौथाई जल शेष रहने पर उतार लेवे और छान कर ४ ओंस की शीशी में भरकर रखलेवे। उसकी चार खुराकें बनाकर तीन २ घंटे के बाद पान करे। इस क्वाथ के सेवन से पित्त के विषाक्त होजाने पर अत्यन्त उपकार होता है यह क्वाथ यकृत् को उत्तेजित करने वाला है। इससे त्वचा का वर्ण विकार भी दूर हो जाता है रोग के अन्यान्य लक्षण भी नष्ट होजाते हैं। किसी २ का मत है कि मल्लूरभस्म भी इसमें विशेष लाभ करती है, किन्तु हमारी परीक्षित नहीं है।

खर्पर और उसका उपयोग ।

सम्मेलनांक से आगे ।

(ले० श्रीयुत वैद्यराज पं० रामरतन श्रीनिवास शास्त्री आयुर्वेदाचार्य)

क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि यशद खर्पर का सत्व है कारण यशद पर्य्याय ही इसके लिये पर्य्याप्त है ।

देखो प्रमाण नं० ११

यशद शब्द पर शास्त्रीय विचार ।

उपर्युक्त सिद्धांत स्थिर करने के लिये यशद शब्द के शास्त्रीय-नामों पर विचार करना उचित है। प्राचीन समय में यशद का उपयोग खर्पर नाम से होता था ।

१६—कर्णाटक तैलङ्ग और काठियावाड़ में—आज भी यशद को खर्पर कहते हैं ।

तैलिंग देश में यशद का खर्पर नाम से तथा काठियावाड़ में खारीपारी नाम से व्यवहार होता है ।

अरबी में यशद को रूमी तूतिया कहते हैं ।

शास्त्र में यशद के=असद, यसद, मशद, रंगसदृश रीति हेतु पर्य्याय हैं और खर्पर के यशद कारण यशद, रीतिकृत् । ताम्र रंजक आदि पर्य्याय हैं अब आप विचार की कसौटी पर रख कर देखिये कि अक्षरशः दोनों प्रकार के शब्दों का एक ही अर्थ होता है या नहीं । अच्छा हम क्रमशः दोनों शब्दों की तालिका नीचे उद्धृत करते हैं ।

खर्पर या खर्पर सत्व—		यशद
यशद कारण		असद
रीतिकृत्		रीति हेतु
वंगाभ वंगाकृति सीसकाकार	}	वंग सदृश

अब उपरोक्त शब्दों पर शास्त्रीय विचार करके देखने से अक्षरशः ये सब समानार्थक विदित होते हैं । इसी लिये खर्पर का यशद

कारण और उसके सत्व का वंगाम (वंगसदृश, जसद) नाम करण किया गया है।

खर्पर सत्व और यशद के गुण।

खर्पर के सत्व और यशद के गुणों में भी समानता पायी जाती है यथा—

१७—रसको रंजको रूक्षो वात कुच्छ्लेष्मनाशनः।
त्रिदोषघ्नं च तत्सत्वं नेत्ररोग विनाशनम् ॥
(रस कामधेनु)

१८—यशदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत्।
चाक्षुष्यं परमं मेहान् पाण्डुं श्वासं च नाशयेत् ॥
(भाव प्रकाश रसराज सुन्दर)

उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि यशद खर्पर का सत्व ही है।

खर्पर का एक और यह भी गुण है कि वह अग्नि पर स्थायी नहीं रहता, और शीघ्र गलकर भस्म हो जाता है। यथा—

१६—अस्थिरोऽग्नि गतोत्यर्थं दह्यतेक्षणमात्रतः।
(रसराज सुन्दर ६८)

यशद को अग्नि पर रखने से क्षणमात्र में गल कर भस्म हो जाता है।

यदि यह प्रश्न किया जाय कि वंग सदृश या सीसकाकार कौनसी वस्तु है, तो सबके मुख से यही उत्तर मिलेगा कि वह यशद है।

यशद और वङ्ग का मिलान करने से उसके समस्त आकार प्रकार एक दूसरे के सदृश मिलेंगे। इसी लिये आचार्यों ने उसका वङ्ग सदृश नाम से उपयोग किया है।

"यशद खर्पर के शोधन और मारण में समता"

२०—यशदंज्ञालयेत्पूर्वं दुग्धमध्येतु ढालयेत्।
एकविंशतिवारांश्च खर्परं शुद्धिमाप्नुयात्।
(रसराजसुन्दर ६८)

२१—यशदस्य चतुर्थांशं पारदं गन्धकं प्रिये।
मर्दयेत्खल्लके सम्यक्कन्या निम्बुरसैः पृथक् ॥
लेपयेत्तेन पत्राणि गजाह्वे पाचयेत्पुटे।
एकमेव पुटेनैव भस्मी भवति खर्परम् ॥ रसराज० ६८

उपरोक्त पद्यों में खर्पर और यशद दोनों शब्दों का साथ २ पर्य्याय रूप में उल्लेख किया गया है। 'भस्मो भवति खर्परम्' के स्थान में भस्मलाज्जालदं भवेत् भी पाठान्तर है, जो खर्पर का ही अभिप्रायक है ।

खर्पर और यशद के गुण ।

खर्पर और यशद के गुणों में भी समानता देखी जाती है ।

२२—रसकः सर्वमेहघ्नः कफपित्तविनाशनः ।
नेत्ररोगक्षयघ्नश्च लोहपारदरञ्जनः ।
(रसरत्न स० २३ रसकामधेनु)

यशद गुण :—

२३—यशदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत् ।
चाक्षुष्यं परमं मेहान् पाडुं श्वासं च नाशयेत् ॥
(भावप्रकाश रसराजसुन्दर)
नेत्ररोगेषु सर्वेषु भस्मीभूतमिदं शुभम् ।
गुरुजाड्यं तु यशदं सर्वरोगान् व्यपोहति ॥
(रसराजसुन्दर ६८)

२४—खर्परं पत्रकं कृत्वा लवणान्तर्गतं पचेत् ।
जायते शोभनं भस्म सर्वरोगापहं स्मृतम् ॥
(रसराजसुन्दर १००)

उपरोक्त गुणों में बहुत समानता पायी जाती है। अक्षरशः मिलान कर शास्त्रोक्त "गुरुजाड्यं तु यशदं सर्वरोगान् व्यपोहति और सर्वरोगापहं स्मृतम्" पर भी एक दृष्टि डालिए।

इन सब प्रमाणों से भलीभाँति सिद्ध होगया कि खर्पर और यशद दोनों एक ही वस्तु हैं।

कोई २ सज्जन यह शंका कर सकते हैं कि यदि खर्पर और यशद दोनों एक ही वस्तु हैं तो उसमें ताम्रादि को पीत बना देने की शक्ति भी होनी चाहिए।

२—और रसशास्त्रोक्त "रसश्च रसकश्चोभौ येनाग्निसहनौ कृतौ । तेन स्वर्णमयीसिद्धिर्जिनानाञ्च शंसयः ॥ आदि, अग्नि में स्थिर न रहना उसका स्वभाव या गुण होना चाहिए।

इन शंकाओं का समाधान निम्नलिखित प्रमाणों से युक्ति संगत जान पड़ता है ।

१—ताम्रादि को स्वर्ण जैसा पीत बना देने की शक्ति यशद में विद्यमान है।

पित्तल=ताम्र और यशद के मेल से बनना ही इसका पर्य्याप्त प्रमाण है।

रीतिकृत् या रीति हेतु यशद् का नाम ही इस बात का द्योतक है।

२—खर्पर अग्नि में स्थायी नहीं रहता है। यह बात ज़रा विचार करने पर समझ में आसकती है, जिसके लिए प्रमाण नं० १६ देख लेने से अर्थ संगत हो सकता है यथा—

अस्थिरोऽग्निगतोत्यर्थं दृश्यते क्षणमात्रतः।

(रसराज प्रमाण नं० १६)

अर्थात् खर्पर अग्नि में देर तक स्थिर नहीं रह सकता। वह शीघ्र ही गल कर जल जाता है या उसकी शीघ्र भस्म हो जाती है।

यह बात यशद में सर्वांशतः ठीक ही है इस में किसी को संदेह नहीं है। प्रत्यक्ष में हठ करना विद्वत्ता के प्रतिकूल है।

२५—तेन स्वर्णमयी सिद्धिर्जिना नात्र संशयः।
देहलोहमयी सिद्धिर्दासी तस्य न संशयः॥

(रसरत्न २३ रसकामधेनु)

रही इन उपर्युक्त बातों की शंका वह खर्पर द्वारा काया कल्प या स्वर्ण सिद्धि प्रकरण के विषय की है जो कलिकाल में अत्यन्त दुस्तर या अप्रत्यक्ष है। ग्रन्थों में कायाकल्प और स्वर्ण सिद्धि के अनेक प्रयोग वर्णन किये गये हैं किन्तु उनका सिद्ध होना अत्यन्त कठिन है।

यदि कोई उक्त दोनों क्रियाओं को सिद्ध करके दिखा सके तो खर्परसे स्वर्ण सिद्धि हो सकती है अन्यथा यह विषय प्रलाप मात्र है।

हमारे लिये प्रमाण नं० १६ के अनुकूल इसका क्षणमात्र में भस्म होजाना ही अर्थ ठीक है। हमें रसेन्द्रसार संग्रहोक्त विधि द्वारा इन पद्यों का भस्म विधायक अर्थ ही युक्ति सगत जान पड़ता है। यथा-

२६—खर्परंपारदेनैव वालुकं यंत्रगंपचेत्। चूर्णयित्वा दिनं यावज्जायते भस्म जायते। नेत्ररोग हरः क्लेदोत्तय हृत् खर्परो गुरुः। ४५

इस प्रकार इन प्रमाणों द्वारा भलीभाँति यह सिद्धि होगया कि यशद खर्पर ही है। खर्पर के सत्व को ही यशद कहते हैं और खर्पर

शब्द से यशद का व्यवहार करना शास्त्र संगत है। इसमें संदेह नहीं ।

शास्त्रारण्यं महज्जालं बुद्धिविभ्रमकारणम् ।

श्री शंकराचार्यजी की इस उक्ति को लक्ष्य में रखते हुये शास्त्रीय प्रमाणों का सम्मत अर्थ करके विचार किया जाय तो निश्चय हो जायगा कि यशद ही खर्पर है। दूसरी वस्तु नहीं है।

यह विचार हमारा स्वतन्त्र नहीं, शास्त्रीय है इसे हम सद्वैद्यों तथा नि० भा० वैद्य सम्मेलन के सम्मुख रखते हैं वैद्यगण अपनी २ सम्मतियाँ देकर इसका यथोचित निर्णय करें । इति ।

फांगड़ा बूटी

ले० वैद्यराज पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी B. A. आयुर्वेदाचार्य ।

संस्कृत में इसे 'फणिज्जक' कहते हैं, मरेठी में फांगड़ा। हिन्दी का कोई योग्य शब्द इसके लिये न मिलने से हम इसे फांगड़ा बूटी के नाम से पुकारते हैं। यह बूटी रत्नागिरि आदि दक्षिण के कोकण प्रान्त में बहुतायत से पाई जाती है। इसे अपनी ओर मरुआ कह सकते हैं, कारण स्वरूप आकारादि में यह मरुआ या वन तुलसी के समान ही होती है, किन्तु मरुये के और इसके गुणों में विशेष अन्तर है। कदाचित् यह अन्तर देशभेद के कारण होगया हो ऐसा जाना जाता है।

इसके छोटे २ पौधे जङ्गली तुलसी के समान होते हैं, जिनमें तुर्रे लगते हैं। पौधे और तुर्रों का रंग ललाई लिये हुये कुछ ऊदा होता है। पत्तों में तीक्ष्ण गंध होती है। इसके फल अत्यन्त छोटे २ काले रंग के चमकदार होते हैं। इसके पुष्प में से सूखी दाख की समान गंध आती है। इसकी मूल गठीली, छाल पतली तथा खरदरी होती है। इसकी पत्ती या छाल के चबाने से जीभ और तालु बधिर या स्पर्श ज्ञानशून्य थोड़ी देर के लिये हो जाते हैं।

कोकण की ओर इसके पत्तों का स्वरस निकाल कर व्रण या जख्मों को धोने के काम में लाते हैं, तथा शरीर का कोई भी भाग सूज गया हो तो उस पर इसकी पुल्टिस बांधी जाती है, जिससे

दूषित रक्त शुद्ध होकर, सूजन या जख्म के कारण हुई वेदना कम हो जाती है । और शरीर में नवजीवन का संचार होता है ।

फुरसा * नामक सर्प के दंश पर इस बूटी का चमत्कारिक प्रभाव देखा गया है । इसकी जड़ को जल के साथ पीस कर सर्प दंशित रोगी को दिन में ३ बार पिलाते हैं, तथा दंश स्थान पर भी इसी जड़ी को घिस कर लेप कर देते हैं । इससे विष का असर जाता रहता है ।

सर्प विष के ऊपर इसका अनुभव इस प्रकार प्रसिद्ध है कि एक २७ वर्ष के मनुष्य को रात्रि के समय उक्त सर्प ने काटा, तब वह मनुष्य उसी समय रत्नागिरी के अस्पताल में लाया गया । दंश स्थान को चीरकर उसमें 'लिकर आमोनी' नामक दवा लगाई गई । दूसरे दिन सबेरे ज़ख्म में से रक्तस्राव होरहा था, दांतों की हड्डियों में से तथा जीभ में से भी रक्तप्रवाह जारी था । तब फांगड़े की जड़ी २० ग्रेन जल के साथ पीसकर दिन में ३ बार पिलाई गई । प्रथम मात्रा पिलाने के बाद थोड़ी देर में रोगी को चक्कर सा आना एक दम बंद होगया । दूसरे दिन भी उसे ३ बार पिलाने से उसके मुख से निकलने वाला रक्त का प्रवाह बहुत कुछ कम होगया, और चौथे दिन रोगी बहुत कुछ अच्छा होगया । इसके सिवाय रोगी को अन्य कोई भी औषधि नहीं दी गई । डा० आईट साहब आगे अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं कि उक्त केस में मैंने फांगड़ा के अपूर्व गुणों का अनुभव किया ।

रत्नागिरि जिले के डा० लैंगले साहब ने लिखा है कि-मेरे अस्पताल में प्रतिवर्ष १३-१४ केसेस जहरीले सर्पदंश के आते हैं । सब पर मैं फांगड़ा की जड़ के चूर्ण की ही योजना करता हूं जड़ी को जल के साथ पीस कर दंशस्थान पर लेप कर देता हूं । ४-५ दिन के अन्दर सब रोगी ठीक होकर घर चले जाते हैं ।

---

* यह सर्प १॥ या २ हाथ लम्बा, कुछ लालवर्ण का चिपटा सा दक्षिण के कोकण प्रांत में प्रसिद्ध है । यह विषैला सांप अत्यन्त उग्र और चपल होता है । इसके विष के प्रभाव से सूजन, चक्कर, अत्यन्त सुस्ती, मुख से रक्तस्राव, मूत्रावरोध, बेहोशी इत्यादि लक्षण होते हैं कहते हैं रविवार के दिन इस सर्प का ज़हर बहुत जोर पर रहता है । इसके विष का असर शरीर में धीरे २ होता है ।

लेखक ।

डा० मार्क कालमन इस विषय में स्पष्ट रूप से लिखते हैं। कि एक दिन सवेरे ६ बजे एक मनुष्य अस्पताल में लाया गया। एक घंटा पहले ही उसे सर्प ने पैर के पिछले हिस्से में काटा था। उसी समय उसे फांगड़ा की जड़ का चूर्ण जल के साथ पिलाया गया, तथा दंशस्थान पर फांगड़े के पत्तों को पीस एवं गरम कर पुल्टिस के समान बाँधा गया। ३ घंटे बाद दंशस्थान पर वेदना होने लगी, पैर की एड़ी से जो शोथ का प्रारम्भ हुआ सो ऊपर घुटने के नीचे तक पहुँच गई, रोगी को चक्कर आने लगे, अत्यन्त क्षीणता होगई, तथा जीभ के निम्न भाग एवं हड्डियों में से काले नीले रंग का रक्त स्राव होने लगा। यह रक्तस्राव सर्प के काटने के एक घंटे बाद ही से प्रारम्भ होगया था। नाड़ी ७२, उष्णतामान ९७ तथा श्वासोच्छ्वास की क्रिया रुक २ कर चल रही थी। रक्तस्राव किसी प्रकार बंद नहीं होता था। किन्तु धन्य है इस फांगड़े को! इसके लगातार प्रयोग से रक्तस्राव शीघ्र ही बन्द होने लगा।

दुपहर को दो बजे चक्करों का वेग भी कम होने लगा। नाड़ी का वेग ७८, उष्णतामान ९९, मुद्रा शांत, मूत्र का वर्ण काला या मटमैला, तथा दंशस्थानीय वेदना बहुत कम थी।

शाम को ६ बजे मुख का रक्तस्राव बन्द होगया, किंतु डाकुरों का वेग कम न हुआ। नाड़ी ७२, उष्णतामान ९९·४; खुर्दबीन से देखने पर मूत्र में रक्त के परमाणु दिखाई देते थे।

दूसरे दिन रक्तस्राव बिलकुल नहीं हुआ, दंशस्थानीय शोथ कम होगया। नाड़ी आदि प्रथम दिन के अनुसार चलती रही।

तीसरे दिन रक्तस्राव, और चक्कर का होना बिलकुल बन्द हो गया। नाड़ी ६६, पैर में शून्यता थी, किंतु वेदना नहीं थी।

चौथे दिन शोथ एकदम ग़ायब होगया, मूत्र साफ़ किंतु कुछ अधिक प्रमाण में होता था।

पांचवें दिन फांगड़े का प्रयोग नहीं किया गया, कारण रोगी का शरीर विष रहित होकर वह चंगा हो रहा था। शीघ्र ही वह बिलकुल ठीक होकर अपने घर चला गया।

रत्नागिरि ज़िले के सिविल अस्पताल के रेकार्ड को देखने से पता चलता है कि आज तक जितने केसेस फुरसा सर्प दंश के यहाँ

आये, उन सब पर उक्त बूंटी की ही योजना की गई, और अब भी बराबर की जाती है। लेकिन एक केस में नाकामयाबी हुई, जिसका कारण बतलाया गया है कि उसे नियमानुसार बूँटी का सेवन न कराते हुये, बूंटी का केवल अर्क दिया गया था।

फांगड़ा बूंटी अत्यधिक रक्तस्राव को कम करती, मस्तिष्क के विकारों को पूर्णतया दूर करती, दूषित रक्त का शोधन कर उसे पूर्वस्थिति को प्राप्त कराती, मज्जातंतु के विकारी केन्द्रस्थानों को निर्विकारी बनाती, तथा शरीर को सब प्रकार से स्वास्थ्यप्रद है। शरीर के अन्दर से विष को बाहर निकालने में जिन इन्द्रियों का सम्बन्ध आता है, उन्हें इस बूटी द्वारा चेतना प्राप्त होती है। इस बूटी की रासायनिक सम्मिश्रण द्वारा जाँच करने पर मालूम हुआ कि इससे जो एक प्रकार का क्षार निकलता है वह क्लोरोफार्म में घुल सकता है। इस क्षार में Trimethylamine ट्रायमिथालमाइन नामक द्रव्य रहता है, तथा उसमें राल के गुणधर्मयुक्त तत्त्व स्थंभक पदार्थों सहित पाये जाते हैं। इस क्षार का नाम अंग्रेज़ी में Pogostemonine पोगोस्टेमोनाइन रक्खा गया है। *

आंवला

ले० श्री० प्रवासीलालजी वर्मा मालवीय।

आंवले का वृक्ष भारतवर्ष में बहुत होता है। इसे संस्कृत में आमलकी, हिन्दी में आंवला या आमला, गुजराती में आंवला, बंगला में आमलकी, मराठी में आंवले, कर्नाटकी में नल्लीमारा, तैलङ्गी में उसरकाय या वेल्ली, तामील में नेल्लीमारम, मलयालम में नल्ली या आमलकम्, फारसी में आमलज, अरबी में अम्लजी लैटिन में फिलें थस एंब्लिका और अँग्रेज़ी में एंब्लिक मिरोबेलन कहते हैं। यह बहुत बड़े होते हैं। इसके पत्तों की आकृति छोंकर के पत्तों के जैसी होती है।

* मरेठी 'आयुर्वेद' पत्र के आधार पर, यह लेख लेखक की 'सर्पदंश' नामक अप्रकाशित पुस्तक से लिखा गया है। लेखक—

यह कार्तिक मास में फलता है । आंवले साधारणतः तेंदू के बराबर होते हैं । आंवले का मुरब्बा और अचार भी बनाया जाता है । इसकी दो जातियां होती हैं । सफेद आंवला और जङ्गली आंवला । आंवले की लकड़ी में से भी सफेद कत्था निकलता है । सूखे आंवले के पीसकर शरीर पर लगाया जाता है । त्रिफला के तीन फलों में एक आंवला भी है । आंवले का वृक्ष—कुछ तीखा, सारक, मीठा, कडुआ, खट्टा फीका और शीतल होता है । यह जरा और व्याधि का नाशक, वृष्य, केश्य, हितकारी अरुचिनाशक होता है, तथा रक्त पित्त, प्रमेह, विष, ज्वर, आध्मान, वन्धकोष, सूजन, शोष, तृषा, रक्त विकार और त्रिदोष का नाश करता है ।

सूखे आंवले-कड़वे, तीखे, खट्टे, मधुर, फीके, केश्य, मलसंग्रा-नकर, धातुवर्द्धक, नेत्रों के लिए लाभदायक और शरीर पर लगाने से कान्ति-वर्द्धक होते हैं; तथा पित्त, कफ, प्रमेह, विष और त्रिदोष का नाश करते हैं ।

उपयोग ।

सर्वज्वर पर—सूखे आंवले, चीते की जड़, छोटी हर, पीपल और सेंधा नमक के सम भाग में लेकर चूर्ण कर ले । इसे खाने से सब प्रकार का ज्वर दूर होता है ।

दूसरी विधि—सूखे आंवले, चित्रक की जड़, छोटी हरड़ और पीपल का काढ़ा बनाकर पिलाने से भी ज्वर दूर होता है ।

पित्त दूर करने और पुष्टि के लिए—एक सेर आंवलों के बीजों तक सुई से छेद कर बहुत देर तक चूने के पानी में रक्खे और दो सेर अदहन आए हुए पानी में डालकर थोड़ा उबाले । पश्चात् उन्हें कपड़े से पोछकर खांड या मिश्री की चार तारी चासनी में डाल दे । यह मुरब्बा चार पांच वर्ष तक अच्छी तरह रह सकता है । इसके सेवन से पित्त नष्ट होता है और बल बढ़ता है ।

अरुचि पर—आंवलों को थोड़ा उबालकर पीसे, और उसमें जीरा, काली मिर्च, पीपल, सोंठ, धनियां दालचीनी, सेंधा नमक, संचल नमक हरड़ और नमक पीसकर मिलाए । उसकी गोलियां बनाकर खाए । ये गोलियां अत्यन्त रुचिकर और पाचक होती हैं ।

खुजली पर—सूखे आंवले की राख को तेल में मिलाकर शरीर पर लगाना चाहिये।

स्वरभेद पर—गाय के दूध में सूखे आंवले का चूर्ण मिलाकर देना चाहिये।

अशुद्ध अभ्रक भक्षण करने से उत्पन्न हुए विकार पर—आंवले का रस पीने या आंवले के गलाकर तीन दिन तक खाने से सब प्रकार के विकार दूर होते हैं।

कै और श्वाँस पर—आंवले के रस में शहद और पीपल डालकर देना चाहिये।

वातरक्त पर—सूखे आंवले को एरण्ड के तेल में तलकर पीस ले और सुबह शाम शक्कर और गरम पानी के साथ सेवन करे।

वमन पर—सूखे हुए आंवले का चूर्ण, चन्दन चूर्ण में मिलाकर शहद के साथ देना चाहिये।

प्रमेह पर—आंवले के रस या सूखे आंवले के काढ़े में दो माशे पिसी हल्दी और शहद डालकर देना चाहिये।

वृद्ध न होने के लिये—सूखे आंवले को पानी में पीसकर शरीर पर लगाये और थोड़ी देर पश्चात् स्नान कर ले। नित्यप्रति इस नियम का पालन करने से शरीर पर झुर्रियां नहीं पड़तीं और केश सफेद नहीं होते।

आंखों की अग्नि शान्त करने के लिये—सूखे आंवले और तिल को रात के समय पानी में डालकर प्रातःकाल पीसकर आंखों पर लगाये और एक घंटे के पश्चात् स्नान कर ले। इससे आंखों की जलन शान्त होकर सर्वदा ठण्डक रहती है।

पित्त पर—सूखे आंवले पीसकर उससे दुगुने घी में शक्कर मिलाकर खिलाना चाहिये।

मुख सूखने पर—आंवले और अँगूर को पीसकर घी में मिलाए। पश्चात् उसकी गोली बनाकर मुँह में रखे। इससे जीभ, तालू और गले का सूखना बन्द हो जाता है।

ज्वर की अरुचि पर—आंवले, अंगूर और शक्कर को पीसकर कल्क बनाये और मुख में रखे।

मूत्रकृच्छ या गर्मी पर—आंवले के रस और गन्ने के रस को मिलाकर पिलाना चाहिये।

नाक से लहू बहने पर—सूखे आंवले को घी में तलकर लपसी में पीसे और मस्तक पर उसका लेप करे।

योनिदाह पर—आंवले के रस में शक्कर डालकर पिलाना चाहिये।

प्रमेह पर—पाव भर आंवले के पत्तों के रस में पाव भर मट्ठा मिलाकर पिलाना चाहिये।

कान्ति बढ़ने के लिए—सूखे या भिके हुए आंवले और सफेद तिल को पीसकर रोज शरीर पर मलना चाहिये। इसे मलने के थोड़ी देर बाद गरम पानी से स्नान करना बहुत ज़रूरी है।

वीर्यवृद्धि के लिए—आंवले के रस को घी में मिलाकर देना चाहिये।

वृद्धावस्था दूर करने के लिये—तिल और सूखे आंवले के चूर्ण को समभाग एकत्र करके नित्य प्रातःकाल बीस दिन तक देना चाहिये।

देह तेजस्वी बनाने के लिए—शिशिरऋतु में असगन्ध और आंवले का चूर्ण सम भाग लेकर घी और शहद के साथ देना चाहिये।

नाक से लोहू गिरने पर—सूखे आंवले को घी में सेंके और पानी में पीसकर मस्तक पर लेप करे।

मस्तक शूल पर—प्रातःकाल आंवले का चूर्ण घी और शक्कर के साथ देना चाहिये।

पित्त शूल पर—आंवले का चूर्ण शहद के साथ देना चाहिये।

मूर्च्छा पर—आंवले के रस में घी डालकर पिलाना चाहिये।

रक्तपित्त पर—आंवले का चूर्ण शक्कर और घी के साथ देना चाहिये अथवा आंवले या हरड़ का मुरब्बा खिलाना चाहिये।

रक्तातिसार पर—आंवले का रस, शहद, घी और दूध के साथ देना चाहिये।

अम्लपित्त पर—एक तोला सूखे आंवलों को रात के समय पानी में भिगोदे। प्रातः काल उसमें तीन माशे सोंठ और एक माशा जीरा डालकर बारीक पीसे। पश्चात् उसकी गोली बनाकर दो तोला मिश्री के साथ सात तोला दूध में पिये।

बालकों के अतिसार पर—सूखे आंवले चित्रक, छोटी हरड़, पीपल और संचल नमक का चूर्ण करके प्रातःकाल और रात को सोते समय गरम पानी में बच्चे की शक्ति के अनुसार देना चाहिये।

पित्त-विकार पर—एक तोला सूखा आंवला रात को कलई के बर्त्तन में गलाने को रख दे। प्रातःकाल उसे पीसकर सात तोले गाय के दूध के साथ देना चाहिये।

पाण्डु-रोग पर—सूखा आंवला, हल्दी, और गेरू को मिलाकर मञ्जन करना चाहिये।

आम के गुण।

आम हमारे देश में एक पदार्थ समझा जाता है। कितने ही निर्धन किसान वर्ष में कुछ दिनों तक आम पर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। उत्तम भोज्य-पदार्थ होने के साथ ही आम बड़ी गुणकारी वस्तु है। यह बहुत बलकारक है। बल वृद्धि करने के अतिरिक्त डाक्टरों ने इसमें एक बहुत बड़ा गुण देखा है और वह यह कि संग्रहणी तथा अन्य पेट सम्बन्धी रोगों की यह खास औषधि है। आम केवल संग्रहणी को रोकना ही नहीं और न सिर्फ मुंह के विकारों को ही दूर करता, वरन यह नकली भूख को भी, जो संग्रहणी के रोगियों को बहुत सताये रहा करती है, दमन करता है।

सेवन करने की तरकीब।

इसके खाने की तरकीब यह है कि प्रातः काल ६ बजे दो बड़े आमों को, जो खूब पके हुए हों, उनके छिलकों को छीलकर और उनके छोटे छोटे टुकड़े करलें और एक कलई के कटोरे में रखदें, उसके बाद कटोरे में उबाला हुआ और ठंडा किया हुआ इतना दूध डालें, जिससे आम ढक जाय। दो आमों को ढकने में लगभग आध पाव या तीन छटांक दूध की ज़रूरत होगी। इसके बाद उस आम को चमचे से खा लेना चाहिये और दूध भी पी लेना चाहिये। प्रातः काल इस प्रकार आम खा लेने के बाद फिर दिन भर तीन तीन घंटे पर केवल तीन तीन छटांक दूध लेना चाहिये और इसका खूब ध्यान रखना चाहिये कि आम और दूध के सिवाय फिर और कोई चीज़ न खाई जाय।

इसके बाद जब दस्तों की संख्या में कमी आजाय तो रोगी को दो आम दोपहर के समय भी उसी प्रकार दूध के साथ देना चाहिये। कुछ डाक्टरों का कहना है कि यदि दो सप्ताह इसी तरह से आम का सेवन किया जाय तो संग्रहणी पूरे तौर से काबू में आ जाती है।

आम का प्रभाव।

आम और दूध के एक साथ सेवन करने का तात्कालिक गुण यह है कि रोगी के मस्तिष्क में एक प्रकार का सन्तोष और शान्ति प्राप्त होती है। रोगी को ऐसा मालूम होता है कि उसके पेट में यथेष्ट भोजन पहुँच गया है और उससे उसका जीवन संचालन होता रहेगा। इस विचार का मरीज़ के दिमाग़ पर बहुत प्रभाव पड़ता है और संग्रहणी के मरीज़ के लिये इस बात का विश्वास होना बहुत ज़रूरी भी है। इसका खास प्रभाव जो संग्रहणी की दूसरी दवा से आम तौर पर से होता है कि मुंह के विकार जाते रहते हैं, चित्त में स्थिरता आती है, दस्तों की संख्या में कमी होती है और शरीर के वज़न में वृद्धि होती है। जब मरीज़ आम और दूध की पूरी खुराक लेने लगता है तो एक सप्ताह में दो या तीन पौंड वज़न बढ़ता है। नाखूनों और आंखों के आसपास से कालापन जाता रहता है। यह प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है कि रोगी रोग से मुक्त हो रहा है।

——*——

निद्रा देवी

(सोना)

प्रातःकाल दो चार तारे दिखाई देते हों तभी नित्य उठना चाहिये । पर वह उसी वक्त हो सकता है जब कि दस बजे के भीतर सो जाय । सोना एक बहुत आवश्यक कार्य्य है । वे लोग बड़ी भूल करते हैं जो सोने को बुरा समझते हैं । जैसे धातुओं में सोना सबसे अधिक मूल्यवान है, उसी तरह मनुष्य के नित्य कर्म में यह सोना है । रात में अच्छी तरह सो लेने से दिन भर की थकी हुई इन्द्रियाँ फिर काम करने योग्य हो जाती हैं । प्रातः काल जो रात में अच्छी तरह सोकर उठा है उसके मुख की ओर देखिये कैसा प्रसन्न मालूम होता है ! पर वह, जिसने निद्रा देवी की सुखदायिनी गोद का आश्रय नहीं लिया है वह तेजहीन, दुःखी और उदास मालूम होता है । जिस मनुष्य को सुख की नींद नहीं आती वह संसार में अधिक नहीं ठहर सकता । वह मनुष्य बड़ा भाग्यवान् है जिसे रात में अच्छी गाढ़ी तथा सुख की नींद आती है, वह दिन में अच्छी तरह काम कर सकता है ।

दिन में काम करते समय हम लोग उन्हीं शक्तियों को खर्च करते हैं जिन शक्तियों को निद्रा देवी हमारे शरीर के अंग अंग में भर देती हैं । निद्रा, शक्ति को जमा तथा उपार्जन करने के लिये है, और जागरण खर्च के लिये है जहां जमा नहीं है या जो उपार्जन नहीं करता वह खर्च क्या करेगा? जहां आय नहीं है वहां व्यय कैसा?

लोग जानते हैं कि मनुष्य दिन को कमाता या उपार्जन करता है पर यह लोगों की भूल है । वास्तव में मनुष्य निद्रा देवी की सहायता से रात में ही कमाता है ।

जो मनुष्य रात में काम करता है वह काम नहीं करता किंतु अपने काम की जड़ में कुल्हाड़ी चलाता है । जिस तरह दिन काम करने के लिए है; उसी तरह रात सोने के लिये है । जो निद्रा द्वारा शक्ति का उपार्जन न कर रात में भी काम करता है वह उस मूर्ख मनुष्य के समान है जिसके पास जमा तो नहीं है पर खर्च करने के

लिए लालायित रहना है। इसी से हमने कहा है कि जो रात में काम करता है वह काम नहीं करता किंतु अपने काम में कुल्हाड़ी मारता है। ऐसा मनुष्य अपने काम ही में कुल्हाड़ी नहीं मारता किंतु अपने स्वास्थ्य, शक्ति, आयु में भी कुल्हाड़ी मारता है। रात में न सोने से आयु क्षीण होती है और स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। पूरी नींद सोने से बुद्धि भी बढ़ती है दिन भर सोचने विचारने और चिन्ता करने से बुद्धि वा दिमाग़ भी थक जाता है और उसकी शक्ति क्षीण होजाती है। अतः रात में निद्रा द्वारा उनको आराम करना आवश्यक है। पर दिमाग़, मन, बुद्धि वा विचार शक्ति के आराम के लिये गाढ़ निद्रा चाहिये। निद्रा दो प्रकार की होती है एक गाढ़ निद्रा (सुषुप्ति), दूसरा स्वप्न। स्वप्न भी यद्यपि निद्रा की हो एक अवस्था है पर इसमें भी दिमाग़ को पूरा आराम नहीं मिलता। स्वप्न में भी मनुष्य दिमाग से कुछ न कुछ सोचने विचारने का काम लेता रहता है, केवल सुषुप्ति वा गाढ़ निद्रा में मनुष्य दिमाग़ से काम नहीं लेता। अतः इस अवस्था में दिमाग़ अच्छी तरह आराम कर लेता है। जैसे दिन में जागते वक्त मन इधर उधर अपना काम किया करता है उसी तरह वह स्वप्न में भी करता है, स्वप्न में भी यह बैठता नहीं। मन, दिमाग़ वा बुद्धि ये सब करीब २ एक ही है। हमने अपने पहले के लेखों में यह लिख कर दिया है कि मनुष्य के शरीर का राजा वा स्वामी केवल मन ही है। मन के शुद्ध तथा बलवान् होने से सारा शरीर शुद्ध नीरोग तथा बलवान् होगा। अतः निद्रा में भी गाढ़ निद्रा वा सुषुप्ति का होना आवश्यक है, जिसमें मन को भी आराम मिले। मन के लिये गाढ़ निद्रा से भी अधिक लाभदायक समाधि है। पर जो ध्यान योग द्वारा समाधि नहीं लगा सकता। उसके लिए गाढ़ निद्रा ही बहुत है। गाढ़ निद्रा भी समाधि का छोटा भाई है। जिन लोगों को देर तक गाढ़ निद्रा नहीं आती उनका शरीर बहुत जल्द रोगी हो जाता है। एकान्त में रात को सोने से कान में भीतर झनझनाहट का आवाज़ (अना हत ध्वनि) सुनाई देती है। उसमें चित्त लगाने से अति शीघ्र निद्रा आ जाती है। निद्रा देवी की शान्ति दायिनी गोद में जाने का यह सब से अच्छा और सरल उपाय है। चिन्ता निद्रा की बहुत बड़ी दुश्मन है। वेदान्त का आश्रय ले लाभालाभ जयाजय, तथा सुख दुःख में समान बुद्धि रख कर चिन्ता को छोड़ निद्रा देवी की

उपासना करनी सब के लिये परम धर्म है । चिन्ता का बिना त्याग किये सच्ची निद्रा नहीं आ सकती । जिसे रात में सच्ची निद्रा आती है उसके पास शोक और दुःख आते हुए डरते हैं । संसार में वे भी धन्य हैं जो पेट भर खाने और नींद भर सोने के लिये स्वतन्त्र और निश्चिन्त हैं । मच्चा ब्रह्मज्ञानी नींद भर सोता है; क्योंकि उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती ।

जो लोग दिन में शरीर से खूब मिहनत नहीं करते उन्हें भी अच्छी नींद नहीं आती । हमारे देश के बहुत से अमीर निद्रादेवी की इतनी ही शिकायत किया करते हैं जितनी कि दरिद्र और धन हीन लोग लक्ष्मी की । दरिद्रों पर जिस तरह लक्ष्मी देवी रुष्ट रहती है उसी तरह प्रायः अमीरों पर निद्रा देवी भी रुष्ट रहती है ।

बहुत से लोग कहते हैं कि सोने से आयु घटती है, यह बिलकुल ग़लत है । बच्चे उन बुड्ढों और रोगियों से अधिक सोते हैं जो शीघ्र ही संसार से अलग होने वाले हैं । बुड्ढे ज्यों ज्यों मृत्यु के निकट आते हैं त्यों त्यों उन्हें नींद कम आती है । हां, अत्यधिक सोना अवश्य ख़राब है । अधिक अमृत भी पीना ख़राब है । अति सर्वत्र वर्जयेत् । सोने से आयु घटती कभी नहीं किन्तु बढ़ती है । सोना मनुष्य के लिये विष नहीं समझना चाहिये किन्तु यह अमृत है ।

बहुत से लोग भारतवर्ष को इस प्रकार सोते हुये देखकर यह समझ रहे थे कि वह मर गया है अब न उठेगा । पर यह उनकी बड़ी भूल थी । भारतवर्ष सोकर अपूर्व बल, शक्ति और जीवन का सञ्चय और उपार्जन कर रहा था । अब वह नवीन शक्ति, नवीन बल, और नवीन उत्साह के साथ उठा है । पहले यह देश बहुत दिन तक नहीं किन्तु लाखों वर्ष तक जागता रहा है । इसने बहुत बड़े २ काम किये हैं । कुछ दिनों से अब थक का सा गया था । पर अब फिर जागृत होरहा है । इसकी गाढ़ निद्रा टूट चुकी है और अब यह अच्छे प्रकार चैतन्य होरहा है । सोने से शक्ति आया करती है यह स्वाभाविक नियम है और यह पूर्ण आशा है कि अब और भी अधिक उत्साह से कार्य करेगा ।

बहुत से लोग यह पूछते हैं, कि किस तरह सोना चाहिये ? इस का उत्तर तो यही है कि जिस तरह से अपने को आराम और सुख मालूम हो उसी तरह से सोना उत्तम है । खुली जगह और शुद्ध वायु में सोना उत्तम होगा । जाड़े में भी मोटी रजाई से मुंह और नाक को बिलकुल ढांक नहीं लेना चाहिये । जाड़े में बन्द कमरे में यदि सोने की इच्छा हो तो उसमें भी दो तीन छोटी छोटी खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिये । बायें करवट अधिक सोना उत्तम होगा। सोते समय सब चिन्ताओं को त्याग कर यह सोचना चाहिये कि हम नीरोग और स्वस्थ हैं, हमारे में कोई रोग नहीं है। आज हमें गाढ़ी नींद आवेगी। जिन्हें नींद न आने का रोग हो उन्हें अपने रोग की चिन्ता छोड़ देनी चाहिये। आज भी हमें नींद नहीं आवेगी—ऐसी भावना कभी नहीं करनी चाहिये। नींद अवश्य आवेगी यह विश्वास रक्खो। नींद आ जाय, देखा अभी तक नहीं आई—इन बातों की भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से भी प्रायः नींद नहीं आती। नींद के लिये सब तरह की चिन्ता छोड़ देनी चाहिये।

योगियों को अपने समाधि का बहुत बड़ा अभिमान नहीं होना चाहिये। वह मनुष्य भी आधा योगी है जिसे नित्य गाढ़ निद्रा या सच्ची नींद आ जाती है। जिस तरह योग चिन्ताओं के छोड़ने और चित्त को एकाग्र होने पर होती है। उसी तरह नींद भी चिन्ताओं के त्यागने और चित्त के एकाग्र होने पर ही आती है। समाधि से जिस तरह अन्तःकरण शुद्ध होता है, उसी तरह कुछ कम, नींद से भी अन्तःकरण शुद्ध होता है। निद्रा भी एक प्रकार की समाधि है। इसी से एक महात्मा ने कहा है—

"निद्रा समाधिस्थितिः"

ज्ञानशक्ति।

——३——

समस्या-पूर्ति ।

(ले० श्री० पं० गिरिजादत्त जी पाठक काव्यतीर्थ आयुर्वेदाचार्य ।)

"वैद्य बन जायेंगे"

विमल-विवेक जल, मानस, निगम, ज्ञान,
पंकज, मराल गुणी, गुण गीत गायेंगे ।
सौरभ सु-भाव, मधु-मधुर महौषधयों,
कल्पना अनल्पवर्ण भ्रमर लुभायेंगे ॥
प्रेम परिपूर्ण शिष्य शिक्षक सुचक्रवाक,
निशि अविचार, चन्द्र अंक हूँ मिटायेंगे ।
भारत सरोवर को, ऐसो लहराय देश,
अमर बनाय "दत्त" वैद्य बन जायेंगे ॥१॥
चारुता चिकित्सक की मंजुता महौषध की,
साम्यता सुधातुहूँ को पूर्ण बतलायेंगे ।
सारता स्वशास्त्रन की भावुकता भावन की,
विज्ञता विवेक हूँ की आज दिखलायेंगे ॥
सरस सुवासी वसुधापै स्वास्थ्य चन्द्रिका की
धारा "दत्त" चहुँधा सुचारु बरसायेंगे ॥
सूखती स्वदेश हूँ की आयु बल बुद्धि देखी,
वेक्षिणन पाय सच्चे वैद्य बन जायेंगे ॥२॥

नोट-आगरासंयुक्तप्रान्तीय सप्तम वैद्यसम्मेलन के कवि सम्मेलन में पठित ।

स्त्री रोगोंकी सरल चिकित्सा ।

गत तीसरी संख्या से आगे ।

वन्ध्या रोग चिकित्सा ।

गर्भधारण के साधारण उपाय—जिन स्त्रियोंके ऋतु सम्बन्धी किसी प्रकार का कोई विकार न होने पर भी गर्भधारण नहीं होता। उनके लिये गर्भधारण के साधारण उपाय लिखे जाते हैं ।

१—रजस्वला होने के पश्चात् स्नान करके बड़ के अंकुरों को गाय के घी के साथ पीसकर सेवन करने से गर्भधारण होता है ।

२—पुत्रजीवक अर्थात् जियापोते के २ या ३ बीजों को ऋतुस्नान के पश्चात् घी और खाँड के योग से पीसकर गाय के दूध के साथ सेवन करने से गर्भधारण होता है ।

३—असगंध, विधारा दोनों को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवे। फिर उस चूर्ण में बराबर भाग मिश्री मिलाकर ऋतुस्नान के पश्चात् ६ माशे की मात्रा से गाय, का श्रीदूध और मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे बहुत दिनोंकी वंध्या स्त्री भी गर्भको धारण करती है ।

४—गर्भिणी भैंस के दूध को बकरी के मूत्र के साथ थोड़ा २ पान करने से स्त्री गर्भ को धारण करती है ।

५—नागकेशर १ टंक, सफेद जीरा १ टंक दोनों का चूर्ण एकत्र करके गाय के घी के साथ ३ दिन सेवन करने से वंध्या स्त्री गर्भको धारण करती है ।

६—सरपुंखे के पञ्चाङ्ग को रविवार के दिन लाकर एक रङ्ग की गाय के दूध में कन्या के हाथ से पिसवाकर ऋतुस्नान के पश्चात् सेवन कराने से और उस पर खीर, खाँड, घी, मक्खन, दूध, भात आदि सेवन करावें तथा भय, शोक, उद्वेग, चिन्ता, दिन की निद्रा आदि तथा और कोई भी शारीरिक परिश्रम या काम न करने देवे तो सात दिन में वंध्या स्त्री भी गर्भ को धारण करती है ।

७—सफेद कटेरी (श्वेत कंटकारी) के पञ्चाङ्ग के कल्क द्वारा गाय के दूध में गाय के घृत को यथाविधि सिद्ध करे। जब केवल

चुनमात्र शेष रह जाय—तब छानकर एक उत्तम पात्र में भरकर रख देवे। इसमें से १ ते.ला ऋतुस्नान के पश्चात् नित्य संध्या के समय गाय के दूध और मिश्री के साथ सेवन करे तो बंध्या स्त्री अवश्य गर्भधारण करती है। अथवा सफेद कटेरी की जड़ का चावलों के पानी के साथ पीसकर सेवन करने से भी इसमें बड़ा लाभ होता है।

८—कुशा, काँस, ईख, गाँडर और दूब सबको एकत्र गाय के दूध के साथ पीसकर ऋतुस्नान के पश्चात् पान करने से गर्भधारण होता है।

९—कबूतर की विष्ठा २ रत्ती लेकर चावलों के जल के साथ पीसकर शहद मिलाकर पीने से ७ दिन में गर्भ रह जाता है।

१—प्रसूता स्त्रियों के वातरोग पर—स्त्रियों के प्रसव होने के बाद उनके अङ्गों में प्रायः वायु भर जाता है। ऐसी अवस्था में अद्रक का रस ३ तोले लेकर और उसमें बराबर गाय घी तथा पुराना गुड़ मिलाकर प्रातःकाल एक बार सेवन करे। इस प्रकार ५ दिन तक सेवन करने से स्त्रियों के समस्त वायु के विकार दूर होते हैं। इसमें शीत और वायु से विशेष बचाव रखना चाहिये।

२—सोंठ और पुनर्नवे की जड़ को बकरी के घी में पीसकर योनि के भीतर लेप करने से पुरुष के संसर्ग से उत्पन्न हुई सूजन दूर होजाती है।

३—बिलाव की विष्ठा, कुत्ते की विष्ठा और गधे की विष्ठा, गूगल, सेंजना, साँप की केंचली, राई के दाने, सेई का काँटा, हाथी और घोड़े की धूल इन सब वस्तुओं को एकत्र करके इनकी स्त्री की योनि में दस दिन तक धूप देने से स्त्री की योनि की सूजन, पीड़ा और तत्संबन्धी समस्त विकार दूर होकर कामशक्ति की वृद्धि होती है।

जिन स्त्रियों के अधूरे बालक उत्पन्न होते हैं उनका उपाय।

शनिवार के दिन संध्या के समय मोगरे के पेड़ को निमन्त्रण दे आवे। पश्चात् रविवार के दिन प्रातःकाल उसकी जड़ को निकाल लावे। फिर उसको लोबान की धूनी देकर स्त्री की कमर में बाँधे तो बालक पूरे महीनों में संपूर्ण अङ्गोपाङ्ग सहित स्वस्थ और बलवान् उत्पन्न होता है। किन्तु पूरे दिन होजाने पर मोगरे की जड़ को कमर से खोल डालना चाहिये।

गर्भ न रहने के उपाय—अधिक सन्तान होने पर गृहस्थ का काम करते रहने पर भी जो स्त्रियें गर्भधारण होना नहीं चाहतीं। उनके लिये साधारण उपाय लिखे जाते हैं :—

१—आँवले के बीज की गिरी १ टंक लेकर मिश्री में मिलाकर जल के साथ सेवन करे। इस प्रकार तीन दिन तक सेवन करने से रजोदर्श बन्द होजाता है और गर्भ नहीं रहता।

२—दुद्धी की जड़ को बकरी के दूध में पीसकर ३ दिन तक पान करने से रजोदर्श बन्द होजाता है और गर्भ नहीं रहता।

३—हींग को तिल के तेल में पकाकर ५ दिन तक पीने से रजोदर्शन न होकर गर्भ नहीं रहता।

४—गुड़, तेल और चीते की जड़ के चूर्ण को जल के साथ पीने से रजोदर्शन नहीं होता और गर्भ नहीं रहता।

५—नीम की भीतरी छाल का काढ़ा बनाकर पीने से और उसका योनि में बफारा देने से गर्भ नहीं रहता। यह प्रयोग तीन महीने तक करना चाहिये।

६—उत्तम चूना आध सेर लेकर १० सेर पानी में बुझावे। दूसरे दिन पानी को अलग निथारकर उसमें से थोड़ा पानी लेकर उसमें ६ माशे तिल का तेल डालकर पिये। इस प्रकार करने से स्त्री शीघ्र ही वन्ध्या होजाती है और फिर उसके गर्भ नहीं रहता।

❀ वैद्य गुण-गान ❀

ले० सी० एल० बी०, तिलगोड़ी।

अनुभव में आये हुए वैद्य तुम्हारे योग।
रहें अनेकों सुधा सम करें क्षीण बहु रोग॥
करें क्षीण बहु रोग वैद्य वर पर हित जन्म लिया है।
विविध व्याधि से व्यथित जनों का अति उपकार किया है॥
सकल कला से भूषित अनुपम अनुभव प्राप्त किया है।
झंडा जग में वैद्यक विद्या का फहराय दिया है॥
है प्रार्थना सतत् ईश्वर से हमारी,
जीवित रहो चिर समय तक मित्र भारी।
करते रहो पर उपकार इसी प्रकार,
हो आयु शास्त्र का भी जिससे उद्धार॥

परीक्षित प्रयोग।

धातुपुष्ट पर चूर्ण—गोखरू बड़े, काले तिल, बबूल की फली, और बड़ के अंकुर यह सब १-१ छटांक रूपरस (चाँदी भस्म) ६ माशा, मिश्री १ पाव, सब का बारीक चूर्ण बनाकर १ तोले की मात्रा से दूध के साथ सेवन करने से धातु पुष्ट होकर अनेक वीर्य विकार नष्ट होते हैं।

पंद्रह मिनट में ज्वर उतारने का लेप—कुचले ६ माशे, सोंठ ६ माशे, काला जीरा ६ माशे, और अहिफेन ३ माशे, सबको बकरी के १ पाव दूध में घोल कर मन्द अग्नि से कुछ गरम कर सिर से पांव तक मालिस करने से उसी वक्त ज्वर उतर जाता है।

मंदाग्नि पर चूर्ण—शुद्ध सुहागा १ तोला, नौसादर २ तोला, सोरा कलमी २ तोला, सोंचर २ तोला काली मिरच २ तोला, सबका बारीक चूर्ण कर ३ माशे की मात्रा से खाने से मंदाग्नि दूर होकर पेट के समस्त विकार दूर होते हैं तथा पेशाब को शुद्ध करता है।

तापतिल्ली पर—हल्दी भुनी १० तोला, फिटकिरी फूला १० तोला, इन्द्रायन की जड़ १० तोला, मिश्री १० तोला, सबका चूर्ण बना कर ६ माशे की मात्रा से गरम जल के साथ सेवन करने से तिल्ली दूर होती है।

वैद्य महावीरप्रसाद विड़कर,

विशेष अनुभूत योग।

मोतिया बिंद पर—नवसादर को डमरु यंत्र के द्वारा उड़ाकर नेत्र में लगाने से मोतिया बिंद में विशेष लाभ होता है।

हिस्टेरिया रोग पर—सुहागे की खील बना कर ४-४ रत्ती की मात्रा से २ तोले करेले के रस के साथ दिन में २, ३ बार देने से हिस्टेरिया रोग में अवश्य लाभ होता है। "वैद्यराज"

सोडे के गुण।

सोडा—अंग्रेजी औषधियों में बहुत काम आता है और वह बहुत तरह से नाना प्रकार के बनाये जाते हैं जैसे-सोडाटार्टरेटा, सोडा-टार्टरेटी, सोडियाई आर्सिनास, सोडियम नाइट्रिस, सोडा सेमी-सिकास, सोडा सल्फोकार्बोलास, सोडाकार्बोनास, सोडाइ रसीकेटर, सोडियम क्लोराइज, सोडा साइटरास, सोडा सिलेमेट, सोडा बाई-कार्ब और सोडा कार्बोनेट इत्यादि २। आयुर्वेदानुसार सोडा प्रथम सज्जी खार से बना था।

सज्जी—प्रथम तेमर के झाड़ों से बनाई जाती थी, इस भांति कि समुद्र की तरफ खारदार पृथ्वी में गढ़ा खोद कर तेमर के झाड़ों के पचांग के टुकड़े कर गढ़ों में भर देते थे और फिर उनमें अग्नि सुलगाकर छोड़ देते थे, वह सुलग कर वहीं जम जाते थे और सज्जी बन जाते थे, फिर उसे खोद खोद कर सज्जी नाम से दिसावरों में बेचते थे और उसी सज्जी में नमक मिलाकर (संचल) अर्थात् काला नमक भी बनाते थे, पीछे उसी सज्जी से धोकर पापड़ खार बनाया गया वही प्रथम सोडा मान लीजिये—अब अनेक भांति के झाड़ों तथा अन्य २ पदार्थों से उपरोक्त नाम के सोडा तैयार किये जाते हैं जैसे पत्थर, लोहा, नमक, चूना, सज्जी आदि तथा पहाड़ों से। अब उपरोक्त सोडा—जैसे सज्जी सिन्ध, पंजाब, जगन्नाथ, मदरास, आदि अनेक स्थानों में बनने लगी है। और सोडा भी बनता है। अब मैं यहां पर केवल सोडा (कार्बोनेट) जो पत्थर के चूने और सेंधा नमक से बनता है, जिसे सब लोग तथा पंसारी (सादा सोडा के नाम से) बेचते हैं उसके उपयोगों को सर्व साधारण लोगों के हितार्थ प्रकाशित करता हूं। यह गुण सादे सोडे के समझने चाहिए।

१—सादे सोडे से चिकटे मैले बर्तन और कांच के पात्र बोतल, कंटर, शीशी गर्म जल में मिलाकर साफ करो।

२—चिकटे और मैले कपड़े साबुन के बजाय सोडा से उत्तम और कम खर्च में साफ होजाते हैं।

३—मुंह धोने से प्रथम थोड़ा सोडा पानी में घोलकर मुंह पर मलिये, पीछे मुंह धो डालिये तो मुंहासे, झाईं, शीघ्र आराम होजाते हैं।

४—जले अंग पर सोडे को पानी में घोलकर लगाने से ठण्डक पड़ जाती है और छाला नहीं उठता।

५—मच्छर, मक्खी आदि ज़हरीले कीड़ों के काटने पर पानी में घोलकर लगा देने से आराम होजाता है।

६—गर्मी के दिनों में इसको जल में घोलकर नहाने से फुंसियां जाती रहती हैं।

७—दांतों और मसूड़ों की समस्त बीमारियों में दांतों पर मलना लाभकारी है।

८—गला दुखना तथा गला बैठ गया हो तो इसको थोड़े गर्म जल में मिलाकर गरारे करने चाहिये।

९—अजीर्ण और कब्ज़ में १ गिलास सोडे के पानी में मिश्री और नीबू का अर्क मिलाकर पीने से बहुत लाभ होता है।

१०—पापड़, मुंगौड़ी, बड़ी आदि पदार्थों में सोडा किञ्चित् मात्रा में डालने से पदार्थ सुस्वादु, खस्ता, हाजिम बन जाते हैं।

११—मठरी, सकरपारे, नानखटाई आदि पदार्थों में खस्तगी के लिये उचित मात्रा में डालना चाहिये।

१२—दूध पीने वाले बच्चों को गाय के पाव भर दूध में आध रत्ती सोडा मिलाकर देने से दूध हज़म होजाता है।

१३—सोडा ६ माशे नीबू का अर्क २ तोले और चमेली का तेल १ छटांक सब एकत्र मिलाकर शरीर के ऊपर मलने से शरीर की खुजली, खुश्की और खाज आदि रोग दूर होते हैं।

१४—पका हुआ दूध जब खराब होकर गाढ़ा होजाता है अर्थात् फलक आता है, उस समय उसमें १ या २ रत्ती सोडा डाल देने से वह ठीक होजाता है, और फिर उसके फटने का डर नहीं रहता।

१५—सोडा १ तोला सफेदा काशकारी १ तोला और फटकरी की खील १ माशे सब को एकत्र मिलाकर ३-३ रत्ती की पुड़िया बनाकर गरम जल के साथ ३-३ घंटे के बाद सेवन करने से मैलेरिया, विषमज्वर, तिजारी, चौथिया आदि ज्वर दूर होते हैं।

कन्हैयालाल शर्मा, वैद्य, अ० प्र०

बर्फ की भयावनी चिकित्सा।

(लेखक—डा० भी० रा० देसाई० (M. D. Bio)

यह बात कोई नयी नहीं है कि चिकित्सा शास्त्र की आयुर्वेदिक, यूनानी, एलोपैथिक, होमियोपैथिक तथा यूनानी, एलोपैथिक, होमियोपैथिक तथा बायोकेमिक, नेचरोपैथिक इत्यादि भिन्न भिन्न उपचार प्रक्रियायें हैं। हर एक उपचार प्रणाली भिन्न भिन्न रीति से उपचार के प्रयोग करती है। इनमें अधिक उपयोगी चिकित्सा-प्रणाली कौनसी है यह बात यद्यपि विवाद-पूर्ण है, तथापि सामान्य लोगों के लिये इतना समझ लेना काफी है कि, किसी प्रयोग विधि में शास्त्रीय सत्य कितना है और यदि न हो तो उन उपायों से बचना चाहिये।

यह सामान्य अनुभव की बात है कि, बहुत तीव्र अर्थात् १०५ डिग्री के या उसके अधिक बढ़ाने वाले भयावने ज्वर में एलोपैथिक डाक्टर सिर पर बर्फ की थैली, पट्टी इत्यादि रखने के इलाज किया करते हैं। विचारणीय प्रश्न यह है कि, यह उपचार-विधि कहां तक ठीक है। मेरे अनुभव से तो मुझे यह उपचार गलत मालूम होता है। वैद्य-सम्मेलन के एक समय अध्यक्ष रहने वाले तथा 'देसाई औषधालय' जबलपुर के चालक लोक विश्रुत वैद्य आयुत मि० वि० डेग्वेकर M. A. M. Sc LL. B. भी यही कहते हैं :—
"सिरपर बर्फ की थैली रखना इत्यादि उपचार आयुर्वेदिक दृष्टि से अतीव शास्त्रीय अज्ञान के निदर्शक है, आग्नेय एवं पित्तमूलक कारणों से होने वाले ज्वर में ऐसे शीतोपचार चल सकते हैं, किन्तु शौम्य अर्थात् कफज व अंशतःवातजन्य कारणों से रहने वाले ज्वरों में उष्ण उपचार ही करने चाहिये, यह भेद एलोपथी को ज्ञात न होने से उनके यहां (Hyperpyrexia) के सभी रोगों में एक ही ठहरे हुये नियम से उपचार किया जाता है। पर परस्पर-विरुद्ध रहने वाले कारणों से भी एक ही विकार उत्पन्न हो सकता है अतः उनके उपचार भी भिन्न-स्वरूपी होने चाहिये इसका ज्ञान अभी एलोपैथी को नहीं है इस कारण ऐसे उपचारों के अनिष्ट परिणाम होते हुये अपने को प्रतिदिन न्यूमोनिया इत्यादि विकारों में गोचर होते हैं।"

उपर्युक्त विषयों में यद्यपि मेरा मतभेद है तथापि वह छोड़कर मैं एक उदाहरण दे रहा हूँ। कुछ दिन की बात है कि एक १२ वर्ष के लड़के को मामूली बुखार आरहा था जिसकी चिकित्सा पहले एक वा आकेमिक तथा अन्य आयुर्वेदिक चिकित्सकों ने ५-६ रोज़ की उससे कुछ फ़ायदा न होने हुए बुखार शाम को बराबर १०५ डिग्री तक पहुँच कर सुबह १०३ या १०४ तक उतरने लगा। इसी समय उसकी चिकित्सा किसी अच्छे एलोपैथिक डाक्टर के हाथ में पहुँची औषधोपचार तो चले ही रहेथे। किंतु रोग के लक्षण तीव्र गर्मी के कारण शामको बढ़ जाते थे। इसलिये उन्होंने सिर पर बर्फ़ के पानी में भिगोई हुई पट्टी रखनेको कहा था। इससे दो दिनके बाद लक्षण और बुरे होगये। परन्तु जब उसकी चिकित्सा उन्होंने आरंभ की थी तब लक्षण बहुत अच्छे थे यद्यपि केवल बुखार ही ज्यादा था और वैसा ही यह एक मामूली बुखार है ऐसा कहकर स्वयं उन्होंने कहा था। किंतु आठवे दिन उसे भयावने सान्निपातिक चिन्ह स्पष्ट गोचर होने लगे जिन्हें गर्मी के मौसम के कारण समझते हुए उन्होंने भयावने Serious नहीं समझे। उस दिन सुबह ज्वर की गरमी १०३ थी पर शाम को यद्यपि बर्फ़ उपचार होरहा था १०६ होगई। अन्य अच्छे उपाय न होने के कारण रोगी के सिर पर बराबर बर्फ़ की थैली रखी हुई थी उसी समय मुझे भी उसे देखने के लिये बुलाया गया यह बर्फ़ की चिकित्सा-विधि अशास्त्रीय व भयावनी है ऐसा उसी समय मैंने उसके पालकों को जता दिया; और रोगी की हालत से साफ़ साफ़ मालूम होता था कि, अन्य प्राकृतिक उपायों से बचाया जा सकता है किंतु दुर्दैव विवश हो वही विधि चलायी गयी दूसरे दिन बुखार बिलकुल कम न होते हुए वह बेहोश अवस्था में (State of Unconscious) था उसका दम भी छुट रहा था यह देख कर सूक्ष्म प्रश्न करने पर (तब तक नहीं!) उन डाक्टर महाशयों ने किसी तीसरे आदमी से यह कह दिया कि ज्वर से मस्तिष्क पूर्ण आक्रमण होजाने से अब कुछ उपाय नहीं है Cure is hopeless उसके पूर्व दिन उसकी हालत गरमी के मौसम से बिगड़ी हुई मानी गयी थी ता, आश्चर्य है कि, एक ही रात में वह असाध्य हो गयी। इतने में दूसरे किसी वैद्य को बुलाया गया जिसने इलाज करने का स्वीकार नहीं किया। उस दिन सुबह ११ बजे बुखार १०७ डिग्री तक बढ़ गया और १ बजे

के करीब उसको गरमी १०७ होगयी। इस समय में बर्फ की वही विधि की जाने पर भी उसकी हालत खराब होकर कुछ समय में उसकी मृत्यु होगयी।

उपर्युक्त बर्फ की चिकित्सा में न तो कोई शास्त्रीय सम्मति है, और न कोई न्याय घटित सिद्धांत है। बर्फ कोई औषधि नहीं है जो स्वयं रोग परिहारक गुण का प्रदर्शन करे। बर्फ से जो उपचार किया जाता है वह यह जानकर किया जाता है कि बर्फ से सिर ठंडा और शांत रहकर ज्वर की गरमी मस्तिष्क में पहुंचने न पावे, और सन्निपात, बेहोशी आदि लक्षण नहो। यह उद्देश्य कहाँ तक पूरा होता है, यह देखने के लिये ज्वर क्या है यह देखना पड़ेगा। हरएक पेथी (Pahy) में ज्वर की व्याख्या तथा इसकी चिकित्सा चाहे भिन्न हो पर सब को यह माननीय हो सकता है कि "ज्वर यह सब शरीर में विशेषतः पेडू में (Abdomen) होने वाले (Fermentation) का एक स्वरूप है"। ज्वर की यह एक सामान्य उत्पत्ति है, जिसमें कतिपय चिकित्सा विधियों के केवल सिद्धांतिक तत्त्वों का समावेश व समन्वय हो सकता है। फर्मेंटेशन हमेशा उष्णताजन्य होने के कारण प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र के तत्त्वों के अनुसार शीतोपचार से उसका शमन होता है। और विविध भांति के तीव्र ज्वरों में पेडू हमेशा गरम रहता है। इससे मालूम होता है कि पेडू में विशेषरूप से रहने वाले फर्मेन्टेशन का परिणाम सब शरीर गरम कर देने में होता है। सब शरीर में होने वाले ज्वर को पेडू में रहने वाले फर्मेन्टेशन स्टोर (संचय) से ही सम्बन्ध होता है, अर्थात् फर्मेन्टेशन एवं तन्निस्वरूप वैकारिक या दोषिक द्रव्य यदि शीतोपचार से शरीर के बाहर निकालना हो तो निकालना ही पड़ेगा; क्योंकि विकृति प्राप्त रहने से उनका शरीर में शरीर-घटक स्वरूप परमाणु भवन नहीं होसकता। शीतोपचार सिर पर करने के बजाय पेडू पर करने चाहिये जिससे प्राकृतिक प्रति क्रिया गमन कार्य्य (Derivaativeaction) से ज्वर की गर्मी सब शरीर में अपने उगम-स्थान (पेडू में का संचय जहां से सम्बन्ध होता है) की ओर दोषमय परमाणुओं के साथ वापिस लेट जायगी (Retrograde) जहां से उसका शनैः शनैः मल-मार्गों से निकास होगा। इस प्रकार गरमी शान्त होने पर सिर में

स्वयमेव ठंडक और शांति पहुँचने से वह शीतल (Rfreshed cool and calm) होगा, जिससे मयोवन लक्षणों तथा प्राणज्योति के अस्तव्यस्त होने का भय बिलकुल जाता रहेगा। बाकी का कार्य औषधोपचार अपनी २ 'पेशी' के अनुसार हो सकता है। कोई भी पुरुष ज्वर में सिर पर बर्फ की पट्टी रखने के बजाय मामूली ताजे जल से (Faeshwateo) तर रहने वाली पट्टी पेडू पर रखना कितना अधिक फायदेमन्द होता है, यह स्वयम् अनुभव कर सकता है। एक विद्वान डाक्टर कहते हैं :--

"डाक्टर लोग प्रायः सिर पर बर्फ की थैली रखकर उसे ठंडा रखते हैं, किन्तु पेट को गरम रखते हैं, इसका यह परिणाम होता है कि जो द्रव्य शरीर में से बाहर निकल आना ही जरूरी है वह बढ़ जाता है, बर्फ की पट्टियाँ सिर पर क्यों रखना चाहिये, यहां मुझे एक शंका हो (Mystery) है, क्योंकि बर्फ की ठंडक के कारण सिर में रक्त की आधिक्यता होती है। ठंडक और गरमी में क्रिया व प्रतिक्रिया होना यह अबाधित प्राकृतिक नियम है अब सब को यह ज्ञान है कि शरीर में से दूषित द्रव्यों को निकाल देने का काम सिर का नहीं है, किन्तु यह कार्य शरीर के मल द्वारों का है। बर्फ से मस्तिष्क में ठंडक पहुंचती है; इतना ही नहीं, वह बधिर (Torpid) होजाता है। इस प्रकार जो विशेष ठंडक पहुँचती है वह नष्ट करके शरीर में स्वाभाविक स्वास्थ्यावस्था लाने के लिये रक्त का सञ्चार अधिक करके वहां पर स्वाभाविक (Normal) उष्णता पैदा करने की प्रकृति (Nature) प्रयत्न करती है। इस कारण सिर की ओर रक्ताधिकता होती हुई वहां की आन्तरीय गरमी में भी विशेष बाढ़ होती है। बाहर से देखने में तो सिर में ठंडक और सुन्नी (Torpor) मालूम होती है, पर भीतर भयावनी दूषित अन्य गरमी का स्वाभाविक एवं नार्मल गर्मी का नहीं, तो Fermented Heat oa Heat with Abdominal Ferments) जिससे बुखार पैदा हुआ था सबब बढ़ता जाता है। परस्पर विरोधकर रहने वाली इन अवस्थाओं का यदि जल्द समन्वय (एकता) न हो तो शीघ्र ही मृत्यु होगी" (The New Science of Healing, page 344.)

उपर्युक्त अवतरण में जो विधान किये गये हैं उनकी सत्यता अनेक उदाहरणोंने सिद्ध भी कर हो रही है। किंतु विचार कौन करें।

कभी कभी सिर पर बर्फ की थैली रखने से फायदा पहुंचा हुआ देख पड़ता है इसका कारण यह है कि, यदि शरीर पर अयोग्य उपचार हों तो उसे दूर करने के प्राकृतिक प्रयत्न निसर्ग शक्ति द्वारा होते हैं। जब बुखार की मामूली अवस्था में बर्फ जैसी अयोग्य चिकित्सा-विधि से शरीर को जो हानि पहुँचती है उसे सहन करते हुए निसर्ग शक्ति उसे स्वयं दूर कर लेती है। किंतु इसी को उस चिकित्सा से यश-प्राप्ति हुई ऐसा कहा जाता है। वास्तवरूप से यह यश नहीं है, किंतु उसी रोगी पर यदि सिर के बजाय पेडू पर इलाज किये जाते तो उस से अच्छे परिणाम होकर यशप्राप्ति जल्द होती। इससे अनुमव होगा कि, सिर पर पट्टी लगाने से शरीर को जरूर ही कुछ क्षति पहुंची होगी जिसे निसर्ग के जीवनदायी-शक्ति ने सुधार करते हुए रोगी को बचाकर चंगा कर दिया। बर्फ की चिकित्सा से पेट पर ही रखना अच्छा है उससे भी अच्छे उपचार प्राकृतिक चिकित्सा में है यह बात पृथक् है। सामान्य लोगों से इस पर यो कहा जाता है कि, जो रोगी मरने वाला ही है वह किसी चिकित्सा-विधि से भी बच नहीं सकता। क्या कतिपय अन्यान्य चिकित्सा विधियों में रोगी की मृत्यु नहीं होती। सामान्य लोगों की यह बात शायद सत्य हो ? पर विवेक शक्ति से तो यह कहा जायगा कि, जिसके लक्षण साफ २ अच्छे मालूम हो रहे हैं ऐसा बालक या युवक याने (Curable patient of prematured age) रोगी यदि शास्त्रीय-रीति से शरीर-प्राकृतिक नियमों से प्रतिकूल न रहने वाली योग्य चिकित्सा की जाय तो क्यों मरना चाहिये। और यदि मर जाय तो वह विधि निसर्ग-नियमों से प्रतिकूल अतएव अशास्त्रीय है यह मानना होगा, किंतु यह तो स्पष्ट है कि, यदि चिकित्सा ही अशास्त्रीय व निसर्ग के तत्वों से विरोध रखने वाली हो तो वह रोगी किसी चिकित्सा से भी बच नहीं सकता। फिर उसका इलाज स्वयं धन्वन्तरि क्यों न करे। आशा है कि, लोग उपर्युक्त विवेचन से कुछ लाभ उठा कर जहां पर ऐसी चिकित्सा हो वहाँ उसका अवश्य ही प्रतिकार करेंगे। (जयाजी प्रताप)

शालिग्राम निघण्टु भूषण और पं० गणेश शर्मा
का
बृहन्निघण्टुरत्नाकर सप्तम अष्टम भाग।

शालिग्राम निघण्टु भूषण वैद्यक के नवीन साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है, उसके अब तक कई संस्करण हो चुके हैं, इसके द्वारा वैद्यों और सर्व साधारण का बड़ा उपकार हुआ है। बम्बई के श्री वेंकटेश्वर प्रेस के अध्यक्ष ने स्वर्गीय वैद्यराज पं० दत्तराम जी चौवे के बृहन्निघण्टु रत्नाकर नामक ग्रन्थ के छः भागों के साथ स्वर्गीय लाला शालिग्राम जी के शालिग्राम निघण्टुभूषण को मिला कर उसका सप्तम और अष्टम भाग बना दिया है, इस प्रकार बृहन्निघण्टु रत्नाकर के आठ भागों की कल्पना की गई है पर आज हम बृहन्निघण्टु रत्नाकर नाम के एक और नवीन ग्रन्थ को देख रहे हैं, इस निघण्टु का किन्हीं काशीनाथात्मज श्री पं० गणेश शर्मा जी ने संकलन किया है और यह कल्याण मुम्बई के गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास के लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस में मुद्रित हुआ है, इसमें और लाला शालिग्राम जी कृत शालिग्राम निघण्टु भूषण में कुछ विभिन्नता नहीं पाई जाती। दोनों पुस्तकें एक ही जान पड़ती हैं। पं० गणेश शर्मा का बृहन्निघण्टु रत्नाकर का सप्तम अष्टम भाग शालिग्राम निघण्टु भूषण की उलटी सीधी नकल मात्र है। उसमें कहीं कहीं नीचे का मैटर ऊपर-ऊपर का नीचे करके और कहीं जल का पानी गगन का आकाश आदि शब्दों का परिवर्तन करने के सिवाय कुछ भी ग्रन्थकार की संपत्ति नहीं दिखाई देती यहाँ तक कि शालिग्राम निघण्टुभूषण में जो कितनी ही त्रुटियाँ और अशुद्धियाँ रह गई हैं। प० गणेश शर्मा ने उनकी भी अविकल नकल करली है, नीचे दोनों ग्रन्थों के कुछ अवतरण दिये जाते हैं—

एरंड चिर्भिट नामानि (अण्डखर्बूज)

परंड चिर्भिटो वृक्षचिर्भिटा नालिकादलः।
वात कुम्भ फलः प्रोक्त स्तथैव मधुकर्कटी ॥

अर्थ—एरंड चिर्भिट वृक्ष को चिर्भिटा और नालिकादल कहते हैं। इसके फलों को वातकुम्भफल और मधुकर्कटी कहते हैं।

संस्कृत भाषा में—	वातकुम्भ ।
हिन्दी भाषा में—	अंड खरबूजा, पेपैया ।
मराठी भाषा में—	पेपेया ।
गुजराती भाषा में—	पेपयो, एरंडकांकड़ी, झाड़चीभड़ी ।
तैलिङ्गी भाषा में—	पोपड चेट्टु
इंग्रेज़ी भाषा में—	पेपो Papow
लेटिन भाषा में—	केरिका पापैया Cariladadaya.
कर्णाटकी भाषा में—	पप्पलसु ।
तुर्की भाषा में—	बप्पागाई ।
तैलिङ्गी भाषा में—	बोप्पई ।
मला०—	पप्पायम् ।
तामिली भाषा में—	पप्पाई ।

अस्य गुणाः ।

वातकुम्भफलं ग्राहि कफवातप्रकोपनम् ।
तत्पक्वं मधुरं रुच्यं पित्तनाशकरं गुरु ॥

अर्थ—अंड खर्बूजा—मलरोधक, कफ, और वात को कुपित करे है, पक्का अण्ड-खर्बूजा—मधुर, रुचिकारक, पित्तनाशक और भारी है ।

अन्यच्च ।

मध्वेरंड फलं पक्वं किंचित्तिक्तञ्च माधुरम् ।
वृष्यं कफकरं हृद्यमुन्मादस्य विनाशकम् ॥
वध्मं रोग हरं चैव स्निग्धं वातविनाशनम् ।

अर्थ—पक्का अण्डखर्बूजा—किञ्चित् कड़वा, मधुर, वीर्य्यवर्द्धक, कफकारी, हृदय को हितकारी, उन्माद रोग को हरने वाला, वध्म-रोग को विनष्ट करने वाला, स्निग्ध और वात विनाशक है ।

विवरण—अंड खर्बूजे के वृक्ष प्रायः अण्ड के समान होते हैं । बल्कि यह अंड का ही भेद है । पत्ते भी अंड के से होते हैं । किन्तु यह वृक्ष बहुत लम्बे और सीधे होते हैं । फल बड़े २ लम्बे और गोल तीन चार पकत्र लगते हैं ।

शालिग्राम निघण्टु भूषण [बृहन्निघण्टुरत्नाकर सप्तम अष्टम भाग]

एरंड चिर्भिट नामानि ।

एरंडचिर्भिटो वृक्षचिर्भिटा नालिकादलः ।
वातकुम्भफलः प्रोक्तः स चैव मधुकर्कटी ॥

भाषा—एरंडचिर्भिट वृक्ष को चिर्भिटा और नलिकादल कहते हैं, इसके फलों को वातकुम्भफल और मधुकर्कटी कहते हैं ॥

अनेक भाषा के अण्ड खरबूज़ा के नाम ।

सं०—	वातकुम्भ,
हिं०—	अंडखरबूजा, पेपैया ।
म०—	पेपया ।
गु०—	पेपयो, एरंडकांकडी, झाडचीभडी ।
क०—	पप्पलसु ।
तै०—	पोप्पई ।
तु०—	पप्पागाई ।
ता०—	पप्पाई ।
मला—	पप्पायम् ।
अं०—	Papow. पेपो ।
ला०—	Caricapapaya. केरिकापापैया ।

वात कुम्भ फल गुणाः ।

वातकुम्भफलं ग्राहि कफवातप्रकोपनम् ।
तत्पक्वं मधुरं रुच्यं पित्तनाशकरं गुरु ।

भाषा—अंडखर्बूजा मलरोधक है और कफ और वात को कुपित करता है, पक्का अंड खर्बूजा मधुर, रुचिकारक, पित्तनाशक और भारी है ।

अन्यच्च ।

मध्वेरण्डं फलं पक्वं किञ्चित्तिक्तं च माधुरम् ।
वृष्यं कफकरं हृद्यमुन्मादस्य विनाशकम् ॥
चर्म्मरोगहरं चैव स्निग्धं वातविनाशनम् ।

भाषा—पक्का अंडखर्बूजा, किञ्चित्कडुवा, मधुर, वीर्य्यवर्द्धक, कफकारी हृदय को हितकारी, उन्माद रोग को हरने वाला, चर्म्म रोग को विनष्ट करने वाला, स्निग्ध और वात विनाशक है ।

अंड खर्बूजे का विशेष विवरण ।

अण्ड खर्बूजे के वृक्ष प्रायः अंड के समान होते हैं, बल्कि यह अंड का ही भेद है। पत्ते भी अण्ड के से होते हैं किन्तु यह वृक्ष बहुत लम्बे और सीधे होते हैं, फल बड़े बड़े लम्बे और गोल तीन चार एकत्र लगते हैं ।

(पं० गणेश शर्मा का बृहन्निघण्टुरत्नाकर सप्तम अष्टम भाग)

ईषद्गोल नामानि ।

ईषद्गोलं स्निग्धबीजं श्लक्ष्णजीरश्च कीर्त्तितः ।

अर्थ—ईषद्गोल, स्निग्ध बीज, श्लक्ष्णजीर, (स्निग्ध जीरक श्लक्ष्णजीरक) ।

संस्कृत भाषा में—	ईषद्गोल ।
हिन्दी भाषा में—	ईसबगोल ।
मराठी भाषा में—	इसबगोल ।
गुजराती भाषा में—	उथमुंजरि ।
तैलङ्गी भाषा में—	इस्पगुल ।
इंग्रेज़ी भाषा में—	ईस्पगुलसीड Isphagul,
लैटिन भाषा में—	प्लेन्टैगो ईस्पगुल । Plantango isphagula.
फारसी भाषा में—	ईस्पंगुल ।
अरबी भाषा में—	बज़रकतूना ।

ईषद्गोल गुणाः ।

ईषद्गोलं परं वृष्यं मधुरं ग्राहि शीतलम् ।
पिच्छिलं तुवरं किञ्चिद्वातकृत्कफपित्तहृत् ॥
रक्तातीसाररक्तपित्त नाशयेदिति कीर्त्तितम् ।

अर्थ—ईसबगोल-अत्यन्त पुष्टिकारक, मधुर, मलरोधक, शीतल पिच्छिल, कषैला, किञ्चित् वातकारक, कफ पित्त विनाशक, रक्तातिसार और रक्त पित्त नाशक है ।

(शालिग्राम निघण्टुभूषण ,बृहन्निघण्टु रत्नाकर सप्तम अष्टम भाग)

ईषद्गोल नामानि ।

ईषद्गोलं स्निग्धबीजं श्लक्ष्णजीरश्च कीर्त्तितः ।

भाषा—ईषद्गोल, स्निग्ध बीज, श्लक्ष्ण जीर, तथा स्निग्धजीरक श्लक्ष्ण जीरक ये ईसबगोल के संस्कृत नाम हैं ।

अनेक भाषा के ईसबगोल के नाम ।

सं०—	ईषद्गोल
हि०—	ईसबगोल
म०—	इसबगोल
गु०—	उथमुझीकँ
क०—	सबगोलु
तै०—	इसबगुल
ना०—	इसप्पुकोलविरै
फा०—	इस्पगुल
अ०—	बाअरेकातून
अं०—	Isphagulseed, इस्फागुलसीड
ला०—	Plantagoisphagula, प्लेन्टेगोइस्फागुल

ईषद्गोलगुणाः ।

ईषद्गोलपरं वृष्यं मधुरं ग्राहि,शीतलम् ।
पिच्छिलं तुबरं किञ्चिद्वातकृत्कफपित्तहृत् ॥
रक्तातीसारशमनं नाशयेदिति कीर्तितम् ॥

भाषा—ईसबगोल अत्यन्त पुष्टिकारक, मधुर, मलरोधक, शीतल, पिच्छिल, कषैला, किञ्चित् वातकारक, कफपित्त विनाशक, रक्तातीसार नाशक और रक्तपित्त नाशक है ।

(पं० गणेश शर्मा का बृहन्निघण्टुरत्नाकर सप्तम अष्टम भाग)

इस प्रकार प्रायः सर्वत्र नकल की गई है । कहीं २ कुछ बदलने की भी चेष्टा की गई है । पर जहाँ कुछ घटाया बढ़ाया गया है, वहाँ ही अर्थ का अनर्थ होगया है । जैसे रेवनचीनी के नामों में शालिग्राम निघण्टु में वर्णित नामों के सिवाय जो दूसरे नाम और बढ़ाकर लिखे गए हैं, वह स्वर्णक्षीरी अर्थात् सत्यानासी कटेरी के नाम हैं । स्वर्णक्षीरी अन्य वस्तु है, और रेवनचीनी दूसरी चीज़ है पर आपने दोनों के नाम एक ही जगह लिख दिये हैं । इसी प्रकार मुरा (मुरामांसी) को मरोड़फली लिख मारा है इस तरह बहुत जगह कुछ का कुछ लिख डाला है । पं० गणेश शर्माजी महोदय ने नकल करने में यहाँ तक कमाल दिखाया है कि भूमिका तक की नकल कर ली है । जिन ग्रन्थों से शालिग्राम निघण्टु भूषण का

संकलन किया गया है, उन्हीं ग्रन्थों से आपने भी अपने निघण्टु का संकलन करने का उल्लेख किया है। पर आश्चर्य तो यह है कि लाला शालिग्रामजी ने जिन ग्रन्थों से अपने निघण्टु का संग्रह किया है, उनमें से कई ग्रन्थ ऐसे हैं, जो लाला शालिग्रामजी के इष्टमित्रों के द्वारा हस्त लिखित होने के कारण लाला शालिग्रामजी के पुस्तकालय के सिवा अन्यत्र मिलने अत्यन्त दुर्लभ हैं। इसके सिवाय अनुक्रमणिकाओं की भी हिन्दी, बंगला, अँग्रेज़ी, गुजराती, मराठी, लैटिन आदि सभी भाषाओं की नकल करली है। हम नहीं कह सकते कि ग्रन्थकार ने यह काम अपने नाम के लिये अपनी इच्छा से किया है, अथवा प्रकाशक महाशय के अनुरोध से किया है। किसी तरह भी हो इस प्रकार दूसरों की संपत्ति को सहज में हरण कर लेना साफ डाँकेजनी है। इस प्रकार की डांकेजनी आजकल बेतरह बढ़ती जाती है।

हमने देखा है कि लाला शालिग्रामजी के कई ग्रन्थों से इसी प्रकार चोरियाँ की गई हैं। प्रकाशक महाशय को केवल ग्रन्थ के प्रकाशन का अधिकार होता है, परन्तु हम देखते हैं कि आजकल कई प्रकाशक महोदय ग्रन्थकार की आंखे मिचते ही उसको घटाने बढ़ाने और ग्रन्थकार का नाम मिटाने आदि का पूरा अधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

इस विषय में अब की बार अधिक न लिखकर सिर्फ श्रीमान् पं० गणेश शर्मा और प्रकाशक महोदय से हम सिर्फ यह मालूम करना चाहते हैं, कि यह महा अनर्थ क्यों किया गया है, दूसरे की संपत्ति को सहज में अपनी बना लेना कैसा कार्य्य है? हम आशा करते हैं कि पण्डित गणेश शर्मा और लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस कल्याण मुम्बई के स्वत्वाधिकारी महोदय इसका संतोषजनक उत्तर देंगे। यदि इस विषय में उक्त दोनों महानुभावों ने कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया, तो हम इन सम्बन्ध में एक सुविस्तृत लेखमाला निकालनी आरम्भ कर देंगे।

"वैद्य" के लेखों की चोरी।

"वैद्य" के कितने ही उपयोगी लेख अनेक सामयिक पत्रों में उद्धृत किये जाते हैं। यह "वैद्य" के लिये बड़े सौभाग्य की बात है। परन्तु हम देखते हैं, कई वैद्यक के और दूसरे पत्रों में वैद्य के उद्धृत किये लेखों में "वैद्य" का नाम नहीं दिया जाता, यह बड़े लज्जा का विषय है। किसी पत्र के उपयोगी लेख को उद्धृत करना बुरी बात नहीं है किन्तु उसको अपनी ही संपत्ति बना लेना किसी प्रकार उचित नहीं जान पड़ता। कई पत्रकार "वैद्य" के लेखों को तोड़ मरोड़ कर अथवा उनके कहीं कहीं कुछ शब्द बदल कर प्रकाशित किया करते है। पर कई महाशय उसकी अक्षरशः नकल करने में ज़रा भी नहीं हिचकते, यह कैसा नीच व्यवहार है। इस विषय में हम पहिले भी दो बार सूचना दे चुके हैं, पर उनका ऐसे लोगों पर कुछ भी असर नहीं हुआ। अन्त में लाचार होकर आज हम उनके नाम प्रकाशित करने को उद्यत हुये हैं। सब से प्रथम हम कलकत्ते के "स्वास्थ्य" नामक हिन्दी मासिक पत्र के सम्बन्ध में नीचे कुछ लाइनें लिखते हैं।

सहयोगी कई मास से "वैद्य" के लेखों की अपने पत्र में नकल करता आता है। किन्तु "वैद्य मासिक पत्र" का नाम देने में अपना अपमान समझता है। अतएव पहले लेखों के विषय में कुछ न लिख कर अभी हाल के प्रकाशित हुये स्वास्थ के तीसरे वर्ष की पहली संख्या में जो वैद्य के कई लेख अपहरण करके छापे गये हैं। उनके ही विषय में कुछ कहना चाहते हैं।

अस्थिक्षय, अन्वेषण, आतिफल, दन्तपूय ये चारों लेख "वैद्य" के स्वास्थ्य की उक्त संख्या में प्रकाशित किये गये हैं, इनमें अस्थि-क्षय अन्वेषण ये दोनों लेख "वैद्य" के १७ वें वर्ष की ३री संख्या से उद्धृत किये गये हैं। आतिफल और दन्तपूय ये दोनों लेख वैद्य के १६ वें वर्ष की आठवीं और नवीं संयुक्त संख्या से लिये हैं। यही नहीं बल्कि स्वास्थ्य के तीसरे नवीन वर्ष की प्रार्थना नामक जो लेख लिखा गया है, वह प्रायः वैद्य के १७ वें वर्ष के नवीन वर्ष की प्रार्थना

का ही कुछ परिवर्तित अंश मात्र है। जिसमें अपने आप अग भी परिश्रम न करना पड़े किन्तु सहज में ही पत्र का सम्पादन होजाय,इससे अच्छी और सुविधा जनक सम्पादन का क्या कार्य्य हो सकता है?

अहिफेन नामक लेख स्वयं हमारा लिखा हुआ है। और उस के अन्त में हमने "सम्पादक" शब्द लिख दिया है। स्वास्थ्य में भी उक्त लेख के नीचे "सम्पादक" शब्द उद्धृत कर दिया गया है, जिससे कि पाठकों को यह मालूम होता है कि यह "स्वास्थ्य मासिक पत्र" के सम्पादक का ही लिखा हुआ है। इसी प्रकार अन्वेषण आदि दूसरे विद्वानों के लिखे हुए लेख इसी ढंगसे "स्वास्थ्य" में उद्धृत किये गये हैं, कि जिससे यह मालूम हो कि उक्त लेख स्वास्थ्य के लिये ही उन लेखकों ने लिखकर सीधे उनके सम्पादक महोदय के पास भेजे हैं। इस विषय में अधिक न लिखकर हम "स्वास्थ्य" के सम्पादक महानुभावों से विनीत प्रार्थना करते हैं कि आप जो वैद्य के लेख बराबर अपने पत्र में उद्धृत करते आते हैं, और वैद्य का नाम तक नहीं देते। इसका क्या कारण है? यदि इसका बहुत शीघ्र संतोष जनक उत्तर नहीं मिला तो हम आगामी अंकों में स्वास्थ्य में प्रकाशित हुये वैद्य के अन्य लेखों की भी जो पहले प्रकाशित होचुके हैं। पोल खोलना आरम्भ कर देंगे।

खादी पहिनने से लाभ।

खादी हमारा स्वाभाविक, स्वास्थ्यवर्द्धक, शुद्ध और सुलभ वस्त्र है।

खादी को पहिनने से हमारी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक आदि अनेक प्रकार की उन्नति होती है।

खादी स्वाभाविक और पवित्र होने के कारण शरीर और मन में आरोग्यता और पवित्रता का संचार करती है। खादी पहिनने से विचार उन्नत होते हैं। चित्त में शान्ति और सादगी आ विराजती है। शरीर में रुधिर का उत्तम प्रकार से संचालन होता है। देशी ढंग के बने हुए खादी के कपड़े भारत के स्त्री पुरुषों के स्वास्थ्य के लिये बड़े ही लाभदायक हैं। विलायती ढंग के और विलायत के बने हुये वस्त्र भारतवासियों के स्वास्थ्य के लिये किसी प्रकार भी उप-

योगी नहीं हो सकते। पहिले टोपी को ही लीजिये इस देश में फैल्ट कैप ने बहुत दिनों से समस्त टोपियों में प्रधान आसन पा रखा था, सभी लोग फैल्टकैप को एक प्रतिष्ठा की चीज़ समझ कर ओढ़ते थे। पर अब गांधी टोपी ने भारत में घर २ आदर पा लिया है। कारण उसको ओढ़ने में बड़ा आराम मालूम होता है सिर में हलका-पन और मस्तिष्क में शान्ति मालूम होती है।

फैल्टकैप को ओढ़ने से सिर में भारीपन, पसीने का भरना और कभी २ सिर में भयंकर पीड़ा का होना आदि विकार होते हैं। किन्तु खादी की बनी हुई गांधी टोपी के ओढ़ने में ये दुःख नहीं मालूम होते।

फैल्टकैप में जो मैल जम जाता है, और उससे नाना प्रकार के कष्ट जो मस्तिष्क को भुगतने पड़ते हैं, गांधी टोपी में वैसी किसी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता।

प्रायः एक हफ्ते में गांधी टोपी धोकर साफ की जाती है। इस लिये उसमें मैल जमने नहीं पाता। उसकी रचना भी ऐसी नहीं है, जिसमें फैल्टकैप की तरह सहज में मैल जम जाय। इसके सिवाय गांधी टोपी में आर्थिक लाभ भी बहुत है। अच्छी से अच्छी गांधी टोपी ३-४ आने में तैयार होजाती है। अतः प्रत्येक मनुष्य को गांधी टोपी के लिये प्रति वर्ष एक रुपये से अधिक खर्च करना नहीं पड़ता।

गांधी टोपी किसी भी धर्मावलम्बी मनुष्य के भावों पर आघात नहीं पहुंचाती पर देशी पवित्र खादी की बनी होने से वह सभी के लिये प्रिय बन सकती है।

खादी का कुरता या कमीज़—स्वास्थ्य या शरीर के लिये सीधा सादा और बड़ा उपयोगी वस्त्र है। केवल इनको पहन कर मनुष्य सर्वत्र बड़े छोटे लोगों में जा आ सकता है। इनको पहनने से रुधिर की संचालन क्रिया बड़े अच्छे ढंग से होती है।

मन में शान्त भावों की उत्पत्ति होती है। पर विलायती ढंग के कमीज या कुरते पहनने में वैसी सुविधा नहीं दीख पड़ती।

कोट या अचकन—खादी के कपड़ों में बहुत से कपड़ों की आवश्यकता नहीं है। केवल एक कुरता एक धोती और एक टोपी इन तीन वस्त्रों को पहन कर ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में प्रत्येक मनुष्य अच्छे प्रकार काम चला सकता है।

कोट या किसी दूसरे वस्त्र को पहनने की कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती। जो लोग विदेशी वस्त्रों को सर्वथा छोड़ देने पर भी उनके फैसन को नहीं छोड़ सके हैं। उनके विषय में हम कुछ नहीं लिखना चाहते। केवल उनसे यही प्रार्थना की जाती है कि वह लोग जिस फैसन की भी जो चीज़ अपने स्वास्थ्य के लिये उपयोगी समझ कर व्यवहार करें, वह सब स्वदेश की बनी होनी चाहिए।

खादी के कोट या चपकन आदि बहुत अच्छे बन सकते हैं।

हाफ कोट की जगह खादी की मिर्जई अधिक उपयोगी है। इसी प्रकार खादी का अंगरखा, अचकन, सलूके आदि कपड़े भी दूसरे विलायती ढङ्ग के कपड़ों से अधिक स्वास्थ्य-प्रद और सुविधाजनक है।

खादी की धोती—यह सब से अधिक उपयोगी और आवश्यक वस्त्र है।

खादी की धोती बड़ी ही लाभप्रद और सुविधा की चीज़ है।

खादी की धोती को पहनने से मन में उत्साह की वृद्धि होती है, और शरीर में रुधिर का सुचारुरूप से संचार होता है। विलायती पैजामें या पतलूनें भारतवासियों के लिये कदापि स्वास्थ्य और सुविधाजनक नहीं होसकते। विशेषकर हिन्दू लोग तो स्नान पूजा पाठ निद्रा, शयन, भोजन, शौच आदि अपने सभी नित्यप्रति के कार्य्य धोती के विना नहीं कर सकते।

इसलिये यहां पैजामें या पतलून की कुछ भी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

अपूर्ण

वैद्य जी का स्वर्गवास।

यहां के सुप्रसिद्ध वैद्यराज पं० संतलाल जी (कलकत्ता वाले) का पिछले दिनों सन्निपात रोग से अचानक स्वर्गवास होगया। वे बड़े अच्छे अनुभवी और एक प्रतिष्ठित वैद्य समझे जाते थे। वे यहां की आयुर्वेद प्रचारिणी सभा के वे सहायक और वैद्य संगठन के पक्षपाती थे। डाक्टरों के मुकाबिले में उन्होंने अपनी चमत्कारिणी चिकित्सा के द्वारा कितने ही दुःसाध्य रोगियों को आरोग्य करके बड़ा नाम पाया था। उनके वियोग से हमें अपार दुःख हुआ है। भगवान् उनकी आत्मा को शान्ति और उनके परिवार के लोगों को उनके वियोग जन्य दुःख सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

सूचना ।

समस्त आयुर्वेदिक शिक्षा संस्थाओं के सञ्चालकों को सादर सूचित किया जाता है कि २० वें निखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन कराँची के स्वीकृत प्रस्ताव नं० ४ के अनुसार सम्मेलन की स्थाई समिति आयुर्वेदिक विद्यालयों की एक सूची तय्यार करने की योजना पर विचार कर रही है। अस्तु, इस सम्बन्ध में आप से यह प्रार्थना है कि कृपया निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर सहित एक २ प्रति विद्यालय की नियमावली तथा वार्षिक रिपोर्ट प्रधान मन्त्री नि० भा० आयुर्वेद महामण्डल कानपुर के पते से शीघ्रातिशीघ्र भेजने को कृपा करें।

प्रश्न—१—विद्यालय किसके द्वारा कब स्थापित हुआ? २—अध्ययन अध्यापन किस शैली पर प्रचलित है? ३—कौन २ सी परीक्षाएँ होती हैं? विद्यालय का सम्बन्ध किसी आयुर्वेद विद्यापीठ से है? ४—पाठ्यक्रम क्या है? ५—विद्यालय के पास कोई स्थाई कोष है? कितना है? ६—विद्यालय के कार्य्य संचालनार्थ धन कहां से मिलता है? ७—क्या सरकार से भी कोई सहायता मिलती है। ८—विद्यालय में कितने छात्रों के पढ़ाने का प्रबन्ध है।

शिवनारायण प्रधान मंत्री।

आवश्यक सूचना ।

हमारे यहाँ संस्कृत विद्यालयों, (कालेजों) विशेषकर स्त्रियों के शिक्षालयों में उच्चकोटि की शिक्षा देने के लिए एक ऐसे प्रज्ञाचक्षु विद्वान् उपस्थित हैं जो हिन्दूयूनीवर्सिटी बनारस की धर्मशास्त्री धर्माचार्य्य, पंजाब शास्त्री, क्वीन्सकालेज की साहित्यशास्त्री और स० महामण्डल मेरठ की व्याकरण शास्त्री परीक्षा पास हैं, इसके अतिरिक्त पंजाब का मेट्रिक भी दिया हुआ है। और सङ्गीत के कार्य्य में भी अच्छी योग्यता प्राप्त की है। कविता के उपलक्ष में बड़े बड़े विद्वानों और राजा महाराजाओं से सार्टिफिकेट तथा मेडिल प्राप्त कर चुके हैं। अबतक आपने प्रथमा, मध्यमा और शास्त्री के अनेकों विद्यार्थियों को अध्ययन कराकर पास कराया है और कितने ही बी० ए० एम० ए० के विद्यार्थियों को संस्कृत का अध्ययन कराया है। जिन महाशयों को उक्त विद्वान् की आवश्यकता हो वे निम्नलिखित पते से पत्रव्यवहार करें। मैनेजर-वैद्य आफिस, मुरादाबाद U. P.

"वैद्य" सम्मेलनांक के विषय में कुछ प्रसिद्ध समाचार-पत्रों की सम्मतियां ।

लाहौर का सुप्रसिद्ध आयुर्वेदिक मासिकपत्र "बूटीदर्पण" ७ वें वर्ष की २-३ संयुक्त संख्या में लिखता है कि—

"वैद्य" मासिकपत्र का सम्मेलनाङ्क—"वैद्य" पत्र चिर-काल से बड़ी धीरता और तत्परता के साथ वैद्यसमाज की बड़ी सादगी और सस्तेपन से सेवा करता आ रहा है, यह बात स्मरण करके बड़ा ही हर्ष होता है। इस वर्ष अपने १७ वें साल में प्रवेश करते हुए उसने अपने ऊपर बड़े भारी व्यय भार को उठाते हुए एक ऐसा सुन्दर अंक प्रकाशित किया है, जिसे निःसन्देह एक अल्प-प्राण और सस्ते पत्र के लिये भारी साहस ही कहना चाहिये। देश के २० प्रतिष्ठित वैद्यों और वैद्यक प्रेमियों के सुन्दर चित्रों तथा सारवान् लेखों और समाचारों का चुनाव करके सम्पादक महोदय

ने अपने इसके अनुभव और उदारभाव का अनुकरणीय प्रदर्शन किया है। पाठकों को ऐसे पत्रों का ग्राहक होकर लाभ उठाना चाहिये तथा ऐसे उद्योगों का पोषण करना चाहिये। पत्र वार्षिक मू० १॥।) में वैद्य आफिस मुरादाबाद से प्राप्त होसकता है।

कलकत्ते का सुविख्यात हौमोपैथिक "चिकित्सा चमत्कार" नामक मासिक पत्र ३ रे वर्ष की तीसरी संख्या में लिखता है कि-

वैद्य—सम्पादक श्रीशंकरलाल वैद्य, प्रकाशक श्रीहरिशंकर वैद्य, वार्षिक १॥।) इस अङ्क का मू० ॥)

'सम्मेलनांक' वैद्य के १७ वें वर्ष की प्रथम और द्वितीय संख्या है, वैद्य वास्तव में वैद्य है। इसमें सर्व साधारण के लाभार्थ सदा ही सरल से सरल और सुन्दर से सुन्दर लेख रहते हैं। परीक्षित औषधियों के नुसखे भी रहते हैं। इस अङ्क में वैद्य सम्मेलनों के विवरण का आधिक्य है। वैद्यों के चित्र भी काफी दिये गये हैं। हम वैद्य को इस सम्मेलनांक के लिये हृदय से बधाई देते हैं।

अलीगढ़ का नामी मासिक पत्र धन्वन्तरि ६ ठे वर्ष की ५ वीं संख्या में लिखता है कि—

वैद्य का सम्मेलनांक—आकार वही १८+२२ अठपेजी। पृष्ठ स० ८० चित्र संख्या १८। छपाई अति उत्तम रंगीन मूल्य १॥।) वार्षिक। इस अङ्क का आठ आना

आयुर्वेद-संसार की १७ वर्ष से निरंतर सेवा करने वाले इस उच्चकोटि के पत्र की गंभीर शैली और उपयोगिता से सभी पाठक परिचित ही होंगे। यह विशेषांक भी वैद्यसम्मेलन के संपूर्ण वृत्तान्त एवं ज्योतिर्वैद्यक, मन्त्रशास्त्र, खर्पर, उदर के रोग, स्त्री रोग, आदि पर बड़े २ विद्वानों के निबन्ध भी हैं। चित्र और कविताओं से भली-भांति अलंकृत है। प्रत्येक वैद्य को इसका ग्राहक बनना चाहिये।

बरालोकपुर इटावे का प्रसिद्ध वैद्यकपत्र "राकेश" २ रे वर्ष की ८ वीं संख्या में लिखता है कि—

वैद्य का सम्मेलनांक—मुरादाबाद से श्री शंकरलाल जी वैद्य के सम्पादकत्व में १७ वर्ष से निकलने वाले मासिक वैद्यकपत्र वैद्य का जनवरी, फरवरी मास के युग्मांक रूप यह सम्मेलनाङ्क नामक विशेषांक है। इसमें मुरादाबाद प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, युक्त प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, तथा अखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन करांची के उपयोगी विस्तृत विवरण के अतिरिक्त अष्टाङ्ग आयुर्वेद

पर विषय पूर्ण तथा अन्वेषण पूर्ण लेख प्रसिद्ध वैद्यवरों द्वारा संगृहीत हैं। तथा अनेक वैद्य महानुभावों के चित्र भी दिये गये हैं, छपाई सफाई उत्तम है। वर्तमान समय के पत्रों की गति को देखते हुये ऐसे समय में सम्पादक जी का साहस तथा परिश्रम सराहनीय है। तथा प्रत्येक आयुर्वेद प्रेमी को देखना आवश्यकीय है। इस अङ्क का मूल्य ॥) आना है। स्थायी वार्षिक मूल्य १॥) है।

अ० भा० वैद्य सम्मेलन पत्रिका ३ रे वर्ष की छठी संख्या में लिखती है कि—

वैद्य (मासिक पत्र) सम्पादक शङ्करलाल, आयुर्वेदोद्धारक औषधालय मुरादाबाद। यह जनवरी और फरवरी का संयुक्त अंक है। टाइटिल, कागज, छपाई आदि स्वच्छ है। निखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन तथा अन्य प्रान्तीय वैद्य सम्मेलनों का कार्य्य विवरण, प्रस्ताव आदि तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाले बहुत से चित्र दिये गये हैं। लेख अच्छे हैं "वैद्य" सर्वथा सराहनीय है।

कलकत्ते का सुप्रसिद्ध साहित्यिक मासिक पत्र "नारायण" अपनी सरोज और नारायण मिश्रित नाम की ४ थे वर्ष की प्रथम संख्या में लिखता है कि—

"वैद्य" (प्राचीन और आधुनिक चिकित्सा-सम्बन्धी मासिक पत्र) १७ वें वर्ष का प्रथमांक विशेषांक के रूप में। सम्पादक-श्री० शंकरलालजी वैद्य और प्रकाशक श्रीहरिशंकरजी वैद्य, प्राप्तिस्थान-'वैद्य' आफिस, मुरादाबाद। इस अंक का मूल्य ॥) और वार्षिक मूल्य १॥) भेज कर ग्राहक होने वाले को मुफ्त।

'वैद्य' के बारे में हम अपने विचार गत ३रे वर्ष के "नारायण" की किसी संख्या में प्रकाशित कर चुके हैं। "वैद्य" अपने विषय का हिन्दी में पहला और अकेला पत्र है। आयुर्वेद के साथ हिन्दी साहित्य की इसने लगातार १६ वर्षों तक जो सेवा की है, उसके लिये इसके सम्पादक और प्रकाशक-उभय महाशय ही धन्यवाद के अधिकारी हैं।

१७ वें वर्ष के इस विशेषांक में इस वर्ष में होने वाले आयुर्वेद संबन्धी कई संमेलनों का विस्तृत विवरण है। वैद्यक विषय के विभिन्न महत्व पूर्ण विषयों पर ख्यातनामा वैद्यों के विद्वत्तापूर्ण लेख हैं। कई सुन्दर कविताएँ और प्रायः १॥ दर्जन चित्र हैं। मुख पृष्ठ सुन्दर है। छपाई सफाई अच्छी—गरज कि अंक सब प्रकार से

संग्राह्य हुआ है। दुःख है कि हिन्दी पाठकों की उदासीनता से इतने उपयोगी पत्र के ग्राहक भी सन्तोषजनक संख्या में नहीं हैं। "नारायण" के प्रेमियों से हमारा आग्रह है कि वे "वैद्य" को अपनावें।

दिगम्बर जैन समाज का एक मात्र निष्पक्ष साप्ताहिक "जैनमित्र" ३१ वें वर्ष की ३२ वीं संख्या में पूज्यपाद ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी लिखते हैं कि—

वैद्य—अंक जनवरी फरवरी १९३०। ८० पृष्ठ का अनेक चित्र सहित प्राप्त हुआ। पृष्ठ २१ पर भूत विद्या पर एक लेख पं० हरिनारायणजी शर्मा वैद्य प्रतापगढ़ (अवध) का है, इसमें बताया है कि भूत आदि किसी मानव को नहीं सताते। मन की निर्बलता से भूत के आक्रमण का भय होजाता है। लेख के अन्त में है कि भूत भयमात्र अथवा मानस विकार मात्र है। इसलिये अपने मन से भूत का भय एक दम अलग कर देना चाहिये और सत्य, दया, क्षमा, शांति, धैर्य, अहिंसा, अस्तेय, सफाई, समझदारी आदि सद्गुणों को अपने में लानेका प्रयत्न करना चाहिये। मृगीरोग व उसकी चिकित्सा पर लेख मनन योग्य है। यह पत्र बहुत उपयोगी निकलता है। वैद्य शंकरलालजी जैन इसके संपादक हैं। वैद्य आफिस मुरादाबाद से अवश्य २ मँगाना चाहिये।

सनातनधर्म का लब्ध प्रतिष्ठित "ब्राह्मण सर्वस्व मासिकपत्र" २७ वें वर्ष की ३ सरी संख्या में लिखा है कि—

वैद्य—यह मासिकपत्र बहुत पुराना है इसका जनवरी फर्वरी १९३० का अङ्क वैद्य संमेलनांक नाम से अभी हाल में निकला है इसमें ८० पृष्ठ हैं। वैद्यक विषयक अनेक गवेषणा पूर्ण लेखों के अतिरिक्त इसमें प्रसिद्ध २ वैद्य महाशयों के चित्र भी दिये गये हैं। अंक सुपाठ्य है सुन्दर है। वैद्य का वार्षिक मूल्य १॥) है।

बड़ौदे का अपने विषय का एकमात्र मासिकपत्र "व्यायाम" ४ थे वर्ष की छठा संख्यामें लिखता है कि—

वैद्यसम्मेलनाङ्क—मासिकपत्र के संपादक श्री शंकरलाल जी वैद्य हैं वा० मू० १॥) मुरादाबाद से निकलता है। यह सचित्र संमेलनांक उत्तम निकला है, सुप्रसिद्ध विद्वान् वैद्यराजों के नाना प्रकार के उपयोगी लेख पढ़ने के योग्य हैं। इसमें सरल चिकित्सा भी दी जाती है जो उपयोगी है। यह मासिकपत्र १७ वर्ष से सतत् जन समाज की सेवा कर रहा है।

मुद्रक—प० जीवारामोपाध्याय, सरस्वती-प्रेस, मुरादाबाद।

R. N. A. 557 रजिस्टर्ड नं० ए० ५८७

सम्पादक :—
श्रीशङ्करलाल वैश्य।

वार्षिक मूल्य २॥)]

प्रकाशक :—
श्रीहरिशङ्कर जैन।

[एक प्रति ≡)

❋ विषय-सूची ❋

१ धन्वन्तरि स्तुति — २६२
२ जल-चिकित्सा — २६३
३ मधुमेह-डायाबिटीज़ — २६७
४ आमाशय और अन्ननाली के रोग — २७५
५ उपयोगी उपाय — २८१
६ मिरचियानन्द — २८३
७ मर्यादित्वल्ली — २८४
८ नारंगी — २८६
९ अनुभूत प्रयोग — २८८
१० लंडन की चिट्ठी — २९०
११ मंगलकामना — २९२
१२ समाचार—वैद्यों की कांग्रेस २१ वां वैद्यसम्मेलन — २९३

❋ "वैद्य" के नियम ❋

(१) 'वैद्य' प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) 'वैद्य' का वार्षिक मूल्य डाक महसूल सहित केवल १॥) है। पेशगी मनीआर्डर भेजने से १॥) रु० और वी० पी० मँगाने से २) रु० में पड़ेगा।

(३) 'वैद्य' का नमूना =) के टिकट भेजने से भेजा जाता है।

(४) 'वैद्य' में छपने के लिये जो महाशय वैद्यक-विषय के लेख, कविता, अनुभूत प्रयोग और समाचारादि भेजेंगे, वे पसन्द आने पर अवश्य प्रकाशित किये जायेंगे, परन्तु लेख को घटाने बढ़ाने का अधिकार सम्पादक को होगा।

(५) 'वैद्य' के ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये, जिससे उत्तर देने में विलम्ब न हो। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या एक आने का टिकट भेजना चाहिए।

(६) 'वैद्य' सब ग्राहकों के पास जाँचकर भेजा जाता है, किन्तु बहुत से ग्राहक किसी २ अङ्क के न पहुँचने की शिकायत किया करते हैं। इसका कारण रास्ते की असावधानी ही होसकती है। जिन महाशयों को जो अङ्क न मिले, वे दूसरे अङ्क के पहुँचते ही हमें सूचना दें, अन्यथा हम न भेज सकेंगे।

(७) सब प्रकार के पत्र और मनीआर्डर आदि भेजने का पता—

वैद्य-शंकरलाल हरिशंकर, वैद्य आफिस मुरादाबाद।

शास्त्र निष्णात, वयोवृद्ध

आयुर्वेदभूषण पं० रामरत्नजी त्रिपाठी वैद्य।

श्रीसिद्धेश्वर आरोग्यभवन, बेथर, उन्नाव।

Shree Narayan Printing Works, Calcutta

आयुर्वेदके प्रसिद्ध विद्वान् वक्ता, लेखक और नामी चिकित्सक

पं० श्रीनिवासजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य ;

बेथर, उन्नाव।

ree Narayan Printing Works, Calcutta.

श्री धन्वन्तरये नमः ।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष १७ — मुरादाबाद-सितम्बर १९३० — संख्या ६

धन्वन्तरि स्तुति ।

लेखक — भिषगानुगामी सियाराम शर्मा वैद्य शास्त्री अलीगढ़ ।

हे धन्वन्तरि भगवान विभो ! फिर आयुर्वेद प्रचार करो ।
रुग्जाल ग्रसित निज सन्ततिको करि मुक्ति कष्ट सब दूर करो ॥१॥
हत तेज ओज और आयू से हैं क्लान्त आज भारतवासी ।
आरोग्य आयु बल देकरके नवजीवन का संचार करो ॥२॥
कर कनक कलश पीयूष पूर्ण वन माल विभूषित चक्र लिये ।
कर कृपा सुधार रस बरसा दो भेषज का शुभ भंडार भरो ॥३॥
दो ज्ञान, शक्ति, श्रद्धा, भक्ति, धारणा, ध्यान, शुभ कर्म करें ।
आत्रेय अंगिरा जमदग्नि अश्विनी कुमार निज तेज भरो ॥४॥
हो काशिराज प्रकटो अब भी वैद्यों में वैद्यक ज्ञान बढ़े ।
तब भक्त चढ़ावें श्रद्धा से पुष्पाञ्जलि को स्वीकार करो ॥५॥

जल चिकित्सा ।

ले० श्री० वैद्यराज पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य्य बी० ए०,

"अप्सु मे सोमोऽब्रवीदंतर्विश्वानि भेषजम्" (ऋ०)

उस दिन हमारा एक जल चिकित्सक महोदय से कुछ वाद विवाद हुआ। "उनका कहना था कि जल चिकित्सा ही सर्व श्रेष्ठ चिकित्सा है।" जल चिकित्सा के सामने कोई चिकित्सा नहीं ठहर सकती; किसी भी रोग में चाहे कैसी भी अवस्था हो इसका प्रयोग लाभदायक ही होता है। वैद्य लोग जलके गुणों को नहीं जानते, व्यर्थ ही तमाम औषधियाँ रोगी के शरीर में ठूंसा करते हैं, इत्यादि"

इस पर हमने उनसे कहा-महाशय! यह आपका हठवाद है। शास्त्र पारंगत वैद्य जल के गुणों को अवश्य जानते हैं। तथा इसका यथा स्थान पर उपयोग भी करते हैं। हमारा कहना केवल इतना ही है कि जल चिकित्सा का प्रयोग यद्यपि कितने ही रोगों में विशेष हितकर होता है तथापि उसका समस्त रोगों में प्रयोग करना कभी हितकर नहीं होसकता। यह एक साधारण नियम है कि जिस प्रकार प्रत्येक औषधि, वस्तु मात्र या क्रिया में गुण और दोष पाये जाते हैं, उसी प्रकार जल प्रयोग में भी गुण और दोष विद्यमान हैं। विशिष्ट द्रव्यों का या प्रयोगों का शारीरिक इन्द्रिय-विशेष पर जैसा अच्छा या बुरा परिणाम होता है वैसा अन्य इन्द्रियों पर नहीं होता। उदाहरणार्थ अवसादक (Sedatives या Digitalis) द्रव्यों का,-जैसे अफीम, तम्बाकू, वच्छनागादिका-जैसा परिणाम हृदय पर होता है वैसा अन्य इन्द्रियों पर नहीं होता; कुचले का विशेष असर वातवाहिनी नाड़ियों पर ही होता है; उष्ण जलस्नान का विशेष प्रभाव स्वेदोत्पादक पिंडों पर ही होता है।

भाव यह है कि किसी भी चिकित्सा में मुख्यतः दो तत्त्वों की ओर ध्यान देना आवश्यक है। एक तो प्रत्येक औषधि या उपचार के गुणों को स्पष्टतया देखना, और उनका परिणाम इन्द्रिय विशेष पर किस प्रकार होता है, इस (Affinity) को ध्यान में लाना, इन दो तत्त्वों की ओर ध्यान दिया जाय तो किसी भी चिकित्सा

पद्धति में विरोध नहीं रहने पाता, कारण सब ही में गुणावगुण तथा इन्द्रिय विशेष पर प्रभाव होना पाया जाता है, । किसी एक ही चिकित्सा को सर्वश्रेष्ठ मानना, "मेरी मुर्गी की एक टांग" की कहावत को चरितार्थ करना है ।

हम जल के गुणों को अवश्य स्वीकार करते हैं । हम यह मानते हैं कि प्रत्येक प्राणी के जीवन क्रम में जल एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है, जल हमारा जीवन है, वायु के पश्चात् जल का ही दूसरा नम्बर है, जिससे हमारा जीवन धारण होता है । जीवन के लिये प्रत्येक मनुष्य शरीर में, लगभग ५६ प्रतिशत प्रमाण में जलीय अंश रहना आवश्यक है ? प्रत्येक क्षण में मल, मूत्र, स्वेदादि के द्वारा या श्वासोच्छ्वास के द्वारा हमारे शरीर से जलीय अंश बाहर निकलता रहता है । उसकी पूर्ति शरीर में नित्य होती रहना आवश्यक है, अन्यथा शरीरान्तर्गत अणुक्रियादि सर्वव्यापार तथा मलोत्सर्जनादि क्रियायें जल के अभाव में ठीक प्रकार से नहीं हो सकतीं, और जीवन क्रम में भी बाधा पहुँचने की संभावना है ।

हम जानते हैं कि ज्वर की हालत में संतप्त रोगी को शीतलजल के पिलाने या वस्ती देने से कुछ देर के लिये ज्वरोष्मा कम हो जाती है तथा नाड़ी का वेग भी कम होजाता है, किंतु वही जल यदि अच्छी तरह पकाकर ठंडा किया हुआ न हो तो कुछ देर के बाद फिर ज्वर के वेग को बढ़ा देता है, और रोगी को ख़तरे में डाल देता है। जलको एक साथ अधिक परिमाण में पीने से यह असर शीघ्र दिखाई देता है, किंतु थोड़ा २ पीने से शीघ्र दिखाई नहीं देता । आमाशयान्तर्गत व्हेगस नामक वातनाड़ी पर इस शीतल जल का प्रथम उत्तेजक परिणाम होता है, जिसका असर वातकेन्द्र पर पहुँच कर नाड़ी की तीव्रता को कम कर देता है, तथा ज्वरोष्मा कुछ देर के लिये घट जाती है । किन्तु उष्णोदक के पीने से इस के विरुद्ध परिणाम होता है । लगभग ११० डिग्री से ११५ डिग्री फारेन हीट तक उबाला हुआ जल पीने से वैसा ही परिणाम होता है, जैसा अत्यन्त शीतल जल के पीने से होता है, केवल अन्तर इतना ही होता है कि सम्पूर्ण शरीर की साधारण ऊष्मा घटती नहीं, प्रत्युत कुछ और बढ़ जाती है, और वह अंत में धीरे २ शमन होजाती है । उष्ण जल के पीने से आमाशय को जैसी हितकर उत्तेजना प्राप्त होती है,और कोष्ठान्तर्गत

सर्वभाग जैसे साफ़ धोये जाते हैं, वैसी उत्तेजना या सफाई शीतलजल के पान से नहीं होती। कारण उष्ण जल शीतल जल की अपेक्षा अधिक प्रमाथि या शीघ्रता से चारों ओर फैलने वाला होने से उसका कार्य विशेष परिणामकारी होता है।

अग्निमांद्य या चिरस्थायी अजीर्ण के विकार में यदि रोगी भोजनोपरांत उष्ण जल का सेवन किया करे तो उसे आराम मालूम देता है, तथा कोष्ठवद्धता (कब्ज) भी बहुत कुछ कम हो जाती है; और शीतल जल के सेवन करने पर आमाशय में अस्वस्थता, बेचैनी मालूम होती है।

आढ्यवात (Gout) के विकार में, रात्रि को सोते समय उष्ण-जल एक ग्लास भर पी लेना हितकारक है। अम्लपित्त या मंदाग्नि की दशा में उष्ण जल के साथ नीबू का रस मिलाकर पिया जावे तो आभ्यंतरिकदाह शांत होकर, विकारों की उत्पत्ति (जंतुजन्य विषोत्पत्ति) नहीं होने पाती।

ऊषःकाल में (अति प्रात-तड़के के समय) उठने के साथ ही विधि पूर्वक उचित प्रमाण में जल पी लिया जावे तो महास्रोत का समस्त भाग साफ़ होजाता है, तथा शरीर के अन्दर सञ्चित निरुपयोगी, हानिकारक मलादि सहज ही में बाहर निकल जाते हैं।

जल के बाह्योपचार और उसके परिणाम।

उष्ण (९६ से ११० डिग्री तक) जल के स्नान से रक्ताभिसरण की क्रिया बढ़कर, त्वचा पर उसका यथेष्ट परिणाम होता है, नाड़ी और श्वासोच्छ्वास का वेग बढ़ जाता है, त्वचा लाल होकर पसीना निकलने लगता है। इस जल से स्नान ८ से १० मिनिट तक करना चाहिये।

सुखोष्ण (८३ से ९४ डिग्री तक) जल का स्नान शामक है। यह वातनाड़ियों को या रुधिराभिसरण को उत्तेजित नहीं करता। इस जल के द्वारा स्नान १० से ६० मिनिट तक करना चाहिये। यह वातजन्य रोगों के लिये अधिक हितकारी है।

शीतल जल (५० से ६० डिग्री तक) से स्नान समाधानकारक, बाह्योष्मा को कम करने वाला, शरीर की केशिकाओं (Capillaries) को संकुचित करने वाला और मध्यवर्ती वातकेन्द्र पर यथेष्ट परिणामकारी है। इस जल का स्नान ३ से १० मिनिट तक करना चाहिये।

उक्त परिणाम अधिक से अधिक या कम से कम समय तक स्नान करते रहने पर होता है । उदाहरणार्थ यदि शीतल जल से स्नान बहुत ही शीघ्र (३ मिनिट से भी कम समय में) किया जाय तो उसका बहुत ही कम असर होगा और यदि अधिक से अधिक समय तक किया जाय तो उसका असर शीघ्र तथा अधिक तीव्रता से दिखाई पड़ेगा, बाद में शारीरिक प्रतिक्रिया प्रारम्भ होजावेगी, ऊष्मा बढ़ेगी, त्वचा लाल वर्ण की होगी तथा कुछ प्रमाण में वात-नाड़ियों की क्रिया भी बढ़ जावेगी ।

जलचिकित्सा में स्नान का परिणाम संपूर्ण शरीर पर या उसके किसी विशिष्ट भाग पर, जल के शीत उष्णादि प्रभाव के कारण होता है, जैसे अन्य औषधियां अपने प्रभाव को करती हैं, उसी प्रकार जलचिकित्सा का भी कार्य है; किंतु विशेष अन्तर यह है, कि जिस प्रकार अन्यान्य औषधियों में भिन्न २ प्रभावज द्रव्य होते हैं, वैसे जल में प्रभावज द्रव्य न होने से रासायनिक सूक्ष्म परिणाम जल-चिकित्सा के द्वारा नहीं होने पाते; केवल स्थूल परिणाम होते हैं, जैसे-शरीरोष्मा कम या अधिक होना, रुधिराभिसरण में कुछ सुधार का होना, जन्तुजविष नष्ट होना, रक्तवहानाड़ियों में तथा वातवहस्रोतों में उत्तेजना आदि ।

हम जलचिकित्सा को आयुर्वेद का ही एक अङ्ग मानते हुये उसकी उपयुक्तता के कायल हैं । यदि आगे कभी अवकाश मिलेगा तो इस विषय को आयुर्वेदीय प्रमाणों सहित समझाने का प्रयत्न किया जावेगा।

हमारी यह बातें सुनकर उक्त जलचिकित्सक महोदय चुपचाप अपने स्थान की ओर चले गये ।

——*——

मधुमेह-DIABETES

डायाविटीज मेलटस ।

(ले० श्री० पं० श्री निवास रामरत्नजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य्य, वैद्य उन्नाव)

मधुमेह को अंग्रेज़ी में डायाविटीज यूनानी में जियावेतुस्त (शकरी) कहते हैं।

मधुर (शर्कराजातीय) पदार्थों का अत्यधिक सेवन करने से यकृत् में अधिक शर्करा जमा रखने की शक्ति नष्ट होकर वह शर्करा रक्त में पहुँच कर मधुर रस की वृद्धि (Giyco catmia) करती है, जिस से वसा (चर्बी) बनकर शरीर के विविध अंगों में जाया करती है।

ऐसी हालत में यदि शर्करा अधिक अन्दर पहुँचाई जाय तो वह वृक्कों द्वारा वहन होने लगती है । इसे अंग्रेज़ी में ग्लाईकोसूरिया कहते हैं।

साधारणतः स्वस्थावस्था में जब रक्त के अन्दर शर्करा अधिक नहीं होती तो मूत्र में भी शर्करा का क्षरण नहीं होता।

स्वस्थावस्था में 0·06% शर्करा होती है एवं वृक्कों (गुर्दों) में ·0·11% तक शर्करा को सहन करने की शक्ति है।

(ओजः पुनर्मधुर स्वभावम् तद्यदा रौक्ष्याद्वायोः—कषायत्वेनाभि संसृज्य मूत्राशयेऽभिवहति तदा मधुमेहं करोति चरकः,)

चरक नि० ५। २१२,

अतएव जब मूत्र में उक्त परिमाण से अधिक शर्करा प्राप्त होती है तब उसको मधुमेह कहते हैं।

जितनी शर्करा रक्त में होती है वह शरीर की सभी मांसपेशियों तथा अन्य सेलों (कलाग्रन्थि आदि) में पहुँच कर पच जाया करतीं हैं।

जब किसी कारण से इन पेशियों द्वारा शर्करा कम खर्च होती है तब भी मधुमेह की सम्भावना हो सकती है। अर्थात् जितनी शर्करा बनें सेलों द्वारा उतनी ही व्यय होजाय तब मधुमेह नहीं होता और

जब अधिक परिमाण में बनती है और कम खर्च होती है तब मधुमेह होता है।

यकृत् के भीतर शर्कराजन (Giycogen) में आवश्यकतानुसार शर्करा बनाकर रक्त में परिणत करने की शक्ति है। और यकृत् के इस कार्य की सहायता के लिए क्लोम और उपवृक्क आदि यन्त्र भी सहायक हैं।

यकृत् अधिक शर्करा न बना डाले इसकी देख देख क्लोम के अधीन है जब किसी क्लोम रोग के कारण क्लोम के कार्य में बाधा उपस्थित हो तब शर्करा अधिक बनती है। अधिक परिमाण में बनी हुई शर्करा मूत्र द्वारा वहन होकर मधुमेह को उत्पन्न करती है।

इसी प्रकार अन्य अंगों में जैसे उपवृक्क चूलिकाग्रन्थि दशमद्वार (Hyrophysis) आदि के प्रभाव यकृत् तथा मांस पेशियों पर पड़ते हैं। इन अंगों के रुग्ण होने से एवं इन के कार्य में व्यतिक्रम होने से भी शर्करा की उत्पत्ति में अन्तर होजाता है। और उसी का बाहर निकलना ही मधुमेह कहलाता है।

इतना ही नहीं आयुर्वेदाचार्य तो सर्व शरीर में मधुर रसोत्पत्ति होना मानते हैं। यथा—

मधुरं यच्च मेहेषु प्रायोमध्विव मेहति ।
सर्वेऽपि मधुमेहाख्याः माधुर्य्याच्चतनोरतः ॥ १ ॥
वाग्भट नि० १० । ५=१

प्रायः मधुमेह रोगी मधु के समान मीठा मूत्र करे एवं सर्व शरीर मीठा होजाता है इसी कारण सब प्रमेह भी मधुमेह हो जाते हैं अर्थात् प्रमेह रोग की अन्तिम अवस्था या परिणति ही मधुमेह कही जाती है।

सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाऽप्रतिकारिणः ।
मधुमेहत्वमायान्ति तदा साध्या भवन्ति हि ॥ २ ॥
सुश्रुत नि० ७ । २३५

भावार्थ स्पष्ट है। इससे भी यही तात्पर्य निकलता है कि मूत्र निर्माण करने वाले यन्त्र (वृक्क, गुरदों) में कोई अस्थिर परिवर्तन होने से मधुमेह होता है।

यूनानी हकीम इसीलिये मधुमेह को "ज़याबेतुस" नाम से वर्णन करते हैं जिसका अर्थ कोष में "बीच में से गुज़र जाना" होता है।

अर्थात् इस रोग में जो पानी पिया जाता है वह थोड़ी देर के बाद मूत्र मार्ग से बाहर निकल जाता है।

एवं रोगी बार २ पानी पीता है किन्तु गुरदे उसे न बचाकर वैसा ही बार २ निकाल देते हैं।

इसका तिब्बी अर्थ "कसरत उलबोल" यानी मूत्र का बार २ आना लिया जाता है।

यद्यपि पहले समय के यूनानी चिकित्सकों ने मूत्र में शर्करा के आने का उल्लेख नहीं किया है, किंतु अब वे ज़याबेतुसहार को ज़याबेतुसशकरी नामसे मानने लगे हैं।

आयुर्वेद के मत से लक्षण—कषायं मधुरपाण्डुं रूक्षं मेहति यो नरः। वातकोपाद्सान्ध्यं तं प्रतीयान्मधुमेहिनम्। ३॥

चरक नि० ५। २१३

अर्थात्-मधुमेह में मूत्र कुछ कषैलापन लिए हुए मीठा, किञ्चित् पाण्डु तथा श्वेत रंग का रूक्ष मूत्र होता है, ऐसे मूत्र वाले को मधुमेह रोग जानना चाहिये।

श्रीचरकाचार्य्यजी मधुमेह का इस प्रकार स्पष्ट वर्णन करते हैं यथा—

जटिलीभावकेशेषु माधुर्यमास्येकरपादयोः सुप्तता दाहं मुखतालुकण्ठशोषं पिपासामालस्यं मलञ्च काये छिद्रेषु उपदेहं परिदाहं सुप्ततां चांगेषु, "षट्पदपिपीलिकाभिश्च शरीरमूत्राभिसरणम्" मूत्रे च मूत्रदोषान्विशम्, शरीरगन्धं निद्रां तन्द्रां च सर्वकालमिति॥ चरकनिदान ५। २१३

अर्थात्—केशों में चिकनाहट, मुख में मीठापन हाथ पैरों में शिथिलता और दाह, मुख कण्ठ और तालु का सूखना, तृषा की अधिकता, आलस्य, शरीर में मैल की वृद्धि, रोम कूपों में मैल का जमना, प्रत्येक अङ्ग में सुप्तता (सुन्नी) का होना, मूत्र पर मक्खी, भौंरे चिउँटी और चिउँटों का आना, मूत्र कार्डुगंधयुक्त और गाढ़ा होना, निद्रा, तन्द्रा आदि का सदा बना रहना, यह मधुमेह के पूर्वरूप (लक्षण) हैं।

महर्षि सुश्रुत ने मधुमेह के रोगी की निर्बलता का कैसा अच्छा वर्णन किया है।

स चापि गमनात्स्थानं स्थानादासनमिच्छति ।
आसनाद् वृणुते शय्यां शयनात्स्वप्नमिच्छति ॥ ६ ॥
सुश्रुत नि० ७ । २३५

अर्थात्—मधुमेही चलने की अपेक्षा ठहरने की इच्छा करता है। ठहरने को अपेक्षा बैठने को और बैठ जाने के बाद लेटने को इच्छा एवं लेटने के पीछे सो जाने की इच्छा करता है।

हम प्रथम कह चुके हैं कि प्रमेह की चिकित्सा न कराने से मधुमेह होजाता है अतएव प्रमेह को उत्पन्न करने वाले कारण ही मधुमेह के कारण समझने चाहिए। इनके अतिरिक्त वाग्भटाचार्य ने मधुमेहोत्पादक दो विशिष्ट कारण माने हैं, यथा—

मधुमेही मधुसमं जायते स किलद्वधिकुधे धातुक्षयाद्वायी दोषावृतपथेऽथ वा। वाग्भट नि० १० । ५८१ ॥

अर्थात्—पहला कारण—धातुक्षय के कारण कुपित हुआ वायु मधुमेह उत्पन्न करता है (२) कुपित दोषों के कारण से रुका हुआ वायु मधुमेह उत्पन्न करता है।

चरकोक्तकारण ।

गुरुस्निग्धाम्ललवणं भजतामति मात्रतः ।
नवमन्नञ्च पानञ्च निद्रामास्यासुखानि च ।
त्यक्तव्यायामचिन्तानां संशोधनमकुर्वताम् ।
श्लेष्मापित्तं च मेदश्च मांसं चाति प्रवर्धते ।
तैरावृतः प्रसादो हि * गृहीत्वा जातिमारुतः ।
यदावस्ति नदा कुच्छो मधुमेहः प्रवर्त्तते ॥ ७ ॥
चरक सूत्र १७ । ६८

अर्थात्—नवान्नपान, (मद्यादि पान) अधिक निद्रा, मीठे पदार्थों का सेवन करना, परिश्रम न करना, बेफिक्र रहना, विरेचनादि न करना, इत्यादि कारणों से कफ, पित्त, मेदा, मांस आदि दूषित हो वस्तिगत प्रसादात्मक वायु विकृत होकर मधुमेह रोग उत्पन्न होता है।

परीक्षा—मधुमेह की पहचान के लिये उपर्युक्त लक्षण, पूर्वरूप आदि के अतिरिक्त मूत्र की परीक्षा करना विशेष आवश्यक है। मूत्र परीक्षा से मूत्र में क्षरण होने वाले पदार्थ जैसे वसा, मज्जा, ओज, शर्करा, ऐलब्यूमन, आदि पाये जाते हैं। इन्हीं कारणों से रोगी

* तैराहत्यगतिर्वायुरोज आदाय गच्छति ॥ ऐसा पाठान्तर है। लेखक ।

अत्यन्त दुर्बल और बलहीन होजाता है, तृषा (प्यास) बढ़ जाती है, पिया हुआ जल शीघ्र मूत्र मार्ग से वहन होजाता है। मूत्र का परिमाण २४ घंटे (दिन रात) में २० सेर तक पाया जाता है किन्तु यह बहुत बढ़ी हुई अवस्था का मान है। ओजादि के सरण होने से मूत्र में विशेष घनत्व और गदलापन होता है।

महर्षि चरक ने "वायुरोज आदाय गच्छति" ऐसा स्पष्ट लिखा है।

पाश्चात्य चिकित्सकों के मतानुसार-मधुमेही के मूत्र में घनत्व (S. P. G.) अधिक होता है, एवं व्याधि के बलाबल के अनुसार न्यूनाधिक शर्करा उपस्थित रहती है। १०-२० औंस एवं १-२ पौंड तक शर्करा की प्राप्ति भी अनुभव में आचुकी है। मूत्र का साधारण घनत्व १०-१५, से १०-२५ तक है विकृतावस्था में शर्करा की वृद्धि के कारण घनत्व का परिमाण १०-३० । १०-५० । १०-७८ । तक हो जाता है मूत्र में शर्करा के अतिरिक्त यूरिया, फासफेट्स और ऐलब्यूमन भी पायी जाती है।

मधुमेह के उपद्रव—वातजानामुदावर्त्तः कम्पाहृद्ग्रहलोलता । शूलमुन्निद्रता शोफः कासः श्वासश्च जायते ॥ ८ ॥

माधव नि० १६७ ।

इनके अतिरिक्त रुधिर के विकृत होने से व्रण, विद्रधि, पिडिका (कारबंकल) पक्षाघात आदि रोग भी उत्पन्न होजाया करते हैं। जिनका असाध्य उपद्रवों में पाठ आया है, यथा—

कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां "मधुमेहिणाम्" व्रणाः कृच्छ्रेण सिध्यन्ति ॥ इति माधवः १६६ ।

सब से भयंकर इसका उपद्रव हृद्ग्रह (सन्न्यास) है, जो कभी २ एक दम उत्पन्न होजाता है। इसे मधुमेह सन्न्यास कहते हैं, आंख के रोग भी रोगी को दुःख देते हैं।

असाध्य लक्षण।

गुल्मी च मधुमेही च राजयक्ष्मी च यो नरः ।
अचिकित्स्याभवन्त्येते बलमांसपरिक्षयात् ॥

अर्थात् जिसका बल और माँस क्षीण होगया है, ऐसा मधुमेही असाध्य होता है।

इसके अतिरिक्त-शर्करा, ओजादि धातुओं का क्षरण अधिक मात्रा में होना, मूत्र ज़्यादा आना, निद्रा नाश, क्षीणता आदि का अत्यधिक रूप में होना भी मधुमेह की असाध्याऽवस्था है।

चिकित्सा ।

मधुमेह रोग में जौ को कल्प रूप में पथ्य की तरह सेवन करने से अधिक लाभ होता है। चूने का पानी कपूर और इलायची का चूर्ण इन सबको मिलाकर सेवन करने से मधुमेह में विशेष लाभ होता है। गुड़मारबूटी (शर्करानाशिनी) जामुन की गुठली की मींग, पका गूलर का फल, विधारा, दही का तोड़ (पानी) शहद, अफीम, वत्सनाभविष, स्वर्णपत्र (सोने के वर्क) मोती, शिलाजीत, सहदेई (बैंजनी फूल की) लोनिया शाक, आमले का स्वरस, और नीम का क्वाथ ये विशेष लाभदायक हैं।

शास्त्रीय औषधियाँ।

शास्त्रीय औषधियों में न्यग्रोधादि चूर्ण, वसन्तकुसुमाकर, मालतीवसंत, कन्दर्पजीवन रस, तारकेश्वर रस, वंगेश्वर, बृहद्वंगेश्वर, सर्वेश्वर, वसन्ततिलक रस, इन्द्रवटी, शिलाजीत वटी, मेहमुद्गरवटी, चन्द्रप्रभावटी, धातुसंजीवनी वटी, सालसारादिलेह, धात्रीघृत, शाल्मलीघृत, दाडिमाद्यघृत, मेहमिहर तैल आदि औषधियाँ आवश्यकतानुसार रोगी के बलाबल को देखकर सेवन करानी चाहिए।

मधुमेह रोग की कुछ अनुभूत औषधियाँ।

(१) स्फाटिकं चूर्णमादाय नारिकेलोदरे क्षिपेत् ।
तत्फलं पंकमध्ये तु स्थापयेदेकरात्रकम् ॥
प्रातरानीय सजलं चूर्णं पेयं प्रयत्नतः ।
अनेन चिरकालीनो मेहो नश्यति निश्चितम् ॥ ६७६ ॥

अर्थात् शुद्ध स्फटिकमणि (बिल्लौर) की भस्म लेकर एक जल वाले नारियल में भरकर एक रात्रि तक जल के समीप कीचड़ में गाड़ दे, बाद को निकालकर उसमें से दो चावल की मात्रा से प्रातःकाल सेवन करने से बहुत दिनों का प्रमेह (मधुमेह) दूर होजाता है।

(२) इस रोग में सालसारादिगण की भावना दी हुई शिलाजीत सेवन करने से अवश्य लाभ होता है। चक्र० १८१,

(३) सालसारादिवर्गस्य क्वाथे तु घनतांगते ।
दन्तीलोध्रशिवाकान्तलौहताम्ररजः क्षिपेत् ।,
घनीभूतमदग्धञ्च प्राश्यमेहान्व्यपोहति ।
चक्र० १८१

अर्थात्—सालसारादिगण (सुश्रुत सूत्र ३८ अध्याय में साल-सारादि गण का पाठ है) के क्वाथ को बनाकर ¼ भाग शेष रहने पर छान लें और फिर उसे कढ़ाई में चूले पर चढ़ाकर पकावे जब गोली बनने लायक होजाय तब उसमें दन्ती, लोध, हरड़, लोहभस्म, और ताम्रभस्म खूब मिलाकर गोली बनाले । मात्रा अवस्थानुसार, इसको दूध से सेवन करने से विशेष लाभ होता है ।

(४) इसी भांति न्यग्रोधादिगण की भी गोली बनाकर सेवन कराने से लाभ होता है ।

(५) बैंगनी फूल की सहदेई का रस ऽ१ सेर घी ऽ१ सेर छोटी पीपल ६ माशे,और सुपारी ६ माशे सबका कल्क बनाकर यथाविधि से घृत तयार करलें मात्रा ६ माशे से १ तोला तक । इसको सुबह शाम सेवन करने से बहुत लाभ होता है ।

(६) नीम की अन्तर छाल ऽ२ सेर लेकर उसको बारीक कूटकर और उसमें छोटी पीपल १ तोला, गोखरू १ तोला, और सुपारी १ तोला, कूटकर मिलावें पश्चात् ऽ४ सेर पानी में मिलाकर उसका क्वाथ करें । जब ¼ भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छानलो, फिर उस छने हुये क्वाथ को कढ़ाई में डालकर आग में पकावे, जब वह पकते २ गोली बनाने की समान गाढ़ा होजाय तब उतार कर १–१ माशे की गोली बनाले । मात्रा १ से ४ गोली तक घी या पानी के साथ सेवन करने से दूसरे दर्जे तक का मधुमेह दूर होता है इसी प्रकार गूलर की अंतर छाल के द्वारा तयार किये हुये अवलेह से भी विशेष लाभ होता है ।

(७) गुड़मार बूटी का चूर्ण ३ से ६ माशे तक की मात्रा से जल के साथ सेवन करने से मूत्र के साथ शर्करा (खाँड) का आना कम हो जाता है, किन्तु वृद्धावस्था में इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं देखा जाता । कोई २ रोगी इसको सेवन करने से निर्बल भी हो जाते है ।

(८) जवाहरीतकी (जौ की बराबर वाली हरड़) पहले दिन एक दूसरे दिन दो इसी प्रकार क्रम वृद्धि से ४० दिन में ४० हरड़ तक ताज़े जल के साथ सेवन करने से और ४० दिन के बाद एक २ घटाते हुये ८० वें दिन १ हरड़ पर लाकर छोड़ दे। इस प्रकार छोटी हरड़ के प्रयोग से मधुमेह में विशेषलाभ होता है किन्तु हरड़ जितनी ही छोटी होगी, उतना ही अधिक लाभ होने की आशा है।

(९) जामुन की गुठली पाव भर और गुडमार ६ माशे दोनों को एकत्र कूटकर चौगुने जल में पकावे जब १ भाग जल शेष रह जाय तब उतार कर छान ले। फिर दुबारा उसका कढ़ाई में डालकर पकावे, जब गोली बनाने लायक गाढ़ा होजाय तो उतारकर ३ से ६ माशे तक की गोलियां बना लें मात्रा १ से २ गोली तक दिन में ३ से ४ बार तक सेवन करने से लाभ होता है।

(१०) इसमें शास्त्रोक्त "कंसहरीतकी" का प्रयोग भी अच्छा लाभ करता है।

(११) उत्तम और शुद्ध शिलाजीत का इस प्रकार उचित मात्रा से सेवन किया जाय कि जिससे वह ८४ तोले तक होजाय। इस प्रकार इतने परिमाण में शिलाजीत के सेवन से इसमें अवश्य लाभ होता है, किन्तु इसके सेवन के पहले शिलाजीत की शुद्धि किसी सद्वैद्य द्वारा करा लेनी चाहिये और उसकी ही सम्मति से सेवन करना चाहिये इससे भी लाभ हो सकता है किन्तु विज्ञापनी और बाजारू नकली शिलाजीत के सेवन से सिवा हानि के लाभ नहीं हो सकता।

पथ्य ।

घी, जौ, चना, शालिचावल, कुलथी, करेला, परवल, बादाम, पिस्ता, चिलगोजा, अखरोट, बथुआ आदि यह सब पथ्य हैं।

किन्तु रोगी के बलाबल और रोग की अवस्था को देखकर ही उपर्युक्त वस्तुओं का सेवन कराना चाहिए।

वीरसिंहावलोकनोक्त विधि के अनुसार दानादि करने से तथा देवाराधन पूजन पाठादि से भी इस रोग में विशेष लाभ होता है।

आमाशय और अन्ननालि के रोग।

गताङ्क से आगे।

ले०—श्री० डा० रामकृष्णजी वर्मा B. A B. S. C. L. M S आयुर्वेदाचार्य्य

वटिका।

१-शुंठ्यादिवटी—सौंठ, लौंग, कालीमिर्च, पीपल, नागकेशर, गोमार (यह एक प्रकार की घास है, इसका दाना मसूर के बराबर होता है। यूनानी में इसको गावकश और अरबीमें इसको सखरम कहते हैं। इसके खाने से गाय शीघ्र मर जाती है। किन्तु बकरी के खिलाने से कोई हानि नहीं होती) शुद्ध खाँड, सबको समान भाग लेकर कूट छान कर १-१ माशे की गोलियाँ बना लेवे। इनमें से २ गोलीं शहद के साथ सेवन करने से विरेचन होकर आमाशय रोग नष्ट होता है। अजीर्ण और शोथ में भी यह वटी अत्यन्त हितकारी है।

२-एलादि वटी—छोटी इलायची, दारचीनी, प्रत्येक ५ माशे समुद्र लवण, सेंधानमक, जवाखार, धनियाँ, पीपलामूल, पीपल, कालाजीरा, सफेद जीरा, सोंठ, पत्रज, नागकेशर, तालीसपत्र, प्रत्येक १०-१० माशे, बड़ाचक ३ तो०, अनारदाना १३ तो० सबको कूट छानकर नीबू के रस में खरल कर जंगली बेर के समान गोली बनाले। इनमें से १ या २ गोली नित्यप्रति सेवन करने से क्षुधा की वृद्धि होती है और आमाशयिक रोग नष्ट होते हैं।

३-टङ्कणादि वटी—सुहागा ७ माशे, अजवायन खुरासानी १½ माशे, कालीमिर्च ३½ तो०, एलुआ ४ तो० ८ माशे सबको कूट छान कर घीकुआर के रस में खरल कर चने की बराबर गोलियें बना लेवे। मात्रा २ से ४ गोली तक नित्य सेवन करने से आमाशयिक पीड़ा नष्ट होती है, और आमाशय में संचित दूषित द्रव्य दूर होजाते हैं।

४-दूसरी शुंठ्यादि वटी—बिना रेशे की सफेद सौंठ १ सेर लेकर उसको खूब बारीक पीसकर कपड़छन करे और पानी में एक

रात और एक दिन भिगोये रक्खे। फिर उसमें से पानी निकाल कर नया पानी बदल देवे। इस प्रकार ८ बार पानी बदले। तब उसका रंग सफेद चूने की तरह होजायगा। फिर उसमें सेंधानमक का चूर्ण १० तोले मिला देवे और नीबू का रस इतना डाले कि दो अँगुल ऊँचा रहे। जब वह सूख जाय तब इसमें ३ तोले नमक और नीबू का रस डाल कर सुखावे। इस प्रकार दो बार नीबू का रस डाले और सुखा देवे। फिर चने बराबर गोली बनाकर २ गोली से ६ गोली तक सेवन करे तो आमाशय के रोग नष्ट होकर क्षुधा की वृद्धि होती है।

५—गंधकादि वटी—शुद्ध गंधक, कालीमिर्च, प्रत्येक १७½-१७½ माशे, नमक २ माशे सबको कूट छान कर नीबू के रस में खरल करके जंगली बेर के समान गोलियाँ बना लेवें। इन गोलियों के सेवन करने से क्षुधा उत्पन्न होती है।

६—यवक्षारादि वटी—जवाखार, शुद्ध सुहागा प्रत्येक १०½-१०½ माशे, सेंधानमक, साम्भर नमक, सौंचर नमक-प्रत्येक १-१ तोला, ८-८ माशे, सौंठ, मिर्च, पीपल प्रत्येक ३-३ तोले सबको बारीक कूट छान कर जंबीरी नीबू के रस में खरल करके जंगली बेर के बराबर गोलियें बना लेवे। मात्रा १ से ४ गोली तक सेवन करने से आमाशयजनित रोग दूर होकर क्षुधा की वृद्धि होती है। इन गोलियों को भोजन के बाद खाना चाहिये।

७—सौंठ, छोटी हरड़, निसोत, आमला, काली मिर्च, काला-नमक, सबको कूट पीसकर इमली के रस में खरल करके जङ्गली बेर के बराबर गोलियां बना लेवे। १ से ५ गोली तक सेवन करने से भोजन का परिपाक अच्छे प्रकार होता है, वायु शान्त होती है, आमाशयजनित तथा कोष्ठबद्धता आदि रोग नष्ट होते हैं। ये वटी शीत प्रकृति वाले रोगी को सेवन करानी चाहियें। यदि इसमें सब के बराबर भाग अनारदाना मिला दिया जाय तो आमाशय के लिये अत्युत्तम औषधि बन जाती है।

तरल औषधियाँ।

१—हरड़, बहेड़ा, आमला, कालीमिर्च, सौंठ, नागरमोथा, चित्रक, बालछड़ प्रत्येक ३-३ तोले, सोया और गंदना के बीज प्रत्येक

१४-१४ माशे, मण्डूरभस्म १¼ पाव सबको कूट छानकर साफ झाग उतार लेवे। फिर शहद और गाय के घी में डालकर खरल करे। जब अवलेह के समान होजाय-तब किसी उत्तम पात्र में भरकर रख देवे और ६ मास बाद काम में लावे। इसमें शहद २ भाग और घी एक भाग होना चाहिये। इस औषधि के बना लेने के लिये शहद और घी दोनों ७० तोले होने चाहियें। मात्रा ६ माशे। यदि इसमें ६ माशे कस्तूरी भी डाल दी जाय-तो दवा अधिक उपयोगी होजाती है। इसके सेवन करने से आमाशयिक ग्लान, वायु के विकार और अर्शरोग दूर होते हैं।

२—सोंठ, काली मिरच प्रत्येक १।।।-१।।। तो० छोटी इलायची, तज प्रत्येक २ तोले ४ माशे, सकमूनियाँ ३¼ तोले, शुद्ध खाँड ११ तोले ८ माशे, सब को कूट पीसकर बारीक कपड़छन चूर्ण तैयार करे। फिर इसमें १ पाव शहद मिलाकर एक उत्तम बर्तन में भरकर रख देवे। एक मास के बाद काम में लावे। मात्रा ६ माशे तक, सेवन करनी चाहिये।

३—जायफल, जावित्री, लौंग, दारचीनी, बालछड़, नागरमोथा, आमला, इलायची के दाने सबको समान भाग लेकर कूट छान कर दुगने शहद में मिलाकर खरल करे। मात्रा ७ माशे की। इसके सेवन करने से आमाशयस्थ शक्ति की वृद्धि होती है। भोजन का परिपाक ठीक होता है और शारीरिक बल की वृद्धि होती है। आमाशयजनित शोथ दूर होता है।

४—सोंठ ५ तोले १० माशे, बबूल का गोंद, सफेद इलायची के दाने प्रत्येक ३।।-३।। माशे, जावित्री ११ तोले ८ माशे, सबसे दुगनी मिश्री और शहद डाल कर पतला कर लेवे। ३ माशे से ६ माशे तक की मात्रा से सेवन करने से आमाशय की क्षीणता, अंत्र रोग और और कफ आदि दोष नष्ट होते हैं।

५—बिहीका रस १८ तोले ६ माशे, शुद्ध सिरका, कागज़ी नींबू का रस, गुलाब जल- प्रत्येक ११ तो० ३ माशे, सबको लेकर एकत्र मिलावे और उसमें १४ छटांक मिश्री डाल कर पाक करे जब पक कर आधा गाढ़ा होजाय- तब उतार कर छान ले और बोतल में भर रख छोड़े। मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक सेवन करने से आमाशय-जनित रोग दूर होते हैं।

६—मीठे अनार का रस, खट्टे अनार का रस, सेब का रस, बिही का रस, अंगूर का रस, आमले का रस, फालसे का रस और इमली का रस प्रत्येक २-२ तोले चार २ माशे, अंगूर का सिरका १८ तोले ८ माशे, शहद और मिश्री प्रत्येक १-१ सेर सब को मिलाकर पाक करे और उसमें दारचीनी, कस्तूरी प्रत्येक ३॥-३॥ माशे, वंशलोचन १४ माशे,—इन सबका चूर्णकर मिला देवे। फिर इसको उतारकर शीशियों में भरकर २ मास रखा रहने देवे। फिर इसके बाद व्यवहार में लावे। इसके सेवन करने से आमाशयजनित रोग दूर होकर क्षुधा की वृद्धि होती है। हृदय और यकृत् की शक्ति बढ़ती है तथा वमन बन्द होजाती है।

७—५ तोले देशी अजवायन को लेकर बारीक चूर्ण करके १ सेर सिरके में डाल देवे फिर उसमें ५ तोले नमक और १० तोले सोंठ का चूर्ण डाले और एक मास तक एक बर्तन में रखकर मुँह बंद करके रखा रहने देवे। फिर ३ माशे से ६ माशे तक सेवन करने से आमाशयजनित रोग दूर होकर क्षुधा की वृद्धि होती है।

८—सेंधानमक ५ तो०, अजवायन २ तो०, लाल मिरच ४ तो०, सबको पीसकर उसमें १० तोले शुद्ध खाँड मिलावे। फिर उसको २० तोले नीबू के रस के साथ खरल करे। इसे १ माशे से ३ माशे की मात्रा से सेवन करने से आमाशय के सम्पूर्ण रोग तथा विशूचिका, वमन आदि रोग दूर होकर क्षुधा की वृद्धि होती है।

९—सेब का रस, बिही का रस, खट्टे अनार का रस, मीठे अनार का रस, प्रत्येक समान भाग और सब से दूनी मिश्री मिला कर शरबत तैयार करे इसके पीने से आमाशय का शोथ और दाह दूर होती है।

१०—चूक का शरबत बनाकर पीने से पित्तज विकार और आमाशय के रोग नष्ट होते हैं, और वमन दूर होती है। इसी प्रकार नीबू का शरबत शक्तिवर्द्धक और क्षुधा की वृद्धि करता है, तथा वमन को रोकता है। अनार का शरबत अन्ननाली के रोगों को नष्ट करता है। इमली का शरबत पित्तनाशक, शक्तिवर्द्धक और वमन रोधक है।

उपरोक्त शर्बतों के बनाने की विधि इस प्रकार है, कि जिसका शरबत बनाना हो, उसका रस लेकर उसमें दूनी मिश्री या शुद्ध खाँड

मिला कर पकावे फिर छान कर काँच की शीशी में भर लेवे। १ मास तक रखा रहने के बाद व्यवहार में लावे।

११—मकोय का स्वरस, कासनी का स्वरस, प्रत्येक २-२ भाग, हरी सौंफ का रस, अजवायन का रस, प्रत्येक १-१ भाग, अमलतास ¼ भाग, केशर ¼ भाग सबको लेकर उसमें ६ भाग मिश्री मिलाकर शरबत तैयार करे। ११ तोले ८ माशे की मात्रा से सेवन करे तो आमाशयिक शोथ नष्ट होता है।

१२—केशर, एलुवा प्रत्येक १ माशा ३ रत्ती, लेकर ३ तोले अलसी और ३ तोले मेथी के लुआब और ५ तोले ८ माशे अजीर के शरबत में डाल कर खरल करके गरम करे। इसको सेवन करने से आमाशय का शोथ पक जाता है। यह एक मात्रा है।

सेंक।

१—अजवायन, जीरा, सौंफ-प्रत्येक ७-७ माशे, गुलाब के फूल २२½ माशे, सबको कूट छानकर एक टाट की थैली में करके गरम करे और आमाशय पर रखकर सेकने से वातजनित शूल नष्ट होता है।

२—पिसा हुआ नमक, गेहूँ की भूसी प्रत्येक ३-३ तो० अजवायन १७½ माशे सबको कूट छान कर एक कपड़े में बाँध कर पोटली बना लेवे। फिर अग्नि पर तवा रख कर जब वह गरम होजाय तब पोटली को रखे। इस पोटली से बायें सिरे पर सेक देवे तो दर्द दूर होता है।

३—रेह (जिससे धोबी कपड़े धोते हैं) सोंठ, अजवायन, काला नमक, काला जीरा, सूखा पोदीना सबको समान भाग लेकर पोटली बनाकर सेक करे तो वायु के दोष से उत्पन्न हुआ शूल वरम आदि दूर होते हैं।

वमनकारक द्रव्य।

आमाशय को शुद्ध करने के लिये वमन कराना ही एक मात्र उत्तम उपाय है। जब तक रोगी में बल रहता है, तब तक तो औषधि पिलाकर वमन करायी जाती है। और जब शक्ति नहीं रहती तब स्टमकपम्प आदि कृत्रिम उपायों से काम लिया जाता है। चाहे किसी भी उपाय से वमन करायी जाय। निम्नलिखित औषधियों का व्यवहार उत्तम है।

१—७½ तोले सोये को लेकर ७ छटांक पानी में पकावे। जब पक कर आधा पानी शेष रहजाय, तब ३½ माशे मैनफल का चूर्ण और थोड़ा नमक मिलाकर शहद के साथ चाटे और ऊपर से उक्त क्वाथ पिलावे, और गरम पानी इतना पान करे कि कण्ठ तक दवा आजावे। जिससे अन्ननालि और आमाशय शुद्ध होजायँ। इस प्रकार वमन कराने से रोगी को कुछ कष्ट नहीं होता।

२-३ तोले सोये की लकड़ियों को लेकर २१ छटांक पानी में डाल कर पकावे। जब पककर १४ छटांक पानी शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे। फिर उसमें थोड़ा नमक और शहद मिलाकर रोगी को सेवन करावे और ऊपर से खूब गरम पानी पिलावे। इस प्रकार करने से रोगी को अच्छु वमन होती है। और वे रोग जिनमें रोगी को सम्पूर्ण पदार्थ घूमते फिरते जान पड़ें, और वह ऐसी दशामें बैठा और खड़ा नहीं रह सके। इसके सेवनसे ऐसे आमाशयजनित रोग भी दूर होते हैं।

३—प्रथम ककड़ी के पत्तों का कूटकर उसका रस निकाले। फिर उसमें शुद्ध खाँड और सिरका मिलाकर खूब पान करे तो इससे वमन होकर पित्तजनित रोग शान्त होते हैं, यह प्रयोग पैत्तिक प्रकृति वालों को विशेष हितकर है।

४—जौ का पानी आठ तोले ६ माशे, बथुए के शाक का रस ५ तोले १० माशे, ककड़ी की जड़ का रस, सिरका प्रत्येक ३-३ तोले सबको मिलाकर सेवन करने से वमन द्वारा पित्त निकलकर आमाशय शुद्ध होता है।

५—राई सफेद ३½ माशे, जवाखार १½ माशे, कुन्दरू (यह एक छोटा वृक्ष है, इससे छींकें बहुत आती हैं, यह श्यामदेश में पैदा होता है, वहां के निवासी इसके द्वारा रेशमी कपड़ा धोते हैं।) और नमक प्रत्येक ७-७ रत्ती सबको कूट छानकर और शहद में मिलाकर १½ पाव सोये के क्वाथ के साथ ११ तोले आठ माशे सिरका मिलाकर सेवन करने से वमन के द्वारा आमाशय का कफ निकल जाता है।

६—मूली के बीज, खरबूजे के बीज, सोये के बीज, खरबूजे की जड़ और मुलेठी प्रत्येक १३½ माशे, इन सब का यथाविधि क्वाथ बनाकर सेवन करे और ऊपर से गरम जल पीकर वमन करे तो मल निकल कर आमाशय शुद्ध होता है।

७—मूली के हरे पत्तों का रस, मूली की जड़ का रस, नमक

और सोये का रस सबको मिलाकर पीने से वमन होकर साधारणतः आमाशय शुद्ध होजाता है ।

आवश्यक सूचना ।

जिन लोगों की गरदन पतली, वक्षस्थल संकुचित और शरीर दुर्बल हो, उनको वमन नहीं करानी चाहिये । मोटे और हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों के यदि सिर या गले में किसी प्रकार का मल पाया जाय तो उनको वमन कराना हितकर है । यकृत् रोग में वमन अत्यन्त हानिकर है । इससे नेत्रों की अधिक हानि होती है । रोगी की शक्ति क्षीण और उसका शरीर दुर्बल होजाता है । जिन रोगियों को वमन करायी जावे उनके जबतक मल अच्छे प्रकार न निकल जाये तबतक नहीं रोकनी चाहिये । वमन के लिये गरमी का समय अति उत्तम है । यदि वमन होते समय रोगी की आँखों में कपड़े की पट्टी बाँध दी जाय तो बड़ा अच्छा है । जबतक वमन होती रहे बराबर पट्टी बँधी रहनी चाहिये । ऐसा न करने से कोई २ रोगी अंधा तक होजाता है । यदि होसके तो बारीक सुरमे को एक थैली में भरकर या कपड़े की गद्दी में रखकर रोगी के नेत्रों पर बाँध देवे । वमन होते समय रोगी के पेट को दबाते रहना चाहिये । गरम प्रकृति वाले रोगी को वमन के बाद सिरके मिले जल से कुरला करना चाहिये । और गुलाबजल मिश्रित जल से हाथ मुँह साफ करके यथोचित पौष्टिक पदार्थ सेवन करना चाहिये । शीत प्रकृति वाले को रूक्ष पदार्थों का सेवन उपयोगी है । गरम प्रकृति वाले रोगी को वमन करने से पहिले मृदु पदार्थों का सेवन करके फिर वमनकारक औषधि सेवन करनी चाहिये । इसी प्रकार क्षीण शक्ति वाले पुरुषों को भी करना चाहिये । किन्तु जिसकी शीत प्रकृति हो, और मल अधिक जान पड़े ऐसे रोगी को बिना कुछ खाये हुए ही वमनकारक औषधि सेवन करानी चाहिये ।

जिस समय सूर्य्य कर्कराशि पर हो, उस समय नियमानुसार यदि वमन कराई जाय तो मनुष्य को एक वर्ष तक कोई रोग नहीं होता । क्योंकि उस समय आमाशय दोषों से पूर्ण होता है इसलिये उसको स्वच्छ करना परमावश्यक है । वमन शरीर शोधन पञ्च कर्मों में एक उपयोगी क्रिया है ।

क्रमशः—

———

उपयोगी उपाय ।

ले०—श्रीयुत दीनानाथजी 'अशङ्क'

(१)

सोते अथवा जागते मुख से मत लो श्वास ।
इस अयोग्य अभ्यास से ही आता है काश ॥

(२)

उस मैथुन को ही उचित कहते हैं निष्णात ।
जिसके पीछे देह में नवस्फूर्ति हो ज्ञात ॥

(३)

मन प्रसन्न रखिये तथा आत्मा कल्मष-हीन ।
कभी न होगी आपके मुख की ज्योति मलीन ॥

(४)

प्रातः छींटे नीर के देते हैं जो लोग ।
उनके लोचन सर्वदा रहते हैं नीरोग ॥

(५)

कभी न करना चाहिये खड़े २ जल-पान ।
इससे अण्ड-विकार का जमता है पोसान ॥

(६)

मलकर तेल शरीर में धूप यथोचित खायँ ।
पीछे नियत-स्थान पर आप नहाने जायँ ॥

(७)

विग्रह जैसे चित्त को करता है सविकार ।
वह शरीर को भी ग्रथा करता उसी प्रकार ॥

मिरचियाकन्द ।

CORALLOCARPUS EPIGYA कारेलो कार्पस् एपिजिया

ले० वैद्यराज पं० हीरामणी जी जंगले वनस्पतिसंशोधक,

यह लता जाति की कंद युक्त वनस्पति चतुर्मास में मुम्बई रत्नागिरी बेलगांव महाराष्ट्र-खानदेश, बरार, मालवा आदि प्रान्तों में खेतों की बाड़ों में तथा गूफाकार पेड़ों या झाड़ी को लिपटी हुई दिखाई देती है। इसके पत्तों का आकार साधारणतः महाजाल-बड़ी इन्द्रायण के पत्तों के समान कटीले तथा खरदरे होते हैं। पत्र लता पर ३ से ४ इञ्च तक के फासले पर एक बाजू को लगे हुये रहते हैं। इस लता तथा पत्तों का रंग हरा और कुछ आस्मानी दिखाई देता है। पत्ते और डंठल आधे से एक इञ्च तक लम्बे होते हैं। और पत्र डंठल के बुंथे के निकट आषाढ़ मास में लता को लगे हुये फल तथा कोमल छोटे २ गोलाकार काली मिरच की समान फल लगते हैं। फल का अग्रभाग नोकदार होता है। यह फल आश्विन कार्तिक मास में पक जाते हैं। रंग नारंगी की समान लाल दिखाई देता है। लम्बाई ½ इञ्च होती है। इस मिरची के बुंथे के पास एक बारीक स्प्रिंग जैसा धागा होता है। पके हुये मिरचियाकंद के फलों को गाय भैंस चराने वाले ग्वालिये लोग बड़े आनन्द से खाते हैं। किंतु बीजों को नहीं खाते केवल फलों के भीतर का रस चूँस लेते हैं। यह खाने में अत्यन्त मधुर मालूम होता है। हरएक फल के भीतर अलसी जैसे-दो तीन चपटे बीज निकलते हैं। इन बीजों का रङ्ग कुछ काला और कुछ हरितसा होता है। इस लता के नीचे भूमि में ४ से ६ इञ्च तक का एक प्रकार का कन्द होता है। वह आकार में ककोड़े के कंद की समान होता है। और उसके ऊपर का भाग भूरा सा दीख पड़ता है। और समस्त कंद के ऊपर छोटे २ गोल २ से बारीक २ दाने हैं। कंद वजन में प्रायः एक छटांक से आध सेर तक का होता है। स्वाद में कटु अम्ल तिक्त होता है।

गुणधर्म :— यह अल्प मात्रा में कटु पौष्टिक अनुलोमक और रसायन है। यदि अधिक मात्रा में यह दिया जाय तो मुख से लेकर

गुदनाली तक सम्पूर्ण महास्रोतों में घोर दाह होने लगती है। और पानी जैसे पतले दस्त होने लगते हैं। तथा चक्कर आने लगते हैं। आमाशय तथा बड़ी आंतों में व्रण शोथ पैदा होजाता है। इनसे जान पड़ता है कि मिरचियाकंद ज़मालगोटे जैसा तीव्र विरेचन है। इसकी मात्रा आधी रत्ती से २ रत्ती तक है। इसको दिन में दो तीन बार देना चाहिये। इसे सदैव चूर्ण रूप में सुगन्धित द्रव्यों के साथ मिलाकर देना चाहिये।

उपयोग—विरेचन के लिये इसका उपयोग कभी भूल से भी नहीं करना चाहिये, पुराना आमवात फिरङ्गरोग और प्रमेहजनित सन्धि-शोथ आदि रोगों के लिये यह अत्युत्तम औषधि है। इससे रोगी के शरीर में शक्ति उत्पन्न होकर रक्तशुद्धि होती है। उपर्युक्त रोगों में यह अल्पमात्रा में देना चाहिये। और मिरचियाकंद सफेद जीरा, प्याज तथा अंडी का तेल, इनका लेप सन्धिस्थान पर करना चाहिये।

(१) प्लेग की ग्रन्थि पर—यह बड़ा अच्छा गुण करता है। इसका ताजा या सूका कन्द दिन में दो तीन बार पीसकर लेप करने से प्लेग की ग्रन्थि फूट जाती है।

(नोट-स्त्रियों की प्लेग की ग्रन्थि पर इसको नरमूत्र में घिसकर लेप करना चाहिये। और मनुष्य की प्लेगग्रन्थि पर स्त्रियों के मूत्र में पीसकर लेप करना चाहिये।)

(२) सन्निपातिक कर्णशोथ तथा स्तनविद्रधी या अन्य किसी भी संधि शोथ पर इसको गोमूत्र में पीसकर लेप करना चाहिये।

(३) सर्पदंश पर—इसको २ या ३ माशे ठण्डे पानी में पीसकर पिलाने से सर्प का विष कम होजाता है।

मर्यादवल्ली।

IPOMIOEA BILOBA (आइपोमिआ बाइलोबा)

लेखक वैद्यरत्न हीरामणीजी मझेरे वनस्पति संशोधक,

नाम—(सं०) मर्यादावल्ली, सागरा, युग्मपत्रा, (हिं०) मर्जादवेल, दोपातीलता, (बं०) छागलखुरीलता, (गु०) मारवेल (कन्न०) रागरञ्जी (मरा०) मर्यादवेल।

विवरण—यह लता जाति की वनस्पति, मुंबई, कच्छ, रत्नागिरी आदि प्रदेशों में जलाशयों के किनारे रेतीली भूमि में सदैव ही खूब लम्बी, चौड़ी फैली हुई देखने में आती है। कच्छ और काठियावाड़ में समुद्र की भरती को "वीर", और ओट को "आर", कहते हैं। इस लिये 'आर' शब्दसे इस देशमें तमाम लोग इस लता को "आरवेल" नाम से पुकारते हैं। अँग्रेज़ी में इसको गोट्सफुटक्रिपरअरबसेएडबीएडकीपर कहते हैं। जिसका अर्थ रेतीली भूमि को बन्धन करने वाली लता ऐसा होता है। जैसे २ यह लता भूमि पर फैलती है वैसे २ इसकी शाखायें बढ़कर उनके नीचे जड़ें भी जगह २ ज़मीन में अधिक फैलती जाती हैं। इसका डण्ठल काटकर देखने से सछिद्र दीख पड़ता है। इसकी जड़ भी छिद्र वाली होती है। पत्तों का आकार कचनार या अश्मंतक के पत्तों जैसा होता है। पत्र पर अनेक बारीक २ रेखायें होती हैं। पत्ते डण्ठल या शाखायें तोड़ने पर उनमें से सफेद दूध निकलता है। पत्र डंठल का अग्रभाग और बंधे का भाग बेंजनी रङ्ग जैसा दीखता है। इसके डण्ठल की लम्बाई ३ से ५ इञ्च तक होती है। और अधिक शाखायें हरे रङ्ग की होती हैं। इसके फूल पुष्प का रङ्ग गुलाबी और आकार में फोनो के कर्ण की समान होता है।

स्वर्गीय डॉक्टर वामन गणेश देसाई अपने "औषधिसंग्रह" नामक पुस्तक में लिखते हैं कि इस लता के मूल में से पीला दूध निकलता है। पर वास्तव में पीला दूध नहीं निकलता किन्तु श्वेत दूध निकलता है यह मेरा कहना है। कहते हैं कि निघण्टुओं में "वृद्धदारुक' जो बूँटी है वह इसका मूल है परन्तु यह कहना बिलकुल गलत है। "वृद्धदारु" और मर्यादवल्ली यह दोनों बूँटी भिन्न २ हैं।

गुणा :—मर्यादवल्लिकाशीताग्राहिणीसारका गुरुः ।
पाककाले चोष्णा स्याद्वातलागर्भकारिणी ॥
विषूचिकाञ्च शूलञ्च वान्तिं चामं च नाशयेत् ॥ १ ॥
॥ नि० र० ॥

अर्थ—यह शीतल पाककाल में उष्णवीर्य होने से मल का अवरोध करती। सारक पचने में भारी किंचित् वातकारक और गर्भ संस्थापक है। विषूचिका, शूल, वांती, आमदोष इनको नष्ट करती है।

छिलके को दाद खाज पर लगाने से जल्दी आराम होने की संभावना है। मुसलमानी हदीस में लिखा है कि जिस जगह नारंगी के वृक्ष होते हैं वहां की हवा शुद्ध रहती है और उसके पास पिशाच बाधा नहीं होती।

नारङ्गी का अचार—नारङ्गी की फांकें जैसे नीबू को चौकोना काटते हैं, तीन सेर। सेंधानमक-तीन पाव, काली मिरच डेढ़ पाव, इन चीज़ों को एक चीनी के बर्तन में १ माह रखने से अच्छा अचार बनता है। यह अचार बहुत लाभदायक होता है। इस अचार को खाने से अजीर्ण, दाह या पेशाब में जलन का होना नष्ट होता है। ऐसे रोगी को भारी द्रव्यों के भोजन के साथ नारङ्गी का अचार बहुत लाभदायक होता है। यह ज्वर और अजीर्ण में लगने वाली तृषा को भी बहुत लाभ पहुँचाता है।

नारङ्गी के छिलके का चूर्ण मीठे तेल में भिगा देवे और आध घण्टा धूप में रखकर निचोड़ लेवे। यह तेल गर्म होता है, वात और सिरदर्द को आराम पहुँचाता है। इसे वादी सूजन पर मालिश करने से लाभ होता है। इस तरह नारङ्गी के वक्कल, पत्ते और फूल का भी तेल निकलता है ये तीनों तेल गर्म हैं। उत्तम नारङ्गी बड़े दल की, जिसका छिलका पतला होता है, बहुत गुणदायक है। नारङ्गी के छिलके खाने से पेट के कृमि निकल जाते हैं। इसके छिलके को धूप में सुखाकर शहद और मिश्री के साथ चाटने से गले के अन्दर की सूजन साफ होजाती है। जुलाब लेने के प्रथम नारङ्गी का रस पी लिया जावे तो अच्छा जुलाब होता है यही दस्त बन्द करने को भी फायदा पहुँचाता है।

रुधिर विकृति, में भी नारङ्गी का रस बहुत फायदा करता है तथा रक्तपित्तादि रोग में भी लाभदायक है। यदि नाक में से खून जाता हो तो नारङ्गी का रस नाक में निचोड़ने से शीघ्र लाभ होता है। नारङ्गी के छिलके का चूर्ण और रेवतचीनी का चूर्ण तथा मग्नेशिया तीनों को बराबर २ मिलाकर फांकनेसे बदहज़मी में लाभ होता है। पुराने नासूर पर नारङ्गी का गूदा बांधने से बहुत शीघ्र भर जाता है। नारङ्गी का एसेंस डालकर तेल बनाने से बहुत खुशबूदार तेल बनता है, यह दिमाग को बहुत तरावट देता है।

कपड़े में सन्तरा रख दिया जावे तो कीड़े नहीं लगते। ज़हर खाने वाले को नारङ्गी का रस पिलाने से उत्तम गुण करता है।

इसका रस शराब के साथ देने से आंतों पर असर करके विष को तुरन्त खींच लेता है। सन्तरे की छाल सुगन्धित होने के कारण चीनी लोग अपने घरों में काटकर रख देते हैं, जिससे कि हवा स्वच्छ रहे। इससे विषजन्य कृमि तथा सांघातिक रोगों के कृमि असर नहीं करने पाते और वायु स्वच्छ रहती है। जब कोई बीमारी बस्ती में फैली हो घर में दो चार जगह जहां से कि हवा अन्दर आती है, नारङ्गी को काटकर रख देनेसे उस घर के अन्दर बीमारी का फैलाव नहीं होता। खासकर प्लेग, इन्फ्लुएञ्जा, विशूचिका इन तीन रोगों के समय इसका व्यवहार करना चाहिये, क्योंकि यह रोग जल्दी फैलते हैं। यदि फल न मिले तो फल के छिलके का काढ़ा बनाकर उसमें कपड़े भिगोकर पहनने से भी विशेष लाभ होता है। चरक संहिता में मीठे नीबू को कफ, कृमिहर, पाचक रोचक और वात को नाश करने वाला कहा है। नारङ्गी के बीजों की मींग वैद्य लोग पागलपन और रुधिर शुद्ध करने तथा पित्त विकार में प्रयोग करते हैं।

नारङ्गी के फूल में से निकलने वाले इत्रको पश्चिमी विद्वानवेत्ता ओलियम निरोली कहते हैं, यह इत्र गुणकारी होने से बहुत कीमत पर बिकता है। ज० प्र०

अनुभूत-प्रयोग।

(१) स्त्री का मासिकधर्म या ऋतुस्राव ठीक समय पर न होता हो या साफ़ न होता हो, तथा पेट में वेदना होती हो तो उत्तम द्राक्षारिष्ट आधा तोला लेकर उसमें उतना ही जल मिला लेवे, फिर इसमें १ मासे हुरमल* का चूर्ण मिलाकर पिलावे। इस प्रकार मासिकधर्म होने के पहले लगभग ७ दिन तक नियमितरूप से पिलाने से आर्तव साफ़ होने लगता है, किसी तरह की वेदना भी

* हुरमल यह यूनानी नाम है, बाजार में किञ्चित् नीलवर्ण के, मेथी के बीजों के समान हुरमल नाम के बीज मिलते हैं। इन बीजों को हथेली पर मसलकर सूंघने से गांजे की समान तीव्र गंध आती है। लेखक।

हिन्दी भाषा में इन बीजों को इस्पन्द-हस्पन्द या अस्पन्द कहते हैं। सम्पादक।

नहीं होती। इसका सेवन दिनके दोनों समय १-मास तक बराबर करते रहने से मूत्रसम्बन्धी सब शिकायतें दूर होजाती हैं।

(२) उपदंश पर—लौंग १ तोला, काली मिरच १ तोला, वाय-विडंग १ तो०, अजवायन ४ तो०, शुद्ध पारा १ तो०, अकरकरा १तो०, कवाबचीनी १ तो०, गुड़ ४ तो० और शुद्ध शिलाजीत ४ तो० लेवे (प्रथम शिलाजीत को यथाविधि शुद्ध करके चूर्ण करे और उसमें पारे को मिलाकर खरल करे, फिर गुड़ मिलाकर घोटे। पश्चात् शेष द्रव्यों का अहीन किया हुआ चूर्ण मिलाकर खरल करे, जब सब एक जीव होजायँ, तब मूंग जैसी गोलियां बनाकर शीशी में भरकर रख देवे। प्रतिदिन प्रातः सायं एक २ गोली घी के साथ सेवन करनी चाहिये। इससे उपदंश रोग शीघ्र ही दूर होजाता है।

वैद्य कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य्य।

स्वप्नदोष-प्रमेह-प्रदर आदि रोगों पर—माजूफल, मोती की सीप की भस्म, सफेद कत्था, गिलोय का सत, बड़ी इलायची के दाने, सफ़ेद राल प्रत्येक १-१ तोला और वंशलोचन २ तोला। सब को एकत्र कूट छानकर १ माशे की मात्रा ले मिश्री की चासनी में मिलाकर प्रतिदिन प्रातः सायं सेवन करने से प्रमेह, स्वप्नदोष और प्रदर आदि रोग नष्ट होकर धातु पुष्ट होती है।

सफेद दागों पर—तुलसी का स्वरस, कड़वी तोंबी का स्वरस, बावची, चीते की जड़ और मीठा तेल प्रत्येक १-१ छटांक। प्रथम चीते की जड़ और बावची को कूट छानकर उपरोक्त रसों और तेल में मिलाकर खूब घोट ले। पश्चात् इसको ईख के सिरके में मिलाकर सफेद दागों पर लगाने से वे नष्ट होजाते हैं। इसके ऊपर ३ तोले की मात्रा से सहद मिलाकर सुबह शाम चोपचीनी का अर्क पीना और भी अच्छा है।

आतशक-गर्मी के घावों पर—मैनसिल को खूब बारीक पीसकर सहद में मिलाकर आतशक-गर्मी के घावों पर लगाने से घाव शीघ्र आराम होजाते हैं।

प० शिवनारायण-परोल-कन्नोद।

— —

लंडन की चिट्ठी

ले० श्रीयुत प० हरिप्रसादजी शास्त्री (मिस्टर हरि) लंडन ।
C/o The National City Bank of New York 36 Bishopgate, London E. e. 2

प्रिय वैद्यराजजी !

आज "वैद्य" भैय्या को देखकर चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। यहां के चिकित्सा व्यवसाय के सम्बन्ध में कुछ पंक्तियां लिखकर इस पत्र के साथ भेजता हूँ। इनको प्रकाशित कर अनुगृहीत कीजिये।

१—लन्दन में अनेक अस्पताल हैं पर उनमें एक भी बिल्कुल मुफ्त नहीं है। किसी जगह पांच शिलिङ्ग रोज़ कहीं दो और कहीं २० भी देने पड़ते हैं। प्रायः सभी अस्पताल खैरात पर चलते हैं।

यहां के बड़े २ डाक्टर जो हेरली स्ट्रीट में स्पेसिलिस्ट कहलाते हैं उनकी फ़ीस एक बार देखने की तीन गिन्नी (लगभग ४१) रु०) से कम नहीं है। कोई २ डाक्टर पाँच और दस गिन्नी भी लेते हैं। बिना पैसा कोई भी इनसे बात नहीं कर सकता।

अस्पतालों में यही डाक्टर रोगियों को मुफ्त देखते हैं। जिस आपरेशन की फ़ीस १०००) रु० है उसको अस्पताल में कम पैसा वाला रोगी मामूली अस्पताल की फीस देकर करा सकता है। इस मेहरबानी का कारण परोपकार न समझना चाहिए। किन्तु डाक्टर साहब को रोगी का अनुभव करना भी आवश्यक है। इसी कारण यहां रोगी मुफ्त देखे जाते हैं।

२—लन्दन में २०० से अधिक भारतीय डाक्टर गली गली में चिकित्सा कर रहे हैं। यह सब यहां की उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। अंग्रेज़ भी इनको पसन्द करते हैं। और इनका यश लन्दन में खूब फैल रहा है। यहां के लोग इनको "काला डाक्टर" (Black Dactrr) कहते हैं।

भारतीय डाक्टर मिज़ाज के नम्र, हर समय रोगी के देखने को तैयार और रोगी की सब बातचीत चित्त से सुनने को राज़ी रहते

हैं। इसी कारण लोग इनको बहुत पसंद करते हैं। हिन्दुस्तानी डाक्टर विलायती डाक्टरों की अपेक्षा योग्यता में भी किसी तरह कम नहीं हैं। इन लोगों की एक सभा भी है।

साधारण श्रेणी की अँग्रेज़ रमणियाँ "काले डाक्टर" को अच्छा समझती हैं। उनका विश्वास है कि यह डाक्टर अपने हाथ में कुछ विशेष तासीर रखते हैं।

३—यदि रोगी घर बुलावे तो साधारण डाक्टर की फ़ीस साढ़े तीन शिलिङ्ग है और उनके घर जाकर हाल दिखाने की फ़ीस ढाई शिलिङ्ग है। इसमें एक बोतल दवा की क़ीमत भी आगई।

४—भिन्न २ रोगों के अलग २ अस्पताल भी बहुत हैं। अनेक लोग चार आना सप्ताह डाक्टर को देकर रुग्णावस्था में बिना फ़ीस दिए भी इलाज करा लेते हैं। यह प्रथा यहां ग़रीब लोगोंमें चलती है।

जो रोगी असाध्य हैं पर जल्दी शरीर न त्यागेंगे उनके लिए भी विशेष अस्पताल हैं। ऐसे रोगी विशेष आराम से रक्खे जाते हैं।

रोगियों के लिए कभी २ अस्पतालों में गायन भी हुआ करता है। सितार, सारङ्गी, पियानो आदि की तान सुनाई जाती है।

यहां जिनमें मद्य का व्यवहार कभी नहीं होता ऐसे अस्पताल भी हैं।

५—यहाँ होमियोपैथी का प्रचार बहुत कम है। भूतों के डाक्टर भी अनेक हैं। उनका कथन है कि वह मृत महान् डाक्टरों की आत्माओं से सम्बन्ध रखते हैं और उनसे रोगी का हाल कहकर नुसख़ा लिखा लेते हैं। मृत डाक्टर की आत्मा किसी स्त्री के ऊपर आवेश करके दवा बतलाती है। राम जाने यह कहां तक ठीक है। पर इन दिनों लन्दन में भूत विद्या का अधिक प्रचार है। अनेक स्थानों पर भूतों के फ़ोटो लिए जाते हैं और उनसे बातचीत भी की जाती है। आज दिन लन्दन के चर्चों में इतनी भीड़ नहीं होती जितनी भूत मन्दिरों में होती है।

कुछ दिन हुए मैं एक मित्र के अनुरोध से एक भूतमन्दिर में गया था। वहां एक विशाल हाल में १००० से अधिक नर नारी एकत्र थे। तीन भूत परस्त बृद्ध महिलाएँ प्लेटफार्म पर बैठी थीं शकल से वह भूतनी मालूम होती थीं। उनमें से एक पर भूत का आवेश बैठे बिठाए होगया और वह खड़ी होकर लोगों का हाल कहने

लगी। मेरी तरफ़ इशारा करके ज़ोर से बोली, "यह भारतवासी उत्तम विद्वान् है। इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्र में ऐसे विद्वान् हमारे यहाँ भी कम हैं। इनका धर्म प्रेम और नीति प्रेम प्रशंसनीय है। इनके पिता परम धर्मज्ञ थे और वह दादाजी कहलाते थे" मैं यह सुनकर चकित रह गया। मुझे इस स्त्री ने कभी नहीं देखा था। इसी प्रकार मेरे साथ एक पारसी भगिनी थी उनका भी हाल कहा। फिर कुछ लोगों के रोगों का हाल भी बतलाया, और औषधि भी बतलाई। मेरा विश्वास है कि यदि लन्दन में हमारी आयुर्वैदिक चिकित्सा का प्रचार किया जाय तो यहाँ के लोगों का बहुत कुछ उपकार होसकता है।

आपका प्रेमी–हरिः शास्त्री।

मंगलकामना।

ले॰ भिषगनुगामी पं॰ सियारामजी शर्मा वैद्यशास्त्री शास्त्रीयभैषज्य भण्डार, अलीगढ़।

"वैद्यः" भवतु वैद्यानामायुर्वेददिवाकरः।
यस्य संपादकः श्रीमान् "शंकरलाल" भिषग्वरः॥

भाषा छन्द।

श्री जगदीश तुम्हारे चरणों शीश नवावें।
यु–ग युग नाशन रोग आज धन्वन्तरि आवें॥
त–ब फिर हो उत्थान वेद आयु प्रगटावें।
शं–कर "शं" करदेव वैद्य को सब अपनावें॥
क–रते आयुर्वेद का तत्व विवेचन आतुर!
र–हैं "स्वर्ग" आवें पुनः शालिग्रामजी वैद्यवर॥
ला–ओ भक्ति से सुमन कर अंजलि करदें उन्हें।
ल–लित छन्द युत प्रेम से "वैद्य" बधाई है तुम्हें॥
वैद्य–बन्धुओ! "वैद्य" पत्र को सब अपनाओ।
वै–द्यक ज्ञान, विज्ञान, मान, सन्मान, बढ़ाओ॥
"वैद्य" प्रकाशित रहे यथा नभ में अमृतधर।
श्री–युत शंकरलाल हों शंकरलाल भिषग्वर॥

समाचार ।

वैद्यों को कारावास ।

सत्याग्रह आंदोलन के कारण इस समय कितने ही वैद्य महानुभावों को भी जेल में जाना पड़ा है।

कानपुर के—वैद्यराज वैद्यमार्त्तण्ड पं० रघुवरदयालुजी भट्ट मन्त्री वैद्यसम्मेलन और विद्यापीठ।

वैद्यराज वैद्यरत्न पं० कन्हैयालालजी जैन, वैद्यराज पं० शिवनारायणजी मिश्र मंत्री अखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन।

प्रयाग के—वैद्यराज पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल वैद्य पञ्चानन अखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन के भू० पू० सभापति, सुधानिधि सम्पादक।

कनखल के—वैद्यराज पं० रामचन्द्रजी शर्मा।

देहरादून के—वैद्यराज पं० अमरनाथजी दीक्षित।

लाहौर के—वैद्यराज पं० ठाकुरदत्त जी मुलतानी।

मद्रास के—डाक्टर लक्ष्मीपति जी की धर्मपत्नी।

मुरादाबाद के—वैद्यराज पं० बाबूरामजी शर्मा मिश्र उपमंत्री-संयुक्त प्रान्तीय-वैद्यसम्मेलन आयुर्वेदाचार्य्य आदि अनेक वैद्यवर इस समय जेलों में समय व्यतीत कर रहे हैं।

सुना है मुरादाबाद के वैद्यराज पं० बाबूरामजी का स्वास्थ्य बहुत खराब है। उनको पुराना संग्रहणी रोग फिर उभर आया है, और वे बरेली जेल की अस्पताल में रखे गये हैं। उनकी वृद्धता और स्वास्थ्य को देखते हुए हम प्रान्तीय गवर्नमेंट से प्रार्थना करते हैं कि उनको ए. या बी. क्लास मिलना चाहिये।

२१ वाँ वैद्यसम्मेलन ।

आगामी अखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलन का २१ वाँ वार्षिक अधिवेशन मद्रास के मैसूर नगर में महामहोपाध्याय कविराज श्री० गणनाथसेनजी सरस्वती महोदय की अध्यक्षता में ता० २७-२८-२९ दिसम्बर सन् १९३० को होना निश्चित हुआ है।

हमारे अनुवादित और संकलित–

कुछ वैद्यक ग्रन्थ।

वंगसेन—महामति श्री० वंगसेन प्रणीत संस्कृत मूल और सुन्दर सरल भाषानुवाद सहित, इसमें समस्त रोगों के निदान चिकित्सा आदि विषय बड़े विस्तृत रूप से लिखे गये हैं। मू० १०) रु० डा० म० १॥) रु०

रसरत्नसमुच्चय-(रसवाग्भट्ट)— महामतीवाग्भट्टाचार्यप्रणीत संस्कृत मूल और सुन्दर भाषा टीका सहित–इस ग्रन्थ में समस्त रस धातु आदि का शोधन मारण और रसों के द्वारा समस्त रोगों की चिकित्सा लिखी गई है । मू० ६) डा० १) रु०

भैषज्यरत्नावली— बृहद् वैद्यक चिकित्सा ग्रन्थ—संस्कृत मूल और सुन्दर सरल भाषा टीका सहित, यह ग्रन्थ यद्यपि कई स्थानों में छपा है। पर हमने इसमें और भी बहुत से आशु फलप्रद और उपयोगी प्रयोगों को दूसरे ग्रन्थों से उद्‌धृत कर लिख दिये हैं। अतः यह ग्रन्थ अन्य स्थानों में छपी हुई अन्य भैषज्यरत्नावलियों से अधिक बढ़ गया है। तथापि इसका मूल्य सर्वसाधारण के लिये केवल ७) रखा गया है। डा० १।) रु०

हितोपदेश वैद्यक—जैनमुनि श्रीकण्ठविरचित संस्कृत मूल भाषा टीका सहित इस ग्रन्थ में अष्टविद्र परीक्षा और अनेक रोगों का निदान तथा अनुभूत योगों के द्वारा चिकित्सा लिखी गई है। मू० १॥।) डा० ।–)

औषधक्रिया—स्वर्गीय भिषगाचार्य पं० शंकरदाजी शास्त्री पदे द्वारा संकलित संस्कृत मूल और सुन्दर भाषा टीका सहित इसमें अनेक शास्त्रीय अनुभूत योगों का उत्तम संग्रह है। मू० ॥=) डा० =)

पुस्तकें सब बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस के बढ़िया काग़ज़ पर छापी गई हैं और विलायती कपड़े की बढ़िया जिल्द बांधी गई है।

वैद्य–शंकरलाल हरिशंकर,
आयुर्वेदोद्धारक औषधालय।

मुद्रक—प० जीवारामोपाध्याय, सरस्वती-प्रेस, मुरादाबाद ।